॥ हितोपदेशः ॥

मूल-वृत्ति-कथा-तुला-टिप्पणीसमन्वितः

ग्रन्थकाराः

प्रतिभासमुद्र-प्रतिभाभिराम-पूज्यपादाचार्यश्रीमत्प्रभानन्दसूरीश्वराः

विवरणकाराः

परमतेजस्वि-परमविद्वद्वर्य-पूज्यपादाचार्यश्रीमत्परमानन्दसूरीश्वराः

सम्पादकाः

तपागच्छाधिराजपूज्यपादाचार्यवर्य-श्रीमद्विजयरामचन्द्रसूरीश्वरचरणरेणु-
वर्धमानतपोनिधि-पूज्यपादाचार्यश्रीमद्विजयगुणयशसूरीश्वरविनेयाः
प्रवचनप्रभावक-पूज्यपादाचार्यश्रीमद्विजयकीर्तियशसूरीश्वराः

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पू. आ. श्री. विजयरामचन्द्रसूरिस्मृतिसंस्कृत-प्राकृतग्रंथमाला-१४

।। हितोपदेशः ।।

[मूल-वृत्ति-कथा-तुला-टिप्पणीसमन्वितः]

❖ ग्रन्थकाराः ❖

प्रतिभासमुद्र-प्रतिभाभिराम-पूज्यपादाचार्यश्रीमत्प्रभानन्दसूरीश्वराः

● विवरणकाराः ●

परमतेजस्वि-परमविद्वद्वर्य-पूज्यपादाचार्यश्रीमत्परमानन्दसूरीश्वराः

✪ सम्पादकाः ✪

तपागच्छाधिराजपूज्यपादाचार्यवर्य-श्रीमद्विजयरामचन्द्रसूरीश्वरचरणरेणु-
वर्धमानतपोनिधि-पूज्यपादाचार्यश्रीमद्विजयगुणयशसूरीश्वरविनेयाः
प्रवचनप्रभावक-पूज्यपादाचार्यश्रीमद्विजयकीर्तियशसूरीश्वराः

: प्रकाशकम् :

सन्मार्ग प्रकाशन, पाछीयानी पोळ, रीलीफ रोड, अहमदाबाद-१

फोन : २५३५ २०७२ - फैक्स : २५३९ २७८९

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थनाम - **हितोपदेशः** मूल-वृत्ति-कथा-तुला-टिप्पणीसमन्वितः
ISBN 81-87163-67-4

ग्रन्थकर्तारः - **पू. आ. श्रीप्रभानन्दसूरीश्वराः**

विवरणनाम - **हितोपदेशामृतं विवरणम्**

विवरणकर्तारः - **पू. आ. श्रीपरमानन्दसूरीश्वराः**

संपादकाः - **पू. आ. श्रीविजयकीर्तियशसूरीश्वराः**

प्रकाशकः - **सन्मार्गप्रकाशनम् - अहमदाबाद**

विशेष-आवृत्तिः - **प्रथमा - वि. सं. २०६२, वी. सं. २५३२, ई. सं. २००५**

मूल्यम् - **रूप्यकाणि १७५-००**

: खास सूचना :

आ पुस्तक ज्ञानखातानी रकममांथी छपायेलुं होवाथी गृहस्थोए उपयोग करवो होय तो संपूर्ण किंमत ज्ञानखाते चूकवी पछी ज आनी मालिकी करवी अथवा योग्य नकरो ज्ञानखातामां भरीने उपयोग करवो.

प्राप्तिस्थानम्

अहमदाबाद : **सन्मार्ग प्रकाशन,** जैन आराधना भवन, पाछीया की पोल, रीलीफ रोड,
अहमदाबाद-३८०००१ - फोन-फेक्स : २५३५२०७२
E-mail : sanmargp@icenet.net

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

હાર્દિક અનુમોદના

સન્માર્ગ પ્રકાશન દ્વારા આયોજિત પૂજ્યપાદ આચાર્યદેવ શ્રીમદ્વિજય **રામચંદ્રસૂરિ સ્મૃતિ સંસ્કૃત-પ્રાકૃત ગ્રંથમાળાના** ઉપક્રમે ૧૪મા પુષ્પરૂપે પ્રકાશિત થતા વિદ્વદ્વર્ય પૂજ્યપાદ આચાર્ય **શ્રીમત્ પરમાનંદસૂરીશ્વરજી** મહારાજકૃત **'શ્રી હિતોપદેશામૃતવિવરણ'** સહિત પ્રતિભાસમુદ્ર પૂજ્યપાદ આચાર્ય શ્રીમત્ **પ્રભાનંદસૂરીશ્વરજી**મહારાજકૃત શ્રી **"હિતોપદેશઃ-મૂળ-વૃત્તિ-કથા-તુલા-ટિપ્પણી સહિત"**

ગ્રંથના પ્રકાશનનો લાભ લેનાર -

- શ્રી તપાગચ્છ અમર જૈનશાળા સંઘ, ખંભાત શહેર
- શ્રી અતુલકુમાર દલપતભાઈ શાહ - દીક્ષા આયોજન સમિતિ
- શ્રી રમણલાલ છગનલાલ આરાધનાભવન ટ્રસ્ટ, નવસારી
- શ્રી પુખરાજ રાયચંદ આરાધનાભવન ટ્રસ્ટ, સાબરમતી
- શ્રી પંચતીર્થ એપાર્ટમેન્ટ, પાલડી - અમદાવાદ શ્રાવિકાબહેનોની ઉછામણી
- પૂ. સા. શ્રી ચંદ્રાનનાશ્રીજી મ.સા. ની નિશ્રામાં - વિવિધ સ્થળે થયેલ શ્રાવિકાબહેનોની ઉછામણી

દ્વારા એકત્રિત જ્ઞાનનિધિમાંથી...

આપે કરેલી શ્રુતભક્તિની અમો હાર્દિક અનુમોદના કરીએ છીએ -
અને ભવિષ્યમાં પણ આપ ઉત્તરોત્તર ઉત્તમ કક્ષાની શ્રુતભક્તિ કરતા રહો
એવી શુભેચ્છા પાઠવીએ છીએ.

- સન્માર્ગ પ્રકાશન

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

अनंत उपकारी विश्ववत्सल श्रीअरिहंत परमात्माए स्थापेलो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन अने सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्ग आपणा सुधी पहोंच्यो छे. तेमां सौथी मोटो फाळो सुविहित आचार्य भगवंतादि मुनिपुंगवोनो छे.

अनंत करुणानिधान श्रीतीर्थंकरदेवोए अर्थ द्वारा प्ररूपेलो, बीजबुद्धिना निधान श्रीगणधरदेवोए सूत्र द्वारा गूंथेलो श्रुतवारसो तेओए प्राप्त कर्यो. एमां सम्यक् श्रद्धा करी हृदयमां स्थिर कर्यो, स्व-जीवनमां शक्ति अनुसार आचर्यो अने भाविना आत्मकल्याणकांक्षी आत्माओने ए श्रुतनुं वहेण अविरत मळ्या करे ए माटे सुयोग्य रीते ए वारसानो विनियोग पण कर्यो.

श्रुत-विनियोगना अनेक प्रकारो पैकी **'शास्त्ररचना करवी'** ए पण एक प्रशस्त प्रकार छे. श्रीगणधरभगवंतोए जेम द्वादशांगी आदि आगमग्रंथोनी रचना करी तेम त्यार पछी थयेला स्थविरभगवंतोए दशवैकालिकादि आगमग्रंथो अने अनेक शास्त्रोनी रचना करी. आगम अने पूर्वगत पदार्थोना भावोने विशिष्ट संकलनाथी संगत अर्थानुसंधान साथे गुंफित करी जुदा जुदा प्रकरण-ग्रंथोनुं निर्माण थयुं. आगमग्रंथो भणवा-भणाववानो अधिकार जेमने प्राप्त थयो नथी एवा श्रुतानुरागी सुयोग्य आत्माओ सुधी श्रीजिनोक्ततत्त्वनो प्रकाश सहेलाईथी पहोंची शके, ते द्वारा तेओ स्वात्मकल्याण साधी शके, आ आशय तेमां रहेलो हतो.

आवो ज एक आगम-उपजीवी प्रकरण ग्रंथ छे **'हितोपदेशः'** तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजानी असीम कृपाथी आ ग्रंथनो प्रकाश जोवा श्रीसंघ सौभाग्यशाळी बन्यो हतो. तेओश्रीना विनेयरत्न वर्धमानतपोनिधि पू. आ. श्री विजय **गुणयशसूरीश्वरजी** महाराजना शिष्यरत्न प्रवचनप्रभावक पू. आ. श्री विजय **कीर्तियशसूरीश्वरजी** महाराजे एनुं संपादन करी मूळ गाथा अने भाषांतररूपे तैयार करी-करावी **श्रीनगीनभाई पौषधशाळा-पाटणना** अन्वये वि. सं. २०३९ मां **'श्री हितोपदेशमाळा-श्रीदर्शनशुद्धि प्रकरणम्'** नामे प्रकाशित कराव्यो हतो.

आ ग्रंथनी अनेक स्थळे साक्षीओ मळे छे. पू. महोपाध्याय **श्रीयशोविजयजी** महाराजे पण एनो आधार टांकेलो जोवा मळे छे. जैनशासनना अनेक महत्त्वपूर्ण पदार्थोनुं आधारभूत टंकशाळी निरूपण आ ग्रंथमां थयेल छे. आ ग्रंथनी 'टीका' अंगे तपास करतां **पाटण श्री हेमचंद्राचार्य ज्ञानमंदिर**मांथी एक सटीक अपूर्ण प्रत मळी आवी हती अने ते पछी बीजी एक प्रत **अमदावाद** हाजापटेलनी पोलना **संवेगी उपाश्रयना ज्ञानभंडार**मांथी मळी आवी जे संपूर्ण हती. आ बे प्रतना आधारे आ ग्रंथनुं संपादन करवामां आव्युं छे.

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ टीका मूळकार प्रतिभासमुद्र पू. आ. **श्रीप्रभानंदसूरीश्वरजी** महाराजाना ज लघुबंधु पू. आ. **श्रीपरमानंदसूरीश्वरजी** महाराजाए रचेली छे.

प्रवचनप्रभावक पूज्य आचार्यदेव विजय **कीर्तियशसूरीश्वरजी** महाराजना सतत पुरुषार्थ अने प्रेरणाथी आ ग्रंथ भंडारमांथी बहार नीकळ्यो, प्रथम मात्र मूळगाथारूपे अने हवे 'टीका' साथे प्रकाशित थई रह्यो छे ते आनंदनो विषय छे. तेओश्रीना मार्गदर्शनमां रहीने तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्यदेवेश श्रीमद्विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजानां साम्राज्यवर्ती अने प्रवर्तिनी पू. साध्वीजी **श्रीरोहिताश्रीजी** म. ना शिष्यरत्ना विदुषी पू. साध्वीजी **श्रीचंदनबालाश्रीजी** महाराजे छेल्ला बे वर्ष सुधी अथाक महेनत करी आ सटीक ग्रंथनुं विशिष्ट तुला अने टीप्पणीओ साथे सांगोपांग संपादनकार्य संपन्न करी श्रुतसेवानुं उज्ज्वल उदाहरण रजू कर्युं छे, ते खूब अनुमोदनीय छे.

एज रीते आ ग्रन्थना प्रुफ-संशोधनादि कार्यमां अन्य श्रमणी भगवंतो अने श्रमणोपासकोनो पण स्तुत्य सहयोग सांपड्यो छे, तेमना पण अमे ऋणी छीए.

मूल-टीका-कथा-तुला अने टिप्पणीओ साथे सर्वप्रथम प्रताकारे आ ग्रंथरत्ननुं संपादनकार्य थया पछी अमने विचार आव्यो के क्राउन-८ पेजी साइझमां पुस्तकाकारे पण ग्रंथ तैयार थशे तो उपयोगी थशे. तेथी फरी ए मुजब मूल-टीका-कथा-तुला अने टिप्पणीओ साथे सेटींग तथा प्रुफसंशोधन करी विदुषी पू. साध्वीजी **श्रीचंदनबालाश्रीजी** महाराजे श्रुतसेवा करेल छे. एनी फलश्रुति स्वरूपे पुस्तकाकारे पण आ ग्रंथ प्रकाशित थई रहेल छे तथा डेमी-१६ पेजी साइझमां पुस्तकाकारे वाचनमां सहायभूत बनी शके, ए उद्देशथी कथानको अने टीप्पणो विना मूल अने टीका साथे पण प्रकाशन तैयार थयुं छे.

देव-गुरुनी कृपाथी तैयार थयेल आ अमूल्य नजराणुं आजे श्रुतप्रेमीओना करकमलमां मूकतां अमो हर्षानुभूति करी रह्या छीए.

हितोपदेश ग्रंथरत्न प्रताकारे प्रकाशित थया पछी अनेक समुदायना महात्माओने ए प्रतनी नकलो मोकली ते सौ तरफथी खूब सुंदर प्रतिभाव सांपड्यो छे. 'साधनामार्गना विकासना पायाथी लईने सिद्धिमहेल सुधी पहोंचवा माटे अति उपयोगी आ ग्रंथ छे. आ ग्रंथरत्नमां संपूर्ण साधनामार्गने आवरी लीधो छे.'

विशेष आनंदनी वात तो ए छे के, परमपूज्य परमविद्वद्वर्य आगमप्रज्ञ अनेक आगमग्रंथोना संशोधनकार प्रवर्तक पूज्य मुनिराजश्री **जंबूविजयजी** महाराज साहेबने आ ग्रंथरत्न मळता तेओश्रीए गत चातुर्मासना कुंभण मुकामे एमना निश्रावर्ती साधु-साध्वीजी भगवंतोने आ ग्रंथरत्ननुं वाचन कराव्युं अने साथे साथे अमारी पासेथी आ ग्रंथरत्ननी फोटोकोपी मंगावी अमे तेओश्रीने मोकली आपी. तेओश्रीनी हस्तप्रत

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उकेलवानी आगवी सूझ-बूझना कारणे लहीयानी-लिप्यंतर करनार वि. नी रही गयेली अशुद्धिओनुं शुद्धिकरण करी अमने हितोपदेश ग्रंथरत्ननी प्रत मोकली आपी, ते सर्वे पाठोनी शुद्धि आ प्रकाशनमां थई गयेल छे. तेथी आ प्रकाशन सर्वांगे विशेष सुंदर थवा पाम्युं छे, ते बदल अमे पूज्यश्रीनो उपकार मानीए छीए अने पूज्यश्रीना खूब ऋणी छीए.

संस्कृत-प्राकृत आकार ग्रंथोना प्रकाशनमां आ रीते एकी साथे त्रण त्रण जुदी जुदी साईझमां प्रकाशननो आ नवतर प्रयोग प्रायः पहेलो वहेलो ज छे अने श्रुतप्रेमीओ एथी जरूर लाभान्वित थशे, एवो विश्वास छे.

अचिंत्यचिंतामणि **श्रीशंखेश्वरपार्श्वनाथ** परमात्मानी असीम कृपा परमतारक जैनशासनशिरताज, तपागच्छाधिराज संघसन्मार्गदर्शक संघस्थविर पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजा आदि पूज्योनी अविरत अमीदृष्टिथी अमो आवा श्रुतप्रकाशनना कार्यमां आगळ ने आगळ वधता रहीए ए ज कामना.

- सन्मार्ग प्रकाशन

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

જૈનસંઘને મળેલો દિવ્યપ્રકાશ : હિતોપદેશ

- પૂ. આચાર્યશ્રી વિજયકીર્તિયશસૂરિજી મ. સા.

આજથી ૩૦૦-૩૫૦ વર્ષો પૂર્વે જૈનશાસનના ગગનાંગણમાં તેજસ્વી જ્ઞાનસૂર્યરૂપે પ્રકાશ રેલાવનારા પૂ. મહામહોપાધ્યાય **શ્રીયશોવિજયજી** ગણિવર્ય થઈ ગયા. 'વર્તમાનકાળમાં પૂર્વધર-શ્રુતકેવલીઓની યાદ અપાવે એવા વિશાળ જ્ઞાનરાશિ ધરાવનાર' તરીકે તેમના સમકાલીન ગુણાનુરાગી વિદ્વાન શાસ્ત્રકારોએ તેમની ઓળખ આપી છે. તેઓશ્રીએ જૈન આગમો અને તાત્ત્વિક ગ્રંથોનાં રહસ્યો સંસ્કૃત-પ્રાકૃત ભાષાના અજાણ મુમુક્ષુ આત્માઓને મળે એ ઉદાત્ત આશયથી અનેક નાનાં-મોટાં ગુજરાતી સ્તવનો આદિની રચના પણ કરી છે, તે પૈકીનો એક ગ્રંથ છે શ્રી 'સીમંધરસ્વામીને વિનંતી સ્વરૂપ ૩૫૦ ગાથાનું સ્તવન.'

આ મહાન શ્રુતરત્નના ભાવો વધુ સ્પષ્ટ થાય અને અલ્પ બોધવાળા જિજ્ઞાસુઓ પણ તેઓ શ્રીમદ્‌ના જ્ઞાનપ્રકાશને માણી શકે એ આશયથી તપાગચ્છાધિરાજ પૂજ્યપાદ આચાર્યદેવેશ શ્રીમદ્ વિજય **રામચન્દ્રસૂરીશ્વરજી** મહારાજાની આજ્ઞા અને આશિષથી ૩૫૦ ગાથાના સ્તવન ઉપર **'સન્માર્ગદર્શન'** નામે વિવેચના લખવાનું કાર્ય મેં પ્રારંભ્યું હતું. તે અરસામાં વિવિધ ગ્રંથોના સંદર્ભો જોવાનું થયું. એમાં **'હિતોપદેશમાળા'** ગ્રંથ અંગેના ઉલ્લેખો એકથી વધુ સ્થળે મળતાં તે ગ્રંથ મેળવવા તપાસ શરુ કરી. **'ધર્મસંગ્રહ'**માં પણ ઉચિતવ્યવહારના અને **'શ્રાદ્ધવિધિ'** ગ્રંથમાં પણ નવ પ્રકારના ઔચિત્યના નિરૂપણ પ્રસંગે ગ્રંથકારશ્રીએ **'હિતોપદેશમાળા'**માંથી જ ગાથાઓ ઉદ્ધૃત કરી નિરૂપણ કરેલ જોવા મળતાં આ ગ્રંથ પ્રાપ્ત કરવાની આતુરતા વધવા પામી.

બહુ તપાસ કરતાં **પાટણ શ્રીહેમચંદ્રસૂરિ જ્ઞાનમંદિર**માંથી બે પ્રતો મળી. જે પૈકી એક મૂળની પ્રત હતી તો બીજી સટીક પ્રત હતી. ટીકા ગ્રંથના આધારે મૂળની શુદ્ધિ કરી પૂ. પં. શ્રી **વિચક્ષણવિજયજી** ગણિવર્ય (ત્યાર પછી આચાર્ય)શ્રીજી પાસે અનુવાદિત કરાવી એનું પ્રકાશન કરાવ્યું. એ જ પુસ્તકમાં દર્શનશુદ્ધિપ્રકરણ ગ્રંથની મૂળ ગાથાઓ પણ સંશોધિત કરી પ્રકાશિત કરાવેલ. આ ગ્રંથ પ્રેસમાં છપાયા બાદ બાઇન્ડીંગમાં જવાની તૈયારીમાં હતો ત્યારે પ્રાકૃત ભાષાના નિષ્ણાત પંડિતવર્ય **શ્રી અમૃતલાલ ભોજક, અમદાવાદ શ્રીવિજયદાનસૂરિજી જ્ઞાનમંદિર**માં મને મળવા આવ્યા હતા. એમણે આ કાર્ય જોયું અને જણાવ્યું કે, સાહિત્ય સંશોધક **જિનવિજય** મહાશયે સંશોધિત કરેલ આ મૂળ ગ્રંથની પ્રેસ-કોપી મારી પાસે છે. તે હું આપું.' એ કોપી મળી. એનો કેટલોક ભાગ સાવ ખવાઈ ગયો હતો. છતાં તેના આધારે **'શુદ્ધિપત્રક'** તૈયાર કરી ગ્રંથના અંતે જોડવામાં આવેલ.

એ જ વખતે આ સંપૂર્ણગ્રંથ ટીકા સાથે, સંશોધિત કરી પ્રકાશિત કરાવવાનો મનોરથ થયો હતો અને તે

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माटे सर्वत्र भंडारोमां हस्तप्रतो मेळववा तपास करी-करावी हती; परंतु कमनसीबे क्यांयथी य एवी प्रत मळी शकी नहीं. एटले पाटणनी प्रतना आधारे ज कार्य प्रारंभायुं. पण ते अधूरी हती, एनो अंत्य भाग अपूर्ण हतो. एटलामां अमदावाद **पगथियाना-संवेगी उपाश्रय**मांथी एक हस्तप्रत सटीक मळी, जे संपूर्ण हती. आ बंने प्रतना आधारे पंडित **बाबुलाल सवचंदे** खूब ज जहेमत ऊठावी सुंदर प्रेसकोपी तैयार करी आपी. त्यार बाद में संपादन कार्य आगळ वधार्युं. संपादन कार्य चालु हतुं ए वखते विचार आव्यो के, आ खूब ज महत्त्वनो संदर्भग्रंथ होई आना संपादनमां तुलनात्मक टीप्पणीओ आदि मूकाय तो अभ्यासुजनोने वधु लाभदायी बने. ए कार्य माटे विचार करतां परमगुरुदेव तपागच्छाधिपति पूज्यपाद आचार्यदेवेश श्रीमद्विजय **रामचन्द्रसूरीश्वरजी** महाराजाना साम्राज्यवर्ती अने प्रवर्तिनी साध्वीजी **श्रीरोहिताश्रीजी** म. सा. ना शिष्यरत्ना विदुषी साध्वीजी **श्रीचंदनबाळाश्रीजी** महाराज तरफ नजर गई. तेमनी स्वाध्यायरुचि, खंत, धगश अने पदार्थबोध आदिनी सज्जता जोई आ कार्य तेओ सारी रीते आगळ वधारी पूर्ण करी शकशे एवो विश्वास जाग्यो, तेथी तेमने वात करी अने आ वातनो तेमणे तरत ज सहर्ष स्वीकार करी टुंका समयगाळामां ज अथाक परिश्रम करी, आ कार्य संपन्न करी आप्युं. मारा मार्गदर्शनने झीली, विविध धर्मग्रंथोना जरूरी संदर्भो-साक्षीओ-उद्धरण श्लोकोना मूळ ग्रंथाधारो अने तुलनात्मक टीप्पणीओ आदिथी तेमणे आ ग्रंथनी उपादेयताने केई गणी वधारी दीधी छे. तेमनो आ ज्ञान-परिश्रम तेमना पोताना आत्मविकास साथोसाथ केई भव्यात्माओना अंधकारभर्या साधनाजीवनमां अध्यात्मनो उजास रेलावशे ए निःसंदेह छे. तेमणे पाठशुद्धि माटे पण अनुमोदनीय चीवट राखी छे.

आ कार्य चालु हतुं ते दरम्यान पण अनेक स्थळे अन्य हस्तप्रतो मेळववाना प्रयास चालु ज हता, छतां क्यांयथी सटीक प्रत न मळतां उपलब्ध साधनोना आधारे आ संपादन करायुं छे. तेथी कोइ स्थानमां अशुद्धि रही होय तो प्रबुद्ध वाचकवर्ग एनुं यथायोग्य परिमार्जन करीने वाचन करे.

आ ग्रंथरत्नमां प्राकृत गाथाओ, प्राकृत कथानको पण होई प्राकृतभाषाना निष्णात पं. श्री **अमृतलाल भोजक**नो सहयोग लेवानो विचार कर्यो अने एमणे खूब ज आत्मीयताथी आ कार्य स्वीकार्युं; परंतु तेमणे शरूआत करी न करी एटलामां ज तेमनो देहविलय थई जतां ए तमाम कार्य पण विदुषी साध्वीजी **श्रीचंदनबाळाश्रीजी** महाराजे पूर्ण कर्युं छे.

आ ग्रंथना प्रुफो तपासवामां विदुषी साध्वीजी **श्रीचंदनबालाश्रीजी** महाराज उपरांत अन्य पण केटलाक महात्मा-पुण्यात्मा सहयोगी बन्या छे. तेमां बहुसंख्य श्रमणीवृंद योगक्षेमकारिका साध्वीजी **श्रीचंद्राननाश्रीजी** महाराजनां शिष्या विदुषी साध्वीजी **श्रीप्रशमिताश्रीजी** महाराजनां शिष्या-प्रशिष्या साध्वीजी **श्रीराजप्रज्ञाश्रीजी** महाराज तथा साध्वीजी **श्रीविज्ञानप्रज्ञाश्रीजी** महाराज पण खूब ज सहयोगी बन्यां छे. एमांय नाना साध्वीजीनो मात्र बे वर्षनो टुंको दीक्षापर्याय होवा छतां गुरुकृपाथी संस्कृत व्याकरणादिनो सुंदर अभ्यास-बोध केळवी तेमणे आ ग्रंथनी प्रुफशुद्धि वगेरे करवा द्वारा सुंदर श्रुतभक्ति करी

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छे, तेनी पण अनुमोदना करुं छुं. ते उपरांत सुश्रावक **श्रीशांतिभाई शिवलाल शाहे** पण खूब ज खंतपूर्वक आ ग्रंथनुं प्रुफसंशोधन कर्युं छे. अमने प्राप्त थयेल बे हस्तप्रतोमां लहीयानी लखवामां रही गयेली अशुद्धि वगेरेना कारणे प्रेसकोपीमां पण अमुक अशुद्धिओ रही जवा पामेल तेना शुद्धिकरण माटे पं. **श्रीअमृतभाइ पटेल** पण सहायक बनेल छे. **'ग्रंथसंस्तवः'** ए संस्कृत प्रस्तावनानुं प्रुफसंशोधन तपागच्छाधिराजना शिष्यरत्न विद्वान मुनिश्री **प्रशमरतिविजयजी** महाराजे करेल छे.

प्रताकारे आ ग्रंथरत्न प्रकाशित थया पछी प्रकाशकीय लखाणमां जणाव्या मुजब आगमादि साहित्य संशोधक विद्वान प्रवर्तक **पू. श्रीजंबूविजयजी** महाराज साहेबे आ ग्रंथरत्ननी कुंभण मुकामे गत चातुर्मासमां एमना निश्रावर्ती साधु-साध्वीजी भगवंतोने वाचना आपेल अने ते वाचन समये आ ग्रंथरत्नमां लिप्यंतर वि. मां लिपि बराबर उकेलाई न होय तेना कारणे तेमज प्रुफ वाचनमां अशुद्धिओ कोई रही गई होय ते अशुद्धिओनुं हस्तादर्श साथे मेळवी शुद्धिकरण करी आपेल छे, तेथी पुस्तकाकारनुं आ प्रकाशन विशेष शुद्धिपूर्वकनुं सर्वांगे सुंदर थवा पाम्युं छे ते बदल तेओश्री प्रत्ये खास कृतज्ञभाव व्यक्त करुं छुं.

आ रीते आ ग्रंथ संपादन-प्रकाशनमां सहायक थनार सौनी अंतरथी अनुमोदना करुं छुं.

'हितोपदेश' ग्रंथरत्ननो परिचय :

आ ग्रंथरत्नना प्रारंभमां ग्रंथकारश्रीए मंगळाचरण करीने भव्यजीवोने जैनसिद्धांत सागरमांथी उद्धृत करेल हितोपदेशामृत आपवानी प्रतिज्ञाने जणावी हितकारक मार्ग दर्शावतां जणाव्युं छे के, १ - सुविशुद्धसम्यक्त्व, २ - उत्तमगुणोनो संग्रह, ३ - देशविरति अने ४ - सर्वविरति, आ चार गुणोमां प्रबळ पुरुषार्थ करवो ए ज परम हितकारक मार्ग छे.

क्रमशः आ चारेय गुणोनुं विस्तारथी वर्णन करतां सम्यग्दर्शनगुणने पामवा माटे मिथ्यात्वनी अनर्थकारकता वर्णवी तेनो त्याग करवानो अने सम्यग्दर्शनगुणने स्वीकारवानो उपदेश आप्यो छे.

अधिकारी आत्मा ज सम्यक्त्व पामी शके. सम्यक्त्वना अधिकारी बनवा माटे तेर गुणोनी आवश्यकता उपर भार मूकीने ते तेर गुणोनो नामोल्लेख कर्यो छे. (गाथा-१२ थी १४)

त्यार पछी गाथा-१५ थी २१मां सम्यक्त्वनुं लक्षण अने तेना महिमाने वर्णव्यो छे. (गाथा-१५ थी २१)

त्यार पछी सम्यक्त्वना पांच दोष, पांच लक्षण अने पांच भूषणनुं वर्णन कर्युं छे. (गाथा-२३ थी २९)

सम्यक्त्व रत्न पण गुणोनो समुदाय होय तो ज शोभी शके छे, तेथी ते माटेना आवश्यक अगियार गुणोनुं वर्णन विस्तारथी क्रमशः कर्युं छे. (गाथा-३०-४१)

तेमां पहेला **दान**गुणमां अभयदान, अनुकंपादान, ज्ञानदान अने भक्तिदाननो समावेश करीने ज्ञानदानमां पांच ज्ञाननुं वर्णन कर्युं छे.

भक्तिदानमां जिनमंदिर आदि सातक्षेत्रोनुं विस्तारथी निरूपण कर्युं छे; तेमां जिनमंदिरनां निर्माण माटे

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्र-विधि उपर खूब भार मूकीने दानगुणनी समाप्ति करी छे. (गाथा-४२ थी १७०)

बीजा **शील**गुणनुं वर्णन करतां कह्युं छे के - दानगुण पण शील विना शोभतो नथी, परंतु शील पाळवुं घणुं ज दुष्कर छे. जे आत्मा शीलने विशुद्ध भावथी पाळे छे ते आत्मा ज कल्याण साधी शके छे तथा कामनी भयंकरता वर्णवतां लख्युं छे के - शास्त्रनी विचारणा करवानो प्रसंग उभो थाय त्यारे शास्त्रना अभ्यास विनाना आत्माओ पशु जेवा देखाय छे, परंतु कामनुं आक्रमण आवे त्यारे तो पंडितो अने अपंडितो ए बंनेय पशु जेवा देखाय छे. एक हृदयवेधक रमूज रजु करतां ग्रंथकारश्री जणावे छे के - "बहारना कोई पण आक्रमणो आवे तो लोको बळवान मनुष्यनुं शरण स्वीकारे छे, पण कामनुं आक्रमण आवे तो लोक अबळा (स्त्री)नुं ज शरण स्वीकारे छे. आ केवुं अपूर्व आश्चर्य छे !" खेदनी वात तो ए छे के संसार छोडीने वनवास करनारा (संन्यासी आदि) पण कामना प्रबळ पाशमांथी बची शक्या नथी. कामना प्रबळ पाशमांथी जे बचे ते धन्यवादने पात्र छे अने तेना हृदयमां ज चारित्र लक्ष्मी विलास करी शके छे. वीतराग एवा श्री अरिहंतदेवोए स्थापेलो श्रमण प्रधान चतुर्विध संघ खरेखर विराग गुणना प्रतापे विश्वमां शोभी रह्यो छे. (गाथा-१७१ थी १८५)

त्रीजा **तप**गुणनुं वर्णन करतां लख्युं छे के - शीलधर्म पण तो ज पाळी शकाय के जो जीवनमां तपगुण होय, आ तपना छ बाह्य अने छ अभ्यंतर एम बार प्रकार बताव्या छे. शुभ परिणामथी तो अनिकाचित कर्मोनो क्षय थाय छे पण तपनुं आचरण करवाथी तो निकाचित कर्मोनो पण क्षय थाय छे. तप करवाथी अमंगळो-विघ्नोनो नाश थाय छे, इन्द्रियोनुं नियंत्रण थाय छे अने देवो पण वश थाय छे तथा आमर्षौषधि वगेरे अनेक लब्धिओ प्राप्त थाय छे. आवा अनुपम तपधर्मने श्रीतीर्थंकरदेवोए पोताना जीवनमां आचर्यो छे अने जगतना जीवोने तेनो उपदेश आप्यो छे. आ तपधर्म रागादि भावदोषोनो नाश करनार होवाथी एने आदरपूर्वक जीवनमां जीववो जोइए. (गाथा-१८६ थी १९९)

चोथा **भाव**धर्मनुं वर्णन करतां जणाव्युं छे के - भाव विनाना दान, शील अने तप ए त्रणेय कष्टानुष्ठानरूप बने छे अने पशुओना कष्टभोगनी जेम अकाम निर्जरा ज करावे छे. करोडो जन्मोमां करेला तपथी जे कर्मोनो क्षय नथी थतो, ते कर्मोनो क्षय भावधर्म द्वारा क्षणार्ध-अर्धी क्षणमां थाय छे. संसारनुं के मोक्षनुं, आश्रवनुं के संवरनुं मुख्य कारण क्रियाओ नथी पण शुभाशुभ भाव छे इत्यादि जणावीने भावधर्मनो महिमा गायो छे. (गाथा-२०० थी २११)

पांचमा **विनय**गुणनुं वर्णन करतां लौकिक अने लोकोत्तर एम बे प्रकारना विनय दर्शावीने लौकिक विनयमां १ - लोकोपचार विनय, २ - भय विनय, ३ - अर्थ विनय अने ४ - काम विनयनुं सुंदर वर्णन कर्युं छे अने पांच प्रकारना लोकोत्तर विनयमां १ - ज्ञान विनय, २ - दर्शन विनय, ३ - चारित्र विनय, ४ - तप विनय अने ५ - उपचार विनयनुं सुंदर वर्णन कर्युं छे. शाश्वत सुखना अभिलाषी आत्माओ ज मुख्यतया लोकोत्तर विनयना अधिकारी छे.

Jain Education International 2010_02　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

विनयनो शत्रु मान कषाय होवाथी मान कषायनो विजय करनारो आत्मा ज विनयगुणनी प्राप्ति, पालन अने परिवर्धन करी शके छे. "मानादि कषायो संसारनुं मूळ छे अने उचित स्थानमां करायेलो विनय मोक्षनुं मूळ छे" इत्यादि वातो जणावी छे. (गाथा-२१३ थी २३०)

छट्ठा **परोपकार** नामना गुणनुं वर्णन करतां द्रव्योपकार अने भावोपकारनुं सुंदर शैलीमां वर्णन कर्युं छे. परमोपकारी श्री जिनेश्वरदेवोए द्रव्योपकार अने भावोपकार केवो विशिष्ट प्रकारनो कर्यो, ते दृष्टांत द्वारा जणाव्युं छे. जो के जड प्रायः वादळ, नदी, वृक्षो, अग्नि, वायु आदि पदार्थो अनेक कष्टो सहन करीने जगत उपर विशिष्ट उपकार करे छे तो पछी चैतन्यगुणवाळा मनुष्ये केवो उपकार करवो जोइए ? आ स्थळमां टीकाकारे पण समाधान करतां जणाव्युं छे के - आ तो कविओनी कल्पना ज छे. **वास्तविक रीते तो वादळ वगेरेने जगत उपर उपकार करवानी बुद्धि होती नथी, पण तेमनी ते ते प्रवृत्तिओ तेवा प्रकारना विश्रसा परिणामथी ज थाय छे; परंतु कविओ, ए सर्वनी सुखकारी स्थिति जोईने तेओ जाणे जगत उपर उपकार करता होय तेवी उत्प्रेक्षा करे छे.** (गाथा-२३१ थी २६९)

सातमा **उचिताचरण** गुणनुं वर्णन करतां आठ प्रकारना उचित आचरण बताव्यां छे. १ - माता-पिता, २ - भाई, ३ - पत्नी, ४ - पुत्र, ५ - स्वजन, ६ - धर्माचार्य, ७ - नागरिकजनो अने ८ - परतीर्थिओ प्रत्ये केवुं उचित आचरण करवुं जोइए ? - ए वातने छणावट करीने सुंदर रीते समजावी छे. वर्तमानमां ज्यारे उचित आचरण घटी रह्युं छे, त्यारे आ विषय वर्तमानकाळना जीवो माटे घणो ज मार्गदर्शक अने उपकारक नीवडे तेम छे. आथी आ विषयने शांत चित्तथी मननपूर्वक वांचवो जरूरी जणाय छे. उचित आचरण अंगेनी आ वातो श्राद्धविधि तेमज धर्मसंग्रह ग्रंथमां पण लेवामां आवी छे, तेथी आनुं महत्त्व समजी शकाय तेम छे. वधुमां श्राद्धगुणविवरणमां पण ए अंगेनुं विवरण प्राप्त थाय छे. (गाथा-२७० थी ३२०)

आठमा **देशादिविरुद्धत्याग** नामना गुणना वर्णनमां १ - देशविरुद्ध, २ - राज्यविरुद्ध, ३ - लोकविरुद्ध अने ४ - धर्मविरुद्ध एम चार प्रकारना विरुद्धकार्योनी विगतवार समज आपी छे अने तेना द्वारा थता अहितनुं वर्णन करीने तेनो त्याग करवानो उपदेश आप्यो छे. (गाथा-३२१ थी ३६०)

नवमा **आत्मोत्कर्षत्याग** नामना गुणनुं वर्णन करतां आत्मोत्कर्षने (अभिमान-आपबडाईने) आधीन थयेला आत्मानी मानसिक अवस्था अने बाह्यव्यवहार वगेरे केवां होय छे, तेथी तेना आत्माने इहलोकमां अने परलोकमां केवुं नुकसान थाय छे, ते जणाव्युं छे. "तमे गर्व शानो करो छो ? तमे गर्व करवा जेवुं एवुं शुं कर्युं छे" ? इत्यादि कह्या बाद जणावे छे के, आत्मोत्कर्ष-दोष आत्माए आदरेली आवश्यकक्रियाओ, वीरासन आदि कायक्लेश, श्रुतज्ञान, शील, तप, जाप आदि धर्मानुष्ठानोने निष्फळ बनावे छे. (गाथा-३६१ थी ३७७)

एक बहु ज सुंदर वात रजु करतां कह्युं छे के - चतुर माणसो 'आ निंदक छे' एवा कलंकथी बचवा भले परनिंदा न करता होय, पण कुशळतापूर्वक जो तेओ आत्मश्लाघा करता होय तो मानी ज लेवुं के

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तवमां ते परनिंदा ज करी रह्या छे. (गाथा-३७८-३७९)

जेओ आत्मोत्कर्ष दोषनो त्याग करीने प्रशमामृतथी पोताना आत्माने सींचे छे तेवा आत्माओ ज आ भवमां अने परभवमां परमसुखी थाय छे. (गाथा-३८०)

दशमा **कृतज्ञ**गुणने वर्णवतां एक अनुपम वात जणावी छे के - उत्तम कोण अने अधम कोण ? ए बन्नेनी व्याख्या करतां तमे शा माटे मुंझाओ छो ? जेओ कृतज्ञ छे तेओ उत्तम छे अने जेओ कृतघ्न छे तेओ अधम छे. (गाथा-३८३)

पृथ्वी कृतज्ञपुरुषोने धारण करवाना कारणे रत्नधरा कहेवाय छे अने कृतघ्नपुरुषोने धारण करवाना कारणे मेदिनी कहेवाय छे. (गाथा-३८४)

माटे ज भगवानने प्रार्थना करतां कह्युं छे के - हे भगवन् ! जो आपनी पासेथी मागेलुं मळतुं होय तो एक ज वस्तु मागुं छुं के - भले हुं कोईनो उपकार करवा के बदलो वाळवा समर्थ न बनुं, पण कृतघ्न तो क्यारे य पण न ज थाउं ! (गाथा-३८६)

"कृतघ्नतादोषने कारणे तो आत्माना पोताना ज गुरुता गुणनो नाश थाय छे. श्रीतीर्थंकर भगवंतो पण कृतज्ञता गुणना प्रभावे तीर्थने नमस्कार करे छे" इत्यादि जणावीने कृतज्ञगुणनुं सुंदर वर्णन कर्युं छे. (गाथा-३९१)

अगियारमा **अभिनिवेशत्याग** नामना गुणनुं वर्णन करतां जणाव्युं छे के - आत्मामां प्रगट थता गुणसमुदायने रोकवानुं कार्य अभिनिवेश (मिथ्याआग्रह) करे छे. जेना हृदयमां अभिनिवेशनुं झेर रहेलुं होय तेना उपर गुरुनां वचनोनो मंत्र पण असर करी शकतो नथी. आचरेलुं कष्टकारी धर्मानुष्ठान, तीव्रतप, निर्मळकोटिनुं शील अने श्रुतज्ञान पण अभिनिवेशना कारणे नाश पामे छे. चारित्ररूप जहाजनी सहायथी संसार-सागरना किनारे आवेला आत्माने पण अभिनिवेशरूप कल्लोलनी हारमाळा मधदरियामां फेंकी दे छे. "अभिनिवेश दोषने कारणे ज प्राणी मोक्षमार्ग स्वरूप निर्ग्रंथप्रवचननो त्याग करीने संसार अटवीमां भटकी मरे छे" ईत्यादि वातो समजावीने ऊंडो खेद व्यक्त कर्यो छे. श्रीजिनमतने न पामेला जीवो कदाग्रहने आधीन होय तेमां नवाई नथी, पण श्रीजिनमतने पामेला आत्माओ पण कदाग्रहने आधीन होय, तेमां तो मोहनो ज महिमा छे ने ? (गाथा-३९३ थी ४०६)

जैनशास्त्रोनां यथार्थ रहस्योने जाण्या विना ज व्याख्याननी पाट उपर बेसीने उन्मादने वश थयेला व्याख्याताओ जे उन्मार्गनी प्ररूपणा करे छे, ते पण आ अभिनिवेशनो ज विलास छे. एम जणावीने एनाथी बचवानो उत्तम उपदेश आप्यो छे. (गाथा-४०७ थी ४०८)

त्यार पछी विरतिनुं वर्णन करतां **देशविरति** अने **सर्वविरति** एम विरतिना बे भेद दर्शावीने त्रीजा **देशविरतिद्वार**नुं वर्णन करतां बारव्रतोनुं अने बारव्रतोना अतिचारोनुं वर्णन कर्युं छे. (गाथा-४०९ थी ४५०)

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते पछी चोथा **सर्वविरतिद्वार**नुं वर्णन करतां पांच महाव्रतो, पांच समिति अने त्रण गुप्तिरूप अष्ट प्रवचनमातानुं वर्णन करीने मुनिजनोंने प्रमादनो विजय करवानो उपदेश आपतां कह्युं छे के - आ प्रमाद ज संयमी आत्माओने संयमथी भ्रष्ट करनार छे. अगियारमा गुणस्थानके पहोंचीने वीतराग दशानो अनुभव करनारा आत्माओने पण आ प्रमादे ज पटक्या छे.

विनाशना आरे रहेलो आ प्रमाद पण कषायोना अवलंबनथी ज पुनर्जीवनने प्राप्त करे छे; माटे प्रमादनो विजय प्राप्त करवा उद्यत थयेला मुनिए आ कषायोने जीतवा जोइए. आ क्रोध, मान, माया, लोभरूप कषायो पण संज्वलन आदि चार चार प्रकारना छे. कषायो करवाथी आत्माने केवुं केवुं नुकसान थाय छे ? आत्मानां भावप्राणोनो केवी रीते नाश थाय छे ? इत्यादि वर्णवीने तेओ अंतिम उपदेश आपतां जणावे छे के "आ विश्वमां जे कांई पण दुःख देखाय छे, तेनुं मूळ कषायवृद्धि छे अने जे कांई पण सुख देखाय छे तेनुं मूळ कषायहानि छे." आथी "कषायोनो मूळमांथी नाश करी जीवमात्र प्रत्ये मैत्रीभाव केळवीने पापकर्म विराम पामो अने आ हितोपदेशमां सदाय रमणता करो" एवो उपदेश आपी ग्रंथकारश्रीए पोताना गुर्वादिनुं नाम आपवा पूर्वक पोतानो नामोल्लेख कर्यो छे. (गाथा-४५१ थी ५२३)

आ ग्रंथरचनामां द्वादशांगीथी विरुद्ध तथा पूर्वाचार्यना आशयथी विरुद्ध कंई पण लखायुं होय तो ते माटे श्रुतधरो पासे क्षमा याची छे अने ते भूलो सुधारवा विनंति करी छे. (गाथा-५२४)

अंतमां मेरुपर्वतना शिखर उपरनां जिनमंदिरो ज्यां सुधी स्थिर रहे त्यां सुधी आ ग्रंथ पण विजयवंतो रहो तेम जणावीने पांचसो पच्चीश गाथानी संख्यावाळो आ ग्रंथ सांभळनारा, भणनारा, स्वाध्याय करनारा अने चिंतन करनारा भव्यात्माओनुं कल्याण करनारो थाओ. एवी शुभाभिलाषाने प्रगट करीने आ ग्रंथनी समाप्ति करी छे. (गाथा-५२५-५२६)

प्रस्तुत सटीक हितोपदेश ग्रंथमां कथानकोनी रचना खूब सुंदर शैलीमां संस्कृत अने प्राकृत बंने भाषामां छे. अनेक कथानकोथी समृद्ध एवो आ ग्रंथ छे. वाचक वर्ग ज्यारे आ ग्रंथने वांचशे त्यारे स्वयं ज आ ग्रंथनी विशेषतानो ख्याल आवशे. सरळ शैलीमां संपूर्ण मोक्षमार्गनुं निरूपण आ ग्रंथमां ग्रंथकारश्रीए करेल छे अने टीकाकारश्रीए पण मूळ ग्रंथना पदार्थो सौ कोईने सारी रीते समजी शकाय ते माटे सरळ शैलीमां विवरण करेल छे.

श्रीहितोपदेश ग्रंथमां आवता ते ते विषयनां दृष्टांतो

गाथा	विषय	दृष्टांत
२९	प्रवचनभक्ति	श्रीसंभवनाथ स्वामी
६२	जीवहिंसा	मृगापुत्र 'लोढिया'
६६	जीवदया	भील
७६	अनुकंपादान	सोमदत्त

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०६	विधिपूर्वक श्रुतदान	आ. श्री आर्यरक्षितसूरि म.
१०६	विधिपूर्वक श्रुतग्रहण	आ. श्री वज्रस्वामी म.
११६	श्रुतज्ञाननी अवज्ञा	मासतुष मुनि
१३४	सुपात्रदान	बाहु मुनि, पुष्पचूला साध्वी, मूलदेव श्रावक अने चंदनबाला श्राविका
१४८	जिनवचनामृतश्रवण	रोहिणीयो चोर, चिलातीपुत्र
१६२	जिनमंदिरनिर्माण	भरतचक्रवर्ती
१६३	जीर्णोद्धार	वग्गुरश्रेष्ठी
१६८	जिनबिंबनिर्माण	सुवर्णकार कुमारनंदी
१८५	शीलपालन	श्रीस्थूलभद्र स्वामी, राजीमती साध्वी, सुदर्शन श्रावक, सुभद्रा श्राविका
१९९	तपगुण	बलदेव मुनि, ब्राह्मी साध्वी, आनंद श्रावक अने सुन्दरी श्राविका
२०८ थी २११	भावगुण	बाहुबली मुनि, मृगावती साध्वी, ईलाचीकुमार अने कनकवती
२३०	विनय	अभयकुमार
२६९	द्रव्य-भावोपकार	मुनीन्द्रराजाना पुत्रो
४४५	देशविरतिपालन	चेटक महाराजा
४६४	सर्वविरतिपालन	रोर

श्रीहितोपदेश ग्रंथकर्तानो परिचय :

हितोपदेश ग्रंथना रचयिता पूज्य आचार्य **श्रीप्रभानंदसूरिजी** महाराजनो विगतवार परिचय मळी शक्यो नथी. परंतु उपलब्ध साधनोना आधारे निश्चितरूपे जेटलो जणावबा योग्य लाग्यो तेटलो अहीं रजू कर्यो छे. **जैन परंपरानो इतिहास भाग-१-२-३ अने ४** बहार पडेल छे, तेना बीजा भागमां पत्र-३१ उपर आ ग्रंथना कर्ता तरीके आ. श्रीपरमानंदसूरि म. नुं नाम जणाव्युं छे. ते हकीकत मोहनलाल दलीचंद देसाईए लखेल **जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास** पुस्तकना पत्र-४०९ उपर पण ए ज प्रमाणे दर्शाव्युं छे अने **वीतरागस्तोत्र** ग्रंथनी सटीक प्रतनी प्रस्तावनामां पं. अंबालाल प्रेमचंद शाहे तथा केटलांक हस्तलिखित ज्ञानभंडारनां लीस्टमां पण आ. श्री परमानंदसूरि महाराजनुं नाम जणाव्युं छे; परंतु आ स्थानमां ते सर्वनी एक सरखी भूल थवा पामी छे. एक बीजा उपरथी विश्वासने आधारे उतारो करायो छे, अगर तो प्रत्येकनी स्खलना थई छे. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास पत्र-४०९ उपर जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भा. ४ना पत्र-१९८मां तो ग्रंथकर्ता तरीके आ. श्रीपरमानंदसूरि महाराजनुं नाम दर्शावीने तेओने नवांगी वृत्तिकार आ.

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीअभयदेवसूरिना शिष्य आ. श्रीदेवभद्रसूरिना शिष्य तरीके ओळखाव्या छे. जे वात केटली असंगत छे ते आगळ वांचवाथी समजाशे. आम स्खलना थवानो हेतु ए जणाय छे के - दरेके अथवा प्रथम लखनार व्यक्तिए सटीक प्रतनुं छेल्लुं पत्र जोयुं हशे. छेल्ला पत्रमां टीकाकारनी प्रशस्ति छे.

टीकाकार पू. आ. **श्रीपरमानंदसूरि** म. हितोपदेश ग्रंथना कर्ता पू. आ. **श्रीप्रभानंदसूरि** म. ना गुरुभाई हता. एथी टीका तथा प्रशस्ति जोवाने कारणे आ प्रकारनो भ्रम थयो होय ते संभवित छे.

हकीकतमां आ ग्रंथना रचयिता पू. आ. **श्रीप्रभानंदसूरि** महाराज छे, जे नीचेनी बे गाथा जोवाथी स्पष्ट थाय छे.

इय अभयदेवमुणिवइ-विणेयसिरिदेवभद्दसूरीण ।
अनिउणमइहिं सीसेहिं, सिरिपभाणंदसूरीहिं ।।५२२।।

उवजीविऊण जिणमय-महत्थ-सत्थत्थ-सत्थ-सारलवे ।
सपरेसि हिओ एसो, हिओवएसो विणिम्मविओ ।।५२३।।

टीकाकार पू. आ. **श्रीपरमानंदसूरि** महाराज टीकाना अंतमां तथा प्रशस्तिमां जणावे छे के -

१ - नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीमदभयदेवसूरिपट्टप्रतिष्ठित-श्रीमद्-देवभद्रसूरिशिष्यावतंस-श्रीप्रभानन्दाचार्यसोदर्यपण्डित-श्रीपरमानन्दविरचिते हितोपदेशामृतविवरणे सर्वविरत्याख्यचतुर्थमूलद्वारं समाप्तमिति भद्रम् । तत्समाप्तौ समाप्तमिदं हितोपदेशामृतविवरणमिति ।

नवांगवृत्तिकार आ. **श्रीअभयदेवसूरि** महाराजोनी परंपरामां थयेला श्रीरुद्रपल्लीयगच्छना आ. **श्रीअभयदेवसूरि** महाराजना पट्ट उपर स्थापित करायेला आ. **श्रीदेवभद्रसूरि** महाराजाना शिष्योमां शिरोमणि आचार्य **श्रीप्रभानंदसूरि** महाराजना बांधव पंडित **श्रीपरमानंदसूरि** विरचित **श्रीहितोपदेशामृत** नामनी **टीका**मां सर्वविरति नामनुं चोथुं मूळद्वार पूरुं थयुं. आ रीते हितोपदेशामृत नामनुं विवरण पूरुं थयुं."

टीकाकारनी प्रशस्ति :

चान्द्रे कुलेऽस्मिन्नमलश्चरित्रैः; प्रभुर्बभूवाभयदेवसूरिः ।
नवाङ्गवृत्तिछलतो यदीय-मद्यापि जागर्ति यशःशरीरम् ।।१।।

"चांद्रकुळमां चारित्रगुणथी निर्मळ एवा **श्रीअभयदेवसूरि** नामना आचार्यदेव थया. जेओश्रीनो यशोदेह नवांगीवृत्तिनी रचनाना योगे आजे पण जगतमां विद्यमान छे.

तस्मान्मुनीन्दुर्जिनवल्लभोऽथ, तथा प्रथामाप निजैर्गुणोघैः ।
विपश्चितां संयमिनां च वर्गे, धुरीणता तस्य यथाऽधुनापि ।।२।।

"तेओश्रीनी परंपरामां थयेला आ. **श्रीजिनवल्लभसूरि** महाराज पोताना गुणसमुदायथी ते रीते विश्वमां

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विख्यात थया के जेथी संयमी (साधु)ओना समुदायमां अने पंडितपुरुषोमां आजे पण तेओ अग्रगण्य छे. - २

तेषामन्वयमण्डनं समभवत् संजीवनं दुःषमा-
मूर्च्छालस्य मुनिव्रतस्य भवनं निःसीमपुण्यश्रियः ।
श्रीमन्तोऽभयदेवसूरिगुरवस्ते यद्वियुक्तैर्गुणै-
र्द्रष्टुं तादृशमाश्रयान्तरमहो दिक्चक्रमाक्रम्यते ।।३।।

"तेओश्रीना वंशना विभूषण समा तथा दुषमकाळना प्रभावे मूर्च्छावश थयेल मुनिओना व्रतोने जीवित करवा माटे औषध तुल्य अने निःसीम पुण्यलक्ष्मीना आधारभूत एवा आचार्य **श्रीअभयदेवसूरि** नामना गुरुवर थया. तेओ (स्वर्गवासी बनतां तेओ)थी विखुटा पडेला तेमना गुणो तेमना जेवो ज अनुपम आश्रय शोधवा दशेय दिशामां फरी रह्या हता. अर्थात् वर्तमानमां तेमना जेवा गुणवान आचार्य कोई नथी अने तेमना गुणोनो यश दशेय दिशामां फेलाई गयो." -३

यतिपतिरिहदेवभद्रो नामा जयति तदीयपदावतंसः ।
एष विषयविषरोगसन्निपाते, दधति रसायनतां वचांसि यस्य ।।४।।

"तेओना पट्टना आभूषणरूप आ. **श्रीदेवभद्र** नामना मुनिपति आजे पण विजय पामे छे, के जेओना वचनो विषम एवा विषय-विकारो रूप रोगोथी संनिपात थाय त्यारे रसायणनुं काम करे छे अर्थात् तेओना वचनो विषय-विकारोनो विनाश करे छे." - ४

समस्तशास्त्राम्बुधिकुम्भजन्मा, कवित्ववक्तृत्वनिरुक्तिकोशः ।
शिष्यस्तदीयः प्रतिभासमुद्रः, श्रीमन्प्रभानन्दमुनीश्वरोऽस्ति ।।५।।

"तेओना शिष्यरत्न आचार्य **श्रीप्रभानंदसूरि** महाराज छे के, जेओ प्रतिभाना समुद्र छे, समस्त शास्त्रोरूप सागरनुं पान करवाने कारणे अगस्ति मुनि जेवा छे, तेमज कवित्व, वक्तृत्व अने निरुक्तिना कोश जेवा छे." - ५

• आ रीते टीकाकार पू. आचार्य **श्रीपरमानंदसूरि** महाराजे ग्रंथकारश्रीनो तथा तेमनी परंपरानो परिचय आपेल छे.

वधुमां पू. आ. **श्रीप्रभानंदसूरि** महाराजे वीतरागस्तोत्र ग्रंथनी वृत्तिनी रचना पण करी छे, जे वांचतां ज भगवद्भक्त हृदय भावोर्मिथी परिप्लावित बन्या विना रहेतुं नथी. ते वृत्तिग्रंथनी प्रशस्ति पण उपर मुजब ज छे. एमां चोथा अने पांचमा श्लोकमां तफावत नीचे मुजब छे.

यतिपतिरथ देवभद्रनामा, समजनि तस्य पदावतंसदेश्यः ।
दधुरधरितभावरोगयोगा जगति रसायनतां यदीयवाचः ।।४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"तेओश्रीना पट्टालंकार मुनिपति आचार्य **श्रीदेवभद्र** नामना थया, जेओनी वाणी जगतना भावरोगोने दूर करवा रसायण जेवी हती." - ४

तदीयपट्टे प्रतिभासमुद्रः, श्रीमान् प्रभानन्दमुनीश्वरोऽभूत् ।
स वीतरागस्तवनेष्वमीषु, विनिर्ममे दुर्गपदप्रकाशम् ।।५।।

"तेओनी पाटे प्रतिभासमुद्र आ. **श्रीप्रभानंदमुनीश्वर** थया के जेमणे वीतरागस्तवनी दुर्गपदप्रकाश नामनी वृत्ति रची छे." - ५

आ प्रशस्ति तेओश्रीए नहि पण मुनि **हर्षचंद्र** गणिए लखी छे तेम निश्चितरूपे लागे छे. कारण के तेओ पोते पोताने माटे **'प्रतिभासमुद्र'** एवुं विशेषण लगाडे ए असंभवित जणाय छे. आ विचारणाने ते पछीना छट्ठा श्लोकनो आधार मळी रहे छे, जे आ प्रमाणे छे -

एवं सपादशतयुतविंशतिशतपरिमितः प्रबन्धोऽयम् ।
लिखितः प्रथमादर्शे गणिना हर्षेन्दुना शमिना ।।६।।

"आ प्रमाणे एकवीश सो पच्चीश (२१२५) श्लोक प्रमाण आ (वीतरागस्तोत्रवृत्ति) प्रबंध छे. जेने प्रथमआदर्श (नकल)मां मुनिश्री **हर्षचंद्र** नामना गणिए लख्यो छे."

आ बधुं जोतां आ ग्रंथना रचयिता पू. आ. **श्रीप्रभानंदसूरीश्वरजी** महाराज छे, ए वात निश्चित थाय छे. वळी तेओ नवांगवृत्तिकार पू. आ. **श्रीअभयदेवसूरिजी** महाराजनी परंपरामां थयेल पू. आचार्य **श्रीअभयदेवसूरिजी** महाराजना शिष्य पू. आ. **श्रीदेवभद्रसूरिजी** महाराजना शिष्य हता अने पू. आ. **श्रीपरमानंदसूरिजी** महाराजना वडीलबंधु हता, ए वात पण निश्चित थाय छे. पू. आ. **श्रीदेवभद्रसूरि** महाराज नवांगीवृत्तिकारश्रीना सीधा शिष्य नहि पण नवांगीवृत्तिकार पू. आ. **श्रीअभयदेवसूरिजी** महाराजनी परंपरामां थयेल रुद्रपल्लीय पू. आ. **श्रीअभयदेवसूरिजी** महाराजना शिष्य हता.

तेओश्री जे रुद्रपल्लीय गच्छना हता, ते रूद्रपल्लीय गच्छनी स्थापना पू. आ. **श्रीजिनशेखरसूरि** महाराजे सं. १२०४मां कर्यानो उल्लेख छे. पण **'प्रश्नोत्तर रत्नमाळा'**नी वृत्तिनी प्रांत प्रशस्तिमां अने पू. आ. **श्रीहरिभद्रसूरीश्वरजी** कृत **'सम्यक्त्वसप्तति'** ग्रंथनी पू. आ. **श्रीसंघतिलकसूरिजीए** रचेली वृत्तिनी प्रशस्तिमां पण रुद्रपल्लीय गच्छनी स्थापना पू. आ. **श्रीअभयदेवसूरिजीए** के - जेमणे सं. १२७८मां **'जयंतविजय'** काव्यनी रचना करी हती अने जेमने काशीना राजा तरफथी **'वादिसिंह'**नुं बिरूद मळ्युं हतुं, तेमणे कर्यानो उल्लेख छे. तेने ज पुष्टि आपतो उल्लेख पूज्य उपाध्याय **श्रीधर्मसागरजीए 'प्रवचनपरीक्षा'** ग्रंथमां पण कर्यो छे. पू. आ. **श्रीदेवेन्द्रसूरिजीए 'प्रश्नोत्तररत्नमाला'** ग्रंथनी वृत्तिनी प्रशस्तिमां तेमज पू. आ. श्री **संघतिलकसूरिजीए 'सम्यक्त्वसप्तति'** वृत्तिनी प्रशस्तिमां पू. आ. **श्रीप्रभानंदसूरि** म. नी प्रशंसा करी छे. आम तेओ महाविद्वान हता ए तो **वीतरागस्तोत्र**वृत्तिनी प्रशस्तिमां प्रयोजेला **'प्रतिभासमुद्रः'** अने **'प्रतिभाभिरामः'** ए शब्दोथी पण जाणी शकाय छे.

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वधुमां आ सटीक ग्रंथनी प्रतिलिपिनी प्रशस्ति जोतां ए पण निश्चित थाय छे के गच्छाधिपति भट्टारक पू. आ. **श्रीसोमसुंदरसूरिजी** महाराज, भट्टारक पू. आ. **श्रीमुनिसुंदरसूरिजी** म., भट्टारक पू. आ. **श्रीजयचंद्रसूरिजी** म., भट्टारक पू. आ. **श्रीभुवनसुंदरसूरिजी** म., भट्टारक पू. आ. **श्रीजिनसुंदरसूरिजी** म., अने महोपाध्याय **श्रीजिनकीर्ति** गणि वगेरे आचार्यो आदिनी कृपाथी आ ग्रंथ प्रतरूपे लखायो छे. आ बधा ज महापुरुषो तपागच्छना मोभरूप हता. एथी पण ग्रंथनी महत्ता प्रस्थापित थाय छे. ते प्रशस्तिना शब्दो नीचे मुजब छे.

गच्छनायकभट्टारकप्रभुश्रीसोमसुन्दरसूरि-भट्टारकश्रीमुनिसुन्दरसूरि-भट्टारकश्रीजयचन्द्रसूरि-भट्टारकश्रीभुवनसुन्दरसूरि-भट्टारकश्रीजिनसुन्दरसूरि-महोपाध्यायश्रीजिनकीर्तिगणिप्रसादात् श्रीहितोपदेशवृत्तिः सम्पूर्णा ।। शुभं भवतु ।।

हितोपदेश ग्रंथना संपादनमां उपयोगमां लेवायेली प्रतो :

आ ग्रंथरत्ननुं संपादन करवा माटे सटीक बे प्रतो अमने प्राप्त थयेल छे.

१ - श्री हेमचंद्राचार्य जैन ज्ञानमंदिर-श्रीसंघनो जैन ज्ञानभंडार पाटणनी छे. तेनो डाभडा नं. ६७ / पोथी नं. १५३८ छे, तेमां पत्र-२५२ छे. ४८३मी गाथा अपूर्ण पर्यंत अपूर्ण प्रत छे.

२ - श्री जैन ज्ञानभंडार - संवेगीनो उपाश्रय, हाजापटेलनी पोळ, अहमदाबादनी छे. तेनो डाभडा नं. १० / प्रत नं. १९ छे, पत्र-२१९ छे. ५२६ गाथापर्यंत संपूर्ण प्रत छे.

आ सिवाय मूळगाथानी प्रत पण बे अमने प्राप्त थयेल छे.

१ - श्री हेमचंद्राचार्य जैन ज्ञानमंदिर-पाटणनी छे. तेनो डाभडा नं. १९७ / प्रत नं. ७९२६ छे. पत्र-७ छे. एमां ५२६ गाथा छे. परंतु छेल्ली बंने गाथानो नं. ५२५ छे.

२ - ला. द. विद्यामंदिरमां पण मूळगाथानी हस्तप्रत छे. जेनो नं. ५८८३/२९११ छे. पत्र-१२ छे.

सटीक ग्रंथमां कुल **ग्रन्थाग्र-९०२५** छे अने **टीका रचना संवत-१३०४ छे.**

संवेगी उपाश्रयनी संपूर्ण प्रत छे, तेमां पेज नंबर-२२० उपर बे लिटीमां आ प्रमाणे लखेल छे -

लिखिहारक श्रीजिनसुंदरसूरिमहोपाध्याय श्रीजिनकीर्तिगणिप्रसादात् सा. खेटा लिखिता अद्येह श्रीदेवकुलपाटकनगरे लिखि संवत्-१४८२ वर्षे भाद्रपदमासे कृष्णपक्षे एकादशीतिथौ भूमवासरे ।। श्रीश्रमणसङ्घायुः चिरायुः भद्रम् शिवमस्तु मङ्गलमस्तु ।।श्रीः।।

"हितोपदेशः" नामाभिधान :

आ ग्रंथना नामनो अने ग्रंथकर्तानो स्पष्ट उल्लेख गाथा-५२२/५२३ मां करेल छे.

आ ग्रंथनुं प्रचलित नाम **'हितोपदेशमाला'** छे अने मूळनी पाटणनी प्रत छे. तेमां छेल्ले इति **श्री**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हितोपदेशमालाप्रकरणं समाप्तमिति भद्रम् ।। आ प्रमाणे उल्लेख छे. परंतु सटीक संवेगी उपाश्रयनी संपूर्ण प्रत छे तेमां छेल्ले **हितोपदेशवृत्तिः संपूर्णा** आ प्रमाणे उल्लेख छे तथा मूळगाथा-५२३ मां **'हिओ एसो हिओवएसो'** आ रीते **'हितोपदेशः'**नुं ज सूचन छे. वळी मूळगाथा-५२५ मां **'नंदउ हिओवएसो इमो भुवणे'** अने मूळगाथा-५२६ मां **'कल्लाणकारणं एसो'** आ प्रमाणे पुल्लिंग प्रत्ययान्त **'हितोपदेशः'**नुं स्पष्टपणे सूचन करेल छे. तेथी मूळग्रंथनुं नामाभिधान **"हितोपदेशः"** करवामां आवेल छे.

- हितोपदेश ग्रंथनी कुल-५२५ गाथा छे अने तेनो उल्लेख **"गाहाणं संखाए पंचसया पंचवीसहिया"** ।।५२५।। आ प्रमाणे छे. मूळगाथानी प्रत पाटण आ. हेमचंद्राचार्य ज्ञानभंडारनी छे, तेमां **'जाव सुरसिहरि'**... ए गाथा तथा **'निसुणंतपढंतगुणंतयाण'**... ए गाथा, बंनेनो नंबर-५२५ छे; ज्यारे संवेगी उपाश्रयनी सटीक संपूर्ण प्रतमां **'जाव सुरसिहरि...'** गाथानो ५२५ नंबर छे अने **'निसुणंतपढंत...'** ए गाथानो ५२६ नंबर छे; तेथी प्रस्तुत टीका ग्रंथमां ए प्रमाणे ५२६ नंबरनो उल्लेख करेल छे.

- **'एवंविहाण'**... ७०मी गाथा पछी सटीक प्रतमां **'भाविज्जइ'**... गाथा छे अने तेनो क्रमांक-७२ छे. वच्चे ७१मी गाथा के तेनी टीका नथी. ज्यारे मूळगाथावाळी प्रतमां **'एवंविहाण'**... ७०मी गाथा पछी **'संते वि चित्तवित्ते'**... ७१मी गाथा छे अने त्यार पछी **'भाविज्जइ'**... ए गाथा-७२मी छे. तेथी प्रस्तुत प्रकाशनमां भाविज्जइ गाथानो क्रमांक-७२ होवाथी ते मुजब ज राखेल छे.

- सटीक प्रतमां **'रिद्धीओ विउलाओ'** ७४मी गाथा पछी **'दीणाईसु दयाए'** ७५मी गाथा छे. परंतु मूळ गाथावाळी प्रतमां **'रिद्धीओ विउलाओ'** ७४मी गाथा पछी **'जह तेण सिद्धि'** गाथा छे अने तेनो क्रमांक-७५मो छे, ज्यारे सटीक प्रतमां **'जह तेण सिद्धि'** गाथानो नंबर-७६ छे. त्यार पछी सटीक प्रतमां अने मूळ प्रतमां बंनेमां **'अणुकंपादाणमिणं'** गाथा छे अने तेनो नंबर-७७ छे. त्यार पछी सटीक ग्रंथ अने मूळ ग्रंथ बंनेमां गाथा क्रमांक सरखा ज छे. फक्त मूळ गाथानी प्रतमां छेल्ली बे गाथाना नंबर बंनेना ५२५ छे अने सटीक प्रतमां ५२५ अने ५२६ छे.

आ ग्रंथना प्रकाशन माटे हस्तप्रत प्राप्त थाय ते माटे तपास चालु हती ते वखते 'हितोपदेशः' नामनो एक ग्रंथ उपलब्ध थतो हतो. परंतु ते अजैन ग्रंथ हतो. आ ग्रंथना प्रकाशनथी जैन संघने जैनोनो पोतानो **'हितोपदेशः'** ग्रंथ पण जाणवा-माणवा मळी रह्यो छे, ए आनंदनो विषय छे.

वि. सं. २०५०मां श्रीपालनगर : वालकेश्वर-मुंबई खाते तपस्विसम्राट् वर्धमानतपोनिधि पू. आ. श्री विजय **राजतिलकसूरीश्वरजी** महाराजा अने प्रशांतमूर्ति, सुविशालगच्छाधिपति पू. आ. श्री विजय **महोदयसूरीश्वरजी** महाराजानी तारक निश्रामां चातुर्मासिक ग्रंथवाचनरूपे सौ प्रथम आ ग्रंथ वांच्यो त्यारे श्रोतावर्गनी साथोसाथ वाचन करनार हुं पण अपूर्व अनुभूतिओना सरोवरमां गरकाव थयो हतो. ए चातुर्मासनां हितोपदेश उपरनां व्याख्यानोने पण मुमुक्षुओए कागळ पर अवतार्या हतां, जे निकट भाविमां प्रकाशित थवानी संभावना छे.

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ ग्रंथरत्नना अध्ययनथी प्रारंभीने संपादन सुधीनी मारी प्रत्येक प्रवृत्तिओ पूर्णतया मार्गस्थ अने आत्मलक्षी बनी रहे ते माटे प्रतिपळ मारा आत्मानुं रखोपु करनार, मारा परम उपकारी, मार्गदाता, विशिष्ट विवेकदृष्टिए परमार्थना ज्ञाता, परमशासनप्रभावक-संरक्षक, सुविशाळ गच्छाधिपति व्याख्यानवाचस्पति आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय **रामचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजाना तथा मारा परमोपकारी जन्मकाळथी ज संयमधर्म प्रत्येनुं पूर्ण बहुमान जगाडी अनेक विघ्नो वच्चेय ढालशा बनी संयमधर्मनी प्राप्ति करावीने मारा जीवनना आंतरिक विकासमां पोताना मन, वचन अने कायानी शक्तिओनो सर्व रीते समुचित प्रकारे विनियोग करनार आचार्य भगवंतश्री विजय **गुणयशसूरीश्वरजी** महाराजना पवित्र चरणोमां भक्तिसभर हृदये पूर्ण अहोभावथी नमस्कार करुं छुं.

सौ कोई आत्मार्थीजनो आ महान श्रुतरत्ननो तेजस्वी प्रकाश संप्राप्त करी स्व-परनुं श्रेय साधवा उद्यमशील बनो अने निकटना भवोमां मुक्तिसुखना भागी बनो ए ज शुभाभिलाषा.

- भीलडीयाजीतीर्थे उपधानतपप्रसंगे
वि. सं. २०६०,
फागण सुद-१, शनिवार

तपागच्छाधिराज पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद्विजय
रामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजाना शिष्यरत्न
वर्धमानतपोनिधि आचार्यदेव श्रीमद्विजय
गुणयशसूरीश्वरजी महाराजनो चरणचंचरीक
- विजयकीर्तियशसूरि

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

◆ हितोपदेश ग्रंथरत्न संपादन-संशोधननी वेळाए यत्किंचिद् वक्तव्य ◆

- साध्वीजी श्री चंदनबालाश्री

जैनशासनशिरताज, तपागच्छाधिराज, परमाराध्यपाद, व्याख्यानवाचस्पति पूज्यपाद आचार्यदेवेश श्रीमद्विजय**रामचंद्रसूरीश्वरजी** महाराजाना प्रशिष्यरत्न प्रवचनप्रभावक पूज्य आचार्य भगवंत **कीर्तियशसूरीश्वरजी** महाराज साहेबे वि. सं. २०५०मां **श्रीपाळनगर : वालकेश्वर,** मुंबई मुकामे आ ग्रंथरत्ननां प्रुफो वाचन माटे मने आप्यां ते वखते ग्रंथसंशोधननो मारो आ प्रथम प्रयास हतो. आम छतां पूज्यश्रीए कह्युं एटले 'ना' केम कहेवाय ? जेम जेम प्रुफवाचन थतुं गयुं तेम तेम अनेक प्रश्नो उभा थता गया. पूज्यश्री ते अंगे मार्गदर्शन आपता गया अने कार्य आगळ वध्युं. प्रुफवाचन करता अनेक अशुद्ध पाठो नजर समक्ष आवता गया. तेथी पूज्यश्रीने कह्युं अने पूज्यश्रीए ते माटे आ ग्रंथरत्ननी लिप्यंतरनी कोपी मंगावी. एमांथी फरी संपूर्ण ग्रंथ मेळवी शुद्धिकरण कर्युं. आम छतां अमुक लिप्यंतरनी अशुद्धिओ तो जणाती ज हती, तेथी ए बधानी नोंध करी राखी. त्यारपछी अमदावाद मुकामे आववानुं थयुं अने मारी अत्यंत नादुरस्त तबियतना कारणे पूज्योनी आज्ञाथी राजनगर मुकामे स्थिरवास रहेवानुं बन्युं. ते अरसामां पूज्यश्रीए कह्युं के **हितोपदेश ग्रंथनुं** संशोधन कार्य हवे आगळ वधारो अने पूज्यश्रीए हितोपदेश ग्रंथरत्ननी मूळ बे हस्तप्रत मंगावी आपी. जेमांनी एक प्रत **पाटण-हेमचंद्राचार्य ज्ञानभंडारनी** अपूर्ण हती अने बीजी प्रत **अमदावाद-संवेगी उपाश्रय-हाजापटेलनी पोळनी** पूर्ण हती, परंतु ए प्रतमां अक्षरो उकेलवा घणुं कठिन काम हतुं. जे जे स्थानोमां प्रुफमां अशुद्धिओ जणाई हती एने नोंधी राखेल, ते दरेक स्थानो बंने हस्तप्रतोमां मेळव्या. यथाशक्य शुद्धिकरण करवानो पूरतो प्रयास कर्यो, परंतु ते वखते बंने प्रतोमां लहीयानी पण अमुक भूलो जणाई, तेम अमुक स्थानमां पाठ अपूर्ण हता वच्चे ..... करीने छोडी दीधुं होय, ए माटे वधु १-२ हस्तप्रतोनी जरूर जणाई अने ते माटे पूज्यश्रीए अनेक स्थळोए तपास करावी, पण कोई पण स्थळेथी संपूर्ण ग्रंथरत्ननी टीका सहितनी प्रत प्राप्त न थई. तेथी जे जे स्थानोमां शंकास्पद पाठो हता ते माटे पूज्यश्री साथे अनेकवार चर्चा-विचारणा करी यथाशक्य शुद्धिकरण कर्युं. पूज्यश्रीने पण आ ग्रंथरत्नना प्रकाशननी तीव्र भावना हती. तेथी ज्यारे पण समय माटे पूछ्युं त्यारे शुद्धिकरण माटे समय फाळवीने आपेल छे. आ रीते यथाशक्य शुद्धिकरण कर्या पछी पण अपूर्ण जणाता पाठोनी शुद्धि माटे नोंध करी राखेल. ते अंगे पं. श्री **अमृतभाई भोजक**नो समय लई पृच्छा करी, पण तेओनी वृद्धावस्थाना कारणे शुद्धिकरणनुं कार्य एमना द्वारा शक्य न बन्युं. त्यार पछी विद्वद्वर्य पू. आ. श्री **मुनिचंद्रसूरीश्वरजी** म. ना सलाह-सूचन मुजब पं. श्री **अमृतभाई पटेलनो** संपर्क साधी यथाशक्य शुद्धिकरणनुं कार्य कर्युं. आम छतां संपूर्ण ग्रंथ हस्तप्रत साथे मेळवी न शकायेल, तेथी लिप्यंतर वि. मां रही गयेली अशुद्धिओनुं परिमार्जन आगमप्रज्ञ विद्वद्वर्य प्रवर्तक

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पू. **श्रीजंबूविजयजी** महाराज साहेबे कुंभण चातुर्मासमां साधु-साध्वीजी भगवंतोने आ ग्रंथ वाचन करावती वेळाए करी आपेल छे. जेम जेम ग्रंथ वंचातो गयो, तेम तेम जेटला पेजो मोकलता गया अने प्रताकारमां करेल पाठशुद्धिना आधारे आ पुस्तकाकार क्राउन अने डेमी साईझ बंनेमां अमे शुद्धिकरण करेल छे. आ रीते पू. प्रवर्तकश्री **जंबूविजयजी** महाराज साहेबे आ ग्रंथरत्नना प्रकाशनमां रही गयेल अशुद्धिओनुं शुद्धिकरण करी आपी महान श्रुतभक्ति करेल छे, ते बदल पूज्यश्री प्रत्ये कृतज्ञता व्यक्त करुं छुं अने उपकार मानुं छुं.

पू. परमोपकारी प्रवचनप्रभावक आ. श्री **कीर्तियशसूरीश्वरजी** महाराज साहेबे मने आवा महान ग्रंथरत्ननी श्रुतभक्तिनुं कार्य सोंप्युं, जेना द्वारा नादुरस्त तबियतमां पण मारा चित्तनी प्रसन्नता टकी रही, मारा अध्यवसायोनी निर्मळता थई अने एकाग्रतापूर्वक कलाकोना कलाको सुधी आ ग्रंथरत्ननुं संशोधन, तुलना पाठ, संदर्भस्थानो वि. शोधवामां मारा समयनी सार्थकता थई छे.

आ ग्रंथरत्नना पदार्थोना चिंतन-मनन-निदिध्यासन द्वारा मने पोताने तो योगमार्गना पायाथी मांडीने सिद्धिमहेले पहोंचवा माटेनो सम्यग्बोध, सम्यग्रुचि अने सम्यक्परिणतिनी आंशिक प्राप्ति थई छे. सम्यक्त्वनी पूर्वभूमिकाथी मांडीने संपूर्ण योगमार्गना दर्शन मने आ ग्रंथरत्नमां थया छे. अद्भुत-अपूर्व पदार्थोनुं दर्शन अनुभवना स्तर उपर आ ग्रंथवाचन करता थयुं छे. तेथी **हितोपदेश** ग्रंथरत्न प्रताकार, क्राउन साईझ पुस्तकाकार, डेमी साईझ पुस्तकाकार, त्रणे प्रकाशनोमां आपेल मारुं वर्षोनुं योगदान सफळ थयुं छे, ते बदल मारा जीवननी ए क्षणोनी कृतार्थता अनुभवुं छुं. प्रांते पूज्यश्रीना उपकारना स्मरणपूर्वक श्रुतभक्ति द्वारा भवांतरमां विशेष योगमार्गने पामी, आराधी निकटना भवोमां परिपूर्ण शुद्ध आत्मस्वरूपने प्राप्त करुं अने मुक्तिमंजीले पहोंचुं ए ज शुभकामना.

- वि. सं. २०६१,
भादरवा सुद-१, रविवार
एफ-२, जेठाभाई पार्क,
नारायणनगर रोड, पालडी,
अमदावाद-३८०००७

सूरि '**रामचन्द्र**' साम्राज्यवर्ती तथा सरळस्वभावी
प्रवर्तिनी पू. सा. श्री **रोहिताश्रीजी** म. ना
शिष्याणु सा. **चंदनबालाश्री**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। ग्रन्थसंस्तवः ।।

सर्वे संसारवर्तिनः सत्त्वा दुःखानलसन्तप्ताः निरन्तरं सुखमवाप्तुं सततं प्रयतन्ते । येन सुखमाप्यते, तद् हितमिति मन्वते प्राणिनः, तदर्थञ्च सततं प्रयासमायासमातन्वते कादाचित्कतया कोऽपि देही कदाचित् सुखं लभते, कदाचित् कोऽपि देही दुःखमपि लभते, किन्तु सर्वे सत्त्वाः सर्वथा सर्वदा सर्वत्र सुखमेव सम्प्राप्नुयुः तत्तु संसारे न निश्चितम् । अत एव येन मीमांसितेन येन ज्ञातेन येनाऽऽचरितेन च सार्वत्रिकं संसुखं स्यात् तदेव कार्यं कर्तव्यं, तदेव हितं ज्ञातव्यं प्रज्ञावद्भिः प्राणिभिः ।

अदुःखच्छायं सुषमावहं सुखं तु सम्यक् तत्त्वावगमेन प्राप्यते । यथा - तमःप्रणाशाय दीपः सम्पादनीय इति ज्ञात्वा आबालगोपालोऽपि असुमान् दीपमेवाद्रियते, तथैवात्मनः कस्मात् सुखं स्यात्, केन विधिना सुखं स्यात्, किंप्रकारं च तत् सुखं स्यात्, तत्तु जिनदर्शनमन्तरा ज्ञातुं न शक्यम् । जिनदर्शने हि ज्ञानमार्गः सुखसंसाधनप्रणालिः । तमेव ज्ञानमार्गं समाराध्य सत्त्वसमधिकाः सत्त्वाः सुखिनोऽभवन् भवन्ति भविष्यन्ति च ।

दर्शनेऽत्र जिनप्रज्ञप्ते प्रज्ञावतां प्राणिनां परमोपादेयपारमार्थिकपरमानन्दप्राप्तये प्रचुराः प्रवराः प्रकृष्टार्थाः प्रबन्धाः महाग्रन्थाः प्रकरणग्रन्थाः प्रकाशन्ते ।

तत्रैकतः आचाराङ्गसूत्रम्, उत्तराध्ययनानि, दशवैकालिकसूत्रमित्यादिको जिनागमविस्तारः । अन्यतश्च प्रशमरतिप्रकरणम्, उपदेशमाला, उपमितिभवप्रपञ्चाकथा, समरादित्यकथाप्रभृतयः, शास्त्रग्रन्थाः प्रौढाः । एतेऽनेकधा च आत्महितपथं प्रथन्ते । तेषु प्रस्तुतं **हितोपदेशप्रकरणम्** एतद् हितेच्छूनामसुमतां सरलतया हितं समादिशति, अमृततया हितं समादिशति, सर्वप्रियतया हितं समादिशति ।

ग्रन्थस्य चास्य भारती हितरतं देहिनं निरन्तरं ज्ञानप्रभारतं करोति ।

अत्र ग्रन्थे आत्मनो हितं कतिधा क्रियेत तस्य पन्थाः प्रकटितः । यथा - जीव उत्तमगुणान् कथं सङ्गृह्णीयात् ? को देवः सुदेवः, स च कथं आत्महितं करोति कारयति च ? कश्च गुरुर्यः सम्यक्तया संसारे संसरतः सत्त्वान् शिवं हितमार्गं समाज्ञापयति ? कश्च शिवमार्गो येन जीव आत्यन्तिकं सुखं लभते ? इत्यादिप्रश्नपरम्परासमाधायकतया ग्रन्थोऽयं धर्मधराऽऽधारधुरीण इति निश्चितमेव ।

विशेषतस्तु विदुषां शेमुषीप्रसाधनसंसाधनाय वैषयिकं किञ्चिदुच्यते -

ग्रन्थारम्भे प्रारिप्सितार्थनिर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं जिननमस्कारः । अनन्तजन्तुशिवदायकान् जिनान् नमस्कृत्य भव्यसत्त्वानामजरामरहेतुभूतं हितोपदेशं जिनसमयादुद्धर्तुं प्रतिजानते आगमाननुसृत्य सत्त्वहितमतय आचार्याः । तथा च -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सुविशुद्धं सम्यक्त्वं, (२) उत्तमगुणानां सङ्ग्रहः, (३-४) विरतिश्च सर्वतो देशत इति एते चत्वारो गुणाधायका गुणाः सन्ति, तदर्थमेव प्रबलः पुरुषार्थः प्रधानतया अङ्गीकर्तव्य इति हितमार्गः ।

तत्र त्रयोदशगुणालया जीवाः सम्यक्त्वस्याधिकारिणः सन्ति । गुणाश्चैवमवगन्तव्याः ।

(१) दृढधर्म्मरागरक्ताः - दुर्गतिप्रपतत्प्राणिगणधारणक्षमे धर्मे दृढो रागः, तेन रक्ताः ।

(२) अनिन्दितेषु कर्मेषु प्रसक्ताः - वित्तोपार्जनोपायेष्वनिन्दितेषु कर्मसु प्रसक्ताः ।

(३) व्यसनेषु असंक्षुब्धाः - धनबन्धुविध्वंसादीनि व्यसनानि, तेषु सत्सु संक्षोभं न गताः ।

(४) कुतीर्थऋद्धिषु अमुग्धाः - साङ्ख्यशाक्यशैवादयः कुतीर्थिनः, तेषां सम्पत्सु न मुग्धाः ।

(५) अक्षुद्राः - क्षुद्रप्रकृतिविरहिताः ।

(६) अकृपणाः - कृपणा हि भृत्यभर्तव्यात्मवञ्चनेनापि धनमेव सञ्चिन्वन्ति, न धर्म्मं, एतद्विलक्षणप्रकृतयस्तूदाराः एवं समुदाराः ।

(७) अदुराराधाः - दुःखेनाराध्यन्ते इति दुराराधाः, एतद्विपरीताः सुखेनैवाभिमुखीकर्तुं शक्याः ।

(८) अदीनवृत्तयः - दीना=दृश्यमाना श्रूयमाणा वा या वृत्तिः आर्द्रहृदयानां जीवानां हृदयेषु दयोत्पादिनी सा दीनवृत्तिः, न विद्यते दीनवृत्तिः येषां ते इति अदीनवृत्तयः ।

(९) हितमितप्रियभाषिणः - हितं धर्मानुगतं वाक्यम्, मितमर्थवत्प्रयोजनसापेक्षं वाक्यम्, प्रियं श्रवणसुखदममर्मोद्घटनं धर्मानुगतं वाक्यम्, एतत् हितं मितं प्रियं च भाषितुं शीलवन्तः ।

(१०) सन्तोषपराः - स्वान्तधृतिपोषः सन्तोषः, तेषु तत्पराः ।

(११) अमायाविनः - सरलस्वभाववन्तः, अनार्जवं हि मूलबीजमधर्मद्रुमस्य ।

(१२) धर्मप्रतिकूलाक्षुब्धाः - धर्मप्रतिकूलैः कुल-गण-जनपद-नृपजन-स्वजनैः असंक्षुब्धाः - एतैः अक्षोभ्याः, बाह्याभ्यन्तरप्राणप्रहाणेऽपि निर्ग्रन्थात् प्रवचनात् प्रच्यावयितुं न शक्याः ।

(१३) जनसम्मताः - लोके पितर इव, मातर इव, स्वामिन इव, गुरव इव सर्वकार्येषु प्रच्छनीयाः ।

एवं च दृढधर्म्मरागरक्तत्वादिभिर्गुणगणैरुपेताः सम्यक्त्वाधिकारिणः पुरुषा भवन्ति ।

।। सम्यक्त्वं दुर्लभम् ।।

अनादिनिधने भववने परिभ्रमतामसुमतां सर्वयोनिप्रधानमतीव दुर्लभं दुरापं मनुष्यभवं प्राप्यापि यथावस्थिततत्त्वावबोधविकला मिथ्यात्वसंच्छन्नदर्शना जीवा भववने बम्भ्रमति, हिताहितं च न जानन्ति, अत एव दुःखानुबन्धान् दुःखस्वरूपान् कषायाविरतियोगप्रमादान् समाश्रित्य सुदुःखसम्भारान् सम्प्राप्नुवन्ति ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थकारमहर्षिस्तदुपदिशति यथा - भो भव्याः ! मिथ्यात्वमुन्मूल्य प्रकटितजिनोक्ततत्त्वं सम्यक्त्वं भजध्वम् ।

किदृशमेतत् सम्यक्त्वम् ? सर्वज्ञोपज्ञेषु तत्त्वेषु श्रद्धानस्वरूपम्, धर्मद्रुमस्य मूलम्, सुगतिनगरद्वारम्, संसारसागरे यानपात्रम् । येन सम्यक्त्वसूर्येण अनन्तभवसंक्लृप्तसंक्लिष्टाध्यवसायजनितं महामोहतिमिरं दूरीभवति, मोक्षमार्गश्च चेतःपथि प्रादुर्भवति ।

ये ये जनाः सत्तत्त्वरुचिदुर्लभप्रतिष्ठानं सद्दर्शनयानपात्रं समभिरूढा ते तूर्णं तरन्ति विस्तीर्णं महामोहादिमकराकरसंकीर्णं भवार्णवम् । अत एव सम्यग्दर्शनं मोक्षस्य पूर्ववर्ति केवलमेव कारणम् ।

अनर्घ्यविमलमणिकल्पमनल्पसङ्कल्पकल्पनाकल्पं, सुविशुद्धाध्यवसायस्वरूपं निरूपमं सम्यग्दर्शनमेनं शङ्कादयः पञ्च दोषा दर्शनदर्प्पणधनसमयप्रवणप्रतिमा मलीनयन्ति । पुनः (१) तत्र प्ररूढेन दर्शनमोहनीयकर्मणा जीवो जीवादिषु जिनप्रणीतेषु तत्त्वनिवहेषु सन्देहसन्दोहमावहति । शङ्कयानुविद्धो दुर्विदग्धो जीवोऽतुलं तोलयति तुल्यतया पारमेश्वरं प्रवचनं परतीर्थिकैः सह प्रद्योतनेन खद्योतमिव । (२) एषः अन्यान्यदर्शनाभिलाषः काङ्क्षा इति प्रकीर्तिता । (३) एषः सति आप्तत्वे युक्तिमञ्चति वयं न विशिष्टबलकालादिविकला यथावत् समारब्धुं क्षमा, अतः किम् एताः क्रियाः सफलवत्यः सम्भविष्यन्ति किमुत अकाले कृषीवलक्रिया इव निष्फलतामाकलयिष्यन्ति, एतत् स्वरूपेण विचिकित्सनेन सर्वत्र सतामसंमतेन सम्यक्त्वं दूषयति । अत एव (४-५) ते अन्योन्यतीर्थिकाणां प्रशंसनं संस्तवश्च तत्त्वमनादृियमाणैः समीह्यते अत एव एतान् दोषान् दूरीकर्तुमर्हन्ति अर्हत्प्रवचनप्रणीतिप्रवणजनाः ।

सम्यक्त्वसंस्पृष्टे चित्ते सत्त्वे ये भावाः प्रादुर्भवन्ति तैः प्रकटितैः स्वस्मिन् परस्मिन् वा सम्यक्त्वमुदपादि न वा इति ज्ञायते, ते भावाः सम्यक्त्वस्य लक्षणानि निरुच्यन्ते । तानि पञ्चधा प्रोक्तानि प्रवचनपटुभिः ।

यथा - (१) मिथ्यातत्त्वे अभिनिवेशोपशमः, येन सापराधे जने कषायस्य उदयो न भवति । (२) परमपदरागः संवेगतया प्रतीतः, तेन चक्रवर्तित्वादिसांसारिकं सुखमपि न संमदयति । (३) तदनन्तरं ज्ञाततत्त्वः प्रकृतिप्रशमवशः मुक्तितत्परोऽपि जीवो यदि धर्मं परिपूर्णं आराद्धुं न शक्नोति तर्हि संसारे संवसति किन्तु आराधनापरेषु परेषु परमप्रमोदमुद्वहति ममत्वं च परित्यजति स निर्वेदानुबद्धः । (४) नानाव्यापत्तिसंतप्तेषु तेषु तेषु प्राणिषु तत्तद्वेदनातत्कारणमिथ्यात्वाद्यपनोदचिकीर्षया द्रव्यभावभेदभिन्ना कारुण्यधारा भूतानुकम्पा । (५) **'तमेव सच्चं निःशंकं जं जिणेहिं पन्नतं '** इति यस्य मतिदर्पणे सम्यग् आभाति, यश्च जीवाजीवादिषु तत्त्वेषु निःशङ्कतयाऽनुवर्तते तस्य यः शुभपरिणामः स आस्तिक्यम् ।

शङ्कादिदूषणनिशूदनाद् दृढं सम्यक्त्वं ये विभूषयन्ति ते सद्गुणाः । यथा-मणयः सुवर्णं सुवर्णयन्ति तथा ते गुणाः सम्यक्त्वभूषणभूताः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते चामी - (१) सर्वज्ञप्रणीतसिद्धान्तेषु स्थैर्यम् । (२) स्वात्मनि समाविर्भूतवादप्रभृतिभिः शक्तिभिः पारमेश्वरप्रवचनस्य प्रभावना । (३) सुप्रशस्तानां तीर्थानां चतुर्विधसङ्घस्वरूपतीर्थस्य च आसेवना । (४) सूत्रेषु सूत्रार्थेषु च कौशल्यम् । (५) जिनप्रवचनेऽत्यन्तो भक्तिभृच्चित्तानुरागः, तदनुकूलतया च चतुर्विधस्यापि सङ्घस्य यथोचितं वैयावृत्त्यकरणम् । अयमेव भक्तिरागो वदने तिलकमिव सम्यक्त्वविभूषणगणे सारभूतः । यतः सम्यक्त्वधरमेव नरवरं वरयति तीर्थकरश्रीः ।

यथा - **श्रीसम्भव**तीर्थनाथेन पूर्वस्मिन् तृतीयभवे परमपुरुषप्रवचने प्रबलतरभक्तिरागेन तीर्थकरत्वं समुपार्जितम् ।

।। उत्तमगुणसङ्ग्रहस्य निरूपणम् ।।

अस्मिन्नपारसंसारपारावारे निमज्जतामसुमतां राधावेधदुराराधं समाराधितं सम्यक्त्वं सुमहता प्रयत्नेन मूलमिव आलवालेन, मणिरत्नमिव कनककटकेन, संरक्षणीयम् । सविशेषं तस्य स्थिरीकरणाय प्रयासः कर्तव्यः । अत एव सम्यक्त्वप्राप्त्यनन्तरं तस्य स्थैर्यार्थं गुणानां सङ्ग्रहः सुतरां कर्तव्योः । ते च गुणा दानादयो नरमुत्तरोत्तरं प्रवरां पदवीमारोपयन्ति । अत एव दानादयो गुणा उत्तमा महिता महनीयमनीषिभिः, तैर्गुणैरेव यशो दिशः प्रकाशयति गुणिनाम्ना । उत्तमगुणा एव वाञ्छितफलेषु कल्पतरवन्ति । ततो गुणवान् जनोमण्डलाधिपति-त्रिखण्डाधिपति-षट्खण्डाधिपति-त्रिदशाधिपति-त्रिभुवनाधिपतिसाम्राज्येन गौरवभाजनं भवति । तस्माद् भो भो भव्याः ! श्रुणुत वचनमिदं यदि भवन्तः सम्यक्त्वं समूलरक्षितुकामाः, तर्हि दानादीन् उत्तमान् गुणान् एव भजध्वम् ।

ते च गुणाः अमी -

(१) दानं, (२) शीलं, (३) तपः, (४) भावः, (५) विनयः, (६) परोपकारः, (७) उचिताचरणं, (८) देशादिविरुद्धपरिहारः, (९) आत्मोत्कर्षवर्जनम्, (१०) कृतघ्नत्ववर्जनम्, (११) अभिनिवेशवर्जनम् ।

एष गुणनिवहः सम्यक्त्वस्य स्थैर्यं करोति ।

(१) दानगुणः - समुचिताचारेण यदन्येभ्यो वितरणं, तेन स्वस्मिन् परस्मिंश्च शौर्यधैर्यादयो गुणगणा उद्दीपका भवन्ति ।

येन प्राणिनो दीदांस्यते, सरलीभवन्ति, आवर्जिता भवन्ति तद् दानम् इति व्युत्पत्त्या येन दत्तेन आदातारो दातुः सन्मुखं भवन्ति तद् दानम् ।

तच्च दानं चतुर्धा प्रोक्तम्, अभय-चक्षु-मार्ग-शरण-बोधिदातृभिरर्हद्भिर्भगवद्भिः ।

तद्यथा - (१) अभयदानं, (२) अनुकम्पादानं, (३) ज्ञानदानं, (४) भक्तिदानं च । प्रियजीवितानां प्राणिनां मरणमेव महद्भयम्, अभयदानं विरतिधर्माराधनेन प्राणिनामभयं दापयति । अत एव दानेषु अभयदानं प्रथमं श्रेष्ठतमम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदनाविवशानां दशां दृष्ट्वा अनु पश्चात् यत्र चित्तं कम्पते सा अनुकम्पा ।

अभयदानं प्राणवतां प्राणरक्षणं, अनुकम्पादानं तु रक्षितप्राणेषु जीवत्सु तेषां विविधदुःखदूरीकरणोपायस्य करणम् ।

अभयदानेन सत्त्वेषु सत्त्वरक्षणम्, अनुकम्पादानेन च प्राणिषु जीवत्वसम्बद्धानां चैतन्यादीनां गुणानां संरक्षणम् । अत अनुकम्पया स्वदुःखदूरीकरणेन आवर्जिताः सन्तः दुःखार्ता देहिनोऽनुकम्पातत्परं परं प्रति सद्भावनाभाजो भवन्ति, अतः परम्परातश्च दुःखार्तेषु तेषां योग्यतासारित्वेन चित्तार्द्रभावत्वं गुणाङ्कुरोद्भावनयोग्यत्वं क्रमाच्च शुद्धचैतन्यं प्रति लक्ष्यबुद्धिरुपजायते ।

जीवोऽज्ञानतमोपूरपूरितो हेयाहेयमवहेलयन् यद् यत् कार्यं करोति, तत् तत् तस्य विविधां आधिव्याधिमुपाधिं समारचयति । तेन चायं समापतति नानाप्रकारेषु सन्तापेषु । येन किमपि दुःखं नोद्भवति तत् तद् विधेयमित्यतो ज्ञानमेव शरणार्हम् संजायते जीवस्य । अतः परोपकारपरायणाः परमपुरुषाः प्राणिनां दुःखनाशाय हिताहित-हेयोपादेय-कर्तव्याकर्तव्यादीनां वर्त्म सम्यगुपदिशन्ति, तज्ज्ञात्वा च ज्ञानवान् जीवस्तदनुसारितया जीवनं यापयति, परेषां च हितमाचरति, न केषाञ्चित् संतापकृद् भवति, तस्य जीवनं शारदशशिविशारदं सकलसत्त्वसुखदं भवति । सर्वमेतद् ज्ञानस्य ज्ञानदानस्य विस्फूर्जितम् ।

सभयेषु अभयविधायी, दुःखापविनायी सम्यक्तया च ज्ञानमार्गानुयायी यत्र यत्रऽऽराधनायाः प्रकर्षं पश्यति यथा - कुत्रचिद् विप्रकृष्टं तपोविधानम्, कुत्रचित् शीलाऽऽचारसमाधानम्, कुत्रचित् परमेश्वरपादपङ्कजयोः प्रणिधानम्, कुत्रचिद् गुरुजनानामुपाराधनम्, तत्र तत्राऽऽराधके साधर्मिके चतुर्विधसङ्घस्वरूपे निजमनःप्रसादपूर्विकया तेषां भक्त्यां शुश्रूषायां च वैयावृत्त्यकृत्येऽहमहमिकया संस्वजते । एतत्तु समाराधिताराध्येषु समाहितेषु बहुमानपूर्वकं भक्तिदानमपूर्वापूर्वपरिणामप्रापणप्रवरम् ।

ये क्रूरचित्ताः सत्त्वा निःसत्त्वेषु प्राणिषु हिंसामाचरन्ति ते चतुरशीतिर्लक्षयोनिषु भवेषु भूरितरं दुःखमनुभवन्ति ।

यथा - **मृगापुत्र**कुमारो मांसपिण्डीभूतः सन् प्रतिपलं पलालपूतिमयं शरीरमुद्वहति स्म, सततं निरन्तरसुखेतरवेदनां संवेदयति स्म चेति ।

अहिंसया चाऽऽयत्यां निरन्तरायं सुषमाधायित्वम्, चित्ते करुणामृतपरिप्लावितत्वं, परत्राऽमुत्र कुशलानुबन्धिकुशलं सुखानुबन्धिसुखं पुण्यानुबन्धिपुण्यं धर्मानुबन्धिधर्मश्च लभते ।

यथा - जीवदयां प्रतिपालयन् **पुलिन्दः** परस्मिन् जन्मनि **नरकेसरिनृपो** भूत्वा परिभुज्य विविधानि सुखानि, संप्राप्य च सद्गुरुसंयोगं, श्रुत्वा च धर्मोपदेशं, सम्यगाराध्य च श्रावकधर्मं प्रतिपद्य च निरवद्यां प्रव्रज्यां, पर्यन्ते माससंलेखनां च कृत्वा स धन्यो **नरकेसरिमहर्षिः** नवमग्रैवेयके देवभुवमाप ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुकम्पादानस्यानुभावतः **सोमदत्तश्रेष्ठी** इहभव एव नवं नवं सुखं समृद्धिं च प्राप्नोत् ।

श्रीआर्यरक्षितश्रीवज्रस्वामिनौ श्रुतग्रहण-वितरणकुशलतया जिनशासने सुप्रसिद्धौ ।

सुपात्रदाने साधुषु **बाहुसाधुः**, आर्यासु **पुष्पचूला** आर्या, श्राद्धेषु **मूलदेवः** श्राद्धीषु च **चन्दनबाला** इति दृष्टान्तचतुष्कं सुप्रसिद्धम् । ते सर्वे सुपात्रदानं दत्वाऽऽत्महितं साधयामासुः । अपरं च साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका-जिनागम-जिनागमलेखन-जिनवचनश्रवण-जिनायतननिर्माण-पुनरुद्धरणेत्यादिषु विहितं वितरणप्रवणं सन्मार्गावतरणं भवति ।

यथा - जिनवचनश्रवणेन **रौहिणेयः**, जीर्णदेवालयोद्धरणेन **वग्गुरश्रेष्ठी**, जिनबिम्बविधापनेन **कुमारनन्दीसुवर्णकारश्च** सुगतिभाग् भूतः ।

(२) शीलगुणः - सदानमदकल इव दानगुणसङ्कृतनरः शीलेन शोभते । शीलस्य माहात्म्यं यद् मदनपराभवः । शीलं मूलमिव सुखतरोः शुभतरोश्च, शीलं नालमिव ज्ञाननलिनस्य, शीलं शूलमिव मन्मथस्य, शीलं शाल इव व्रतपूरस्य । शीलं चैतद् पालयितुमतीव दुष्करम् । तत्तु अपारपारावारस्य तरणं बाहुभ्याम्, असिधारासु चङ्क्रमणं पादाभ्याम् ।

शीलेन स्मरशासनं सर्वसत्त्वहितनाशनं प्रतिरोधमापद्यते । शीलस्य चास्य साधनयाऽऽराधनया पालनया परिपालनया च श्रूयन्ते **स्थूलभद्रः**, शीलसनाथशिरोमणिः परिकीर्त्यते च विजितरतिपतिः **राजीमती** आर्यवर्या, संश्लोक्यते श्रेष्ठिश्रेष्ठः **सुदर्शनः**, श्रमणोपासकावतंसः, परिश्लाघ्यते अननुगुणश्लाघ्या सती **सुभद्रा** श्रमणोपासिकामतल्लिका ।

(३) तपोगुणः - तपोधर्मानुभावतः निर्जीर्यन्ते कर्माण्यात्मनः । सर्वदैव शिवसुखाभिलाषिणो भव्यसत्त्वास्तपस्यन्ति । येन कर्माणि तप्यन्ते तत्तपः बाह्यामाभ्यन्तरं चेति द्विविधम् । तच्च क्रमशः षोढा ।

तथा हि - (१) अनशनम् (२) ऊनोदरता, (३) वृत्तिसङ्क्षेपणं, (४) रसत्यागः, (५) कायक्लेशः, (६) संलीनता । तदिदं षट्प्रकारं बाह्यं तपः ।

(१) प्रायश्चित्तं, (२) विनयः, (३) वैयावृत्त्यं, (४) स्वाध्यायः, (५) ध्यानं, (६) व्युत्सर्गः । तदिदं षट्प्रकारमाभ्यन्तरं तपः ।

दानादयस्तु कर्ममर्मविधः, किन्तु तपः प्रकर्षावस्थापन्नं निकाचितमपि कर्म विनाशयति । तपसा परत्राऽमुत्र च प्रभुत्वं यशः कीर्तिश्च प्राप्यते । विविधाश्च आमर्शविप्रुट्खेलजल्लप्रमुखा लब्धयः प्रादुर्भवन्ति ।

तपसोऽस्यानुभावतो **बलभद्र**मुनिरात्महितं परहितानुगुणं साधितवान् ।

नाभेयनन्दना **ब्राह्मी** प्रभोः पादपद्मान्ते पावनीं पारमेश्वरीं प्रव्रज्यां प्रतिपद्य सोपधानानि श्रमणीसमुचितानि श्रुतानि समधीय विविधानि निकृष्टानि उपवासतपांसि कृतवती, तेषां पारणके च विकृतिर्नादत्तवती, आचाम्लैः पारणकं विहितवती, एतेन तीव्रतपसा निखिलानि निबिडतराणि कर्माणि

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्दह्य जात्यजाम्बुनद इव तेजसा सा समुद्भूतकेवललोकप्रकाशेन विराजमाना आयुषोऽन्ते मोक्षमाप ।

चरमजिनवरस्य वर्द्धमानतीर्थपतेः प्रथमः श्रमणोपासक **आनन्द** एकादशश्राद्धप्रतिमाः समाराध्य अवधिज्ञानं प्राप्नोत् । श्राद्धधर्मं च विधिनाऽऽराध्य मासिकीं संलेखनां समाधिना विधाय कालं कृत्वा सौधर्मकल्पे उत्तरपूर्वस्मिन्नरुणाभिधाने विमाने देवभवमियाय ।

श्रीऋषभप्रभोः **सुंदरी** इति सौंदर्यातिशायिनी, अद्वितीयलावण्यवती द्वितीया दुहिताऽऽसीत्, सा च प्रविव्रजिषुरपि भरतेनाऽननुज्ञाता षष्ठिसहस्राणि संवत्सराणि यावदाचाम्लपतोविधानमाचरितवती, षट्खण्डभरतक्षेत्रविजयादनन्तरं तस्याः प्रकर्षं प्रव्रज्याध्यवसायं ज्ञात्वा भरतेन संयमग्रहणाय समनुज्ञाता सती प्रभोः पार्श्वे संयमं स्वीकृत्य दुष्करतपश्चरणमाचर्य केवलज्ञानं लब्ध्वा अव्ययं पदमवाप ।

(४) भावगुणः - भावो हि प्रधानो धर्मः दानादिषु धर्मेषु । भावेनैव अन्यधर्माः शोभन्ते । लवणेनेव रसवती, ज्योतिषैव मणिः, कलशेनेव प्रासादः, नयनेनेव वदनं, लावण्येनेव तारुण्यम् ।

शुभभावप्रसरपर आत्मा क्षणार्द्धेन तत्कर्म क्षीणोति यत् जन्मकोटिघटितेन तीव्रतपसाऽपि न क्षीयते ।

सर्वेषु धर्मव्यापारेषु शुभमनःव्यापार एव आत्महितसंसाधनप्रवणः, अशुभस्तु स एव नितरां अधोगतिगमननिबन्धनम्, यथा दृष्टं राजर्षिप्रसन्नचन्द्रे।

आयोधनावनौ द्वन्द्वयुद्धेन चक्रवर्तिनं भरतं विजित्यापि प्रशमरसपूरप्लावितचेताः संयतो भूत्वा **बाहुबलिः** संवत्सरं यावदेकस्थानस्थितः, किन्तु ज्ञानं न लेभे । वर्षान्ते दीप्रदीधितिर्दिनपतिरिव जिनपतिः ब्राह्मीसुन्दरीभ्यां कराभ्यामिव शतदलतामरसमिव शमरससरसं बाहुबलिनं संयमिनं बोधयामास । स च महामना महामुनिः "वीरा मोरा गज थकी उतरो" "न हु हत्थिविलग्गाणं उपज्जइ केवलन्नाणं" इति भगिनीवचनमाकर्ण्य निजलघुबान्धववन्दनासमुत्सुकः प्रभोः पार्श्वे प्रस्थातुं यावत् पादमुज्झिक्षेप तावदेव केवलज्ञानं समुत्पन्नमित्येतदपि विस्फूर्जितभावधर्मस्याऽऽस्यानुगुण्यम् ।

वर्धमानप्रभोः प्रथमाया आर्याया चन्दनबालाया विनयवती शिष्या **मृगावती** साध्वी भावधर्मत एव केवलिनी भूता । तस्या अपि चरित्रं पवित्रं श्रुतेषु विश्रुतमेव ।

इलापुत्राभिधानश्च श्रेष्ठिपुत्रो नटनन्दनानुरागतो नटीभूतोऽपि निरीहनिर्ग्रन्थनिषेधवचननिर्विकारनयन-निभालनेन सञ्जातप्रवृद्धशुभभावतो घनघातीनि कर्माणि निहन्य समुज्ज्वलकेवलमाससाद । भावेनैव भवः पराभूयते यथा वसुदेववल्लभा **कनकवती** सती एकदा श्रीमन्नेमिनाथस्य समवसरणे गतवती प्रभोरन्तिके भावनाप्रभावख्यापिकां देशनां श्रुत्वा श्रद्धाबन्धुरा सा देशविरतिधर्मं लब्ध्वा व्रतनियमसमुत्थां क्लेशचर्यां विनैव विशिष्टतरभावप्रकर्षमाधाय चेतसि ध्यानस्य विशुद्ध्या क्षपकश्रेणिमारुह्य घातिचतुष्कस्य घातं विधाय केवलं प्राप्ता ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) विनयगुणः - विनयाऽऽराधित एव गुरुः चतुष्प्रकारं संसारसारं धर्मं प्रदिशति तस्माद्धर्ममाप्तुकामा विनयं कुरुध्वं । येनाष्टविधं कर्म विनीयते दूरीक्रियते स विनयः । लौकिक-लोकोत्तरभेदभिन्ने विनये गुर्वादीनामुपचारादि विनयः सकलसंपन्निधानं प्रोक्तः, किन्तु लोकोत्तरे जिनप्रणीते प्रवचने लोकोत्तर एव विनयः कर्तव्यतामासादयति भव्यानाम् ।

लोकोत्तरो विनयः पञ्चधा -

(१) ज्ञानविनयः, (२) दर्शनविनयः, (३) चरणविनयः, (४) तपोविनयः, (५) उपचारविनयश्च ।

सम्यग्ज्ञानसहितं यद् दशविधचक्रवालसामाचार्या आसेवनं स **ज्ञानविनयः** ।

आप्तप्ररूपितजीवादिपदार्थानां श्रद्धानं स **दर्शनविनयः** ।

सर्वज्ञोपदिष्टानुसारं चारित्रे तपसि च स्वनिष्ठाशक्तिप्रतिष्ठमनुष्ठानं तौ **चरणविनयतपोविनयौ च** ।

आचार्यादिमुनिवरेषु सुप्रशस्तमनोवाक्कायानां धारणमाशातनावर्जनं बहुमानाधानं च **उपचारविनयः** प्रथितः ।

श्रेणिकनृपनन्दनेन **अभयकुमारेण** विवेकतुलाधिरूढ्या निजधिया, श्रेणिकशङ्कितशीलां चेल्लणां मातरं तथाऽऽज्ञाप्रधानं पितरं प्रति विनयमाचरता अन्तःपुरदहनकृत्रिमवृतान्तख्यापनतो जननी रक्षिता आज्ञा च जनकस्य न खण्डिता । इत्थं गुरुं प्रति निजविनयं प्रदर्शितवान् । एवं पूज्येषु प्रथितो विनयो विनेयानां कीर्तिं विकिरति, विश्वे विश्वासं च जनयति, कामतापं च शमयति, अन्तःप्रीतिं सृजति, उदितामापदं मथ्नाति । किं बहुना विनयाद् विश्वं वशंवदं भवति ।

(६) परोपकारगुणः - सुविनीतजनो जनमनोऽभिनन्दनविधायी भवति । स यदि परोपकारी स्यात् तर्हि सुवर्णे सुगन्धसंयोगो भवति । गगने शशिकर इव सामर्थ्यवतः पुरुषस्य परोपकारिता यशश्च भुवने प्रसरति।

यः परस्मिन्नुपकरोति, स तत्त्वतस्तु स्वस्मिन्नेव उपकरोति । अयमुपकारधर्मो द्रव्यतो भावतश्च द्विभेदः, स च जिनभगवद्भिस्तीर्थकृद्भिः सांवत्सरिकदानरूपेण द्रव्यतो धर्मोपदेशदानरूपेण भावतः समाचरित उपदिष्टश्च ।

अचेतना अपि सरिताविटपिप्रभृतयो यदि परोपकारं कुर्वन्ति तर्हि सचेतनैरस्माद्दशैः परोपकारो नितरां कर्तव्य एव ।

अपरनामा **"वङ्कचूलः" पुष्पचूलः** राजपुत्रः केवलं परोपकारबुद्ध्यैव चातुर्मास्यां मुनिभ्यो वसतिदानं करोति, तस्य सुफलत्वं सर्वं प्रसिद्धमेव ।

(७) उचिताचरणगुणः - उचिताचरणं परोपकारपरस्य नरस्य दानवृत्तिं सफलयति । औचित्यं प्रपञ्चयन् जनः समुचितं दानादिकं कुर्वन् दानादिकधर्मस्य प्रतिष्ठां प्रख्यापयति । औचित्या चैतञ्चैतन्यवता

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचरणीयं पितृ-मातृ-सहोदर-प्रणयिनी-अपत्य-स्वजन-गुरुजन-नागर-परतीर्थिकविषयकम् ।

जननी-जनकयोः मनसा वचसा वपुषा शरीरशुश्रूषा आज्ञापालनमित्यादिकं मातापितृसम्बन्धि औचित्यम्।

सहोदरं प्रति औचित्यं तु तमात्मसमानं मत्वा गृहादिकार्येषु कनिष्ठस्यापि बहुमानं, ज्येष्ठं प्रति पितृवत् सन्मानम् ।

प्रणयिनी प्रत्यौचित्यं चैतद् - यत् प्रियालापपूर्वकं गृहादिकार्ये प्रवर्तनम्, कुतश्चिदपि हेतोः कुपितायाः कोपापनयनं तन्मनोरथपूरणेन रोगादिषु चानुप्रेक्षा, धर्मकार्येषु च साहाय्यम्, इत्यादिकम् ।

तनयं च कलासु कुशलं कारयेत्, गुरु-देव-धर्म-साधर्मिकाणां च परिचयं विरचयेत्, समुचितसमये परिणयनं गृहभारसमर्पणम्, प्रत्यक्षे श्लाघाया अकरणम्, व्यसने समापतिते सति तस्योद्धरणम्, इति पुत्रं प्रति पितुरौचित्यम् ।

स्वस्य स्वजनानां च शुभाशुभेषु प्रसङ्गेषु सम्मीलनं सत्कारकरणं दुःखदूरीकरणं च । रोगातङ्केषु अतिशयदुरन्तकरणम्, पृष्ठतो निन्दां न कुर्यात् । निरर्थकं वाग्वादं न विदध्यात् । तदभावे तद्गृहे न गच्छेत्। अर्थस्य च सम्बन्धं त्यजेत् । एतत् स्वजनविषयमौचित्यम् ।

धर्ममार्गोपदेष्टारं गुरुजनं प्रत्यौचित्यं यत् त्रिसन्ध्यं वन्दनं, तेषामुपदेशं निश्रां श्रद्धानसंस्थानं च कृत्वाऽऽवश्यकप्रमुखाणां सत्कृत्यानां करणम्, उपदेशानां च श्रवणम्, आज्ञायाश्च बहुमानम्, अवर्णवाद-स्यापनोदनम्, स्तुतिवादस्याऽऽविष्करणम्, छद्मस्थावस्थायाः सद्भावत्वात् तेषां छिद्राणामनवलोकनम् । प्रमादस्खलितेषु तेष्वेकान्ते प्रेरणम्, यद् हे ! भगवन् ! किमिदमुचितं भवेत् सञ्चारित्रपात्रभूतानामत्रभवतां भवताम् ? इदं यद् भवताऽऽचरितं तद् यदि विभिन्नया अनया प्रथया कृतं स्यात् तर्ह्यतीव समुचिततरं स्यात्, इत्यादि सविनयवचनप्रपञ्चेन गुरुं सन्मार्गे स्थापयेत् । यथा जिनप्रवचनस्याऽऽपभ्राजना न स्यात् ।

निजनगरे निवसतां स्वसमानवृत्तीनां समानमनसां समानसुखदुःखानां आपद्विपत्सु सहावस्थानं तन्नागरिकौचित्यम् । स्वेषां परेषां च परस्परं विश्वासकृते गन्तव्यं सर्वैः मीलित्वा नृपादिकं सङ्गच्छेत् । परपैशुन्यं परमन्त्रभेदो न कर्तव्यः । विवादेऽपि जाते माध्यस्थ्यमादाय समाधानं साधनीयम् । न च नयमार्गो विधूनयितव्यः । स्वजनसम्बन्धिबान्धवज्ञातेयेभ्यो लज्जासत्कारादिप्रबन्धे निरपेक्षभावः, इत्यादिकं नागरौ-चित्यम् ।

सौगतादीनां प्रत्युचितमाचरणं यत् ते केऽपि भिक्षार्थमुपस्थितास्स्युस्तेषामुचितं कर्तव्यम् । राज्ञा महितानां तु तेषां विशेषत उचितं कर्तव्यम् । यद्यपि मनसि भक्तिः गुणपक्षपातो न स्यात्, तथापि गृहिणामयं धर्मो यद् गृहागतेषु उचितं कर्तव्यम् ।

एवं पितृप्रभृतीनां समुचितं कुर्वन्तः श्राद्धा अर्हद्धर्मस्य योग्या भवन्ति । तस्माद् भव्यैर्धर्मार्थिभिरादौ उचिताचरणेषु निपुणैर्भाव्यम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृहस्थावस्थायां स्थिता जगद्गुरवस्तीर्थकृतः अपि मात्रापित्रोरुचितमाचरन्ति । उचिताचरणेन सुप्रतिष्ठप्रतिष्ठः पुरुषः देशादिविरुद्धत्यागत एव लब्धयशः स्थिरीकरोति ।

(८) देशादिविरुद्धपरिहारगुणः - देश-काल-नृप-लोक-धर्मविरुद्धमाचरणं संरोधयन् नरो धर्मं शर्म च लभते । यत्र कुत्राऽपि देशे शिष्टजनैरनाचीर्णं तद् देशविरुद्धम्, न च तेषां देशविषयं तिरस्कारं कुर्यात् । यस्मिन् कस्मिन्नपि काले शिष्टैर्यद् अनाचीर्णं तत् कालविरुद्धम्, राजविरुद्धमपि मतिमान् पुमान्नाचरेत्, यतो नरनाथाः सकलसंपत्सनाथाः सकलप्रजाप्रेमधामानश्च सन्ति । यतः क्षितिपतयो चेतस्संतुष्टिभाजो यथा भवन्ति तथा वर्तितव्यम् । यतयोऽपि सानुकूले भूपाले मनःसमाधानमाधाय धर्माराधनं कुर्वतेतराम् । मनुष्यलोके यः पुरुषार्थः शिष्टजनाचीर्णो व्यवहारस्तस्य विरुद्धं लोकविरुद्धम् । लोकतो विप्रतिस्रोतसा जगति निजस्य जिनशासनस्य चापयशः प्रसरति । लोकविरुद्धत्यागपूर्वकं केषामपि दूषणोद्घोषणं न कुर्यात् । जनपूज्यानां नावज्ञामासादयेद् निसर्गतः सुकोमलमतीनामार्जवोपेतानां प्राणिनां धर्मकरणस्य किमपि स्खलनं नोपहसनीयम् । लोकविरुद्धपरिहारतो हार इव जनमनोहारी भवति धर्माराधनपरो जनः ।

देशादिविरुद्धत्यागस्तु धर्मरक्षानिबन्धनम् । धर्मस्य सद्गतिप्रापणप्रवणस्य, दुर्गतिपतननिरोधबद्धकक्षस्य यद् विरुद्धं तद् धर्मविरुद्धम् । यथाऽऽश्रवेषु आसक्तिः धर्मकर्मणि अनासक्तिः, मुनिजनविद्वेषणम्, चैत्यद्रव्यपरिभोगः, पारमेश्वरप्रवचनस्याऽपभ्राजना, परतीर्थिप्ररूपिते मार्गे रतिः, गुरुस्वामिसाधर्मिकादीनां वञ्चनम्, परेषां समृद्धिं प्रति मात्सर्यं लोभतः संक्षुब्धचित्तत्वमित्यादि धर्मविरुद्धं सुतरां परिहर्तव्यम् । एकमपि विरुद्धं त्यजन् सुधीः सुखं च शुभं च समावहति किं पुनः पञ्चानां विरुद्धानां त्यागतः ।

(९) आत्मोत्कर्षवर्जनगुणः - दानादिधर्ममात्मोत्कर्षः क्षिणोति, अतो विनयप्रवणो धर्मविचक्षणो चतुरचेताः आत्मोत्कर्षं परित्यजेत् । आत्मोत्कर्षस्तु विनयापकर्षणकरो दुर्गतिपथपाथेयः । आत्मोत्कर्षेण असतः स्वगुणान् प्रकटयतो जनान् मित्राणि हसन्ति, बान्धवा निन्दन्ति, गुरुजना उपेक्षन्ते, जननी-जनकश्चापि जघन्यत्वमादधाति । आत्मोत्कर्षेण क्रमशो विनयविनाशः, अतः अहङ्कारार्विभावः, अतो ज्ञानादिशून्यत्वमतो लोकेषु अश्रिकत्वं, अतस्सम्पदां च विमर्दः, अतस्सर्वत्र चापमनिका, अतः पुरुषार्थपरित्यागः, अतो बहुविधोपाधिसन्निधानम्, अतश्चेतसि शोकानलज्वलनम्, अतः शून्यमनस्कत्वम्, अतः सर्वथा विनाशश्च भवति, एवमुत्तरोत्तरदोषानलक्लेशकलुषित आत्मोत्कर्षः कर्षणीयः ।

स्वश्लाघापरायणोऽपि परनिन्दकस्तु न स्यादेव, वस्तुतस्तु आत्मस्तुतिविस्तरणमेव परापगुणप्रकटनं परिकीर्तितं धीधनैर्महाजनैः । परनिन्दा तु कुगतिमूलबीजम् । निजपरकषायकलुषनिबन्धनम्, अतो धन्यैर्न विधीयते आत्मोत्कर्षः परापकर्षश्च । किन्तु ते प्रशमामृतसारनिर्वापितमनसो भूत्वा इहभवं परभवं प्रभूतनिराबाधसुखानुभूतिमयं कुर्वन्ति ।

(१०) कृतघ्नत्ववर्जनगुणः - धर्मसर्वङ्कषगर्ववर्जितो गुणरञ्जितप्रकृतिकः प्रकृत्या परोपकारपरायणो

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यावत् कृतघ्नतां न प्रकटयति निजस्य, तावद् गुणगणगरिष्ठेषु श्रेष्ठेषु शिष्टेषु नारोपयितुमलं निजाभिधानम् । ये कृतज्ञास्ते उत्तमाः, ये च कृतघ्नाः तेऽधमाः । कृतज्ञोऽल्पमपि परोपकारं न विस्मरति, न च स्मरति कृतघ्नः परैः कृतमपि महान्तमुपकारम् । परोपकृतिसंस्मृतिमतयस्तु स्वमस्तकात् तृणमपि केनापि अपनीतं स्यात्तद् मन्दरभारापहारं तोलयन्ति परपरमोपकारविचारचतुराः । कृतघ्नास्तु स्वर्णकोटिमपि वितीर्णां तृणाय न मन्यन्ते ।

कृतज्ञतया वसन्तपुरनरनाथो **जितशत्रुः** वने जलदानेन निजतृष्णापनोदकारिणं वनविहारिणं **शबरं** निजनगरे समानीय निजभवने संस्थाप्य पञ्चप्रकारविषयसुखपूर्वं सन्तोष्य जिनधर्माराधनविधानं कारयामास इति शबरनरनाथकथानकात् सविशेषं विमर्शणीयम् ।

(११) अभिनिवेशवर्जनगुणः - सम्यक्त्वादिगुणनिकरो नितरां स्थिरीभवति यदा चेतस्यकदाग्रहिता ऋजुता स्यात्, कदाग्रहस्तु अजीर्णमिव आत्मानं संज्वरयति, ज्ञानतरणिं तिरस्करोति, मिथ्यात्वसन्तमसं च विस्तारयति । तद्वशाच्चैतन्यं नोल्लसति, गुरूपदेशो न प्रसरति ।

अभिनिवेशपवनस्य प्रतिकूलतया रुद्धगतिः संयमपोतो भवार्णवे मोहावर्त्ते निमज्जति । अभिनिवेशवशवर्तिनः प्रशस्तं परमपदपन्थानं पारमेश्वरं प्रवचनं परित्यज्य संसारकान्तारे अनवरतं सञ्चरन्ति ।

अभिनिवेशतैमिराच्छन्नज्ञाननयनाः साम्प्रतजना विचारयन्ति असाम्प्रतम्, अतोऽभिनिवेशं दृढयन्ति ।

तत्परिहाराय ज्ञानक्रियायोगेषु नयाध्वनमधिकृत्योत्सर्गापवादमार्गमनुसृत्य द्रव्यक्षेत्रकालभावादिकान् भावान् सम्भाव्य व्यवहारनिश्चयनययोस्सम्यक्तया संविभेदं प्रविभाय प्रवर्तितव्यम् ।

अन्यथा तथाभूततत्त्वेषु वितथाभावेन येषां चेतांसि मिथ्याभिनिवेशविषवेगातुराणि सम्पनीपद्यन्ते ते मूढमनसः अनेनांसि जिनवचांसि विरूपं प्ररूपयन्ति । ते यत्र सुगृहीतनामधेये परमभागवतभागधेये जिनप्रवचने 'निन्हवा' इति अनाख्यां आख्यामाप्नुवन्ति ।

यथा - बहुरय पएस अवत्त समुच्छदुगतिग अवद्धिया चेव ।
सत्तेए निन्हगा खलु तित्थम्मि उ वद्धमाणस्स ।।१।। इति ।

ते **जमालि**प्रमुखाः प्रसिद्धा एव ।

दानाद्युत्तमगुणमणीनां मंजूषेव उत्तमगुणपरिग्रहः सम्यग्दर्शनसंरक्षणक्षमः सदाऽऽदरणीयः ।

विरतिस्वरूपम् :-

तत्त्वानां सम्यग्ज्ञानेन तेषां प्रति च श्रद्धा लभ्यते । ततश्च किं कर्तव्यं किं न कर्तव्यं इत्यादिरूपा दृष्टिराविर्भवति । तदनुसारि च यतमानमानसः सन् यः कोऽपि कामपि जीवनवृत्तिमादधाति तस्य ज्ञानादिकं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सफलं भवति, तदर्थमाश्रवद्वारनिरोधः कर्तव्यो येन कर्मरजांसि आत्मनि स्वजन्ति तानि दृष्टानि मनोवचःकायचेष्टितानि तेषां सम्यक्तया विरतिः सुप्रशस्ताचरणरूपा सा **'संयमः'** इति उच्यते ।

देशविरतिः -

ये विशिष्टसत्त्वशालिनो न सन्ति ते देशतः संयममाराधयन्ति ते श्रावकाः, तेषां च धर्मः श्राद्धधर्मो द्वादशधा । **यथा** - पञ्च अणुव्रतानि, चत्वारि गुणव्रतानि त्रीणि च शिक्षाव्रतानि ।

सर्वविरतिः -

ये च प्रबलबलिष्ठा वीर्यवरिष्ठा गुणगरिष्ठाः सत्त्वश्रेष्ठाः सन्ति ते जिनवचनसुधापानसुसमाहितचेतसः सन्तः सर्वथा सावद्यव्यापारं परित्यज्य मनसा वचसा वपुषा निरवद्यतां हृदि आदधति जीवनं च तदनुसारि निर्वाहयन्ति ते संयमिनः संयता व्रतिनो मेधाविन आर्या इति सङ्ख्यातीतसङ्ख्यास्पदा भवन्ति, तेषां च व्रतानि पञ्च महाव्रतानि, पञ्च समितयः, तिस्रः गुप्तयः, क्षान्त्यादयश्च गुणा इति यतिधर्मः परिकीर्तितः । यतिधर्मस्य यतनया पालनया मुनयः सद्यो मुक्तिमासादयन्ति, त्रिभुवनपूज्या भवन्ति ।

अत्र देशविरति-सर्वविरतिधर्मपालने चेटकनृपस्य रोरस्य कथानके यथा - **चेटकनृपतिः** वैशालीपतिः चरमतीर्थपतिवीरस्वामिपादमूले स्वीकृतद्वादशव्रतः प्रथमे स्थूलप्राणातिपातविरमणव्रते एकां प्रतिज्ञां चकार । यत्नृपतित्वधर्मानुरोधेन यदि युधि गन्तव्यं भविष्यति तथा एकं शस्त्रप्रयोगं कृत्वा युद्धान्निवर्तयिष्यामि इत्यकरोत् प्रतिज्ञाम् । तां प्रतिज्ञां स्वप्राणातिपातेऽपि निर्वाहयामास सर्वविरतिधर्मपालने च समृद्धपूर्वोऽन्तरायोदयजनितदारिद्र्यो वसुदत्तनामा **रोरः** सुस्थितदेवताप्रसादेन पञ्च रत्नानि सम्प्राप्य महता प्रयासेन पालितवानिति तथैव गुरोः समीपे श्रावकधर्म-साधुधर्मौ समासाद्य निरवद्यतया च परिपाल्य विहितानशनोऽच्युतकल्पेऽमरो बभूव ।

एवं स्वपरपरमोपकारप्रवणमनाः पारमेश्वरे शासने सम्यक्त्वमूलं दानादिगुणपरिवृढं अनल्पसङ्कल्प-विमुक्तसुस्थितचेतोऽध्यवसायनिरपायप्रशमफलं संयमकल्पकल्पतरुं संसेव्य अपुनरावृत्तिनामधेयं स्थानमचलमलं शिवं प्राप्नुयात् । इति मतिना पूज्यपादाचार्यदेव**श्रीमत्प्रभानन्दाचार्यै**रेष हितोपदेशो विहितः, तेषां च सौदर्येण पूज्यपादाचार्यवर्येण **श्रीमत्परमानन्दसूरिणा** हितोपदेशामृतविवरणं विहितम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थकारस्य परिचयः

जिनशासनगगनाजीरे तीर्थकृतो लोकोद्योतकरा भानवो बभूवुः, गणभृतश्च शशभृतः संजज्ञिरे, पञ्चाचारभृतः प्रवचनरक्षणविचक्षणा आचार्यवर्या तारकनिकरा नितरां विरेजिरे ।

कतिपया आचार्या आचारैः शासनं भासयामासुः, केचन सूरिवराः सुरगुरुप्रतिभाः श्रुतसमाराधनया शासनं समर्थयामासुः, केचन तपोभिः, केचन विद्याभिः, केचन प्रवचनकलाभिरपि शासनगगनं प्रभावयामासुः । तेषु प्रस्तुतग्रन्थकाराः पूज्याचार्यश्री**प्रभानन्दसूरयो** हितोपदेशग्रन्थविरचनेन तथा ग्रन्थविवरणकाराः पूज्याचार्यश्री**परमानन्दसूरयो** तदुपरि हितोपदेशामृतविवरणप्रणयनेन चाज्ञानान्धकारं सञ्चूर्णयामासुः ।

बहुलतया चरणकरणानुयोगप्रधानं ग्रन्थमिमं तस्य विवरणं च जग्रन्थुः ।

[1]वैक्रमीये युगगगनशिवनयनधरित्रीवर्षे (१३०४ तमे) इमौ पूज्यौ **श्रीप्रभानन्द-श्रीपरमानन्द**आचार्यवर्यौ सौदर्यौ रुद्रपल्लीयपूज्याचार्यश्री**देवभद्रसूरि**शिष्यौ बभूवतुः ।

पूज्यश्रीदेवभद्रसूरिवरस्तु रुद्रपल्लीयगच्छस्थापकस्य जयन्तविजयकाव्यकारस्य (१२७८ संवते)

---

1. रुद्रपल्लीयश्रीवर्द्धमानसूरिविरचिते वैक्रमीये-१४६८ संवते रचिते श्रीआचारदिनकराख्ये शास्त्रे तद्गुरुपर्वक्रमो यदुपलब्धोऽस्ति स चायम् -

पूर्वं **श्रीहरिभद्राख्यः** सूरीन्द्रो भद्रदर्शनः । तत्र वित्रस्तवादीभः पञ्चवक्त्रो व्यराजत ।।७।।
श्रीयाकिनीवदनसंभववाक्यलेशं, सम्यग्विधाय हृदये विलसद्वयेन ।
येनावनं सुगतसाधुजनस्य चक्रे, चित्रं तदत्र मुनयो विमृशन्ति चित्ते ।।८।।
देवचन्द्रस्ततः सूरिश्चन्द्रतां प्रत्यपद्यत । मोहान्धकारसंसारतापपीडितचेतसाम् ।।९।।
श्रीनेमिचन्द्रसूरीन्द्रो भूषयामास तत्पदम् । तत **उद्योतनः** पट्टोद्योतं तस्य विनिर्ममे ।।१०।।
ततः **श्रीवर्द्धमानाख्यः** सूरिदुर्वादिनां मदम् । वर्धयन्वर्धयामास समस्तं जिनशासनम् ।।११।।
श्रीमज्जिनेश्वरः सूरिर्जिनेश्वरमतं ततः । शरद्राकाशशिस्पृष्टसमुद्रसदृशं व्यधात् ।।१२।।
नवाङ्गवृत्तिकृत्पट्टेऽभयदेवप्रभुर्गुरोः । तस्य स्तम्भनकाधीशमाविश्चक्रे समं गुणैः ।।१३।।
श्राद्धप्रबोधप्रवणतत्पट्टे **जिनवल्लभः** । सूरिर्वल्लभतां भेजे, त्रिदशाणां नृणामपि ।।१४।।
ततः **श्रीरुद्रपल्लीयगच्छसंज्ञालसद्यशाः** । नृपशेखरतां भेजे सूरीन्द्रो **जिनशेखरः** ।।१५।।
दुर्वादिपद्मचन्द्राभां **पद्मचन्द्रगणाग्रणीः** । बभार तत्पदे पद्मां मुदा निच्छद्मतां ।।१६।।
श्रीमान**न्विजयचन्द्राख्यः** सूरिर्विजयमादधे । ततस्तस्य पदे रेजेऽभयदेवगणाधिपः ।।१७।।
✤**देवभद्रस्ततो** भद्रङ्करसूरिरजायत । **प्रभानन्दो** महानन्दं, ततःसङ्घेऽप्यवर्धयत् ।।१८।।
तेन गुरुपर्वक्रमस्तु भवतीत्थम् -

✤ १८ तमे श्लोके श्रीदेवभद्रसूरेः पट्टे श्रीभद्रङ्करसूरि इति पर्वक्रमः सामान्येन दृश्यते परं सूक्ष्मैक्षिकया तु 'भद्रङ्करसूरि'

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्यपादाचार्यश्रीअभयदेवसूरेः पट्टविभूषकः, अयं च श्रीअभयदेवसूरिः परम्परया नवाङ्गीटीकाकार-श्रीअभयदेवसूरिसन्तानीय आसीत् ।

इत्थं गुरुपर्वक्रमः -

पूज्य आ. श्रीउद्योतनसूरिः (९९४ सं.), **पूज्य आ. श्रीवर्धमानसूरिः** (स्व. १०८८ सं.), **पूज्य आ. श्रीजिनेश्वरसूरिः, पूज्य आ. श्रीबुद्धिसागरसूरिः, नवाङ्गीटीकाकारः पूज्य आ. श्रीअभयदेवसूरिः** (जन्म-१०७२ सं.) (स्व. ११३५/११३९), **पूज्य आ. श्रीजिनवल्लभसूरिः, पूज्य आ. श्रीजिनशेखरसूरिः, पूज्य आ. श्रीपद्मेन्दु[चन्द्र]सूरिः, [2]जयन्तविजयकाव्यकारो रुद्रपल्लीयः पूज्य आ. श्रीअभयदेवसूरिः, पूज्य आ. श्रीदेवभद्रसूरिः, तच्छिष्यौ पूज्य आ. श्रीप्रभानन्दसूरिः - पूज्य आ. श्रीपरमानन्दसूरिश्चेति।**

[3]चान्द्रे कुलेऽस्मिन्नमलश्चरित्रैः, प्रभुर्बभूवाभयदेवसूरिः ।
नवाङ्गवृत्तिच्छलतो यदीय - मद्यापि जागर्त्ति यशःशरीरम् ।।१।।

श्रीहरिभद्रसूरिः (१४४४ ग्रन्थकृद्)✦
↓
श्रीदेवचन्द्रसूरिः
↓
श्रीनेमिचन्द्रसूरिः
↓
श्रीउद्योतनसूरिः
↓
श्रीवर्द्धमानसूरिः
↓
श्रीजिनेश्वरसूरिः
↓
श्रीअभयदेवसूरिः(नवाङ्गवृत्तिकृद्)
↓

श्रीजिनवल्लभसूरिः
↓
श्रीजिनशेखरसूरिः
(येन हि रुद्रपल्लीयशाखा विर्निर्मिता)
↓
श्रीपद्मचन्द्रसूरिः
↓
श्रीविजयचन्द्रसूरिः
↓
श्रीअभयदेवसूरिः
(न चायं नवाङ्गवृत्तिकृद्)
↓
श्रीदेवभद्रसूरिः
↓
श्रीप्रभानन्दसूरिः

श्रीप्रभानन्दसूरिपट्टे श्रीचन्द्रसूरिर्बभूव । तत्पट्टे **श्रीजिनभद्रसूरिरासीत्** । एतेन रुद्रपल्लीयगच्छीयानां श्रीप्रभानन्दसूरिप्रान्तानां सूरिवराणां परम्परा ज्ञायते । न प्रस्तूयतेऽत्र ग्रन्थविस्तरभयेन ।

2. जयन्तविजयकाव्यप्रशस्तिः ।। (१-९ पद्यः) काव्यमाला । १५ मुंबई काशीनाथ पांडुरंग परब ई. स. १९०२ ।।
3. हितोपदेशग्रन्थस्य प्रशस्तिः ।। (१-९ पद्यः) सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद । ई. स. २००४

इति शब्दः श्रीदेवभद्रसूरेर्विशेषणरूपेणैव प्रयुक्तः सम्भाव्यते, अत्रादन्यत्र च तस्यानुपलब्धेः ।

✦ याकिनीसुनूपूज्याचार्यश्रीहरिभद्रसूरिपादानां शिष्यपट्टपरम्पराया अचालनादत्रनिर्दिष्टस्य श्रीदेवचन्द्रसूरेस्तेषां पट्टधररूपेण स्थापना परीक्षणीया विद्वद्भिः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मान्मुनीन्दुर्जिनवल्लभोऽथ तथा प्रथामाप निजैर्गुणौघैः ।
विपश्चितां संयमिनां च वर्गे धुरीणता तस्य यथाऽधुनापि ।।२।।

तेषामन्वयमण्डनं समभवत् सञ्जीवनं दुःषमामूर्च्छालस्य मुनिव्रतस्य भवनं निःसीमपुण्यश्रियः ।
श्रीमन्तोऽभयदेवसूरिगुरवस्ते यद्वियुक्तैर्गुणैर्द्रष्टुं तादृशमाश्रयान्तरमहो दिक्षु क्रमात् क्रम्यते ।।३।।

यतिपतिरिह **देवभद्रो** नामा जयति, तदीयपदावतंस एषः ।
विषमविषयरोगसन्निपाते दधति रसायनतां वचांसि यस्य ।।४।।

समस्तशास्त्राम्बुधिकुम्भजन्मा, कवित्ववक्तृत्वनिरुक्तिकोशः ।
शिष्यस्तदीयः प्रतिभासमुद्रः, श्रीमान् **प्रभानन्दमुनीश्वरो**ऽस्ति ।।५।।

सन्दर्भोऽयमतस्तेषामनुज्ञेनाल्पमेधसा ।
तैरिवा[रेव]नुगृहीतेन परमाता ? **[परमानन्दसूरिणा]** ।।६।।

गुणिनो गुणानुरक्ता गुरुभक्ताः साधवो व्यधुः सर्वे ।
साहाय्यमत्र शास्त्रे विशेषतो **हर्ष[चन्द्र]गणिः** ।।७।।

नवभिः श्लोकसहस्रैः पञ्चशतीसंयुतैः परिमितेयम् ।
नन्द्यादाचन्द्रार्कं हितोपदेशस्य विवृतिरिह ।।८।।

विक्रमनृपादतीतैश्चतुर्भिरधिकैः शतैस्त्रयोदशभिः ।
वर्षाणामनवद्यं शास्त्रमिदं सूत्रितं जयति ।।९।।श्रीः।।

- **भीलडीयाजीतीर्थे उपधानतपःप्रसङ्गे**
वि. सं. २०६०तमे वर्षे
फाल्गुनप्रतिपद्यां तिथौ

तपागच्छाधिराजपूज्यपादाचार्यदेवश्रीमद्विजय-**रामचन्द्रसूरीश्वराणां** शिष्यावतंस-वर्धमानतपोनिधि-पूज्यपादाचार्यवर्यश्रीमद्विजय**गुणयशसूरीश्वराणां**
चरणचञ्चरीकः **विजयकीर्तियशसूरिः**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमदर्शनम्

विषयनिरूपणम्	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
मङ्गलाचरणम् ।	१	२
जिनस्तुतिः ।	२	२
श्रीवर्द्धमानजिनस्तुतिः ।	३	३
चतुर्विधसङ्घस्वरूपम् ।	४	४
हितोपदेशामृतम् ।	५-६	५
मनुजजन्मनो दुर्लभता ।	७-८	६-७
परमार्थहितानि पदार्थानि ।	९	८
मिथ्यात्वस्य दुरन्तता ।	१०	८
हिताहितस्य विभागः ।	११	९
सम्यक्त्वाधिकारिणः		
त्रयोदश गुणः ।	१२-१३-१४	९-१३
सम्यक्त्वस्य स्वरूपम् ।	१५	१४-१८
रूपकषट्केन		
सम्यक्त्वस्योपवर्णनम् ।	१६	१८-२०
सम्यक्त्वस्य प्रभावम् ।	१८	२०-२२
सम्यक्त्वस्य दूषणानि ।	२३	२२-२५
सम्यक्त्वस्य लक्षणानि ।	२४	२५-३०
सम्यक्त्वस्य भूषणानि ।	२५-२६	३१-३४
भक्तिरागस्य गौरवम् ।	२७-२८	३४-३५
श्रीसम्भवप्रभुचरितम् । [प्रथमो भवः]	२९	३५-४०
श्रीसम्भवप्रभुचरितम् । [द्वितीयो भवः]	२९	४०-४१
श्रीसम्भवप्रभुचरितम् । [तृतीयो भवः]	२९	४१-५१
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्यं		
द्वितीयं मूलद्वारम्	३०	५२
गुणानां माहात्म्यम् ।	३१-३९	५२-५५
उत्तमगुणानां नामानि ।	४०-४१	५५
दानगुणस्य वर्णनम् ।	४२-४३	५६
अभयदानस्य वर्णनम् ।	४४-४५	५६
जीवदयायाः स्वरूपम् ।	४६-४८	५६
प्राणस्य स्वरूपम् ।	४९	५७
जीवानां प्राणसङ्ख्या तथा		
जीवात् प्राणवियोजनं हिंसा ।	५०-५२	५८-५९
अहिंसायाः स्वरूपम् ।	५३	५९
श्रेष्ठोपमया अहिंसाधर्मस्य		
माहात्म्यम् ।	५४-५५	६०
जीवहिंसायाः पापारम्भः		
जीवरक्षायाः पुण्यारम्भश्च ।	५६-५७	६०-६१
प्राणिघातमनिष्टपुष्टिहेतुः ।	५८	६१
आत्मवत् सर्वभूतेषु पश्यत ।	५९	६२-६३
दया-हिंसयोः फलम् ।	६०	६३-६४
प्राणिवधस्य फलम् ।	६१	६४
प्राणिवधविपाके		
मृगापुत्रकथानकम् ।	६२	६४-७१
जीवदयाया माहात्म्यम् ।	६३-६४	७१-७२
जीवदयाविषये		
नरकेसरिनरपतिकथानकम् ।	६६	७२-८२
अनुकम्पादानस्य स्वरूपम् ।	६७-७०	८२-८३
अनुकम्पादानस्य माहात्म्यम् ।	७२-७५	८४
अनुकम्पादानविषये		
सोमदत्तकथानकम् ।	७६	८५-१०२
ज्ञानदानस्य स्वरूपम् ।	७७	१०२
ज्ञानस्य स्वरूपम् ।	७८	१०२
ज्ञानस्य पञ्च भेदाः ।	७९	१०३
मतिज्ञानस्य स्वरूपम् ।	८०	१०३

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयनिरूपणम्	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
मतिज्ञानस्य भेदाः ।	८१	१०४
श्रुतज्ञानस्य स्वरूपम् ।	८२	१०५
श्रुतज्ञानस्य भेदाः ।	८३-८७	१०५-१०८
अवधिज्ञानस्य स्वरूपम् ।	८८-९०	१०८-१०९
अवधिज्ञानस्य षड् भेदाः ।	९१	१०९-११०
अवधिज्ञानस्य विषयः ।	९२	११०
विभङ्गज्ञानस्य स्वरूपम् ।	९३	१११
मनःपर्यायज्ञानस्य स्वरूपम् ।	९४	१११
मनःपर्यायज्ञानस्य भेदाः ।	९५	१११
मनःपर्यायज्ञानस्य विषयः ।	९६	११२
पञ्चज्ञानस्य स्वामी ।	९७	११३
केवलज्ञानस्य स्वरूपम् ।	९८	११३
ज्ञानपञ्चके कर्तव्यस्य उपदेशः ।	९९	११४
श्रुतज्ञानस्य विशेषोपयोगिता ।	१००-१०२	११४-११५
योग्यविनेयस्य सूत्रदाने विधिः ।	१०३-१०४	११५
योग्यविनेयस्य सूत्रग्रहणे विधिः ।	१०५	११६
श्रुतस्य ग्रहणवितरणयोः श्रीआर्यरक्षित-श्रीवज्रस्वामिनोः कथानकम् ।	१०६	११७-१२३
श्रावकस्य सूत्रपठनाधिकारः ।	१०७-११३	१२४-१२६
धर्मोपदेशे साधोः अधिकारः ।	११४	१२६-१२७
श्रुतस्य श्रुतधराणां च अवज्ञायाः फलम् ।	११६	१२७
श्रुतस्य अवज्ञाविषये माषतुषकथानकम् ।	११६	१२८
भक्तिदानस्य स्वरूपम् ।	११७	१२९
सप्त क्षेत्राणि ।	११८	१२९
सङ्घस्य स्वरूपम् ।	११९	१२९
यतिजनोपयोगीनि दानानि ।	१२०-१२२	१३०-१३१
अपवादपदे दानविधिः ।	१२४-१२७	१३२-१३३
श्रमणीनां दानविधिः ।	१२८	१३३
अतिथिशब्दस्य व्याख्या ।	१२९	१३४
चित्तवित्तपात्रशुद्धिः ।	१३०-१३१	१३४-१३५
सुपात्रदाने दृष्टान्ताः ।	१३३-१३४	१३५
सुपात्रदाने बाहुमुनिचरितम् ।	१३४	१३६-१४२
सुपात्रदाने पुष्पचूलासाध्वी-कथानकम् ।	१३४	१४३-१४८
सुपात्रदाने मूलदेवकथानकम् ।	१३४	१४८-१५५
सुपात्रदाने चन्दनबालाकथानकम् ।	१३४	१५५-१६०
श्रावकश्राविकाक्षेत्रे दानम् ।	१३५-१३८	१६१-१६२
साधर्मिकवात्सल्यफलम् ।	१३९-१४०	१६३
पञ्चमक्षेत्रं जिनागमम् ।	१४१	१६४
श्रुतस्य महिमा ।	१४२-१४६	१६४-१६५
पुस्तकलेखनं कर्तव्यम् ।	१४७	१६५
जिनमतस्य माहात्म्यम् ।	१४८	१६६
जिनवचनश्रवणफले रौहिणेयकथानकम् ।	१४८	१६६-१७०
जिनवचनश्रवणफले चिलातीपुत्रकथानकम् ।	१४८	१७०-१७३
जिनागमस्य लेखनं कर्तव्यम् ।	१४९	१७३
सम्यक्श्रुतस्य स्वरूपम् ।	१५०-१५१	१७४
जैनागमलेखनस्य फलम् ।	१५२	१७५
षष्ठं जिनमन्दिरक्षेत्रम् ।	१५३-१५४	१७५
जिनायतननिर्माणे अधिकार्यनधिकारिणोः वर्णनम् ।	१५५-१५६	१७६

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयनिरूपणम्	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
जिनभवननिर्माणे गुरुलाघवप्रेक्षा ।	१५७-१५८	१७७
जिनायतननिर्माणे गुणाः ।	१५९-१६२	१७८-१७९
जिनगृहाणां जीर्णोद्धरणं कर्तव्यम् ।	१६३	१७९
जीर्णोद्धरणविषये वग्गुरश्रेष्ठिकथानकम् ।	१६३	१८०-१८२
सप्तमं जिनबिम्बक्षेत्रम् ।	१६४	१८२
विधिनाऽर्हद्बिम्बस्य निर्माणम् ।	१६५	१८३
विधौ आदरः कर्तव्यः ।	१६६	१८४
जिनप्रतिमायाः निर्माणफलम् ।	१६७-१६९	१८४-१८५
जिनबिम्बकारककुमारनन्दी-सुवर्णकारकथानकम् ।	१६९	१८५-१९०
सप्तक्षेत्रस्य निगमनम् ।	१७०	१९०
उत्तमगुणसङ्ग्रहे द्वितीयं शीलप्रतिद्वारम् ।	**१७१**	**१९१**
शीलस्य स्वरूपम् ।	१७२-१९१	
शीलस्य अनुरूपकैः योजनम् ।	१७३	१९१
शीलस्य दुष्प्राप्यता ।	१७४-१८४	१९२-१९५
शीलप्रतिपालने दृष्टान्ताः ।	१८५	१९५
शीलप्रतिपालने श्रीस्थूलभद्रकथानकम् ।	१८५	१९६-२००
शीलप्रतिपालने श्रीराजीमतीकथानकम् ।	१८५	२००-२०४
शीलप्रतिपालने सुदर्शनकथानकम् ।	१८५	२०४-२११
शीलप्रतिपालने सुभद्राकथानकम् ।	१८५	२११-२१५
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीय-मूलद्वारे तृतीयं तपः प्रतिद्वारम् ।	**१८६**	**२१६**
तपः शब्दस्य निरुक्तम् ।	१८७	२१६
तपसः भेदाः ।	१८८	२१७
बाह्यतपसः स्वरूपम् ।	१८९	२१७-२२०
आभ्यन्तरतपसः स्वरूपम् ।	१९०	२२०-२२६
तपसः फलवर्णनम् ।	१९१-१९६	२२६-२२८
तपोमहिमा ।	१९८	२२८-२३०
तपसि रमध्वम् ।	१९८	२३१
तपधर्मविषये दृष्टान्ताः ।	१९९	२३२
तपधर्मविषये बलदेवकथानकम् ।	१९९	२३२-२३६
तपधर्मविषये ब्राह्मीकथानकम् ।	१९९	२३६-२३८
तपधर्मविषये आनन्दकथानकम् ।	१९९	२३८-२४५
तपधर्मविषये सुन्दरीकथानकम् ।	१९९	२४५-२४७
उत्तमगुणसङ्ग्रहे द्वितीय-मूलद्वारे चतुर्थं भावप्रतिद्वारम् ।	**२००-२०१**	**२४८**
भावनायाः फलदर्शनम् ।	२०२-२०३	२४९
भावनाया महिमा ।	२०४-२०७	२५०
भावनायाः प्रकृष्टतमत्वम् ।	२०८	२५१
भावधर्मविषये बाहुबलीकथानकम् ।	२०८	२५१-२५७
भावधर्मविषये मृगावतीकथानकम् ।	२०९	२५८-२६३
भावधर्मविषये इलापुत्रकथानकम् ।	२१०	२६३-२६९
भावधर्मविषये कनकवतीकथानकम् ।	२११	२६९-२८१
दानादिद्वारस्य निगमनम् ।	२१२	२८२
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीय-मूलद्वारे पञ्चमं विनयप्रतिद्वारम् ।	**२१३**	**२८२**
विनयस्य निरुक्तम् ।	२१४	२८३
विनयस्य भेदप्रभेदाः ।	२१५	२८३
लौकिकविनयस्य प्रकाराः ।	२१६-२१८	२८४

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयनिरूपणम्	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
लोकोत्तरविनयस्य प्रकाराः ।	२१९-२२३	२८५-२८८
विनयस्य महिमा ।	२२४-२२९	२८९-२९०
विनयगुणविषये अभयकुमारकथानकम् ।	२३०	२९१-२९७
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीय-मूलद्वारे षष्ठं परोपकारप्रतिद्वारम् ।	**२३१-२३२**	**२९७**
अपरोपकारिणां जगति जघन्यताम् ।	२३३-२३४	२९८
परोपकृतेः पुण्यतमत्वम् ।	२३५	२९८
अनुपकारिणः तिरस्कारः ।	२३६	२९८
अपरोपकारिणां कार्पण्यम् ।	२३७	२९८
परोपकारिणां दानमनोरथाः ।	२३८	२९९
परोपकारः आत्मोपकारः ।	२४०	३००
परोपकारस्य भेदद्वयम् ।	२४१	३००
जिनेश्वराणां द्रव्योपकारः ।	२४२-२४८	३०१-३०२
जिनेश्वराणां भावोपकारः ।	२४९-२५६	३०२-३०५
भगवद्वाण्याः पञ्चत्रिंशद् गुणाः ।	२५७	३०५
जिनेश्वराणां भावोपकारः ।	२५८-२५९	३०५
परोपकारस्य महिमा ।	२६०-२६३	३०६-३०७
अचेतनानां उपकारः ।	२६४-२६८	३०७-३०८
परोपकारविषये पुष्पचूल-पुष्पचूलाकथानकम् ।	२६९	३०९-३१९
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीय-मूलद्वारे सप्तमं उचिताचरणप्रतिद्वारम् ।	**२७०**	**३२०**
उचिताचरणस्य माहात्म्यम् ।	२७१	३२०
नवधा औचितस्य आधेयम् ।	२७२	३२०
पितृविषयम् औचित्यम् ।	२७३-२७६	३२१-३२३
जननीगतविशेषकृत्यम् ।	२७७	३२३
सहोदरविषयम् औचित्यम् ।	२७८-२८२	३२४-३२६
प्रणयिनीविषयम् औचित्यम् ।	२८३-२८८	३२६-३२८
पुत्रविषयम् औचित्यम् ।	२८९-२९३	३२८-३३०
स्वजनविषयम् औचित्यम् ।	२९४-२९७	३३०-३३२
धर्म्माचार्यविषयम् औचित्यम् ।	२९८-३०४	३३२-३३५
नागरविषयम् औचित्यम् ।	३०५-३०७	३३५-३३७
परतीर्थिकविषयम् औचित्यम् ।	३११-३१५	३३८-३३९
उचिताचरणस्य फलम् ।	३१७	३४०
उत्तमनराणां उचिताचरणप्रवृत्तिः ।	३१८-३१९	३४०-३४१
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीय-मूलद्वारे अष्टमं देशादिविरुद्ध-परिहारप्रतिद्वारम् ।	**३२०**	**३४१**
पञ्चदेशादिविरुद्धानि नामानि ।	३२१	३४२
देशविरुद्धं त्याज्यम् ।	३२२-३२४	३४२
कालविरुद्धं त्याज्यम् ।	३२५-३२७	३४३
राज्यविरुद्धं त्याज्यम् ।	३२९-३३८	३४४-३४७
लोकविरुद्धं त्याज्यम् ।	३३९-३५०	३४७-३५०
धर्म्मविरुद्धं त्याज्यम् ।	३५०-३५१	३५१-३५४
देशादिविरुद्धपरिहारस्य उपसंहारः ।	३६०	३५४
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीय-मूलद्वारे नवमं आत्मोत्कर्ष-परिहारप्रतिद्वारम् ।	**३६१-३६२**	**३५५**
गुणशून्यस्य गर्जितं मुधा ।	३६३	३५६
आत्मोत्कर्षस्य जघन्यत्वम् ।	३६४	३५६
आत्मोत्कर्षे दोषश्रेणी ।	३६५-३७०	३५६-३५८

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयनिरूपणम्	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
आत्मोत्कर्षः न विधेयः ।	३७१-३७६	३५८-३६०
स्वश्लाघाकारी परनिन्दक एव ।	३७८-३७९	३६०
आत्मोत्कर्षः परित्याज्य एव ।	३८०	३६१
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीय-मूलद्वारे दशमं कृतघ्नत्व-परिहारप्रतिद्वारम् ।	**३८१-३८२**	**३६१-३६२**
कृतघ्ना जघन्यास्तथा कृतज्ञा उत्तमाः ।	३८३-३८५	३६२
कृतघ्नो न भवेयम् ।	३८६	३६३
कृतघ्नशब्दार्थम् ।	३८७	३६३
कृतज्ञत्वं दुर्निर्वाह्यम् ।	३८८	३६४
कृतज्ञकृतघ्नयोः महदन्तरम् ।	३८९-३९२	३६४-३६५
कृतज्ञताविषयोपरि शबरनरनाथकथानकम् ।	३९२	३६५-३७०
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीय-मूलद्वारे एकादशमं अभिनिवेशनिरसनद्वारम् ।	**३९३**	**३७०**
अभिनिवेशवैशसम् ।	३९४-४०३	३७१-३७३
ओघेन द्रव्यादिकस्य स्वरूपम् ।	४०४-४०५	३७३
ओघतो ज्ञाननयादीनां स्वरूपम् ।	४०५	३७४
ओघत उत्सर्गादीनां स्वरूपम् ।	४०५	३७५
अभिनिवेशस्य माहात्म्यम् ।	४०६-४०७	३७६-३७७
सप्त निन्हवाः ।	४०८	३७७-३७८
उत्तमगुणानां स्तुतिः ।	४०८	३७९
देशविरत्याख्यं तृतीयं मूलद्वारम् ।	**३८०**	
उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्य-द्वितीयद्वारस्य उपसंहारः		

विषयनिरूपणम्	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
विरतिद्वारस्य च प्रारम्भः ।	४०९	३८०
विरतिशब्दार्थम् ।	४१०	३८१
देशविरतेः स्वरूपम् भेदसङ्ख्या च	४११-४१२	३८१
अणुव्रतादीनां नामानि ।	४१३	३८२
प्राणातिपातस्वरूपम् ।	४१४	३८२
प्रथमाणुव्रतातिचाराः ।	४१५	३८३
द्वितीयाणुव्रतस्वरूपम् ।	४१६	३८४
द्वितीयाणुव्रतातिचाराः ।	४१७	३८५-३८६
तृतीयाणुव्रतस्वरूपम् ।	४१८	३८७
तृतीयाणुव्रतातिचाराः ।	४१९	३८७-३८८
चतुर्थाणुव्रतस्वरूपम् ।	४२०-४२१	३८९
चतुर्थाणुव्रतातिचाराः ।	४२२	३९०
पञ्चमाणुव्रतस्वरूपम् ।	४२३	३९१
पञ्चमाणुव्रतातिचाराः ।	४२४	३९२
प्रथमगुणव्रतस्वरूपम् ।	४२५	३९३
प्रथमगुणव्रतातिचाराः ।	४२६	३९४
द्वितीयगुणव्रतस्वरूपम् ।	४२७-४२८	३९५-३९८
द्वितीयगुणव्रतातिचाराः ।	४२९	३९९
अङ्गारकर्मादीनि वर्जनीयानि ।	४३०	४००
पञ्चदशकर्मादाननामानि ।	४३१-४३२	४०१
तृतीयगुणव्रतस्वरूपम् ।	४३३	४०२
तृतीयगुणव्रतातिचाराः ।	४३४	४०२
प्रथमशिक्षाव्रतस्वरूपम् ।	४३५	४०३
प्रथमशिक्षाव्रतातिचाराः ।	४३६	४०४-४०५
द्वितीयशिक्षाव्रतस्वरूपम् ।	४३७	४०६
द्वितीयशिक्षाव्रतातिचाराः ।	४३८	४०६
तृतीयशिक्षाव्रतस्वरूपम् ।	४३९	४०७-४०८
तृतीयशिक्षाव्रतातिचाराः ।	४४१	४०८-४०९

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयनिरूपणम्	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
चतुर्थशिक्षाव्रतस्वरूपम् ।	४४२	४१०
चतुर्थशिक्षाव्रतातिचाराः ।	४४३	४११
द्वादशव्रतस्वरूपस्य निगमनम् ।	४४४	४१२
व्रतस्य सुदृढपरिपालने चेटकनरेन्द्रकथानकम् ।	४४५	४१३-४२०
देशविरतेः फलम् ।	४४६-४५०	४२०-४२२
गृहिणोः विशेषकृत्यानि ।	४४७-४५०	४२१-४२२
सर्वविरत्याख्यं चतुर्थं मूलद्वारम् ।	**४५१**	**४२३**
सर्वविरतेः स्वरूपम् ।	४५१	४२३
यतिधर्मस्य समुदायार्थम् ।	४५२	४२३
प्रथमं महाव्रतम् ।	४५३	४२४
द्वितीयं महाव्रतम् ।	४५४	४२४
तृतीयं महाव्रतम् ।	४५५	४२५
चतुर्थं महाव्रतम् ।	४५६	४२५-४२७
पञ्चमं महाव्रतम् ।	४५७	४२८
षष्ठं रात्रिभोजनव्रतम् ।	४५८	४२९
महाव्रतानां उपस्तुतिः ।	४५९-४६३	४२९-४३०
रोरकथानकम् ।	४६४	४३०-४३६
अष्टप्रवचन मातरः ।	४६५-४६६	४३७
ईर्यासमितेः स्वरूपम् ।	४६७-४७०	४३७-४३९
भाषासमितेः स्वरूपम् ।	४७१-४७६	४३९-४४२
एषणासमितेः स्वरूपम् ।	४७७-४८१	४४२-४४७

विषयनिरूपणम्	गाथाङ्कः	पत्राङ्कः
आदानसमितेः स्वरूपम् ।	४८२	४४७
उत्सर्गसमितेः स्वरूपम् ।	४८३	४४८
मनोगुप्तेः स्वरूपम् ।	४८४	४४८-४५२
वाग्गुप्तेः स्वरूपम् ।	४८५	४५२-४५३
कायगुप्तेः स्वरूपम् ।	४८६	४५३-४५४
समितिगुप्तीनाम् उपसंहारः ।	४८७	४५४
प्रमादवैशसम् ।	४८८-४८९	४५५
कषायप्रसरं निरुन्ध्यात् ।	४९०-४९१	४५५
कषायस्य स्वरूपम् ।	४९२	४५६
कषायाणां दुर्विपाकाः ।	४९३	४५६
क्रोधकषायस्य स्वरूपम् ।	४९४-४९८	४५७-४५९
मानकषायस्य स्वरूपम् ।	४९९-५०३	४५९-४६१
मायाकषायस्य स्वरूपम् ।	५०४-५०८	४६१-४६२
लोभकषायस्य स्वरूपम् ।	५०९-५१४	४६२-४६४
कषायकषणे प्रयत्नं कुरुत ।	५१५-५१९	४६५-४६६
हितोपदेशप्रकरणार्थरहस्य-निस्यन्दभूतमुपदेशः ।	५२०-५२१	४६६-४६७
प्रकरणस्य अभिधा ।	५२२-५२३	४६७
प्रकरणकारेण स्वापराधस्य क्षमायाचना ।	५२४	४६८
फलवर्णनम् ।	५२५	४६८
गाथासङ्ख्या ।	५२६	४६८
ग्रन्थकारस्य प्रशस्तिः ।		४६९-४७०

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। ॐ ह्रीँ अर्हं नमः ।।

।। धरणेन्द्र-पद्मावतीपरिपूजित-सर्ववाञ्छित-मोक्षफलप्रदायक-श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।।

।। णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महइमहावीरवद्धमाणसामिस्स ।।

।। णमोऽत्थु णं सिरिगोयमसामिपमुहगणहरभदंताणं ।।

।। णमोऽत्थु णं सुयथेर-चरणथेरभदंताणं ।।

।। णमोऽत्थु णं सासणपभावगाणं सूरिरामचंदाणं ।।

पूज्यपादश्रीमत्परमानन्दसूरिविरचित-हितोपदेशामृतविवरणसमन्वितः
पूज्यपादश्रीमत्प्रभानन्दसूरिविरचितः

।। हितोपदेशः ।।

श्रियेऽस्तु वः **श्रीवृषभध्वजस्य,** धर्म्मानुयोगाम्बुनिधिर्यदुत्थम् ।
हितोपदेशामृतमाततान, भव्याङ्गभाजामजरामरत्वम् ।।१।।

प्रेङ्खत्प्रभापल्लवितेन मौलौ, फणीन्द्रफुल्लत्फणपञ्चकेन ।
ज्ञानानि पञ्चापि दिशन्निवोच्चैः, **श्रीसप्तमस्तीर्थपतिः** पुनातु ।।२।।

पार्श्वः स भूत्यै शितिकायकान्तिकरम्बिता यन्नखरश्मिमाला ।
नमस्यतां मूर्द्धनि माङ्गलिक्यदूर्वाक्षतश्रेणिनिभा विभाति ।।३।।

श्रीवर्द्धमानस्य दिशन्तु वाचः, सुधामुधाधानबुधाः प्रबोधम् ।
निपीय याः श्रोत्रसुखास्त्रिलोकी, त्रिधा विपत्तापमपाकरोति ।।४।।

नन्दन्तु चाऽन्येऽपि जिनेन्द्रचन्द्राश्चारित्रचन्द्रातपपावितांशाः ।
दुर्वासनान्धातमसं विभिद्य, सद्यः सतां सिद्धिपथं दिशन्तः ।।५।।

पीयूषकुल्या कवितालतासु, वक्तृत्वपाथोधिसुधांशुमूर्त्तिः ।
सर्वार्थसन्दर्शनभानुदीप्तिर्**वाग्देवता** यच्छतु वाञ्छितं वः ।।६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपैति मन्दोऽपि हि यत्प्रभावात् सद्यः कवित्वं बुधतां गुरुत्वम् ।
करोमि निष्कारणवत्सलेभ्यस्तेभ्यो गुरुभ्यः प्रयतः प्रणामम् ।।७।।

इह हि शिष्टाः क्वचिदभीष्टे वस्तुनि प्रवृत्तिमभिलषन्तः पूज्यपूजोपचारमङ्गलपुरस्सरमेव प्रवर्त्तन्ते, पूज्याश्च परमार्थतः सकलप्रणयिजनमनःसङ्कल्पकल्पतरवः श्रीमन्तो देव-गुरव एव । अमीषां पूजोपचारमङ्गलं च द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम् । तत्र द्रव्यपूजोपचारमङ्गलस्य यतीनामनधिकृतत्वेन उत्तरस्माच्चावमपलि[पालि?]त्वेनायमपि प्रकरणकारः शिष्टसमयपरिपालनार्थं प्रारम्भ एव प्रकरणस्य नमस्काररूपं पूज्यपूजोपचारभावमङ्गलमाह -

नमिरसुरासुरसिरल्हसिरसरसमंदारकुसुमरेणूहिं ।
निम्मज्जियपयनहदप्पणे जिणे पणमिमो सिरसा ।।१।।

समग्रान्तरङ्गरिपुवर्गविजेतॄन् **जिनान् शिरसा प्रणामामः** । न चोत्तमाङ्गनमनादपरोऽपि कायिकविनयप्रतिपत्तेः कोऽपि प्रकारः । वाचनिकविनयस्त्वत्र प्रतिपदोक्त एव, न च वाक्कायौ मानसिकाद्भुतभक्तिव्यक्तिमन्तरेण स्तुतिप्रणामादिषु प्रवर्त्तेते इति त्रिकरणशुद्धिरुपदर्शिता । किंविशिष्टान् जिनान् ? **निर्मार्जितपदनखदर्प्पणान्** तत्र पदयोः नखाः पदनखास्त एव सद्वृत्तकलितत्वेन नैर्मल्यगुणयोगेन च दर्प्पणा इव दर्पणाः । **नितराम्** अतिशयेन मार्जिताः पदनखा एव दर्प्पणा येषां ते तथा तान् । कैः? इत्याह - **'नमिरसुरासुरसिरल्हसिरसरसमंदारकुसुमरेणूहिं'** ति । वन्दारुदेवदानवशीर्षविगलदम्लानत्रिदशतरुप्रसूनपरागपूगैः । तत्र सुराः-वैमानिकाः, असुराश्च-भुवनपतयः, उपलक्षणं चैतच्चतुर्विधस्यापि देवनिकायस्य तदधिपतीनां च । तेषां **शिरांसि** मस्तकाः, तेभ्यः । **'ल्हसिर'** त्ति **[स्रं]समानानि; सरसानि**-सपरागाणि, नीरसानां हि कुतः किल वक्ष्यमाणकिञ्जल्करेणुसम्भवः ? अतः सरसानि यानि मन्दारकुसुमानि सुरद्रुमसुमनस्तेषां रेणवः मधुधूलयस्तैर्निर्मार्जितपदनखदर्प्पणान्, समुचितं च रेणुभिर्दर्प्पणनिर्मार्जनम्, स्थाने चात्र प्रथममङ्गलरूपायां प्रथमगाथायामष्टमङ्गलाग्रेसरस्य दर्प्पणस्य शब्दद्वारेणोपादानम्, अनेन च भगवतामर्हतां सर्वाद्भुतत्रिभुवनाधिपत्योद्भावनम् । एवंविधाश्चामी शास्त्रप्रारम्भादौ भक्तिपुरस्सरं नमस्क्रियमाणाः सम्पद्यन्त एव सकलाभीष्टार्थसार्थसिद्धिप्रदा इति ।।१।।

पुनर्जिनस्तुतिरूपामेव द्वितीयां गाथामाह -

नंदंतु ते जिणिंदा जे इक्कनिग्गोयजंतुमित्तं पि ।
मुक्खमपाउणिय अणंतजंतुसिवदायगा जाया ।।२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते जिनेन्द्रा नन्दन्तु परमसमृद्धिभिरेधन्ताम् । इदं चाशंसावचनमाराधकजनापेक्षम्, यतस्ते हि भगवन्तः पुरैव ज्ञानादिसर्वोत्तमसमृद्धिबन्धुराः, अतः किमपरं तेषामाशंसनम् ? तस्मादाराधकेभ्य एव समृद्धिहेतवः सम्पद्यन्तामिति । ये किम् ? **ये 'अणंतजंतुसिवदायगा जाया'** भूरिभव्यजनानिःश्रेयसविश्राणनप्रवणाः सञ्जज्ञिरे । किं कृत्वा? **एकनिगोदजन्तुमात्रमपि मोक्षमप्राप्य ।** अपिः विरोधे । ये किलैकजन्तुमात्रमपि निर्वृतिं न नयन्ति ते कथमनन्तजन्तुशिवदायकाः? अथ च तथास्थितेरेव तथा कथञ्चित्ते निगोदजीवाः परमसूक्ष्माः केवलिदृश्या अनन्तानन्ताः प्रचयरूपिणः सन्ति, यथा तन्मध्यादनन्तेषु जीवेषु व्यावहारिकराशिसङ्क्रमेण निर्वाणपदमापद्यमानेष्वपि तद्राशिर्निगोदलक्षणस्तद्रूप एव । तथा चैतद्विषयमागमे त्रिकालगोचरं प्रश्नोत्तरसूत्रम् -

[1]**"केवइया णं भंते ! अणंताणंते काले भव्वजंतुणो मुक्खपयं पत्ता**
पाउणंति पाउणिस्संति वा ? गोयमा ! निगोयस्स अणंतओ भागु" [ ] त्ति ।

भगवद्भिश्च जिनैर्मिथ्यापथप्रमथनेन प्रवर्त्तितधर्म्मतीर्थैर्यद्यप्यनन्ता भव्यजन्तवः शिवपदं प्रापिताः प्राप्यन्ते प्रापयिष्यन्ते च तथापि निगोदजन्तुराशिस्तदवस्थ एव ।।२।।

साम्प्रतं वर्त्तमानतीर्थाधिपतेः श्रीवर्द्धमानस्वामिनः स्तुतिं प्रस्तौति –

जयइ जियकम्मसत्थो वरकेवलनाणपयडियपयत्थो ।
चंदु व्व [1]देसणामयनिव्वावियजणो जिणो वीरो ।।३।।

सकलेतरकुतीर्थिसार्थप्रभावापहस्तनेन **श्रीवीरजिनो जयति** । विपुलनभस्तलमध्यमध्यासितवति हि भगवति गभस्तिमालिनि का नाम द्युतिः क्षुद्रखद्योतपोतानाम् ?

विदारयति यत् कर्म्म तपसा च विराजते ।
तपोवीर्येण युक्तश्च तस्माद् वीर इति स्मृतः ।। [ ]

इति निरुक्ताद् वीरः । किंविशिष्टः ? इत्याह – **'जियकम्मसत्थो'** जितः - पराजितः समूलकाषङ्कषितः, कर्म्मणां-ज्ञानावरणादीनां, सार्थः - समूहो येन स तथा । एतेनापायापगमातिशयस्त्रिजगद्गुरोरभिहितः । अथैवंविधातिदुर्ज्जयकर्मसार्थप्रमथनेन का नामार्थसिद्धिर्भगवतः? तदाह -

---

गाथा-२ 1. **तुलना -** जइयाइ होइ पुच्छा जिणाणमग्गम्मि उत्तरं तइया ।
इक्कस्स निगोयस्स अणंतभागो य सिद्धिगओ ।। - नव. प्र. प्रक्षिप्त गा. ९८/१२६ ।।

गाथा-३ 1. देसणामयनिव्वावियजणो महावीरो ।। सं. प्रतौ पाठा. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वरकेवलनाणपयडियपयत्थो' वरं-बहुविषयत्वेन निरावरणत्वेन अप्रतिपातित्वेन च मत्यादिभ्यः प्रकृष्टतमं यत् केवलज्ञानं तेन प्रकटिताः-यथावदवबुध्य परेभ्यः प्रकाशिताः, पदार्थाः-जीवाजीवादयो, येन स तथा । विना हि कर्म्मनिर्मूलनं न खलु विमलकेवललाभस्तदन्तरेण च कथं यथावस्थितपदार्थप्रथनम्? अनेन च ज्ञानातिशयः सूचितः । पुनः किंरूपः? **'देसणामयनिव्वावियजणो'** देशना समुत्पन्नविमलकेवलस्यास्य सुरासुरनरनिकरविराजितायां समवसरणसंसदि सर्वभाषापरिणामिन्या योजननिर्हारिण्या पञ्चत्रिंशद्गुणोपेतया गिरा भव्यलोकोपकृतये धर्म्मकथनम् । सा चोग्रमहामोहोरगगरलोद्गारसम्मूर्छितभव्यजनसञ्जीवनहेतुत्वेन अमृतमिवामृतम्, तेन निर्वापितः-शीतलीकृतो, दुरन्तचतुरन्तसंसृतिसंसरणसमुत्थदुःखदौःस्थ्यसन्तापादुन्मोचितः स्वयोग्यतानुमानेन जनो येन स तथा । क इव ? **चन्द्र इव** । यथा हि चन्द्रस्तथाविधातिरूक्षभीष्मग्रीष्मोष्मसन्तापितं जनं स्वज्योत्स्नामृतेन निर्वापयति, एवं भगवानपीति । इयता वचनातिशयः प्रभोरभिहितः, पूजातिशयश्च देशनावसरे समवसरणप्रातिहार्यलक्षणः सामर्थ्यगम्य एवेति ।।३।।

साम्प्रतं यत्प्रभावास्ती(त्ती)र्थनाथानामपि सर्वाद्भुतास्तीर्थकरादिसम्पदः सम्पनीपद्यन्ते, तस्य सुदूरोत्सारिताशेषविघ्नसङ्घस्य भगवतः सङ्घस्य जयशब्दोदीरणेन प्रकरणकृदात्मानमनुगृह्णन्नाह -

चउगइगत्तावडियं समसमयं सव्वभव्वजणनिवहं ।
उद्धरियं(उं) पिव पत्तो चउव्विहत्तं जयइ संघो ।।४।।

श्रमण-श्रमणी-श्रावक-श्राविकारूपः **सङ्घो जयति,** सर्वविन्मूलत्वेनेतरकुतीर्थिसङ्घेभ्यः सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते । किंविशिष्टः ? **'चउव्विहत्तं पत्तो'** चतस्रो विधाः-चतुर्विधसङ्घस्वरूपप्रकारा यस्य स तथा, तस्य भावश्चतुर्विधत्वम् । तच्च स्वभावसिद्धमप्युत्प्रेक्ष्यते **'सव्वभव्वजणनिवहं उद्धरियं(उं) पिव'** सिद्धिगमनयोग्यजन्तुजातमुद्धर्तुमिव ननु महामहिम्नः सङ्घस्यैकेनैव रूपेण भव्योद्धृतिक्षमत्वमस्त्येव, किं चातुर्विध्येन ? इत्याह - **'चउगइगत्तावडियं'** चतस्रः सुरनरतिर्यग्नारकरूपा गतयस्ता एव परमपदापेक्षया नितरां नीचैस्त्वाद् गर्त्ता इव गर्त्तास्तासु स्वस्वकर्म्मपरिणत्या निपतितम् । नन्वेवमपि क्रमेणोद्धरणे निर्निमित्तं चातूरूप्यमित्याह- **'समसमयं'** समकालम् । अतः कथं चातूरूप्यमन्तरेण पृथग् पृथग् स्थानस्थितस्य तावतो भव्यनिवहस्य युगपदुद्धृतिसंभवः । समुद्दिश्यते च भगवता सङ्घेन भवगर्त्तातः सम्यगेव

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भव्यनिवहः । न खलु साधुसाध्वीश्रावकश्राविकारूपमुद्राचतुष्टय[1]स्वीकारमन्तरेणापरोऽपि संसारोत्तारप्रकार इति ।।४।।

एवं देवेभ्यो भावपूजामङ्गलोपचारमभिधाय गुरुभ्योऽपि तद्वणनपूर्वं प्रस्तुतप्रकरणस्य सर्वविन्मूलत्वं चाभिधित्सुरिदं गाथाद्वयमाह -

पणमित्तु पायपउमे गोयममाईण गणहरिंदाणं ।
आसन्नुवयारीणं नियगुरूणं विसेसेणं ।।५।।

जिणसमयसाय(ग)राओ समुद्धरेऊण भव्वसत्ताणं ।
अजरामरत्तहेउं हिओवएसामयं देमि ।।६।।

'अहं **हितोपदेशामृतं ददामि**' इत्युत्तरगाथायां सम्बन्धः । किं कृत्वा ? **गौतमादीनां गणधरेन्द्राणां पादपद्मानि प्रणम्य** । तत्र गणधराः सामान्यसूरयस्तेषु प्राग्भवार्जितेन तीर्थकृन्नामकर्म्मणः किञ्चिदूनेन कर्म्मणा समुत्पन्नास्तीर्थकृत्कल्पपरमैश्वर्येणेन्द्रा इवेन्द्राः । गौतमः चरमतीर्थपतेरचरमः शिष्यः श्रीमानिन्द्रभूतिः स आदिर्येषामग्निभूतिप्रभृतीनां प्रभासपर्यन्तानाम् । तद्विनेयानां च चतुर्दशदशादिपूर्व्वधारिणां श्रीवज्रान्तानां तत्सन्तानिनां च सूक्ष्मसमयार्थप्रथनपटीयसां **श्रीकालिकाचार्यार्यश्यामजिनभद्रसिद्धसेनोमास्वातिप्रभृतीनां,** तदनन्तराणां च **श्रीहरिभद्रसूरिसिद्धव्याख्यातृनवाङ्गवृत्तिकारश्रीमदभयदेवसूरिप्रभृतीनां** च पादपद्मानि प्रणम्य, तथा **'नियय गुरूणं विसेसेणं'** निजगुरूणां दीक्षाशिक्षादिप्रदायिनां विशेषेण, को विशेषः ? इत्याह **'आसन्नोपकारिणाम्'** पूर्वोदिता हि गणभृतः प्रकरणकारस्य परम्परोपकारिणो निजगुरवस्त्व ज्ञानान्धातमसनिरसनप्रदर्शितप्रबोधाः साक्षादुपकारिण इति विशेषभणनमिति प्रथमगाथार्थः ।।५।।

अनन्तरमुत्तरकरणीयतामाह-**हितोपदेशामृतं ददामि** । तत्रैकान्तिकात्यन्तिकसुखनिबन्धनं हितम्, तच्च परमपदमेव । तस्मै उपदेशः, स एवामृतम् । केभ्यः ? **भव्यसत्त्वेभ्यः** । किन्निमित्तम् ? **'अजरामरत्तहेउं' जरा**-वयोहानिः, **मरणं**-भवान्तरसङ्क्रान्तिः, न विद्येते जरामरणे यत्र तदजरामरत्वं मुक्तत्वम्, तद्धेतवे, किं कृत्वा ? **'समुद्धरेऊण'** समुद्धृत्य पृथक् कृत्वा, कस्मात्? **जिनसमयः** सिद्धान्तः स एव सूत्रार्थगम्भीरनीरपूरपूरितत्वेन, स्फुरद्दृष्टान्तहेतुनयविचित्ररत्नराजिविराजितत्वेन, मन्दमेधोदुर्गमगमभङ्गतरङ्गसङ्गतत्वेन च सागर इव **सागरः, तस्मात्** ।

गाथा-४ 1. स्वामीकार - पा. प्रतौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुचितं च सागरादमृतस्य समुद्धरणम्, अमृतोपभोगाच्चाजरामरत्वम् । भवत्येव च जिनसमय-समुद्धृतहितोपदेशेभ्यो भव्यानामजरामरपदावाप्तिः । जिनसमयादुद्धृत्येत्येतावता जिनागममूलता प्रकरणस्याभिदधे, तदभिधानाच्चावितथप्ररूपणमुपपन्नमेवेति ।।६।।

साम्प्रतं हितोपदेशानेव प्रस्तावयन्नाह -

[1]**पुणरुत्तजम्ममरणे अणाइनिहणे भवम्मि जीवाणं ।**
दुसमदुसमाइ जिणदंसणं व मणुयत्तणं दुलहं ।।७।।

अस्मिन् **भवे जीवानां मनुजत्वं दुर्ल्लभम् ।** किंभूते ? **पुनरुक्तजन्ममरणे ।** जन्म च मरणं च जन्ममरणे, पुनरुक्तेपुनः पुनर्भाविनी जन्ममरणे यत्र स तथा, तस्मिन् । पुनः किंविशिष्टे ? **अनादिनिधने ।** तत्रादिः-आरम्भदिनम्, निधनं-विनाशवासरः, न विद्येते आदिनिधने यस्य स तथा । एतेन जगतामैकान्तिकोत्पत्तिप्रलयौ गलहस्तितौ । कस्यां किमिव ? **'दुसमदुसमाइ जिणदंसणं व'** दुःषमदुःषमा-अवसर्प्पिणीप्रान्तषष्ठारकस्तस्यां यथा जिनानाम्-अर्हतां, दर्शनं-साक्षादवलोकनम्, जिनदर्शनं जिनप्रवचनं वा, तद् दुर्ल्लभम् । षष्ठारके हि तयोर्द्वयोरप्यत्यन्तम-भावादिति ।।७।।

एवं चातिदुर्ल्लभे लब्धे मानुष्यके यद् विधातुमुचितं तदाह -

पत्ते य तम्मि खित्ताइसयलसामग्गिसंगए कहवि ।
अत्तहियम्मि पयत्तो सइ जुत्तो बुद्धिमंताणं ।।८।।

तस्मिन् मानुष्यके **लब्धे बुद्धिमतामात्महिते प्रयत्नः सदा** कर्तुं **युक्त** इति योगः । तस्मिन्निति श्रुतोद्दिष्टचुल्लकादिदशदृष्टान्तदुर्ल्लभे । **'कहवि'** कथमपि युगसमिलायोगन्यायेन । किंविशिष्टे ? **क्षेत्रादिसकलसामग्रीसङ्गते** । यदाहुः -

चुल्लग पासग धन्ने जूए रयणे य सुमिण चक्के य ।
चम्म जुगे परमाणू, दस दिट्ठंता मणुयलंभे ।।१।। **[उपदेशपद-गा. ५]**

पुव्वंते हुज्ज जुगं, अवरंते तस्स हुज्ज समिला उ ।
जुगछिड्डम्मि पवेसो, इय संसइओ मणुयलंभो ।।२।।

गाथा-७ 1. तुलना - एवं अणोरपारे संसारे सायरम्मि भीमम्मि । पत्तो अणंतखुत्तो जीवेहिं अपत्तधम्मेहिं ।। - जीव. प्र. गा. ४४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा चंडवायवीईपणुल्लिया अवि लभिज्ज जुगछिड्डं ।
न य माणुसाओ भट्ठो जीवो पडिमाणुसं लहइ ।।३।। [१ त: ३ उत्तरा० बृ० वृ० गा. १५९ निर्युक्तौ]

इय अइदुल्लहलंभं माणुस्सं पाविऊण जो जीवो ।
न कुणइ पारत्तहियं सो सोयइ संकमणकाले ।।४।।

काऊणमणेगाइं जम्मणमरणपरियट्टणसयाइं ।
दुक्खेण माणुसत्तं जइ लहइ जहिच्छियं जीवो ।।५।।

तं तह दुल्लहलंभं विज्जुलयाचंचलं मणुस्सत्तं ।
लद्धूण जो पमायइ सो काउरिसो न सप्पुरिसो ।।६।।

माणुस्सखित्तजाईकुलरूवारुग्गमाउयं बुद्धी ।
सम(व)णुग्गह सद्धा संजमो य लोयम्मि दुलहाइं ।।७।।

[1]आलस्स[1] मोह[2]ऽवन्ना[3] थंभा[4] कोहो[5] पमाय[6] किविणत्ता[7] ।
भय[8] सोगा[9] अन्नाणा[10] वक्खेव[11] कुऊहला[12] रमणा[13] ।।८।।

एएहिं कारणेहिं लद्धूण सुदुल्लहं पि माणुस्सं ।
न लहइ सुइं हियकरिं, संसारुत्तारणिं जीवु ।।९।। त्ति ।।८।। [४ त. ८ उत्तरा० बृ० वृत्तिः नि० गा. १६०-१६१]

गाथा-८ 1. **व्याख्या** - '[1]**आलस्यात्**' अनुद्यमस्वरूपात्, न धर्माचार्यसकाशं गच्छति न शृणोति च इति सर्वत्र शेषः, '[2]**मोहात्**' गृहकर्तव्यताजनितवैचित्त्यात्मकात् हेयोपादेयविवेकाभावात्मकाद्वा, '[3]**अवज्ञातो**' यथा किममी मुण्ड-श्रमणा जानन्ति ? इति, '**अवर्ण्याद्वा**' साध्वश्लाघात्मकात् यथाऽमी मलदिग्धदेहाः सकलसंस्काररहिताः प्राकृतप्रायव-चस इत्यादिरूपात् '[4]**स्तम्भात्**' जात्यादिसमुत्थादहङ्कारात् कथमहं प्रकृष्टतरजातिरेनमुपसर्प्यामीत्यादिरूपात्, '[5]**क्रोधाद्**' अप्रीतिरूपात् आचार्यादिविषयात्, महामोहोपहतो हि कश्चिदाचार्यादिभ्योऽपि कुप्यति, '[6]**प्रमादात्**' निद्रादिरूपात्, कश्चिद्धि निद्रादिप्रमत्त एवाऽऽस्ते, '[7]**कृपणत्वात्**' द्रव्यव्ययासहिष्णुत्वलक्षणात्, यद्यहममीषामन्तिके गमिष्याम्य-वश्यंभावी द्रव्यव्यय इति वरं दूरत एषां परिहार इति, '[8]**भयात्**' कदाचिन्नरकादिवेदनाश्रवणोत्पन्नसाध्वसात्, निःसत्त्वो हि नरकादिभयमावेदयन्तीत्यमी इति भयान्न पुनः श्रोतुमिच्छति '[9]**शोकाद्**' इष्टवियोगोत्थदुःखात्, कश्चिद्धि प्रियप्रणयिनी-मरणादौ शोचन्नेवास्ते, '[10]**अज्ञानात्**' मिथ्याज्ञानात् - 'न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने' इत्यादिरूपात् '[11]**व्याक्षेपाद्**' इदमिदानीं कृत्यमिदं च इदानीमिति बहुकृत्यव्याकुलतात्मकात् '[12]**कुतूहलाद्**' इन्द्रजालाद्यवलोकन-गोचरात्, '[13]**रमणात्**' कुर्कुटादिक्रीडात्मकात्, क्वचित्सुपोऽश्रवणं प्राग्वत्, प्रक्रान्तार्थनिगमनायाह - '**एभिः**' अनन्त-रोक्तस्वरूपैः '**कारणैः**' आलस्यादिहेतुभिः 'लद्धूण सुदुल्लहं पि' त्ति अपेर्भिन्नक्रमत्वाल्लब्ध्वाऽपि '**सुदुर्लभम्**' अतिशय दुरापं '**मानुष्यं**' मनुजत्वं '**न लभते**' न प्राप्नोति '**श्रुतिं**' धर्माकर्णनात्मिकां, कीदृशीम् ? '**हितकरीम्**' इह परत्र च तथ्यपथ्यविधायिनीम्, अत एव संसारादुत्तारयतिमुक्तिप्रापकत्वेन निस्तारयति इति **संसारोत्तारणी तां, 'जीवः'** जन्तुः इति गाथार्थः ।।१६०-१६१।। उत्तरा० शान्त्याचार्यकृत बृ० वृत्तौ ।
- उत्तरा० नेमिचन्द्रीयवृत्तौ-३/१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्महितान्येवाह -

सुविसुद्धं सम्मत्तं उत्तमगुणसंगहो विरइजुयलं ।
पायेण हियत्थीणं परमत्थहियाणि एयाणि ।।९।। मूलद्वारगाथा ।।

किल धन-यौवन-विषयोपभोग-राजप्रसाद-प्रभुत्वादयोऽपि मुखमात्ररमणीयत्वेन प्रतनुधियं हितमतिमुत्पादयन्ति, किन्त्वनैकान्तिकत्वेन परिणामदारुणत्वेन च न परमार्थहितानि तानि । कानि पुनस्तत्त्वतो हितानि ? इत्यत आह - **'सुविशुद्धं सम्यक्त्वं'** वक्ष्यमाणस्वरूपम् । तथा **'उत्तम-गुणसङ्ग्रहः'** सोऽपि वक्ष्यमाण एव । विरत्योर्युगलं **'विरतियुगलं'** तत्राद्या देशविरतिर्द्वितीया सर्व्वविरतिरिति । **प्रायेण** बाहुल्येन **एतानि हितानि** । यतः सर्वमपि यत् किञ्चिज्जिनशासने उपादेयत्वेनोक्तं तत् परमार्थहितमेव सम्यक्त्वादीनि तु प्रकरणेऽस्मिन् व्याख्येयत्वेनादृतान्यतः सविशेषं तदुपादानम् । एतानि चास्मिन् प्रकरणपुरे गोपुराणीव चत्वार्यपि मूलद्वाराणीति ।।९।।

अधुना मूलद्वारोल्लिखितस्य सम्यक्त्वस्य स्वीकाराय भव्यान् प्रेरयितुं प्रथमं तद्विपक्षभूतस्य मिथ्यात्वस्य दुरन्ततामुपदर्शयन्नाह -

मिच्छत्तपडलसंछन्नदंसणा वत्थुतत्तमनियंता ।
अमुणंता हियमहियं निवडंति भवावडे जीवा ।।१०।।

जीवा भवावटे निपतन्तीति सण्टङ्कः । तत्र भव एवागाधतलत्वेन विविधापन्निबन्धनत्वेन चावट इवावटस्तस्मिन् । किंविशिष्टा जीवाः ? **मिथ्यात्वपटलसंछन्नदर्शनाः** । तत्र जीवाजीवादी-नामस्तित्वानुपलब्धिर्वितथोपलब्धिर्वा मिथ्यात्वम् । तदेवावारकत्वेन पटलमिव पटलम् । तेन संछन्नम्-आच्छादितं दर्शनं-सम्यग्दर्शनं येषां ते तथा । अत एव **'वत्थुतत्तमनियंता'** वस्तूनां-जीवाजीवादीनां तत्त्वं-यथावस्थितत्वम्, यथा जीवद्रव्यस्य जीवत्वं प्रमेयत्वम् अमूर्त्तत्वादि तत्त्वम्, अजीवद्रव्याणां धर्म्माऽधर्म्माऽऽकाशकालपुद्गलानां तत्त्वम्; [1]धर्मस्य गतिमत्त्वम्, [2]अधर्म्मस्य स्थितिमत्त्वम् उभयोरपि लोकप्रमाणत्वम्, [3]आकाशस्य अवकाशदातृत्वम् लोकालोकव्यापक-त्वम्, कालस्य अनस्तिकायत्वं पारिणामिकत्वम्, पुद्गलानामानन्त्यं मूर्त्तत्वं पारिणामिकत्वादिकं तत्त्वम्; पुण्यसंवरनिर्जरामोक्षाणामुपादेयत्वम्, पापाश्रवबन्धानां हेयत्वादिकं तत्त्वम् । 'अनियंता'

गाथा-१० 1. चलणसहावो धम्मो ।। 2. थिरसंठाणो अधम्मो य ।। - सम्य० प्र० गा. २३७ ।।
3. अवगाहो आगासो ।। - सम्य० प्र. गा. २३८ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपश्यन्तः । तथा **'अमुणंता हियमहियं'** तत्र हितं-मोक्षपथप्रस्थानम्, अहितं-भवावस्थानम्, हिताहितयोरप्यज्ञाने मिथ्यात्वपटलसंछन्नदर्शनत्वमेव हेतुः । एवंविधा जीवा भवावटे निपतन्ति । अथवोक्तिः-ये किल पटलेन नेत्ररोगविशेषेण, संछन्नदृष्टयस्ते वस्तूनां-घटपटादीनां तत्त्वं-स्वरूपं, न पश्यन्ति । हितम्-अहि-कण्टक-कूपादिभ्यो निवर्त्तनम्, अहितमेतेष्वेव प्रवर्त्तनम्, एवंविधं हिताहितमजानन्तो नियतमवटे निपतन्तीति ।।१०।।

एवं च सति यद् विधेयं तदाह -

ता मिच्छपडिच्छंदं हच्छं उच्छिंदिऊण मिच्छत्तं ।
पयडियजिणुत्तत्तं भो भव्वा ! भयह सम्मत्तं ।।११।।

यत एवं विपाकं मिथ्यात्वं **तस्माद् भो भव्याः** ! [1]**सम्यक्त्वं भजध्वम्** । तत्र सम्यक्त्वं वक्ष्यमाणस्वरूपम् । अभव्यानां सम्यक्त्वयोग्यताऽभावादेव 'भो' इति भव्यानां सम्बोधनम् । किं कृत्वा? **'मिच्छत्तं उच्छिंदिऊण'** मिथ्यात्वम् उत् प्राबल्येन छित्त्वा-मूलादुन्मूल्य । कथम् ? **'हच्छं'** त्वरितम् । किंविशिष्टं मिथ्यात्वम् ? निर्विचारकत्वेन मालिन्योत्पादकत्वेन सुदुःसहदुःख-लक्षहेतुत्वेन च **म्लेच्छप्रतिच्छन्दम्** । एतदुन्मूलनेन सम्यक्त्वं सेवध्वम् । किंविशिष्टं ? **प्रकटित-जिनोक्ततत्त्वम्** प्रकटितानियथावत् प्रकाशितानि, जिनोक्तानि-अर्हत्प्रणीतानि, तत्त्वानि-जीवाजीवादीनि, येन तत्तथा । तद्भजनेऽप्ययमेव हेतुरिति ।।११।।

इदानीं जिनशासनसाररत्नकोशागारप्रतिमस्य सम्यक्त्वस्याधिकारिणः प्रदर्शयन्नाह -

दढधम्मरायरत्ता[2] कम्मेसु अनिंदिएसु य पसत्ता[3] ।
वसणेसु असंखुद्धा[4] कूतित्थिरिद्धीसु वि अमुद्धा[5] ।।१२।।
अक्खुद्दा[6] य अकिविणा[7] अदुरारोहा[8] अदीणवित्ती[9] य ।
[b]हियमियपियभासिल्ला[10] संतोसपरा[11] अमाइल्ला[12] ।।१३।।

गाथा-११ 1. जीवाइनवपयत्थे जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं । भावेण सद्दहंतो अयाणमाणे वि सम्मत्तं ।।
- नवतत्त्व गा. ५१ ।।

गाथा-१२-१३-१४ 1. 'हियमियपियभासिल्ला' इति विवरणकारसम्मतः पाठः अस्माभिरत्र स्वीकृतः मूले तु **'हियपियमिय'** इति पाठो दृश्यते ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मपडिकूलकुलगणजणवयनिवजणयसयणअक्खोभा[१२] ।
जणसम्मया[१३] य पुरिसा सम्मत्तऽहिगारिणो हुंति ।।१४।।

एवंविधाः पुरुषाः **सम्यक्त्वाधिकरणो(कारिणो) भवन्तीति** योगः । अत्र पुरुषप्रधानत्वात् पुरुषोत्तमप्रणीतत्वाच्च धर्म्मस्य पुरुषा इत्युक्तं यावता स्त्रीणामपि सम्यक्त्वेऽधिकारित्वात् । यदि वा पुरि शयनात् पुरुषा आत्मान एवोच्यन्ते, अतस्त एवाधिकारिणः, किं पुंस्त्रीगोचरविचारेण ? इति । किंविशिष्टास्ते ?

(१)**'दढधम्मरायरत्ता'** तत्र धर्म्मे [2]दुर्गतिप्रपतत्प्राणिगणधारणक्षमे रागः, अयमेव तत्त्वमिति प्रत्ययः । किंविशिष्टः? दृढः - नीलीमञ्जिष्ठाकृमिरागरागवदनपायी, न तु लाक्षाकुसुम्भरजनीपतङ्गरङ्गवत् क्षणभङ्गुरः, तेन रक्ताः-आमज्जमनुप्रविश्य तन्मयतामापादिताः । किमुक्तं भवति ? यथा हि किल द्विजन्मनः कस्यचिदाजन्मातिरौद्रदारिद्रमुद्राविद्राणान्तःकरणप्रक्षीणधृतेर्दुरन्तदुर्भिक्षभीषणेऽनेहसि करालकान्तारान्तरालपतितस्य वासरत्रयमनशितस्य समुदीर्णातितीक्ष्णबुभुक्षाक्षामकुक्षेर्विगलितप्राणितप्रत्याशस्य [3%]कुतोऽप्यतर्कितोपनते घृतपूरक्षैरेयीखण्डखाद्यादिविचित्रसरसभोजने यादृगनुरागो भवति, ततोऽप्यनन्तगुणो येषां धर्म्मरागस्ते तथा । पुनः किंविशिष्टाः ?

(२)**'कम्मेसु अनिंदिएसु य पसत्ता'** कर्मसु-वित्तोपार्जनोपायेषु, कीदृशेषु? अनिन्दितेषु-अवगर्हितेषु ? शिष्टजनसेवितेषु, प्रसक्ताः-कृतप्रवृत्तयः, न पुनर्मद्यमांसलोहलाक्षाविक्रयादिषु लोकलोकोत्तरविरुद्धेषु । मलिनैर्हि कर्म्मभिरमलमपि कुलं कलयति कलङ्कपङ्किलताम् । तथा-

(३)**'व्यसनेष्वसंक्षुब्धाः'** तत्र व्यसनानि धनबन्धुविध्वंसादीनि, तेषु प्रतिकूलकर्मप्रेरणोपनतेष्वपि न संक्षोभं गताः । विषादचिह्नोपदर्शन-दैवोपालम्भमनःशून्यता-नित्यकृत्यपरित्यागादिः संक्षोभस्तं न प्राप्ताः, प्रत्युत गभीरधीरप्रकृतित्वेन सविशेषदर्शितोन्नतयः । प्रकृतिरेव चेयमीदृशी सतां यदुत –

---

2. **तुलना** - दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद्धर्म उच्यते ।। - योगशास्त्र-२/११ ।।
दुर्गतिप्रसृतान् जन्तून् यस्माद्धारयते ततः, धत्ते चैतान् शुभे स्थाने तस्माद्धर्म्म इति स्मृतम् ।।
- योगशास्त्रवृत्तिः-२/११ ।।
दुर्गतिप्रपतदङ्गिगणधरणात् सुगतौ च धारणाद् धर्मः ।। - मूलशुद्धि प्र० वृत्तिः गा. २ ।।

3%. 'कुतो' इत्येतदन्तर्गत **'तो'** इत्येतदारब्धः त्रयोदशपृष्ठे तृतीयपङ्क्तिगत 'निर्विवेकाः' %इत्येतदन्तर्गत **'नि'** पर्यन्तः सन्दर्भः संवेगी-उपाश्रयग्रन्थभाण्डागारप्रतौ नोपलभ्यते ।। - सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

विपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महताम्,
प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।
असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यस्तनुधनः,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ।।१।। [ ]

(४)'**कुतीर्थिऋद्धिष्वप्यमुग्धाः**' कुतीर्थिनः साङ्ख्य-शाक्य-शैवादयस्तेषाम् ऋद्धयः-सम्पदः क्षितिपतिपूजादयस्तासु विपुलास्वपि दृष्टासु न मुग्धाः, 'अहो ! साधुरयमप्यमीषां धर्मो यदत्र नृपतिप्रभृतयोऽपि प्रवर्त्तन्ते' इति । पुनस्तानेव लक्षयति - कीदृक्षास्ते ? -

(५)'**अक्षुद्राः**' क्षुद्रप्रकृतिविरहिताः परपरिवादः परसम्पन्मत्सरित्वं परव्यसनोपनिपातसन्तोषश्चेति क्षुद्रत्वम्, अयं च न सतां धर्म्मः एतद्विपरीतवृत्तयो हि सन्तः, तथा च ब्रुवते -

यदि नाम न जायेत परक्लेशेन वेदना ।
परोत्सवसमुत्पत्तौ स्वान्तः सन्तप्यसे कुतः ? ।।१।। [ ]

पुनः किंरूपाः ? -

(६)'**अकृपणाः**' कदर्यो हि भृत्यभर्तव्यात्मवञ्चनेनापि धनमेव सञ्चिनोति, न धर्म्मम् । अत एव -

नेहलोके नान्यलोके न धर्म्मे नार्थकामयोः ।
नोपकारेऽपकारे वा कदर्य उपयुज्यते ।।१।। [ ]

एतद्विलक्षणप्रकृतिस्तूदारः दृष्टे हि दूरादपि दातरि प्रावृषेण्यपर्जन्य इव समुज्जीवति जनता, असकृत् प्रवर्त्तितदानवर्षः कदाचिदुपशान्तदानोऽपि महेभ इव नाभिभूयते नीचजनेन, दानाङ्कुशेन वशीकरोत्युदारः क्षणेन व्यालानिव क्षोणिपालान्, तमांसीव सवितरि न प्रभवन्ति दुर्ज्जनवचांसि दातरि । पुरैव प्रगुणितदानयानपात्रः कदाचित् पतितोऽपि दैवादाऽऽपगापतौ[4] निस्तारयत्यात्मानम् । देशकालान्तरितोऽपि दाता पुरः स्फुरन्निव प्रतिभात्यविनश्वरेण यशःशरीरेण । किं बहुना ?

सम्पदि विपदि विवादे धर्म्मे चार्थे परार्थसङ्कटने ।
देवगुरुकृत्यजाते स्फुरत्युदारः परं लोके ।।१।। [ ]

---

4. **आपगापतौ** - आपेन जलसमूहेन गच्छति (आप+गम्+ड) - श. २ म० पृ. ३०४ ।।
आ अपगच्छति आपमब्धिं गच्छतीति वा, अप् सम्बन्धिना वेगेन आपेन वेगेन गच्छतीति वा "नाम्नो गमः" ।।५।१।१३१।। इति डः - अ. चि. ना. स्वो. वृत्तिः । आपगानां पतिः, तस्मिन् ।।३।१।७६ सि. हे.।। नद्यर्थे ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत एवोक्तमकृपणा इति । तथा -

(७)'**अदुराराधाः**' दुःखेनाराध्यन्ते-अभिमुखीक्रियन्त इति दुराराधाः, न दुराराधा अदुराराधाः-सुखेनैवाभिमुखीकर्त्तुं शक्याः । दुराराधो हि तीक्ष्णप्रकृतित्वाद् विरक्तपरिच्छदः क्रमेण भवत्यसहायः । स्वभावसुकुमारश्च स्वाराधतया विपक्षपक्षीयैरपि समेत्य संसेव्यते एव । तथाहि -

चन्द्रः सुधामयत्वादुडुपतिरपि सेव्यते ग्रहग्रामैः ।
ग्रहगणपतिरपि भानुर्भ्राम्यत्येको दुरालोकः ।।२।। [ ]

अतो युक्तमुक्तमदुराराधाः । तथा -

(८)**अदीनवृत्तयः**' दीनाः दृश्यमाना श्रूयमाणा वाऽऽर्द्रहृदयानां दयोत्पादिनी वृत्तिः-चेष्टा येषां ते तथा । पश्चात्तद्योगः । दीना हि वृत्तिर्व्यक्तीकृता नियतमवकेशिन्येव व्यसनोपनिपातप्रतीकारे, पौरुषोष्मायितं तु न तथा । तथाहि -

शुष्यन्ति सरितो ग्रीष्मे दर्शयन्त्योऽपि दीनताम् ।
अमुञ्चन् पौरुषोष्माणं पूर्ण एव महार्णवः ।।१।। [ ] तथा -

(९)'**हितमितप्रियभाषिणः**' हितं मितं प्रियं च भाषितुं शीलमेषां ते तथा । तत्र हितं-धर्म्मानुगतं वाक्यम् । अहितं हि पापोपदेशरूपं स्वपरयोरनर्थानुबन्धि दीर्घभवभ्रमणकारणम् अवेतनक्रीतं नरकपथपाथेयम् । स्वयमेव ह्यनादिभववासवासनावशात् प्रवर्त्तन्त एव प्राणिनः पापकर्म्मसु । यस्तु तेषां तदुपदेष्टा स कूपे पिपतिषतां पश्चात् प्रेरक इव । तथा मितम्-अर्थवत् प्रयोजनसापेक्षम्, अर्थशून्यं हि वचनमुन्मत्तवचनान्नातिरिच्यते । स्वच्छन्दोल्लालितलोलरसनस्य वदनस्य निरर्गलस्य च पुरगोपुरस्य किमन्तरम् ? । तथा 'प्रियभाष(षि)णः' इति । [5]प्रियं-श्रवणसुखदममर्म्मोद्घट्टनं धर्म्मानुगतं च वचनम् । अधर्म्मानुगतं हि प्रियमपि न प्रियम्, उत्तरत्रानर्थानुबन्धित्वात् । तथा -

(१०)'**सन्तोषपराः**' तत्र निजलाभोदयानुमानसम्पद्यमानपुरुषार्थोपबृंहकवृत्तिमात्रजनितः स्वान्तधृतिपोषः सन्तोषः । स एव च निरुपाधिमधुरसहजानन्दसुखहेतुः । अयुक्तलोभसंक्षोभितचित्तवृत्तयो निर्विवेकाः* कुर्वन्तु नाम विविधोपायान्, फलसम्पत्तिस्तु लाभोदयायत्तैव । तदुक्तम् -

5. प्रियं यत् श्रुतमात्रं प्रीणयति - यो. शा. वृत्तिः-१/२१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकटाटव्यामटनं शैलारोहणमपांनिधेस्तरणम् ।
क्रियते गुहाप्रवेशो विहितादधिकं कुतस्तदपि ।।१।। [ ] तथा -

(११)**'अमाइल्ला'** अमायाविनः । मायावान् हि सकृद् दृष्टव्यलीकोऽप्याजन्म व्रजत्यविश्वासभाजनत्वम् । अनार्जवं हि मूलबीजमधर्म्मद्रुमस्य । दृष्टे हि सरलस्वभावे पुंसि सद्यः प्रसीदन्ति नयनमनांसि, इतरसम्परायोपार्जितमपि पापमलपटलं प्रक्षालयत्येव सरलः प्रायश्चित्तपाथोभिः । निकृतिपरे तु नास्ति शुद्धिः । तथाहि -

कृतपापोऽपि निर्म्मायः प्रायश्चित्तेन शुद्ध्यति ।
प्रायश्चित्तेऽपि मायावी केनोपायेन शुद्ध्यताम् ? ।।१।। [ ] तथा -

(१२)**'धम्मपडिकूल०'** इत्यादि । धर्म्मः-प्रस्तावादर्हत्प्रणीतः, तत्र प्रतिकूलाः-प्रत्यनीका विघ्नकारिणः । कुलम्-एकपुरुषसन्तानः, गणः-मल्लादिर्महाजनसमुदायो वा । जनपदः-देशः सामर्थ्याज्ज्ञानपदो जनः । नृपः-पार्थिवः । जनकः-पिता । स्वजनाः-सम्बन्धिनः । धर्म्मप्रतिकूलाश्च ते कुलादयश्चेति योगः । एतैरप्यक्षोभ्याः-क्षोभयितुमशक्याः । बाह्याभ्यन्तरप्राणप्रहाणेऽपि निर्ग्रन्थात् प्रवचनात् प्रच्यावयितुं न पारिताः । एवंविधस्थैर्ये च पूर्वोदिता दृढधर्म्मरागत्वादय एव हेतवः । एवंरूपा एव च सम्यक्त्वधर्म्माधिकारिणः । यदुक्तमस्मदाराध्यैः -

'तेणेव जो बीहइ नो परेसिं धम्माऽणभिन्नाण कुतित्थियाणं ।
पियानिवाईण य सो सुयम्मि धम्माहिगारी भणिओ, न अन्नो ।।' [ ] तथा -

(१३)**'जनसम्मताः'** जनः-लोक उत्तममध्यमाधमलक्षणस्तस्य; सम्मताः पितर इव, मातर इव, स्वामिन इव, गुरव इव सर्वकार्येषु प्रच्छनीया व(व्य)सनोपनिपातेषु च स्मरणीयाः । तेऽपि तस्मिन् जने स्वापत्य इवात्यन्तवत्सलहृदयास्तदपायापासनसमर्थाश्च । इदं च सर्वजनवल्लभत्वमपि सम्यक्त्वादिसाधने प्रधानतममङ्गम् । यदाह भगवान् **हरिभद्रसूरिः -**

सव्वजणवल्लहत्तं अगरहियं कम्म धीरया वसणे ।
जहसत्ती चागतवा सुलद्धलक्खत्तणं धम्मे ।।१।। [श्रा० ध० वि० प्र० गा० ११]

एवं च दृढधर्म्मरागरक्तत्वादिभिर्जनसम्मतत्वपर्यन्तैर्गुणगणैरन्यैरपि श्रुतप्रणीतैः श्रुतधरोद्दिष्टैश्च गुणैरुपेताः सम्यक्त्वाधिकारिणः पुरुषा भवन्तीति गाथात्रयस्य समुदायार्थः ।।१२।।१३।।१४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमुक्ताः सम्यक्त्वाधिकारिणः साम्प्रतं सम्यक्त्वस्यैव स्वरूपमाह –

सव्वन्नुपणीएसुं तत्तेसु रुई हविज्ज सम्मत्तं ।
मिच्छत्तहेउविरहा सुहायपरिणामरूवं तं ।।१५।।

[1]**तत्त्वेषु रुचिः सम्यक्त्वं भवेदि**ति योगः । तत्त्वेष्विति, कानि पुनस्तानि तत्त्वानि ? जीवा अजीवा आस्रव-संवर-निर्जरा-बन्ध-मोक्षलक्षणानि सप्त तत्त्वानि[2] । तत्र जीवा द्विविधाः-[3]मुक्ताः संसारिणश्च । तत्र मुक्तास्तावदेकस्वभावाः । संसारिणस्तु निगोदाद्येकाक्षपञ्चाक्षपर्यवसाना अनेकप्रकाराः । अजीवास्तु [4]धर्म्म-अधर्म्म-आकाश-काल-पुद्गलाः पञ्च । एते च सर्वेऽपि कालं विना प्रदेशप्रचयात्मकाः अस्तिकायाश्च, पुद्गलं विना चामूर्त्ताः, यथाक्रमं च गतिस्थितिअवकाश-परापरत्वउपष्टम्भविधातारः । [5]शुभाशुभकर्म्माश्रवरूपः आस्रवः, [6]तद्विपरीतः संवरः, [7]भवभूरुहबीजभूतकर्म्मणां जरणात् सकामाकामभेदाद् द्विधा निर्जरा, [8]प्रकृतिस्थितिप्रदेशरसभेदाच्चतुर्द्धा बन्धः, [9]सकलकर्म्मक्षयलक्षणो मोक्षः । एवंविधेषु [10]जीवाजीवादिषु या रुचिः-अभिलाषः 'तथा'

गाथा-१५ 1. **तुला** - जिनोक्ततत्त्वेषु रुचिः शुद्धा सम्यक्त्वमुच्यते । - धर्म० सं० श्लो-२१ ।।
रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते । - योग० शा० १/१७ ।।
तत्तत्थसद्दहणं सम्मत्तं । - श्रावकधर्मपञ्चा० गा० ३ ।। सद्दंसणं च तत्तरुइं । - सम्य० प्र० गा. १०८ ।। सद्दर्शनं च सम्यक्त्वं तत्त्वरुचिस्तत्त्वाऽभिलाषः । - सम्य० प्र० बृहद्वृत्तिः गा. १०८ ।। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् । - तत्त्वा० सू० १/२ ।।

2. **तुला** - जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् । - तत्त्वा० १/सू. ४ ।। जीवा अजीवा आस्रवा बन्धः संवरो निर्जरा मोक्ष इत्येष सप्तविधोऽर्थस्तत्त्वम् । एते वा सप्त पदार्थास्तत्त्वानि । - तत्त्वा० भा० १/४ ।।

3. **तुला** - संसारिणो मुक्ताश्च । - तत्त्वा० सू. २/१० ।। संसारिणस्त्रसस्थावराः । - तत्त्वा० सू. २/१२ ।।

4. **तुला** - धम्माधम्मापुग्गलनहकालो पंच हुंति अजीवा । चलणसहावो धम्मो थिरसंठाणो य होइ अधम्मो ।।
अवगाहो आगासो पुग्गलजीवाण पुग्गला चउहा । खंधा-देस-पएसा परमाणु चेव नायव्वा ।।
- सम्य प्र० गा. २३७-२३८ ।।

5. **तुला** - कायवाङ्मनः कर्मयोगः । - तत्त्वा० सू. ६/१ ।। स आस्रवः । - तत्त्वा० सू० ६/२ ।।

6. **तुला** - आस्रवनिरोधः संवरः । - तत्त्वा० सू. ९/१ ।।

7. **तुला** - तपसा निर्जरा च । - तत्त्वा० सू. ९/३ ।।

8. **तुला** - सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते । - तत्त्वा० सू. ८/२ ।। स बन्धः । - तत्त्वा० सू. ८/३ ।।

9. **तुला** - कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः । - तत्त्वा० सू. १०/३ ।।

10. **तुला** - जीवादिषु यन्त्राग्निवत् रुचि० - सं. प्रतौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति प्रत्ययः, तत् सम्यक्त्वम् । तच्च [11]त्रिविधम्-औपशमिकं क्षायोपशमिकं क्षायिकं च । तत्रोपशमो भस्मच्छन्नाग्निवत् मिथ्यात्वमोहनीयस्यानन्तानुबन्धिनां च क्रोध-मान-माया-लोभानामनुदयावस्था, उपशमः प्रयोजनं प्रवर्त्तकमस्येत्यौपशमिकम् । तच्चानादिमिथ्यादृष्टेः करणत्रयपूर्वकमान्तर्मौहूर्त्तिकं चतुर्गतिगतस्यापि जन्तोर्भवति । यद्वा उपशमश्रेण्यारूढस्यौपशमिकं सम्यक्त्वं भवति । यदाह -

उवसमगसेढिगयस्स होइ उवसामियं तु सम्मत्तं ।
जो वा अकयतिपुंजो अखवियमिच्छो लहइ सम्मं ।।१।। [विशे. आव. गा. २७३५]

क्षायोपशमिकं तु सम्यक्त्वमेवम्-मिथ्यात्वमोहनीयस्य अनन्तानुबन्धिनां च उदितानां यः किल देशतः क्षयो-निर्मूलनाशः, अनुदितानां चोपशमः, क्षयेण युक्त उपशमः क्षयोपशमः, स प्रयोजनमस्येति क्षायोपशमिकम्, तच्च सत्कर्म्मवेदनाद् [12]वेदकमप्युच्यते । औपशमिकं तु सत्कर्म्मवेदनारहितमित्यौपशमिकक्षायोपशमिकयोर्भेदः, यदाह –

वेएइ संतकम्मं खओवसमिएसु नाणुभावं सो ।
उवसंतकसाओ उण वेएइ न संतकम्मं पि ।।१।। [विशे. आव. गा. १२९३]

अस्य चावस्थितिः षट्षष्टिसागरोपमाणि साधिकानि । यदुक्तम् –

दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्नऽच्चुए अहव ताइं ।
अइरेगं नरभवियं नाणाजीवाण सव्वद्धं ।। [वि. भा. गा. ४३४]

तथा क्षयः-मिथ्यात्वमोहनीयस्यानन्तानुबन्धिनां च क्रोधादीनां निर्मूलनाशः - क्षयः-प्रयोजनम-

---

11. **तुला** - सम्यक्त्वं च त्रिधा - औपशमिकं क्षायोपशमिकं क्षायिकं च । इत आरभ्य पत्र-१४ उपरि साद्यन्तम् पाठः समानः योगशास्त्रवृत्तौ दृश्यतां ।। २/२ ।।
मिच्छत्तं जमुइन्नं तं खीणं अणुइयं च उवसंतं । मीसीभावपरिणयं वेयिज्जंतं खओवसमं ।।
उवसमगसेढिगयस्स होइ उवसामियं तु सम्मत्तं । जो वा अकयतिपुंजा अखवियमिच्छो लहइ सम्मं ।।
खीणंमि उइन्नम्मि अ अणुइज्जंते अ सेसमिच्छत्ते । अंतोमुहुत्तमित्तं उवसमसम्मं लहइ जीवो ।।
ऊसरदेसं दड्ढिल्लयं व विज्जाइ वणदवो पप्प । इय मिच्छस्साणुदए उवसमसम्मं लहइ जीवो ।।
खीणे दंसणमोहे तिविहम्मि वि भवनियाणभूयम्मि । निप्पच्चवायमउलं सम्मत्तं खाइयं होइ ।।
- श्राव० प्रज्ञ० गा. ४४-४८ ।।

12. **तुला** - वेअगमिअ पुव्वोइअचरमिल्लपुग्गलग्गासं । - धर्म सं० वृत्ति गा. २२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्येति क्षायिकम्, तच्च साद्यनन्तम् । तथा [13]कारक-रोचक-दीपकादयोऽप्यस्य भेदा ग्रन्थान्तरोक्त-युक्त्यैव ज्ञेयाः । एतच्च त्रिविधमपि सम्यक्त्वं पूर्वोदितजीवाजीवादितत्त्वश्रद्धानरूपं यद्यपि यति-श्रावकाणां साधारणम्, तथापि देशविरतानां देवगुरुधर्मेषु पूज्यत्वोपास्यत्वानुष्ठेयत्वलक्षणोपयोग-वशाद् देवगुरुधर्म्मतत्त्वप्रतिपत्तिरूपमपि सम्यक्त्वमवगन्तव्यम्, यथा [14]अर्हन्नेव देवः, सुसाधव एव गुरवः, सर्वज्ञोपज्ञ एव धर्म्म इति ।

एवं तत्त्वश्रद्धानरूपं सम्यक्त्वमभिधाय साम्प्रतं तत्त्वान्येव विशिनष्टि किंविशिष्टेषु तेषु ? अत आह - **'सव्वन्नुपणीएसुं'** सर्वज्ञप्रणीतेषु, न पुनस्तथाविधमुग्धजनविप्रतारणप्रवणधूर्त्तजन-कल्पितेषु । ये त्वनादिदुर्वासनाविनाटितान्तःकरणा भगवति सर्व्वज्ञेऽपि निजाज्ञानोपहतमतयो विप्रतिपद्यन्ते तान् प्रतीदमनुमानमुच्यते -

---

13. **तुला** - तिविहं कारगरोयगदीवगभेएणं, कारगादिसरूवं पुण इमं -

जं जह भणियं तं तह करेइ सति जंमि कारगं तं तु । रोयगसम्मत्तं पुण रुइमेत्तकरं मुणेयव्वं ।।१।।

सयमिह मिच्छद्दिट्ठी धम्मकहाईहिं दीवइ परस्स ।

सम्मत्तमिणं दीवग कारणफलभावओ नेयं ।।२।। - श्रावकधर्मपञ्चा० चूर्णि गा. ७ ।।

कारक-रोचक-दीपकभेदाद वा त्रिविधम् । कारकं साधूनामिव, रोचकं श्रेणिकादेरिव, दीपकमङ्कारमर्दकादेरिव । - सम्य० प्र० गा. २४९ ।।

कारकं सूत्राज्ञाशुद्धा क्रियैव । तस्या एव परगतसम्यक्त्वोत्पादकत्वेन सम्यक्त्वरूपत्वात्, तदवच्छिन्नं वा सम्यक्त्वम् कारकसम्यक्त्वम् । एतच्च विशुद्धचारित्राणामेव १ । रोचयति सम्यगनुष्ठानप्रवृत्तिम् न तु कारयतीति रोचकम् । अविरतसम्यग्दृशां कृष्णश्रेणिकादीनाम् २ । दीपकं व्यञ्जकमित्यनर्थान्तरम्, एतच्च यः स्वयं मिथ्यादृष्टिरपि परेभ्यो जीवाऽजीवादिपदार्थान् यथावस्थितान् व्यनक्ति तस्याङ्कारमर्दकादेर्द्रष्टव्यम् ३ । - धर्म सं० श्लो. २२ वृत्तौ ।।

जं जह भणियं त तह करेइ सइ जंमि कारगं तं तु । रोयगसम्मत्तं पुण रुइमित्तकरं मुणेयव्वं ।।

सयमिह मिच्छद्दिट्ठी धम्मकहाईहि दीवइ परस्स । सम्मत्तमिणं दीवग कारणफलभावओ नेयं ।।

- श्राव० प्रज्ञ० गा. ४९-५० ।।

14. **तुला** - अरिहं देवो गुरुणो सुसाहुणो जिणमयं पमाणं च । इच्चाइ सुहो भावो, सम्मत्तं बिंति जगगुरूणो ।।

- संबो. प्र. सम्य. अधि. ३४ ।।

सव्वाइं जिणेसरभासियाइं वयणाइं नन्नहा हुंति । इइ बुद्धी जस्स मणे सम्मत्तं निच्चलं तस्स ।।

- नवतत्त्व प्रकरण गा. ५२ ।।

जीवाइ नव पयत्थे जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं । भावेण सद्दहंतो अयाणमाणे वि सम्मत्तं ।।

- सम्य. प्र. गा. २४२/नवतत्त्व प्र. गा. ५१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्ति कश्चित् सकलत्रिभुवनभवनोदरविवरवर्त्तिस्वभाव-देश-काल-विप्रकृष्टेतरपदार्थसार्थावलोकनसमर्थसंविदङ्कनालिङ्गितः पुमान् । अनुपदेशालिङ्गाविसंवादिचन्द्रार्कग्रहणाद्युपदेशदायित्वात्, यो यो यद्विषये अनुपदेशालिङ्गाविसंवाद्युपदेशदायी स स तत्साक्षात्कारी दृष्टः, यथाऽस्मदादिः स्वयमनुभूतेऽर्थे, तथा चायम्, तस्मात् तथेति । अत्र च सर्वज्ञसाधकप्रमाणप्रस्तावे सुबहु वक्तव्यम्, तच्च ग्रन्थगौरवभीरुभिर्नोदितम् ।

एवंविधेन भगवता **श्रीसर्वज्ञेन प्रणीतेषु** [15]**तत्त्वेषु रुचिः सम्यक्त्वम्,** सा च रुचिर्जीवस्य कथमुन्मीलति ? इत्याह – **'मिच्छत्तहेउविरहा'** मिथ्यात्वहेतुविरहात् । तत्र जीवाजीवादीनामयथावस्थिता प्रतीतिर्मिथ्या, तद्भावो मिथ्यात्वम् । तच्च पञ्चप्रकारम्, तद् यथा –

अभिग्गहियं अणभिग्गहियं तह अभिणिवेसियं चेव ।
संसइयमणाभोगं मिच्छत्तं पंचहा होइ ।।१।। [पञ्चसं. गा. १८६]

तत्राभिग्रहिकं पाषण्डिनां स्वस्वशास्त्रनियन्त्रितविवेकालोकानां परपक्षप्रतिक्षेपदक्षाणां भवति । **अनाभिग्रहिकं** तु प्राकृतलोकानां सर्वे देवा वन्दनीया नावन्दनीयाः, एवं सर्वे गुरवः, सर्वे धर्म्मा इति । **आभिनिवेशिकं** जानतोऽपि यथावस्थितं वस्तु दुरभिनिवेशलेशविप्लावितधियो जमालेरिव भवति । **सांशयिकं** देवगुरुधर्म्मेष्वयमयं वेति संशयानस्य सम्पद्यते । **अनाभोगिकं** विचारशून्यस्यैकेन्द्रियादेर्वा विशेषज्ञानविकलस्य स्यादिति ।

अस्य च हेतवो निश्चयनयाभिप्रायेण निबिडरागद्वेषादयस्तद्रूपत्वाद् ग्रन्थेः, तस्यैव च सम्यक्त्वप्रतिबन्धकत्वेन मिथ्यात्वहेतुत्वम् व्यवहारतो मिथ्यात्वहेतवः [16]पुनरदेवे देवबुद्धिरगुरौ गुरुबुद्धिरधर्म्मे धर्म्मबुद्धिश्चेति । तथा परतीर्थेषु धर्म्मधिया तपःस्नानदानादिप्रवृत्तिः सङ्क्रान्तिग्रहण-व्यतीपातादिलौकिकपर्वसु धर्म्मबुद्ध्या दानम् । इन्द्रादिदेवसन्तर्प्पणायाग्नौ सर्पिरादीनां हवनम् । पितृतृप्तये तदुद्देशेन पिण्डपानीयादिविसर्ग्गः । अन्यदपि मिथ्यादृष्टिदेवगुर्वादिप्रतिबद्धं यत् परलोकहितप्रवृत्तये प्रवर्त्यते तत् सर्वं मिथ्यात्वहेतुत्वेन पर्यवस्यति ।

एवमुक्तप्रकाराणामन्येषां च श्रुतप्रणीतानां श्रुतधरोद्दिष्टानां च मिथ्यात्वहेतूनां विरहाद्-अभावाद्,

---

15. तत्त्वेषु रुचिरित्यस्य तत्त्वार्थश्रद्धानमित्यर्थपर्यवसानं । - धर्म सं. वृत्तिः श्लो. २१ ।।

16. **तुल्य** - अदेवे देवबुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च । अधर्मे धर्मबुद्धिश्च मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ।। - योग. शा. २/३ ।।
अदेवासाध्वतत्त्वेषु यद्येवत्वादिरोचनम् । विपरीतमतित्वेन तन्मिथ्यात्वं निगद्यते ।। - मूल शु. प्र. गा. ४ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इयं रुचिरुत्पद्यते, सा च सम्यक्त्वम् ।

इत्थं सामान्येन सम्यक्त्वस्य स्वरूपमभिधाय साम्प्रतं सर्वव्यापकं तस्यैव स्वरूपान्तरमाह- [17]**'सुहायपरिणामरूवं'** तद्धि सम्यक्त्वं प्रशस्तसम्यक्त्वमोहनीयकर्माणुवेदनोपशमक्षयसमुत्थं प्रशमसंवेगादिलिङ्गं शुभात्मपरिणामरूपम् । तथा चागमः -

[18]**"से य सम्मत्ते पसत्थसम्मत्तमोहणिज्जकम्माणुवेयणोवसमखयसमुत्थे पसमसंवेगाइलिंगे सुहे आयपरिणामे पण्णत्ते"** त्ति गाथार्थः ।।१५।।

साम्प्रतं समयोक्तेन रूपकषट्केन सम्यक्त्वमुपवर्णयितुं गाथाद्वयमाह –

[1]धम्मद्दुमस्स मूलं[2] सम्मत्तं सुगइनयरवरदारं[3] ।
अइसुदिढपइट्ठाणं[3] जिणपवयणजाणवत्तस्स ।।१६।।
विणयाइगुणगणाणं आहारो[4] उव्वर व्व सस्साणं ।
अमयस्स भायणं[5] नाणचरणरयणाण किंच निही[6] ।।१७।।

(१)**धर्म्म** एव तुङ्गमहाव्रताणुव्रतस्कन्धबन्धबन्धुरत्वेन चरणकरणगुणव्रतशिक्षाव्रतादिशाखा-

---

17. **तुला** - तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्त्वस्य कार्यं, सम्यक्त्वं तु मिथ्यात्वक्षयोपशमादिजन्यो रुचिरूप आत्मपरिणामविशेषः ।। - श्राव. ध. पञ्चा. गा. ३ वृत्तौ ।।
तं उवसमसंवेगाइएहिं लक्खिज्जई उवाएहिं आयपरिणामरूवं बज्झेहिं पसत्थजोगेहिं ।। - श्राव. प्र. गा. ५३।।

18. 'से य सम्मत्ते' त्ति पाठो आवश्यकसूत्रे । ६/३६ ।। तथा श्रावकधर्मपञ्चाशके गा. ३ - अभयदेवसूरिटीकायाम् ।।

गाथा-१६-१७ 1. **तुला** - मूलं[2] दारं[3] पइट्ठाणं[3] आहारो[4] भायणं[5] निही[6] ।
दुछक्कस्सावि धम्मस्स, संमत्तं परिकित्तिअं ।।१।। - प्रव. सारो. ९४० ।।
तत्थ मूलं महादुम्मस्सेव, दारं सपागारमहानगरस्सेव, पइट्ठाणं ति पेढं मन्नइ तं पुण जहा पासायस्स, आधारो जहा धरणी सव्वपयत्थाणं, भायणं पहाणदव्वाणं पिव, निहाणं सुवन्नाइ रयणाणं पिव, तहा सम्मत्तजुत्तस्स, चेव सव्वावि किरिया सहल त्ति ।। - श्रा. ध. पञ्चा. चू. गा. २ टीका ।।
षड्भावनायां - द्विषट्कस्यापि द्वादशभेदस्यापि पञ्चाणुव्रत-त्रिगुणव्रत-चतुःशिक्षाव्रतरूपधर्मस्य चारित्रविषयस्य इदं सम्यक्त्वं मूलमिव मूलं कारणमित्यर्थः, परिकीर्त्तितं जिनैरिति सर्वत्र सम्बन्धः । यथा मूलरहितः पादपः पवनकम्पितस्तत्क्षणादेव निपतति, एवं धर्मतरुरपि सम्यक्त्वहीनः कुतीर्थिकमतान्दोलितः । द्वारमिव द्वारं प्रवेशमुखमितिभावः १ ।
यथा ह्यकृतद्वारं नगरं सन्ततप्राकारवलयवेष्टितमप्यनगरं भवति, जनप्रवेशनिर्गमाभावात् । एवं धर्मपुरमपि सम्यक्त्वद्वारशून्यमशक्याधिगमं स्यादिति २ ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशाखासंशोभितत्वेन विविधाभिग्रहललितदलपटलपरिकलितत्वेन विकस्वरातिशयसुमनोमनोहरत्वेन स्वर्ग-मोक्षसुखफलत्वेन द्रुम इव **द्रुमः, तस्य सम्यक्त्वं मूलम्** । यथा हि बलवति मूले द्रुमस्य स्कन्धाद्युपचयः, एवं धर्म्मस्यापि सुदृढे सम्यक्त्वे महाव्रताद्युत्तरोत्तरविशेषफलावाप्तिः ।

तथा (२)'**सुगतिनगरवरद्वारम्**' सुगतिर्मोक्षलक्षणा सैव अकुतोभयनिवाससुखसङ्गतत्वेन नगरमिव नगरम्, तस्य सम्यग्दर्शनं द्वारम् । विना हि द्वारं महानगरे यथा न सुकरः प्रवेशः, एवं दर्शनमन्तरेण निर्वृतिनगर इति ।

तथा (३)'**अतिसुदृढप्रतिष्ठानं जिनप्रवचनयानपात्रस्य**', जिनप्रवचनं-जिनागमः, स एव गम्भीरभवार्णवसन्तरणप्रवणत्वेन यानपात्रमिव । तस्य सम्यग्दर्शनं सुदृढप्रतिष्ठानम् । यथाहि - प्रतिष्ठानस्य काष्ठविशेषस्याधारेण सकलमपि यानपात्रं बलवत् कार्यकारि च भवति, एवं जिनप्रवचनमपि सम्यक्त्वाधारेणेति ।

तथा (४)'**विनयादिगुणगणानामाधारः**' सम्यक्त्ववासिते हि पुंसि क्रमेण विनयादयो गुणगणाः साधारत्वेन सावष्टम्भाः सम्भवन्ति । के च केषामाधारः ? **उर्वरेव सस्यानाम्** । स्थाने चात्र उर्वराशब्दस्योपादानम् । सर्वसस्याधारा हि भूमिरुर्वरा, न खलु सामान्यभूमात्रमाधारमधिकृत्य सर्वशस्योत्पत्तिर्भवति, एवं मिथ्यादृष्टौ विशिष्टविनयादिगुणगणानामिति ।

तथा (५)'**अमृतस्य भाजनम्**' अमृतं-मोक्षस्तस्य भाजनं-स्थानम् । यथा हि अमृतस्य पीयूषस्य विशिष्टं मणिमयादिभाजनमाधेयं भवति एवमजरामरत्वादिगुणयोगसान्वयाभिधानस्यामृतस्य निरुपमसहजानन्दात्मनो मोक्षसुखरसस्य सम्यक्त्वमेवानुपहतं भाजनमिति ।

पइट्ठाणं - प्रतिष्ठते प्रासादोऽस्मिन्निति प्रतिष्ठानं पीठम्, ततः प्रतिष्ठानमिव प्रतिष्ठानम्, यथा पृथ्वीतलगतगर्त्तापूरकरहितः प्रासादः सुदृढो न भवति, तथाधर्महर्म्यमपि सम्यक्त्वरूपप्रतिष्ठानं विना निश्चलं न भवेदिति ३ । आहारो त्ति आधारः यथा धरातलमन्तरा निरालम्बं जगदिदं न तिष्ठति, एवं धर्मजगदपि सम्यक्त्वलक्षणाधारव्यतिरेकेण न तिष्ठेदिति ४ ।

भायाणं ति भाजनं पात्रमित्यर्थः, यथा पात्रविशेषं विना क्षीरादि वस्तु विनश्यति, एवं धर्मवस्त्वपि सम्यक्त्वभाजनं विना ५ ।

निहि त्ति निधिः यथा हि निधिव्यतिरेकेण महार्हमणि-मौक्तिक-कनकादि द्रव्यं न प्राप्यते, तथा सम्यक्त्वनिधानमन्तरा चारित्रधर्मरत्नमपि ६ ।। - धर्म सं. अधि. २ श्लो. २२ टीका ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किञ्च-[६]**निधिरिदं** सम्यग्दर्शनम्, केषां? **'ज्ञानचरणरत्नानाम्'** ज्ञानं [2]मत्यादिपञ्चभेदम्, [3]चरणं पञ्चाश्रवविरमणादिसप्तदशविधम्, ज्ञानचरणे एव रत्नानि, तेषां निधिः-सेवधिः । यथा हि रत्ननिधिः परमप्रयत्नेन परिपाल्यते एवं दर्शनमपि ज्ञानचरणरत्नपरमनिधिकल्पमनल्पप्रयत्नपुरस्सरं पुरुषेण रक्षणीयमिति गाथाद्वयार्थः ।।१६।।१७।।

पुनः सम्यक्त्वस्यैव प्रभावमुद्भावयन्नाह -

पम्हुसइ मुक्खमग्गं तावच्चिय निबिडमोहतिमिरोहो ।
सम्मत्तचित्तभाणू न जा पयत्थे पयासेइ ।।१८।।

मोहः मिथ्याज्ञानम्, स एव विवेकलोचनलुम्पनप्रवणत्वेन तिमिरमिव, **तस्य ओघः** समूहः, **निबिडः** दुर्भेदः, स च **तावदेव मोक्षमार्गं** निर्वृतिवर्त्म **'पम्हुसइ'** प्रमार्ष्टि, **यावत् सम्यक्त्वमेव** मिथ्यान्धकारतिरस्कारपरत्वेन **चित्रभानुः** आदित्यः, स **पदार्थान्** जीवाऽजीवादीन्, **न प्रकाशयति** न स्पष्टयति । **'उदिते तु पदार्थप्रकाशनपरे दर्शनभास्करे प्रगट एव मोक्षमार्ग'** इति ।।१८।।

किञ्च -

वित्थिन्नो वि हु तिन्नो भवऽन्नवो गोपयं व नणु तेहिं ।
आरूढा दढबंधे जे दंसणजाणवत्तम्मि ।।१९।।

भव एव जन्मजरामरणादिजलपटलपरिकलितत्वेनार्ण्णव इव । किंविशिष्टः ? **विस्तीर्णः** अलब्धपरपारः । एवंविधोऽपि **भवार्ण्णवस्तैर्गोःपदवल्लीलयैव तीर्णः** । ये किम् ? **ये**

---

2. मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि ज्ञानम् । - तत्त्वा० सू० १/९ ।।

3. पंचासवा विरमणं, पंचिंदिय निग्गहो कसायजओ । दंडत्तयस्स विरइ, सत्तरसहा संजमो होइ ।
- प्रव० सा० गा. ५५४ ।।

अथ संयममाह - 'पंचासवे'त्यादि, आश्रूयते-उपार्ज्यते कर्म एभिरित्याश्रवाः-अभिनवकर्मबन्धहेतवः प्राणातिपात-मृषावादा-ऽदत्तादान-मैथुन-परिग्रहलक्षणाः पञ्च, तेभ्यो विरमणं-विनिवर्तनम्, इन्द्रियाणि स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोत्रलक्षणानि पञ्च, तेषां निग्रहो-नियन्त्रणम्, स्पर्शादिषु विषयेषु लाम्पट्यपरिहारेण वर्तनम्; कषायाः ? क्रोध-मान-माया-लोभलक्षणाश्चत्वारस्तेषां जयः-अभिभवः, उदितानां विफलीकरणेन अनुदितानां चानुत्पादनेन, दण्ड्यते-चारित्रैश्वर्यापहारतोऽसारीक्रियते एभिरात्मेति दण्डाः-दुष्प्रयुक्ता मनोवाक्कायास्तेषां त्रयं दण्डत्रयम्, तस्य विरतिः-अशुभप्रवृत्तिनिरोधः, एष सप्तदशविधः संयमो भवति ।
- प्रव० सा० ।। गा. ५५४ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

आरूढाः । क्व ? **दर्शनमेव** संसृतिसरित्पतिसमुत्तारक्षमत्वेन **यानपात्रमिव तस्मिन्** । किंविशिष्टे ? **दृढबन्धे** निश्चले, पक्षे निर्विवरे । स्पृष्टसम्यग्दर्शनानां हि उपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तमात्र एव संसारः । उक्तं च -

अंतोमुहुत्तमित्तं पि फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं उवड्ढपुग्गलपरियट्टो चेव संसारु ।।१।। त्ति [नवतत्त्व प्र. गा. ५३]

अनन्तानन्तपुद्गलपरावर्त्तप्रमितभवाण्णवापेक्षया उपार्द्धपुद्गलस्य गोष्पदरूपत्वादिति ।।१९।। किञ्च -

अइदुक्करं पि चरणं न विणा सम्मं सिवं पसाहेइ ।
दंसणमसहायं पि हु घडिज्ज मुक्खाय जं भणियं ।।२०।।

चरणं चारित्रं सर्वविरतिरूपम्, **अतिदुष्करमपि** तीव्रतपःकष्टानुष्ठानसौष्ठवसङ्गतमपि **'सम्मं विणा'** सम्यक्त्वमन्तरेण **शिवं** मोक्षं **न प्रसाधयति,** दर्शनविरहितस्य हि चरणस्य भावचारित्रत्वानुपपत्तेः । द्रव्यचारित्रं तु विशिष्टक्रियाबलाद् ददपि स्वर्गादिसुखानि अभव्यानामिव शिवप्रसाधकं न भवति । यदि पुनर्दर्शनमपि चरित्रविरहितमेवमेव स्यादित्याशङ्क्याह-**दर्शनं** सम्यक्त्वम्, **असहायमपि** व्यवहारिकचारित्रविनाकृतमपि **मोक्षाय** परमपदाय **घटते**(टेत)समर्थं भवेत् । कदाचिदिदं काल्पनिकमपि स्यादिति निरसिसिषुराह **'जं भणियम्'** यत्-यस्माद्, भणितमेतदेव भगवद्**भद्रबाहुस्वामिपादैः** ।।२०।।

कथम् ? इत्याह -

भट्ठे[ण] चरित्ताओ सुट्ठयरं दंसणं गहेयव्वं ।
सिज्झंति चरणरहिया दंसणरहिया न सिज्झंति ।।२१।। [आव. नि. ११७३]

चरित्रात् व्यावहारिकसंयमाद्, **भ्रष्टेन** परिपतितेन चरित्रधात्रीधरशिरःपरिसरतस्तदावरणकर्मणा **नन्दिषेणादिवत्** पर्यस्तेन, **दर्शनं** सम्यक्त्वं **शुद्धयतिशयेन ग्रहीतव्यम्** अङ्गीकार्यम् । किम् ? इत्यत आह-**चरणरहिताः** व्यावहारिकचारित्रविनाकृता अपि **सिद्धयन्ति** सिद्धिमध्यासते **मरुदेवादिवत्** । **दर्शनरहितास्तु** तीव्रव्रतभृतोऽपि निह्नवादिवन्न **सिद्धयन्ती**ति ।।२१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत एवंप्रभावमिदं सम्यग्दर्शनमतः किं विधेयम् ? इत्याह –

संकाइदोसरहिए पसमत्थिक्काइगुणगणोवेए ।
मुक्खतरुमूलबीए ता सम्मत्ते समुज्जमह ।।२२।।

यद्येवंप्रभावमिदं **तस्मादस्मिन्नेव सम्यक्त्वे सविशेषोद्यमं कुरुध्वम्** । किंविशिष्टे ? **शङ्कादिदोषरहिते** शङ्कादयो वक्ष्यमाणा ये पञ्च दोषास्तैर्निर्मुक्ते । तथा **प्रशमस्थैर्यादिगुणगणोपेते** प्रशमादीनि वक्ष्यमाणानि पञ्च लक्षणानि, स्थैर्यादीन्यपि पञ्च वक्ष्यमाणानि भूषणानि, तैरुपेते । तथा **मोक्षतरुमूलबीजे** परमपदपादपस्यावन्ध्यबीजे । एवंविधे सम्यग्दर्शने यतध्वमिति ।।२२।।

यथोद्देशं निर्देश इति न्यायात् प्रथमं शङ्कादिदोषानेवाह –

[1]संका[१] कंख[२] विगं(गिं)छा[३] परतित्थिपसंस[४] संथवे[५] दोसे ।
दंसणदप्पणघणसमयपवणपडिमे परिहरिज्जा ।।२३।।

एतान् -[2]शङ्कादीन् पञ्च **दोषान्,** सम्यक्त्वधरः **परिहरेत्** । तत्र सर्वज्ञोपज्ञेषु जीवाजीवादि-पदार्थेषु निबिडनिजज्ञानावरणोदयदोषादनवबुध्यमानेषु (१)संशयकरणं-**शङ्का**[3] - किमेते जीवादयो यथैवोच्यन्ते तथैव उतान्यथा ? ति । इयं च द्विविधा देशतः सर्वतश्च । तत्र देशतः 'कथं नाम

गाथा-२३ 1. **तुलना** - योगशास्त्रवृत्तिः २/१७ । प्रव. सारो. गा. ९३३ । सम्बो. प्र. सम्यक्त्वाधि. गा. ३८ । मूलशुद्धि प्र. गा. ९ । सम्य. प्र. गा. २५१ । तत्त्वा. सि. ७/१८ । धर्म बि. ३/२१-१५४ । धर्म सं. गा. ४२ वृत्तौ ।।

2. **तुलना** - सम्मत्तस्सइयारा संका कंखा तहेव वितिगिच्छा । परपासंडपसंसा संथवमाई य नायव्वा ।
संसयकरणं संका कंखा अन्नन्नदंसणग्गाहो । संतंमि वि वितिगिच्छा सिज्झिज्ज न मे अयं अट्ठो ।।
परपासंडपसंसा सक्काइणमिह वन्नवाओ उ । तेहिं सह परिचओ जो स संथवो होइ नायव्वो ।।
- श्राव. प्र. गा. ८६-८७-८८ ।।

संका कंखा य तहा वितिगिच्छा अन्नतित्थियपसंसा । परतित्थिओवसेवणमइयारा पंच सम्मत्ते ।।
- प्रव. सा. गा. २७३ ।।

शङ्कादीन् पञ्च दोषान् दृश्यतां - प्रव. सा. गा. २७३ वृत्तौ ।।

3. **तुलना** - संशयकरणं **शङ्का** (आव.) तत्त्वार्थसिद्धसेनीयावृत्तिः ७/१८ ।। **शङ्का** - सन्देहः-योगशास्त्रवृत्तिः २/१७ ।। शङ्कनं **शङ्का** - सन्देहः - धर्मसंग्रहवृत्तिः गा. ४२ ।। अधिगतजीवाजीवादितत्त्वस्यापि भगवतः शासनं भावतोऽभिप्रपन्नस्यासंहार्यमतेः सम्यग्दृष्टेरर्हतोक्तेषु अत्यन्तसूक्ष्मेष्विन्द्रियेषु-केवलागमगम्येष्वर्थेषु यः सन्देहो भवत्येव स्यादिति सा **शङ्का** ।। - तत्त्वार्थसिद्धसेनीयावृत्तिः ७/१८ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुल्येऽपि जीवत्वे एके भव्या अपरे त्वभव्याः ?' इति । यदि वा 'किमयं जीवो नित्योऽनित्यो नित्यानित्यो वा, सर्वगतोऽसर्वगतो वा, सप्रदेशोऽप्रदेशो वा' ? इत्यादि । सर्वविषया च - 'अस्ति नास्ति वा धर्म्मः'? 'यदि वा इदं द्वादशाङ्गमपि गणिपिटकं तावत् प्राकृतभाषोपनिबद्धमतो यदि पुनरेतत्प्रणेतारोऽपि प्राकृतपुरुषा एव भविष्यन्ति, ततः कथं तदुक्तं यौक्तिकमपि प्रमाणं स्याद्' ? इत्यादि । इयं च द्विविधापि भगवदर्हत्प्रणीततत्त्वाऽप्रत्ययरूपा शङ्का कलङ्कलेखेव शशिनं मलिनयत्येव सम्यग्दर्शनम् । न च स्वमतिमान्द्यादिदोषादनवबुध्यमानेऽपि गम्भीरेऽर्हद्वचसि संशयः कर्तुमुचितः । उक्तं च –

[4]**कत्थइ मइदुब्बलेण तव्विहाऽऽयरियविरहओ वा वि ।**
णेयगहणत्तणेण य नाणावरणोदएणं च ।।१।।

हेऊदाहरणासंभवे य सइ सुट्ठु जं न बुज्झिज्जा ।
सव्वण्णुमयमवितहं तहावि तं मन्नए मइमं ।।२।।

अणुवकयपराणुग्गहपरायणा जं जिणा जगप्पवरा ।
जियरागदोसमोहा य नऽन्नहावाइणो तेणं ।।३।। ति। [संबोध प्र. ध्यानाधिकार-४८-५०]

(२)काङ्क्षणं-**काङ्क्षा**[5] अन्यान्यदर्शनाभिलाषः, शैवसौगतादिदर्शनानामप्यर्हद्दर्शनसाम्येनैवावस्थापनम् । इयमपि द्विविधा-देशतः सर्वतश्च । तत्र देशतः क्वचित् शौद्धोदनीयाद्येकतरसिद्धान्ते किमपि मनोनिग्रह-करुणादिकमुपवर्ण्यमानमाकर्ण्य चिन्तयति यथा – ईदृग्भणितिभङ्गीसङ्गतमिदं दर्शनमर्हद्दर्शनान्नावमम्, सर्वविषया च शाक्यौलोक्यकापिलाक्षपादादिषु निखिलेष्वपि दर्शनेषु प्राणिदयैव धर्म्मरहस्यम्, ध्यानाच्च सिद्धिरित्यादिकं स्वदर्शनसंवादि किमप्युपदिश्यमानमुपश्रुत्य विकल्पयति यथा - सर्वाण्यपि दर्शनानि सर्वविद्दर्शनसमानान्येवेति । इयमपि द्विरूपापि सर्वज्ञोपज्ञसमयानाश्वासरूपा सम्यक्त्वं दूषयत्येव । उक्तं च –

---

4. **छाया** – कुत्रचिद् मतिदौर्बल्येन तद्विधाचार्यविरहतश्चापि । ज्ञेयगहनत्वेन च ज्ञानावरणोदयेन च ।।१।।
हेतूदाहरणासम्भवे च सति सुष्ठु यद् न बुध्येत । सर्वज्ञमतमवितथं तथापि तच्चिन्तयेद् मतिमान् ।।२।।
अनुपकृतपरानुग्रहपरायणा यद् जिना जगप्रवराः । जितरागद्वेषमोहाश्च नान्यथावादिनस्तेन ।।३।।

5. **तुलना** - ऐहलौकिकपारलौकिकेषु विषयेष्वाशंसा **काङ्क्षा** । - तत्त्वा. भा. ७/१८ ।।
कंखा अण्णण्णदंसणग्गहो (**काङ्क्षा** अन्यान्यदर्शनग्रहः) । - तत्त्वा. सि. वृ. ७/१८ ।।
काङ्क्षणम् अन्यान्यदर्शनग्रहः । - धर्म. सं. गा. ४२ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वन्नाइमित्ततुल्लो असरिच्छो सेससारधम्मेहिं ।
मरगयमणिमाहप्पं कायमणी पावए किह णु ? ।।१।।
अवसेसा वि हु धम्मा तुल्ल ञ्चिय सेसदरिसणेसु पि ।
हंत ! जिणदरिसणाओ तेसिमभेओ हवइ एवं ।।२।। [ ]

(३)**विचिकित्सा**[6]-चित्तविभ्रमः, यथा अयं हि जिनागमस्तावदाप्तप्रणीतत्वेन युक्तियुक्तविचार-सहत्वेन च सत्यरूप एव, केवलमेदंयुगीनानामस्मदादीनां विशिष्टबलकालबुद्ध्यादिविकलानाम-स्यात्यन्तनीरसवेलुकाकणकवलनकल्पस्य शिरस्तुण्डमुण्डनतीव्रतपःकष्टानुष्ठानक्रियाकाण्ड-ताण्डवस्य किमप्युत्तरकाले सम्भाव्यते फलम् ? किं वा केवलमुपनतैहिकसुखमात्रपरित्याग-वञ्चनैव यतः क्रिया हि कृषीवलादीनामिव फलवत्यफला च दृश्यत एव, उक्तं च –

"विचिकिच्छ देस एगं चिइवंदणनियमपोसहाईयं ।
सफलमफलं व हुज्जा न नज्जए सञ्चऽसञ्चेण ।।१।।
पुव्वपुरिसा जहोइयमग्गचरा घडइ तेसि फलजोगो ।
अम्हेसुं धीसंघयणविरहओ न तह तेसि फलं" ।।२।। [श्रा. ध. वि. प्र. गा. ५५-५६]

एवमनया विचिकित्सया सम्यक्त्वं दूष्यते सर्वज्ञवचनविश्वासात् । तथा -

(४)**परतीर्थिप्रशंसा -** तत्र परे साङ्ख्य-शाक्य-कापिलादयस्तीर्थिनः-दर्शिनः, तेषां प्रशंसा तीव्रतपोध्यानमौनकायक्लेशादिगुणगणानां प्रीत्युत्कर्षेण वा सर्वत्र माध्यस्थ्यं मे प्रथतामिति धिया वा उपवर्णनं परतीर्थिप्रशंसा, सापि सम्यक्त्वमतिचरति । यतो यद्यपि कुतीर्थिनां तथाविधतपो-विद्यादिमाहात्म्यात्तप-वैक्रियलब्धि-गगनगमनादिवैभवावर्जितप्रथमगुणस्थानस्थितदेव-नरदेवा-दिभिः पूजासत्कारादि प्रशंसोचितं विधीयमानमुपश्रूयते तथाप्यसर्वविन्मूलतया तदीयं विद्यातपः-प्रभृति सर्वमज्ञानकष्टे निपततीति नाऽऽर्हतानामर्हा तत्प्रशंसा । किञ्च सर्वसमक्षममीषामुपवर्णनं कुर्वन् तेषामन्येषां च तद्भक्तानां तद्धर्म्मोन्मुखानां च मिथ्यापथे स्थैर्यमुत्पादयन्ननन्तमात्मनः संसृति-संसरणमुपचिनोतीति, अतः सर्वथा परिहार्यैव परतीर्थिप्रशंसा । तथा न केवलं परतीर्थिप्रशंसैव सम्यक्त्वं दूषयति यावत् तैः सह संस्तवोऽपि ।

---

6. **तुलना - विचिकित्सा**नामेदमप्यस्तीति मतिविप्लुतिः । - तत्त्वा. भा. ७/१८ ।। मतिविभ्रमो **विचिकित्सा** । - तत्त्वा. सि. वृत्तिः ७/१८ ।। **विचिकित्सा** चित्तविप्लवः । - यो. शा. २/१७ ।। **विचिकित्सा** चित्तविप्लवः फलं प्रति सन्देहः । - ध. सं. वृत्तिः ४२ ।। यद्वा **विचिकित्सा** सदाचारमुनीनामपि मलविषयिणी निन्दा । - ध. सं. वृत्तिः गा. ४२ ।। **विचिकित्सा** सदाचारसाध्वादिनिन्दा । - प्र. सा. गा. ९३३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५)तत्र **संस्तवः** परिचयः । स च एकावसथा[7]ऽवस्थान-स्निग्धालाप-भोजन-वस्त्रादिदानलक्षणः । सोऽपि तैः सहात्यन्तमुपचीयमानो मलिनयत्येव दर्शनम्, यतः सन्ततमेकत्रावस्थानात् तत्प्रक्रिया-श्रवण-तत्क्रियाकलापविलोकनादिना अनादिभवाभ्यस्ते मिथ्यात्ववर्त्मनि सुखमेवावतरति मतिः प्राणिनाम्, न च कदाचिदवसरे प्रक्रान्तजिनमतोपहासेष्वपि तेषु तदत्यन्तपरिचयादुत्पन्नदाक्षिण्य-स्तत्पक्षप्रतिक्षेपेण स्वपक्षव्यवस्थापनेऽप्यलम्भूष्णुर्भवति । अतः कुलाङ्गनानामिव पणाङ्गनाभिः सह नोचितः परिचयोऽपि सम्यग्दृशां मिथ्यादृग्भिरिति ।

तस्मादेतान् शङ्कादीन् पञ्चापि दोषान् सम्यग्दर्शनी यत्नतः परिहरेत् । कथम्भूतान् ? **'दर्शन-दर्प्पणघनसमयपवनप्रतिमान्'** । तत्र जीवाजीवादिवस्तुतत्त्वप्रतिबिम्बनक्षमत्वेन दर्शनमेव दर्प्पणः आत्मदर्शनः तस्य घनसमयपवनप्रतिमान् प्रावृट्कालानिलतुल्यान् । यथा हि पयोदपवनस्य स्पर्शमात्रेणैव सुनिर्म्मलोऽपि दर्प्पणः क्षणान्मलीमसतामाकलयति, एवं शङ्कादिभिः सम्यक्त्वमपीति ।।२३।।

साम्प्रतं सम्यक्त्वस्यैव प्रशमादीनि पञ्च लक्षणानि व्याचिख्यासुराह –

[1]मिच्छाभिणिवेसोवसम[2]-परमपयराग[3]-भवविरागेहिं[3] ।
भूयाणुकंप[4]-तत्तत्थिवायओ[5] मुणह सम्मतं ।।२४।।

---

7. **अवसथ** पु. (अव+सो+कथन्) । **आवसथ** पु. आवसन्ति अस्मिन् इति **आवसथः**, "उपसर्गाद् वसः" (उणा. २३३) इति अथः अगारार्थे । अभि. चि. श्लो. ९९१ । **आवसथ** पु. आवसन्ति अस्मिन् इति आवसथः, छात्राणां व्रतिनां च वेश्मनि । - अभि. चि. श्लो. ९९४ ।।

गाथा-२४ 1. **तुलना** - शम-संवेग-निर्वेदा-ऽनुकम्पा-ऽऽस्तिक्यलक्षणैः ।
लक्षणैः पञ्चभिः सम्यक् सम्यक्त्वमुप-लक्ष्यते ।। - यो. शा. २/१५ ।।

लक्खिज्जइ सम्मत्तं हिययगयं जेहि ताइं पंचेव ।
उवसमे[1] संवेगो[2] तह निव्वेय[3] णुकंप[4] अत्थिक्कं[5] ।।१।। - सम्बो० प्र. सम्यक्त्वा. गा. ७३ ।।

उवसम[1] संवेगो[2]ऽवि य निव्वेओ[3] तह य होइ अणुकंपा[4] ।
अत्थिक्कं[5] चिअ एए सम्मत्ते लक्खणा पंच ।।१।। - प्र. सारो. ९३६ ।।

सुहावहा कम्मखएण खंती, संवेग णिव्वेय तहाऽणुकंपा ।
अत्थित्तभावेण समं जिणिंदा, सम्मत्तलिंगाइमुदा-हरंति ।।१।। - मू. शु. प्र. गा. १०।।

उवसम संवेगो वि य निव्वेओ वि य तहेव अणुकंपा ।
अत्थिक्कं च एव तहा सम्मत्ते लक्खणा पंच ।।१।। - सम्य. प्र. गा. २५३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[2]एतैः प्रशमादिभिर्लक्षणैः **सम्यक्त्वं जानीत** इति योगः । तत्र यद्यपि सम्यक्त्वं [3]शुभात्म-परिणामत्वेन चर्म्मचक्षुषां दुर्लक्षम्, तथाप्येभिर्लक्षणैर्लक्षयेत् - [(१)]मिथ्यात्वमोहनीयोदयवशादयथा-वस्थितार्थप्रतीतिर्मिथ्या, तद्रूपोऽभिनिवेशः-आग्रहो **मिथ्याभिनिवेशः**, तस्योपशमः सम्यक्त्वलिङ्गम् । अत्र च यद्यपि केचन क्रूराणामनन्तानुबन्धिक्रोधादिकषायाणां क्षयोपशमाद् वा तद्विपाकदर्शनाद् वा कृतापराधेष्वपि प्राणिषु यः कषायानुदयः स [4]उपशमः, स च सम्यक्त्वलिङ्गमित्याहुः । ब्रुवते च –

[5]पयईइ कसायाणं नाऊणं वा विवागमसुहं ति ।
अवरद्धे वि न कुप्पइ, उवसमओ सव्वकालं पि ।।१।। [श्राव. प्र.गा. ५५] इत्यादि ।

---

2. **तुलना** - तं उवसमसंवेगाइएहिं लक्खिज्जई उवाएहिं । आयपरिणामरूवं बज्झेहिं पसत्थजोगेहिं ।।५५।। पञ्चभिर्लक्षणैर्लिङ्गैः परस्थं परोक्षमपि सम्यक्त्वं सम्यगुपलक्ष्यते । लिङ्गानि तु शम-संवेग-निर्वेदाऽनुकम्पा ऽऽस्तिक्यस्वरूपाणि ।। - योगशास्त्र वृ. २/१५।।
3. **तुलना** - एत्थ य परिणामो खलु जीवस्स सुहो उ होइ विन्नेओ । किं मलकलंकमुक्कं, कणगं भुवि झामलं होइ ? ।। - श्राव. प्र. गा. ५४ ।।
4. **शमः** प्रशमः क्रूराणामनन्तानुबन्धिनां कषायाणामनुदयः । स च प्रकृत्या वा कषायपरिणतेः कटुफलावलोकनाद्वा भवति । - यो. शा. २/१५ वृत्तौ ।।
5. **छाया** - प्रकृत्या वा कर्मणां विज्ञाय वा विपाकमशुभमिति । अपराद्धयेऽपि न कुप्यति उपशमतः सर्वकालमपि ।।५५ ।।

   तुलना - "पयईए" इत्यादयः पञ्च आर्या उमास्वातिविरचितेन प्रसिद्धे श्रावकप्रज्ञप्तिप्रकरणे, हरिभद्रसूरिविरचिते धर्मसंग्रहण्यादौ तथा विंशतिविंशिकायां, हेमचन्द्रसूरिविरचिते योगशास्त्रवृत्तौ चोपलभ्यन्ते ।। तद्यथा - श्राव. प्र. - गा. ५५-५९ । धर्मसंग्र. गा. ८०८-८१२ । वि. वि. ६ - गा. १०-१४ ।। यो. शा. - २/१५ वृत्तौ ।। तत्र श्रावकप्रज्ञप्तिप्रकरणस्य हरिभद्रसूरिविरचितं व्याख्यानमित्थमुपलभ्यतेप्रकृत्या वा सम्यक्त्वाणुवेदकजीव-स्वभावेन वा कर्मणां कषायनिबन्धानां विज्ञाय वा विपाकमशुभमिति ।
   तथाहि - कषायाविष्टोऽन्तर्मुहूर्तेन यत्कर्म बध्नाति तदनेकाभिः सागरोपमकोटाकोटिभिरपि दुःखेन वेदयतीत्य-शुभो विपाकः । एतत् ज्ञात्वा किं ? अपराद्धयेऽपि न कुप्यति, अपराध्यत इति अपराद्धयः प्रतिकूलकारी तस्मिन्नपि कोपं न गच्छत्युपशमतः उपशमेन हेतुना सर्वकालमपि यावत्सम्यक्त्वपरिणाम इति ।।५५।। तथा नरविबुधेश्वरसौख्यं चक्रवर्तीन्द्रसौख्यमित्यर्थः अस्वाभाविकत्वात् कर्मजनितत्वात्सावसानत्वाच्च दुःखमेव भावतः परमार्थतो मन्यमानः संवेगतः संवेगेन हेतुना न मोक्षं स्वाभाविकजीवरूपकर्मजमपर्यवसानं मुक्त्वा किञ्चित्प्रार्थयतेऽभिलषतीति ।।५६।। नारक-तिर्यङ्-नराऽमरभवेषु सर्वेष्वेव निर्वेदतो निर्वेदेन कारणेन वसति दुःखम् । किंविशिष्टः सन् ? अकृतपरलोकमार्गः, अकृतसदनुष्ठान इत्यर्थः । अयं हि जीवलोके परलोकानुष्ठानमन्तरेण सर्वमेवासारं मन्यते । ममत्वविषवेगरहितोऽपि, तथाहि - अयं प्रकृत्या निर्ममत्व एव

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथाप्यत्र मिथ्याभिनिवेशोपशम एवोपशम इति यौक्तिकमिव प्रतिभाति । यतः कषाया हि चारित्रमोहनीयम्, अतस्तदुदयश्चारित्रमेवावृणोति, न पुनः सम्यग्दर्शनमपि, मिथ्याभिनिवेशोदयस्तु क्षमः सम्यक्त्वमावरीतुम्, अतस्तदुपशमः सम्यक्त्वलिङ्गम् । उक्तं च –

मिच्छाभिनिवेसस्स उ नायव्वो उवसमो इहं लिंगं ।
चारित्तमोहणीयं जेण कसाया समाइट्ठा ।।१।। [ ]

यच्चात्र तत्त्वं तत् तत्त्वविद एव विदन्ति । अतः सोऽयमुपशमः सम्यक्त्वलिङ्गम् ।

(२)तथा अस्यैव द्वितीयं लिङ्गम् **परमपदरागः,** यं [6]संवेगमित्यामनन्ति मुनयः । तत्र परमपदेमोक्षे, रागः-अभिलाषः, परमपदरागः । अथ किमर्थमत्रैव सम्यक्त्ववतामनुरागः ? उच्यते - सांसारिकसुखोपनिषद्भूतं हि चक्रवर्तिनाममर्त्यपतीनामनुत्तरसुराणां च सुखं तदप्यन्तर्मुखतया विभाव्यमानमाभिमानिकमौपाधिकं क्षयावसानं चेति तत्त्वतो दुःखमेव । परमपदसुखं तु न तथा । अतः सम्यग्दृशां तत्रानुरागः । उक्तं च –

[7]नरविबुहेसरसुक्खं दुक्खं चिय भावओ य मन्नंतो ।
संवेगओ न मुक्खं मुत्तूणं किंपि पत्थेइ ।।१।। [श्रा. प्र. गाथा-५६]

(३)तथा **भवविरागस्तृतीयं** दर्शनलिङ्गम्, यस्य [8]निर्वेद इति समये श्रुतिः । सम्यक्त्वाव-भासितहृदयो हि दुरन्तदुःखदौर्गत्यरोगशोकाद्यातङ्कसङ्कलितस्तत्प्रतीकारक्षमं जैनं धर्मं सम्यगव-

---

भवति, विदिततत्त्वत्वादिति ।।५७।। तथा दृष्ट्वा प्राणिनिवहं जीवसङ्घातं, क ? भीमे भयानके भवसागरे संसारसमुद्रे, दुःखार्त्तं शारीरमानसैर्दुःखैरभिभूतमित्यर्थः, अविशेषतः सामान्येनात्मीयेतरविचाराभावेनेत्यर्थः । अनुकम्पां दयां द्विधापि द्रव्यतो भावतश्च, द्रव्यतः प्रासुकपिण्डादिदानेन, भावतो मार्गयोजनया, सामर्थ्यतः सर्वशक्त्यनुरूपं करोतीति ।।५८।। मन्यते प्रतिपद्यते तदेव सत्यं निःशङ्कं शङ्कारहितं यज्जिनैः प्रज्ञप्तं यत् तीर्थकरैः प्रतिपादितं, शुभपरिणामः सन् साकल्येनानन्तरोदितसमस्तगुणान्वितः । सर्वं समस्तं मन्यते, न तु किञ्चिद् मन्यते किञ्चिद् नेति, भगवत्यविश्वासायोगात् पुनरपि स एव विशिष्यते । किं विशिष्टः सन् ? कांक्षादिविस्रोतसिकारहितः, कांक्षा अन्योन्यदर्शनग्रह इत्युच्यते, आदिशब्दाद् विचिकित्सापरिग्रहः, विस्रोतसिका तु संयमशस्यमङ्गीकृत्याध्यवसायसलिलस्य विस्रोतोगमनमिति ।।५९।।

6. **संवेगो** मोक्षाभिलाषः, सम्यग्दृष्टिर्हि नरेन्द्रसुरेन्द्राणां विषयसुखानि दुःखानुषङ्गाद् दुःखतया मन्यमानो मोक्षसुखमेव सुखत्वेन मन्यते अभिलषति च । - यो. शा. २/१५ वृत्तौ । धर्म सं. गा. ४० वृत्तौ ।।
7. **छाया** - नरविबुधेश्वरसौख्यं दुःखमेव भावतः च मन्यमानः । संवेगतो न मोक्षं मुक्त्वा किञ्चित् प्रार्थयते ।।५६।।
8. **निर्वेदो** भववैराग्यम्, सम्यग्दर्शनी हि दुःखदौर्गत्यगहने भवकारागारे कर्मदण्डपाशिकैस्तथा कदर्थ्यमानः प्रतिकर्तुमक्षमो ममत्वरहितश्च दुःखेन निर्विण्णो भवति । - यो. शा. २/१५ वृत्तौ । - धर्म सं. गा. ४० वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गच्छन्नपि, तथाकर्म्मपरिणतिवशादुपासितुमशक्तस्तदाराधनपरेषूत्तमसत्त्वेषु परमं प्रमोदमुद्वहन् स्वयमपि धर्म्माराधनोपायान् विविधाननुध्यायन् ममत्वरहितः सततं संसृतौ वसति । यदुक्तम् -

[9]**नारयतिरियनरामरभवेसु निव्वेयओ वसइ दुक्खं ।**
अकयपरलोयमग्गो ममत्तविसवेयरहिओ वि ।।१।। [श्रा. प्र. गाथा-५७]

केचित्तु संवेगनिर्वेदयोरर्थतो विपर्ययमाचक्षते - संवेगः-संसृतिविरागः, निर्वेदः-शिवपदाभिलाषः इति ।

(४)तथा [10]**भूतानुकम्पा** चतुर्थं लिङ्गम्, तत्र भूताः-स्वाभाविकौपाधिकशारीरवाचनिकमानसिकाद्यनेकव्यापत्तापसन्तप्ताः प्राणिनः, तेषु तद्दुःखदर्शनादपक्षपातेन प्रतीकारेच्छाऽनुकम्पा । पक्षपातेन तु कारुण्यं स्वापत्यादिषु हिंस्रसत्त्वानामपि सम्भवत्येव । साऽप्यनुकम्पा द्विविधा द्रव्यतो भावतश्च । तत्र द्रव्यतः सति सामर्थ्ये दुःखार्दितस्य देहिनः तस्माद् विमोचनम् अनुकम्पा, भावतश्च दयार्द्रहृदयतैव । यदवाचि -

[11]**दट्ठूण पाणिनिवहं भीमे भवसायरम्मि दुक्खत्तं ।**
अविसेसओऽणुकंपं दुहा वि सामत्थओ कुणइ ।।१।। [श्रा. प्र. गाथा-५८]

(५)तथा**ऽस्तिवादः**[12] पञ्चमं चिह्नं सम्यग्दर्शनस्य, तत्र तत्त्वेषु जीवाऽजीवादिषु अस्तिवादः-शङ्कादिपरिहारेण सर्वज्ञप्रणेतृप्रत्ययेनैव निर्विवादश्चेतःसंवादः । यथा – यद्यप्यस्माकमनेकभवोपचिताज्ञानपटलावृतज्ञानालोकानां न साक्षाद् भवन्ति तथापि सन्त्येव भगवदर्हत्प्रणीतानि जीवादितत्त्वानि, उक्तं च -

---

9. **छाया** - नारक तिर्यङ्नरामरभवेषु निर्वेदतो वसति दुःखम् ।
अकृतपरलोकमार्गः ममत्वविषवेगरहितोऽपि ।।५७।।

10. **अनुकम्पा** दुःखितेषु अपक्षपातेन दुःखप्रहाणेच्छा । पक्षपातेन तु करुणा स्वपुत्रादौ व्याघ्रादीनामप्यस्त्येव सा चानुकम्पा द्रव्यतो भावतश्च भवति, द्रव्यतः सत्यां शक्तौ दुःखप्रतीकारेण, भावत आर्द्रहृदयत्वेन ।
- यो. शा. २/१५ वृत्तौ । - धर्म सं. गा. ४० वृत्तौ ।।

11. **छाया** - दृष्ट्वा प्राणिनिवहं भीमे भवसागरे दुःखार्त्तम् । अविशेषत अनुकम्पां द्विधापि सामर्थ्यतः करोति ।।५८।।

12. अस्तीति मतिरस्येत्यास्तिकः, तस्य भावः कर्म वा **आस्तिक्यम्** । तत्त्वान्तरश्रवणेऽपि जिनोक्तविषये निराकाङ्क्षा प्रतिपत्ति । आस्तिक्येन हि जीवधर्मदया सम्यक्त्वं लक्ष्यते । तद्वान् हि आस्तिक इत्युच्यते ।
- यो. शा. २/१५ वृत्तौ । - धर्म सं. गा. ४० वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[13]**मन्नइ तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहि पन्नत्तं ।**
सुहपरिणामो सव्वं कंखाइविसुत्तियारहिओ ।।१।। [श्रा. प. गाथा-५९]

एवमेतेभ्यः पञ्चभ्योऽपि प्रशमादिभ्यो लक्षणेभ्यः संलक्ष्यते सम्यक्त्वम् । एतद्व्यतिरिक्तान्यपराण्यपि पूर्वाचार्यप्रणीतानि सम्यक्त्वलिङ्गानि श्रूयन्ते, तथाहि –

[14]**सुस्सूस[१] धम्मराओ[२] गुरुदेवाणं जहासमाहीए ।**
वेयावच्चे नियमो[३] हवंति सम्मत्तलिंगाइं ।।१।। [श्रा. ध. वि. प्र. गा. ६९] तथा –

[15]**सव्वत्थ उचियकरणं गुणाणुराओ रई य जिणवयणे ।**
अगुणेसु य मज्झत्थं सम्मद्दिट्ठिस्स लिंगाइं ।।२।। [पुष्प. गाथा-१११] ति ।।२४।।

---

13. **छाया** - मन्यते तदेव सत्यं निःशङ्कं यज्जिनैः प्रज्ञप्तम् । शुभपरिणामः सर्वं कांक्षादिविश्रोतसिकारहितः ।।५९।।
14. **छाया** - शुश्रूषा धर्मरागो गुरुदेवानां यथा समाधौ । वैयावृत्ये नियमो भवन्ति सम्यक्त्वलिङ्गानि ।।१।।
15. **छाया** - सर्वत्र उचितकरणं गुणानुरागः रतिश्च जिनवचने । अगुणेषु च माध्यस्थ्यं सम्यग्दृष्टेर्लिङ्गानि ।।२।।

अस्या गाथायाः चतुर्थपादः विविधप्रतेषु भिन्नो दृश्यते तद्यथा - दंसणपडिमा भवे एसा । - विं. विं. १०/४ । वयपडिवत्तीए भयणा उ । - श्रा. ध. पञ्चा. गा. ४ । सम्मद्दिट्ठिस्स लिंगाइं । - प्रव. सा. ९ ।।९२९।।

तुलना - परमागमसुस्सूसा[१] अणुराओ धम्मसाहगे परमो[२] । जिणगुरुवेयावच्चे नियमो[३] सम्मत्तलिंगाइ । - सं. प्र. सम्यक्त्वाधि० गा. ६२ ।।

त्रिलिङ्गे - श्रोतुमिच्छा शुश्रूषा, सद्बोधावन्ध्यनिबन्धनधर्मशास्त्रश्रवणवाञ्छेत्यर्थः । सा च वैदग्ध्यादिगुणवत्तरुण-नरकिन्नरगानश्रवणरागादप्यधिकतमा सम्यक्त्वे सति भवति । यदाह - "यूनो वैदग्ध्यवतः, कान्तायुक्तस्य कामिनोऽपि दृढम् । किन्नरगेये तथा धर्मे चारित्रलक्षणो रागः श्रुतधर्मरागस्य तु शुश्रूषापदेनैवोक्तत्वात् । स च कर्मदोषात्तदकरणेऽपिकान्तारातीतदुर्गतबुभुक्षा क्षामकुक्षिब्राह्मणघृतभोजनाभिलाषादप्यतिरिक्तो भवति २ । तथा गुरवो धर्मोपदेशका देवा अर्हतस्तेषां वैयावृत्ये तत्प्रतिपत्तिविश्रामणाभ्यर्चनादौ नियमोऽवश्यंकर्त्तव्य-ताङ्गीकारः, स च सम्यक्त्वे सति भवतीति । तानि सम्यग्दृष्टेर्धर्मधर्मिणोरभेदोपचारात् सम्यक्त्वस्य लिङ्गानि ३ । - धर्म सं. वृत्तिः गा. ४० ।। - श्रा. ध. पञ्चा. श्री अभ. वृत्तिः गा. ४ ।।

सुस्सूस धम्मराओ गुरु-देवाणं जहासमाहीए । वेयावच्चे णियमो सम्मद्दिट्ठिस्स लिंगाइं । - योग श. गा. १४ वृत्तौ ।।

"शुश्रूषा श्रोतुमिच्छा धर्मशास्त्रेषु गेयरागिकिन्नरगेयशुश्रूषाधिका । तथा 'धर्मरागः' धर्माभिष्वङ्गः सामग्रीवैक-ल्या(त्) (त)दकरणेऽपि चेतसोऽनुबन्धः दरिद्रब्राह्मणविशेषहविःपूर्णरागसमधिकः । तथा 'गुरु-देवानां' - चैत्य-साधूनां 'यथासमाधिना' शक्त्याद्यनुरूपम्, नासद्ग्रहेण, किम् ? इत्याह -

'वैयावृत्ये' व्यावृत्तभावे नियमः, गुणज्ञश्राद्धचिन्तामणिवैयावृत्यनियमाभ्यधिकः करोत्येवैतदित्यर्थः । सम्यग्दृष्टेः 'लिङ्गानि' चिह्नानि, ग्रन्थिभेदेन तत्त्वे तीव्रभावात् । इति गाथार्थ ।। - योग श. गा. १४ वृत्तौ ।।

शुश्रूषा धर्मरागश्च, गुरुदेवादिपूजनम् । यथाशक्ति विनिर्दिष्टं, लिङ्गमस्य महात्मभिः ।।१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न किन्नरादिगेयादौ, शुश्रूषा भोगिनस्तथा । यथा जिनोक्तावस्येति, हेतुसामर्थ्यभेदतः ।।२।।

- योगबिन्दु श्लो. २५३-२५४ ।।

'शुश्रूषा - सद्धर्मशास्त्रविधया' 'धर्मरागश्च' - चारित्रधर्मानुरागस्वरूपः 'गुरुदेवादिपूजनं' - धर्माचार्यजिनसाधर्मिकादिसमभ्यर्चनम् 'यथाशक्ति' - स्वसामर्थ्यानुरूपं विनिर्दिष्टम् 'लिङ्गं-चिह्नम्' 'अस्य' - सम्यग्दृष्टेर्जीवस्य 'महात्मभिः-शास्त्रकारैरिति ।।२५३।। न किन्नरादिगेयादौ - किन्नरादीनां गायकविशेषाणां यद्गेयादि गीतवर्णपरिवर्ताभ्यासकथनादि श्रवणेन्द्रियाक्षेपकारि तत्र 'शुश्रूषा' श्रोतुमिच्छा 'भोगिनः' पुरुषस्य यूनो वैदग्ध्यवतः कान्तायुक्तस्यातिशयकामिनश्च तथा - तेन प्रकारेण 'यथा जिनोक्तौ' जिनशासने 'अस्य'- सम्यग्दृष्टेः 'इतिः' पादसमाप्तौ, कुत इत्याह 'हेतुसामर्थ्यभेदतः' 'किन्नरादिगेयादिशुश्रूषाहेतोः सकाशाज्जिनोक्तिशुश्रूषाया हेतोः सामर्थ्यवैशिष्ट्यात् ।।२५४।। - योग. बिं. वृत्तौ ।।

लक्ष्यते ग्रन्थिभेदेन सम्यग्दृष्टिः स्वतन्त्रतः । शुश्रूषाधर्मरागाभ्यां गुरुदेवादिपूजया ।।१।। भोगिकिन्नरगेयादिविषयाधिक्यमीयुषी । शुश्रूषाऽस्य न सुप्तेशकथार्थविषयोपमा ।।२।। अप्राप्ते भगवद्वाक्ये धावत्यस्य मनो यथा । विशेषदर्शिनोऽर्थेषु प्राप्तपूर्वेषु नो तथा ।।३।। धर्मरागोऽधिको भावाद्भोगिनः स्त्र्यादिरागतः । प्रवृत्तिस्त्वन्यथापि स्यात्कर्मणो बलवत्तया ।।४।। तदलाभेऽपि तद्रागबलवत्त्वं न दुर्वचम् । पूयिकाद्यपि यद्बुङ्क्ते घृतपूर्णप्रियो द्विजः ।।५।। गुरुदेवादिपूजाऽस्य त्यागात्कार्यान्तरस्य च । भावसारा विनिर्दिष्टा निजशक्त्यनतिक्रमात् ।।६।। - सम्य० द्वात्रि० १५/१-६ ।।

लक्ष्यत इति - ग्रन्थिभेदेन अतितीव्ररागद्वेषपरिणामविदारणेन । स्वतन्त्रतः सिद्धान्तनीत्या । सम्यग्दृष्टिः लक्ष्यते सम्यग्दर्शनपरिणामात्मनाऽप्रत्यक्षोऽप्यनुमीयते शुश्रूषाधर्मरागाभ्यां तथा गुरुदेवादिपूजया त्रिभिरेतैर्लिङ्गैः । यदाह - "शुश्रूषा धर्मरागश्च गुरुदेवादिपूजनम् । यथाशक्ति विनिर्दिष्टं लिङ्गमस्य महात्मभिः ।।१।।" ।।१।।

भोगीति - भोगिनो यौवनवैदग्ध्यकान्तासन्निधानवतः कामिनः । किन्नरादीनां गायकविशेषाणां गेयादौ गीतवर्णपरिवर्ताभ्यासकथाकथनादौ विषयः श्रवणरस-स्तस्मादाधिक्यमतिशयं । ईयुषी प्राप्तवती । किन्नरगेयादिजिनोक्त्योर्हेत्वोस्तुच्छत्वमहत्त्वाभ्यामतिभेदोपलम्भात् । अस्य सम्यग्दृष्टेः शुश्रूषा भवति । न परं सुप्तेशस्य सुप्तनृपस्य कथार्थविषयः संमुग्धकथार्थश्रवणाभिप्रायलक्षणः तदुपमा तत्सदृशी असम्बद्धतत्तद्ज्ञानलवफलायास्तस्या दौर्वैदग्ध्यबीजत्वात् ।।२।।

अप्राप्त इति - अस्य सम्यग्दृशः । अप्राप्ते पूर्वमश्रुते । भगवद्वाक्ये वीतरागवचने । यथा मनो धावति श्रोतुमनुपरतेच्छं भवति, तथा विशेषदर्शिनः सतः प्राप्तपूर्वेष्वर्थेषु धनकुटुम्बादिषु न धावति । विशेषदर्शनेनापूर्वत्वभ्रमस्य दोषस्य चोच्छेदात् ।।३।।

धर्मराग इति - धर्मरागश्चारित्रधर्मस्पृहारूपः । अधिकः प्रकर्षवान् । भावतोऽन्तःकरणपरिणत्याः । भोगिनो भोगशालिनः । स्त्र्यादिरागतो भामिन्याद्यभिलाषात् । प्रवृत्तिस्तु कायचेष्टा तु । अन्यथापि चारित्रधर्मप्राप्तिकूल्येनापि व्यापारादिनास्यात् । कर्मणश्चारित्रमोहनीयस्य । बलवत्तया नियतप्रबलविपाकतया ।।४।।

तदिति - तदलाभेऽपि कथञ्चिदन्यथाप्रवृत्त्या चारित्राप्राप्तावपि । तद्रागबलवत्त्वं चारित्रेच्छाप्राबल्यं स्वहेतुसिद्धं । न नैव । दुर्वचं दुरभिधानं । यद्यस्मात्तथाविधिविषमप्रघट्टकवशात् । पूयिकाद्यपि पूयं नाम कुथितो रसस्तदस्यास्तीति पूयिकं ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदानीं स्थैर्यादीनि पञ्च सम्यक्त्वभूषणानि गाथाद्वयेनाह –

[1]जिणपवयणे थिरत्तं[१] पभावणा[२] तह य वायपभिईहिं ।
सुपसत्थतित्थसेवा[३] सुत्तत्थेसुं च कोसल्लं[४] ।।२५।।
अच्चंतभत्तिराओ[५] पंचहि वि इमेहिं भूसणवरेहिं ।
भूसिज्जइ सम्मत्तं विसेसओ भत्तिराएण ।।२६।।

[2]**एभिः** स्थैर्यादिभिः **पञ्चभिरपि भूषणवरैः सम्यक्त्वं भूष्यते** । भूषणानि हि कनकरत्नमयान्यपि भवन्ति, केवलं तैर्बहिर्वपुर्मात्रमेव भूष्यते । स्थैर्यादिभिस्तु शुभात्मपरिणाम-रूपत्वात् सम्यक्त्वस्य तद्विभूषणैः परमार्थतः किलात्मैव विभूष्यते, अतः कनकादिविभूषणापे-क्षया अमीषां वरत्वम्, तेनैव भूषणवरैरित्युक्तम् ।

साम्प्रतं तान्येव प्रतिपदमाह – (१)**'जिनप्रवचने स्थिरत्वम्'**, तत्र जिनप्रवचनम्-अर्हच्छासनं तस्मिन् स्थिरत्वं-स्थैर्यम् । शाक्यौलूक्यादिकुप्रावचनिकानां तथाविधाद्भुतभूपतिप्रतिपत्तिप्रभृति-प्रभावदर्शने जिनशासनं प्रति निःप्रकम्पता । यद्वा मिथ्यात्वमोहनीयोदयवशात् कस्यापि जिनशासनं प्रति विप्रतिपद्यमानस्य सैद्धान्तिकविशुद्धहेतुदृष्टान्तबलेन पुनः स्थैर्योत्पादनम् ।

आदिशब्दाद्रूक्षं पर्युषितं च वल्लचनकादि । किं पुनरितरदित्यपिशब्दार्थः । घृतपूर्णाः प्रिया वल्लभा यस्य स तथा । द्विजो ब्राह्मणो भुङ्क्ते श्राति । यदत्र द्विजग्रहणं कृतं, तदस्य जातिप्रत्ययादेव अन्यत्र भोक्तुमिच्छाया अभावादिति । अन्येच्छाकालेऽपि प्रबलेच्छाया वासनात्मना न नाश इति तात्पर्यम् ।।५।।

गुर्विति - अस्य सम्यग्दृशः । गुरुदेवादिपूजा च कार्यान्तरस्य त्यागभोगादिकरणीयस्य । त्यागात् परिहारात् । निजशक्तेः स्वसामर्थ्यस्यानति(क्रमात्)-लङ्घनादनिगूहनात् । भावसारा भोक्तुः स्त्रीरत्नगोचरगौरवादनन्तगुणेन बहुमानेन प्रधाना विनिर्दिष्टा प्ररूपिता परमपुरुषैः ।।६।। - सम्य. द्वात्रि. वृत्तौ ।।

गाथा-२५-२६ 1. **तुलना** – "जिणसासणे कुसलया[१] पभावणा[२] तित्थसेवणा[३] थिरया[४] ।
भत्ती[५] अ गुणा सम्मत्तदीवया उत्तमा पंच" । प्र. सारो. ९३५ ।।
- सं. प्र. सम्यक्त्वाधि. गा. ७२ ।।

"स्थैर्यं प्रभावना भक्तिः कौशलं जिनशासने ।
तीर्थसेवा च पञ्चाऽस्य भूषणानि प्रचक्षते" ।। - यो. शा. २/१६ ।।

"कोसल्लया भो जिणसासणम्मि, पभावणा तित्थनिसेवणा य ।
भत्ती थिरत्तं च गुणा पसत्था, सम्मत्तमेए हु विभूसयंति" ।। - मू. शु. प्र. गा. ८ ।।

2. **तुलना** - अस्य सम्यक्त्वस्य पञ्च भूषणानि । भूष्यते अलङ्क्रियते यैस्तानि भूषणानि । जिनशासनविषये,

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२]तथा जिनप्रवचने इत्यनुवर्त्तते, **तस्मिन्नेव वादप्रभृतिभिः प्रभावना** । तत्र [3]प्रभवति जैनेन्द्रं शासनमात्मनैव । तस्य प्रभवतः प्रयोजकत्वं प्रभावना । सा च प्रभावकपुरुषभेदादष्टधा, न्यगादि च -

[4]पावयणी[5] धम्मकही[5] वाई[3] नेमित्तिओ[4] तवस्सी[5] य ।
विज्जा[4]सिद्धो[5] य कई[4] अट्ठेव पभावगा भणिया ।।१।।

तत्र प्रवचनं-द्वादशाङ्गं गणिपिटकं, तदन्यापेक्षया अतिशयवदस्यास्तीति प्रावचनी, युगप्रधानागम इत्यर्थः । धर्म्मकथा [5]आक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्वेदनी । सा चतुर्विधापि प्रशस्याऽस्यास्तीति धर्मकथावान् । वादि-प्रतिवादि-सभ्य-सभापतिरूपायां चतुरङ्गायां संसदि प्रतिपक्षविक्षेपपुरस्सरं स्वपक्षव्यवस्थापनार्थं नियमेन वदतीति वादी । निमित्तं त्रिकालविषय-लाभालाभादिप्रतिपादकं शास्त्रम्, तद् वेत्ति अधीते वा नैमित्तिकः । तपः सकामनिर्जरारूपं विकृष्टमष्टमदशमादि, तद् यस्यास्तीति स तपस्वी । विद्याः प्रज्ञप्तिप्रभृतयो जैनशासनाधिष्ठायिन्यः सान्निध्यमध्यासते यस्य स विद्यावान् । तथा सजीवनिर्जीवपदार्थसार्थाकर्षणपादलेपाञ्जनतिलकगुटिकावैक्रियत्वप्रभृतयः सिद्धयः, ताभिः सिद्ध्यति स्म सिद्धः । विद्यावांश्च सिद्धश्च विद्यासिद्धः । तथा कवते-गद्यपद्यादिभिः प्रबन्धैर्वर्ण्णनं करोतीति कविः । एते प्रावचनिकाप्रभृतयोऽष्टावपि स्वप्रभावेणैव प्रभवतो भगवच्छासनस्य देशकालौचित्येन यथायथं साहाय्यकरणात् प्रभावकाः, तेषां कर्म्म प्रभावना द्वितीयं भूषणम् ।

एतच्च सर्वत्र सम्बध्यते । स्थैर्यं जिनधर्मं प्रति चलितचित्तस्य परस्य स्थिरत्वापादनं स्वयं वा परतीर्थिकर्द्धिदर्शनेऽपि जिनशासनं प्रति निष्प्रकम्पता । - यो. शा. वृत्तिः २/१६ ।।

3. **तुलना** - प्रभवति जैनेन्द्रं शासनम्, तस्य प्रभवतः प्रयोजकत्वं प्रभावना । सा चाष्टधा प्रभावकभेदेन । यदाह - "पावयणी धम्मकही वाई नेमित्तिओ तवस्सी अ । विज्जासिद्धो अ कई अट्ठेव पभावगा भणिआ ।।" तत्र प्रवचनं द्वादशाङ्गं गणिपिटकम्, तदस्यास्त्यतिशयवदिति प्रवचनी युगप्रधानागमः । धर्मकथा प्रशस्याऽस्यास्तीति धर्मकथी, शिखादित्वादिन् । ("शिखादिभ्य इन्" सि० ७/२/४) वादि-प्रतिवादि-सभ्य-सभापतिलक्षणायां चतुरङ्गायां सभायां प्रतिपक्षनिरासपूर्वकं स्वपक्षस्थापनार्थमवश्यं वदतीति वादी । निमित्तं त्रैकालिकं लाभा-ऽलाभादि-प्रतिपादकं शास्त्रम्, तद्वेत्त्यधीते वा नैमित्तिकः । तपो विकृष्टमष्टमाद्यस्यास्तीति तपस्वी । विद्याः प्रज्ञप्त्यादयः शासनदेवताः ताः साहायके यस्य स विद्यावान् । अञ्जन-पादलेप-तिलक-गुटिका-सकलभूताकर्षण-निकर्षण-वैक्रियत्वप्रभृतयः सिद्धयः, ताभिः सिद्ध्यति स्म सिद्धः । कवते गद्य-पद्यादिभिः प्रबन्धैर्वर्णनं करोतीति कविः । एते प्रवचन्यादयोऽष्टौ प्रभवतो भगवच्छासनस्य यथायथं देश-कालाद्यौचित्येन-साहायककरणात् प्रभावकाः तेषां कर्म प्रभावना द्वितीयं भूषणम् ।
- यो. शा. वृत्तिः २/१६/धर्म सं. वृत्ति. गा. २२ ।।

4. **छाया** - प्रवचनी धर्मकथी वादी नैमित्तिकस्तपस्वी च । विद्यासिद्धश्च कविः अष्टैव प्रभावका भणिताः ।।

5. **तुलना** - तृतीयाक्षेपणी चैका तथा विक्षेपणी परा । अन्या संवेजनी निर्वेजनी चेति चतुर्विधा ।। - द्वा० द्वा० ९/४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३)तथा **सुप्रशस्ततीर्थसेवा** । तत्र [6]तीर्थं-समुद्रादेरिव संसारस्यापि तरणार्थं सुखावतारो मार्गः । स च संसारोत्तारे प्रातिकूल्येन गङ्गा-गया-प्रयाग-पुष्करादिरप्रशस्तोऽपि भवतीत्यत आह 'सुप्रशस्त' इति सुप्रशस्ततीर्थमपि द्विधा-द्रव्यतो भावतश्च तत्र द्रव्यतीर्थं यत्र भगवतामर्हतां जन्मदीक्षाज्ञानसमवसरणनिर्वाणादि भवति । यदवाचि -

[7]**जम्मं दिक्खा नाणं तित्थयराणं महाणुभावाणं ।**
जत्थ य किर निव्वाणं आगाढं दंसणं होइ ।।१।। [यो. शा. वृत्तिः २/१६]

भावतीर्थं चतुर्विधः श्रीश्रमणसङ्घः प्रथमगणधरो वा । यदाहुः - [8]**'तित्थं भंते ! तित्थं, तित्थयरे तित्थं ? गोयमा ! अरिहा ताव नियमा तित्थंकरे तित्थं पुण चाउव्वन्ने समणसंघे पढमगणहरे वा ।'** [भगवतीसूत्र-श० २०, उ० ८, सू० १४] एतयोः प्रशस्तयोर्द्रव्यभावतीर्थयोः सेवा पर्युपास्तिः, सुप्रशस्ततीर्थसेवा सा सम्यक्त्वस्य तृतीयं भूषणम् ।

(४)तथा [9]**सूत्रार्थयोः कौशलम्** । तत्र सूत्रं-जिनागमः । अर्थः-तदनुयोगः । उभयोरपि कौशलं-विभागज्ञानम् । सूत्रकुशलो हि श्रुतमात्र एव सूत्रे पूर्वापराविसंवादादिभिर्लक्षणैर्लक्षयति यदिदं नूनं जैनसूत्रम्, तदन्यथात्वेन चान्यथा । तथा, इदं परवचनमिदमाचार्यवचनम्, इदमुत्सर्गसूत्रमिदमपवादसूत्रमित्यादि जानाति । अर्थकुशलश्च श्रुतेऽप्यर्थे विमृशति-यदिदमनुपयुक्तभाषितमिदमुपयुक्तवचनम्, इदमसूया भणनम्, इदं भयसूत्रम्, इदं जिनकल्पिविषयमिदम्, इदं स्थविरकल्पिगोचर-

---

6. **तुलना** - तीर्थंनद्यादेरिव संसारस्य तरणे सुखावतारो मार्गः । तच्च द्वेधा द्रव्यतीर्थं भावतीर्थं च । द्रव्यतीर्थं तीर्थकृतां जन्म-दीक्षा-ज्ञान-निर्व्वाणस्थानम् । यदाह -
जम्मं दिक्खा नाणं तित्थयराणं महाणुभावाणं । जत्थ य किर निव्वाणं आगाढं दंसणं होइ ।।
भावतीर्थं तु चतुर्वर्णः श्रमणसङ्घः प्रथमगणधरो वा यदाह -
तित्थं भन्ते तित्थं तित्थयरे तित्थं ? गोयमा ! अरिहा ताव नियमा तित्थंकरे तित्थं पुण चाउवण्णे समणसंघे पढमगणहरे वा । तीर्थस्य सेवा तीर्थसेवा ।। - यो. शा. वृत्तिः २/१६ । धर्म सं. वृत्तिः गा. २२ ।।
7. **छाया** - जन्म-दीक्षा ज्ञानं तीर्थकराणां महानुभावानाम् । यत्र च किल निर्वाणमागाढं दर्शनं भवति ।।
8. **छाया** - तीर्थं भदन्त ! तीर्थं तीर्थकरस्तीर्थम् ? गौतम ! अर्हस्तावद् तीर्थङ्करः, तीर्थं पुनश्चतुर्वर्णः श्रमणसङ्घः प्रथमगणधरो वा ।।
9. जिनशासनविषये च कौशलं नैपुण्यम् । ततो हि व्यवहितादिरप्यर्थो विषयीक्रियते, यथाऽनार्यदेशवर्त्ती आर्द्रकुमारः श्रेणिकपुत्रेण अभयकुमारेण कौशलात् प्रतिबोधित इति ।
- यो. शा. वृत्तिः २/१६ । धर्म सं. वृत्तिः गा. २२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मित्याद्यवबुध्यते । अकुशलस्तु सूत्रार्थेषु कदाचिदन्यथास्थितमन्यथावगच्छन्नुपदिशंश्च स्वपरयोर्मिथ्यात्वहेतुत्वेन भवाभिनन्दी भवति । अतः सूत्रार्थकौशलेनापि चतुर्थेन सम्यक्त्वं विभूष्यते ।

(५)तथा – [10]**अत्यन्तः भक्तिरागः** पञ्चमं भूषणं दर्शनस्य । जिनप्रवचन एव आत्यन्तिकः प्रगाढो रागो भक्त्यतिशयः । तद्वशाच्च देवगुरुसङ्घकृत्ये निजवित्तप्राणानपि तृणायाप्यमन्यमानस्य तदुचितेषु च विनयवैयावृत्त्यादिषु निरन्तरं प्रवर्त्तमानस्य, विशेषतश्च कान्तार-विषमदुर्ग्ग-रोगातङ्क-दुर्भिक्षादिषु चतुर्विधमपि सङ्घं यथौचित्येन पानान्नवस्त्रपात्रौषधभेषजपीठफलकशय्यादिभिरुपचरतः, सर्वबलेन च प्रत्यनीकप्रत्यूहमपहस्तयतः समनुमीयते निबिडोऽस्य जिनप्रवचन**भक्ति-रागः, तेन** च **विशेषतः सम्यक्त्वं विभूष्यते** ।।२५।।२६।।

अथान्यविभूषणेभ्यः कथमनेन सविशेषं दर्शनमलङ्क्रियते ? इत्याह –

संतम्मि भत्तिराए जेण पवित्ती पभावणाईसु ।
तिलयं व तओ सारो सम्मत्तविभूसणेसु इमो ।।२७।।

सति हि विद्यमाने **भक्तिरागे** मानसप्रीतिप्रकर्षे, **येन** कारणेन **प्रवृत्तिः** प्रचारः, **प्रभावनादिषु** सम्यक्त्वविभूषणेषु, अन्तरेण हि भक्तिरागमसम्भवीनि प्रभावनादीनि, विद्यमानान्यपि वा न खलु यथोक्तफलप्रदानि । **तत** एव हेतोः सर्वेष्वपि स्थैर्यादि**सम्यक्त्वविभूषणेषु अयं** भक्तिरागः **सारः** रहस्यम् । किंवत्? **तिलक इव** । यथा हि किल तिलकः-[1]अलिकविभूषणं कुण्डलग्रैवेयहार-केयूरादिषु प्रमदाभूषणेषु सार इति ।।२७।।

पुनर्भक्तिरागस्यैव गौरवमुद्भावयन्नाह –

भूसिज्जइ सम्मत्तं तह जिणमयभत्तिरायरयणेण ।
जह तित्थयरसिरी वि हु सम्मत्तधरं नरं वरइ ।।२८।।

---

10. भक्तिः प्रवचने विनय-वैयावृत्त्यरूपा प्रतिपत्तिः ।(१) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि गुणाधिकेष्वभ्युत्थानमभि-यानं शिरस्यञ्जलिकरणं स्वयमानसनढौकमासनाभिग्रहो वन्दना पर्युपासना अनुगमनं चेत्यष्टविधकर्मविनय-नादष्टविध उपचारविनयः ।(२) व्यावृत्तस्य भावः कर्म वा वैयावृत्यम् ।तच्चाचार्योपाध्यायतपस्वि-शैक्षक-ग्लान-कुल-गण-सङ्घसमनोज्ञेषु दशस्वन्न-पान-वस्त्र-पात्र-प्रतिश्रय-पीठ-फलक-संस्तारादिभिर्धर्म्मसाधनैरुप-ग्रहः, शुश्रूषा भैषज-क्रिया कान्तार-विषम-दुर्गोपसर्गेष्वभ्युपपत्तिश्च । - यो. शा. वृत्तिः २/१६ ।।

गाथा-२७ 1. **अलिक** न० "अल्यते भूष्यते तिलकादिभिः इति अलिकम्, क्रीकल्यलि" (उणा-३८) इति इकः प्रत्ययः" । - अभि. चि. श्लो. ५७३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेन पूर्वोक्तेन **जिनमतभक्तिरागरत्नेन** तथा कथमपि **सम्यक्त्वं विभूष्यते** अलङ्क्रियते । किल सम्यक्त्वमेव तावदात्मनः कनकभूषणप्रतिमम्, तस्य च भक्तिरागरत्नमलङ्करणमतो भूषणस्यापि भूषणनिभेनानेन **तथा** सम्यक्त्वं भूष्यते **यथा** भक्तिरागरत्नालङ्कृत**सम्यक्त्वभूषणधरं नरं** पुमांसम्, आस्तां तावन्मर्त्त्यामर्त्त्यश्रियो यावत् सर्वोत्तमा **तीर्थकृत्कमलापि**[1] तं सरभसमभिसृत्य **वृणोति** । भवति हि विशिष्टभूषणधरः स्वभावसुन्दरः पुमान् प्रमदाजनस्याभिगम्य इति ।।२८।।

अथ कथं सम्यक्त्वधरे नरि निरतिशयाप्यर्हदिन्दिरा[1] रमत इत्यवगतमत एतत्समर्थनायाह –

इत्तु च्चिय पुव्वभवे जिणपवयणनिबिडभत्तिराएण ।
पत्तं तित्थयरत्तं सिरिसंभवतित्थनाहेण ।।२९।।

इत एव यत इदं पूर्वोक्तमेवमत एव **पूर्वं** श्री**विपुलवाहन**नरेन्द्र**जन्मनि जिनप्रवचननिबिड-भक्तिरागेणैव** हेतुना **प्राप्तं** लब्धं **तीर्थकरत्वं** परमार्हन्त्यपदवीसमुद्भासितं जिनराजत्वम् । केन ? इत्यत आह – **श्रीसम्भवतीर्थनाथेन** । जम्बूद्वीपभरतेऽवसर्प्पिणीसमुत्पन्नश्रीऋषभादिचतुर्विंशिकातृतीयतीर्थनाथेन [2]**श्रीसम्भव**नाम्ना ।।२९।।

सम्प्रदायगम्यं च **श्रीसम्भवप्रभो**श्चरितम् अतस्तमेवाह –

।। श्री सम्भवप्रभुचरितम् ।।

[प्रथमो भवः]

उद्धरियमोहसल्लं अतुल्लकल्लाणकंदघणतुल्लं । सिद्धिपुरंधीदइयं वंदिय तित्थंकरं तइयं ।।१।।
तस्सेव सयलसुहसंभवस्स सिरिसंभवस्स जगगुरुणो । भुवणच्छरियं चरियं लेसेण जहासुयं भणिमो ।।२।।
लवणोयलहरिलोलंतलोलफेणच्छडापयडहासं । बालं व [3]जंबूदीवं दट्ठुं ठविउं निउच्छंगे ।।३।।

गाथा-२८ 1. **कमला** स्त्री० काम्यते श्रिया इति कमलं, 'मृदिकन्दि' (उणा-४६५) इत्यलः । कमलमस्त्यस्याः इति कमला । - अभि. चि. श्लो. २२६ ।।

गाथा-२९ 1. **इन्दिरा** स्त्री. इन्दत्यनया इन्दिरा "मदि मन्दि" (उणा-४१२) इति बहुवचनादिरः । - अभि. चि. श्लो. २२६ ।।

2. **संभवः** पु० शं सुखं भवत्यस्मिन् स्तुते शंभवः, यद्वा गर्भगतेऽप्यस्मिन्नभ्यधिकसस्यसंभवात् संभवोऽपि । - अभि. चि. दे. का. श्लो. २६ ।।

3. जंबूदीवं सं. प्र. ।। जंबुदीवं पा. प्र. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलिंगंतो कालोयजलहिवेलाविसालबाहाहिं । धायइसंडो दीवो अत्थि दुईओ वि अदुईओ ।।४।।
छक्खंडं पि अखंडं थिरस्सरूवं पि विउलवेयड्ढं । बहुगुत्तं पि अगुत्तं खित्तं एरावयं तत्थ ।।५।।
कुलसेलसमा सेला वणसंडा देवरमणसमरुइणो । नगरागारा गामा नगरा सुरपुरसमा जत्थ ।।६।।
अक्खलियनिखिलखेमा खेमपुरी अत्थि पुरवरी तत्थ । पवरनियरिद्धिवित्थरअवहत्थियतियसवइनयरी ।।७।।
पसरंतागुरुगुरुधूमपडलकयजलयजाललल्लिएहिं । पणवन्नरयणतोरणकरविरइयतियसचावेहिं ।।८।।
वरकणयकलसविलसंतकंतिपायडियतडिकलावेहिं । वज्जंतमंजुगुंजियमुयंगगंभीरगज्जेहिं ।।९।।
पवणुद्धुयसियधयवडचलिरबलागेहिं देवभवणेहिं । जत्थ अपत्थावि ह्रिय पयडिज्जइ पाउसारंभो ।।१०।।

अवि य –

दक्खो दक्खिन्नपरो परोवयारी पियंवओ सरलो । गुणरागी य कयन्नू पन्नवणिज्जो समज्जाओ ।।११।।
सविवेओ सुविणीओ चाई अविकंथणो किवालू य । सद्धम्मकम्मनिरओ निवसइ पाएण जत्थ जणो ।।१२।।

किञ्च –

हियमियमहुरगिराओ गुरुयणविणओवयारचउराओ । परकज्जपवत्ताओ परतत्तिनिवित्तचित्ताओ ।।१३।।
परिचियउचियकलाओ, निरुवमसोहग्गरूवकलियाओ । सिचयावरणं[4] लज्जापडेण पुण रत्तयंतीओ ।।१४।।
नियपियपिम्मपराओ दूरुज्झियखलकुसीलमग्गाओ । कुलविलयाओ दीसंति जत्थ सुइसीललल्लियाओ ।।१५।।
तत्थ य चायपरक्कमनयविउलो विउलवाहणो राया । जस्स जसपसरभरियं वियरइ नायासमवयासं ।।१६।।
लीलाए लंघंती महीहराणं पि वियडकडयाइं । आण व्व जस्स सेणा न खलइ वेलावणेसुं पि ।।१७।।
सोसंतो कित्तिसरे निव्वाविंतो पयावपडुदीवे । जो सत्तूण तरूण व महाबलो नामए सीसे ।।१८।।
सव्वासुं पि दिसासुं जस्स सुदुस्सहपयावरवितविया । करिणि व्व वेरिलच्छी वच्छयले सीयले लीणा ।।१९।।
सोहामित्तं सेणा पहरणपडलो वि बाहिराडोवो । इक्कं पि हु अक्खलियं कज्जकरं जस्स मइसत्थं ।।२०।।
मयणु व्व नियपियाणं, पररमणीणं सिणिद्धबंधु व्व । जणउ व्व जो पयाणं तणउ व्व गुरूणमिक्को वि ।।२१।।
तह कहवि हु संकंतो मणम्मि सव्वप्पणा जणस्स निवो । जह सो तब्भयभीओ मणसा वि न चिंतए पावं ।।२२।।
करुणामहन्नवेणं तह तेण निसेहिओ वहो भुवणे । जह हरइ जंतुजायं कालो काले वि सासंको ।।२३।।
जह पडिवन्नो सामी सु ह्रिय तक्कालिएहिं निवईहिं । तह तेण वि पडिवन्नो सव्वन्नू चेव सामि त्ति ।।२४।।
इय एस धम्मविजई निज्जियजेयव्वनिव्वुओ समयं । वोलेइ विणोएहिं विविहेहिं विबुहनाहु व्व ।।२५।।
समइक्कंते समए सुबहुम्मि दुसमओ समावडिओ । कइया वि तस्स रट्ठे कणिट्ठबंधु व्व कालस्स ।।२६।।
दुब्भिक्खडमरहरणो होइ पुरा नूणमेस तित्थयरो । इय मुणिऊण व पढमं पि दंसिओ तेण तस्सप्पा ।।२७।।
दीसंति पाउसे वि हु काओयरधूसरा घणा गयणे । भाविरकुणपगणोवरि गिद्धच्छायं व दाविंता ।।२८।।

4. सिचय पु. वस्त्रार्थे ।। - पाइय ल. ना. गा. २९१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुब्भिक्खे वि हु जाए जीवइ तणुओ वि नणु जणो कीस ? ।
इय दुक्खेण व रक्खसदिसा वि नीससइ पवणमिसा ।।२९।।
इय दुसमए पयट्टे नवऽन्ननिप्फत्तिमन्तरेण जणो । पुव्वन्नसंखएणं खणे खणे खिज्जिउं लग्गो ।।३०।।
अह कइया वि नरिंदो पहाणकइवयनरेहिं परियरिओ । पासायउदयमहिहरसिहरे मिह(हि)रुव्व आरूढो ।।३१।।
जाव निवडंतकुवलयदलपयरं पिव सदिट्ठिवाएहिं । कुणइ पुरपरिसरं ता पिक्खइ कंकालजालभियं ।।३२।।
तत्तो संभंतमणो पभणइ पासट्ठिए नरे एवं । "अहह ! किमदिट्ठमस्सुयपुव्वं एयं विभावेमि ? ।।३३।।
किं समहियकरउप्पायणेण ? किं तक्करपओगेण ?। खीणधणो नयरिजणो रोगेण व पावए निहणं ।।३४।।
जं नरकरंकसंकुलमेवं पुरपरिसरं" ति निवभणिए । ते विन्नवंति "न हु देव ! पुव्वहेऊणमेगो वि ।।३५।।
किंतु अइभीसणेणं दुब्भिक्खेणं न सस्सनिप्फत्ती । संते वि धणे पाउणइ तेण निहणं नयरिलोओ" ।।३६।।
इय सोउं कारुणिओ सहसा तद्दुक्खदुक्खिओ राया । नियकुट्टारनिउत्ते पुरिसे एवं समाइसइ ।।३७।।
"भो भो सव्वत्थ पुरे उग्घोसावेह जस्स अत्थि धणं । सो निवकुट्ठाराओ गिन्हउ धन्नं जहिच्छाए ।।३८।।
जस्स पुण नत्थि दविणं सो एमेव य कुडुंबभरणखमं । गिन्हउ किंच पुरीए चउसुं पि हु गोउरग्गेसु ।।३९।।
सत्तागारे कारेह दीणदुहियाणा[ह]भोयणनिमित्तं । पासंडीणं पि कए तदुचियदाणं पयट्टेह ।।४०।।
सीयंतसावयगणो भुंजउ मह रसवईइ अणवरयं" । ते हि 'तह'त्ति तं रायसासणं सव्वमवि विहियं ।।४१।।
अह विसेसुवउत्तो राया सरिउं विसेसकायव्वं । पत्तो निग्गंथाणं मुणीण वसहीइ सयमेव ।।४२।।
आगमभणियविहाणेण वंदिउं मुणिवरिंदपयजुयलं । विन्नवइ भावसारं सिरविरइयकरकमलकोसो ।।४३।।
"भयवं ! अत्तहियं पि हु पमायवसगेण सुमरियं एयं । रोगाउरेण परमोसहं व न मए सुमुणिदाणं ।।४४।।
धम्मोवग्गहदाणं मुणीण सुस्सावएहिं सयकालं । दायव्वं दुब्भिक्खे किं पुण भणिमो दुलहभिक्खे ? ।।४५।।
ता काऊण पसायं मह अंतेउरमहाणसेसु सया । चउविहमवि आहारं समणेहिं तह य समणीहिं ।।४६।।
ओसहभेसज्जजुयं अहागडं फासुयं च एसणियं । गिन्हिय उद्धरियव्वो भवावडे निवडिरो अहयं ।।४७।।
किर इच्चिरं पि कालं जं न मए पूइओ समणसंघो । नणु अहयं तेणं चिय वंचियमप्पाणयं मन्ने ।।४८।।
धन्नाण वन्नणिज्जाण पुव्वभवचिन्नपुन्नपन्नाणं । गेहंगणाओ संघो कयकिच्चो निच्चमोसरइ ।।४९।।
अणुवित्तिप्पभिईहिं वि दिन्नं संघे न निप्फलं दाणं । दढधम्मरायअणुरत्तचित्तवित्तीण किं भणिमो ? ।।५०।।
चक्कहरसक्कपमुहा वहंति सीसेण सासणं जस्स । जिणपवयणस्स कुज्जा तस्सावन्नं कह सयन्नो ? ।।५१।।
लब्भंति नरामरसिवसुहाइं जिणपवयणस्स सेवाए । तस्स पुण सम्मसेवा लब्भउ कयरेण मुल्लेण ? ।।५२।।
अन्नंतमलिणघणपावपडलकलुसाइ रायलच्छीए । मह होउ निम्मलत्तं अज्जं सिरिसंघभत्तीए ।।५३।।
चेइयजइसुवज्जुज्जइ जत्तियमित्तं तदेव सफलं ति । सेसमणत्थमणत्थस्स कारणं मुणह सव्वं पि ।।५४।।
उवजुज्जउ जीयं पि हु महजिणमयधम्मकम्ममासज्ज । खणघडिरविहडिराणं का गणणा चाऽन्नवत्थूणं ?" ।।५५।।
इय तेण तया जिणपवयणम्मि दढधम्मरायरत्तेणं । सिरिविउलवाहणेण समज्जियं तित्थयरनामं ।।५६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किं चुज्जं जं रत्ना तक्कालजणाण इय हियं विहियं । एसो हु भविस्सभवे छज्जीवहियं पि किल काही ।।५७।।
एवं च पयइविउलासएण सिरिविउलवाहणनिवेण । दाणे पयट्टिए मुइयमाणसो भणइ नयरिजणो ।।५८।।
"आचंदसूरमेसो नंदउ सिरिविउलवाहणनरिंदो । दुब्भिक्खरक्खसाओ जेण जणो रक्खिओ सयलो ।।५९।।
ववहारमित्तमेयं संति जमम्हं पुढो पुढो पिउणो । सिरिविउलवाहणो च्चिय परमत्थेणं पिया इक्को ।।६०।।
नंदउ नरिंदचंदो अउव्वकप्पद्दुमो इमो भुवणे । संकप्पियम्मि मरणे जो फलिओ जीवियफलेणं ।।६१।।
उद्धरइ तिहुयणं पि हु धम्मो एएण पुण नरिंदेण । धम्मिजणुद्धरणेणं उद्धरिओ उयह धम्मो वि ।।६२।।
ता अम्ह जीविएण वि आकप्पं विउलवाहणो जियउ । जेणेसो दुक्कालो अकालमच्चु व्व परिखलिओ" ।।६३।।
इय वित्थरंतकित्तिं पिक्खंतो विउलवाहणनरिंदं । नियया वराहविलिउ व्व दुसमओ वि हु समोसरिओ ।।६४।।
निप्फन्नसयलसस्सा पडिपुन्नसरा सरिप्पवाहिल्ला । फलफुल्लसमिद्धवणा पुव्वं पिव वसुमई जाया ।।६५।।
अह अन्नया नरिंदो पिच्छंतो नयरिलच्छिविच्छड्डं । जा पासाए चिट्ठइ ता सहसा उत्तरदिसाए ।।६६।।
पाउब्भूयं भववणवराहतुल्लं नहम्मि मेहदलं । परिवड्ढिउं पयट्टं व दविणमुवचित्रपुन्नस्स ।।६७।।
खणमित्तेण य नीलीरसरंजियकंबुयं पिव मयच्छिं । चूसेइ गयणलच्छिं सछंदपवड्ढिरं एयं ।।६८।।
फुरिया य तम्मि विज्जू कसवट्टे कणयनिहसरेह व्व । सम्मज्जिउ व्व मुरओ गंभीरं गज्जियओ य इमो ।।६९।।
जा किर धारासारं करिही ता अवरदक्खिणदिसाओ । उद्धाइओ पचंडो पवणो संखुद्धभुवणजणो ।।७०।।
तुसरासिं पिव घरपुरपायारे कक्करं व गिरिसिहरे । तिणमिव मुसुमूरंतो दुमे य एसो पवित्थरिओ ।।७१।।
विहिओ य दिट्ठनट्ठो खणमित्तेणेव तेण सो मेहो । तो विउलवाहणनिवो संभंतो चिंतए एवं ।।७२।।
जारिसओ वुत्तंतो इमस्स मेहस्स तारिसो चेव । भुवणम्मि रज्जभुयबलधणजुव्वणजीवियाईणं ।।७३।।
तथाहि –
"क्व ते पुरुषशार्दूला यैरयं जगतीजनः । स्थापितः स्वव्यवस्थासु सर्व्वस्थितिविशारदैः ।।७४।।
कराग्रजाग्रत्रिस्तृंशवशीकृतचराचरैः । एकच्छत्रं कृतं राज्यं यैः सम्राजः क्व ते किल ।।७५।।
ऋणरक्षोभयाद् भीमाद् विमोच्य निखिलं जनम् । वत्सरः स्थापितः स्वस्य यैः क्व ते विपुलाशयाः ।।७६।।
कण्टकैरिव तीक्ष्णास्यैर्विद्धो मर्म्मसु यैर्जनः । दृश्यन्ते न खलास्तेऽपि क्वापि कल्पान्तजीविताः ।।७७।।
किन्तु कीर्त्तिरकीर्त्तिश्च स्वस्य कर्म्मभिरर्जिता । जागर्त्यनश्वरा सेयं सतामप्यसतामपि ।।७८।।
किञ्चातिक्रान्तचिन्ताभिर्यदिदं क्रूरकर्म्मभिः । विविधैर्भुज्यते राज्यं सार्द्धं तत् किं [5]प्रयास्यति ।।७९।।
आयासैरर्जितं यच्च यच्च यत्नशतैर्धृतम् । निधाने धनमप्येतन्नानुयाति पदात् पदम् ।।८०।।
उपालब्धैः किमपरैर्यदिदं लालनाशतैः । लाल्यते वपुरस्यापि कृतघ्नेषु धुरि स्थितिः ।।८१।।
कलत्रमित्रपुत्राद्यैः सह सम्भुज्यते सुखम् । उपस्थिते पापफले दुःखमेकाकिभिर्नृभिः ।।८२।।
अहो मायेन्द्रजालेन महता मोहितं जगत् । दृष्टनष्टं वस्तुजातं शाश्वतं मन्यते यतः ।।८३।।

5. प्रमाद्यति इति पाठो भाति-संपा. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरङ्गतरलं रूपं यौवनं स्वप्नसन्निभम् । आयुस्तडिल्लतालोलमिच्छैकास्त्यनपायिनी ।।८४।।
धिगस्माभिः परस्वार्थपरिशीलितपुस्तकैः । कियच्चिरमहो चक्रे स्वार्थभ्रंशेन मूर्खता ।।८५।।
न किञ्चिद् गतमद्यापि वयमेतेऽधुनैव हि । पराङ्मुखाः परार्थेषु स्वार्थायैव त्वरामहे" ।।८६।।
इय चिंताणंतरमेव ओयरेऊण उवरिमतलाओ । जाव सहाइ निसन्नो ता पडिहारेण विन्नत्तो ।।८७।।
"वद्धाविज्जह सामिय ! कामियसंपत्तिझत्तिलाभेण । जं अज्ज समोसरिया सयंपभा नाम आयरिया" ।।८८।।
तं सोउं नरनाहो निपीयपीऊसरसपवाहु व्व । उक्कंठिओ गुरूणं घणाघणाणं सिहंडि व्व ।।८९।।
अणुगम्मंतो सामंतमंतिपमुहप्पहाणलोएहिं । चउरंगचमूकलिओ चलिओ तव्वंदणनिमित्तं ।।९०।।
संपत्तो य कमेणं पिच्छइ मिच्छत्ततिमिरदिणनाहं । करुणारसप्पवाहं कसायदावग्गिजलवाहं ।।९१।।
रागोरगखगनाहं वरदंसणनाणचरणअत्थाहं । परिचत्तसत्तवहं सयंपभं नाम मुणिनाहं ।।९२।।
वंदिय विहिणा आणंदबाहजलपडलविमलियकवोलो । रोमंचअंचियतणू उवविट्ठो तस्य पयमूले ।।९३।।
भयवं पि सजलजलहरगज्जारवमणहराइ वाणीए । वरनाणमुणियनरवरमणभावो भणिउमारद्धो ।।९४।।

तथाहि –

"भीमे भवार्णवेऽमुष्मिन्नानागतिषु जन्तवः । स्वकर्मप्रेरिता यान्ति यादांसीव जलोर्मिभिः ।।९५।।
बध्नाति लूतालालाभिर्यथा स्वं स्वाभिरन्वहम् । एवमेव हि संसारी स्वं स्वकैरेव कर्म्मभिः ।।९६।।
स्वैरेव कर्म्मभिः केचिदुच्चां नीचां गतिं परे । यान्ति प्रासादकृत्कूपकारावत्र निदर्शनम् ।।९७।।
यावन्त एव जायन्ते जन्मिनां सुखहेतवः । तावन्त एव तेषां स्युः प्रायेणाऽसुखहेतवः ।।९८।।
राज्यादीनि वितन्वन्ति सङ्गमे यावतीं मुदम् । तस्याः सहस्रगुणिताममुदं विगमे पुनः ।।९९।।
क्षितिधव ! तत्तव भवदवदवथुव्यथितस्य तदुपशमहेतुः । अविलम्बितमभिरामः सेव्यो[ऽयं] संयमारामः ।।१००।।
नन्दनवन इव यस्मिन् महाव्रतान्येव पादपाः पञ्च । सम्यक्त्वसुदृढमूलाः शीलाङ्गदलावलीललिताः ।।१०१।।
व्रततीततीभिरिव ये प्रवचनजननीभिराश्रिताः सततम् ।
क्षान्त्यादिदशदिगन्तरविसर्प्पिशाखाप्रशाखाढ्याः ।।१०२।।
सततं च सिच्यमानाः प्रविततवैराग्यसारणीसलिलैः । चरणकरणाद्यनिन्दितविहङ्गगणगौरवपदं ये ।।१०३।।
क्रोधाग्निना न प्लुष्टा न कम्पिता मानकुञ्जरकरेण । तृष्णातुषारवृष्ट्या न स्पृष्टाः कपटकीटैश्च ।।१०४।।
अणिमादिसिद्धिबन्धुरपुष्पप्रकरप्रसिद्धिमधुमधुराः । आलोकाग्रविसर्प्पिप्रभावसौरभ्यसुभगाश्च ।।१०५।।
स्वाध्यायमधुरझङ्कृतिमुखरमुनीन्द्रालिजालसंसेव्याः । शिवसौख्यफलमनन्तं फलन्ति ये सेविताः सम्यक् ।।१०६।।
इति विततव्रतविटपिच्छायामण्डलतलेऽस्ति विस्तीर्णम् ।
यस्मिन् जिनागमसरः प्रशमामृतविततकल्लोलम् ।।१०७।।
अपनयति विषयतृष्णां, शमयति भवदवसमुद्भवं तापम् ।
जनयति चित्तस्वास्थ्यं निपीतमात्रं पयस्तस्य ।।१०८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मिन् सततविकस्वरनिरतिशयातिशयसरसिरुहगहने ।
विलसन्ति राजहंसा भवादृशाः सुगतिधृतरतयः ।।१०९।।
अस्मिंश्चारित्रवने ललतस्तव निर्विकल्पहृदयस्य । स्वयमेवाभिसरिष्यति सिद्धिवधूर्बद्धरागा त्वाम्" ।।११०।।
आकर्ण्य कर्णमधुरां तथ्यां पथ्यां गिरं गुरोरेवम् । रोमाञ्चकञ्चुकाञ्चितवपुर्लतः क्षितितलगभस्तिः ।।१११।।
पीतामृतमिव करतलकलिताखिलभुवनकोशराज्यमिव ।
निस्तीर्णमिव भवाब्धेरधिगतनिर्वाणसौख्यमिव ।।११२।।
कलयन्नात्मानमथ प्रणतिपरे शिरसि करयुगं न्यस्य । विज्ञपयितुमिति मुनिपतिमारेभे भक्तिभरतरलः ।।११३।।
"भयवं ! उद्धरिओ हं भवावडे निवडिरो तए इन्हिं । धम्मोवएसहत्थावलंबदाणेण मुणिनाह ! ।।११४।।
को अन्नो वि हु मुणिवइ ! निक्कारणबंधवो तुमाहिंतो । जेणेस देसिओ मे मुक्खपहो मोहनिहयस्स ।।११५।।
जह जह करुणाइ तुमं मुणिंद ! पत्तो सि इत्तियं भूमिं । जह दुहदलणपराए गिराइ अणुसासिओ अहयं ।।११६।।
तह चेव [6]पसिय वियरसु जिणिंदवरदेसियं वयं मज्झ । होमि अहं पि तुमं पिव सपरेसि पियंकरो जेण" ।।११७।।
भणियं च मुणियनरवरवयपरिणामेण मुणिवरिंदेण । "धन्नो तुमं महायस ! साहु सुलद्धं तए जम्मं ।।११८।।
जं तुह एसा बुद्धी तेण धुवं हत्थगोयरा सिद्धी । एयं चिय कायव्वं उत्तमपुरिसाण तुम्हाणं" ।।११९।।
लद्धाएसो एसो गुरूण गंतूण सहरिसं रज्जे । सिरिविमलकित्तिकुमरं ठविऊणं वियलियममत्तो ।।१२०।।
उत्थप्पणापुरस्सरमहिणवनिवाविहियनिक्खमणमहिमो । निक्खंतो स महप्पा सयंपभायरियपयमूले ।।१२१।।
तवउवहाणपुरस्सरमहिगयसुत्तत्थतदुभओ कमसो । परिणयभावचरितो तिणकंचणलिट्ठसमचित्तो ।।१२२।।
विरओ एगविहाओ असंजमाओ दुबंधणविउत्तो । गारवसल्लविराहणदंडतिगेणं अणभिभूओ ।।१२३।।
सन्नाकसायविगहाचउक्कमुक्को अमुक्कनियमधुरो । कामगुणासवकिरियाण पंचगेणं अणालीढो ।।१२४।।
छज्जीववहविउत्तो भएहिं सत्तहिं मएहिं अट्ठहिं य । नवविह अबंभविरओ आसत्तो दसविहे धम्मे ।।१२५।।
बद्धं गिहत्थभावे जिणपवयणतिव्वभत्तिराएण । तित्थयरत्तं अरहंतपमुहठाणेहिं दीवंतो ।।१२६।।
इय विहरंतो भयवं अप्पडिबद्धो सवासराएस(सु) । परिपालइ चिरकालं सामन्नमणन्नसामन्नं ।।१२७।।
आवस्सगजोगेसु वि असत्तिमह अत्तणो विभावंतो । उक्कोसाए संलेहणाइ पुव्विं पि संलिहिओ ।।१२८।।
नाऊण अदीणमणो भत्तपरिन्नाइसमयमुवउत्तो । आलोइयअइयारो वयाइं उच्चरइ अणुकमसो ।।१२९।।
खामेइ सव्वसत्ते संघं च समाहिओ चउविहं पि । एवं कयकायव्वो 'सिद्धाण नमु'त्ति भणिऊण ।।१३०।।
चउविहमवि आहारं मुंचइ आगारवज्जियं धीरो । उल्लसिरसुद्धलेसो खणे खणे तयणु पज्जंते ।।१३१।।
रुन्धन्नाश्रवकारणानि शरणं गच्छन् चतुर्णां, त्यजन् आशंसां च चतुर्विधां बुधजनैर्निन्द्यं निदानं तथा ।

[द्वितीयो भवः]

ध्यायन् पञ्चनमस्कृतिं शुभमनास्त्यक्त्वा तनुं मानवीम्, सञ्जज्ञे त्रिदशोत्तमः स भगवान् ग्रैवेयके सप्तमे ।।१३२।।

6. पसिअ-अक (प्र+सद्) हेम. प्रा. व्या. १/१०१ पाइ. स. म. पृ. ५/८० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्रेन्द्रादिव्यवस्था न खलु न च सुराः केचिदप्याभियोग्याः,
सेव्यो नैवास्ति कश्चित् निरुपमसुकृती सेवको वा तदन्यः ।
एकोनत्रिंशदब्धिप्रमितमथ स तत्रायुरासाद्य दिव्ये,
क्रीडन् कामं विमाने सुचरितसुकृतश्रेणिरुच्चैरुवास ।।१३३।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीमदभयदेवसूरिपट्टप्रतिष्ठित-श्रीदेवभद्रसूरिशिष्यावतंस-प्रभानन्दाचार्यसौदर्यपण्डित-श्रीपरमानन्दविरचिते **हितोपदेशामृत-विवरणान्तर्वर्त्तिनि श्रीसम्भवनाथचरित्रे** श्रीजिनेन्द्रजीवपूर्वभवस्वरूपतीर्थकृन्नामकर्म्म-निबन्धनादिवर्णनः **प्रथमभवः सुरभवश्च द्वितीयः** समाप्तः ।।श्रीः।।

[तृतीयो भवः]

अत्थित्थ तिरियलोए लोउत्तरनरसमुब्भवपवित्ते । दुगुणं दुगुणं परिवड्ढिरेहिं परिमंडलठिएहिं ।।१।।
संखाइक्कंतेहिं समुद्ददीवेहिं सेवगेहिं व । सामि व्व परिक्खित्तो समंतओ सव्वमज्झत्थो ।।२।।
कणयायलप्पहोलिरदीहसिहागुरुपहापहासिल्लो । जंबुद्दीवो दीवो दीवो इव भुवणभवणस्स ।।३।।
तत्थत्थि भरहखित्तं खित्तं पिव विविहसस्सपरिकलियं । भूभालं पिव विरइयरययायलमलयरुहरेहं ।।४।।
तस्सऽत्थि मज्झखंडस्स मज्झदेसम्मि सुकइवाणि व्व । सुत्थपसत्थपयत्था सावत्थी नाम वरनयरी ।।५।।
जीइ जिणमंदिरेसुं कालागुरुधूमघोरणी सहइ । चिरकयकुकम्मपडली पलायमाण व्व नमिराणं ।।६।।
जत्थऽब्भंलिहसुरगिहखलिरस्स [5]अणूरुसारहिरहस्स । सालच्छलेण गलियं चक्कं तेणिक्कचक्को सो ।।७।।
गयणग्गलग्गगोउरखलिरी जीए खणं हरिहयस्स । संदणतुरंगमाला वंदणमाल व्व पडिहाइ ।।८।।
चिरविच्छुडियं लच्छिं पियतणयं जीइ निवसिरिं सोउं । पत्तु व्व खीरजलही नेहेण [6]निहेण परिहाए ।।९।।
निसिदुल्लक्खस्स जहिं नयरनारीमुहिंदुबिंबेहिं । लंछणछलेण ससिणो [7]मयमयतिलयं पियाइ कयं ।।१०।।
संकंताओ मणिकुट्टिमेसु रेहंति जत्थ रमणीओ । हीरंतीओ व भुवणाहिवेहिं लायन्नलुद्धेहिं ।।११।।
धम्मत्थकाममुक्खा नियनियसामग्गिसंगदुल्लसिया । अन्नुन्नमबाहाए जीए निवसिंसु बंधु व्व ।।१२।।
तत्थासि सिसिरकरकंतिकंतजसपसरपूरियदियंतो । विजियदुविहारिवारो जियारिनामेण नरनाहो ।।१३।।
जस्स पयावो वडवानलस्स नूणं हविज्ज संबंधी । रिउरमणिनयणघणसलिलसेयओ जं समुल्लसइ ।।१४।।
जस्स दिसिविजयपयलियचउरंगबलुद्धुयाहिं धूलीहिं । अंतरिया करुणाइ व पलाइरा रिउगणा तत्तो ।।१५।।

---

5. "**अनूरुः** - अरुणः, सूर्यसारथिः । अनुरुश्चासौ सारथिश्च अनूरुसारथिः, अनुरुसारथेः रथः, तस्य अनुरुसारथिरथस्य" इत्यर्थः ।।

6. **निहण** - निहेण=निभेन=व्याजेन । - सम्पा० ।।

7. **मृगमदतिलकं**-कस्तुरिकातिलकम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्नत्रकुपत्थिवसंगदूसियं जयसिरी किलऽप्पाणं । जस्स करवालधारापुष्करसलिलम्मि [8]सोहेइ ।।१६।।
तह कहवि भुवणभवणे निव्वडिया तस्स चायचारहडी[9] । जह आसि दरिद्दत्तं केवलमबलाण मज्झेसु ।।१७।।
तह तेण नीइनलिणी सूरेण परं वियासमुवणीया । तस्स जसपसरससहरउदए वि हु जह न [10]मउलाइ ।।१८।।
दिंती लीलाई पयं पयं[ड]रिउरायमउडकोडीसु । कुलसेलकडयवेलावणेसु विलसेइ जस्साणा ।।१९।।
तह तेण विणीएण वि नियवरचरिएहिं रंजिओ लोओ । जह तस्स भरहसगराइपुव्वपुरिसे न संभरइ ।।२०।।
तस्स य नयविणयविवेयचायगुणरयणरयणखाणिव्व । धम्मस्स वम्महस्स य सेणा सेणत्ति आसि पिया ।।२१।।
नियपियजसपसरसुहाहिं धवलियं भुवणभवणमेईए । अहिवासिज्जइ सुइसीलपरिमुलेणं महग्घेण ।।२२।।
रइरसनिहाणदेवि व्व भत्तुणो सुरगवि व्व पणईणं । भइणि व्व सवत्तीणं जा पोरजणाण जणणि व्व ।।२३।।
पिययमपयावपसरु व्व अक्खलिओ तीइ पुन्नपब्भारो । दुरट्ठिए वि अइदुल्लहे वि कामे पणामेइ ।।२४।।
सह तीइ तस्स चिरचिन्नपुन्नपब्भारपावणिज्जाइ । अणुहविरस्स सुहाइं सुहेण समओ अइक्कमइ ।।२५।।
अह कालपरिणईए धणङ्ककामुयजणाण सुभगम्मि । हेमंतेऽइक्कंते सिसिरे थोवावसेसम्मि ।।२६।।
निरुनिरवलंबगयणग्गमग्गसंचारदूरसुढियाणं । विस्समणत्थं संदणतुरंगमाणं व दिणनाहे ।।२७।।
ओइन्ने अत्थायलसद्दलदुव्वावणंतरालेसु । घुसिणरसरंजिएण व जाए संझाइ भवणम्मि ।।२८।।
निव्वाणभाणुदीवयधूमसिहासुं व तिमिरलहरीसुं । लीढे नहम्मि तारासु तयणु [11]सविसेसु तारासु [?] ।।२९।।
अणुहविऊण सहरिसं रयणीमुहमंगलाइं नरनाहो । संपत्तो सिरिसेणादेवीए वासभवणम्मि ।।३०।।
तत्थ य विमुक्कपणवन्नकुसुमपरिमलमिलंतपडवासे । उज्झिरकसिणागुरुसुरहिवासवासियदिसाभोगे ।।३१।।
नवणीयफासवरहंसतूलियाइसणाहपल्लंके । घणसारसारतंबोलसुरहिविविहंगरागम्मि ।।३२।।
आलावहाससविलासफासपिययमपसा[य]मणुहविउं । आणंदिया [12]नुवन्ना सेणादेवी सपल्लंके ।।३३।।
इत्तो सो पुव्वुत्तो [13]राएसी विउलवाहणो तइया । चविऊणं सव्वुत्तमनिबद्धतित्थयरवरनामो ।।३४।।
फग्गुणसियट्ठमीए सोमे मिगसीसजोगजुत्तम्मि । सत्तमगेविज्जाओ ओइन्नो तीइ गब्भम्मि ।।३५।।
नाणत्तयसंजुत्ते तिहुयणनाहम्मि तम्मि ओइन्ने । भुवणत्तए वि जाओ उज्जोओ जणियजणचुज्जो ।।३६।।
कह गोयरपत्ताणं जुग्गजियाणं सुहाय न जिणिंदो । जं नारयाण तइया अगोयराण वि सुहं जायं ।।३७।।

---

8. शोधयतीत्यर्थः ।।
9. **चारहडी** स्त्री० (चारभटी) शौर्यवृत्ति ।। - पा. स. म. पृ. ३२३ । हे. प्रा. व्या. ४/३९६ ।।
10. मउलाइया इति पाठो भाति । मउलाइअ वि. (मुकुलित) संकोचित-संकुचाया हुआ इति भाषायाम् ।। - पा. स. म. पृ. ६६१ ।।
11. सविसोसु सं० ।।
12. **णुवन्न** विशे. (दे०) सुप्त, सोया हुआ इति भाषायाम् ।। - पा. स. म. पृ. ४२० ।।
13. "राजर्षिः" इत्यर्थः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह सुत्तजागरा सा तित्थयरुप्पत्तिपयडणपडूणि । पासइ देवी तइया सुमिणाणि चउद्दस इमाणि ।।३८।।

तहाहि -

सेयं चाउद्दंतं सत्तंगपइट्ठियं महाभोगं । मयनिज्झरेहि जंगमहिमगिरिकरणिं करेणुवरं ।।३९।।

ससिलिट्ठमंसलतणुं तुसारगोखीरपंडरं वसहं । घोलंतकणयघंटं सविज्जुलं सरयजलयं व ।।४०।।

उत्तत्तकणयनयणं कुंकुमकेसरकडारवियडसडं । तिहुयणपरक्कमं पिव पिंडीभूयं व पंचमुहं ।।४१।।

मणहरसव्वावयवं पउमद्दहवासिणिं सिरिं देविं । पिच्छइ हिमगिरिसिहरे दिसागइंदेहिं सिच्चंतिं ।।४२।।

अमरतरुकुसुमरइयं नियपरिमलपूरपूरियदियंतं । पिच्छइ देवी दामं कयमहुयरमहुरझंकारं ।।४३।।

पडिपुन्नपंडुमंडलमुडुगणपरिवारियं रइनिहाणं । पिच्छइ नयणाणंदं रोहिणिमणवल्लहं चंदं ।।४४।।

गहनिवहलद्धरेहं नहंगणाहरणमनणुतेयसिरिं । दोसंधयारमहणं सज्झक्कसुहं नियइ सूरं ।।४५।।

विणिविट्ठविविहमणिकणयलट्ठिसुपइट्ठमूसियपडायं । पवणधुयं नियइ धयं रणंतमणिकिंकिणिसणाहं ।।४६।।

आकंठममयभरियं रययमयं चारुरयणचिंचइयं । पिच्छइ सररुहपिहियं मंगलकलसं लसंतसिरिं ।।४७।।

वियसियसहस्सवत्तं विहंगगणमिहुणसहियपेरन्तं । सज्झवइ सच्छसलिलं महासरं सरसवणराइं ।।४८।।

पविसंतसरिसहस्सं मुत्ताहलमणिपवालपडिपुन्नं । गुरुलहरिलीढगयणं जलरासिं लसिरतिमिन(म)गरं ।।४९।।

नियइ विमाणं पणवन्नरयणकिरणोहरइयसुरचावं । गेविज्जविमाणं पिव ओइन्नं जिणसिणेहेण ।।५०।।

वज्जिंदनीलमरगयकक्केयणपुलयपमुहरयणाणं । अइदिप्पंतं रासिं जोइविमाणाण पुंजं व ।।५१।।

महुसप्पितप्पियं पिव दिप्पंतपसंतदक्खिणावत्तं । नीसंदं पिव कणयायलस्स निद्धूमयं च सिहिं ।।५२।।

एए चउदस सुमिणे गयणाओ नियय्वयणमुवइंते । दट्ठुं देवी गुरुहरिसविम्हया झत्ति पडिबुद्धा ।।५३।।

इत्थंतरम्मि दट्ठूण जयगुरुं धरणिमंडलोइन्नं । नियया वन्नभीय व्व कंपिया तियसपहुपीढा ।।५४।।

तज्झलणनियाणवियाणणत्थमुवउत्तमाणसा तत्तो । मुणिउं जिणावयारं हरिसभरुब्भिन्नरोमंचा ।।५५।।

सव्वंगसंगिवररयणभूसणुब्भूयभासुरपहाहिं । तेयसपरमाणुविणिम्मियं व भुवणं पि दाविंता ।।५६।।

नियनियपरिवारजुया दिव्वविमाणेहिं तत्थ ओइन्ना । चउसट्ठिं पि सुरिंदा सुहि व्व लहुविहियसंकेया ।।५७।।

तो तिपयाहिणपुव्वं तित्राणधरं जिणं तिसुद्धीए । तिक्खुत्तो पणमित्ता देविं वित्रविउमारद्धा ।।५८।।

भयवइ ! न भाइयव्वं अम्हे सुरअसुरसामिणो इत्थ । नियजीयं सज्झविउं जिणावयारंमि ओइन्ना ।।५९।।

धन्ना सि तुमं सामिणि ! जीइ तए मेरुकंदराइ व्व । कप्पहुमु व्व सययं नियकुक्खीए जिणो धरिओ ।।६०।।

जाया पसंसणिज्जा तुमं मुणीणं च सुरवईणं च । जं तुमए तेसि गुरू उयरंमि जिणो समुव्वूढो ।।६१।।

तेणं चिय विउसजणो जाइं जुवईण नावमन्नेइ । जं तासु काइ कइयाइ वहइ एयारिसं गब्भं ।।६२।।

नियमाहप्पेणं चिय सुरक्खियं जयगुरुं जिणवरिंदं । गब्भे समुव्वहंती पावसु पसवावहे गंधेहिं ।।६३।।

इय भणिउं साणंदे सुरिंदविंदे गए सठाणम्मि । तं अब्भुयभूयं देवी वित्रवइ नरवइणो ।।६४।।

राया वि सुमिणपाढगसंवायणदुगुणपसरीयपमोओ । तिहुयणमंगलनिलयं मन्नइ कुलमप्पणो चेव ।।६५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तप्पभिइ खीरसायरवेला ससिणं व पडिहयतमोहं । सुत्ती सुवित्तमुत्ताहलं व देवी वहइ गब्भं ।।६६।।
जह जह वड्ढइ गब्भो सो निरुवमभागधेयसंदब्भो । तह तह नरनाहो वि हु जसेण कोसेण सित्तेण ।।६७।।
दुब्भिक्खडमरविड्डररोगुब्भवमारिईइपभिइया । मंगलनिलयम्मि जिणे ओइन्ने झत्ति उवसन्ता ।।६८।।
सुररायकयाणुन्ना भवणं देवीइ जिंभगा देवा । अस्सामिएहिं सययं सिंहासणकलसेहिं पूरिंति ।।६९।।
वाउसुरा तं विरयं रयंति सिंचंति मेहमुहदेवा । उउदेवीओ पणवन्न [14]कुसुम [कुसुमवासं च] वासन्ति ।।७०।।
जह जह देहावयवा गब्भोवचएण उवचयमुविंति । लहलहइ तेसु तह तह तीए घुणलवणिमुल्लासो ।।७१।।
करिकलहदंतछेयच्छवी कवोलेसु सहइ देवीए । गब्भट्ठियजिणवरविमलपुन्नजुन्ह व्व पसरंती ।।७२।।
दट्ठुं पिव देवीए अप्पडिहयदीहदंसणं तणयं । सविसेसं संजाया कुवलयदलदीहरा दिट्ठी ।।७३।।
न हु वयणपरिचओ वि हु होही अम्हाण सह जिणिंदेण । इय दुक्खेण व जाया सामसुहा उररुहा तीए ।।७४।।
दाही धुवमवयासं न एस अंतररिऊण वि बलीणं । उपरि वि वलिविलासो तेण निरुद्धो सजणणीए ।।७५।।
आडंबरो महंतो होइ असाराण चेव वत्थूणं । तिहुयणसारे वि जिणे तेणं चिय गूढगब्भा सा ।।७६।।
वेमाणियच्छराओ जिणवरगुणरायरत्तहिययाओ । सेवागयाओ देविं सुहगुट्ठीहिं विणोयंति ।।७७।।
मणिदप्पणाइं दाविंति जोइरमणीउ तीइ अणवरयं । वररयणतालयंटेहिं भवणदेवीउ वीयन्ति ।।७८।।
संवाहणमंगाणं कुणंति वंतरसुरीउ सप्पणयं । इय सेविज्जइ देवी दिवानिसं देवजुवईहि ।।७९।।
गब्भाणुभाववसओ चिंतइ हियमेव सव्वसत्तेसु । मणयं पि न संमुज्झइ सुहुमेसु वियारगहणेसु ।।८०।।
नो अइउन्हेहिं न सीयलेहिं नो तित्तकडुयलुक्खेहिं । आहारेहिं गब्भं पीणइ माणेइ दोहलए ।।८१।।
अह तीइ तियससुंदरितियसिंदनरिंदचारणमुणीहिं । सलहिज्जंतीइ सुहंसुहेण पत्तो पसवसमओ ।।८२।।
तो उच्चट्ठिएसु सुहग्गहेसु पावेसु पडिहयपहेसु । मग्गसिरसुद्धचउदसिनिसीहमिगसीससंसियोगे ।।८३।।
उज्जोयंतं भुवणत्तयं पि तिरिनारए य सुहयंतं । हयचिंधं हेमपहं पसवइ सेणा जिणं तणयं ।।८४।।
तप्पुन्नपणुल्लियपीढमुणियजिणजम्मसमयकिच्चाओ । छप्पन्नदिसाकुमरीओ किच्चमेवं कुणंति तहिं ।।८५।।
अट्ठ अहोलोगनिवासिणीउ जिणजम्मभवणपेरंते । जोयणमित्तं खित्तं कुणंति रयकंटयविउत्तं ।।८६।।
अट्ठुद्धलोगवत्थव्वयाउ विहियब्भवद्दलाउ तयं । गंधोदयसित्तं मुक्ककुसुमपयरं च विरयन्ति ।।८७।।
पुव्वाइरुयगवत्थव्वयाउ पत्तेयमट्ठसंखाउ । दप्पणवीयणभिंगारचमरपरिमंडियकराओ ।।८८।।
नियनियदिसासु चिट्ठंति विदिसिदेवीउ तयणु चत्तारि । दीवयहत्थाउ ठंति विदिसिभागेसु नियएसु ।।८९।।
अह मज्झिमरुयगनिवासिणीउ चत्तारि दिसिकुमारीउ । मउलंति नाहिनालं जिणस्स चउरंगुलाणुवरिं ।।९०।।
तं च सरयणं भूनिहियमुवरिहरियालियाविहियपीढा । दाहिणचाउस्साले विउव्विए जिणजुयं जणणिं ।।९१।।
मणिपीढे संठविउं अब्भंगिय सयसहस्सपागेहिं । उव्वट्टंति य मिउसुरहिगंधचुन्नेहिं उभयं पि ।।९२।।
तो पुव्वचाउसाले न्हविउं गंधोदएहिं जुयलं पि । निम्मज्जियंगमुत्तरचउसाले ठविय मणिपीढे ।।९३।।

14. कुसुमवासं च इति पाठो भाति - संपा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोसीसविलित्तनियत्थदेवदूसं च काउमुभयं पि । चंदणदारुहिं कुणंति अग्गिकम्मेण वरभूइं ।।९४।।
बंधिय तप्पुट्टलियं मणिगोलयजुयलयं सवणमूले । ताडंतीउ पभणिंति होसु जिण ! पव्वयाउ त्ति ।।९५।।
इय कयनियकिच्चाउ जम्मणभुवणे जिणं सजिणजणणिं । ठविउं गायंतीउ सव्वाओ ठंति तेसि गुणे ।।९६।।
अह चलियासणविणिउत्तअवहिवित्राय तित्थयरजम्मो । सोहंमवई सहरिसमब्भुट्ठिय पणयजिणनाहो ।।९७।।
तक्खणनिउत्तहरिणेगमेसिताडियसुघंटसद्देण । अवहियएगूणदुसोललक्खवरसुरविमाणाणं ।।९८।।
सामीहिं सपरिवारेहिं परिवुडो पालयं वरविमाणं । आरुहिउं संपत्तो जियारिनरनाहभवणम्मि ।।९९।।
मुत्तूण विमाणं पणमिऊण जिणनायगं च जणणिं च । साहियनियकायव्वो दाउं अवसोयणिं तीसे ।।१००।।
मुत्तूण पडिच्छन्दं जिणस्स होऊण पंचरूवधरो । एगेण जिणं गिन्हइ छत्तं धारइ अवरेण ।।१०१।।
दोहिं च चामराओ वज्जकरो पंचमेण रूवेण । उप्पइओ गयणेणं संपत्तो मंदरं झत्ति ।।१०२।।
अइपंडुकम्बलाए सिलाइ सीहासणंमि पुव्वमुहे । उच्छंगसंगयजिणो सोहम्मवई समुवविट्ठो ।।१०३।।
अडवीसलक्खवरसुरविमाणसामी तओ य ईसाणो । सपरीवारो पुप्फयमारुहिउं मंदरं पत्तो ।।१०४।।
बारसलक्खविमाणाण तियसतियसीगणेहिं परियरिओ । सोमणंसविमाणेणं सणंकुमाराहिवो एइ ।।१०५।।
माहिन्दवासवो वि हु विमाणलक्खट्ठतियसपरियरिओ । सिरिवच्छेण विमाणेण झत्ति मेरुम्मि संपत्तो ।।१०६।।
अह बंभलोगसामी चउलक्खविमाणवासिसुरसहिओ । नंदावत्तविमाणं आरुहिय जिणंतियं पत्तो ।।१०७।।
पन्नाससहस्सविमाणवासिवरतियससंजुओ पत्तो । कामगवविमाणेणं जिणंतियं लंतयाहिवई ।।१०८।।
अह सुक्ककप्पसक्को आरूढो पीइगमविमाणम्मि । चत्तालीससहस्सविमाणसुरसहयरो एइ ।।१०९।।
सहसारकप्पसामी छसहस्सविमाणवासिसुरसहिओ । मंदरगिरिम्मि पत्तो मणोरमेणं विमाणेणं ।।११०।।
चउसयविमाणतियसुत्तमेहिं अहमहमिगाइ अणुजाओ । विमलेण विमाणेणं आणयपाणयपहु पत्तो ।।१११।।
आरणअच्चुयसामी तिसयविमाणामरेहिं परियरिओ । ओइन्नो सुरसेले आरूढो सव्वओभद्दं ।।११२।। तहा -
चमरे[१] बली[२] य धरणे[३] भूयाणंदे[४] य वेणुदेवे[५] य । तत्तो य वेणुदाली[६] हरिकंत[७] हरिस्सहे[८] चेव ।।११३।।
अग्गिसिह[९] अग्गिमाणव[१०] पुन्न[११] वसिट्ठे[१२] तहेव जलकंते[१३] ।
जलपह[१४] तह अमियगई[१५] बीएऽमियवाहणे[१६] इंदे ।।११४।।
वेलंबे[१७] य पभंजण[१८] घोसे[१९] चेव य तहा महाघोसे[२०] । भुवणवईणं इंदा एए वीसं सपरिवारा ।।११५।।
दिव्वेहि विमाणेहिं मन्दरसेले जिणंतियं पत्ता । जोइसियाणं पहुणो एवं चंदा य सूरा य ।।११६।। तहा -
काले[१] य महाकाले[२] सुरूव[३] पडिरूव[४] पुन्नभद्दे[५] य । अमरवइ माणिभद्दे[६] भीमे[७] य तहा महाभीमे[८] ।।११७।।
किन्नर[९] किंपुरिसे[१०] खलु सप्पुरिसे[११] चेव तह महापुरिसे[१२] ।
अइकाय[१३] महाकाए[१४] गीयरई[१५] चेव गीयजसे[१६]।।११८।। तहा -
सन्निहए[१] सम्माणे[२] धाय[३] वधाए[४] य असि[५] य असिपाले[६] । ईसर[७] महेसरे[८] वा हवइ सुवच्छे[९] विसाले[१०] य ।।११९।।
हासो[११] हासरई[१२] वि य सेय[१३] भवे चेव तह महासेए[१४] । पयगे[१५] पयगवई[१६] वि य बोधव्वा आणुपुव्वीए ।।१२०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमिमे बत्तीसं वन्तरवइणो तया सुरवरिंदा । जिणजम्मणमहिमत्थं मन्दरसेलम्मि ओइन्ना ।।१२१।।
चउसट्ठीसंखेसुं इय मिलिएसु सुरासुरिंदेसु । अच्चुयसामी आइसइ आभिओगियसुरे नियए ।।१२२।।
भो भो महप्पमाणं जम्मणमहिमोवगरणमुवणेह । अविलंबमेव जयजीवबंधुणो जिणवरस्स कए ।।१२३।।
ते वि हु तहत्ति पडिवज्जिऊण मणिकणयरययकलसाणं । मिस्साणं भोमिज्जाण सहसमट्ठुत्तरं च पुढो ।।१२४।।
भिंगारे धूवघडियाचंगेरियमाइयं पि जावइयं । निम्मविउं उप्पइया तमालदलसामले गयणे ।।१२५।।
जलहिदहसरिसरोवरसलिलाइं तित्थमट्टियं तुवरिं । सिद्धत्थयगोरोयणपउमुप्पलकुसुमपमुहं च ।।१२६।।
अन्नं पि तत्थ जुग्गं सव्वं चिय उवणमिंति नियपहुणो । सो वि हु सपरीवारो जिणाभिसेयं कुणइ विहिणा ।।१२७।।
एवं चिय बावट्ठी अवरे वि सुरासुरेसरा पहुणो । कुव्वंति जस्स महिमं वज्जंतचउव्विहाउज्जं ।।१२८।।
तत्तो इसाणंके ठियस्स जयबंधुणो सुहम्मवई । चत्तारि महावसहे विउव्वए फलिहमणिमइए ।।१२९।।
तेसिं सिंगग्गविणिस्सरंतखीरोयसलिलधाराहिं । न्हवइ जिणं मन्नंतो पुरंदरो पूयमप्पाणं ।।१३०।।
इयन्हवियविलेवियपूइयस्स थुणियस्स भुवणनाहस्स । पुरओ पिच्छणयछणं कुणंति सव्वे वि सुरपहुणो ।।१३१।।
पुव्वं व पंचरूवो होउं गिन्हिय जिणं सुहम्मवई । पत्तो जियारिनरनाहमंदिरे जम्मभवणे य ।।१३२।।
अवसोयणिमवणेउं जिणपडिछंदं च जणणिपासम्मि । मुंचइ जिणं महारिहदुगुल्लकुंडलजुयलसहियं ।।१३३।।
सिरिदामगंडयं उवरि दिट्ठिसुहयं जिणस्स ठविऊण । नन्दासणभद्दासणसुवन्नरयणाण पत्तेयं ।।१३४।।
बत्तीसं कोडीउ मुंचइ जिणजम्ममंदिरम्मि हरी । तत्तो उग्घोसावइ इय आभोइयसुरेहिन्तो ।।१३५।।
जिणवरजिणजणणीणं अमंगलं जो मणे वि धारेहि । सीसं तस्सज्जगमंजरि व्व खलु सत्तहा फुडिही ।।१३६।।
इय कयनियकायव्वो पुरन्दरो वंदिउं जिणवरिंदं । नंदीसरम्मि पत्तो सेसिंदा मन्दराओ वि ।।१३७।।
सासयजिणपडिमाणं तम्मि य अट्ठाहियामहं काउं । तत्तो सुरासुरिंदा जहागयं पडिगया सव्वे ।।१३८।।
इत्थंतरंमि किंसुयसुयमुहकुरुविंदइंदगोवाभे । उदियम्मि उदयमहिहरिसरमणिमयसेहरे मिहरे ।।१३९।।
दट्ठूणं तं तहविहमज्जब्भुयममियकणयमणिवुट्ठिं । गंधोदयाहिवासं सुरतरुकुसुमाण पयरं च ।।१४०।।
सुद्धंतसोविदल्ली महल्लहरिसुल्लसंतरोमंचा । निच्छियजिणजम्ममहा सहरिसमिय विन्नवइ निवइं ।।१४१।।
जय जीव नंद नरवर ! वड्ढसु कल्लाणवल्लिकन्देण । सेणादेवीदेहुब्भवेण जिणरायतणएण ।।१४२।।
अज्जं चिय जियवम्मह ! तुह देवी देवदेवकयसेवं । तणयं जिणं पसूया नरसीह ! निसीहसमयम्मि ।।१४३।।
तं सोऊण नरिंदो अमन्दआणन्दसंदिरच्छिजुओ । वियसन्तवयणकमलो पुलयंकुरदंतुरकवोलो ।।१४४।।
सममंगलग्गभूसणगणेहिं लहु तीइ पीइदाणम्मि । दावेइ कणयकोडिं कूडं पिव कणयसेलस्स ।।१४५।।
अह तारिसभुवणब्भुयसुयजम्ममणोरहाणुमाणेण । कारइ वद्धावणयं मासप्पमियं जियारिनिवो ।।१४६।।
तम्मि पयट्टम्मि महे पियरो तइयम्मि वासरे पहुणो । ससिसूरदंसणं कारविंति नियवंससूरस्स ।।१४७।।
अह कुलविलयाकयलडहगेयसुविसट्टनट्टरमणिज्जं । छट्ठीजागरणमहं पि छट्ठरयणीइ कारिन्ति ।।१४८।।
उवसन्तअन्तरमला जिणोवयारेण बाहिरमलं पि । इक्कारसम्मि दियहे मंगलमुहला अवणयंति ।।१४९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्ते य बारसाहे वाहरिउं नियकुलुब्भवनरिन्दे । गोरविऊणं सगिहे भोयणवत्थाइदाणेण ।।१५०।।
भणइ जिआरिनरिन्दो अमन्दआणन्दसंगओ एवं । हंहो महानरिन्दा एयस्स सुयस्स अवयारे ।।१५१।।
उवसन्तडमरविडुरदुब्भिक्खोवद्दवम्मि महिवलए । जं संभूया सस्सा होउ इमो संभवो तम्हा ।।१५२।।
इय नियगुणनिप्फन्ने पहुणो नामंमि कप्पिए पिउणा । पमुइयमणेहिं एवं हवउ त्ति समत्थियं तेहिं ।।१५३।।
अह सक्कपउत्ताहिं पंचहि वरअच्छराहिं धाईहिं । लालिज्जंतो निउणं सुहेण सो वड्ढइ भयवं ।।१५४।।
अंगुट्ठम्मि य पहुणो वयणनिहित्ते सिसुत्तभावाओ । संचारिन्ति सुरिन्दा अमयरसं पमयरसरसिया ।।१५५।।
कमसो सुरासुरेहिं सेविज्जंतो सया वि भुवणगुरू । उम्मुयइ बालभावं पुव्वन्हे दिवसनाहु व्व ।।१५६।।
गंभीरिमाइ रयणायरु व्व दुद्धरिसयाइ सीहु व्व । विज्जाहिं अलंकरिओ सहावसिद्धाहिं सो भयवं ।।१५७।।
पत्तो कलासु सयमेव पयरिसं जयगुरू किमच्छरियं । विंझु व्व गयवराणं सुज्झिय पभवो कलाण जओ ।।१५८।।
भुवणत्तये वि रूवं अप्पडिमं सामिणो सिसुस्सावि । किं पुण भणिमो सव्वंगजुव्वणारम्भसुभगस्स ।।१५९।।
सिरिवच्छंकियवच्छो अट्ठग्गसहस्सलक्खणसमेओ । अह संभवजिणनाहो पत्तो नवजुव्वणारम्भं ।।१६०।।
उत्तत्तकणयवन्नो चउसयधणुऊसिओ सहइ सामी । कणयायलु व्व कोउगवसेण पुरिसत्तणं पत्तो ।।१६१।।
अह दिसि दिसि पसरंते पहुणो लायन्नपरिमलुप्पीले । वासियमणा मणोरमकन्नाउ नियाउ नरवइणो ।।१६२।।
सिरिसंभवकुमरकए पेसंति सयंवराउसावत्थिं । भूरिकरितुरयरहसुहडवियडलच्छीसणाहाउ ।।१६३।।युग्मम्।।
तत्तो जियारिराया मायामयविप्पमुक्कहिययस्स । संभवकुमरस्स पुरो ससिणेहमिणं समालवइ ।।१६४।।
वच्छ ! न वंछा तुच्छेसु जइ वि तुह दुहफलेसु भोगेसु । न रमइ मणं मणंपि हु तुह पेयवणम्मि व भवम्मि ।।१६५।।
किं तु जयविम्हयकरं मुणिउं रूवाइगुणगणं तुज्झ । अपत्थिएहिं पत्थिवसत्थेहिं जाउ पहियाउ ।।१६६।।
ताओ नरनाहकन्नाओ रूवलावन्नलच्छिनिलयाओ । तुह सूरकरप्फंसेण पउमिणीओ व्व विहसंतु ।।१६७।।
इच्चाइ जियारिनरेसरम्मि सप्पणयमालवंतंमि । नाणेण मुणियसमओ समागओ तत्थ सक्को वि ।।१६८।।
नमिऊण नमिरमणिमयकिरीडकोडीघडंतपयपीढो । पत्थेइ जियारिनरेसरु व्व सामिं विवाहत्थ ।।१६९।।
अह भुवणबंधवो वि हु नाणत्तयमुणियभवसरूवो वि । पिक्खंतो भोगफलं नियकम्ममवस्सखवणिज्जं ।।१७०।।
तह तिव्वं निब्बंधं पिउणो जणणीइ वच्छलत्तं च । सक्कोवरोहिओ कहकहंपि मन्नइ अकामो वि ।।१७१।।
दक्खिन्नमहोअहिणा विवाहकम्मंमि पडिसुए पहुणा । जाया सुरनरनाहा पमोयरसपसरअत्थाहा ।।१७२।।
अह महरिह-रिद्धिपबंधबंधुरो सामिणो विवाहमहो । जंभारिजुएण जियारिराइणा निम्मिओ विहिणा ।।१७३।।
तत्तो कयकायव्वे जहागयं पडिगए सुरिंदम्मि । सम्माणदाणपुव्वं विसज्जिएसुं नरिंदेसु ।।१७४।।
नियरूवहसियतियसंगणाहिं नवपरिणीयाहिं सह ताहिं । मणिपासाए भयवं विविहं विलसइ अणासत्तो ।।१७५।।
दिव्वं भोगुवभोगं गिव्वाणगणा जिणस्स उवणिंति । मणुओ वि जओ भयवं अमाणवो चेव चरिएहिं ।।१७६।।
कमसो य विविहलोइयविणोयनिरयस्स संभवजिणस्स । पंचदसपुव्वलक्खा कुमारभावंमि वोलीणा ।।१७७।।
इत्तो जियारिराया नियनिक्खमणस्स समयमवगम्म । महया उवरोहेणं ठविउं सिरिसंभवं रज्जे ।।१७८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निव्विन्नकामभोगो थेराण पयंतियंमि निक्खमिउं । धुयकम्मंसो कमसो सासयसुक्खं गओ मुक्खं ।।१७९।।
पडिवज्जिऊण रज्जं गुरुवरोहेण संभवजिणो वि । पालेइ महीवलयं विउलं पि हु एगनगरं व ।।१८०।।
तम्मि महीयलनाहे बाहिररिउणो लहंतु कह पसरं । तस्स पभावेणं जणं अंतररिउणो वि न कमंति ।।१८१।।
कह सपरचक्कसंका जाइज्ज जणंमि तस्स रज्जे जं । दुब्भिक्खडमरमारीईइप्पमुहा वि हु विलीणा ।।१८२।।
तस्स भुयवज्जपंजरवसिरस्स जणस्स पडिभयं कत्तो । जं अखलियप्पयारो हरइ अकाले न कालो वि ।।१८३।।
परिचियअपरिचिएसुं दुब्बलबलिएसु वा वि नयमग्गं । लुंपंति न कारणिया तुलासमे तम्मि नरनाहे ।।१८४।।
तह तेण नीइनलिणीवियासरविणा सुहीकया लोया । जह रिसहभरहअजियाइरज्जनीइं पि न सरिंसु ।।१८५।।
इय जयगुरुणो रज्जे पुव्वाण कमेण तत्थ वोलीणा । चउपुव्वंगसमेया चउयालीसं सयसहस्सा ।।१८६।।
अह भोगफले कम्मे खीणे सयमेव भुवणनाहस्स । आवरणविगमओ दीवियम्मि वरचरणपरिणामे ।।१८७।।
दढनाणगब्भवेरग्गमग्गसंपट्ठियम्मि चित्तम्मि । संबुद्धस्स सयं चिय इय संकप्पो समुप्पन्नो ।।१८८।।
पिच्छह तुच्छाण इमाण कामभोगाण कारणा कह णु । हारिज्जंति नरेहिं सासयसुक्खाइं विउलाइं ।।१८९।।
नइनाहु व्व नईणं तणतुसरासीण जलियजलणु व्व । तिप्पइ एस न अप्पा कहं पि संसारियसुहाणं ।।१९०।।
तम्हा समूलमुन्मूलणाय आकालबद्धमूलाणं । कम्माण चेव कीरइ उवक्कम्मो किन्न इत्ताहे ।।१९१।।
इय चिन्ताणंतरमेव भुवणनाहस्स नवपयारा वि । चलियासणाऽवइन्ना लोगंतियसुरवरा तत्थ ।।१९२।।
तिपयाहिणिऊण जिणं तिक्खुत्तो पणमिउं तिसुद्धीए । मोलिघडियंजलिउडा एवं विन्नविउमारद्धा ।।१९३।।
भयवं ! करुणासायर ! सव्वजगज्जीवहियकरमियाणिं । बुद्ध ! सयं चिय बुज्झाहि धम्मतित्थं पवत्तेहि ।।१९४।।
इय नियजीयं काउं जहागयं पडिगएसु तियसेसु । वच्छरियदाणसंकप्पमप्पणा कुणइ जा सामी ।।१९५।।
ता सक्कनिओइयधणयपेरिया जिंभगामरा झत्ति । पूरंति सामिभवणं असामिएहिं निहाणेहिं ।।१९६।।
नाउं तहाविहत्थं वरवरियाघोसपुव्वयं पहुणा । कारुन्नमहोअहिणा पयट्टियं लहु महादाणं ।।१९७।।
एगत्थ सयं सामी जंगमकप्पद्दुमु व्व वियरेइ । अन्नत्थ तप्पारोह व्व तप्पउत्ता पयच्छंति ।।१९८।।
अकलियपत्तापत्तं अविभावियसगुणनिग्गुणविभागं । अगणियमित्तामित्तं दिज्जइ जं मग्गियं दाणं ।।१९९।।
एगा सुवन्नकोडी अट्ठेव अणूणगा सयसहस्सा । सूरोदयमाईयं दिज्जइ आपायरासाओ ।।२००।।
तिन्नेव य कोडिसया अट्ठासीयं च हुंति कोडीओ । असिइं च सयसहस्सा एयं संवच्छरे दिन्नं ।।२०१।।
इय वच्छरियं दाणं दिंतेण तया जिणेण अवियप्पं । कयकिच्चेण वि भुवणे दाणपवित्ती महग्घविया ।।२०२।।
इय कयकायव्वे जयगुरुंमि निक्खमणबद्धलक्खंमि । चउसट्ठिं पि सुरिन्दा पत्ता चलियासणा झत्ति ।।२०३।।
जम्माभिसेयसरिसे कएऽभिसेए सुरेसरा सामिं । घणसारमीसगोसीसचंदणेणं विलिंपन्ति ।।२०४।।
खीरोयलहरिलडहेहिं देवदूसेहिं तह नियंसंति । तिहुयणसव्वस्सेहि व रयणाहरणेहिं भूसन्ति ।।२०५।।
अह कणयरयणमइयं अणेयधयकिंकिणीगणसणाहं । नरसहस्सुक्खिवणिज्जं सिद्धत्थन्नामवरसिवियं ।।२०६।।
आरुहिउं भुवणगुरू सह निक्खमिरेहिं निवदससएहिं । अणुगम्मंतो सामन्तमंतिपमुहेहि य परेहिं ।।२०७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पज्जन्नगज्जिगहिरे वियंभिए देवदुंदुहिनिनाए । चउविहसुरेहिं जुगवं कए य जयमंगलुग्गारे ।।२०८।।
दाविज्जंतो अंगुलिसएहिं रसणासएहिं थुव्वंतो । आसंसिज्जंतो कुलथेरीहिं चेलहत्थाहिं ।।२०९।।
सावत्थीनयरीए मज्झेण विसुज्झमाणसुहलेसो । संचरिउं संपत्तो सहसंबवणम्मि सो भयवं ।।२१०।।
हिट्ठा असोयवरपायवस्स ओरुहिय दिव्वसिवियाओ । उम्मुयइ ममत्तं पिय वत्थालंकारमल्लाई ।।२११।।
पंचहिं मुट्ठीहिं समुद्धरेइ दुद्धरकिलेसजालं व । केसुज्झयं तमिंदो खीरोयजलम्मि पक्खिवइ ।।२१२।।
निक्खिवइ देवदूसं वामे खंधंमि वासवो पहुणो । कयसिद्धनमुक्कारो समभावठिओ तओ भयवं ।।२१३।।
मग्गसिरपुन्निमाए मिगसीसजुए ससिम्मि पुव्वह्ने । पडिवज्जइ पव्वज्जं छट्ठेणं निवसहस्सजुओ ।।२१४।।
उज्जोइयसयलजए अवि नारयतिक्खदुक्खसंहरणे । तम्मि खणे उप्पन्नं नाणं मणपज्जवं पहुणो ।।२१५।।
इय आरूढे संजमरहम्मि भवरिउजयाय जिणजोहे । पणमिय गया सठाणं तज्झरियचमक्किया तियसा ।।२१६।।
भयवं पि सयलजयजीवजायहिए कयमई अणासत्तो । तमहोरत्तं तत्थेव संठिओऽणिट्ठिउच्छाहो ।।२१७।।
बीयंमि दिणे गंतुं सुरिंददत्तस्स खत्तियस्स गिहे । परमन्नेणं लट्ठेण कुणइ छट्ठस्स पारणयं ।।२१८।।
आवडिया वसुहारा पाउब्भूयाणि पंच दिव्वाणि । जाओ य सुरिंदस्स वि सुरिंददत्तो थुइट्ठाणं ।।२१९।।
कयपारणो य भयवं तिगुत्तिगुत्तो य पंचसमिओ य । समसत्तुमित्तचित्तो विहरइ वसुहं अणाबाहो ।।२२०।।
चरइ तवं अइतिव्वं दव्वाइअभिग्गहे धरइ विविहे । रुंभइ मणं निसुंभइ पमायखलियाइं उवउत्तो ।।२२१।।
आयावेइ य विविहं उवसग्गपरीसहे सहइ घोरे । अंतररिऊण दमणं अहीणमणो सया कुणइ ।।२२२।।
तह खंतिमद्दवज्जवतवसंजमसच्चसोयबंभेसु । सन्नाणचरणदंसणगुणेसु सव्वुत्तमतमेसु ।।२२३।।
पइदियहं वट्टंतो अप्पडिबद्धो य गामनगरेसु । विहरइ एगग्गमणो चउदसवासाइं सो भयवं ।।२२४।।
अह सावत्थिपुरीए सहसंबवणम्मि सालतरुमूले । सुक्कज्झाणाइमभेयजुयलमुल्लंघियठियस्स ।।२२५।।
कत्तियकिन्हाए पंचमीइ मिगसिरगयंमि निसिनाहे । छट्ठेणं पुव्वह्ने उप्पन्नं केवलन्नाणं ।।२२६।।
जाओ भवणुज्जोओ सह नरतिरिनारयाण सुक्खेण । तह वज्जियाउ दिवि दुंदुहीउ सयमेव समकालं ।।२२७।।
अह चलियासणसंभंतमिलियचउसट्ठितियसनाहेहिं । चउविहसुरनिवहजुएहिं तत्थ रइयं समवसरणं ।।२२८।।
वंतरसुरनिम्मविए जोयणपरिमंडले रयणवीढे । मणिकणयरययमइयं मणिकउसीसं चउदुवारं ।।२२९।।
वेमाणिजोइसभवणाहिवेहिं वप्पत्तयं कयं कमसो । चेइयतरुधम्मज्झयसीहासणधम्मचक्काई ।।२३०।।
पुक्खरिणिदेवछंदयचामरवरछत्तमंगलियपमुहं । वंतरसुरेहिं सेसं जिणपडिछंदाई तत्थ कयं ।।२३१।।
तो थुव्वंतो सुरनायगेहिं नवकणगकमलकयचलणो । उवविसइ तत्थ सामी पुव्वमुहो मणिमए पीढे ।।२३२।।
अह उवसंते घणगज्जिघोसगहिरे जयारवुम्मीसे । दुंदुहिसद्दे नियनियठाणनिविट्ठासुं य सहासु ।।२३३।।
जोयणपसप्पिणीए सव्वसभासाणुगाइ वाणीए । पारद्धा धम्मकहा भव्वाणुग्गहकए पहुणा ।।२३४।। तथा -
"भो भो भव्याङ्गिनस्तीक्ष्णदुःखलक्षजलाविले । अनिष्टेष्टभवद्योगवियोगलसदूर्म्मिके ।।२३५।।
गम्भीरलोभसङ्क्षोभतले कुग्राहसङ्कुले । समुद्बुद्धगुरुक्रोधवडवानलभीषणे ।।२३६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भीमे भवार्णवेऽमुष्मिन् कुकर्मपवनेरितैः । उन्मज्जद्भिर्निमज्जद्भिर्भूयोभूयः शरीरिभिः ।।२३७।।
चुल्लकादिचिरोद्दिष्टदशदृष्टान्तदुर्लभम् । प्राप्यते मानुषं जन्म कथञ्चिद् दिव्यरत्नवत् ।।२३८।। कुलकम् ।।
भवाभिनन्दिनः केऽपि जीवाः प्राप्यापि तत् तथा । अधर्म्माचरणैरेभिर्गमयन्त्यबुधा मुधा ।।२३९।।
अवज्ञायामृतफलं जरामृतिहरं जडाः । विषयेषु प्रसज्यन्ते विषद्रुमफलेष्विव ।।२४०।।
दुर्बुद्धयः शिवाधानं विमुच्य शुचिसुन्दरम् । गर्त्तासूकरवद् यान्ति विषयाशुचिगोचरम् ।।२४१।।
तस्मादसारे संसारे दुर्वारेष्वन्तरारिषु । जीविते पवनोद्धूतपताकाञ्चलचञ्चले ।।२४२।।
यावावरे यौवने च निधनाध्यासिते धने । कृतान्ते चापरिश्रान्ते हरति प्राणिनां गणं ।।२४३।।
दौर्गत्यरोगशोकाद्यैर्जगति व्याकुलेऽखिले । विहाय ममतां धर्मे धत्त भव्याङ्गिनो मनः" ।।२४४।।
इय वयणामयपाणेण सामिणो वंतचित्तसंतावा । ससुरासुरा वि परिसा परमाणंदं समणुपत्ता ।।२४५।।
अह दुरहियसयसंखा रायसुया चारुदत्तपामुक्खा । तम्मि खणे पव्वइया जगगुरुणो गणहरा जाया ।।२४६।।
अन्ने वि रायसत्थाहसिट्ठितणया तहेव तणयाओ । जिणरायपायमूले सहस्ससंखा विणिक्खंता ।।२४७।।
पव्वइउं असमत्था नरा य नारी य लिंति गिहिधम्मं । तियसतियसंगणाओ सुद्धं सम्मत्तमेवं च ।।२४८।।
जाए चउविहसंघे तिवईअत्थाणुसारओ झत्ति । गंथंति बारसंगं सुत्तं सिरिचारुदत्ताई ।।२४९।।
सुत्तत्थदुभएणं सव्वेहिं दव्वपज्जवेहिं च । अणुजाणइ तेसि जिणो सुयं च गणनायगत्तं वा ।।२५०।।
एवं च धम्मतित्थे तित्थयरेणं पयट्टिए तस्स । जाया सासणजक्खा तिमुहो दुरियारिदेवी य ।।२५१।।
पणमंततियसनाहो तत्तो चउतीसअइसयसणाहो । सिरिसंभवजिणनाहो विहरइ भव्वावबोहत्थं ।।२५२।।
विहरंतेण जिणेणं केई पव्वाविया नरवरिंदा । अन्ने य देसविरईप्पयाणओ लहु अणुग्गहिया ।।२५३।।
इयरे मिच्छत्ततमंधयारमोसारिऊण हिययाओ । करुणाधणेण ठविया निम्मलसम्मत्तमग्गम्मि ।।२५४।।
विहिया य भाविभद्देण भद्दया केवि पाणिणो पहुणा । एयफलु च्चिय अहवा जिणिंदचंदाणमवयारो ।।२५५।।
एवं मिच्छत्ततमंधयारभाणुस्स संभवजिणस्स । भव्वारविंदबोहणपरस्स वुच्छिन्नमोहस्स ।।२५६।।
चउदसवरिसजुयाए चउपुव्वंगीइ वज्जियं कमसो । पुव्वाण सयसहस्सं केवललाभाउ वोलीणं ।।२५७।।
अह मुणिऊणं सामी समयं निव्वाणनयरपत्थाणे । चलिओ सपरीवारो सम्मेयगिरिंदमुद्दिसिउं ।।२५८।।
तत्थारूढे सिवनिलयपढमसोवाणसन्निहे भयवं । सिरिसम्मेयगिरिंदे सपरियरो संभवजिणिन्दो ।।२५९।।
मणिमयसिलायलम्मि समं सहस्सेण मुणिवरिन्दाणं । मासाऽणसणेण ठिओ निव्वाघाएण भुवणगुरू ।।२६०।।
एवं ठिए जिणिंदे पमाइणो सामिणो किमम्हं ति । चलियाइं आसणाइं सक्काणं अणुसएणं व ।।२६१।।
अह आसणकंपेणं कंपिरहियएहिं सुरवरिंदेहिं । संसयतिमिरोहहरो मिहरु व्व पउंजिओ अवही ।।२६२।।
तो मुणिऊणं संभवजिणस्स निव्वुइखणं निराणंदा । चउसट्ठी वि सुरिंदा सम्मेयगिरिम्मि ओइन्ना ।।२६३।।
दट्ठूण जिणवरिन्दं ते जुगवं हरिससोयपडिहत्था । निच्छिन्नपेमपासस्स तस्स पाए पणिवयन्ति ।।२६४।।
चित्तसियपंचमीए ससिम्मि मिगसीसजोगजुत्तंमि । लहु संपाविउकामो अव्वाबाहं पयं सामी ।।२६५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लहुपंचक्खरमाणं कालं ठाऊण सेलराओ व्व । अज्झंतनिप्पकंपो सेलेसी केवली होउं ।।२६६।।
निम्महियसयलकम्मो किलेसजालेहिं सव्वहा चत्तो । सिद्धाणन्तचउक्को वरनाणी दंसणी भयवं ।।२६७।।
एरंडफलं पिव बंधवज्जिओ एगगेण समएणं । सरलेण पहेण पहू अव्वाबाहं पयं पत्तो ।।२६८।।
अवि तिरियनारयाणं खणं कुणंतो असायवीसामं । उल्लसिओ तम्मि खणे उज्जोओ कयजगुज्जोओ ।।२६९।।
ते वि सहस्सं मुणिणो तया जिणिंदेण सह कयाणसणा । कम्ममलविप्पउत्ता पत्ता अजरामरं ठाणं ।।२७०।।
खीरोयसलिलन्हवियस्स संदचंदणरसेण लित्तस्स । पुप्फाभरणेहिं विभूसियस्स तो सामिदेहस्स ।।२७१।।
चंदणघणसारागरुकट्ठेहिं निट्ठियट्ठकम्मस्स । सक्का सक्कारविहिं काउं हणुयाइ गिण्हंति ।।२७२।।
संठविय सोयविहुरं संघं नंदीसरम्मि दीवम्मि । कयअट्ठाहियमहिमा तत्तो सट्ठाणमणुपत्ता ।।२७३।।
पंचदसपुव्वलक्खा कुमरत्ते सामिणो विइक्कंता । चउपुव्वंगब्भहियं चउयालीसं च रज्जम्मि ।।२७४।।
चउपुव्वंगविहीणं वयंमि पुव्वाण सयसहस्सं तु । इय सट्ठिं पुव्वलक्खा सव्वाउं संभवजिणस्स ।।२७५।।
निव्वाणाओ सिरिअजियसामिणो तीसकोडिलक्खेहिं । सागरनामाण गएहिं निव्वुओ संभवो भयवं ।।२७६।।

एवं प्रस्तुतप्रकरणे सम्यक्त्वद्वारव्याख्यावसरे यदुक्तम् "इत्तु ञ्चिय पुव्वभवे जिणपवयणनिबिड-भत्तिराएणं । पत्तं तित्थयरत्तं सिरिसंभवतित्थनाहेणं ।।२९।। ति । तदशेषमपि लेशतः श्रुतानुसारतश्च श्रीसम्भवजिनचरित्रव्याख्यानद्वारेण तावदवस्थापितम् । एतद्व्यवस्थापनेन च सदृष्टान्तमपि प्रस्तुतं सम्यक्त्वद्वारं परिसमाप्तमिति ।। श्रीः ।। एवं च सति –

दृप्यद्दुःखाधितुङ्गक्षितिधरशिखरच्छेददम्भोलिदक्षम् ।
माद्यन्मिथ्यात्वदन्तावलबलदलनोदग्रजाग्रन्मृगेन्द्रम् ।।
संसाराम्भोधिमज्जन्निवहसमुत्तारणस्पष्टपोतम् ।
सम्यक् सम्यक्त्वमेतद् दधत हृदि बुधा ! किं मुधालस्यमुद्रा ।।१।। तथा –
किं कल्पद्रुमकोटिभिः किमथवा चिन्तामणीनां चयैः ।
किं वा कामदुहां गवामपि गणैरल्पैहिकार्थप्रदैः ।।
अप्येकं करपङ्कजप्रणयिनीं स्वर्गापवर्गश्रियम् ।
कर्तुं यत् क्षमते तदेव सुधियां सम्यक्त्वमस्तु स्थिरम् ।।२।।२९।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीमदभयदेवसूरिपट्टप्रतिष्ठित-श्रीदेवभद्र-सूरिशिष्यावतंस-श्रीप्रभानन्दाचार्यसोदर्यपण्डित-श्रीपरमानन्दविरचिते **हितोपदेशामृतविवरणान्तर्वर्तिनि श्रीसम्भवनाथचरित्रे** जिनेन्द्रच्यवनादिनिर्वाणपर्यन्तचरित्र-वर्णनस्तृतीयभवः परिसमाप्तः ।। श्रीः ।।

तत्समाप्तौ समाप्तं **सम्यक्त्वमूलद्वारम्** ।। मङ्गलमस्तु चतुर्विधश्रीश्रमणसङ्घस्य ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्यं द्वितीयं मूलद्वारम् ।।

व्याख्यातं सप्रपञ्चं प्रथमं सम्यक्त्वद्वारम्, साम्प्रतमुत्तमगुणसङ्ग्रहाख्यं द्वितीयं द्वारं व्याचिख्यासुरादौ तदवतरणिकागाथामाह –

एसो य दंसणमणी उत्तमगुणकणयकडयसंघडिओ ।
सविसेसं होइ थिरो जुत्तो गुणसंगहो तम्हा ।।३०।।

एष च । चशब्दः पुनरर्थे । अयं पुन**र्दर्शनमणिः** । दर्शनं-सम्यक्त्वम्, तदेवात्मनो अनाहार्यमण्डनत्वेन मणिरिव मणिः रत्नविशेषः, **सुतरां स्थिरो भवति** स्थैर्यं भजते, कथम् ? इत्याह - **'उत्तमगुणकनककटकसङ्घटितः'** । उत्तमाः-प्रधानगुणा वक्ष्यमाणा दानादयः, त एव कनककटकंचामीकरकङ्कणं, तेन सङ्घटितः-संयोजितः, दानादिभिर्गुणैः संवलितं-सुघटं च हाटककटकसङ्घटितस्य मणेः स्थैर्यं, **तस्मादे**वं सति **गुणानां सङ्ग्रहो** सञ्चयो, **युक्तः** समुचितः ।।३०।।

अथ कथमयमियानाग्रहो गुणसङ्ग्रहे ? तदाह –

ति च्चिय जेण महग्घा ते चेव य सासया धुवं भुवणे ।
तत्तोहिन्तो वियरइ कुमुओयरसोयरा कित्ती ।।३१।।

भुवने इति पदं प्रतिपदमभिसम्बध्यते । **यतः** कारणाद् **भुवने** जगति **त एव** गुणा एव **महार्घाः** स्वर्णमणिप्रभृतिभ्योऽपि दुर्लभाः । एवंविधा अपि कदाचिन्नश्वराः स्युरित्याह - **त एव च** गुणा एव च **ध्रुवं** निश्चितं जगति **शाश्वताः** अविनश्वराः आचन्द्रार्कावस्थायिनः, **तेभ्य** एव च गुणेभ्यो भुवने **कीर्त्तिः** प्रसिद्धिः **प्रसरति** । किंविशिष्टा ? **कुमुदोदरसोदरा,** कुमुदं-कैरवम्, तदुदरम्-अन्तःपुटम्, **तत्सोदरा** तत्तुल्या, बहिः कदापि रजःपङ्कादिशङ्कापि स्यादित्युदरपदोपादानम् ।।३१।।

न चैतावदेव गुणगरिमविजृम्भितं, किन्त्वन्यदप्यस्तीत्येतदेव वक्ष्यमाणगाथाकुलकेनाह –

तुल्ले तहाहि मणुयत्तणंमि जं केइ सेवगजणाणं ।
कप्पद्दुम व्व वंछियफलेहिं निच्चं चिय फलंति ।।३२।।

तथाहिशब्दः वस्तुतात्पर्योपदर्शनार्थः । **तत् सर्व्वं चिरसञ्चितगुणानां माहात्म्यं जानीत** इति कुलकपर्यन्तगाथया सम्बन्धः । यत् किम् ? **यत् केचन सेवकजनेभ्यो वाञ्छितफलैः फलन्ति**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणयिजनमनोमनोरथान् पूरयन्ति । कदाचित् एकदा एव नेत्याहः - **नित्यमपि** सदैव । क सति ? **मनुष्यत्वे तुल्येऽपि** करचरणाद्यवयवसाम्येन नरत्वे समानेऽपि तत् किम् ? सर्वेष्येवंविधाः पुमांसः ? इत्याह – केऽपि न तु सर्वे, **'दुर्लभा हि सर्वत्र ब्रह्माण्डभाण्डोदरेऽपि दानशौण्डाः'** । यदुक्तम् –

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा ।।१।। [ ]

के इव फलन्ति ? **कल्पद्रुमा इव** । यथा कल्पमहीरुहः स्वसेवकेभ्यो मनोऽभिलषितैः फलैः फलन्ति । तदेतच्चिरसञ्चितगुणानां माहात्म्यम्, तदन्तरेण दानशक्तेरभावात् । यदाह –

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरस्त्रियः ।
विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ।।१।। [ ] इति ।।३२।। किञ्च -

अन्ने पयंडभुयदंडपयडियाणप्पदप्पमाहप्पा ।
जं वग्गिरखग्गकरा करंति करगोयरं पुहविं ।।३३।।

तुल्ये मनुष्यत्व इत्यनुवर्त्तते । **यच्चान्ये पृथ्वीं करगोचरां कुर्वन्ति** तदपि गुणानां माहात्म्यम् । किंविशिष्टाः ? **प्रचण्डभुजदण्डप्रकटितानल्पदर्प्पमाहात्म्याः** । दुर्द्धरदोः परिघावि:कृतप्रचुरतराभिमानगरिमाणः । दर्प्पो-अभिमानः, माहात्म्यं-गरिमगुणः, यदि वा दर्प्पस्यैव माहात्म्यम् । कदाचित् गजवाजिरथपत्तिपरिवृतास्ते पृथिवीं करगोचरां कुर्युरित्याह - **वल्गत्खड्गकरा** करप्रेङ्खोलत्करवालमात्रसहाया एव ।।३३।। अन्यच्च –

भयवसनमंतसामंतवियडकोडीरघडियपयपीढा ।
पयडपयावा केई जं किर भुंजंति भरहद्धं ।।३४।।

यच्च केचन भरतार्द्धं भुञ्जते अर्द्धचक्रवर्त्तिनो भवन्ति । किंविशिष्टाः ? **प्रकटप्रतापाः** परिस्फुरदुरुतेजसः । एतदेव व्यनक्ति - **सम्भ्रमप्रणमन्मुकुटबद्धमूर्द्धाभिषिक्तविकटकिरीटसंश्लिष्टपादपीठाः** । तत्प्रतापाक्रान्ता हि ते तथा प्रणमन्ति ।।३४।। अपरं च -

भुयबलविढत्तवसुहा ठवियाऽवहित्तुल्लचुल्लहिमवंता ।
सुरखयरनया अवरे जं जाया पुहइपुरहूया ।।३५।।

गाथा-३५ 1. वढत्तवसुहे सं. पा. प्रतिमध्ये किन्तु मूलगाथाया प्रतिमध्ये विढत्तवसुहा पाठः स च समीचीनो भाति । संपा. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यच्चापरे पुरुषशार्दूलाः **पृथिव्यां पुरहूता** इव संजज्ञिरे । समृद्धं हि राज्यमैन्द्रपदान्न परिहीयते । एतदेव स्पष्टयति'**भुजबले**'त्यादि ।। भुजयोर्बलेन दोर्दण्डचण्डिम्ना, **अर्जिता** स्वायत्तीकृता, न तु परशुरामादेर्द्विजादिभिरिव दयापूर्विकया लब्धा । एवंविधा या **वसुधा,** तस्याः **स्थापितः** कल्पितो-**ऽवधितुल्यः** सीमसमानः **क्षुद्रहिमवान्** यैस्ते तथा । भुञ्जते हि चक्रवर्त्तिनः क्षुद्रहिमवन्मर्यादां मेदिनीम्, एवं च अखण्डषट्खण्डक्षोणीमण्डलाखण्डलत्वं समीचीनमेव, अत एव **सुरखेचरनताः** प्रणमन्ति हि सङ्क्रन्दनमिव सुरचक्राणि चक्रवर्त्तिनमपीति भावः ।।३५।। तथा -

उब्भडदंभोलिबलावलेव-अवगणियदित्तदणुवइणो ।
अप्पडिमपभावा कप्पसामिणो जं च सीसंति ।।३६।।

यच्च कल्पस्वामिनः स्वर्गपतयः शास्त्रेषु **प्रतिपाद्यन्ते** । किंविशिष्टाः ? **अप्रतिमप्रभावाः** निरुपममहिमानः, एतदेव दर्शयति-'**उब्भडे**'त्यादि । **उद्भटदम्भोलिबलावलेपावगणितदृप्तदनु-पतयः** अत्यन्तोल्बणकुलिशसामर्थ्यापहस्तितबलवद्दैत्यपतयः, एतदपि सुसञ्चितोल्बणगुण-विजृम्भितमेवेति ।।३६।।

किञ्च यच्चास्मिन् जगति केऽपि पुरुषपुण्डरीका जगतोऽपि गुरवः सञ्जाताः, जगद्गुरुत्वमेव व्यनक्ति -

समसमयससंभमभमिरनमिरसुररायपणयपयकमला ।
वरनाणमहोअहिणो जं जाया केइ जयगुरुणो ।।३७।।

"**समसमये**"त्यादि । **समसमयं** समकालं **ससम्भ्रमाः** सादरा **भ्रमन्तः**, किं किमस्य जगद्गुरोः क्रियताम्? इति । प्रहर्षोत्तालगतयो **नम्रा** वन्दारवो ये च **सुरराजानो** अमर्त्यचक्रवर्तिनः, तैः **प्रणतानि** नमस्कृतानि **पदकमलानि** येषां ते तथा ।

अथ किमर्थं त्रिदिवपतयोऽपि तानेवं नमस्यन्ति ? तदाह - '**वरनाणे**'त्यादि, वरं क्षायिकत्वाद-प्रतिपाति, यदि वा लोकालोकप्रकाशकत्वेन मतिज्ञानाद्यपेक्षया **वरं** प्रधानं यत् **ज्ञानं** केवललक्षणं तस्य **महोदधय** इव अनन्तज्ञानार्णवाः । अत एव त्रिजगत्पतिप्रणतपदा **जगद्गुरवश्च** ते च तीर्थपतय एव ।।३७।।

साम्प्रतं दानशौण्डत्वमण्डलेश्वरत्वाऽर्द्धचक्रवर्त्तित्वचक्रवर्त्तित्वसुरेन्द्रत्वतीर्थपतित्वप्रभृतिकं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिरसञ्चितोत्तमगुणगणगरिमाणं पृथक् पृथक् गाथाभिरभिधाय कुलकं सङ्कलयन्नाह –

अन्नं पि हु जं किंपि भुवणच्छेरयकरं परं लोए ।
सव्वं चिय चिरसंचियगुणाण तं मुणह माहप्पं ।।३८।।

किं वा बहूक्तेन । **अन्यदपि यत् किमपि लोके** जगति **भुवनाश्चर्यकरं** त्रिभुवनचेतश्चमत्कारि आमर्षौषधिलब्ध्यादिकमष्टमहासिद्धिप्रभृतिकं च दृश्यते श्रूयते वा **तत् सर्वं चिरसञ्चितानां गुणानामेव माहात्म्यं जानीते**ति मूलसम्बन्धः ।।३८।। किञ्च –

पूयं पावंति अचेयणावि पसुणो वि गोरवमुविंति ।
जं सुगुणपरिग्गहिया ता भयह गुणे इमे ते य ।।३९।।

कदाचित् प्रकृष्टचैतन्यवदाधारपुरस्कारेणैव गुणानां गुरुता स्यादित्याशङ्क्याह **यत्** यस्मात्, **शोभनैर्गुणैर्वक्ष्यमाणैः परिगृहीताः** कृताधिष्ठाना, **अचेतना अपि** विशिष्टचैतन्यशून्याः, चिन्तामणि-कल्पपादपप्रभृतयः प्रधानमानवगणेभ्यः **पूजां प्राप्नुवन्ति** । यथा **पशवोऽपि** कामगवी-करि-तुरगादयः क्षितिपतिप्रभृतीनामपि **गौरवभाजनं भवन्ति** न तु पूर्वोदिता एव । एवं सति यद्विधेयं तदाह-**भयह** त्ति । **तत्तस्मात्** कारणात् हे कुशलाः ! **गुणान् भजध्वं** सेवध्वम्, अथ के ते गुणास्तदाह-**'इमे ते य'** ते च गुणा अमी वक्ष्यमाणाः ।।३९।।

तानेवाह –

दाणं[१] सीलं[२] च तवो[३] भावो[४] विणओ[५] परोवयारो[६] य ।
उचियाचरणं[७] च तहा देसाइविरुद्धपरिहारो[८] ।।४०।।
अत्तुक्करिस[९]-कयग्घत्त[१०]-अभिणिवेसाण वज्जणं[११] तह य ।
इय एसो गुणनिवहो सम्मत्तथिरत्तणं कुणइ ।।४१।। प्रतिद्वारगाथा ।

इत्येष प्रतिद्वारैकादशकेन प्रोक्तो **गुणनिवहः सम्यक्त्वस्य** पूर्वद्वारप्रणीतस्य **स्थैर्यमुत्पाद-यति** । प्रतिद्वाराण्येवाह-दानमित्यादि । तत्र **दानं** वक्ष्यमाणं चतुःप्रकारमभयदानादि । **शीलमव्रतत्यागः** । **तपो** द्वादशभेदम् । **भावः** शुभाध्यवसायः । **विनयः** प्रतिपत्तिलक्षणः । **परोपकारो** द्रव्यभावभेदभिन्नः । **उचिताचरणं** पित्रादिषु वक्ष्यमाणलक्षणम् । **देशादीनां** पञ्चानां **विरुद्धपरिहारः** । तथा - **आत्मोत्कर्षकृतघ्नत्वाभिनिवेशानां वर्जनमिति** ।।४०-४१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदानीं दानादीन्येव सप्रपञ्चं व्याचष्टे -

उद्दीवियसयलगुणं दाणं ता तत्थ भन्नए पढमं ।
तं पुण चउप्पयारं वन्निज्जइ समयसत्थेसु ।।४२।।

तत्र तेषु प्रतिद्वारेषु गुणेषु वा **प्रथमं तावद् दानमेव भण्यते** । किंविशिष्टम् ? **उद्दीपितसकलगुणम्** । उद्दीपिताः-समुत्तेजिताः, सकलाः - समग्राः, गुणाः - शौर्य-धैर्यादयो येन तत् तथा । दानशून्यो हि गुणवानपि न द्योतते, **तच्च** दानं **समयशास्त्रेष्वा**गमग्रन्थेषु **चतुष्प्रकारं भण्यते** ।।४२।।

चतुष्प्रकारत्वमेव दर्शयति -

पढमं अभयपयाणं अणुकंपादाणमह भवे बीयं ।
तइयं तु नाणदाणं चउत्थयं भत्तिदाणं तु ।।४३।।

प्रथममभयप्रदानम् । अनुकम्पादानमथ भवेद् द्वितीयम् । तृतीयं तु ज्ञानदानम् । चतुर्थं तु भक्तिदानम् । इति ।।४३।।

तत्थ य अभयपयाणं किज्जइ भयविहुरियाण जीवाणं ।
भन्नइ भयं तु मरणाउ नावरं चाउरंतभवे ।।४४।।

तत्र तेषु चतुर्षु दानेषु मध्ये **अभयप्रदानं क्रियते** । केषां? **जीवानाम्** । किंविशिष्टानां? **भयविधुरितानां** साध्वसविह्वलानाम् । **भयं तु** पुनरस्मिन् **चातुरन्ते**ऽपि **भवे** चातुर्गतिकेऽपि संसारे **मरणादपरं** अधिकं **न** किमपि **भण्यते** । **'मरणभयं तु भयाणं'** इति श्रुतेः ।।४४।।

रक्खंति य मरणभयं पाणीणं दयावरा नरा सम्मं ।
तम्हा धम्मरहस्सं इक्कङ्किय होइ पाणिदया ।।४५।।

तच्च **मरणभयं प्राणिनां** जीवानां **सम्यक्** त्रिकरणशुद्धया **रक्षन्ति** । के? **नराः** । किंविशिष्टाः? **दयापराः** करुणारसवासितान्तःकरणाः । **तस्मादे**वं सति **धर्मस्य** अहिंसालक्षणस्य **रहस्यम्** उपनिषद् **एकैव भवति जीवदया** । विना हि दयां निष्फलं सकलमेवान्यद् धर्म्मानुष्ठानम् । यदुक्तम् -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पठितं श्रुतं च शास्त्रं गुरुपरिचरणं च गुरुतपश्चरणम् ।
घनगर्ज्जितमिव विजलं विफलं सकलं दयाविकलम् ।।१।। [ ] इति ।।४५।।

अथ के प्राणिनः? का च तेषां दया? इति प्रदर्शयन्नाह -

पाणिंती जीवंती जं तेणं पाणिणो इहं जीवा ।
सा होइ दया जं पुण तेसिं हिंसाइ परिहारो ।।४६।।

जीव प्राणधारणे । [पा. धा. ५६२ । हे. धातु. ८७] **यत्** यस्मात् **जीवन्ति प्राणन्ति** प्राणान् धारयन्ति **तेन** हेतुना **प्राणिनो जीवाः । यत् पुनस्तेषां हिंसायाः परिहारः सा दया भवती**ति ।।४६।।

अत्राह परः -

हिंसच्चिय नणु न घडइ अणाइनिहणस्स ताव जीवस्स ।
तयभावे कह णु दया ? गामाभावे जहा सीमा ।।४७।।

ननु प्रश्ने । जीवस्य हिंसायाः परिहारो दयेति भवद्भिरुदीर्यते, तत्र **तावज्जीवस्य हिंसैव** वधलक्षणा **न घटते** । कुतः? **अनादिनिधनत्वाज्**जीवस्य, न विद्येते आदिनिधने उत्पत्तिप्रलयौ यस्य स तथा तस्य । **तस्याश्च** हिंसाया **अभावे** अविद्यमानत्वे **नु** इति वितर्के । **कथं दया?** । हिंसासिद्धौ हि दयायाः साफल्यम् । अत्र दृष्टान्तमाह - **'गामाभावे जहा सीमा'** । सति हि ग्रामे तत्सीमाव्यवस्थापनमनुचितम् ।।४७।।

आचार्यः प्राह -

सच्चं न घडइ हिंसा अणाइनिहणस्स सोम जीवस्स ।
हिंसासद्दत्थं पुण न याणसि तेणिमं भणसि ।।४८।।

हे सौम्य ! सत्यमेवेदं भवद्वचो, यदनादिनिधनस्य **जीवस्य हिंसा न स्यादेव** । किन्तु त्वं **हिंसाशब्दार्थमेव** तावत्र **जानासि** । कथमवसीयत इति चेत्? **तेनै**व हिंसाशब्दार्थपरिज्ञान-लक्षणेन हेतुना **इदं** पूर्वोक्तम**भिदधासि** । अज्ञश्चानुग्राह्यो गुरुजनस्येति हिंसाशब्दार्थमेव तावदवबोध्यसे ।।४८।।

पाणा संति इमस्स त्ति तेण पाणि त्ति वुच्चई जीवो ।
पाणे उण दससंखे आगमभणिए इमे मुणसु ।।४९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणा वक्ष्यमाणलक्षणास्ते **विद्यन्ते यस्य तेन प्राणीति प्रोच्यते जीवः । प्राणान् पुनर्दशसङ्ख्यानागमप्रणीतान् अमून् जानीहि** ।।४९।।

प्राणानेवाह -

[1]पंचिंदियाणि मणवयणकायबलमाणपाणमाउं च ।
एए दसहा पाणा पन्नत्ता जिणवरिंदेहि ।।५०।।

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रलक्षणानि **पञ्चेन्द्रियाणि । मनोबलं वाग्बलं कायबलं** चेति बलत्रयम् । **आनप्राण**मुच्छ्वासनिश्वासः । **आयुश्चे**ति **दशधा** दशप्रकारा **एते** पूर्वोदिताः **प्राणाः प्रज्ञप्ताः** प्रोक्ता **जिनवरेन्द्रै**र्भगवद्भिरर्हद्भिः ।।५०।।

अथ जीवस्य प्राणानां च कः सम्बन्धः? इति चेत् तदाह -

जहसंभवं इमे पुण जीवेण समं भवंति संघडिया ।
आउट्टिप्पभिईहिं एयाण विओयणं हिंसा ।।५१।।

अमी पुनः प्राणा **जीवेन समं सङ्घटिता भवन्ति** । तत्किं सर्वेऽपि? न, इत्याह - **'यथा-सम्भवं'** ये प्राणा यस्य एकेन्द्रियादेर्जीवस्य सम्भवन्ति । तथाहि - एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियासंज्ञिसंज्ञि-जीवानां यथासङ्ख्यं चतुःषट्सप्ताष्टनवदशसङ्ख्याः प्राणा भवन्ति । एकेन्द्रियाणां स्पर्शनमि-न्द्रियं कायबलं निःश्वासोच्छ्वासः आयुश्चेति चत्वारः । द्वीन्द्रियाणामेतदधिकं रसनेन्द्रियं वाग्बलं चेति षट् । त्रीन्द्रियाणां तदधिकं घ्राणमिति सप्त । चतुरिन्द्रियाणां पूर्वाधिकं चक्षुरित्यष्टौ । असंज्ञिनामेतदधिकं श्रवणेन्द्रियमिति नव । संज्ञिनां सर्वाधिकं मनोबलमिति दश । यदाह –

[1]इंदियबलऊसासा पाणा चउ छच्च सत्त अट्ठेव ।
इगविगलऽसन्निसन्नी नव दस पाणा य बोधव्वा ।।१।। [ ]

गाथा-५० 1. **तुला** - पंचिंदिय-तिविहबलं नीसासूसासआउयं चेव ।
दसपाणा पन्नत्ता तेसिं विघाओ भवे हिंसा ।। - सम्य. प्र. गा. २१५ ।।
पञ्चेन्द्रियाणि स्पर्शनादीनि । त्रिविधबलं मनोवाक्कायजनितः शक्तिविशेषः । निःश्वासोच्छ्वासं अधऊर्ध्वाऽनिलप्रचारः । आयुर्जीवितं । एते दश प्राणाः प्रज्ञप्तास्तीर्थकरादिभिः तेषां विघातो वियोजनं भवेद्धिंसा न तु जीवस्य विनाशस्तस्याऽप्रच्युताऽनुत्पन्नस्थिरैकस्वभावत्वात् ।। - सम्य. प्र. २१५ वृत्तौ ।।

गाथा-५१ 1. **तुला** - पणिंदियत्तिबलूसासाऊ दस पाण चउ छ सग अट्ठ ।
इगदुतिचउरिंदीणं, असन्निसन्नीण नव-दस य ।।१।। - नव. प्र. जीवतत्त्वे गा. ७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेन प्रकारेणामी प्राणा जीवेन समं सङ्घटिता भवन्ति । **अमीषां** प्राणानामा**कुट्टि-प्रमाद-दर्प्प-कल्पप्रभृतिभिः** कारणैर्यत् जीवात् **वियोजनं** पृथक्करणं सा **हिंसा** इत्ययं हिंसाशब्दार्थः । तत्र आकुट्टिः-उपेत्यकरणं, प्रमादो-अनाभोगादिः, दर्प्पो-धावनवल्गनादिः, कल्पः-कारणवशात् करणम् । यदाह -

आउट्टिया उविच्चा दप्पो पुण होइ वग्गणाईओ ।
कंदप्पाइ पमाओ कप्पो पुण कारणे करणं ।।१।। [ ] ५१।।

अथ जीवात् पृथग्भूतानां प्राणानां वियोजनेन जीवस्य का हिंसेति चेत्तदाह -

सासयरूवाओ वि हु जीवाउ इमेसि जं पुढोकरणं ।
तं तस्स तिव्वदुहदायगं ति उवयारओ हिंसा ।।५२।।

शाश्वतरूपादविनश्वररूपादपि जीवादात्मन अमीषां प्राणानां **यत् पृथक्करणं तत् तस्य** जीवस्यो**पचारिकवधरूपत्वात् हिंसा । 'दसपाणविओअणं हिंस' त्ति** वचनात् । कुतः ? इत्याह- **तत्** प्राणवियोजनं, **तस्य** जीवस्य **तीव्रदुःखदायकम्** अत्यन्तपीडोत्पादकम् **इति** हेतोः । वियुज्यमानेषु हि प्राणेषु महानात्मनो वेदनासमुद्घातः परभवप्रस्थानं च भवति । प्राणत्यागमपि मरणमिति व्यपदेशात्, न च मरणादन्यदपि दुःखमिति ।।५२।।

एवं च अहिंसायाः स्वरूपमभिधित्सुराह -

एवंविहहिंसाए जो परिहारो हविज्ज सा हु दया ।
हवइ उ अतुल्लकल्लाणकारणं सेविया एसा ।।५३।।

एवंविधाया दशप्राणवियोजनलक्षणाया **हिंसाया यः परिहारः** त्यागः **हुः** अवधारणे, **सैव दया** भवेत् । **एषा पुनर्दया सेविता** सम्यगाराधिता सती **अतुल्यकल्याणकारणं भवति** । निरुपमश्रेयः समृद्धिहेतुः सम्पद्यते । ननु दानतपःप्रभृतयोऽपि धर्माः सम्यगाराधिताः साधयन्ति निःश्रेयसं,

---

दसहा जियाण पाणा इंदियऊसासआउबलरूवा । एगिंदिएसु चउरो विगलेसु छ-सत्त-अट्ठेव ।।१।।
असन्निसन्निपंचिदिएसु नव-दस कमेण बोधव्वा । तेहिं सह विप्पओगो जीवाणं भन्नए मरणं ।।२।।
- जीव. प्र. गा. ४२-४३

गाथा-५२ 1. वेयणकसायमरणे वेउव्विय तेयए य आहारे । केवलि य समुग्घाया सत्त इमे हुंति सन्नीणं ।।१।।
- दंड. प्र. गा. १६ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किमधिकं दयाधर्मस्य?, सत्यं, सन्त्येव दानादयो धर्माः शर्माद्वैतहेतवः, किन्तु दयाधर्मपुरस्कृता एव, अतो अहिंसालक्षणाद् धर्म्मान्नान्यः प्रकृष्टतमो धर्म्मः ।।५३।।

इत्येतदेवोपमानद्वारेण व्यवस्थापयन्नाह -

को तेयंसी तवणाउ को व सुरसहयराओ ओयंसी ।
को व तरस्सी पवणाओ को व मयणाउ रूवस्सी ।।५४।।
किं नहयलाउ विउलं सुपइट्ठा किं च धरणिवट्ठाउ ।
को अन्नो वि हु धम्मो जीवदयाओ विसिट्ठयरो ।।५५।। युग्मम् ।

जीवदयातः क इवान्योऽपि **धर्म्मो विशिष्टतरः** प्रकृष्टतमः । यथा किम्? यथा **तपनाद्** दिनकरात्, **क** इवान्यस्तेजस्वी ? प्रदीपमणितारकेन्दुप्रभृतितेजस्विवर्गे तस्यैवाधिकतेजस्वित्वात् । **कश्च सुरसहचराद्** अपर **ओजस्वी?** सुराः सहचरा अनुजीविनो यस्येति व्युत्पत्त्या सुरसहचरः-शचीपतिः । ओज्यपौरुषोष्मायितः । अतः क इवान्यस्तस्मादोजस्वी? तस्यैव सकलसुरचक्रशक्रत्वात् । **कश्च पवनात्** प्रभञ्जनादन्य**स्तरस्वी** वेगवान्? गजवाजिद्वीपिमृगादिवेगवद्भ्यस्तस्यैवातिवेगवत्त्वात् । **को वा मदनात्** प्रद्युम्नात् **रूपवान्?** पुरूरवाप्रभृतिभ्योऽपि तस्यातिसुरूपत्वात् । तथा **नभस्तलाद्** अन्तरिक्षात् **किमि**वान्यद् **विपुलं** विस्तीर्णम्? तस्यैव लोकालोकव्यापकत्वात् । **किं च धरणीपृष्ठात् सुप्रतिष्ठं** निश्चलम् ? सकलाचलावचूलस्य चामीकरधराधरस्यापि तदाधारत्वात् । किमुक्तं भवति? यथा तपनादिभ्यस्तेजस्वित्वादिगुणैर्नान्यः प्रकृष्टतमस्तथा अहिंसालक्षणाद् धर्मान्नान्यः परभागवानिति भावः ।।५४।।५५।।

प्राणिप्राणप्रहाणपरित्राणे एव यथाक्रमं पापपुण्यारम्भसम्भृतिनिमित्तमिति दर्शयन्नाह -

निहणंतो पाणिगणं पावट्ठाणं न किं समारभइ ।
रक्खंतो पुण तं चिय पुन्नट्ठाणं न किं जीवो ।।५६।।

निघ्नन् विनाशयन्, **प्राणिगणं** सत्त्वसङ्घातं, **जीवः किं** नाम **पापस्थानं न समारभते?**

गाथा-५५ 1. **शचीपतिः**-शचते मधुरं वक्तीति शची । - अ. चि. ना. श्लो. १७५ ।।
शच्याः पतिः शचीपतिः यौगिकत्वात् शचीशः पौलोमीश इत्यादयः । - अ. चि. ना. स्वो. टी. श्लो. १७३ ।।
2. **पुरूरवा** - पूरू रौति पुरूरवाः, "विहायस्सुमनस्' (उणा-९७६) इत्यसि निपात्यते ।
- अ. चि. ना. स्वो. टी. ७०१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केष्वसत्यास्तेयप्रभृतिषु पापस्थानेषु न प्रवर्त्तते ? **'समस्तपापप्रारम्भाणां जीववधमूलत्वात्'** ? **तथा** स एव **जीवस्तमेव** प्राणिगणं जन्तुजातं **रक्षन्नात्मानमिव** प्रतिपालयन् **किं** नाम **पुण्यस्थानं नो**पक्रमते ? **'सकलपुण्यारम्भपुण्याहमङ्गलरूपत्वात् प्राणिदयायाः'** ? ।।५६।।

अपरं च -

एयं पि ताव कट्ठं पावं ति मुणंतयाऽवि जं केई ।
वसणगणतप्पणट्ठा पाणिवहे संपयट्टंति ।।५७।।

एतदपि तावत् कष्टम् । विशिष्टविवेकवतामरतिहेतु **यत् केचिद**विवेकिनः **प्राणिवधे** जीवसंहारे **प्रवर्त्तन्ते** । किं कुर्वन्तोऽपि? **विदन्तोऽपि** । किं? तत् **पापमिति** । **'महते पापाय प्राणप्रहाणम्'** इति जानन्तोऽपि । किमर्थं तर्हि प्रवर्त्तन्ते? इत्याह-[1]**व्यसनगणतर्पणार्थं 'विशेषेण अस्यन्ते क्षिप्यन्ते दुर्गतौ जन्तव एभिरिति व्यसनानि'** मद्यमांसमैथुनासेवनप्रभृतीनि, तेषां सन्तर्प्पणा-य-पूर्त्तये । न खलु जन्तुजातकदन्नव्यसनानि पूर्यन्ते, अतस्तावदमीषामैहिकसुखाभिलाषलवलुब्ध-मनसामेनसि[2] प्रवृत्तिः ।।५७।।

ये तु धर्म्मधियैवाधर्म्मकर्म्मसु प्रवर्त्तन्ते तेषां प्रवृत्तिमनुशोचयन्नाह –

एयं पुण कट्ठयरं सक्कं सोउं पि कह सयन्नेहिं ।
जं केइ पाणिघायं करंति किर धम्मबुद्धीए ।।५८।।

एतत् पुनः कष्टतरं शिष्टानां प्रकृष्टानिष्टपुष्टिहेतुः । अत एव **सकर्णैः** सहृदयैः, आस्तामनु-मोदयितुं प्रेरयितुं वा । यावत् **श्रोतुमपि न शक्यं** सुतरामसम्बद्धत्वात् । यत् किम्? । **यत्** स्वयं नष्टैरन्येषामपि नाशनपरैः कुशास्त्रकारैः प्रेरिताः **केचन** मिथ्याधार्म्मिकम्मन्याः **प्राणिघातम्** असुमद्विशसनं, **किल धर्मबुद्ध्या कुर्वन्ते** । यदाहुः-तदाप्ताः-कदागमकृतः [1]**'यज्ञार्थं पशवः सृष्टा'**

गाथा-५७ 1. **व्यसनानि** - 'हेयं व्यसनसप्तकम्' विशेषेणाऽस्यते क्षिप्यते चित्तमेभिरिति व्यसनानि तेषां सप्तकम् । - अ. चि. ना. स्वो. वृ. श्लो. ७३८ ।।

2. **एनसि** - एनस् - अशुभ, पाप, दुष्कृत्य इति भाषायाम् स. ए. । एत्येनः क्लीबलिङ्गः "अर्त्तणिभ्यां" । - (उणा. ९७९) इति नस् । अ. चि. ना. स्वो. वृ. श्लो. १३८० ।।

गाथा-५८ 1. "यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा । यज्ञोऽस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः" ।। - यो. शा. २/३३ ।। इति यज्ञार्थं ..... श्लोकस्य पूर्तिः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि । अतः कथमनादिदुर्वासनावशात् स्वयमेवाधर्मकर्मप्रवृत्ताः प्रेरिताश्च कुशास्त्रकृद्भिर्न भवेयुर्दुर्गतिमार्गजङ्गालाः[2] प्राणिन इति ।।५८।।

न च मधुपर्क-क्रतु-कुतीर्थपरिशीलनादिभिरपि शरीरिणामात्यन्तिको दुःखमोक्षः सम्भवति, किन्त्वेतद्विलक्षणः कोऽपि दुःखमोक्षोपाय इति प्रदर्शयन्नाह –

किं तित्थसत्थपरिसीलणेहिं किं होमसोमपाणेहिं ।
पिक्खह अप्पं व जिए रक्खह दुक्खाउ अप्पाणं ।।५९।।

किं तीर्थसार्थपरिशीलनैः ? तत्र तीर्थानि लौकिकानीह प्रस्तावादवगन्तव्यानि, तानि च गङ्गा-गया-गोदावरी-त्रिपुष्कर-प्रयाग-प्रभास-प्रभृतीनि । अत एतेषां परिशीलनेन-परिचरणेन, किं? न किञ्चिदित्यर्थः । यदि वा तीर्थानां शास्त्राणां वा लौकिकानामेव, वेदवेदान्तस्मृतिपुराणेतिहास-भारतरामायणप्रभृतीनां, तेषामपि परिशीलनेनाभ्यसनेन किम्? तथा **होमसोमपानाभ्यां किम्?** तत्र होमोऽग्निकारिका-वाजिनीराजनादिः । सोमपानं-सप्ततन्तुपरिसमाप्तौ सोमवल्लीरसपानम्, उपलक्षणं च सोमपानं यावत् ब्रह्मयज्ञ-देवयज्ञ-पितृयज्ञ-नृयज्ञ-भूतयज्ञादिभिः पञ्चमहायज्ञैर्वा किम्? न किञ्चिदेव । यतः कुतीर्थपरिशीलन-यज्ञावसानेष्वमीष्वेकस्यापि दुःखमोक्षाक्षमत्वात् । तर्हि कथमयमात्मा दुःखेभ्यः परिरक्षणीयः? इत्याह-'**पिक्खहे**'त्यादि । [1]**जीवान्** प्राणिनः **आत्मानमिव पश्यत** । यथैवात्मनः सदैवेष्टयोगायाऽनिष्टवियोगाय च प्रयत्नः क्रियते तथा सर्वप्राणिषु, प्रकृत्यैव हि प्राणिनां दुःखभीरुत्वात् सुखप्रियत्वाच्च । अनेनैव च स्वानुभवगोचरेणोपायेन**आत्मानं दुःखात्** क्लेशजालात् **रक्षत** प्रतिपालयत । किमुक्तं भवति ? अहिंसालक्षणादेव धर्मादात्यन्तिको जीवानां दुःखमोक्षः स्यात् । तीर्थोपासनशास्त्रपरिशीलनयज्ञहोमदानादिभ्यश्च [2]भयभीतभूताभयप्रदानलक्षण एव धर्म्मः प्रकृष्टतमः, न चैतदार्हतराद्धान्तसुप्रसिद्धमेवेति वाच्यम्, समस्तशास्त्रोपनिषद्विदामितरेषामपि सम्मतत्वात् । तथा चाहुस्त एव –

---

2. **जङ्गाल** - अतिजवोऽर्थे "जङ्गे स्तोऽस्य जङ्गालः" । "प्राण्यङ्गादातो लः" ।। ७/२/२० सि. हे. ।।

गाथा-५९ 1. **तुला** - आत्मवत् सर्वभूतेषु सुख-दुःखे प्रियाऽप्रिये ।
चिन्तयन्नात्मनोऽनिष्टां हिंसामन्यस्य नाचरेत् ।। - यो. शा. २/२० ।।

2. **तुला** - यो भूतेष्वभयं दद्याद् भूतेभ्यस्तस्य नो भयम् ।
यादृग् वितीर्यते दानं तादृगासाद्यते फलम् ।। - यो. शा. २/४८ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेह भूयस्तमो धर्म्मस्तस्मादन्योऽस्ति भूतले ।
प्राणिनां भयभीतानामभयं यत् प्रदीयते ।।१।।
वरमेकस्य सत्त्वस्य दत्ता ह्यभयदक्षिणा ।
न तु विप्रसहस्रेभ्यो गोसहस्रमलङ्कृतम् ।।२।।
कपिलानां सहस्रं तु यो द्विजेभ्यः प्रयच्छति ।
एकस्य जीवितं दद्यात् कलां नार्घति षोडशीम् ।।३।।
यो ददाति सहस्राणि गवामश्वशतानि च ।
अभयं सर्वसत्त्वेभ्यस्तद्दानमतिरिच्यते ।।४।।
हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भुवि ।
दुर्ल्लभः पुरुषो लोके यः प्राणिष्वभयप्रदः ।।५।।
महतामपि दानानां कालेन क्षीयते फलम् ।
भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते ।।६।।
दत्तमिष्टं तपस्तप्तं तीर्थसेवा तथा श्रुतम् ।
सर्वाण्यभयदानस्य कलां नार्घन्ति षोडशीम् ।।७।।
एकतः क्रतवः सर्वे समग्रवरदक्षिणाः ।
एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ।।८।।
न तद्दानानि सर्वाणि कुर्युर्यज्ञा यथोदिताः ।
सर्वतीर्थाभिषेकाश्च यत् कुर्यात् प्राणिनां दया ।।९।। [ ]

तदेवं सकलप्रेक्षावत्प्रतिष्ठितोऽयमहिंसालक्षण एव धर्मः सम्यगात्मनो दुःखमोक्षायेति ।।५९।।

किं वा बहुभिरभिहितैः, संभृतार्थमेवाह –

जं किं पि सुहं लोए तं जाणह पाणिरक्खणसमुत्थं ।
जं च दुहं तं सव्वं घोराओ पाणिघायाओ ।।६०।।

आस्तां तावल्लोकोत्तरनराध्यक्षेषु स्वर्गमोक्षादिष्वहिंसाधर्मसमुत्थः सुखप्रकर्षः, इहापि **लोके यत् किम**प्यारोग्यसौभाग्यसुरूपसमृद्धिबन्धुरत्वोपादेयवचनत्वप्रभुत्वादिकं सुखमीक्ष्यते **तत्** सर्वं **प्राणिप्राणरक्षणसमुत्थं** दयाधर्मसमुद्भूतं **जानीत** । तथा आस्तां रौरवनरकतिर्यगादिषु, इहापि यत् किमपि दौर्गत्य-दौर्भाग्य-रोग-शोक-परपराभवादिकं **दुःखम**सुमतामीक्ष्यते **तत् सर्वं घोरान्निस्त्रिंशं**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुरध्यवसायजनितान् **प्राणिघातादवगच्छतेति** ।।६०।।

पूर्वगाथोत्तरार्द्धोक्तमेवार्थं विशेषतो व्यनक्ति –

करचरणनयणसवणुट्ठघाणवियला विलीणलावन्ना ।
जं [1]उवज्जंति नरा तं पाणिवहस्स फलमसुहं ।।६१।।

तत् प्राणिवधस्य सत्त्वोन्मथनस्य, निखिलमपि **फलं** विपाकः । किंविशिष्टम्? **अशुभं** शुभेतरम्। यत् किम्? **यदस्मिन्** जगति एवम्प्रकारा **नराः** प्राणिनः **समुत्पद्यन्ते** । तानेव विशि-नष्टि- **करचरणनयनश्रवणौष्ठघ्राणविकलाः** हस्तपादनेत्रकर्णाधरनासिकाद्यवयवविरहिताः । अत एव **विलीनलावण्याः** विगलितलवणिमगुणाः, तदेतत् सर्वं प्राण्युपमर्द्दस्यावश्यं फलमिति ।।६१।।

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति –

अज्झंतनिरणुकंपा काऊणं पाणिघायणं घोरं ।
जायंति मियापुत्तु व्व भायणं तिक्खदुक्खाणं ।।६२।।

केचिद् विवेकविकलितचेतसोऽत एवात्यन्तनिरनुकम्पाः सुतरां कृपाव्यपेतमनसः एवंविधाश्च **कृत्वा** विधाय **प्राणिघातं** जीववधं, किंविशिष्टं? **घोरं** रौद्रं रौद्रध्यानानुबन्धि, ततश्च **जायन्ते** भवन्ति किम्भूताः? **भाजनं** पात्रं, केषां? **तीक्ष्णदुःखानां** दुःसहासुखानां । अत्रोदाहरणमाह - क इव? **मृगापुत्र इव** । मृगादेवीप्रसूतत्वात् मृगापुत्रनामा वक्ष्यमाणस्वरूपः । सम्प्रदायगम्यश्च मृगापुत्रव्यतिकरः, स चाऽयम् -

।। प्राणिवधविपाके मृगापुत्रकथानकम् ।।

[1]तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुदीवे दीवे भारहे वासे मियग्गामनाम नयरे हुत्था । तस्स णं बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसी भागे नन्दणपायवे नामं उज्जाणे हुत्था । तत्थ सुहुमजक्खाययणे हुत्था । तत्थ णं मियग्गामे नयरे विजयनामखत्तियराया परिवसइ । तस्स णं मिया नाम देवी हुत्था । तासिं च मियापुत्ते नामं दारए हुत्था । [2]जाइअंधे जाइमूए जाइबहिरे जाइपंगुले [3]हुंडे । नत्थि णं तस्स हत्था वा पाया वा कन्ना वा

गाथा-६१ 1. उप्पज्जंति पाठान्तरः ।।

गाथा-६२ 1. स्था. १० ठा. / विपा. श्रु. १. सू. २/७ मध्ये मृगापुत्रस्य व्यतिकरो दृश्यते ।।

2. **जाइअंधे** त्ति - जात्यन्धो जन्मकालादारभ्यान्ध एव ।

3. **हुंडे** य त्ति - हुण्डकश्च सर्वावयवप्रमाणविकलः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अच्छी वा नासा वा । केवलमेतेसिं अंगोवंगाणं [4]आगिइमित्ते यावि हुत्था ।

तए णं सा मियादेवी तं मियापुत्तदारयं [5]रहस्सियंमि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी विहरइ । तत्थ णं मियग्गामे नयरे एगे जाइअंधे पुरिसे परिवसइ । से णं पुरओ दंडेण पगड्ढिज्जमाणे [6]फुट्टहडाहडसीसे । [7]मच्छियाचडयरेणं [8]आलिहिज्जमाणमग्गे गेहे गेहे [9]कोलुण्णपडिवयाए [10]वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे जाव तत्थ समोसरिए । परिसा निग्गया विजए य राया महाविभूईए वंदणवडियाए तत्थ समागए । से वि णं [11]जाइअंधे पुरिसे एयमट्ठं सुच्चा निसम्म तत्थागए समणं भगवं महावीरं तिखुत्तो जाव वंदइ नमंसइ जाव पज्जुवासइ, तओ णं धम्मो कहिओ । रत्ना सह पडिगया परिसा । तए णं भगवं गोयमे तं जाइअंधं पुरिसं पासइ । पासित्ता जायसड्ढे जाव एवं वयासी । अत्थि णं भंते ! केइ पुरिसे जाइअंधे, हंता अत्थि । कहि णं भंते ! से जाइअंधे पुरिसे? एवं खलु गोयमा ! इहेव मियग्गामे नयरे विजयस्स रन्नो मियाए देवीए मियापुत्ते दारए जाइअंधे । नत्थि णं तस्स दारगस्स हत्था वा पाया वा जाव आगिइमित्ते । तए णं से भगवं गोयमे जायकोउहल्ले समणं भगवं महावीरं वंदइ जाव एवं वयासी । इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे मियापुत्तं दारयं पासित्तए । अहासुहं देवाणुप्पिया । तए णं भगवं गोयमे हट्ठतुट्ठे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ । पडिनिक्खमित्ता जुगंतरपलोयणाए पुरओ इरियं सोहेमाणे जेणेव मियाए देवीए गेहे तेणेव उवागच्छइ । तए णं सा मियाए देवी भयवं गोयमं इज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा जाव एवं वयासी । संदिसह देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पओयणं । तए णं भगवं गोयमे एवं वयासी । जत्रं देवाणुप्पिए तव पुत्तं पासिउं हव्वमागए । तए णं सा मियादेवी मियापुत्तस्स दारगस्स

---

4. **आगई आगइमेत्ते**-विपा. श्रु. १. सू. २. मु. मध्ये । आगइ आगइमेत्ते त्ति-अङ्गावयवानाम् आकृतिः-आकारः, किंविधा? इत्याह-आकृतिमात्रम्-आकारमात्रं नोचितस्वरूपेत्यर्थः ।।
5. **रहस्सिय त्ति** - राहसिके - जनेनाविदिते ।।
6. **फुट्टहडाहडसीसे त्ति** फुट्टन्ति-स्फुटितकेशसंचयत्वेन विकीर्णकेशम्, **हडाहडं ति** अत्यर्थं शीर्षे शिरो यस्य स तथा ।
7. मच्छियाचडगरपहयरेणं विपा. श्रु. १ सू. ३ मु० ।। मच्छियाचडगरपहयरेणं त्ति मक्षिकाणां प्रसिद्धानां चटकरप्रधानो विस्तरवान् यः प्रहकरः-समूहः स तथा । अथवा मक्षिकाचटकराणां तद्वृन्दानां यः प्रहकरः स तथा तेन ।।
8. **अण्णिज्जमाणमग्गे** विपा. श्रु. १ सू. २ मु. । अण्णिज्जमाणमग्गे त्ति अन्वीयमानमार्गः, अनुगम्यमानमार्गः, मलाविलं हि वस्तु प्रायो मक्षिकाभिरनुगम्यत एवेति ।
9. **कोलुण्ण** - कोलुण्ण-दया-अनुकम्पा-करुणा इति भाषायाम् । - पा. स. म. पृ. २६५ । कालुण्णवडियाए त्ति पाठः विपा. श्रु. १ सू. ३ मध्ये दृश्यते । कालुण्णवडियाए त्ति कारुण्यवृत्त्या ।।
10. **वित्तिं कप्पेमाणे** त्ति जीविकां कुर्वाणः ।।
11. **जाइअंधे** त्ति जातेरारभ्यान्धो जात्यन्धः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुमग्गजायए चत्तारि पुत्ते सव्वालंकारविभूसिए करेइ । भयवओ गोयमस्स पाएसु पाडेइ, तओ एवं वयासी । एए णं भंते ! मम पुत्ते पासह । तए णं भगवं गोयमे एवं वयासी । नो खलु देवाणुप्पिए अहं एए तव पुत्ते पासिउं [12]हव्वमागए । जेण से तव जिट्ठे पुत्ते मियापुत्ते जाइअंधे जाव पडिजागरमाणी विहरसि, तं णं अहं पासिउं हव्वमागए । तए णं सा एवं वयासी । से केस णं गोयमा ! तहारूवे नाणी वा तवस्सी वा जेण तव एस अट्ठे मम ताव [13]रहस्सं काउं हव्वमक्खाए । जओ णं तुब्भे जाणह । तए णं भगवं गोयमे एवं वयासी। एवं खलु देवाणुप्पिए मम धम्मायरिए धम्मोव-एसए समणे भगवं महावीरे सव्वन्नू सव्वदरिसी तेणं मम एस अट्ठे हव्वमक्खाए । जावं च णं मियादेवी भगवया गोयमेण सद्धिं एयमट्ठं संलवइ । तावं च णं मियापुत्तस्स दारगस्स भत्तवेला [14]जाया । तए णं सा मियादेवी भगवं गोयमं एवं वयासी - तुब्भे णं भंते ! इह चेव चिट्ठह जाव णं अहं तुब्भं मियापुत्तं दारगं उवदंसेमि त्तिकट्टु जेणेव [15]भत्तघरए तेणेव उवागच्छइ ।

उवागच्छित्ता वत्थपरियत्तणं करेइ, वत्थपरियत्तणं करित्ता [16]कट्ठसगडिं गिन्हइ, गिन्हित्ता विउलस्स असणपाणखाइमसाइमस्स भरेइ, भरित्ता तं कट्ठसगडिं अणुकड्ढमाणी अणुकड्ढमाणी जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं गोयमं एवं वयासी । तुब्भे णं भंते ! मए सद्धिं अणुगच्छह । जेण अहं तुब्भं मियापुत्तं दारगं उवदंसेमि । तए णं से भगवं गोयमे मियं देविं पिट्ठओ [17]अणुगच्छइ । तए णं सा देवी तं कट्ठसगडिं कड्ढमाणी कड्ढमाणी जेणेव भूमिघरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चउप्पुडेणं वत्थेणं मुहं बंधमाणी बंधमाणी भगवं गोयमं एवं वयासी । तुब्भे वि णं मुहपुत्तियाए मुहं बंधह । तेणं से भगवं गोयमे मुहपुत्तियाए मुहं बंधइ । तए णं सा मियादेवी [18]परम्मुहा भूमिघरस्स दुवारं विहाडेइ । तओ णं गंधो निग्गच्छइ से जहानामए [19]अहिमडएइ वा गोमडएइ वा हत्थिमडएइ वा तुरगमडएइ वा सुणगमडएइ वा । जाव तओ वि अणिट्ठतराए से गंधे पन्नत्ते । तए णं से मियापुत्ते दारए तस्स विउलस्स असणपाणखाइमसा-

---

12. **हव्व** - शीघ्र इति भाषायाम् । - पा. स. म. पृ. ९४३ ।।
13. रहस्सिकए तुब्भं हव्वमक्खाए । - विपा. सू. श्रु. १ सू. ४ ।।
14. जाया याऽवि होत्था । - विपा. सू. श्रु. १ सू. ४ मु. ।।
15. भत्तपाणघरे । - विपा. सू. श्रु. १ सू. ४. मु. ।।
16. कट्ठसगडियं । - विपा. सू. श्रु. १ सू. ४. मु. ।।
17. समणुगच्छति । - विपा. सू. श्रु. १ सू. ४. मु. ।।
18. परम्मुही । - विपा. सू. श्रु. १ सू. ४ मु. ।।
19. अहिमडेति वा सप्पकडेवरेइ वा जाव ततो ऽवि णं अणिट्ठतराए चेव जाव गंधे पन्नत्ते । - विपा. सू. श्रु. १ सू. ४ मु. । 'अडिमडेइ वा सप्पकडेवरेइ वा' इह यावत्करणात् 'गोमडेइ वा सुणगमडेइ वा' इत्यादि द्रष्टव्यम् । ततो वि णं ति - ततोऽपि - अहिकडेवरादिगन्धादपि । अणिट्ठतराए चेव त्ति । अनिष्टतर एव गन्ध इति गम्यते, इह यावत्करणात् 'अकंततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुन्नतराए चेव अमणामतराए चेव' त्ति दृश्यम्, एकार्थाश्चेते ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इमस्स गंधेणं अभिभूए समाणे [20]मुच्छिए गिद्धे तं असणाइयं आसएणं आहारेइ । खिप्पमेव विद्धंसेइ । तओ पच्छा पूयत्ताए सोणियत्ताए य परिणमइ । तं पि य णं पूयं च सोणियं च आहारेइ । तओ णं भगवओ गोयमस्स अयमेयारूवे [21]अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था । अहो णं इमे दारए [22]पुरा पोराणाणं दुच्चिन्नाणं दुप्पडिकंताणं असुभाणं वा पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ । न मे दिट्ठा नरगा वा नेरइया वा । पच्चक्खे खलु अयं पुरिसे निरयपडिरूवियं वेयणं वेएइ त्ति कट्टुमियं देविं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता तीसे गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिखुत्तो जाव नमंसित्ता सव्वं पुव्वुत्तवइयरं कहेइ । एवं वयासी । से णं भंते ! मियापुत्ते [23]पुव्वभवे के आसि ? कित्तामए ? किंगुत्तए ? केसिं वा कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ ? तए णं समणे भगवं महावीरे भयवं गोयमं एवं वयासी । एवं खलु [24]गोयमा ! इहेव जंबुद्दीपे दीवे भारहे वासे सयदुवारे नामं नयरे हुत्था । तत्थ णं धणवई नाम राया हुत्था । तस्स णं सयदुवारस्स नयरस्स अदूरसामन्ते दाहिणपुरत्थिमे दिसाभागे [25]विजयवड्ढमाणे नामं खेडे हुत्था । तस्स णं पंचगामसयाइं [26]आभोए यावि हुत्था । तत्थ णं खेडे इक्काई नाम [27]रट्ठकूडे हुत्था । [28]अहम्मिए अहम्मन्नू अहमक्खाई, बहूणं जीवाणं

---

20. 'मुच्छिए इत्यत्र गठिते गिद्धे अज्झोववन्ने' इति पदत्रयमन्यद् दृश्यम्, एकार्थाश्चेतानि चत्वार्यपीति ।
21. 'अज्झत्थिए' इत्यत्र चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे' इति दृश्यम्, एतान्यप्येकार्थानि ।।
22. 'पुरा पोराणाणं दुच्चिन्नाणं' इहाक्षरघटना - पुराणानाम् - जरठानां, कक्खडीभूतानामित्यर्थः पुरा - पूर्वकाले, दुश्चीर्णानां प्राणातिपातादिदुश्चरितहेतुकानाम् । **दुप्पडिक्कंताणं** त्ति दुःशब्दोऽभावार्थस्तेन प्रायश्चित्तप्रतिपत्त्यादिना अप्रतिक्रान्तानाम् - अनिवर्त्तितविपाकानामित्यर्थः । **असुभाणं** त्ति असुखहेतूनाम्, **पावाणं** त्ति पापानां-दुष्टस्वभावानाम्, **कम्माणं** त्ति ज्ञानावरणादीनाम् ।।
23. पुव्वभवे के आसि इत्यत एवमवध्येयम् - "किं नामए वा किं गोत्तए वा" तत्र नाम-यादृच्छिकमभिधानम्, गोत्रं तु - यथार्थं कुलं वा, "कयरंसि गामंसि वा नगरंसि वा किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरेत्ता केसिं वा पुरा पोराणाणं दुच्चिन्नाणं दुप्पडिक्कंताणं असुहाणं पावाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ' त्ति ।
24. गोयमा इत्ति गौतम इत्येवमामन्त्र्य इति गम्यते ।
25. वद्धमाणे विपा. श्रु. १ सू. ५ मु. ।।
26. **आभोए** त्ति विस्तारः ।
27. **रट्ठकुडे** त्ति राष्ट्रकूटो मण्डलोपजीवी राजनियोगिकः ।
28. **अहम्मिए** त्ति अधार्मिको, यावत्करणादिदं दृश्यम् - 'अधम्माणुए अधम्मिट्ठे अधम्मपलोई अधम्मपलंजणे अधम्मसमुदाचारे अधम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणे दुस्सीले दुव्वए' त्ति, तत्र अधार्मिकत्वप्रपञ्चनायोच्यते - 'अधम्माणुए' अधर्म्मं - श्रुतचारित्राभावम् अनुगच्छतीत्यधर्म्मानुगः कुत एतदेवमित्याह - अधर्म्म एव इष्टो वल्लभः पूजितो वा यस्य सोऽधर्म्मिष्ठः अतिशयेन वाऽधर्मी धर्मवर्जित इत्यधर्मिष्ठः, अत

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहबंधमारणरए, जाव दुप्पडियाणं । अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पमाणे विहरइ । तए णं से [29]रट्ठऊडे [30]विजयवड्ढमाणस्स खेडस्स पंचन्हं गामसयाण य [31]आहेवच्चं पालेमाणे विहरइ । से एतं खेडं ताणि य गामाणि बहूहिं [32]करेहि य भरेहि य उक्कोडाहि य कुंतेहि य उवीलेमाणे विहम्मेमाणे तज्जेमाणे तालेमाणे निद्धणे करेमाणे विहरइ । [33]अन्नं च बहूणं राईसरतलवर जाव ववहारेसु य सुणमाणे वि भणइ न सुणेमि ।

एवाधर्माख्यायी - अधर्म्मप्रतिपादकः, अधर्माख्यातिर्वा, अविद्यमानधर्मोऽयमित्येवं प्रसिद्धिकः, तथाऽधर्म्मं प्रलोकयति - उपादेयतया प्रेक्षते यः स तथा, अत एवाधर्मप्ररञ्जनः अधर्मरागी, अत एवाधर्मः समुदाचारः - समाचारो यस्य स तथा ।

29. रट्ठकूडो विपा. श्रु. १ सू. ५ मु. ।।

30. ०वड्ढमाणस्स । - विपा. श्रु. १ सू. ५ मु. ।।

31. **आहेवच्चं** त्ति अधिपतिकम्मं, यावत्करणादिदं दृश्यम् - "पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगतं आणाईसर-सेणावच्चं कारेमाणे" त्ति, तत्र पुरोवर्त्तित्वं-अग्रेसरत्वं, स्वामित्वं-नायकत्वम्, भर्तृत्वम्-पोषकत्वम्, महत्तरकत्वं-उत्तमत्वम्, आज्ञेश्वरस्य-आज्ञाप्रधानस्य यत्सेनापतित्वं तदाज्ञेश्वरसेनापत्यं कारयन्-नियोगिकै-र्विधापयन् पालयन् स्वयमेवेति ।।

32. करेहि य भरेहि य विद्धीहि य उक्कोडाहि य पराभवेहि य दिज्जेहि य भेज्जेहि य कुंतेहि य लंछपोसेहि य, आलीवणेहि य पंथकोट्टेहि य उवीलेमाणेतज्जेमाणे तालेमाणे निद्धणे करेमाणे विहरइ । इति पाठः विपाकसूत्रमुद्रितप्रतिमध्ये दृश्यते । - विपा. श्रु. १ सू. ५ ।।
करेहि य त्ति करैः क्षेत्राद्याश्रितराजदेयद्रव्यैः । भरेहि य त्ति तेषामेव प्राचुर्यैः । विद्धीहि य त्ति वृद्धिभिः कुटुम्बिनां वितीर्णस्य धान्यस्य द्विगुणादेर्ग्रहणैः वृत्तिभिरिति क्वचित्, तत्र वृत्तयो राजादेशकारिणां जीविकाः । उक्कोडाहि य त्ति लञ्चाभिः । उक्कोडा (दै.) घूस, रिशवत इति भाषायाम् । पा. स. म. पृ. १४१ ।। पराभएहि य त्ति पराभवैः । देज्जेहि य त्ति अनाभवद्यातव्यैः । भेज्जेहि य त्ति यानि पुरुषमारणाद्यपराधमाश्रित्यग्रामादिषु दण्डद्रव्याणि निपतन्ति कौटुम्बिकान् प्रति च भेदेनोद्ग्राह्यन्ते तानि भेद्यानि अतस्तैः । कुंतेहि य त्ति कुन्तकम् - एतावद् द्रव्यं त्वयादेयमित्येवं नियन्त्रणया नियोगिकस्य देशादेर्यत् समर्प्पणमिति । लंछपोसेहि य त्ति लञ्छा चौरविशेषः संभाव्यन्ते तेषां पोषाः पोषणानि तैः । आलीवणेहि य त्ति । व्याकुललोकानां मोषणार्थं ग्रामादिप्रदीपनकैः । पंथकोट्टेहि य त्ति सार्थघातैः । उवीलेमाणे त्ति अवपीलयन् बाधयन् । विहम्मेमाणे त्ति विधर्म्मयन्-स्वाचारभ्रष्टान् कुर्वन् । तज्जेमाणे त्ति कृतावष्टम्भान् तर्जयन्-ज्ञास्यथ रे यन्मम इदं च इदं च न दत्से इत्येवं भेषयन् । तालेमाणे त्ति कशचपेटादिभिस्ताडयन् । णिद्धणे करेमाणे त्ति निर्द्धनान् कुर्वन् विहरति ।।

33. "तते णं से इक्काई रट्ठकूडे विजयवद्धमाणस्स खेडस्स बहूणं गामेल्लगपुरिसाणं बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य संतेसु य गुज्झेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य सुणमाणे भणति न सुणेमि, असुणमाणे भणति सुणेमि" इत्येवं पाठो विपाकसूत्रमध्ये दृश्यते ।
विपा. श्रु. १ सू. ५ ।। तए णं से इक्काई रट्ठकूटे विजयवद्धमाणस्स खेडस्स सत्कानां बहूणं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुणमाणे वि भणइ सुणेमि । [34]एवं पासमाणे गिन्हमाणे जाणमाणे वि विवरीए भणियव्वे । तए णं से रट्ठकूडे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणेमाणे समज्जिणेमाणे विहरइ । तए णं तस्स रट्ठकूडस्स अन्नया कयाइ सरीरगंसि समगं चेव सोल [35]रोगायंका पाउब्भूया । तं जहा -

[36]सासे[१] कासे[२] जरे[३] दाहे[४] कुच्छिसूले[५] भगंदरे[६] । अरिसा[७] अजीरए[८] दिट्ठी[९] मुहसूले[१०] अकारए[११] ।।१।। अच्छिवेयणा[१२] कन्नवेयणा[१३] कंडू[१४] दद्दरे[१५] कोट्ठे[१६] ।

से य बहूहि विज्जेहि य जाणएहि य बत्थिकम्माइकट्ठरोगोवसमोवक्कमेहिं विचिगिच्छिए नेय इक्केण वि रोगायंकेण विमुक्के । तए णं से तेहिं रोगायंकेहिं अभिभूए समाणे रज्जे रट्ठे य अंतेउरे य मुच्छिए य तं चेव पत्थेमाणे अट्टवसट्टोवगए अट्ठाइज्जाइं वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालगए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए [37]उक्कोसकालठिईएसु नेरइएसु [38]नेरइत्ताए उववण्णे । से णं तओ उव्वट्टित्ता मियाए देवीए गब्भंसि पुत्तत्ताए उववण्णे । तप्पभिइं च णं देवीए सरीरगंसि तिव्वा वेयणा पाउब्भूया । रन्नो य तहा अणिट्ठा जाया । जहा नामं पि इमीसे गिण्हिउं निच्छइ । तए णं सा मियादेवी तं गब्भं बहूहि [39]साडणाहि साडेइ । जाहे य नो संतरइ साडित्तए ताहे अकामा चेव तं गब्भं दुहंदुहेणं परिवहइ । तस्स णं दारगस्स [40]गब्भागयस्स चेव

राईसरतलवरमाडंबियकोटुंबियसेट्ठिसत्थवाहाणं इह तलवराः-राजप्रसादवन्तो राजोत्थासनिकाः, माडम्बिकाः-मडम्बाधिपतयो मडम्बं च - योजनद्वयाभ्यन्तरेऽविधमानग्रामादिनिवेशः सन्निवेशविशेषः शेषाः प्रसिद्धाः । कज्जेसु त्ति कार्येषु प्रयोजनेषु अनिष्पन्नेसु, कारणेसु त्ति सिसाधयिषितप्रयोजनोपायेषु विषयभूतेषु ये मन्त्रादयो व्यवहारान्तास्तेषु तत्र मन्त्राः पर्यालोचनानि गुह्यानि-रहस्यानि, निश्चयाः वस्तुनिर्णयाः, व्यवहारा विवादास्तेषु विषये ।

34. "एवं पस्समाणे भासमाणे गिण्हमाणे जाणमाणे, तते णं से इक्काई रट्ठकूडे एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मे कलिकलुसं समणिज्जमाणे विहरति" इत्येवं पाठो विपाकसूत्रमध्ये दृश्यते । - विपा. श्रुत. १ सू. ५ ।। एयकम्मे एतद्व्यापारः एतदेव वा काम्यम् कमनीयं यस्य स तथा, एयप्पहाणे त्ति एतत्प्रधानः एतन्निष्ठ इत्यर्थः, एयविज्जे त्ति एषैव विद्या-विज्ञानं यस्य स तथा, एयसामायारे त्ति एतज्जीतकल्प इत्यर्थः, पावकम्मं त्ति अशुभं ज्ञानावरणादि, कलिकलुसं त्ति कलहहेतुकलुषं मलीमसमित्यर्थः ।

35. **'रोगायंक'** त्ति रोगा व्याधयस्त एवातङ्काः-कष्टजीवितकारिणः ।

36. 'सासे' इत्यादि श्लोकः 'जोणिसूले त्ति अपपाठः । 'कुच्छिसूले' इत्यास्यान्यत्र दर्शनात्, भगंदले त्ति भगन्दरः, अकारए त्ति अरोचकः, 'अच्छिवेयणां इत्यादि श्लोकातिरिक्तम्, उदरे त्ति जलोदरं शृङ्गाटकादयः स्थानविशेषाः ।।

37. उक्कोसेणं सागरोवमट्ठितीएसु । - विपा. श्रु. १ सू. ६ मु. ।।

38. नेरइयत्ताए । - विपा. श्रु. १ सू. ६ मु. ।।

39. **साडणाहि** - शातनाः - गर्भस्य खण्डशो भवनेन पतनहेतवः ।

40. गब्भं विपा. श्रु. १ सू. ६ मु. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[41]अट्ठनाडीओ [42]गब्भन्तरप्पवाहाओ । अट्ठनाडीओ [43]बाहिरप्पवाहाओ । अट्ठ पूयप्पवाहाओ । अट्ठ सोणियप्पवाहाओ । दुवे दुवे कन्नंतरेसु । दुवे दुवे अच्छिअंतरेसु । दुवे दुवे नहन्तरेसु । दुवे दुवे धमणिअंतरेसु । अभिक्खणं अभिक्खणं पूयं च सोणियं च परिस्सवमाणी परिस्सवमाणी चिट्ठइ त्ति । तस्स णं दारगस्स गब्भगयस्स चेव अग्गिए नामं वाए पाउब्भूए । जेणेसे दारए आहारेइ तेणं खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ । पूयत्ताए य सोणियत्ताए य परिणमइ, तं पि य से पूयं च सोणियं च आहारेइ । तए णं सा मियादेवी तं दारगं [44]हुंडं [45]अंधरूवं पसूया [46]भीया समाणी अंबधाई सद्दावइत्ता एवं वयासी । एयं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झाहि । तए णं सा अंबधाई रायाणं आपुच्छइ । तए णं से राया मियाए देवीए अन्तियं उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी । देवाणुप्पिये एसे तुज्झ पढमे गब्भे तं जयणं एयं उज्झसि तो णं तुज्झं पया न थिरा भविस्सइ । तं एयं तं रहस्सियंसि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागराहि, जेणं तव पया थिरा भवइ । तए णं सा मियादेवी तहेव अणुचिट्ठमाणी विहरइ त्ति ।

से णं भंते ! दारए कालं किच्चा कहं गच्छिही । गोयमा ! इह छव्वीसं वासाइं परमाउयं पालइत्ता वेयड्ढगिरिपायमूले सीहे भविस्सइ । से णं तत्थ कूरे जीवघायणरए बहुं पावं कम्मं समज्जिणित्ता उक्कोसकालट्ठिईए रयणप्पभाए नेरइए भविस्सइ । तओ सरीसिवेसु उववज्जित्ता सक्करप्पभाए, तओ पक्खीसु उववज्जित्ता वालुयप्पभाए, तओ सीहेसु गंतूण पंकप्पभाए, तओ उरगो होऊण धूमप्पभाए, तत्तो इत्थी भवित्ता तमाए, इओ वि मणुओ भवित्ता अहे सत्तमाए उववज्जिही, तओ उवट्टित्ता जाइं इमाइं मच्छकच्छभगाहमगरसुंसुमारजलयरेसु अद्धत्तेरसकुलकोडिलक्खाइं भवंति । तत्थ णं एगमेगंसि [47]जोणीविहाणंसि अणेयसयसहस्सखुत्तो उदाइत्ता उदाइत्ता तत्थेवं भुज्जो भुज्जो पच्चाइस्सइ । तओ उव्वट्टित्ता एवं चउप्पएसु उरपरिसप्पेसु भुयपरिसप्पेसु खहयरेसु चउरिंदिएसु [48]तेंदिएसु [49]बेंदिएसु एगिंदिएसु, कडुयरुक्खेसु वाउतेउआउपुढविकाइएसु अणेयसयसहस्सखुत्तो उववज्जिही । अवि य –

---

41. नालीओ विपा. श्रु. १ सू. ६ मु. । अट्ठनालीओ त्ति अष्टौ नाड्यः-शिराः ।
42. अब्भिन्तरप्पवहाओ । - विपा. श्रु. १ सू. ६ मु. । 'अब्भंतरप्पवहाउ' त्ति शरीरस्याभ्यन्तर एव रुधिरादि स्रवन्ति या स्तास्तथोच्यन्ते,
43. 'बाहिरप्पवहाउ' त्ति शरीराद् बहिः पूयादि क्षरन्ति यास्तास्तथोक्ताः एता एव षोडश विभज्यन्ते 'अट्ठे' इत्यादि कथमित्याह - दुवे दुवे त्ति द्वे पूयप्रवाहे द्वे च शोणितप्रवाहे, ते च क्वेत्याह-कन्नंतरेसु श्रोत्ररन्ध्रयोः एवमेताश्चतस्रः एवमन्या अपि व्याख्येयाः, नवरं धमन्यः कोष्ठकहड्डान्तराणि ।।
44. **हुंडं** त्ति अव्यवस्थिताङ्गावयवम् ।
45. अंधा० विपा. श्रु. १ सू. ६ मु. । अंधारूवं त्ति अन्धाकृतिः ।।
46. 'भीया' इत्यत्रैतद् दृश्यम् 'तत्था उव्विग्गा संजायभया' भयप्रकर्षाभिधानैकार्थाः शब्दाः ।।
47. **जोणीविहाणंसि** त्ति योनिभेदे ।
48. तेइंदिएसु । - विपा. श्रु. १ सू. ७ मु. ।।
49. बेइंदिएसु । - विपा. श्रु. १ सू. ७ मु. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[50]**इय हिंडिऊण संसारसायरं सुप्पइट्ठियपुरम्मि । होही दित्तो वसहो दुप्पिच्छो ईयरवसहाणं ।।१।।**
सिंगेहिं विक्किरन्तो गंगाकूलम्मि मट्टियं सो वि । संचुन्निओ तडेणं मरिउं तत्थेव नयरम्मि ।।२।।
होऊणं सिट्ठिसुओ धम्मं सव्वन्नुभासियं सोउं । होही वरचरणधरो साहू थेराण पासम्मि ।।३।।
आराहिऊण सम्मं पव्वज्जं तो सुरो स सोहंमे । होही तत्तो वि चूओ महाविदेहम्मि वासम्मि ।।४।।
सुकुलम्मि माणुसत्तं लहिउं पडिवज्जिउं च पव्वज्जं । धुयकम्मंसो होऊण केवली तत्थ सिज्झिहइ त्ति ।।५।।

इति मृगापुत्रकथानकं समाप्तम् ।।६२।।

ननु यदि जीववधादेवं मृगापुत्र इव करचरणाद्यवयवविकलाः प्राणिनः समुत्पद्यन्ते तर्हि जीवदयाप्रतिपालनात् किम्भूता भवन्तीत्याह -

तेयस्सिणो सुरूवा दीहाऊ पबलभुयबलसमेया ।
जं हुंति नरा तं पुण मुण जीवदयाइ माहप्पं ।।६३।।

तेजस्विनः समग्राङ्गोपाङ्गतरङ्गितलवण्यिमजलोत्पीलाः । **सुरूपाः** समचतुरस्रसंस्थानाः । तथा **दीर्घायुषः** प्रवर्त्तमानारकानुमाने पुरुषायुषजीविनः । **प्रबलभुजबलसमेताः** दृढसंहननत्वादतुल-दोर्बलपरिकलिताः एवंविधा **नराः** पुरुषप्रवराः, **यद् भवन्ति,** हे शिष्य ! **'मुण'** जानीहि, **तत् पुनर्जीवदयाया माहात्म्यम्** अहिंसाधर्म्माराधनस्य फलम् इति ।।६३।।

यदि वा कियदेतत्तेजोरूपादिकम् ? किं नाम दयाधर्म्माराधनादसुलभमसुमताम्? इत्याह -

चिंतामणिकामगवीसुरतरुणो समुइया न तं दिंति ।
जं इक्क च्चिय वियरइ जीवदया सेविया सम्मं ।।६४।।

---

50. से णं ततो अणंतरं उव्वट्टित्ता सुपइट्ठपुरे नगरे गोणत्ताए पच्चायाहिति । से णं तत्थ उम्मुक्क जाव बालभावे अन्नया कयाइं पढमपाउसंमि गंगाए महानईए खलीयमट्टियं खणमाणे तडीए पेल्लिए समाणे कालगए तत्थेव सुपइट्ठे पुरे नगरे सेट्ठिकुलंसि पुमत्ताए पच्चायाइस्सति । से णं तत्थ उम्मुक्कबालभावे जाव जोव्वणमणुपत्ते तहारूवाणं थेराणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्स ति, से णं तत्थ अणगारे ईरियासमिए जाव बंभयारी । से णं तत्थ बहूइं वासाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उव्ववज्जिहिति । से णं ततो अणंतरं चयं यइत्ता महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवंति अड्ढाइं जहा दढपइन्ने सा चेव वत्तव्वया कलाओ जाव सिज्झिहिति । एवं खलु जंबू समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते त्ति बेमि । अयं पाठो इत्यत्र विपाकसूत्र मध्ये दृश्यते । - विपा. श्रु. १ सू. ७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किल **चिन्तारत्नकामधेनुकल्पद्रुमाणामे**कोऽपि प्रार्थितः समर्थः समग्रप्रणयिमनोरथसार्थं पूरयितुं किं पुनः **समुदिताः ?** परमेवं स्थूललक्षा अपि कल्पवृक्षादयः समुदिताश्च युगपत् सर्वौघेण दानोन्मुखा अपि **तद्** वितरीतुं **न प्रभवन्ति, यदेकैवा**सहाया **जीवदया सम्यक्** त्रिकरणशुद्ध्या **सेविता ददाति** । इयमत्र भावना-किल चिन्तामण्यादयो हि सर्वात्मना सन्तुष्टा अपि प्राणिनामैहिकसुखमात्रसङ्कटन एव पटिष्ठाः, अहिंसाधर्मस्तु परम्परया परमदुष्प्रापपरमपदमपि प्रदातुमलम्भूष्णुरतः कथमेतेन तुला पूर्वेषामिति ।।६४।।

दयाधर्म्मदृढव्रतानेवोपस्तौति -

धन्ना गहिऊण इमं, गुरुमूले मलकलंकपरिमुक्कं ।
पालंति पाउणंति य, फलममलमिमीइ अचिरेण ।।६५।।

धन्याः सुकृतिनो **गृहीत्वा** प्रतिपद्य **इमां** प्राणिदयां **गुरुमूले** गीतार्थगुरुजनोपान्ते न स्वमनीषिकया । एतावता सत्कर्मापि गुर्वाज्ञयैव विधेयमिति दर्शयति, प्रतिपद्य च **पालयन्ति** निर्वाहयन्ति । किम्भूतम् ? **'मलकलङ्कपरिमुक्तां'** अतीचाररजोभिरदूषिताम् । अथ किमस्याः पालनेन? इत्याह-**'पाउणंति'** प्राप्नुवन्ति । किं तत्फलम् ? स्वर्गापवर्गलक्षणम् । किंविशिष्टम्? **अमलम्** अवदातमितर-गत्यपेक्षया, कथम्? **अचिरेण** भवाष्टकाभ्यन्तर इत्यर्थः ।।६५।।

अथ दृष्टान्तमाह -

जह तेण पुलिंदेणं, मुणिवयणसमिद्धसुद्धसद्धेणं ।
पडिवन्ना जीवदया, बीयभवे फलवई जाया ।।६६।।

'यथा' इति दृष्टान्तोपन्यासे । **यथा तेन** कथानकोद्दिष्टेन **पुलिन्देन** शबरेण, **मुनिवचनसमिद्ध-शुद्धश्रद्धेन** साधूपदेशद्विगुणितसद्वासनेन, **प्रतिपन्ना** अङ्गीकृता **जीवदया** प्राणिरक्षा **द्वितीयस्मिन्नेव भवे फलवती जाता** इति । सम्प्रदायगम्यं च पुलिन्दसंविधानम् । तच्चेदम् -

।। जीवदयामाहात्म्योपरि नरकेसरिनरपतिकथानकम् ।।

जलरासिनिवसणाए वेलावणविउलमेहलगुणाए । वेयड्ढनियंबाए कालिंदीवेणिदंडाए ।।१।।
सुरसिंधुसिंधुघोलिर - हारावलिललियमज्झदेसाए । सिरिभरहवासवसुहा - विलासिणीए तिलयभूयं ।।२।।
सुविभत्ततिपहचच्चर - चउक्कवररायमग्गसोहिल्लं । अत्थि पसत्थपयत्थं कुसत्थलं नाम वरनयरं ।।३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्खो दक्खिन्नपरो परोवयारी पियंवओ सरलो । चाई कयन्नू उऊ धम्मकम्मनिरओ जणो जत्थ ।।४।।
लायन्ननिन्नयाओ उव्वणजुव्वणपसाहियंगीओ । सुविणीयाओ सुसीलाओ जत्थ किर पुरपुरंधीओ ।।५।।
तत्थासि निसियकरवाल-दंडदोहंडियारिगणमुंडो । जयलच्छिवच्छविलसिर-नयपोरिससरलभुयजुयलो ।।६।।
दप्पुब्भडभडभडवाय - घडियभिउडीमडप्पकप्परणो । जसभरभरियदियंतो राया नरकेसरी नाम ।।७।।
तस्सासि सयलअवरोह - रोहणायलमहीइ माणिक्कं । जियसुरवहुसुंदेरा देवी नरसुंदरी नाम ।।८।।
अह अन्नया नरिंदो वंदारुनरिंदविंदसंकिन्ने । अत्थाणंमि निविट्ठो विसिट्ठनेवत्थसंछाओ ।।९।।
पिच्छइ पसंतरूवं रूवंतरसंठियं व रइरमणं । कुलपुत्तयमेगं दारवालविणिवेइयं पुरओ ।।१०।।
अह तेण पणयपुव्वं पुव्वं पिव परिचिएण नरवइणो । ओसहिवलयसणाहो पणामिओ वरमणी एगो ।।११।।
भणियं च पुहइपुरहूय ! दूयरूवेहिं तुह गुणगणेहिं । अहमावज्जियचित्तो पत्तो कज्जंतरपवत्तो ।।१२।।
अत्थि वंझा विज्जा जामिणिचउजामजावभाविफला । अज्जंचिय सासुपुरिस ! महसिज्झउतुज्झसत्रिज्झा ।।१३।।
अन्नं च सव्वकामप्पयाइविज्जाइ साहणसहायं । भुवणे वि इक्कमल्लं पिक्खामि न वीर ! तुह तुल्लं ।।१४।।
पत्तं च किन्हचउदसिदिवसं विहिया य सयलसामग्गी । उत्तरसाहगभावं पडिवज्जउ पणयकप्पतरू ।।१५।।
एसो य मणी मणवल्लहाइ दइयाइ लंभिओ मोलिं । अवि आजम्मं वंझा जायए सुनयसुयहेऊ ।।१६।।
ओसहिवलएणिमिणा दाहिणभुयसंगएण रणरंगे । सक्काओ वि न संका कायव्वा किमवररिऊणं ।।१७।।
इय तस्स सोवयारं वयणं सोऊण पत्थणासारं । विम्हियमणेण घणकोउगेण अंगीकयं रन्ना ।।१८।।
भणियं च महीयलमीणकेउणा हेउणा इमेणेव । जइ तुज्झ इहागमणं ता भण किं मे न पज्जत्तं ।।१९।।
रूवं चडणसरूवं दुजीहजीहाचलं जए जीयं । तडितरलं तारुन्नं उवयारु च्चिय थिरो एगो ।।२०।।
कइवयदिणपाहुणएण हंत देहेण देहिणो कहवि । उवयारधणं जइ अज्जिणंति नणु अक्खया हुंति ।।२१।।
इत्तियमित्तेणं चिय जइ सिज्झइ तुह समीहियं कहवि । ता सज्जो एस जणो उवजुज्जउ जत्थ अभिरुइयं ।।२२।।
इयवयणसवणवियसंत - वयणकमलेण तक्खणा तेण । आपुच्छिओ नरिंदो कयसंगारेण पेयवणे ।।२३।।
अह विउलनहयलभमणपरिसुढियरहतुरंगु व्व । अत्थयगिरिसिहर[1]सद्दलथलीसु अल्लियइ दिवसयरो ।।२४।।
जाओ जयचक्खू वि हु पयडपयावो वि भुवणमित्तो वि । जणदिट्ठिलंघणिज्जो दिणावसाणंमि दिणनाहो ।।२५।।
उन्नयपयाओ पडिउ त्ति हयपयावु त्ति वियलियवसु त्ति । दीवंतरंमि चलिओ लीहाहीलाभएणं व ।।२६।।
अह संझरायमिसओ दिणेसदइयंमि कालपत्तंमि । कोसुंभनिवसणं पिव समुज्झियं दिवसलच्छीए ।।२७।।
तह तीइ चेव तस्सेव सोयसंतावतावियंगीए । मीलंति वयणनयणोवमाइं किल कमलसंडाइं ।।२८।।
तिस्सा चेव य नियहिययदइयदीहरपवासविवसाए । घणकसिणकुंतलालिव्व विलुलिया तिमिररिंछोली ।।२९।।
किमवरमिमीइ तुट्टंतहारमुत्ताहल व्व गयणयले । रेहंति कंतिजलसच्छहाउत्ताराउ ताराउ ।।३०।।
इय तंमि बंधुईबंधुरंमि जाए पओससमयंमि । संभरइ भूमिबलो कुलउत्तयदत्तसंकेयं ।।३१।।

गाथा-६६ 1. **सद्दल** - शाद्वल-हरित, हरा घास इति भाषायाम् ।। - प्रा. स. म. पृ. ८६२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो सेवावसरसमावडंतसामंतचित्तदोरीहिं । निव्वत्तियआरत्तियमंगलिओ वारविलयाहिं ।।३२।।
पूइत्तु पूयणिज्जे सम्माणेऊण माणणाअरिहे । सयलविसज्जियलोओ राया वासहरमल्लीणो ।।३३।।
तत्थ य नियनियठाणट्ठिएसु कंचुइयआयरक्खेसु । आलावहासपरितोसियासु अवरोहरमणीसु ।।३४।।
नीलदुगूलावरणो करकलियकरालकालकरवालो । ओसहिवलयपसाहिय - वामेयरचंडभुयदंडो ।।३५।।
निविडकइच्छियकक्खो कक्खंतरओ अलक्खपयचारं । नीहरिय नयररत्थाउ कमइ तेणं चिय कमेणं ।।३६।।
अह विज्जुकिरणपावीणयाइ उल्लिहियनहयलं सालं । लंघइ लीलाइ पहू पंचमुहो सिहरिसिहरं व ।।३७।।
तो भमिरभूय-घूघूइरघूय-किलिकिलिरकालवेयाले । डमडमिर-डाइणीगणे विमुक्कलल्लक्कडक्कारे ।।३८।।
जलिरचियानलपरिपक्कमडयपलकवलणाउलपिसायं । विसइ असंभंतमणो पेयवणं मेइणीणाहो ।।३९।।
तो लिहिय मंडलंतरविमुक्कपज्जलिरदीवसज्जवियं । नियपहपउत्तचक्खुं पिक्खइ कुलपुत्तयं राया ।।४०।।
अह तेण सबहुमाणं दाहिणपासट्ठियस्स नरवइणो । विहिया देहे रक्खा बद्धो सीसे सिहाबंधो ।।४१।।
भणियं च पंचमो तं सि लोगवालेसु तो तुह समक्खं । अयमारब्भइ जावो अवहियहियएण होयव्वं ।।४२।।
इय भणिऊण कयासणबंधो बंधुरतरंगसंठाणो । दरनमियवयणनयणो तल्लीणमणो ठिओ झाणे ।।४३।।
इत्थंतरंमि जामिणिजामे पढमे समोसरंतम्मि । नियहुत्तमावडंतं विम्हयविप्फारियच्छिजुयं ।।४४।।
नियइ निवो नरमेगं सुंदररूवं पयंपिरं एयं । किं सज्झं चिय जायं तं वयणं जोगसिद्धीए ।।४५।।
जं सक्खं चिय दीसइ मंडलमालिहियमिह महीवलए । दीसइ मंतज्झाई तस्सुत्तरसाहओ तह य ।।४६।।
ता जइ तहेव एयं ता मज्झवि होउ सयलमहिलसियं । इय भणिरु ञ्चिय चलणेसु निवडिओ सो नरिंदस्स ।।४७।।
रन्ना वि एस विब्भीसिय त्ति अवहीरिएण तेणुत्तं । मा मा महायस तुमं अवहीरसु मं बिहीसि त्ति ।।४८।।
पज्झइयजोइणीवयणपेरियं मुणसु मं महाभाग ! । कज्जंतरेण केणइ उवट्ठियं नियसमीवंमि ।।४९।।
इय भणिरं भणइ निवो हंहो को तं सि कहसु कत्तो वा । कस्साएसा कं पइ समागओ केण कज्जेण ।।५०।।
अह विणयविरइयंजलिपुडेण नियहियय निम्मलत्तं व । पयडंतएण अज्जुणदसणंसुमिसेण तेणुत्तं ।।५१।।
अत्थित्थ रयणउरनयरममरनयरं व महियलोइन्नं । नयरंजियनियलोओ राया रिउमद्दणो तंमि ।।५२।।
तस्स रइसुंदरीए देवीए उयरसरवरमराली । इक्क ञ्चिय निरवज्जस्स नंदणा चंदलेह त्ति ।।५३।।
अहिगयकलाकलावा कमेण सा मयणरायहाणिं व । जुवजणमणउम्मायण - महु व्व णवजुव्वणं पत्ता ।।५४।।
सोऊण तीइ लायन्नलहरिलडहत्तणं विणीयवई । पत्थइ पियरं सो वि हु न देइ से पावनिरओ त्ति ।।५५।।
निसुओ य तेण पुहईसरेण कइया वि सुगुरुपयमूले । जिणपन्नत्तो धम्मो निब्भिन्नकुकम्मगणमम्मो ।।५६।।
तप्पभिइ चेव वेरग्गमग्गसंसग्गभग्गमोहबलो । सासयसुहाभिलासी वासीचंदणसमाणमणो ।।५७।।
निरवज्जाहाररओ [2]चियत्तअंतेउरो निरासंगो । ववहारमित्तओ ञ्चिय बहुमन्नइ रज्जकज्जाइं ।।५८।।

2. चियत्त - परित्यक्त ।। - पा. स. म. पृ. ३२६ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंतइ य दंतचित्तो धन्नो सो वासरो कया होही । मिगचारियं चरिस्सं निस्संगो जंमि एगागी ।।५९।।
जइ वि हु चित्तं सावज्जजोगओ सव्वहा मह नियत्तं । निच्छम्मधम्मनिम्माणसहयरो तह वि न हु देहो ।।६०।।
एसो य जा न अज्ज वि विमोइओ गेहवासपासाओ । ता कह जहुत्तजिणसासणुत्तचारित्तनिव्वाहो ।।६१।।
अह कह णु मए अप्पा एयाओ रज्जदुद्धरिक्खाओ । मोएयव्वो अव्वो हुं नायं अयमिहोवाओ ।।६२।।
अत्थि कुसत्थलसामी राया नरकेसरी समं तेण । अम्हाण चिरपरूढो पणओ अनिबंधणो चेव ।।६३।।
सो य विणीओ चाई पियंवओ विक्कमी दढपइन्नो । नवजुव्वणो सुरूवो धम्मपरो परुवयारी य ।।६४।।
ता तस्स चंदलेहं सयंवरं पेसिउं सयं चेव । पाणिमुयणंमि तीसे नीसेसं देमि रज्जसिरिं ।।६५।।
न य तस्स रज्जदाणं कन्नादाणं च कुलपसूयस्स । अणुचियरूवं ति मणे काउं सचिवाण साहेइ ।।६६।।
तेहि वि तहेव पडिवज्जियंमि वयणंमि सामिसालस्स । काऊण पाणिपीडणजुग्गं सामग्गियं रन्ना ।।६७।।
भणिओ सेणाहिवई रणधवलो भद्द ! चंदलेहमिणं । नरकेसरिणो गंतूण पणयपुव्वं पणामेसु ।।६८।।
भणियव्वो य तए सो जं उचियं मह कुलस्स नेहस्स । तं ताव मइ विहियं तए वि कुलएण होयव्वं ।।६९।।
अह सुमुहुत्ते चउरंगसिन्नसंछन्नमेइणीवलओ । चलिओ सेणाहिवई कमेण पत्तो य अद्धपहे ।।७०।।
अह विउलजलं सरियं दुव्वावणगहणपरिसरं तत्थ । दट्ठूणमुप्पयाणं दिणमेगं कुणइ सिन्नवई ।।७१।।
तो न्हाणपाणपरिनिव्वुयंमि सेणाजणंमि तं रयणिं । वोलिय कुणइ पयाणं पञ्चूसे जाव चमूनाहो ।।७२।।
ताव न पिच्छइ तं चंदलेहकुमरिं तओ ससंभंतो । हा कहमेयं ति समंतओ वि विक्खिवई सिन्नाइं ।।७३।।
ते वि हु दिणावसाणे सुन्ना वुन्ना विवन्नमुहसोहा । सिबिरे मिलंति सव्वे निप्फलभमणा नमिरवयणा ।।७४।।
अह वामपाणिपणिहियवयणे सेणाहिवे ससोयंमि । पत्ता अतक्किय च्चिय पुव्वं पि हु परिचिया तस्स ।।७५।।
सिद्धाएसा किर जोगसिद्धिनामेण जोगिणी तत्थ । अब्भुट्ठिया तओ सा ससंभमेणं चमूवइणा ।।७६।।
भणियं च साहु भयवई दुहियं नियपुत्तयं मुणेऊण । नियदंसणेण विहिओ महापसाओ अमोहेण ।।७७।।
ता कुणसु पसायं हरसु मज्झ आचंदकालियमकित्तिं । साहेसु कहिं मह सामिसालतणया हडा केण ।।७८।।
अह पणिहाणबलेणं मुणिऊणं कन्नगागयं सव्वं । एयमिह पत्तकालं ति भणइ पुत्तय ! निसामेसु ।।७९।।
सागेयसामिणा नियय्यमित्तविज्जाहरप्पओगेण । दुद्दंतनामएणं दुद्दंतेणं हडा कन्ना ।।८०।।
सो य न सज्झो दिव्वप्पओगवज्जस्स तुज्झ ता वच्छ ! । इह चेव संनिवेसिय सिन्नं तं वज्ज एगागी ।।८१।।
[3]भूइट्ठारयणीए कुसत्थलपुरस्स बाहिरमसाणे । मुहपत्तं कुलउत्तं झाणपरं तं निरिक्खिहसि ।।८२।।
जो तत्थ तस्स होही उत्तरसाहगनरो महाभागो । सो तुह वुत्तंतनिवेयणेण साहिज्जमज्जिणिही ।।८३।।
सो हं नणु रणधवलो तुह चेव समागओ समीवंमि । ता तह कुणसु महायस ! जह सफलपरिस्समो होमि ।।८४।।
अह भणइ भूमिनाहो हंहो रणधवल ! धवलचरिओ सि । पडिवन्नकज्जनिव्वाह - मंथरो जं समुव्वियसि ।।८५।।
हा कह मए वि एसा कायव्वा पत्थणा तुह अमोहा । अज्ज वि न सिद्धविज्जो जं विज्जासाहगो एस ।।८६।।

3. **भूइट्ठा** (भूतेष्टा) आश्विनकृष्णाचतुर्दशी-कालीचौदस इति भाषायाम् ।। - पा. स. मे. पृ. ६५७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंगीकओ य उत्तरसाहगभावो मए जमेयस्स । तं निव्वाहमपाउणिय सङ्घसंधो कहं होमि ।।८७।।
ता गिन्हमिणं पडिवक्खलक्खविक्खेवदक्खमक्खेवा । ओसहिवलयं अविवासवो वि जह तं न परिहवइ ।।८८।।
एयं च कुसत्थलपत्थिवस्स दिज्जासि सिद्धनियकज्जो । इय भणिय भूमिवइणा विसज्जिओ सहरिसं एसो ।।८९।।
अह तंमि गयंमि खणंतरंमि पुरहूयपरिचियदिसाए । बंभंडभंडभंजणपवणो जाओ महानाओ ।।९०।।
तस्सायन्नणखणसावहाणहिययंमि मेइणीनाहे । पयडियसयलदियंतं फुरंतमणिकिरणजालेहिं ।।९१।।
कणकणिरकिंकिणीरव - पुणरुत्तपउत्ततालसंगीयं । दिव्वविमाणं अवयरइ समिरुद्धुयधयवडाडोवं ।।९२।।
अह ताओ विमाणाओ देहपहापहसियाहरणकन्ती । तवणिज्जपुंजपिंजरछाया मायामइ व्व सिरी ।।९३।।
वग्गंतखग्गखेडय - कुलिसंकुसकलियकरयलचउक्का । अवयरइ वियसियमुही देवी विज्जुप्पभा नाम ।।९४।।
गयणगय च्चिय पभणइ हंहो वसुहासहोयर ! सुणेसु । एयस्स अहं न हु मंतवाइणो मंतमाहप्पा ।।९५।।
इत्थागय म्हि किं पुण पणिहाणबला समस्सियं तुमए । एयं नाउं तुह पुव्वपुन्नपब्भारहियहियया ।।९६।।
एसो य पुरा मह निज्झभेसणामित्तचत्तसत्तेहिं । परिहरिओ उत्तरसाहगेहिं बहुसो हयासेहिं ।।९७।।
अरिहइ पसायमहुणा अहिट्ठिओ पुन्नरासिणा तुमए । मह वरदाणेण इमस्स होउ तुह दंसणं सहलम् ।।९८।।
तुह तेयतवियतणुणो मुणिणो इव मोणमस्सिया पिक्ख । मह भिच्चा तुह भेसणसमुज्जया लज्जिरा पुरओ ।।९९।।
इय भणिय नियविमाणे कुवलयदलदीहराइं नयणाइं । वावारिंती देवी दरहसिरी सहरिसं भणइ ।।१००।।
ए एहि चंदलेहे ! वच्छे ! पसयच्छि ! अच्छिविच्छोहं । विक्खिवसु हिययनाहे तणुसोहामहियरइनाहे ।।१०१।।
इय तीइ सिद्धवयणाइ वयणओ ताउ वरविमाणाओ । नयणाण अमयवुट्ठि व्व कन्नगा झत्ति ओइन्ना ।।१०२।।
अह तं काऊण करे देवी नरदेवमेवमालवइ । एसा मए नराहिव ! कोसलवइधवलगेहस्स ।।१०३।।
हा पाणनाह ! हा गुणअगाह ! हा हिययदइय ! हा सुहय ! ।
हा सुप्पसत्थलक्खण ! हा भुवणविलक्खणायार ! ।।१०४।।
सुविसुद्धोभयपक्खा तुह माणसवासलालसा चलिया । अहमेएण मरालि व्व दुट्ठरिट्ठेण अवहरिया ।।१०५।।
सव्वत्थ वहसि नरकेसरि त्ति अत्थन्नियं नियं नामं । जइ ता किं नरफेरुं दुहंतं दमसि नो नाह ! ।।१०६।।
इच्चाइ विलवमाणी चंदमुही तस्स चंदसालाए । दिट्ठा तुह विरहकरालिय त्ति इत्थेव आणीया ।।१०७।।
ता होउ इमा मह तुज्झ पढमदंसणउवायणं बाला । अणुगिन्हामि य एयं समत्तजावं महाभायं ।।१०८।।
अह करकमलं कुलपुत्तयस्स सीसंमि संठवेमाणी । पभणेइ पुत्त ! उट्ठसु जाया तुह सुप्पसन्ना हं ।।१०९।।
सिज्झंतु सयलकामा हुंतु अ वामा य माइणो मंता । उवभुंजसु मह माहप्पकप्पतरुणो फलं विउलं ।।११०।।
इय देवीवयणवियंभमाणरोमंचकंचुइयगत्तो । अब्भुट्ठइ कुलउत्तो महापसाओ त्ति जंपंतो ।।१११।।
पंचंगचुंबियधरो धराहिराएण सो समं तेण । पणमइ देविं दुव्वारदुरियदंदोलिनिद्दलणिं ।।११२।।
आणंदबाहजलल्लुलियलोयणा देवया वि कुमरीए । सव्वंगीणाहरणं दिव्वं दीणारकोडिं च ।।११३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाऊण भूमिनाहं कुलउत्तं चंदलेहकुमरिं च । निवधवलहरे मुत्तुं झडत्ति अद्दंसणं जाया ।।११४।।
अह विज्जुज्जोयसमप्पभाइ विज्जुप्पभाइ देवीए । वीइक्कंताइ निवं कुलउत्तो सहरिसं भणइ ।।११५।।
सिज्झंति कह णु अम्हारिसाण कीवाण मंतदेवीओ । जइ न कुणसि संनिज्झं अनिबंधणबंधवो तं सि ।।११६।।
किं किं जन्नोवकयं किं किं तं जं तए मह न दिन्नं । कज्जे अणन्नसज्झे साहिज्जं अज्झिणंतेणं ।।११७।।
अणुमन्नेसु मं संपइ नियजणणीचरणपणमणनिमित्तं । सिज्झंतु तुज्झ मणवंछियाइं दीहाउओ होसु ।।११८।।
तो तं विसज्जिऊणं नरनाहो नियमणे खणं किंपि । संठविय चंदलेहं कुलथेरीणं समप्पेइ ।।११९।।
अह अन्नया सरागे उवट्ठिए दिसिवइंमि पुव्वाए । वियलइ नीलदुगूलं व सज्झसेणं तिमिरपडलम् ।।१२०।।
नलिणिमणदइयकोमलकरपुट्ठपओहराइ तक्कालं । वियलंति गयणलच्छीइ सेयबिंदूवमा तारा ।।१२१।।
परिलुलियनयणताराउ ल्हसियधम्मिल्लगलिरकुसुमाओ । तलिणोयरीउ रमणीउ निंति पियवासगेहाउ ।।१२२।।
न्हाऊण गयणमंदाइणीइ वीसमिय उदयसिहरंमि । उवसप्पंति सपणयं पभायपवणा नलिणलच्छिं ।।१२३।।
इय तंमि साहुजणबहुमयंमि जाए पभायसमयंमि । कयतक्कालियकिच्चो राया अत्थाणमल्लीणो ।।१२४।।
सामंतमंडलेसरसेणावइसत्थवाहसंवाहे । तत्थ कुसत्थलसामिं पडिहारो विन्नवइ एवं ।।१२५।।
रिउमद्दणस्स रयणउरसामिणो किर वरूहिणीनाहो । पुहइपरमेसरं तं रणधवलो दट्ठुमहिलसइ ।।१२६।।
तं सोऊण नरिंदो सुमरंतो तस्स पुव्ववुत्तंतं । तं आणवेइ अव(वि)लंबमेव एयं पवेसेसु ।।१२७।।
दंसिज्जमाणमग्गो विणयपरेणं दुवारपालेण । अह पविसइ रणधवलो पुहइपुरहूयअत्थाणं ।।१२८।।
तो पढमए दंसणि च्चिय सविम्हओ चिंतए चमूनाहो । हंत किमेयं तइया जो रयणीए मए दिट्ठो ।।१२९।।
उत्तरसाहगभावेण पत्थिओ नियय कज्जसाहिज्जं । सु च्चिय एस नरिंदो नमंतसामंतकमकमलो ।।१३०।।
इय चिंतन्तो दंडअप्पणामपुव्वं निवं नमंसेउं । दिन्नासणे निसन्नो स संनिहाणे नरिंदस्स ।।१३१।।
मुणियतयाहिप्पाओ सप्पणयं पत्थिवो भणइ एयं । हंहो सुमरसि रणधवल ! रयणिखणपरिचयं चित्ते ।।१३२।।
संजायपच्चएणं तो विन्नत्तं वरूहिणीवइणा । किं किंपि देवपायाण अमुणियं अत्थि भुवणे वि ।।१३३।।
दुद्दंतदमणवइयरमह पुट्ठो पत्थिवेण विन्नवइ । देव ! अहं तइय च्चिय चलिओ चउरंगबलकलिओ ।।१३४।।
पत्तो य सो मए नियंपुराओ मिगयापसंगनीहरिओ । विक्खित्तो य समंता दप्पिट्ठेणं मह बलेणं ।।१३५।।
अह मुक्कसीहनाओ सुहडो सवडंमुहो स तो भिडिओ । भिउडीकडप्पदुप्पिच्छवयणकमलो विडप्पु व्व ।।१३६।।
तत्थ न ते मायंगा न तुरंगा रहवरा न ते जोहा । जे तस्स सरासणचक्कमुक्कसरसल्लिया नेय ।।१३७।।
अह तेण मन्दरेण व महिज्जमाणं परक्कमधणेण । नियबलजलहिं अवलोइऊण फुरिओ ममामरिसो ।।१३८।।
तो कोवकवलियमई विसुमरिउं महोसहीवलयं । तं पइ पहाविओ हं अहिक्खिवंतो गिरा एवं ।।१३९।।
रे रे दुद्दंत ! कयंतदंतजंतंतरालमचिरेण । मह सामिसालधूयं धुवं हरंतो समल्लियसि ।।१४०।।
इय भणिरो जाव करेमि तस्स निसियासिणा किर पहारं । तो तेण थंभिओ मे हुंकारेणेव भुयथंभो ।।१४१।।
अह बाहुत्थंभवियंभमाण-निब्भरपराभवुब्भंतो । किंकायव्वविमूढो चिट्ठामि खणंतरं जाव ।।१४२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता वाहिविहुरियस्स व रसायणंमि महमणंमि महमहिओ । सो सामिसालपायप्पसाइओ ओसहीवलओ ।।१४३।।
अह जागे सइ चंगेरियाउ आणित्तु फुल्लबडुएणं । विहियविविहोवयारो सो बद्धो मह भुयत्थंभे ।।१४४।।
तो तद्दंसणमित्तेण तस्स सागेयसामिणो गलियं । गालियविरियस्स करकडियडाउ सत्थं च वत्थं च ।।१४५।।
अह मह सुहडेहिं पडिच्छियंमि सहस त्ति तंमि नरनाहे । कायव्वकंदिसीया पलाइया परियणा तस्स ।।१४६।।
तत्तो खणंतरेणं मुणियसरूवा सुहासणासीणा । धरियधवलायवत्ता वयपरिणइविसरिससरूवा ।।१४७।।
भडचडयरेण महया समागया तत्थ तस्स नरवइणो । जणणी मज्झ पिउच्छा देवी पउमावई नाम ।।१४८।।
अब्भुट्ठिया मए सा सप्पणयं पणमिया सभिञ्जेण । दिन्नासणे निसन्ना एवं भणिउं समाढत्ता ।।१४९।।
जाणामि पुत्त ! नियदुट्ठपुत्तदुव्विणयविलसियं सयलं ।
किं पुण इमस्स विहियं अकिञ्चमवि निप्फलं विहिणा ।।१५०।।
जं सा तुह सामिसुया अवहरिया णेण मुक्कमेरेण । परिणयणत्थं अब्भत्थिया य अणुणयसहस्सेहिं ।।१५१।।
साविहुबालानरमइनजिमइनहसइन भासइमणंपि ।वियलाविलवइकेवलमुद्दिसियकुसत्थलाहिवइं ।।१५२।।
अह तइयतिजामाए घणचडुपडुईहिं निवइदूईहिं । अणुणिज्जंती कुट्टिमतलाउ केणावि अवहरिया ।।१५३।।
ता मुंच इमं मह देहि पुत्तभिक्खं विवक्खविक्खिवण ! । जाओ जहत्थनामो समरधुराधारणेण तुमं ।।१५४।।
इय तीइ वयणपवणेण चंदलेहाऽवहारदुहदहणो । सविसेसं पज्जलिओ मह मणग्गहणंमि नरनाह ! ।।१५५।।
अह विहवजुवइजणविलसियं व सयलं पि निप्फलं कलिउं । तमुवक्कमं मए सो समप्पिओ नियपिउच्छाए ।।१५६।।
तो ताण पणयभणियाणि नयरनयणाइयाणि अवगणिउं । कत्थइ रइमलहंतो समागओ तुम्ह पयमूले ।।१५७।।
ता पसिय तूरह लहु कत्थ वि अन्नेसणाकए तीए । आइसह ममं पि कहिं पि तीइ कज्जे नियय्यभिज्जं ।।१५८।।
इय भणिय तंमि विरए दरहसिरो सहरिसं भणइ राया । रणधवल ! वयं किंची लहिमो जइ तं इहाणेमो ।।१५९।।
कह नाह ! इमं इइ विम्हएण पुट्ठो नरेसरो तेण । सयलं साहइ कुमरीइ वइयरं तं जहावित्तं ।।१६०।।
तत्थेव पाणिपीडणमिमीह होहि त्ति सह चमूवइणा । नियजणयरायहाणिं विसज्जिया राइणा कुमरी ।।१६१।।
कइवयदिणेहिं सयमेव चउरंगचमूसमूहपरियरिओ । रयणउरं संपत्तो अक्खंडपयाणएहिं इमो ।।१६२।।
तस्सागमणे रोहिणिरमणस्स व उग्गमंमि मयरहरो । रिउमद्दणनरनाहो न माइ हरिसेण अंगेसु ।।१६३।।
अह सुमुहुत्ते निव्वत्तिएसु किच्चेसु गुत्तथेरीहि । दिज्जन्तेसुं दाणेसु कणयकरितुरयपमुहेसु ।।१६४।।
वज्जन्तेसु चउव्विहआउज्जेसुं गभीरघोसेसु । नच्चंतीसुं करणप्पओगचउरं पुरंधीसु ।।१६५।।
गिज्जंतेसु किन्नरसराहिं विलयाहि धवलगेएसु । वित्तं विच्छड्डेणं पाणिग्गहणं निवसुयाए ।।१६६।।
अह तंमि चेव दिवसे अहिसित्तो सत्तिभत्तिसंजुत्तो । रिउमद्दणेण रन्ना नियए नरकेसरी रज्जे ।।१६७।।
भंडारियक्खडलियगइंदमंडलियसाहणियपमुहा । नियनियनिओगनिव्वाहणाय सद्दाविया पुरओ ।।१६८।।
तह सेणावइसामंतमंतिपमुहेहिं सासणं सिरसा । उव्वूढं नरकेसरिरन्नो रिउमद्दणस्सेव ।।१६९।।
इय कयकिच्चो दीणाइयाण दाउं मणिच्छियं दाणं । रयणउरनराहिवई तिणमिव परिहरिय रज्जसिरिं ।।१७०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंतुं तहाविहाणं थेराणं अंतिए विणिक्खंतो । अब्भसियदुविहसिक्खो मुक्खत्थी तवइ तिव्वतवं ।।१७१।।
नरकेसरी वि राया अप्पडिहयसासणो कुणइ रज्जं । जुगविगमसमयदुस्सह - सहस्सकरखरतरपयावो ।।१७२।।
देवी वि चंदलेहा [4]ओहामियमयणतरुणितणुसोहा । नरकेसरिणा सद्धिं भुंजइ विउले महाभोए ।।१७३।।
पुत्तीओ पवरमणी पुव्विं कुलपुत्तयाउ जो पत्तो । सो तीइ मोलिमउडग्गमंडणं राइणा विहिओ ।।१७४।।
देवीविइन्नसव्वंगसंगिआहरणकिरणजालेहिं । उज्जोयन्ती दस दिसिमुहाइं विलसइ जहिच्छं सा ।।१७५।।
राया वि कयाइ कुसत्थलंमि कइयाइ रयणउरनयरे । विलसइ आरणअच्चुयकप्पेसुं अच्चुयइंदु व्व ।।१७६।।
कालक्कमेण पडिपुन्नपुन्नपरमाणुसारघडिय व्व । संजाया से तणया दुन्नं पि हु अग्गमहिसीणं ।।१७७।।
नरविक्कमु त्ति नरसुंदरीइ विस्सुयपरक्कमुक्करिसो । देवीइ चंदलेहाइ तह य हरिविक्कमकुमारो ।।१७८।।
अहिगयकलाकलावा समत्थसत्थत्थसत्थपारगया । गयतुरयदमणनिउणा राहावेहेऽहिगयरेहा ।।१७९।।
सव्वाउहोहविबुहा निजुद्धजुद्धेसु दुद्धरा धणियं । जोग त्ति कलिय दो वि हु जुवरायाणो कया रन्ना ।।१८०।।
इत्तो य माणुसुत्तरगिरिपरिखित्तंमि माणुसे लोए । पंचिंदियसन्नीणं मणोगयत्थे मुणेमाणो ।।१८१।।
गामागरनगरगयाण भव्वजन्तूण चिरपरूढाइं । वयणोसहीहि संसयसल्लाइं उद्धरेमाणो ।।१८२।।
वरचरणकरणरयणोहभरियसीलंगतुंगरहवहणे । धरिउद्धरखंधेहिं मुणिवरवसभेहिं परियरिओ ।।१८३।।
विहरंतो संपत्तो कुसत्थलपुरस्स बाहिरुज्जाणे । रिउमद्दणमुणिनाहो चउनाणमहोयही भयवं ।।१८४।।

कलापकम् ।।

तस्सागमणे आकंठपीयपीऊसरसपवाहु व्व । सव्वंगनिव्वुइकरं हरिसं नरकेसरी पत्तो ।।१८५।।
अह सह जुवराईहिं दोहि वि दोहिं पि अग्गमहिसीहिं । सामन्तमन्तिमंडलियसिट्ठिसत्थाहपमुहेहिं ।।१८६।।
पासट्ठियरणधवलो चलिओ तप्पायपणमणनिमित्तं । चउरंगचमूभरभग्ग - भोगिपुंगवफणाभोगो ।।१८७।।
तत्तो मुणिंददंसण - चियत्तछत्ताइरायककुहोहो । आणंदबाहजललुलिय - लोयणो पुलइयसरीरो ।।१८८।।
दाउंपयाहिणातिय - मलीयतलमिलियकरकमलकोसो । पंचंगचुंबियधरो उवविसइ सपरियणो नमिउं ।।१८९।।
अह सजलजलहरारावगहिरघोसाइ संसयहराए । सवणसुहाइ गिराए पारद्धा देसणा गुरुणा ।।१९०।।
हंहो महाणुभावा ! जीवो सकडेहिं कम्मनिगडेहिं । अप्पाणमप्पण च्चिय बंधइ लूय व्व लालाहिं ।।१९१।।
तेहि य दुप्पुत्तेहिं व सयं समुप्पाइएहिं पावेहिं । किर कत्थ कत्थ वुत्थो दुत्थमवत्थं न पाउणिओ ।।१९२।।

तहाहि -

घोरंधारे नरयकुहरे छिंदणुब्भिंदणाइं, नासावेहंकणगुरुभरारोहणाइं तिरित्ते ।
अत्थब्भंसो परिभवभया रोगसोगा नरत्ते; ईसारोसा चवणवियणा पेसभावा सुरत्ते ।।१९३।।
इय गईसु चउस्सु वि दुस्सहं, दुहमणंतमणंतभवुब्भवं ।।
अहिसहंति जमित्थ सरीरिणो; विलसियं खलु कम्मरिऊण तं ।।१९४।।

4. **ओहामिय** दे० अभिभूत, तिरस्कृत इति भाषायाम् ।। - पा. स. म. पृ. २०६ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कसाया विसया जोगा पमाओऽविरई तहा । मिच्छत्तमट्टरुद्दाणि एयाणं तु निबंधणं ।।१९५।।
ता कसह कसाए दमह इंदिए मूलओ मिच्छं । जोगे रुंभह विरइं धरेह निहणह पमायरिउं ।।१९६।।
अजिएहिं एएहिं जीवो कम्मेहिं निच्छियं विजिओ । विजिएहिं एएहिं किं जं न हु तिहुयणे विजियं ।।१९७।।
तह अत्तनिव्विसेसं वच्छलं कुणह सयलपाणिगणे । जीवदय ञ्जिय जीयं जं जिणधम्मस्स रम्मस्स ।।१९८।।
चित्तक्खित्तपरूढाइ सुद्धसद्धाजलेण सित्ताए । णं पाणिदयावल्लीइ उयह माहप्पमप्पडिमं ।।१९९।।
सुकुलुग्गमाइपत्ता अतुच्छलच्छीविलासवरसाहा । रज्जाइलाभपसवा जं सा सग्गापवग्गफला ।।२००।।
किन्न सरसि जं तुमए एसा आराहिया परभवंमि । फलिया य इत्थ जम्मे हंहो नरकेसरिनरिंद ! ।।२०१।।
इय सुणिय रणधवलो मुणिनाहं बहलपुलयपरिकलिओ । विन्नवइ नाह ! साहसु सवित्थरं रायणो चरियं ।।२०२।।
पुव्विं पि पुन्नपगरिसमब्भुयभूयं इमस्स पिच्छंतो । पुव्वकयसुकयसवणे सयावि भयवं सयन्हो हं ।।२०३।।
अह भणइ मुणिवरिंदो जइ एवं सुणसु ता चमूनाह ! । विंझाडवीइ एसो आसि पुरा किल पुलिन्दनरो ।।२०४।।
मंडलियचंडकोदंड - खड्डिउड्डमरहरिरिहरिणजूहो । विलसइ समं जहिच्छं समचित्ताए पुलिंदीए ।।२०५।।
अह अन्नया भमंतेण तेण गिरिकाणणे मुणी एगो । सियखाणुभिन्नचरणो दिट्ठो गुरुवेयणाविवसो ।।२०६।।
पयईइ निहयस्स वि तस्स तओ तं तवोनिहिं दट्ठुं । तहभवियव्वत्तणेणं मणंमि करुणा समुच्छलिया ।।२०७।।
तो उवसप्पिय पणमइ पुच्छइ इह मा[म]साणवणे भयवं । को आगमणे हेऊ कह वा विद्धो पओ तुम्ह ।।२०८।।
अह भणइ मुणी भद्दय ! न यत्थ महकिंपि काणणे कज्जं । किं पुण पहपब्भट्ठा इह तिन्नि तवस्सिणो अम्हे ।।२०९।।
वियडाडवीइ पडिया तत्थ य परिसक्कणं कुणंतस्स । मह पंसुपडलपच्छन्नखाणुणा खंडियं चरणं ।।२१०।।
अह नियकम्मविवागं उवट्ठियं तं तहा मणे मुणिउं । ते दो वि मए भणिया अणगारा गारवविमुक्का ।।२११।।
हंहो महाणुभावा ! एयं अइभीसणं महारन्नं । हरिहरिणसप्पसद्दूल - रिंछरिंछोल्लिसंछन्नं ।।२१२।।
समुवट्ठियं च एयं मह गरुयमसायवेयणीयकम्मं । ता वयह भयह तुब्भे गामागरगामुगं मग्गं ।।२१३।।
जइ मं अतुल्लवच्छल्लपिल्लिया मिल्लिउ न वञ्जिहह । देहस्स संजमस्स य ताऽवस्सं संसओ तुम्ह ।।२१४।।
तम्हा गुरुलहुभावं परिभावह नियमणंमि गीयत्था । तिन्हं पि अवत्थाणे मरणं गमणे ममेगस्स ।।२१५।।
इच्चाइसुजुत्तीहिं संठविऊणं अणिच्छमाणा वि । अज्जेव मए भद्दय ! विसज्जिया दो वि ते मुणिणो ।।२१६।।
कीलुप्पाडणिसंरोहिणीहिं दिव्वोसहीहिं अह सहसा । पउणो कओ मुणिंदो तेण पुलिंदेण करुणाए ।।२१७।।
तं तस्स अकित्तिमवच्छलत्तणं भाविभूरिभद्दं च । परिचिंतंतो चित्ते मुणिवसभो भणिउमाढत्तो ।।२१८।।
भो भो महायस ! तए चरित्तपाणे य इयरपाणे य । रक्खंतेणं मह कहियमप्पणो घणदयालुत्तं ।।२१९।।
ता जह दुहियं दट्ठुं मं पइ करुणा पणुल्लिया तुमए । तह जइ हरिहरिणाइसु हविज्ज ता किं न पज्जत्तं ।।२२०।।
सग्गंमि अमरवइणो निद्धमणे किमिगणस्स खुद्दस्स । मरणभयंमि समाणे कह कीरउ पाणिनिवहवहो ।।२२१।।
जह नियसरीरमहिगिच्च पज्जवायं जणो विवज्जेइ । तह जइ सव्वजिआणं देहे ता हुज्ज किमजुत्तं ।।२२२।।
खणमित्तचित्तसंतावहारिणो कह णु भोयणस्स कए । ही ही अत्थं निज्जइ जियाण सयलो वि जियलोओ ।।२२३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कीरउ एयं पि हु हुज्ज उवसमे न हु छुहाइ जइ अन्नो । को वि उवाओ अजरामरा उ न पलासिणो वि जए ।।२२४।।
भूओवमद्दणं ता विमुंच भद्दय ! दुरंतपेरन्तं । पुव्वोवयारओ वि हु एसो हु महोवयारो मे ।।२२५।।
अह तहभवियव्वत्तणओ तहाविहस्सावि तस्स हिययंमि । संकन्तं मुणिवयणं वयणं पिव दप्पणतलंमि ।।२२६।।
विरमइ पाणिवहाओ मज्जं वज्जेइ परिहरइ पिसियं । गिन्हइ अभिग्गहो निसिभोयणविरमणाईणि ।।२२७।।
तो तद्देसियमग्गो मुणिवसहो विहरिओ जहाभिमयं । सबरो वि हु सकलत्तो पालइ पाणोवमे नियमे ।।२२८।।
अह पेसलफलदलकलियपाणवित्तिस्स तस्स सबरस्स । वोलीणेसुं कइवयदिणेसु सहसा वणे तंमि ।।२२९।।
खरपवणपणुल्लियवेणुपव्वसंघट्टणासमुल्लसिओ । जुगविगमसमयसामरिसगिरीसनयणानलु व्व दवो ।।२३०।।
कुवियविहिविलसिएण व दुन्निग्गिज्झेण तेण दहणेणं । तणकट्ठपुप्फपत्ताइ भासरासीकयं सयलम् ।।२३१।।
वणदवतावियतणुणो सव्वे तव्वासिणो तओ सबरा । एगं अगाहसलिलं महादहं सणियमोइन्ना ।।२३२।।
निद्दड्ढेसुं फलमूलकंदपमुहेसु तेसि भक्खेसु । निच्छुभिउं मच्छाई तओ तओ ते समारद्धा ।।२३३।।
वणदवपक्काइं पुलिंदएसु मीणाइं कवलमाणेसु । सो पुव्वुत्तो वुत्तो पुलिंदोदओ नियपुलिन्दीए ।।२३४।।
भवियव्वयावसेणं संघडियं संकडं इमं ताव । एएणं चिय भक्खेण किन्न पाणेस वोलेसि ।।२३५।।
उवसंते दवदहणे पुणरवि लीणा वणंतरं किंपि । निव्वाहिस्सामो निम्मलाइं नियया नियमाइं ।।२३६।।
अह ईसि विहसिऊणं भणियं सबरेण हरिणसावच्छि ! । सुत्थासु अवत्थासुं को न समत्थो वए धरिउं ।।२३७।।
वसणकसवट्टएसुं सुचरियचामीयरत्र निव्वडइ । जेसिं तेसिं कह कंठभूसणत्तं लहइ लोए ।।२३८।।
ता मा मयच्छि मणसा वि पावचरिएसु कुणसु अहिलासं । पडिवन्ननियमनिव्वाहणेण जं होइ तं होउ ।।२३९।।
जीवंते वयजीवे मयावि जीवंतया सुयणु अम्हे । तंमी पुणो विवन्ने जीवंता वि हु मय च्चेव ।।२४०।।
इच्चाइ सुजुत्तीहिं संठविया सा तहेव पडिवन्ना । निंदियनियदुच्चरिया जाया अब्भुज्जया नियमे ।।२४१।।
इय निव्वूढपइन्नं तं मिहुणं वणदवंमि उवसंते । अन्नंमि वणनिगुंजे संकन्तं ललइ लीलाए ।।२४२।।
कालक्कमेण मरिउं सो सबरनरो नरेसबद्धाऊ । तेण सुकएण जाओ एसो नरकेसरी राया ।।२४३।।
सा वि हु सब्बरी मरिउं सुचरियलेसेण तेण उववन्ना । पुव्वावत्थाइ इमा मह तणया चंदलेह त्ति ।।२४४।।
जं पुव्वभवे नियमो मणसा कलुसीकओ खणमिमीए । तेणावहारजणियं मणोदुहं किंपि अणुहूयं ।।२४५।।
ता जइ विसुद्धसद्धम्मकम्मनिम्माणविरहियाए वि । जीवदयाए इक्काइ जायए एरिसा रिद्धी ।।२४६।।
ता किं लद्धूण सुमाणुसाइसामग्गियं न उज्जमह । सावज्जवज्जणेणं भव्वा निव्वाणसुहहेउं ।।२४७।।
इय मुणिवइवयणाओ धम्मुवएसं च पुव्वजम्मं च । नरकेसरी नरिंदो सोऊणं सविणयं भणइ ।।२४८।।
भवभयहराइं भयवं संसयदलणाइं पसमसाराइं । धन्नाण कन्नकुहरे चरंति तुम्हाण वयणाइं ।।२४९।।
ता जाव सव्वसावज्जवज्जणुज्जोगभेगचित्तो हं । आराहेउं सम्मं कालाइबलं परिकलेमि ।।२५०।।
ता ताव सावगत्तं आरोवसु देसविरइरूवं मे । एयं पि सासयपुरं किंपि विलंबेण पाउणइ ।।२५१।।
सम्मत्तमूलाइंदुवालसाविवयाइंदिन्नाइंगुरूहिंतस्स । विसुद्धसद्धेण पडिच्छियाइं सपुत्तदारेण नरेसरेण ।।२५२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदियमुणिंदचलणो निवई नियरायहाणिमल्लीणो । कप्पसमत्तीइ गुरू वि विहरिओ अन्नदेसेसु ।।२५३।।
राया वि वयरवेरुलिय - फलिहदलिएहिं दलियपावाणं । कारेइ निययदेसे भवणाइं जिणिन्दचन्दाणं ।।२५४।।
सव्वावयवोहविणिस्सरंत - दिप्पंतकंतिपडलाओ । अप्पडिमाओ पडिमाओ तेसु तेसिं निवेसेइ ।।२५५।।
सियसद्दलंछियाणं गंभीरिमविजियचरमजलहीणं । संसयहराण लेहेइ पुत्थए समयसत्थाणं ।।२५६।।
चाउव्वन्नं संघं निग्घाइयविग्घसंघमग्घेइ । तस्सोवयारएहिं वत्थूहिं तहप्पगारेहिं ।।२५७।।
जिणपन्नत्ते धम्मे रत्ताणं अट्ठिमिंजराएणं । तह वच्छल्लमतुलं समाणधम्माण पयडेइ ।।२५८।।
जरजज्जराण दीणाण सयणरहियाण सावयाईणं । अक्खलियभोयणकए सत्तागारे पवत्तेइ ।।२५९।।
जलयरथलयरनहयर - पभिईणं सयलपाणिनिवहाणं । सव्वत्थ अमाघायं घोसावइ नियदेसंमि ।।२६०।।
घुसिणघणसारमयमय - चंपयकेयइसुवन्नजाईहिं । परमिट्ठीणं पूयं सासयदिवसेसु कारेइ ।।२६१।।
पहरिसपप्फुल्लपुरंधि - वग्गगिज्जंतजिणगुणोल्लीओ । पइवरिसं पइनयरं रहजत्ताओ पवत्तेइ ।।२६२।।
जत्थ य जम्मणनिक्खमण - नाणनिव्वाणपभिइणो जाया । तित्थयराणं ताओ स तित्थभूमीओ फासेइ ।।२६३।।
एवं कयकायव्वो उच्छूसु व्व गहियरससविसेसेसु । ओरालेसुं विसएसु निरहिलासो निवो जाओ ।।२६४।।
तो नरविक्कमकुमरं अहिसिंचइ पेइए निए रज्जे । हरिविक्कमं च रयणउरभट्टिभावे निवेसेइ ।।२६५।।
सयमवि गीयत्थाणं थेराणं अंतिए विरत्तमणो । संकन्तो स महप्पा तहप्पगारेणगारत्ते ।।२६६।।
सुयसागरपारगओ उवसग्गपरीसहेहिं अक्खोभो । उवसमरसनिव्वाविय - कसायदहणो महियमयणो ।।२६७।।
परलोयभीरुएहिं विनिहणियदुद्दंतअंतररिऊहिं । अंगीकयत्थसत्थेहिं समणसुहडेहिं परियरिओ ।।२६८।।
नरकेसरिरायरिसी मुसुमूरियमोहजोहमाहप्पो । परहियकामो वसुहाइ विहरिउं चिरमपडिबद्धो ।।२६९।।
निरासित्ता मिच्छं मणभवणओ मिच्छपडिमं । पवित्तं सम्मत्तं ठविय भवियाणं मुणिवई ।।
स पज्जंते भत्तं परिहरिय मासं अणसिओ । समुप्पन्नो धन्नो किर नवमगेविज्जि तियसो ।।२७०।।
इय नरकेसरिरन्नो वत्तियं अच्छरियभूयमवगम्म । सविसेसं जीवदयाइ जयह मोहं मुयह भव्वा ! ।।२७१।।

इति जीवदयायां नरकेसरिनरपतेः कथानकं समाप्तमिति ।।६६।। श्रीः ।।

साम्प्रतमभयदानोपसंहाराय अनुकम्पादानोपक्षेपाय चाह -

इय भणियमभयदाणं भव्वाण नराण सिवसुहनियाणं ।
अणुकंपादाणं पुण भणामि दुक्खत्तसत्तेसु ।।६७।।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण विराधनाराधनोदाहरणद्वयोपेतं **भणितमभयदानम्** । किंविशिष्टं ? **भव्यानां नृणां शिवसुखनिदानम्** निर्वृत्तिसौख्यनिबन्धनम् । अभव्यानां करुणापरिणामस्यैवाभावात् । इदानीं **पुनः** क्रमप्राप्तं द्वितीयम् **अनुकम्पादानं भणामि,** केषु ? इत्याह -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुःखार्त्तसत्त्वेषु असातोद्वेजितजन्तुषु ।।६७।।

दुःखार्त्तसत्त्वभेदानाह -

दीणाणमणाहाण य बंधवरहियाण वाहिविहुराण ।
चारयपडियाण विएसियाण वसणावलीढाणं ।।६८।।

अंधाण य पंगूण य कुणीण खुज्जाण वामणाणं च ।
बालाण य वुड्ढाण य छुहियाण पिवासियाणं च ।।६९।।

एवंविहाण पाणीण दिंति करुणामहन्नवा जमिह ।
तं अणुकंपादाणं भन्नइ सन्नाणसालीहिं ।।७०।।

सज्ज्ञानशालिभिर्वरज्ञानोद्भासमानैस्तीर्थकृत्प्रभृतिभि**स्तदनुकम्पादानं भण्यते** । तत् किम्? **यद् ददति** वितरन्ति । के? **करुणामहार्णवाः** कृपाऽकूपाराः । केषां? **प्राणिनाम्** । किंविशिष्टानाम्? **एवंविधानाम्** प्रोच्यमानस्वरूपाणाम् । तानेवाह - **दीनानां** धनरहितानां **तथाऽनाथानां** पतिविरहितानां, **बान्धवरहितानां** ज्ञातिवर्गवियुक्तानां, **व्याधिविधुराणां** काश-श्वासज्वरातीसारादिरोगग्लपितानां, **चारकपतितानां** गुप्तिगृहवासितानाम्, **वैदेशिकानां** भ्रष्ट पन्थश्रमितानां, **व्यसनावलीढानां** राजकृतोपद्रवप्रभृतिभिर्व्यसननिपतितानां, **अन्धानां** सन्नदृशां, **पङ्गूनां** अपदानां, **कुणीनां** करविरहितानां, **कुब्जानां** आसेवितवाप(?) [एकपार्श्वहीनलक्षणानां] **वामनानां** खर्वशाखानां, **बालानां** शिशूनां, **वृद्धानां** जरतां, **क्षुधितानां** बुभुक्षाक्षामकुक्षीणां, **पिपा-सितानां** जलपानविरहितानां दाहशोषाकुलानां इत्यर्थः, एवंविधा भिक्षुकाः अन्ये अप्राप्तशर्माणः अन्तरायदानान्तरायकर्मोदया[द]परैः पीडिताः क्षुधार्त्ताः स्वकर्मनिरताः स्वाधीनकृतानिश्चयाः [अस्वाधीनकृतनिश्चयाः] [1]परपुरुषार्थापरानभिलषिति[षन्ति] । एवं च स्वाधीनधनानां साक्षात्कृत-दुःखार्दितदेहिनामपि पुंसां यदि चित्ते मनसि अनुकम्पा कृपा न भवेत्तदा भव्यत्वे मुक्तिगमनयोग्यत्वे भ्रान्तिरिव भ्रम इव, अभव्यप्राणिनामेव प्रायस्तथाकर्कशत्वसम्भवात् ।।६८।।६९।।७०।।[2]

गाथा-७० 1. परः - श्रेष्ठः पुरुषार्थः येषां ते परपुरुषार्थाः, श्रेष्ठपराक्रमिण इत्यर्थः । अथवा परेषु हेत्वर्थे सप्तमी, परेभ्यः पुरुषार्थः येषां ते इति परपुरुषार्थाः परोपकारिण इत्यर्थः, ततः कर्मधारयः ।।

2. मूलग्रन्थप्रतिषु अतः परमेका गाथा अधिका अस्ति सा सटीकप्रत्योः नास्ति । तद्यथा -
संते वि चित्तवित्ते दिट्ठे सत्ते वि तिक्खदुक्खत्ते । अणुकंपा जइ चित्ते न हुज्ज भंति व्व भव्वत्ते ।।७१।।
अतः परं '**भाविज्जइ०**' इति गाथा-७२ इति क्रमाङ्केन दर्शिता अस्ति ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किञ्च -

भाविज्जइ भव्वत्तं पाणिदया पाउणेइ परभागं ।
सम्मत्तं च विसुज्झइ अणुकंपाए वियरणेणं ।।७२।।

अनुकम्पावितरणेन दयादानेन **भाव्यते** प्रकाश्यते **भव्यत्वं** सिद्धिगमनयोग्यत्वं । अभव्यानां हि कौतस्कुती कृपा । तथा **प्राणिदया परभागं** गुणोत्कर्षं **प्राप्नोति** । दयावत एव दीनादिदर्शनात् कृपादानोपलब्धेः । तथा **सम्यक्त्वं विशुद्ध्यति** निर्मलीभवति, अनुकम्पादानेनेति ।।७२।।

दीनादिसमुद्धरणं च नात्यन्तमसुकरमुत्तमसत्त्वानामित्याह -

पाणीण पाणसंरक्खणाय पाणे वि नणु पणामंति ।
इह केई सत्तधणा का गणणा बज्झवत्थूणं ।।७३।।

इहास्मिन् जगति **केचित् सत्त्वधनाः** सत्त्वमेव धनं येषां ते तथा, सर्वोत्तमसत्त्वनिलयास्तावत् **प्राणिनां प्राणसंरक्षणाय** जीवितपरित्राणाय, निजप्राणानपि, **ननु** निश्चयेन **उपनयन्ति** । मायापारापतश्येनव्यतिकरे **मेघरथ**नरनाथवत् । **बाह्यवस्तूनां** तु धनधान्यादीनां **का गणना ?** । प्राणदानापेक्षया सुकरत्वात्तद्दानस्येति ।।७३।। अनुकम्पादानस्यैव माहात्म्यमुदीरयति -

रिद्धीओ विउलाओ अभंगुरं भूरिभोगसामग्गिं ।
जं भुंजंति नरा तं अणुकंपादाणमाहप्पं ।।७४।।

तदनुकम्पादानस्य माहात्म्यं वैभवम् । **यन्नराः** प्राणिनो **भुञ्जते** निर्विशन्ति । काः ? **रिद्धीः** सम्पदः । कथम्भूताः ? **विपुलाः** सङ्ख्यातीताः । तथा **भूरिभोगसामग्रीम्** समग्रविषयग्राम-प्रकर्षम् । किंविशिष्टाम् ? **अभङ्गुराम्** अखण्डिताम् । तदेतदन्यदप्येवं प्रकारमनुकम्पादान माहात्म्यमवसेयम् ।।७४।। तथा -

[1]**दीणाईसु दयाए दिंतो न कयाइ निप्फलो पुरिसो ।**
पाउसपज्जन्नो इव दुब्भिक्खाइसु विसेसेण ।।७५।।

दीनादिषु पूर्वोदितेषु **दयया**ऽनुकम्पया **ददानः पुरुषः कदाचिदपि** कस्मिन्नपि देशे काले वा

1. एषा गाथा मूलग्रन्थप्रतीषु नास्ति । सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न निष्फलः फलशून्यो न भवति । अत्रैव विशेषमाह - **दुर्भिक्षादिषु** अवमादिषु **विशेषेण** सविशेषः । क इव? **प्रावृट्पर्जन्य इव** घनसमयघन इव । दुर्लभा हि दुर्भिक्षे दातारो धाराधाराश्चेति ।।७५।।

अत्र दृष्टान्तमाह -

जह तेण सिट्ठिसागरदत्तस्स सुएण सोमदत्तेण ।
अणुकंपादाणाओ पत्ता भोगा इहेव भवे ।।७६।।

यथेति दृष्टान्तोपन्यासे । **यथा तेन सागरदत्तश्रेष्ठिनः सुतेन सोमदत्तेन इहैव भवे** अस्मिन्नेव भवे-जन्मनि **भोगाः** शब्दादयः **अनुकम्पादानात् प्राप्ताः** लेभिरे ।।७६।।

सम्प्रदायगम्या च सोमदत्तकथा । स चायम् -

।। अनुकम्पादानमाहात्म्योपरि सोमदत्तकथानकम् ।।

अस्यैव जम्बूद्वीपस्य क्षेत्रे भरतनामनि । पूर्वोत्तरे विदिग्भागे मथुरेत्यस्ति पूर्वरा ।।१।।
प्रासादशृङ्गैरुत्तुङ्गैः क्षीरडिण्डीरपाण्डुरैः । अङ्कुरित इवाभाति यस्यां धर्म्मः पदे पदे ।।२।।
मणितोरणतेजोभिर्ध्वस्तध्वान्ते दिवानिशम् । उदयः स्थितये यस्यां केवलं शशि-भास्वतोः ।।३।।
सूर्योपलमयः शालः कालिन्दीजलवीचिभिः । यत्रार्ककरजं तापं नक्तं सिक्तोऽपि नोज्झति ।।४।।
चन्द्रोपलालवालैः स्वैर्निशि पीयूषपूरितैः । गृहोद्यानद्रुमा यस्यां नदी-देवाम्बुनिस्पृहाः ।।५।।
जलकेलिच्युतैर्वारनारी मृगमदोज्झयैः । परभागं दधौ यत्र कालिमा यमुनाजले ।।६।।
असङ्ख्यनिधयो यस्यां पौराः सौराज्यरञ्जिताः । तृणायापि न मन्यन्ते श्रीदं नवनिधीश्वरम् ।।७।।
स्वर्णस्तूपेन दिव्येन तुङ्गेन मणिसानुना । प्रकाशयति या जम्बूद्वीपमध्यावनेः श्रियम् ।।८।।
तस्यां विक्रमसेनोऽभूद् विक्रमाक्रान्तभूर्नृपः । यस्य विक्रम एवाभूत् सैन्यमन्यत् तु मण्डनम् ।।९।।
यस्य धाराधरे क्षेत्रसीम्नि सन्दर्शितोन्नतौ । राजहंसगणैर्नेशे क्वापि देशे विसंस्थुलैः ।।१०।।
मौलामात्यादयो यस्य पुमर्था इव संहताः । परस्पराविरोधेन राज्यकार्याणि तेनिरे ।।११।।
प्रजासु निदधे नैव यथा कोऽप्यपदे पदम् । तद्वदिन्द्रियवर्गोऽपि तस्य स्वपरशासितुः ।।१२।।
शयानोऽपि यथाकालं स नीतिनलिनीरविः । चारैक्षणैर्जजागार नक्तंदिनमतन्द्रितः ।।१३।।
तथा प्रजावनीमेष सिषेच नयवारिभिः । यशः कुसुमभृत् साऽभूत् करप्राप्यफला यथा ।।१४।।
दधुर्धराधिपा मूर्ध्नि यथा तस्यैव शासनम् । तथैव हि निजे सोऽपि सर्वज्ञस्यैव शासनम् ।।१५।।
तस्यामेव पुरि प्राज्यपुण्यसम्भारभाजनम् । श्रेष्ठी सागरदत्तोऽभूद् भूमिर्भूयिष्ठसम्पदाम् ।।१६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महारम्भोऽपि सदयः प्रभविष्णुरपि क्षमी । मनस्व्यपि विनीतो यस्त्यागवांश्चाविकत्थनः[1] ।।१७।।
पल्वलानां पयांसीव फलानीवाध्वशाखिनाम् । सर्वसत्त्वोपयोगीनि तस्य वित्तानि धीमतः ।।१८।।
विनोपदेशकं धर्म्मरहस्यमविदन्नपि । नाधर्म्मकर्म्म विदधे प्रकृत्यैव स शुद्धधीः ।।१९।।
कल्पद्रुरिव वृक्षेषु पक्षीन्द्र इव पक्षिषु । ऋक्षनाथ इवर्क्षेषु स पौरेषु पुरस्सरः ।।२०।।
कुलशीलवयोरूपैरनुरूपा प्रियास्य तु । बभूव श्रीमती पत्युर्नेत्रकैरवकौमुदी ।।२१।।
गुणैर्विभूषणान्यङ्गे सूनृतोक्त्यास्यमण्डनम् । त्रपया चारुनेपथ्यं पुनरुक्तं चकार या ।।२२।।
तस्यां स्वस्मिन्निवाधाय गृहव्यापारमञ्जसा । बुभुजे स तया सार्द्धं धनयौवनयोः फलम् ।।२३।।
तस्य पुण्यवतः प्रायः सर्वमन्यत् प्रियाकरम् । दुनोति हृदयं कामं केवलं निरपत्यता ।।२४।।
तत्रैव पुरि पौराणां प्रीतिपात्रं नृपस्य च । देवशर्मास्ति दैवज्ञो विज्ञः सर्वज्ञशासने ।।२५।।
तस्य सागरदत्तेन सह प्रीतिरकृत्रिमा । बभूव कुमुदस्येव समं कुमुदबन्धुना ।।२६।।
दिने रात्रौ गृहे गोष्ठे विपणौ नृपमन्दिरे । अवियुक्तौ सदाभूतां स्ववैद्याविव तौ मिथः ।।२७।।
पुत्रार्त्तिप्रेरितः प्रोचे कदाचिदथ सागरः । सोपालम्भं सविश्रम्भं तं प्रसङ्गाद् गृहागतम् ।।२८।।
मम त्वया धनेशेन समं च वृषलक्षण ! । विधिना बध्नता मैत्रीं न जाने किञ्चिदर्जितम् ।।२९।।
संस्पृष्टो मर्मणीवाथ देवशर्मा तमूचिवान् । अनभिज्ञो निदानेऽहमुपालम्भस्य ते सखे ! ।।३०।।
न मे स्मरति चेतोऽपि कृतं त्वां प्रति विप्रियम् । चित्तायत्तप्रवृत्ती तु मित्र वाग्वपुषी कुतः ।।३१।।
मह्यं द्रुह्यसि चेन्न त्वं यथार्थमभिभाषसे । न क्षमः क्षणमप्येष सोढुं ते विमनस्कताम् ।।३२।।
एवं ससम्भ्रममालापं तमूचे श्रीमतीपतिः । दैवस्यायमुपालम्भो न ते मित्र ! मनागपि ।।३३।।
संयोज्य सम्पदं येन भूभुजामपि दुर्लभाम् । हन्मर्मभेदिनी सेयं कृता मे निरपत्यता ।।३४।।
सनाथमपि निर्नाथं धनेशमपि निर्धनम् । सबन्धुमपि चात्मानमेकाकिनमवैम्यहम् ।।३५।।
अनेनैव च तापेन सन्तप्तां स्वां प्रजावतीम् । तुषारग्लपितां पश्य पद्मिनीमिव निःप्रभाम् ।।३६।।
ज्योतिःशास्त्रादिविज्ञानं तव नः क्वोपयुज्यते । न चेदेनं मनस्तापमपहर्तुमलं भवान् ।।३७।।
तस्मादस्मांस्त्वमेतस्मात् सुतचिन्तामहार्णवात् । केनाप्युपायपोतेन समुद्धर धियां निधे ! ।।३८।।
ततस्तदैव दैवज्ञः स तद्दुःखेन दुःखितः । तत्कालिकीं ग्रहग्रामभ्रमिभूमीं व्यभावयत् ।।३९।।
विचार्य सुचिरं चित्ते कृत्यं निर्णीय चानयोः । इति हर्षाद् बभाषे तं मा विषीद सखे हृदि ।।४०।।
कथं ग्रहगणस्तेषामेष मित्र ! प्रसीदति । नार्चयन्ति जिनस्यार्चां येऽर्चितां नवभिर्ग्रहैः ।।४१।।
विना जिनार्चनं विद्धि ग्रहदौर्बल्यमात्मनः । सन्ततिप्रतिबन्धाय जायते च तदेव हि ।।४२।।
साम्प्रतं वर्त्तते किन्तु सौम्य ! सोमदशा तव । अतः सोमाङ्कितां मूर्त्तिमष्टमस्यार्हतोऽर्चय ।।४३।।

गाथा-७६ 1. **अविकत्थन**-अभिमानरहितः । न विकत्थनं यस्य, न विकत्थनम् - युद्धस्याऽभावः श्लाघाया अभावः ।। - श. र. म. पृ. २२१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमत्याश्चेतसः तापं सुतचिन्तासमुद्भवम् । मूर्तिस्थौ भानुभौमौ च पुष्यतः प्रतिवासरम् ।।४४।।
तस्मादयमुपायोऽत्र युवयोः कार्यसिद्धये । इतस्तृतीयदिवसे भविष्यत्यसिताष्टमी ।।४५।।
किञ्च विक्रमसेनस्य नृपतेर्देवतौकसि । चान्द्रोपलमयी मूर्त्तिरस्ति चन्द्रप्रभप्रभोः ।।४६।।
ततोऽष्टमीदिने कृत्वा प्रसादसुमुखं नृपम् । भवद्भ्यां गम्यतां तत्र यत्र सा प्रतिमोत्तमा ।।४७।।
संवीतधौतपोताभ्यामुपवासपुरस्सरम् । विशालकाञ्चनस्थाले विनिवेश्य प्रपूज्य ताम् ।।४८।।
निशीथे च निशानाथकरसंस्पर्शतस्तदा । क्षरत्यमृतमेषा यत् तत् ते पिबतु वल्लभा ।।४९।। युग्मम् ।।
निर्वास्यति ध्रुवं तापः सुतन्तोद्भवस्ततः । सानुग्रहश्च भविता ग्रहग्रामो जिनार्चनात् ।।५०।।
ततः पुत्रप्रसविनी प्रिया तव न चेद् भवेत् । तदाहं ब्राह्मणो नैव न च शास्त्रविशारदः ।।५१।।
सप्रतिज्ञमिति श्रुत्वा वचनं देवशर्मणः । कृतकृत्यमिवात्मानं कल्पयन् सागरोऽब्रवीत् ।।५२।।
यद् यथोक्तं त्वया मित्र ! तत् तथा चेद् भविष्यति । भवानिव भविष्येऽहं जिनधर्मरतस्तदा ।।५३।।
प्रदीयतां च किं तुभ्यमीदृशप्रियवादिने । विधेयं तेऽथवा सर्वं विधेये मयि मामिकं ।।५४।।
इत्युक्त्वा देवशर्माणं विससर्ज स सादरम् । स्वयं च तस्थौ तद्वाचि निश्चितस्तद्दिनं स्मरन् ।।५५।।
अथाष्टम्यामुपेतायामादायोपायनं महत् । स ददर्श नृपं तस्मै शशंस च मनोगतम् ।।५६।।
ससन्मानमनुज्ञातः क्षितिपेनाथ सागरः । विधिवद् विदधे सर्वं देवशर्मोदितं वचः ।।५७।।
पीयूषपानतृप्तायां श्रीमत्यामथ पार्थिवम् । नमस्कृत्य निजं धाम पूर्णकामो जगाम सः ।।५८।।
ततोऽनुभावतस्तस्मात् परमेष्ठिसमुद्भवात् । बभार श्रेष्ठिनी गर्भं निधानमिव मेदिनी ।।५९।।
यथा यथा प्रववृधे गर्भोऽस्याः शुभदोहदः । जिनधर्मानुरागोऽपि सागरस्य तथा तथा ।।६०।।
अशून्यः सन्निधिः श्रेष्ठी सुहृदा देवशर्मणा । यथावद् विदधे सर्वाः क्रियाः पुंसवनादिकाः ।।६१।।
अथ गर्भावधौ पूर्णे पूर्णेन्दुवदना सुतम् । सुषुवे श्रेष्ठिनी पुण्ये मुहूर्त्ते पुण्यलक्षणम् ।।६२।।
तादृशस्य प्रमोदस्य विभवस्य च सागरः । औचित्येन तदा चक्रे पुत्रजन्ममहोत्सवम् ।।६३।।
सम्प्राप्ते द्वादशे चाह्नि सोत्सवं देवशर्मणा । सोमदत्त इति प्रीत्या सूनोर्नाम ददेऽन्वितम् ।।६४।।
अथ प्रमोदतः श्रेष्ठी देवशर्माणमूचिवान् । सखे निखिलमप्येतत् त्वत्प्रभावविजृम्भितम् ।।६५।।
अस्तंगत इवाभूद् यः पुत्रप्राप्तिमनोरथः । स समुज्जीवितः पीत्वा त्वदुपायरसायनम् ।।६६।।
त्वदायत्तः समस्तोऽयमेतावानिन्दिरोदयः । प्रसीद सर्वमेवैतद् गृहाणानुगृहाण माम् ।।६७।।
प्रत्यूचे देवशर्मापि मित्र ! मा मैवमभ्यधाः । प्रभावः सर्व एवाऽयं जिनधर्मस्य मीयताम् ।।६८।।
त्वया चाङ्गीकृते तस्मिन् किं किं नोपकृतं मम । अस्मिन्नेव तदाजन्मलीनः कल्याणभाग् भव ।।६९।।
इत्थं तरङ्गितप्रीत्योस्तयोः कालेऽतिगच्छति । सोमदत्तोऽत्यजद् बाल्यं कलभत्वमिव द्विपः ।।७०।।
कुलोचिताः कलाः सर्वाः कलयामास च क्रमात् । विद्याः स्युर्गोष्पदप्रायाः प्रज्ञापोतभृतां यतः ।।७१।।
पुष्पायुधधनुःकेलिखुरलीसन्निभं क्रमात् । प्रपेदे प्रमदाचित्तोन्मादनं यौवनं च सः ।।७२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुलादिभिः समानानां कन्यानां पाणिपीडनम् । सागरेण कुलाचारपारगेण स कारितः ।।७३।।
भुञ्जानश्च समं ताभिः सुखं वैषयिकं सुखम् । स यान्तमपि नो कालं कलयामास मांसलम् ।।७४।।
अन्यदा च सुहृद्वर्गैः सवयोभिः समन्वितः । जगाम स्तूपरूपेऽसौ प्रासादे देवनिर्मिते ।।७५।।
स्तूपं प्रदक्षिणीकुर्वन् कौतुकोत्तानलोचनः । स ददर्श मुनिं कञ्चिद् गभस्तिभानुभास्वरम् ।।७६।।
तस्य पश्यत एवासौ मुनिः स्तूपोपरिस्थिताः । यथाविधि नमस्कृत्य प्रतिमाः शाश्वतार्हताम् ।।७७।।
कुर्वन् प्रदक्षिणं स्तूपं सुमेरुमिव भास्करः । तपस्तेजोमयोऽधस्तादुत्ततार निराश्रवः ।।७८।।
मेखलायामधस्तन्यां श्रीसुपार्श्वप्रभोरथ । प्रतिमां स नमस्कृत्य स्तोतुमित्युपचक्रमे ।।७९।।
"श्रीसुपार्श्वप्रभोः पादपद्ममछद्मानसः । श्रये श्रेयः श्रिये यस्मिन् मरालति जगत्त्रयी ।।८०।।
लोकोत्तरामपि त्यक्त्वा लक्ष्मीं स्वर्लोकसम्भवाम् । यस्यामीशावतीर्णस्त्वं कथं शिवपुरी न सा ।।८१।।
लब्धोदये त्वयि प्रेङ्खत्प्रभापटलभास्वति । आविर्भूतं पदार्थैश्च तमोभिश्चास्तमान्तरैः ।।८२।।
नेत्रं नीलोत्पलश्लाघ्यं सुधाकुम्भनिभं मुखम् । विश्वस्याभूत् तवाधीश ! दृष्टमिष्टार्थसिद्धये ।।८३।।
सबाह्याभ्यन्तरक्लेशदवथु[2]व्यथितां भुवम् । स्वर्णच्छटाभिर्निर्वाप्य प्रभो प्राप्तसमुन्नतिः ।।८४।।
परित्यज्य पटप्रान्तविश्रान्तमिव कण्टकम् । निष्कण्टकमपि प्राज्यराज्यं त्वं संयमे स्थितः ।।८५।।
प्रशान्तविग्रहस्यापि स्तुवे चरणचातुरीम् । तव प्रबलकर्मारिवारदारणदारुणाम् ।।८६।।
उदिता केवलश्रीस्ते मुदिता भुवनत्रयी । उपदेशामृतैर्वृष्टं नष्टं दुर्वासनाविषैः ।।८७।।
इत्थमाश्वास्य विश्वानि देशनामृतवीचिभिः । प्रतिष्ठ पृथ्वीसम्भूत ! प्राप्तस्त्वं परमं पदम् ।।८८।।
मूर्त्तिः स्फूर्त्तिमती देव ! देवदानवमानवैः । सेव्यते सेयमद्यापि भुक्तिमुक्तिप्रदा तव ।।८९।।
प्रभावभवने देव ! केवलालोकभास्वति । नन्दतु त्वयि लीनं मे मनस्त्रिभुवनप्रभोः" ।।९०।।
स्तुत्वैवं विरते तस्मिन् मुनौ विनयवामनः । सोमदत्तः पदाम्भोजं प्रणनामास्य भक्तितः ।।९१।।
मौलौ च मुकुलीकुर्वन् पाणी प्रणतवत्सलम् । मुनिमागमने हेतुं पप्रच्छ स्वच्छमानसः ।।९२।।
शशंस मुनिरप्यत्र सुमेरोरनुकारिणि । स्तूपे जिनेन्द्रबिम्बानां प्रणामायाहमागमम् ।।९३।।
सकौतुकं सोपरोधं विनीतः सागरात्मजः । अन्वयुङ्क्त मुनेः स्तूपमूलोत्पत्तिकथामथ ।।९४।।
एतदाकर्णनादस्य जैने धर्मे दृढं मनः । भविष्यतीति सोऽप्यूचे शृणु वत्स यदीच्छसि ।।९५।।
अस्यामेवावसर्प्पिण्यां जिनेषु ऋषभादिषु । पद्मप्रभावसानेषु प्राप्तेषु परमं पदम् ।।९६।।
प्रतिष्ठनृपतेः पुत्रः सप्तमस्तीर्थनायकः । श्रीसुपार्श्वोऽभवत् सौम्य ! यस्येयं प्रतिमा पुरः ।।९७।।
प्रवर्त्त्य धर्मतीर्थं स्वमस्मिन्नपि कृपार्णवे । सदानन्दं पदं प्राप्ते तत्सन्ताने बभूवतुः ।।९८।।

---

2. **दवथुः** - ताप-चिन्ता-सन्तापः । दुनोति दवनमिति, दूयते ऽनेनेति वा भावे करणे चाथुच् ।
- ५/३/८३ सि. हे. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म्मघोषो धर्म्मरुचिरिति द्वौ मुनिपुङ्गवौ । सुदुष्करतपःशक्तौ शान्तौ दान्तौ क्षमानिधी ।।९९।।
शरीरनिरपेक्षौ तौ कुर्वाणौ दुष्करं तपः । विहरन्तौ कदाप्यस्यां मथुरायामुपेयतुः ।।१००।।
तदा प्रववृते चातिभीष्मग्रीष्मोष्ममूर्च्छितम् । समुज्जीवयितुं विश्वं दयालुरिव वारिदः ।।१०१।।
प्रस्थानस्थासकं कुर्वन् योषितः प्रोषितप्रियाः । जगर्ज तर्जयन्नुच्चैः पाथोदः पथिकव्रजान् ।।१०२।।
सौदामिनीं शतघ्नीं स्वां स्फोरयन्नम्बरेऽम्बुदः । बभ्रमान्वेषयंस्त्रस्तं ग्रीष्ममिन्द्रधनुष्करः ।।१०३।।
धाराधरे वारिधाराधोरणीभिः प्रवर्षति । अन्तरिक्षं दधे यन्त्रधारागृहसगोत्रताम् ।।१०४।।
समुल्लङ्घितमर्यादा रसोद्रेकेण जज्ञिरे । प्रतिकूलविसर्प्पिण्यस्तटिन्यः कुलटा इव ।।१०५।।
पयोदस्य प्रियस्येव सङ्गमाद् भूमिभामिनी । आविश्चकार रोमाञ्चं नवाङ्कुरोद्गमच्छलात् ।।१०६।।
एवं पयोदसमये प्रवृत्ते तौ महामुनी । संस्मरन्तौ स्वसमयव्यवस्थां स्थिरमानसौ ।।१०७।।
देवतायाः कुबेराया भवने वनमध्यगे । अवग्रहमनुज्ञाप्य संलीनाङ्गाववस्थितौ ।।१०८।। युग्मम् ।।
धर्म्मध्याननिलीनौ तौ चतुर्मासीमुपोषितौ । स्वाध्यायमधुरध्वान - सम्प्रीणितमृगार्भकौ ।।१०९।।
मनःसमत्वभावेन भावितैर्मुक्तमत्सरैः । सेव्यमानौ हरिकरिद्वीपिशम्बरशूकरैः ।।११०।।
विमुक्तलोकव्यापारावप्रमत्तावहर्निशम् । हृदये मुमुदे देवी पश्यन्ती मुनिपुङ्गवौ ।।१११।। विशेषकम् ।।
तयोस्तपःप्रभावेन सम्यगावर्जितान्तरा । कुबेरा किङ्करीवाऽथ मुमुचे नैव सन्निधिम् ।।११२।।
आविष्कृत्य निजं रूपं नक्तं भ्रात्रोरिवैतयोः । शुश्राव देशनां हृद्यां धन्यम्मन्या दिने दिने ।।११३।।
निर्वाणश्च क्रमेणास्या हृदि मिथ्यात्वपावकः । प्ररूढः प्रौढमूलश्च सम्यक् सम्यक्त्वपादपः ।।११४।।
तथाऽभूद् भक्तिरागोऽस्यास्तयोरुपरि निर्भरः । यथाऽवधीरिताशेषकृत्या तावेव सेवते ।।११५।।
गच्छत्सु दिवसेष्वेवमदीनमनसोस्तयोः । क्रमादुपनता तत्र कार्तिकस्य सिताष्टमी ।।११६।।
प्रतिबन्धं तथा तस्याः पश्यन्तौ तौ मुनी ततः । मनाक् श्लथयितुं पूर्वमेव तामेवमूचतुः ।।११७।।
तव साहाय्यतो भद्रे भद्रेणैवायमावयोः । वर्षाकालोऽतिचक्राम धर्म्मध्याननिलीनयोः ।।११८।।
पूर्णावधी भविष्यावः कार्त्तिकीपूर्णिमातिथौ । पुरेव विहरिष्यावः पुरग्रामाकरादिषु ।।११९।।
अतः शय्यातरीति त्वमनागतमुदीर्यसे । दृढानुरागया भाव्यं भद्रे ! जैनेन्द्रशासने ।।१२०।।
सुलभं देवजन्मापि सुलभा भूरिभूतयः । केवलं दुर्लभो लोके धर्म्म एव जिनोदितः ।।१२१।।
अकस्मात् तत् तयोः श्रुत्वा वचनं गमनोन्मुखम् । मुमूर्च्छ तत्क्षणं देवी पविनेवाथ ताडिता ।।१२२।।
चिरेण प्राप्य चैतन्यं निरानन्दाऽब्रवीन्मुनी । किमर्थमिदमाख्यातं मुनीन्द्रौ ! परुषं वचः ।।१२३।।
न स्मरामि निजां तावदभक्तिं भक्तवत्सलौ ! भवेद् वा क्षम्यतामत्र निजापत्ये कृपार्णवौ ! ।।१२४।।
भवाम्भोनिधिपोताभ्यां भवद्भ्यां भवनं निजम् । विभूषितमहं मन्ये धन्यं सिद्धाश्रमादपि ।।१२५।।
मिथ्यात्वपरिघं भङ्क्त्वा मुक्तिद्वारोपरोधकम् । निधानमिव सम्यक्त्वं भवद्भ्यां मे प्रसादितम् ।।१२६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतोपकारयोरेवं भवतोर्दर्शनं विना । नावस्थातुं समर्थोऽहं [3]शकुलीव जलादृते ।।१२७।।
अतः प्रसद्यावस्थानं सदैवात्र विधीयताम् । उपरोधाम्बुधौ चित्ते प्रार्थना मे निधीयताम् ।।१२८।।
निगदन्तीमिमामेवं भक्त्या जगदतुर्मुनी । कुरुषे गुरुषु स्थाने गौरवं गुरुवत्सले ! ।।१२९।।
किन्तु चिन्तय तत्त्वज्ञे ! सर्वज्ञाज्ञामिमामिह । विहङ्गानामिवैकत्र न मुनीनामवस्थितिः ।।१३०।।
प्रतिबन्धो लघुत्वं च न परोपकृतिस्तथा । ज्ञानादीनामवृद्धिश्च दोषाः स्युर्नित्यवासिनाम् ।।१३१।।
अनवद्यमनिन्द्यं च वृत्तं व्रतभृतामिदम् । संविदानोऽपि किं वत्से ! धत्से खेदोदयं हृदि ।।१३२।।
तस्मादस्मद्वतामेतां ममतामार्हते मते । सविशेषं दधाना त्वमेद्धि सद्धर्म्मकर्म्म वा ।।१३३।।
एवं प्रबोधिता ताभ्यां मुनिभ्यां सा सुराङ्गना । निःप्रत्याशा तयोस्तस्थावस्थाने पुनरभ्यधात् ।।१३४।।
निःसङ्गताऽस्ति युवयोर्यद्यप्येवं तथापि हि । कृत्यादेशेन केनापि प्रसादः क्रियतां मयि ।।१३५।।
किमप्यनुपकृत्याहं भवतोरुपकारिणोः । सन्तोषं न भजे पूज्यौ ! जजल्पतुरिमावथ ।।१३६।।
विमुक्तलोकचिन्तानां निस्पृहाणां वपुष्यपि । मुनीनामनगाराणां कृत्यं केनास्तु वस्तुना ।।१३७।।
निर्बन्धात् प्रार्थयन्तीं तां भूयस्तावेवमूचतुः । यद्येवं क्रियतामेतत् कृत्यमेकमिहावयोः ।।१३८।।
सङ्घेन मथुरापुर्याः सहावां सुरभूधरे । यथा वन्दावहे देवान् कल्याणि ! क्रियतां तथा ।।१३९।।
विमृश्य जगदे साऽथ भगवन्तौ तदन्तरा । मिथ्यादृशः सुराः सन्ति मत्तस्ते बलवत्तराः ।।१४०।।
अतः सङ्घमहं तत्र क्षमा प्रापयितुं न हि । युवां पुनर्नयाम्येषा गम्यतामधुनैव हि ।।१४१।।
अभ्यधातां मुनी मुग्धे ! शुद्धसिद्धान्तचक्षुषा । करामलकवत् साक्षात् सुरभूमीधरोऽस्ति नौ ।।१४२।।
प्रभावनार्थं जैनेन्द्रशासनस्येदमीरितम् । असमर्थासि चेत्तत्र मुञ्च मुग्धे तदाग्रहम् ।।१४३।।
एवं च निरपेक्षाभ्यां मुमुक्षुभ्यामपाकृता । जगाद देवी मन्दाक्षविलक्षवदना पुनः ।।१४४।।
भुज्यते तावदेवेह यावन्मात्रं हि जीर्यति । उत्पाट्यते भरस्तावान् यावान् मार्गो न मुच्यते ।।१४५।।
पुरः प्रमाणपुंसां च तावदेवोच्यते वचः । यावन्निर्वाह्यते तस्मादप्रसादोऽस्तु मा मयि ।।१४६।।
प्रतिच्छन्दमहं मेरोः करोमि भवदाज्ञया । अत्रैव सह सङ्घेन तत्र कृत्यं विधीयताम् ।।१४७।।
एवमस्त्विति सन्दिष्टा मुनिभ्यां सा सुराङ्गना । दिव्यशक्त्या स्तूपगेहं सौवर्णं स त्रिमेखलम् ।।१४८।।
रत्नसानुं च चूलाग्रजाग्रज्जैनेन्द्रमन्दिरम् । निशीथसमये चक्रे शक्रक्रीडाचलोपमम् ।।१४९।। युग्मम् ।।
पुरीपरिसरे प्रातः स्तूपं स्वर्णमणीमयम् । लोका विलोकयाञ्चक्रुर्दिवःखण्डमिव च्युतम् ।।१५०।।
कथा प्रथामथावाप सा तस्यां पुरि सर्वतः । उपस्थितास्तीर्थिकाश्च तत्र ताथागतादयः ।।१५१।।
पार्थिवे सपरीवारे पौरलोकेऽप्युपेयुषि । सन्निवेशः पुरस्तस्याः तत्रापर इवाभवत् ।।१५२।।

---

3. **शकुली** - बहु झडपथी दोडती लाल रंगनी माछली । शक्नोतीति शकुलः "हृषिवृति' (उणा. ४८५) इत्युलः अ. चि. ना. स्वो. पृ. १३४५ । (शकुल+स्त्रियां जाति. ङीप्) शकुली रोहिताकारा भूगौः प्रायश्चरत्यसौराजवल्लभः । - श. र. म. पृ. १९८५ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महेश इति माहेशा ब्रह्मेति ब्रह्मवादिनः । जिनोऽयमिति जैनेन्द्रा विष्णुरित्येष वैष्णवाः ।।१५३।।
बुद्धोऽयमिति बौद्धाश्च तस्यालोभादथोमिथः । विवदन्ते स्म पाषण्डाः कामंग्रामेयका इव ।।१५४।। युग्मम् ।।
अनिर्णयेन तत्राथ वर्त्तमानेऽसमञ्जसे । एवं व्यवस्थां विदधुर्नृपादेशान्नियोगिनः ।।१५५।।
विवादः किं मुधैवायं भवतां मुग्धधार्मिकाः । अमानवमिदं तावन्निर्माणमिति निश्चयः ।।१५६।।
अतः स एव निर्नेता विधाता योऽस्य वस्तुनः । विधीयतामुपायोऽयं किन्तु सिद्धिनिबन्धनम् ।।१५७।।
पटेषु निजदेवानां मूर्तीरालिख्य तत्परैः । स्थीयतां स्वस्ववृन्देन नक्तमात्तपटैरिह ।।१५८।।
निष्प्रत्यूहं च यस्तत्र प्रातः स्थाता भवत्सु भोः । निर्विवादमदस्तस्य तीर्थमस्तु ततः परम् ।।१५९।।
तथेति प्रतिपद्याथ विदधुस्ते तथैव हि । उपस्तूपं निशीथिन्यां तस्थुर्गीतादितत्पराः ।।१६०।।
अत्रान्तरे च यामिन्या यामयुग्मे व्यतीयुषि । विक्षिपंस्तृणवद् बद्धमूलानपि महीरुहः ।।१६१।।
लीलया गण्डशैलांश्च विकिरन् कर्करानिव । चलयन्नचलान् कर्णतालानिव गजाग्रणीः ।।१६२।।
भ्रमयन् मेदिनीं दण्डाहतकौलालचक्रवत् । प्रलयानिलतुल्योऽथ प्रोल्ललास समीरणः ।।१६३।। विशेषकम् ।।
त्रोटं त्रोटं पटास्तेन विक्षिप्ता दिक्षु लक्षितम् । मुमुहुर्धार्मिकाः शून्यं भ्रेमुश्च बधिरान्धवत् ।।१६४।।
तस्थौ सुस्थः परं तत्र श्रीसुपार्श्वप्रभोः पटः । सङ्घेन सह दुर्लङ्घ्यो महिमा हि महात्मनाम् ।।१६५।।
भूपतिः पौरलोकाश्च द्रुतं द्रुतमुपागताः । ददृशुस्तं तं तथा सर्वं विस्मयस्मेरचक्षुषः ।।१६६।।
हर्षाज्जयजयाराव - मुखराः प्रोचुरित्यथ । जीयाज्जैनेन्द्रधर्म्मोऽयं यत्प्रभावोऽयमीदृशः ।।१६७।।
देवताऽऽयतनाद् धर्म्मघोषो धर्मरुचिश्च तौ । उपेयतुः सङ्घलोकं सह देवतया तया ।।१६८।।
ससन्मानं च सङ्घेन सादरं तौ पुरस्कृतौ । पृष्टौ चाहे महात्मानौ कोऽयं व्यतिकरो ननु ।।१६९।।
विदुषोरपि तत्तत्त्वमविकत्थनयोस्तयोः । तूष्णीकयोः कुबेरा तद् वृत्तं मूलादचीकथत् ।।१७०।।
प्रशशंसुस्ततः सर्वे व्रतमाहात्म्यमेतयोः । ववन्दाते च तत्तीर्थं सङ्घेन सह तावपि ।।१७१।।
प्रायश्चित्तं प्रतिक्रम्य चतुर्मासोद्भवं ततः । संस्थाप्य देवतां धर्म्मे सन्मुनी तौ विजहतुः ।।१७२।।
स्मरन्ती देवताऽप्यस्थात् तद्गुणान् कुन्दसुन्दरान् । इति स्तूपस्य ते सौम्य ! मूलोत्पत्तिर्निवेदिता ।।१७३।।
प्रणिपत्य मुनिं भूयः सोमदत्तो व्यजिज्ञपत् । कियत्कालमसावेवमवस्थाता महामुने ! ।।१७४।।
"प्रोचे वाचंयमो भूयः श्रूयतामिदमप्यहो । स्तूपस्यानागतं वृत्तं यदि ते कौतुकं हृदि ।।१७५।।
हरिवंशकुलोत्तंसे द्वाविंशे तीर्थनायके । श्रीमन्नेमिजिनाधीशे सम्प्राप्ते पदमव्ययम् ।।१७६।।
अश्वसेनक्षितिपतेरिक्ष्वाकुकुलजन्मनः । पुत्रः श्रीपार्श्वनाथोऽत्र तीर्थनाथो भविष्यति ।।१७७।।
कौमारेऽपि विरक्तोऽसौ भववासाज्जगत्पतिः । राज्यं तृणमिव त्यक्त्वा दीक्षां कक्षीकरिष्यति ।।१७८।।
घातिकर्म्मक्षयात् प्राप्तकेवलः स महीतलम् । विहरन् मथुरापुर्यामस्यामेव समेष्यति ।।१७९।।
कृते समवसरणे दिव्ये देवगणैरथ । सर्वातिशयसम्पन्नः स्वामी तत्रोपवेक्ष्यति ।।१८०।।
देशनाऽवसरे भाविदुःषमासमयोद्भवम् । वृत्तं स्वामी समाख्याता कषायोत्कर्षदूषितम् ।।१८१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहतेऽन्यत्र तीर्थेशे सा कुबेरा सुराङ्गना । प्रत्यक्षीभूय मथुरासङ्घं विज्ञपयिष्यति ।।१८२।।
सङ्घभट्टारकेणेदं श्रुतं भगवतो वचः । यद् दुःषमानुभावेन लोभान्धा भाविनो जनाः ।।१८३।।
पितरं भ्रातरं पुत्रं सुहृदं स्वामिनं गुरुम् । वञ्चयित्वापि विश्वस्तं ग्रहीष्यन्ति धनं जनाः ।।१८४।।
देवद्रव्याणि देवांश्च निःशूका नास्तिका इव । भक्षयिष्यन्ति निःशङ्कं विक्रेष्यन्ति च दुर्धियः ।।१८५।।
सुवर्णमणिरूपश्च स्तूपः प्रकटकोशवत् । पालितोऽयमियत्कालं जने सत्त्वधने मया ।।१८६।।
अतः परममर्यादे लोके कामं प्रमत्तया । शक्यते न परित्रातुमयमेवं स्थितो मया ।।१८७।।
एवं स्थिते च श्रीसङ्घः प्रसद्याज्ञां ददातु मे । येनेष्टकचितं स्तूपमुपरिष्टात् करोम्यहम् ।।१८८।।
उत्पत्स्यते पदे मेऽत्र या किलान्यापि देवता । अन्तर्हितमिदं स्तूपं सा ध्रुवं पूजयिष्यति ।।१८९।।
युक्तियुक्तं वचस्तस्यास्तच्छ्रुत्वा दीर्घदर्शिना । सङ्घेन समनुज्ञाता सा तथैव विधास्यति ।।१९०।।
कूटाभिमाननटितैः कैश्चित् काले कियत्यपि । नेष्टिकावेष्टनं साधु स्तूपस्यास्येति वादिभिः ।।१९१।।
जराप्रलापोऽयमिति हसद्भिर्वृद्धवारणाम् । पाषाणवेष्टनायैष पुनरुद्घाटयिष्यते ।।१९२।।
ज्ञात्वा व्यतिकरं तत्र पुरोऽस्याः पृथिवीपतिः । अयुक्तलोभसङ्क्षोभः स्वीयानिति भणिष्यति ।।१९३।।
निवेशयत भोः कोशे छित्त्वा स्तूपमिदं मम । समुद्र इव रत्नानामहमेवास्य भाजनम् ।।१९४।।
उपक्रमं करिष्यन्ति छेत्तुं तेऽथ तदाज्ञया । विफलीभूतयत्नाश्च कथयिष्यन्ति तस्य तत् ।।१९५।।
शङ्कातङ्काकुलं चेतो भवतामिति विब्रुवन् । छेत्तुमात्तकुठारः स स्वयमत्रागमिष्यति ।।१९६।।
निशङ्कश्च कुठारेण स स्तूपं प्रहरिष्यति । प्रतीपपतितेनाथ तेनास्य छेत्स्यते शिरः ।।१९७।।
साक्षाद्भूयाथ गगने कोपाटोपारुणेक्षणा । तर्जयन्ती जनान् सर्वान् देवतैवं वदिष्यति ।।१९८।।
रे रे ! मदीयस्तूपस्य मनसाऽपि हि विप्रियम् । चिन्तयिष्यति यस्तस्य करिष्ये गतिमीदृशीम् ।।१९९।।
प्रसादिताऽथ लोकेन त्रस्तेन त्रिदशाङ्गना । सोपालम्भं सङ्घलोकमुद्दिश्यैवं भणिष्यति ।।२००।।
इष्टिकावेष्टनमिदं भवद्भिः किमपाकृतम् । भवत्कृतः प्रमादोऽयं स्तूपस्येत्थमुपस्थितः ।।२०१।।
यद्यस्ति भवतां भक्तिश्चित्ते तत् क्रियतां ननु । इष्टिकावेष्टनस्यास्योपरि पाषाणवेष्टनम् ।।२०२।।
तथेति प्रतिपेदानं सङ्घलोकं सुराङ्गना । क्षमयित्वा तद्वदेव कृत्वा स्तूपं च यास्यति ।।२०३।।
तथास्थितश्च स्तूपोऽयं सोमदत्त ! कलावपि । चिरकालमवस्थाता स्वप्रभावेन रक्षितः ।।२०४।।
प्रभावनार्थं जैनस्य शासनस्येति तौ मुनी । प्रथयामासतुस्तीर्थमित्थं देवतया तया ।।२०५।।
अतस्त्वमपि हे वत्स ! गुरुवत्सल ! शासने । जैने प्रभावनाभङ्गीं तरङ्गयितुमर्हसि ।।२०६।।
श्रुत्वा स्तूपस्य वृत्तान्तं शान्तचित्तान्मुनेरिति । व्यजिज्ञपदिदं हर्षात् सादरः सागराङ्गजः ।।२०७।।"
देवशर्माभिधानस्य पितृमित्रस्य शासनात् । पुरैव भगवन् ! मेऽस्ति जैनधर्मे दृढं मनः ।।२०८।।
उपदेशोऽधुना यस्तु पूज्यपादैः प्रसादितः । स मे सुकृतसौभाग्यतरोरुपरि मञ्जरी ।।२०९।।
यतिष्ये युष्मदादेशात् सविशेषमतः परम् । धर्मकर्मणि किन्त्वेकः प्रसादः क्रियतां मयि ।।२१०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरीपा इवाम्भोधौ धर्मे सन्ति सहस्रशः । उपायास्तेषु कस्यापि कोऽपीह स्यात् फलेग्रहिः ।।२११।।
तस्माद् यः सेवितस्तेषु ममोपायः प्रियङ्करः । स एवादिश्यतां ज्ञानरत्नरत्नाकर ! प्रभो ! ।।२१२।।
प्रणिधानबलात् सोऽपि विज्ञायास्य हितं पुरः । अनुकम्पात्मकं दानमादिदेश विशेषतः ।।२१३।।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिः सोऽस्य प्रतीयेष च शासनम् । उत्पपातान्तरिक्षं च मुमुक्षुरपि तत्क्षणम् ।२१४।।
स्मृतिलग्नैर्मुनेस्तस्य शंसितैः शीतलीकृतः । आजगाम निजं धाम सोमदत्तोऽपि विस्मितः ।।२१५।।
सम्यगाराधयन् देवान् गुरून् धर्मं च निर्म्मलम् । किरन् नेत्रामृतं पित्रोः पौरलोकान् प्रमोदयन् ।।२१६।।
सन्मानयंश्च सुहृदः प्रीणयन् प्रणयिव्रजम् । दीनादिषु विशेषेण कृपादानं प्रवर्त्तयन् ।।२१७।।
दिने दिने नवनवामार्जयन्नूर्जितां श्रियम् । पित्रोर्निर्देशनिरतः स निनायाथ वासरान् ।।२१८।। विशेषकम् ।।
अयुक्तलोभाद् भूपानां व्रतलोपात् तपस्विनाम् । अपूज्यत्वेन देवानामक्षत्रात् क्षत्रजन्मनाम् ।।२१९।।
अधर्म्माचरणात् किं च प्रजानामन्यदा भुवि । ववर्ष नैव कालेऽपि कुनायक इवाम्बुदः ।।२२०।। युग्मम् ।।
दृश्यन्ते केवलं मेघाः काकोलोदरसोदराः । विततानिश्च वात्याभिर्दिश उद्धूलिता इव ।।२२१।।
दवोल्कादारुणैश्चण्डरोचिषः प्रखरैः करैः । दिने दिने ताप्यमाना भ्राष्ट्रभूरिव भूरभूत् ।।२२२।।
न शिरोमात्रकस्यापि छायाकृत् क्वापि पादपः । क्वचित् तृणशलाकापि नाप्यते दन्तशोधनी ।।२२३।।
नवोत्पत्तिं विना पूर्वधान्यक्षयमुपेयुषि । विषसाद जनः सर्वः पर्वणीव मितम्पचः ।।२२४।।
वस्त्राभरणवित्तेषु स्वायत्तेष्वपि देहिनः । विपद्यन्ते विना ह्यन्नमन्नं प्राणाः शरीरिणाम् ।।२२५।।
तिर्यङ्नरकरङ्कास्थिकूटैः सङ्कटतां गता । भीषणा भूरभूत् प्रेतपतिक्रीडाचलैरिव ।।२२६।।
एवंविधेऽपि दुर्भिक्षे भैक्षकुक्षिम्भरौ जने । न व्यहन्यत भक्तेच्छा सोमदत्तेन कस्यचित् ।।२२७।।
अगण्योदीर्णकारुण्यपूर्णचेतास्तदा च सः । सत्रं प्रावर्त्तयद् यानपात्रं दुर्भिक्षवारिधेः ।।२२८।।
दीनानाथेषु तत्राथ भुञ्जानेष्वनिवारितम् । दानेच्छास्पर्द्धयेवास्य प्रसिद्धिर्ववृधे भृशम् ।।२२९।।
दीनकल्पद्रुमं चैनमन्येद्युः सत्रवेश्मगम् । उपांशुपुरुषः कोऽपि भद्राकृतिरदोऽवदत् ।।२३०।।
भो भो महेभ्यपुत्रस्त्वं सोमदत्तोऽसि वा न वा । अलं प्रश्नेन वा दानशक्त्यैवासि निवेदितः ।।२३१।।
कथनीयं किमप्यस्ति मम त्वां प्रति सम्प्रति । कुरु प्रस्तावनां किन्तु प्रथमं हृदयङ्गमाम् ।।२३२।।
सुशर्मपुरमित्यस्ति पुरं भरतभूषणम् । ईशानचन्द्रनामा च तत्र भूपालपुङ्गवः ।।२३३।।
अवन्तिसुन्दरीत्यासीत् तस्याग्रमहिषी प्रिया । तत्कुक्षिसम्भवः पृथ्वीचन्द्रनामास्ति नन्दनः ।।२३४।।
उदारचरितः शान्तः परनारीसहोदरः । पराक्रमधनः सर्वशस्त्रशास्त्रकृतश्रमः ।।२३५।।
सयोगीव परमात्मानं पितरं पितृवत्सलः । सिषेवे पृथिवीचन्द्रः सान्द्रभक्तिरहर्निशम् ।।२३६।।
अनङ्गसुन्दरीत्यस्ति तस्य राज्ञः प्रिया परा । सोमचन्द्राभिधानश्च तस्यामपि तनूद्भवः ।।२३७।।
अन्येद्युर्दैवदुर्योगाद् देवी साऽवन्तिसुन्दरी । व्यालेन वनवल्लीव शूलेनोन्मथिता भृशम् ।।२३८।।
प्रत्यङ्गसङ्गतः शूलः प्रतिकूलप्रतिक्रियाम् । न दुर्जन इवामंस्त क्रियमाणामुपक्रियाम् ।।२३९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राणनाथे तटस्थेऽपि विनाथेव तदाऽथ सा । तद्गुणावर्जितेनेव कालेनापि हृता बलात् ।।२४०।।
तदूर्ध्वदेहिकादूर्ध्वमपि भूमीभुजङ्गमः । कालं कियन्तमप्यस्थाद् दुःस्थस्तच्छोकशङ्कुना ।।२४१।।
क्रमात् प्रववृतेऽनङ्गसुन्दर्या नृपतेर्मनः । प्रेम दर्शनसारं हि प्रायेण न गुणानुगम् ।।२४२।।
तया वशीकृतमतिर्मन्दं मन्दं महीपतिः । सोमचन्द्रं सुतं तस्याः सप्रसादमुदैक्षत ।।२४३।।
तन्मातापि भृशं भर्तृप्रसादमदविह्वला । अवन्तिसुन्दरीसूनोरपमानमदर्शयत् ।।२४४।।
क्रमात् पल्लवन्मन्दरागमात्मनि मानसं । विदन्नपि पितुर्भक्तिं पृथ्वीन्दुर्विदधेऽधिकम् ।।२४५।।
सोदर्येण नरेन्द्रस्य ब्रह्मचन्द्रेण भूभुजा । जज्ञे भृगुपुरेशेन वृत्तान्तोऽयं क्रमादथ ।।२४६।।
प्रधानपुरुषान् सोऽथ प्रेषयित्वा नृपान्तिके । आह्वास्त पृथिवीचन्द्रं स्नेहवृत्त्या निजान्तिके ।।२४७।।
प्रेरितोऽनङ्गसुन्दर्या तं प्रति प्रतिकूलया । विससर्ज महीनाथः पृथ्वीन्दुं सपरिच्छदम् ।।२४८।।
शेषामिव शिखाग्रेऽथ पितुराज्ञां निधाय सः । सान्तःपुरपरीवारः प्रस्थितो भृगुपत्तनम् ।।२४९।।
अकुण्ठां दर्शनोत्कण्ठां पितृव्यस्य भृशं वहन् । स यावदाययौ वर्त्म कियदप्यवनीन्द्रसूः ।।२५०।।
दुष्कालजलधिस्तावद् दुष्कल्लोलोऽयमन्तरा । विपाक इव पापस्य प्रजानां समुपस्थितः ।।२५१।।
प्रक्षीणे पूर्वपाथेये पृथिवीनाथनन्दनः । पुष्कलेनापि निष्केन क्वचिदन्नमनाप्नुवन् ।।२५२।।
आतृतीयदिनादत्र निरन्नः समुपागमत् । उपस्तूपं स्वकीयं च स्कन्धावारं न्यवीविशत् ।।२५३।। युग्मम् ।।
तत्र स्थितस्त्वदीयं स कीर्त्तिकोलाहलं कलम् । शुश्राव बन्दिवृन्देभ्यः सत्रदानसमुद्भवम् ।।२५४।।
तस्मात् सम्भाव्य धान्यस्य सञ्चयं तव वेश्मनि । अङ्गुलीयं लक्षमूल्यं दत्त्वाऽस्मि प्रेषितस्त्वयि ।।२५५।।
मुद्दारत्नमुपादाय तदेतत् सत्त्वसंश्रय ! । विपत्पाथोनिधेरस्मात् समुद्धर मम प्रभुम् ।।२५६।।
इत्युक्त्वा चार्प्ययामास तत् तस्मै सोऽङ्गुलीयकम् । समुन्मीलत्प्रभाजालजटालितनभोऽन्तरम् ।।२५७।।
स्थाने महात्मना तेन मुनिना मे कृपालुना । समादिष्टं कृपादानं दीनानाथोद्धृतिक्षमम् ।।२५८।।
अन्यथा क्व महीनाथनन्दनस्येदृशी दशा । क्व मे नैगममात्रस्य प्रार्थनेत्थं प्रथीयसी ।।२५९।।
द्वारेणानेन तस्मान्मे कोऽप्ययं समुपस्थितः । कल्याणकन्दलीकन्द-सान्द्रसम्पत्फलोदयः ।।२६०।।
विचिन्त्येति चिरं चित्ते सोमदत्तस्तमब्रवीत् । भद्र ! तिष्ठतु मुद्रेयं तवैव करगोचरे ।।२६१।।
एहि तत्रैव गच्छावस्तव भर्तुः पदान्तिके । इत्युक्त्वा सह तेनासौ कुमारशिबिरं ययौ ।।२६२।।
तत्र च द्वारपालेन निवेदितसमागमः । स विवेश नरेशाङ्गजन्मनः संसदन्तरम् ।।२६३।।
चन्द्रवज्जनितानन्दं पृथ्वीचन्द्रं नृपात्मजम् । स्निग्धं बन्धुमिवालोक्य मुमुदे सागराङ्गजः ।।२६४।।
सोमदत्तं च सम्प्रेक्ष्य कुमारोऽपि हि पिप्रिये । निर्निबन्धनबन्धू तौ सुधांशुकुमुदे इव ।।२६५।।
प्रणामप्रवणं सोममालिलिङ्ग नृपाङ्गजः । प्रतिपत्तिः सतां प्रायः पात्रौचित्यात् प्रवर्त्तते ।।२६६।।
दर्शयन्निव नैर्मल्यं मनसो दशनांशुभिः । चकार कुशलालापं कुमारः सागराङ्गजे ।।२६७।।
श्रुतपूर्वी कुमारस्य दुर्दशामथ सोऽब्रवीत् । कथं नु कुशलं मेऽस्तु त्वयीत्थं नाथ ! दुःस्थिते ।।२६८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृथा धान्योत्थसूष्माणं कोष्ठागाराणि तानि मे । वहन्ति नरशार्दूल ! त्वय्येवं विकलीकृते ।।२६९।।
तत् प्रसीद सह स्वेन परीवारेण मद्गृहम् । अलङ्कुरु नराधीशसूनो ! निजमिवान्वयम् ।।२७०।।
अभिधायेति मूर्द्धानं निधाय पदपद्मयोः । निजहर्म्योन्मुखं चक्रे कुमारं सागरात्मजः ।।२७१।।
अहो निष्कारणं प्रेम चिरं भक्तिरकृत्रिमा । महदाश्चर्यमौदार्यं कौतुकायोपकारिता ।।२७२।।
मनुष्यजन्मनोऽप्यस्य प्रकृतिः काप्यमानवी । अनेन नररत्नन रत्नगर्भैव भूरियम् ।।२७३।।
इत्यादि तद्गतं चित्ते चिन्तयन्नृपनन्दनः । चचाल सपरीवारः सोमदत्तगृहं प्रति ।।२७४।।
कुमारोऽग्रेसरान् कृत्वा प्रधानपुरुषान् स्वयम् । पुरो गत्वा पितुः सोमस्तदशेषं व्यजिज्ञपत् ।।२७५।।
अतुल्यात् पुत्रवात्सल्यात् प्रचुराज्ञात्रसङ्ग्रहात् । विजघ्ने वाञ्छितं नास्य सागरेणापि तत्तदा ।।२७६।।
अभ्युत्तस्थौ समायान्तं कुमारमथ सागरः । ससम्भ्रमं कुमारोऽपि पितृवत्तमुपाचरत् ।।२७७।।
प्रियालापविनोदेन तस्थुषोः क्षणमेतयोः । सिद्धां रसवतीं सूदपतिरेत्य व्यजिज्ञपत् ।।२७८।।
महत्या प्रतिपत्त्याथ भोजयामास सागरः । कुमारं सपरीवारं विविधैर्भोज्यवस्तुभिः ।।२७९।।
भोजनान्ते च सत्कृत्य विचित्रैर्वस्त्रभूषणैः । पथि पाथेयसौख्यार्थमन्वशादिति नन्दनम् ।।२८०।।
वत्स ! गच्छत्रितः स्थानं वाञ्छितं नृपनन्दनः । यथा सुखमवाप्नोति तथा पाथेयमर्पय ।।२८१।।
समाकर्ण्य च तत् सोमः सौमनस्यं दधेऽधिकम् । उत्कण्ठिता च प्रथमं मयूरेण च कूजितम् ।।२८२।।
अथोष्ट्र-[4]वामी-वृषभलुलायपणपृष्ठगाः । गोणीरगणिता धान्यैः सोमः शीघ्रमपूपुरत् ।।२८३।।
कुमारोऽपि हि सम्प्रेक्ष्य तत्कृतां तामुपक्रियाम् । कोशाध्यक्षेण सकलं निजं कोशमनाययत् ।।२८४।।
निधाय तं पुरः प्रीत्या समुद्दिश्य च तावुभौ । कुमारः प्रोचिवानेवमानन्दाश्रुकणान् किरन् ।।२८५।।
क्रियते विधुरेऽमुष्मिन् न यत् पित्रा न बान्धवैः । तदसम्बन्धबन्धुभ्यां भवद्भ्यां मे विनिर्ममे ।।२८६।।
न तत् त्रिभुवनेऽप्यस्ति मदायत्तं वितीर्य यत् । अनृणोऽहं भविष्यामि भवतोरुत्तमर्णयोः ।।२८७।।
तथापि गृह्यतामेष कोशः कृत्स्नोऽपि मेऽधुना । एतावतैव मन्येऽहं मनागुच्छ्वासमात्मनः ।।२८८।।
वदन्तमिति सौजन्याज्जगतीपतिनन्दनम् । समस्तौचित्यचतुरः सागरः प्रोचिवानिति ।।२८९।।
एतावदेव किं वत्स धत्से भाराय मानसे । तव सोमस्य चायत्ता नन्वेता मे विभूतयः ।।२९०।।
त्वयि सौजन्यलाभेन किं वा नैवार्जितं मया । विजयाय व्रजासाध्यान् साधय क्षेममस्तु ते ।।२९१।।
इति संस्थाप्य सस्नेहं कुमारं सोममालपत् । वत्स ! गच्छ निजं बन्धुमनुव्रज नृपात्मजम् ।।२९२।।
इत्युक्तः सोमदत्तोऽथ समं क्षितिपसूनुना । जगाम शिबिरं तास्ताः प्रथयन् प्रेमसङ्कथाः ।।२९३।।
कुमारोऽपि प्रयाणाय तदा भेरीमताडयत् । विससर्ज च वाचैव सोमदत्तं हृदा न तु ।।२९४।।
स्मर्त्तव्यः समये क्वापि जनोऽयं नृपनन्दन ! । सगद्गदमिति प्रोच्य सोमः स्वगृहमाययौ ।।२९५।।

---

4. **वामी**=अश्वः । वमति गर्भं वामी, ज्वलादित्वात् णे गौरादित्वात् ङी, वातेर्वा "अर्तीरि" (उणा. ३३८) इति मः । - अ. चि. ना. स्वो. वृ. १२३३ । अथोष्ट्रवामीशतवाहितार्थः । - रघु० ५/३२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारोऽपि तदा चक्रे प्रयाणं बहिरात्मना । सोमसागरयोर्मूले स्थितः किन्त्वन्तरात्मना ।।२९६।।
अखण्डैः खण्डितारातिभुजदर्पः प्रयाणकैः । कियद्भिरपि स प्राप भृगुकच्छमतुच्छधीः ।।२९७।।
बहिरावासितं चैनममन्दानन्दमेदुरः । प्रत्युद्ययौ ब्रह्मचन्द्रः समुद्र इव शीतगुम् ।।२९८।।
पुत्रप्रीत्या नरेन्द्रेण ब्रह्मचन्द्रेण वीक्षितः । स तत्र दिवसान् निन्ये वन्येभ इव दुर्द्धरः ।।२९९।।
स्पृहयन् परमं ब्रह्म ब्रह्मचन्द्रोऽप्यजिह्मधीः । समयेऽस्मै ददौ राज्यं वानप्रस्थोऽभवत् स्वयम् ।।३००।।
पृथ्वीचन्द्रोऽपि निस्तन्द्रनयपौरुषभूषणः । शशास लीलया राज्यं स्वाराज्यमिव वासवः ।।३०१।।
इतश्च मथुरापुर्यामनार्यचारितोपमम् । तेजस्वितेजशमनं शान्तं दुर्भिक्षदुर्दिनम् ।।३०२।।
श्रुत्वेव सोमदत्तस्य भूरिवर्षमखण्डितम् । ववृषुः स्पर्द्धयेवाऽस्य वारि वारिधराः परम् ।।३०३।।
वृक्षकक्षलतागुल्म - पत्रपुष्पफलाकुला । वयस्तम्भनविद्येव जज्ञे भूमिः पुनर्नवा ।।३०४।।
सरोवरसरित्कुण्ड - ह्रदपल्वलनिर्झराः । पूर्णा ददृशिरे पुण्यवतामिव मनोरथाः ।।३०५।।
अकुतोभयसञ्चारे पथि पान्थपरम्पराः । विष्वगस्खलितं भ्रेमुर्नभसीद्धविहङ्गमाः ।।३०६।।
सस्यगोरसबाहुल्या - दुल्फुल्ला वल्लवस्त्रियः । हल्लीसकानि गोष्ठेषु ददुर्मुदितमानसाः ।।३०७।।
एवंविधे प्रवृत्तेऽथ सुभिक्षे भिक्षुबान्धवे । प्रणम्य पितरं सोमं कोमलोक्तिरदोऽवदत् ।।३०८।।
तात सन्त्येव वित्तानि प्रभूतानि पुरैव ते । भविष्यन्ति च भूयांसि भवत्पुण्यप्रभावतः ।।३०९।।
कराले किन्तु कालेऽस्मिन् गते बहुतरं वसु । त्वत्प्रसादमदाध्मातचित्तेन व्ययितं मया ।।३१०।।
अतो रत्नाकराल्लक्ष्मीं लक्ष्मीकुलगृहोपमात् । आक्रष्टुमहमिच्छामि मन्त्रवादीव देवताम् ।।३११।।
ततः कुरु प्रसादं मे पूरयामुं मनोरथम् । विघ्ना मम विलीयन्ताम् तवैव शुभचिन्तया ।।३१२।।
श्रुत्वा सागरदत्तस्तत् सनयं तनयोदितम् । उवाच वत्स ! साध्वेव तवार्य ! श्रीसमुद्यमः ।।३१३।।
अनुद्यमहते पुंसि विरज्यन्ते ध्रुवं श्रियः । कुलीना अपि जीवेशे नपुंसक इव स्त्रियः ।।३१४।।
उद्यमः साधयत्यर्थं शमो धर्ममिवोत्तमम् । शमोद्यमविहीनानां दूरे धर्मार्थसिद्धयः ।।३१५।।
किन्तु पुत्र ! त्वमेवैको नन्दनश्चित्तनन्दनः । मम तेन प्रमुग्धोऽस्मि त्वयि देशान्तरोद्यते ।।३१६।।
तथापि यदि निर्बन्धस्तत् साधय समीहितम् । इदमेव वयः स्त्रीणां श्रीणामप्यनुरञ्जने ।।३१७।।
प्राप्येति पितुरादेशं निधानमिव निर्द्धनः । मुमुदे सोमदत्तोऽन्तः कोऽनुकूले न हृष्यति ।।३१८।।
पण्यान्यथ तदैवासौ विविधान्याददे धनी । मनीषितं भवत्यर्थैः सञ्चितैः सुकृतैरिव ।।३१९।।
यानवाहनवर्त्माद्धा - पदातिभृतकादिकम् । जज्ञेऽनुकूलमेवास्य सर्वं सुकृतकर्मणः ।।३२०।।
ततः समग्रसामग्रीसम्भृतः शोभने दिने । देवान् गुरून् नमस्कृत्य पितृपादान्तिकं ययौ ।।३२१।।
कृतप्रणामं शिरसि तं समाघ्राय सागरः । कराङ्गुलीकिशलयैरङ्गमङ्गमनुस्पृशन् ।।३२२।।
जगाद सादरं स्नेहात् तनयं विनयानतम् । प्रकृत्या दुस्तरः पुत्र ! संसार इव सागरः ।।३२३।।
प्रायः प्रयतचेतोभिर्मुद्रितेन्द्रियचापलैः । प्रमादरहितैः पुम्भिः प्राप्यतेऽस्य परं तटम् ।।३२४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वयाऽपि तत् तथा पुत्र यतनीयमतः परम् । यथा न बाध्यते धर्म्मः कुलं न मलिनीभवेत् ।।३२५।।
बान्धवा न विषीदन्ति न हसन्ति च दुर्जनाः । यथोपचीयते लक्ष्मीः कीर्त्तिर्नैवापचीयते ।।३२६।।
वपुर्न हीयते पुण्यपुरुषार्थनिबन्धनम् । अविघ्नमस्तु ते सर्वमङ्गलायतनं भव ।।३२७।।
धृत्वा सहाशिषा शिक्षां मूर्ध्नि सोमः पितुस्ततः । न तातपादैः स्वल्पोऽपि धार्यः खेदो मदाश्रयः ।।३२८।।
इत्युदित्वा च नत्वा च जनकं जननीमपि । प्रतस्थे शकुनैः पुण्यैः प्रेर्यमाणः पदे पदे ।।३२९।।
पटहाघोषणोद्युक्तैः पान्थतीर्थिकयात्रिकैः । सेवितः स्वस्वकामेन रसेन्द्र इव वार्त्तिकैः ।।३३०।।
सलीलं चलतां विष्वक् वृषादीनां सहस्रशः । पटुघण्टारवैरेव त्रासयन्रहितान् पथि ।।३३१।।
तुरगादिखुरोत्खातैः पांशुव्रातैः पयःपतिम् । स्थलीकुर्वन्निव स्वस्य सुखसञ्चारहेतवे ।।३३२।।
चलन्नचलितः सत्त्वान्मार्गमार्गणकामधुक् । अलिप्तः पातकैराप तामलिप्तपुरं क्रमात् ।।३३३।। कलापकम् ।।
[5]उपदाभिरुदाराभिराभिमुख्यमवापितात्[6] । तत्रत्यनृपतेः प्राप्य प्रसादमुदितोदितम् ।।३३४।।
दत्त्वा पयोनिधेरर्घमनर्घ्यं शोभने दिने । स्वीकृत्य यानपात्राणि लघुपातीनि पाथसि ।।३३५।।
निधाय तेषु पण्यं च स्वर्णकोटिद्वयीमितम् । बोहित्थमर्थिकल्पद्रुरारुरोहाऽथ स स्वयम् ।।३३६।। विशेषकम् ।।
पवनेनानुकूलेन शकुनैश्च प्रदक्षिणैः । स्वरोदयेन सौम्येन समुत्साहेन चेतसः ।।३३७।।
पक्षैरिवाततैः श्वेतपटैः पटुभिरम्भसि । पपात पोतः पाथोधेः पन्नगेन्द्र इव द्रुतम् ।।३३८।। युग्मम् ।।
[7]अरित्रैर्विक्षिपन्नग्रपादैरिव पयः क्रमात् । तरन् कूर्म इव प्राप पोतस्तटमभीप्सितम् ।।३३९।।
चिरान्मृगयतां मार्गं स तत्तीरनिवासिनाम् । ददौ पण्यानि लाभं च लेभे दशगुणं ततः ।।३४०।।
कृतकृत्यस्ततः कैश्चिद्दिवसैः सागराङ्गजः । पुनः पूर्वक्रमेणैव चचाल जलवर्त्मना ।।३४१।।
भावयन् विविधान् भावान् द्वीपपाथोधिमध्यगान् । यानेन मनसेवासौ तरसा तीरमासदत् ।।३४२।।
यावन्निर्यामकैरेतत् बोहित्थं तीर्थवर्त्मनि । क्षणेन तामलिप्तीये किल सञ्चारयिष्यते ।।३४३।।
तावदीशानदिग्भागादुल्ललास महाबलः । आन्दोलयन् यानपात्रं तरुपत्रमिवार्ण्णवे ।।३४४।।
ततः सितपटाः पोतनियुक्तैर्मुकुलीकृताः । पक्षीव पक्षसङ्कोचात् किञ्चिन्मन्दमभूच्च तत् ।।३४५।।
तथापि प्रतिकूलेन प्रेर्यमाणं नभस्वता । तीरे नीरेशितुर्गत्वा कियतीमपि तद्भुवम् ।।३४६।।
प्रविष्टं भृगुकच्छस्य तीर्थे वारिणि नार्मदे । [8]वहित्रं सोमदत्तस्य चित्तं चिन्तार्णवे पुनः ।।३४७।। युग्मम् ।।

---

5. **उपदा**=दान-भेट इति भाषायाम् । (उप+दा+अङ) उपदीयते इति उपदा । - अ. चि. ना. स्वो. वृ. ७३७ ।।
6. **अवापित**=प्राप्त करावेल इति भाषायाम् । - श. र. म पृ. २२० ।।
7. **अरित्रं**=कोटिपात्रं । वहाणनुं सुकान लंघर इति भाषायाम् । - अ. चि. ना. स्वो. वृ. ८७९ । इयर्ति 'अनेन नौः इति अरित्रा' । - लु.-धू.-सु. (५/२/८७) सि. हे. इति इत्र प्रत्ययः ।।
8. **वहित्रम्**=पोतः । उह्यतेऽनेन वहति जले वा वहित्रम् । "बन्धि वहि" (उणा० ४५९) इति इत्रः । पोत शब्दार्थे । - अ. चि. ना. स्वो. वृ. ८७५ ।। "विहितवहित्रचरित्रमखेदम्" - गीतगोविन्दे ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोलकल्लोललीढाभ्रं भ्राम्यत्तिमिकुलाकुलम् । लीलया जलधिं तीर्त्वा निमग्ना गोष्पदेऽपि हा ।।३४८।।
आ स्वभावमहेच्छस्य महोत्साहस्य धीमतः । उदारस्य प्रकृत्यैव प्रकृत्या प्रियवादिनः ।।३४९।।
परोपकृतिदक्षस्य दाक्षिण्यैकमहोदधेः । किमस्यापि हि सोमस्य प्रतिकूलं भविष्यति ।।३५०।।
अहो दैवस्य दौरात्म्यं ही किमेतदुपस्थितम् । परतीर्थगते पोते सर्वस्वमपि यास्यति ।।३५१।।
इति खेदाद् ब्रुवाणेऽथ पोतमध्यगते जने । विफलीकृत्य यत्नं तल्लग्नं यानं द्रुतं तटे ।।३५२।। कुलकम् ।।
प्रसारितमुखैर्दूरात् भृगुपत्तनशौल्किकैः[9] । अपतीर्थोपगं यानमिति प्रमुदितान्तरैः ।।३५३।।
क्षुद्रपोतसमारूढैस्तद् वहित्रं समन्ततः । पदातिपरिवेषेण भूयिष्ठेनैत्य वेष्टितम् ।।३५४।। युग्मम् ।
विमृशद्भिश्च पोतान्तः सारवस्तुसमुच्चयम् । अलक्षि दक्षैरक्षेपात् कोटीविंशतिसम्मितम् ।।३५५।।
अहो पृथूनि पुण्यानि पृथ्वीचन्द्रस्य भूपतेः । अक्लेशेनैव कोशोऽयं यस्येत्थं समुपस्थितः ।।३५६।।
इति ब्रुवाणैस्तैः प्रैषि प्रधानपुरुषः क्षणात् । उपभूपं स्वरूपस्य तस्य बोधाय धीधनैः ।।३५७।। युग्मम् ।।
तदा च सोमदत्तस्य चक्षुः पुस्फोर दक्षिणम् । समस्तशस्तविस्तारपुरस्कारैकदक्षिणम् ।।३५८।।
श्रुतपूर्वश्च तन्नाम पृथ्वीचन्द्रस्य भूपतेः । किं स्यात् स एव पृथ्वीन्दुर्यः पुरा मथुरामगात् ।।३५९।।
श्रुतं चेदं तदैवासीत् मया तस्मात् सुमेधसः । यदयं पृथिवीनाथ - सूनुर्भृगुपुरं गमी ।।३६०।।
अतोऽस्ति तावद् घटना शकुनं चोत्तमं मम । तत्त्वतस्तु किमप्यत्र न जाने यद् भविष्यति ।।३६१।।
एवं विमृशतस्तस्य सोमदत्तस्य विस्मयात् । वासवश्रीरुपेयाय वेलाकूलमिलापतिः ।।३६२।। कलापकम् ।।
प्रदेशे पाविते तत्र जलैर्मेकलकन्यया । उत्तीर्य सिन्धुरस्कन्धात् भेजे भद्रासनं नृपः ।।३६३।।
परिवृत्य च राजानं विष्वग् ऋक्षगणा इव । मण्डलेशादयस्तस्थुस्तदास्यनिहितेक्षणाः ।।३६४।।
ततः पोतपतिं भूपः स्वसमीपमनाययत् । विधाय यानपात्रस्य निजाप्तैः परिरक्षणम् ।।३६५।।
क्षणादगणितैरात्मपादातैः परिवेष्टितम् । दत्तनेत्रपुरः सोमदत्तं नृपतिरैक्षत ।।३६६।।
आः कुतोऽयमिति प्रीतिपूरविस्फारितेक्षणः । ससम्भ्रममथोत्तस्थौ पृथ्वीनाथस्तदासनात् ।।३६७।।
सोमदत्तोऽपि निश्चित्य भूपतिं तं तथैव हि । यावत् प्रणन्तुमारेभे तावत् भूपेन सस्वजे ।।३६८।।
अन्तःप्रवेशनायेव गाढमालिङ्ग्य भूभुजा । आसनार्द्धे निजे स्नेहाद् बलादपि निवेशितः ।।३६९।।
किमेतदिति सम्भ्रान्तैर्वीक्ष्यमाणः क्षितीश्वरैः । भ्रातर्व्यतिकरः कोऽयं कुशलं पितुरावयोः ।।३७०।।
कथं तवेहागमनं विलुप्तं किमपीह ते । इति राज्ञा स्वयं पृष्टः सोमदत्तो व्यजिज्ञपत् ।।३७१।।
कुशलं देव तातस्य देवपादप्रसादतः । व्यवहारस्वरूपेण गृहान्मम विनिर्गमः ।।३७२।।
आयतस्तामलिप्तीये तीर्थे यानं विशन्मम । प्रतिकूलेन वातेन प्रवेशितमिमां भुवम् ।।३७३।।
विलुप्तं च न मे किञ्चिदद्य यावदिह प्रभो ! । पुरस्तु देवपादानां विदितं सर्वमप्यदः ।।३७४।।
सप्रसादमथावादीन्नृपः सोम ! समीरणम् । अनुकूलमपि ब्रूषे प्रतिकूलममुं कथम् ।।३७५।।

9. **शौल्किक** - शुल्के नियुक्तः शौल्किकः । शुल्काध्यक्ष इति अर्थे । - अ. चि. ना. स्वो. वृ. ७२४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्काऽन्यथा मथुराभूमिः क्क मे तत्र समागमः । क्क तादृगुपकारश्च समये तत्र नस्तव ।।३७६।।
क्क मे नृपपदावाप्तिः क्क चेहागमनं तव । सर्वथाप्यनुकूलोऽभून्ममैवायं समीरणः ।।३७७।।
नेदमीशानचन्द्रान्मे जन्म सागरतः खलु । ब्रह्मचन्द्रात्र मे राज्यं सोमदत्तात्तु तत्त्वतः ।।३७८।।
इदं राज्यममी प्राणाः सर्वमेतत्तवैव मे । भ्रातर्दिष्ट्याद्य जातोऽसि नेत्रयोरतिथिर्मम ।।३७९।।
इति भूपः समालप्य तं कृतज्ञशिरोमणिः । सर्वं तत्पूर्व्ववृत्तान्तं सामन्तादीनबोधयत् ।।३८०।।
धुन्वानास्तेऽपि मूर्द्धानं प्रोचुर्विकचलोचनाः । स्थानेऽत्र स्वामिनस्तर्हि प्रतिपत्तिरकृत्रिमा ।।३८१।।
काकिणीमपि मन्यन्ते कृतज्ञाः कोटिसम्मिताम् । किं पुनः समये तस्मिंस्तादृशं त्वादृशाः प्रभो ! ।।३८२।।
साम्प्रतं साम्प्रतं तस्मात् स्वामिनः समुपस्थितः । अस्मिन् प्रत्युपकाराय पोतप्रत्यर्पणक्षणः ।।३८३।।
व्याजहार धराधीशः स्मितपल्लविताधरः । कियत् पोतार्पणं प्राणदानेऽप्यस्यास्मि नानृणः ।।३८४।।
सुबह्वप्यधुना क्लृप्तं कृते प्रतिकृतं भवेत् । उपचक्रे त्वसौ पूर्वमकृतोपकृतिर्मयि ।।३८५।।
सांयात्रिकपतिः प्रोचे कीटमात्रेण किं मया । विदधे देवपादानां यन्मूलेयं मम स्तुतिः ।।३८६।।
स्तुत्यः स तत्त्वतः स्वामिन् महात्मा मुनिपुङ्गवः । अनागतमिदं यस्य सङ्क्रान्तं ज्ञानदर्पणे ।।३८७।।
एवं वदत एवास्य द्युतिद्योतितदिग्मुखः । गगनाग्रे स एवागादनगारगणाग्रणीः ।।३८८।।
किमेतदिति सम्भ्रान्तैः क्षितिनाथादिभिस्ततः । अभ्युत्थितस्तपोराशिरासितश्च नृपासने ।।३८९।।
सोमदत्तस्ततः प्राह देव ! सोऽयं महामुनिः । इदानीं देवपादानां विज्ञप्तं यद्व्रतं मया ।।३९०।।
सविशेषं ततः पादौ मुनेरवनिवासवः । प्रणनाम नमन्मौलिः समं सामन्तमन्त्रिभिः ।।३९१।।
अथ बद्धाञ्जलिर्मूर्ध्नि सोमः संयमिनं जगौ । ममाभूत् तद् दयादानममोघमघनाशनम् ।।३९२।।
वचोमृतं विमुञ्चन्ति हेलया यन्महोव्रताः । तेनैव जीवति कुलं सकलं घातकार्थिनाम् ।।३९३।।
मुनिराह "महाभाग ! गुह्यनागसधर्म्मणः । अणोरपि हि जैनस्य धर्म्मस्याऽस्य फलं महत् ।।३९४।।
अनुस्मरणमप्यस्य राजन् ! धर्म्मस्य शर्म्मणे । किं पुनः सकलक्लेशनाशनं समुपासनम् ।।३९५।।
समानेऽपि हि मानुष्ये समानेऽपीन्द्रियव्रजे । सेव्यसेवकभावोऽयं धर्माधर्मनिबन्धनः ।।३९६।।
अधर्मपरिहारेण तवाप्यवनिवासव ! । युक्तो धर्म्मोद्यमस्तस्मात्तस्य मूलमिदं पुनः ।।३९७।।
अष्टाभिरधिकैर्दोषैर्दशभिर्दूरमुज्झिते । अनन्तदर्शनज्ञाने जिने देवत्ववासना ।।३९८।।
हिंसादिरहिते सत्यवादिनि स्तेयवर्जिते । ब्रह्मचारिणि निःसङ्गे गुरौ च गुरुभावना ।।३९९।।
उत्तमैः पुरुषैः प्रोक्ते तद्विधैरेव सेविते । अविसंवादनिर्व्याजे धर्मे सद्धर्मशेमुषी ।।४००।।
इदं रत्नत्रयं राजन् हृदयाभरणं कुरु । येनासि मुक्तिकामिना सुभगम्भावुकः सदा ।।४०१।।
इदं मोक्षतरोर्बीजमिदं विश्वेऽपि दुर्लभम् । इदमेवास्य धर्म्मस्य रहस्यमविनश्वरम् ।।४०२।।
भूर्भुवःस्वःश्रियस्तास्ताः फलमस्यानुषङ्गिकम् । मुख्यं पुनरसङ्ख्येयसौख्यं मोक्षं प्रचक्षते ।।४०३।।
चत्वार्यमूनि चाङ्गानि दुर्लभानीह देहिनाम् । मानुषत्वं श्रुतिः श्रद्धा संयमे वीर्यमुत्तमम् ।।४०४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः समग्रामग्राम्यसामग्रीं दुर्लभामिमाम् । समासाद्यानवद्येन धर्मेण सफलां कुरु ।।४०५।।"
इति वाक्यामृतैस्तस्य शान्तमिथ्यात्वपावकः । सम्यक्त्वमुत्तमं तत्र स भेजे भूभुजां वरः ।।४०६।।
मुनिं सोमस्ततोऽवादीदहो भाग्यानि भूपतेः । अस्यैवानुग्रहायाऽत्र भवतां नूनमागमः ।।४०७।।
मुनिराह तवेयं भोः प्रियाप्यवितथैव वाक् । इदमेवैकमत्राभून्ममागमनकारणम् ।।४०८।।
यदस्य भूपतेरासीज्जननी पुत्रवत्सला । अवन्तिसुन्दरी नाम सुशर्माधिपतेः प्रिया ।।४०९।।
अन्यदा शूलरोगेण महता हतचेतना । विजयार्द्धवने साऽभूत् प्रचण्डा व्यन्तरामरी ।।४१०।।
मिथ्यात्वमोहिता भूरिभूतघातोपयाचितैः । पापानि बध्नती सोम ! सा मयाऽद्य प्रबोधिता ।।४११।।
अभ्यर्थितस्तया चाहं भगवन् ! भृगुपत्तने । पुत्रं मे पृथिवीचन्द्रं प्रसीद प्रतिबोधय ।।४१२।।
राज्ञोऽस्य योग्यतां धर्मे ज्ञात्वा चाहमिहागमम् । सुक्षेत्रे बीजवज्ज्ञे सफलं चात्र मे वचः ।।४१३।।
सोमः संयमिनं भूयः प्राञ्जलिः प्रोचिवानिति । स्वस्याऽत्राऽऽगमने हेतुं द्वितीयमपि शंस मे ।।४१४।।
व्याजहार यतिश्रेष्ठः श्रूयतां श्रेष्ठिनन्दन ! । आसीत् तीर्थपतिः पूर्वं सुव्रतो मुनिसुव्रतः ।।४१५।।
सोऽन्यदा मेदिनीपीठे विहरन्नर्हतां वरः । अत्रत्यभूपतेरश्वं प्रबोधार्हमबुध्यत ।।४१६।।
अतिक्रम्य ततः षष्टियोजनप्रमितां क्षितिम् । इहाऽऽगात् कृपया तस्य महान्तः क्व न वत्सलाः ।।४१७।।
तं च तत्रत्यलोकं च लोकोत्तरगुणोत्तरः । विधाय बोधदानेनाध्वन्यं निर्व्वाणवर्त्मनि ।।४१८।।
विजहारान्यतः स्वामी तदाप्रभृति चाभवत् । इदमश्वावबोधाख्यं तीर्थं तत्पदपावनम् ।।४१९।।
तस्य प्रतिकृतिं पुण्यां भृगुपत्तनमध्यगाम् । आगां सौम्य ! नमस्कर्तुमिदं कार्यमिहापरम् ।।४२०।।
ततः क्षितिपतिः स्फीतप्रीतिभावितमानसः । प्रार्थयामास निर्ग्रन्थमिति प्रस्तावसुन्दरम् ।।४२१।।
अनुग्रहः कृतस्तावत् पूज्यपादैः पुरैव मे । साम्प्रतं मत्पुरस्यापि प्रवेशेन स जायताम् ।।४२२।।
वन्द्यपादैः सहैवाद्य देवदर्शनमस्तु मे । प्रकटीभूतसद्दृष्टेर्मिथ्यात्वपटलक्षयात् ।।४२३।।
तथैव प्रतिपेदाने मुनौ नृपतिपुङ्गवः । प्रतस्थे पादचारेण दत्तहस्तः स्वयं मुनेः ।।४२४।।
सुहृदा सोमदत्तेन समं धर्मकथापरः । प्रविवेश पुरं भूपः परीतः परितो नृपैः ।।४२५।।
प्रभावनानटीं जैनशासनस्याथ नर्त्तयन् । सुव्रतस्वामिनश्चक्रे पूजाप्राग्भारमद्भुतम् ।।४२६।।
भावस्तवाधिकारित्वात् मुनिस्तमनुमोदयन् । वन्दित्वा विधिवद् देवान् स्तोतुमित्युपचक्रमे ।।४२७।।
"सुव्रतस्वामिनः स्तौमि पादपद्मद्वयीं मुदा । यत्र त्रिभुवनस्यापि कमला वरलायते ।।४२८।।
क्वेन्दुसौन्दर्यलुण्टाकी तावकी गुणपद्धतिः । स्तोता पोत ! भवाम्भोधौ क्व मादृक् कश्मलाशयः ।।४२९।।
तथाप्यन्तर्गतां भक्तिं व्यक्तीकर्तुं ममेच्छतः । साहसिक्यमिदं नाथ ! नोपहासाय जायते ।।४३०।।
नमस्त्रिभुवनाभोगयोगक्षेमविधायिने । केवलश्रीसनाथाय जगन्नाथाय तायिने ।।४३१।।
कर्म्मरोगविपद्योग - भवाभोगविभेदिने । तुभ्यं नमज्जगज्जन्तुजातजीवातवे नमः ।।४३२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टे जगत्त्रयीदृष्टि - सुधावृष्टिविधायिनि । त्वन्मुखे मन्मुखं देव ! दृष्टमिष्टार्थसिद्धिभिः ।।४३३।।
स्थितश्चिन्तामणिः पाणौ सम्प्राप्तः कल्पपादपः । कामितार्थकरी कामधेनुस्त्वद्दर्शनाद् विभो ! ।।४३४।।
तदेतदद्भुतं देव ! त्वन्मुखेन्दुविलोकिनाम् । प्राणिनां क्षीणतामेति यद् विस्तीर्णो भवार्णवः ।।४३५।।
पूर्वमश्वावबोधाय यत् तीर्थं विदधे त्वया । इदानीं भक्तिभाजां नश्चावबोधाय जायते ।।४३६।।
इदं भृगुपुरं देव स्वःपुरं विजिगीषति । त्रिवर्गकमलापात्रं यत्र त्वं कल्पपादपः ।।४३७।।
त्वन्नमस्कृतिमाहात्म्यात् शकुनी शकुनादिव । प्रापदापद्गताप्युच्चैर्नरेन्द्रदुहितुः पदम् ।।४३८।।
जातिस्मृतेः समागत्य भवद्भक्त्या सुदर्शना । उद्दधार पुनस्तीर्थमात्मानं च भवोदधेः ।।४३९।।
सेयमद्यापि जागर्त्ति तीर्थेऽस्मिन् कृतविस्मया । प्रत्यूहशलभव्यूहदीपिकेव तमोऽपहा ।।४४०।।
पावित्र्यं प्राप्तुकामेव त्वद्गात्रस्नात्रपाथसा । सेवाहेवाकिनी रेवा देव भ्राम्यति पार्श्वतः ।।४४१।।
त्वद्ध्याने सावधानं मे मनस्त्वत्कीर्तने वचः । वपुस्त्वत्पादसेवायामाभवं भवतु प्रभो ! ।।४४२।।
प्रशान्तकान्ता मूर्त्तिस्ते भाग्यसौभाग्यमन्दिरम् । नन्द्याद्भिरमियं विश्वदत्तानन्दमहोदया ।।४४३।।"
इति स्तुत्वा च नत्वा च जिनप्रतिकृतिं मुनिः । कृत्वा धर्मे स्थिरं भूपं नतस्तेन खमुद्ययौ ।।४४४।।
निर्गत्य नरनाथोऽपि धन्यंमन्यो जिनालयात् । प्रासादमाससाद स्वं समं सागरसूनुना ।।४४५।।
भूपतिः प्रतिपत्त्याथ भोजयामास तत्र तम् । स्नेहादुपानयन्नन्यदन्यदन्यत्र दुर्लभम् ।।४४६।।
आहूय मन्त्रिसामन्तान् भोजनान्ते च भूपतिः । उपकारं स्मरंस्तस्य कृतज्ञस्तानभाषत ।।४४७।।
हंहो ! माध्यस्थ्यमास्थाय चिन्त्यतां गुणरागिणः ! । कथमप्यस्य सोमस्य भवेयमनृणो यदि ।।४४८।।
तथाप्यस्य प्रदास्येऽहं राज्यस्यार्द्धं निजस्य भोः । एतावतैव कृप्तः स्यादुपकारकणो मया ।।४४९।।
ततस्तैरभ्यनुज्ञातः साधु साध्वितिवादिभिः । निवेश्य भूपतिर्भद्रपीठे सागरनन्दनम् ।।४५०।।
तीर्थाम्भःसम्भृतैः शातकुम्भकुम्भैः सचन्दनैः । अभिषेकं स्वयं चक्रे समं सामन्तमन्त्रिभिः ।।४५१।।
हस्त्यश्वकोशदेशानां ददौ चार्द्धमखण्डितम् । छत्रचामरकोटीरककुदानि[10] च भूभुजाम् ।।४५२।।
स्वप्रासादानुरूपं च प्रासादमदिशत् पृथक् । मणिस्वर्णमयान्युच्चैर्वेश्मोपकरणानि च ।।४५३।।
प्राहिणोच्च तदैवाथ मथुरायां स्वपूरुषान् । स्वसमीपे समानेतुं सागरश्रेष्ठिनं मुदा ।।४५४।।
क्रमेण मथुरां प्राप्य श्रेष्ठिनो नृपशासनम् । राज्यप्राप्तिं च सोमस्य कथयामासुराशु ते ।।४५५।।
सागरोऽपि तदाकर्ण्य वचः कर्णामृतोपमम् । मुदमन्तरसम्मान्तीं व्याकुर्वन् पुलकच्छलात् ।।४५६।।
नियोज्य वेश्मव्यापारे सोमदत्तस्य नन्दनम् । स्वयं चचाल प्रोत्तालः क्षितिपालद्वयेक्षणे ।।४५७।।
श्रीमतीं दयितां देवशर्माणं च सुहृत्तमम् । पथि प्रमोदयन् सूनोश्चरित्रैरुत्तरोत्तरैः ।।४५८।।

---

10. कोटीर=शिरोभूषण । ताज-मुकुट इति भाषायाम् । - अ. चि. ना स्वो. वृ. ६५१ । कुटतीति कोटीरं "कृशृपृ (उणा. ४१८) इतीरः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिनैः कतिपयैः प्राप भाग्यभूर्भृगुपत्तनम् । प्रत्युद्यातश्च पुत्राभ्यां दस्राभ्यामिव सागरः ।।४५९।। युग्मम् ।।
नरनाथप्रवेशार्हं प्रवेशोत्सवमस्य तौ । कारयामासतुः स्फीतप्रीतिपूरितमानसौ ।।४६०।।
स कदाप्यथ पृथ्वीन्दोः सोमदत्तस्य कर्हिचित् । मनःप्रसादप्रासादे विललास यथासुखम् ।।४६१।।
पुरोहितपदं भूपौ ददतुर्देवशर्मणे । सेविताः समये सन्तस्तरवश्च फलप्रदाः ।।४६२।।
एवं च कृतकर्त्तव्यौ भुजवीर्यार्जितां भुवम् । युगपद् बुभुजाते तौ नरनारायणाविव ।।४६३।।
असेविषातां धर्म्मं च तौ कृतज्ञौ निरन्तरम् । चक्रतुः शक्रमहसौ तत्प्रवृत्तिं प्रजास्वपि ।।४६४।।
तदेवं सोमोऽयं महितमहसश्चारणमुने - र्नियोगाद् दुर्भिक्षे यदकृत कृपादानमसमम् ।
प्रभावात्तस्यायं जलनिलयमुत्तीर्य गहनम् । वणिग्वंशोत्पन्नोऽप्यभजदवनीनाथ पदवीम् ।।४६५।।

।। इति सोमदत्तकथा समाप्ता ।।७६।। श्रीः ।।

साम्प्रतमनुकम्पादानव्याख्यानमुपसंहरन् ज्ञानदानानुयोगं चोपक्षिपन्नाह -

अणुकंपादाणमिणं भणियं लेसेण संपयं किंपि ।
नाणविसयं पि भणिमो जिणगणहरभणियनाएणं ।।७७।।

अनुकम्पादानं दयादानम् **इदं** पूर्वोपवर्णितस्वरूपं **भणितं** व्याख्यातं **लेशेन** दिग्मात्रेण दानमित्यनुवर्त्तते । **साम्प्रतं ज्ञानविषयमपि**ज्ञानगोचरमपि, दानं **भणामः** । तत् किं सर्वात्मना? न, इत्याह **किमपि** स्वरूपमात्रम् - ज्ञानानुयोगस्य हि छद्मस्थैर्यथावत् प्रथयितुमशक्यत्वात् । तत् किं स्वमनीषया? न, इत्याह **जिनगणधरभणितन्यायेन** । जिनाः-तीर्थकृतः, गणधराः-तेषामनन्तरशिष्याः, तैर्भणितो-दर्शितो यो न्यायस्तेन । तदुक्तयुक्तेरेव सहृदामुपादेयत्वात् ।।७७।।

अथ किमिदं ज्ञानशब्दवाच्यम् ? उच्यते –

नज्जंति जेण तत्ता जीवाजीवाइणो जिणवरुत्ता ।
तं इह भन्नइ नाणं तस्स य भेया इमे पंच ।।७८।।

इहास्मिन् जैनेन्द्रशासने **तत् ज्ञानं भण्यते** । येन किम्? **येन**ात्मनः परिणामविशेषेण **ज्ञायन्ते** परिच्छिद्यन्ते **तत्त्वानि जीवाजीवादीनि, जिनवरोक्तानि** तीर्थकृत्प्रणीतानि । **तस्य चामी** वक्ष्यमाणा **भेदाः** प्रकाराः **पञ्च** ।।७८।।

---

11. **दस्र**=अश्विनीकुमारौ - स्वर्गना बे वैद्य इति भाषायाम् । अ. चि. ना. स्वो. वृ. १८२ । दस्यतो हरतो रोगान् दस्रौ । "भी वृद्दि" (उणा. ३८७) ।।

गाथा-७८ 1. ज्ञप्तिर्ज्ञानं वस्तुस्वरूपावधारणमित्यर्थः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तानेव दर्शयति -

पढमं किर मइनाणं बीयं सुयमवहिनाणमह तइयं ।
मणपज्जवं चउत्थं पंचमं केवलं नाणं ।।७९।।

ज्ञानशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । **किलेत्याप्तोक्तौ** । तेषु पञ्चसु **प्रथमं मतिज्ञानं** मतिज्ञानलक्षणः प्रथमो भेदः । **द्वितीयं श्रुतम्** श्रुतज्ञानम् । **अवधिज्ञानमथ तृतीयम्** । **मनःपर्यायज्ञानम् चतुर्थम् । पञ्चमं केवलज्ञानमिति** ।।७९।।

इदानीं नामतो ज्ञानभेदानभिधाय स्वरूपतः प्रत्येकमभिधत्ते -

मिज्जइ नज्जइ जेणं सद्दो अत्थो य उग्गहाइहिं ।
तं वट्टमाणविसयं मइनाणं भन्नए तेसु ।।८०।।

तेषु पञ्चसु मध्ये **तन्मतिज्ञानं भण्यते** । येन किं ? **येन मीयते परिच्छिद्यते** । कः ? **शब्दो अर्थश्च** । कैः ? **अवग्रहादिभिः** । अवग्रहेहापायधारणालक्षणैः प्रकारैः । तत्राव्यक्तं यथास्वमिन्द्रियैर्विषयाणामालोचनमवधारणमवग्रहः । अवग्रहगृहीते विषयार्थैकदेशाच्छेषाऽनुगमननिश्चयविशेषजिज्ञासा चेष्टा ईहा । अवगृहीतविषये सम्यगसम्यगितिगुणदोषविचारणाऽध्यवसायोऽपनोदोऽपायः । धारणा प्रतिपत्तिर्यथास्वमत्यवस्थानमवधारणं चेति । अमीभिरवग्रहादिभिः शब्दार्थयोर्यथावत्परिच्छेदो मतिज्ञानम् । किंविशिष्टं? **वर्त्तमानविषयं** वर्त्तमानकालगोचरम् ।।८०।।

अस्यैव भेदोपदर्शनायाह -

भेया दुन्नि य चउरो अट्ठावीसा य अट्ठसट्ठसयं ।
तिन्निसया छत्तीसा मइनाणे हुंति नायव्वा ।।८१।।

गाथा-७९ 1. मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि ज्ञानम् ।। - तत्त्वा० १/९ ।। मइ-सुअ-ओही-मण-केवलाणि नाणाणि । - कर्म० वि० गा. ४ ।।

गाथा-८० 1. मननं मतिः परिच्छेद इत्यर्थः । मतिश्च सा ज्ञानं च मतिज्ञानम् । तच्च श्रोत्रेन्द्रियव्यतिरिक्तं चक्षुरादीन्द्रियानक्षरोपलब्धिर्या तन्मतिज्ञानम् । - तत्त्वा. सि.वृ. १/९ ।।
मतिज्ञानं नाम यदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं वर्तमानकालविषयपरिच्छेदि । - तत्त्वा. सि. वृ. १/१० ।।
तत्र "बुधिं मनिंच् ज्ञाने" मननं मतिः, यद्वा मन्यते - इन्द्रियमनोद्वारेण नियतं वस्तु परिच्छिद्यतेऽनयेति मतिः - योग्यदेशावस्थितवस्तुविषय इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेषः, मतिश्च सा ज्ञानं च मतिज्ञानम् ।। - कर्म. वि. स्वो. वृ. गा. ४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अस्मिन् **मतिज्ञाने** एतत्सङ्ख्या **भेदा ज्ञातव्या भवन्ति** । तानेव व्यनक्ति - [2]तत्रादौ तावन्मतिज्ञानस्य **द्वौ** भेदौ, द्विभेदं मतिज्ञानमित्यर्थः । तद्यथा - इन्द्रियजमनिन्द्रियजं वा । [3]पुनरव-ग्रहेहावायधारणाभि**श्चत्वारो** भेदाः । [4]तत्रावग्रहो द्वेधा - अर्थावग्रहो व्यञ्जनाऽवग्रहश्च । तत्रार्थाव-ग्रहेहावायधारणाश्चत्वारोऽपि प्रत्येकं स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रमनोभिर्भेदैः षट्प्रकारा भवन्ति ।

गाथा-८१ 1. **तुला** - एवमेतदिति लक्षणविधानाभ्यां यन्निरूपितं मतिज्ञानं तस्य पुनः सम्पिण्ड्य भेदान् कथयति । द्विविधमित्यादिना । द्विविधमिति, इन्द्रियनिमित्तमनिन्द्रियनिमित्तं च । चतुर्विधमवग्रहादिभेदतः । अष्टाविंशतिविधमिति, स्पर्शनादीनां मनःपर्यवावसानानां षण्णामेकैकस्य चत्वारो भेदा अवग्रहादयस्ते समुदिताः सर्वेऽपि चतुर्विंशतिरुपजाताः, ततोऽन्यच्चक्षुर्मनोवर्जस्पर्शनादीनां यो व्यञ्जनावग्रहः चतुर्भेदः स प्रक्षिप्तः, ततोऽष्टाविंशतिविधं भवति । अष्टषष्ट्युत्तरशतविधमिति, तस्या एवाष्टाविंशतेरेकैको भेदः षड्विधो भवति बह्वादिभेदेन, अत अष्टषष्ट्युत्तरशतविधं भवति । तस्या एवाष्टाविंशतेरेकैको भेदो द्वादशधा भवति सेतरबह्वादिद्वादशकेन, अतः षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदमिति । - तत्त्वा. सि. वृ. १/१९ ।।

2. तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् । तत्त्वा. १/१४ ।। तदेतत् मतिज्ञानं द्विविधं भवति इन्द्रियनिमित्तमनिन्द्रिय-निमित्तं च । तत्त्वा. भा. १/१४ ।। तत्रेन्द्रियनिमित्तं स्पर्शनादीनां पञ्चानां स्पर्शादिषु पञ्चस्वेव स्वविषयेषु । अनिन्द्रियनिमित्तं मनोवृत्तिरोधज्ञानं च । - तत्त्वा. भा. १/१४ ।।

3. अवग्रहेहापायधारणाः । - तत्त्वा १/१५ ।। तदेतत् मतिज्ञानमुभयनिमित्तमप्येकशश्चतुर्विधं भवति । तद्यथा - अवग्रह-ईहा-अपायो-धारणा चेति । - तत्त्वा. भा. १/१५ ।।

तत्राव्यक्तं यथास्वमिन्द्रियैर्विषयाणामालोचनावधारणमवग्रहः । अवग्रहो ग्रहो? ग्रहणमालोचनमवधारण-मित्यनर्थान्तरम् ।

अवगृहीतम् । विषयार्थैकदेशाच्छेषानुगमनम् । निश्चयविशेषजिज्ञासा चेष्टा ईहा । ईहा ऊहा तर्कः परीक्षा विचारणा जिज्ञासेत्यनर्थान्तरम् । अवगृहीतविषये सम्यगसम्यगितिगुणदोषविचारणा अध्यवसायापनोदो-ऽपायः । अपायोऽपगमः, अपनोदः अपव्याधः, अपेतमपगतमपविद्धमपनुत्यमित्यनर्थान्तरम् । धारणाप्रति-पत्तिर्यथास्वं मत्यवस्थानमवधारणं च । धारणा प्रतिपत्तिरवधारणावस्थानं निश्चयः अवगमः अवबोध इत्यनर्थान्तरम् । - तत्त्वा. भा. १/१५ ।।

4. अर्थस्य ।। व्यञ्जनस्यावग्रहः ।। न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ।। - तत्त्वा. १/१७/१८/१९ ।। अवग्रहादयो मतिज्ञानविकल्पा अर्थस्य भवन्ति । व्यञ्जनस्यावग्रह एव भवति नेहादयः । एवं द्विविधोऽवग्रहो व्यञ्जनस्यार्थस्य च । ईहादयस्त्वर्थस्यैव । चक्षुषा नोइन्द्रियेण च व्यञ्जनावग्रहो न भवति, चतुर्भिरिन्द्रियैः शेषैर्भवति । एवमेतत् मतिज्ञानं द्विविधं, चतुर्विधमष्टविंशतिविधमष्टषष्ट्युत्तरशतविधं षट्त्रिंशत्त्रिशतविधं च भवति ।। - तत्त्वा. भा. १/१७/१८/१९ ।।

अर्थश्च स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दात्मकः तस्य स्पर्शादेरर्थस्य अवग्रहादयोऽवच्छेदका मतिज्ञानविकल्पाः मतिज्ञानस्येन्द्रियादिभेदेनाविभक्तस्य विकल्पाः अंशा इत्यर्थः । - तत्त्वा. सि. वृ. १/१७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलिताश्चतुर्विंशतिः, व्यञ्जनावग्रहश्च चक्षुरिन्द्रियमनःपरिहारेण चतुर्भेद एव । एते च चत्वारश्चतुर्विंशत्या मीलिता **अष्टाविंशति**र्भवन्ति । अष्टाविंशतिश्च [5]बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रित-सन्दिग्धध्रुवाख्यैः षड्भिर्भेदैर्गुणिता **अष्टषष्ट्युत्तरं शतं** भवति । सैव च बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रित-सन्दिग्धध्रुवाख्यैरेव सप्रतिपक्षैर्गुणिताः **षट्त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि** भवन्ति । अमीषां च भेदानां प्रतिपदव्याख्यानं ग्रन्थान्तरेभ्योऽवसेयम् । इह तु ग्रन्थगौरवभयान्नोक्तम् ।।८१।।

एवं मतिज्ञानमभिधाय श्रुतज्ञानं बिभणिषुराह -

सुव्वइ य निसामिज्जइ पारंपज्जेण जेण तेण सुयं ।
तं पि दुभेयं नेयं अंगपविट्ठं तदियरं च ।।८२।।

[1]**श्रूयते निशम्यते पारम्पर्येण** गीतार्थगणधरपरम्परया **येन** कारणेन **तेन** निरुक्तबलेन **श्रुतमि-**

व्यज्यतेऽनेनार्थ इति व्यञ्जनं सन्तमसावस्थितघटरूपप्रदीपादिवत्, तत् पुनर्व्यञ्जनं संश्लेषरूपं यदिन्द्रियाणां स्पर्शनादीनामुपकरणाख्यानां स्पर्शाद्याकारेण परिणतानां पुद्गलद्रव्याणां च यः परस्परं संश्लेषस्तद्व्यञ्जनं, तस्य व्यञ्जनस्यावग्रह एवैको भवति ग्राहकः । - तत्त्वा. सि. वृ. १/१८ ।।

वंजणवग्गह चउहा मण-नयण-विणिंदयचउक्का । - कर्म. वि. गा. ४ ।।

अत्थुग्गह-ईहा-वाय-धारणा करणमाणसेहिं छहा । इय अट्ठवीसभेअं । - कर्म. वि. गा. ५ ।।

5. बहुबहुविधक्षिप्रानिश्रितासन्दिग्धध्रुवाणां सेतराणाम् । - तत्त्वा. १/१६ ।।

बह्ववगृह्णाति । अल्पमवगृह्णाति । बहुविधमवगृह्णाति । एकविधमवगृह्णाति । क्षिप्रमवगृह्णाति । चिरेणावगृह्णाति । निश्रितमवगृह्णाति । अनिश्रितमवगृह्णाति । असन्दिग्धमवगृह्णाति । सन्दिग्धमवगृह्णाति । ध्रुवमवगृह्णाति । अध्रुवमवगृह्णाति । इत्येवमीहादीनामपि विद्यात् । - तत्त्वा. भा. १/१६ ।।

गाथा-८२ 1. श्रूयते तदिति, अस्मिन् पक्षे शब्दमात्रं गृह्यते, श्रुतिः श्रवणमित्यस्मिन् पक्षे ज्ञानविशेष उच्यते, स एव च ग्राह्यः श्रुतम् । कीदृशः स इति चेत् ? उच्यते - शब्दमाकर्णयतो भाषमाणस्य पुस्तकादिन्यस्तं वा चक्षुषा पश्यतः घ्राणादिभिर्वा अक्षराणि उपलभमानस्य यद् विज्ञानं तत् श्रुतमुच्यते, तेन ज्ञानं विशेष्यते, श्रुतं च तज्ज्ञानं चेति श्रुतज्ञानम् । - तत्त्वा. सि. वृ. १/९ ।

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् । - तत्त्वा. १/२० ।।

श्रुतज्ञानं मतिज्ञानपूर्वकं भवति । श्रुतमाप्तवचनं आगमः उपदेश ऐतिह्यमाम्नायः प्रवचनं जिनवचन-मित्यनर्थान्तरम् ।। - तत्त्वा. भा. १/२० ।।

तद् द्विविधमङ्गबाह्यमङ्गप्रविष्टं च । तत् पुनरनेकविधं द्वादशविधं च यथासङ्ख्यम् । - तत्त्वा. भा. १/२० ।।

श्रवणं श्रुतम् - अभिलापप्लावितार्थग्रहणहेतुरूपलब्धिविशेषः, एवमाकारं वस्तु घटशब्दाभिलाप्यं जलधारणा-द्यर्थक्रियासमर्थमित्यादिरूपतया प्रधानीकृतत्रिकालसाधारणसमानपरिणामः शब्दार्थपर्यालोचनानुसारी

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यभिधीयते । **तदपि द्विभेदं** द्विप्रकारं **ज्ञेयम्** । एक**मङ्गप्रविष्टं, तदितरमङ्गबाह्यं च** ।।८२।।

अथ किमिदमङ्गप्रविष्टमित्याह -

पढमं जिणिंदचंदेहिं अत्थओ सुत्तओ गणहरेहिं ।
जं पन्नत्तं सक्खा तं आयाराइ इह नेयं ।।८३।।

तयोः [1]**प्रथममङ्गप्रविष्टम्** । यत् किम्? यत् **साक्षात्** श्रीमुखे**नार्थतः** प्ररूपितम् । कैः? **जिनेन्द्रचन्द्रैः** । जिनाः अवधिजिनादयस्तेषु विशिष्टज्ञानपरमैश्वर्यशालित्वेनेन्द्राः केवलिनस्तेष्वपि विशिष्टाष्टप्रातिहार्यादिदेदीप्यमानत्वेन चन्द्रास्तीर्थकृतस्तैः, तथा **गणभृद्भिस्**तदनन्तरशिष्यैः कथं? **सूत्रतः** सूत्ररूपेण **यत् प्रज्ञप्तम्** तदङ्गप्रविष्टम् । कतरच्च तद्? इत्याह - **आचाराङ्गप्रमुखं,** तद्यथा- आचारं[1] सूत्रकृतं[2] स्थानं[3] समवायं[4] विवाहप्रज्ञप्तिः[5] ज्ञाताधर्म्मकथा[6] उपासकाऽध्ययनदशाः[7] अन्तकृद्दशाः[8] अनुत्तरोपपातिकदशाः[9] प्रश्नव्याकरणं[10] विपाकसूत्रं[11] दृष्टिवाद[12] इति । अमूनि च द्वादशाऽप्यङ्गानि तथास्थितेरेवार्थतस्तीर्थनाथैः सूत्रतश्च गणभृद्भिर्निबध्यन्त इति । यदाहुः -

[2]**अत्थं भासइ अरिहा सुत्तं गंथंति गणहरा निऊणं ।**
सासणस्स हियट्ठाए तओ तित्थं पवत्तए इति ।।१।। [विशेषा० भा० ११९९] ।।८३।।

साम्प्रतं द्वितीयमङ्गबाह्यश्रुतभेदमाह -

बीयं चउदसदसपुव्व - धारएहिं तहा महेसीहिं ।
संघयणकालबलबुद्धि - हाणिमागामिपुरिसाणं ।।८४।।

मुणिऊणं परमकरुणाइ गहिरसुत्तत्थसारमादाय ।
जं विरइयमिह सामाइयाइ तं अंगबज्झं तु ।।८५।।

इन्द्रियमनोनिमित्तोऽवगमविशेष इत्यर्थः, श्रुतं च तद् ज्ञानं च श्रुतज्ञानम् ।। - कर्म वि. स्वो. वृ. गा. ४ ।।

गाथा-८३ 1. यद् भगवद्भिः सर्वज्ञैः सर्वदर्शिभिः परमर्षिभिरर्हद्भिस्तत्स्वाभाव्यात् परमशुभस्य च प्रवचन-प्रतिपन-फलस्यतीर्थकरनामकर्मणोऽनुभावादुक्तं भगवच्छिष्यैरतिशयवद्भिरुक्तमातिशयवाग्बुद्धिसम्पन्नैर्गण-धरैर्दृब्धं तदङ्गप्रविष्टम् । अङ्गप्रविष्टं द्वादशविधम् । तद्यथा - आचारः, सूत्रकृतं, स्थानं, समवायः, व्याख्याप्रज्ञप्तिः, ज्ञाताधर्मकथाः, उपासकाध्ययनदशाः, अन्तकृद्दशाः, अनुत्तरोपपातिकदशाः, प्रश्नव्याकरणं, विपाकसूत्रं, दृष्टिपात इति ।। - तत्त्वा. भा. १/२० ।।

2. **तुलना** - अत्थं भासइ अरिहा, तमेव सुत्तीकरेंति गणधारी ।
अत्थं च विणा सुत्तं, अणिस्सियं केरिसं होज्जा ।। - बृ. क. भा. १-१९३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]**तदे**वंविधश्रुत**मङ्गबाह्यम**भिधीयते । यत् किं? **यद् विरचितम् ।** कैः? **चतुर्दशदशपूर्व-भृत्प्रभृतिभिः** तद्विरचितस्यैव समयशब्दाभिधेयत्वात् ।। यदाह -

सुत्तं गणहररइयं तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च ।
सुयकेवलिणा रइयं अभिन्नदसपुव्विणा रइयं ।।१।। [बृहत्सं. प्र. गा. १५४]

तथा महर्षिभिः आर्यश्यामादिभिः यद् विरचितम् । किं कृत्वा? अङ्गगत**गभीरसूत्रार्थसार-मादाय** । अथ किमर्थमयमियानुपक्रमस्तैर्व्यरचि? तदाह - **परमकरुणया,** करुणोत्पत्तेरेव कारणमाह - **'मुणिऊण'** ज्ञात्वा, कां? **संहननकालबलबुद्धिहानिम् ।** तत्र संहननं - वज्रऋषभ-नाराचादि, कालः-सुषमादिः, बलं-परीषहोपसर्गादिसहिष्णुत्वम् । बुद्धिः-पूर्वगतश्रुताध्ययनसमर्था प्रज्ञा । अत एतेषां संहननादीनामवसर्प्पिणीदोषात् हानिमालोच्य, केषाम्? **आगामिपुरुषाणाम्** ऐदंयुगीनमानवानां, दुरवबोधं हि तादृशामङ्गप्रविष्टश्रुतमतस्तदनुग्रहाय । यदेभिर्विरचितं तदङ्गबाह्यम् । [2]कतमच्च तद्? इत्याह - **सामायिकादि** सामायिकप्रमुखं तद्यथा - सामायिकं, चतुर्विंशतिस्तवो, वन्दनं, प्रतिक्रमणं, कायोत्सर्गः, प्रत्याख्यानं, दशवैकालिकम्, उत्तराध्यायाः, दशाः, कल्प-व्यवहारौ, निशीथं, ऋषिभाषितानीत्येवमादि तदिदमशेषमप्याचाराङ्गाद्यङ्गेभ्यो व्यतिरिक्तत्वादङ्गबाह्यमित्युच्यते ।।८४।।८५।।

एतदेव निगमयन्नाह -

एयं दुविहं पि तिकालगोयरं भन्नए सुयन्नाणं ।
केवलनाणीहिं पि हु परोवएसाय भयणिज्जं ।।८६।।

तदेतद् द्विविधमप्यङ्गानङ्गप्रविष्टं भण्यते पूर्वाचार्यैः **श्रुतज्ञानम् ।** किंविशिष्टं? [1]**त्रिकालगोचरम् ।** त्रयोऽपि भूतभविष्यद्वर्त्तमानलक्षणाः काला ज्ञेयत्वेन गोचरो विषयो यस्य तत् तथा । किञ्च **भजनीयं** सेवनीयम् । कैः? **केवलज्ञानिभिरपि ।** अथ किमर्थमनन्तज्ञानोपलब्ध्या

गाथा-८५ 1. गणधरानन्तर्यादिभिस्त्वत्यन्तविशुद्धागमैः परमप्रकृष्टवाङ्मतिबुद्धिशक्तिभिराचार्यैः कालसंह-ननायुर्दोषादल्पशक्तीनां शिष्याणामनुग्रहाय यत् प्रोक्तं तदङ्गबाह्यमिति । - तत्त्वा. भा. १/२० ।

2. अङ्गबाह्यमनेकविधम् । तद्यथा - सामायिकं, चतुर्विंशतिस्तवः, वन्दनं, प्रतिक्रमणं, कायव्युत्सर्गः, प्रत्याख्यानं, दशवैकालिकं, उत्तराध्यायाः, दशाः, कल्पव्यवहारो, निशीथमृषिभाषितानीत्येवमादि ।। - तत्त्वा. भा. १/२० ।।

गाथा-८६ 1. **तुला** - श्रुतज्ञानं तु त्रिकालविषयम्, उत्पन्नविनष्टानुत्पन्नार्थग्राहकमिति । - तत्त्वा. भा. १/२० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतकृत्या अपि ते श्रुतज्ञानं भजन्ते ? तदाह - **परोपदेशाय** । यतस्तेऽपि भगवन्तः केवलज्ञानेन केवलं कलयन्ति सकलमपि स्वयं ज्ञेयम्, परोपदेशं **तु** श्रुतद्वारेणैव ददति । **'निखिलस्यापि वाङ्मयस्य श्रुतरूपत्वात्'** ।।८६।। किञ्च -

अक्खरसन्निप्पमुहा सेसा भेया इमम्मि भेयदुगे ।
पविसंति नित्रयाणं जहा पवाहा जलनिहिम्मि ।।८७।।

[1]**शेषास्त्वक्षरसंज्ञिप्रमुखाः** श्रुतज्ञान**भेदा** भगवद्भद्रबाहुस्वामिप्रभृतिभिरावश्यकादिमूलग्रन्थेषु तथा तथा प्रथां प्रापिता **अस्मिन्नेवाङ्गप्रविष्टाङ्गबाह्यलक्षणे** श्रुतज्ञान**भेदद्वये प्रविशन्ति** निलीयन्ते, एतत्प्रभेदस्वरूपत्वात् तेषाम् । अत्रोपमामाह - **यथा निम्नगानां प्रवाहाः** श्रोतांसि **जलनिधौ** श्रोतःपतौ प्रविशन्ति, तद्वद् इति ।।८७।।

भणितं श्रुतज्ञानमथाऽवधिज्ञानमभिधित्सुराह -

अवही किल मज्जाया सा विज्जइ जम्मि तं अवहिनाणं ।
भवपच्चइयं च खओवसमसमुत्थं च तं पि दुहा ।।८८।।

किलेत्याप्तोक्तौ । [1]**अवधिर्मर्यादा** सीमा रूपिद्रव्यसाक्षात्कारलक्षणा, **सा विद्यते यस्मिंस्तदवधिज्ञानं, तदपि** श्रुतज्ञानवद् [2]**द्विधा** द्विप्रकारम् द्वैविध्यमेव दर्शयति - **भवप्रत्ययं** भव एव प्रत्ययः कारणं यस्य तद् भवप्रत्ययमित्येको भेदः । द्वितीयं पुनः **क्षयोपशमसमुत्थम्** ।।८८।।

गाथा-८७ 1. **तुला** - अक्खर-सन्नि सम्मं, साइयं खलु सपज्जवसिअं च । गमिअं अंगपविट्ठं, सत्त वि एए सपडिवक्खा ।।१।। पज्जय-अक्खर-पय-संघाया, पडिवत्ति तह य अणुओगो । पाहुडपाहुड-पाहुड, वत्थु पुव्वा य ससमासा ।।२।। - कर्म. वि. गा. ६-७ ।।

गाथा-८८ 1. **तुला** - अवशब्दोऽधः शब्दार्थः अवधानादवधिः ज्ञानं परिच्छेदः । एतदुक्तं भवति - अधोविस्तृतविषयमनुत्तरोपपादिकादीनां ज्ञानमवधिज्ञानम्, अथवा अवधिः मर्यादा, अमूर्त्तद्रव्यपरिहारेण मूर्तिनिबन्धनत्वादेव तस्यावधिज्ञानत्वम् ।। - तत्त्वा. सि. वृ. १/९ ।।

तथाऽवधानमवधिः - इन्द्रियाद्यनपेक्षमात्मनः साक्षादर्थग्रहणम्, अत एवेदं प्रत्यक्षज्ञानम् । अथवा अवशब्दोऽधः शब्दार्थः, अव-अधोऽधो विस्तृतं वस्तु धीयते-परिच्छिद्यतेऽनेनेत्यवधिः, यद्वा अवधिः मर्यादा रूपिष्वेव द्रव्येषु परिच्छेदकतया प्रवृत्तिरूपा, तदुपलक्षितं ज्ञानमप्यवधिः, अवधिश्च तद् ज्ञानं चावधिज्ञानम् ।। - कर्म वि. स्वो. वृ. गा. ४ ।।

2. **तुला** - द्विविधोऽवधिः ।। - तत्त्वा. १/२१ ।। भवप्रत्ययः, क्षयोपशमनिमित्तश्च । - तत्त्वा. भा. १/२१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ केषां भवप्रत्ययं, केषां च क्षयोपशमसमुत्थमिति पृथग् गाथाद्वयेन व्यनक्ति -

भवपच्चइयं सुरनारयाण सिक्खातवाइविरहे वि ।
आजम्मं चिय जायइ विहगाणं गयणगमणं व ।।८९।।

[1]तत्र **भवप्रत्ययं नारकदेवानां,** तेषां हि तद्भवोत्पत्तिरेवावधिहेतुर्न **शिक्षा नापि तप** इति । तदपि कदाचित् कियत्कालावस्थायि स्यादत आह - **आजन्मापि जायते** जन्मनः प्रभृति मरणमभिव्याप्याऽवतिष्ठते । अत्रोपमामाह - **विहगानां गगनगमनमिव,** यथा पक्षिणामन्तरिक्षगमनं भवप्रत्ययम् ।।८९।।

एवमवधेराद्यभेदमभिधाय द्वितीयमभिधित्सुराह -

कम्माण खओवसमेण मणुयतिरियाणं जायए जं च ।
तं छब्भेयं नेयं एवं सुत्ताणुसारेण ।।९०।।

यच्च कर्म्मणां ज्ञानावरणादीनां **क्षयोपशमेन** । तत्राल्पबन्धानामल्परसानामल्पस्थितिकानां ध्वंसः क्षयस्तथा तेषामेव बहुबन्धानां बहुप्रदेशानां बहुरसानां बहुस्थितिकानां च किञ्चित् प्रशम उपशमः, क्षयेण युक्त उपशमः क्षयोपशमः । तेन केषां तद्? इत्याह - **मनुष्यतिरश्चाम् इति,** मनुष्याः संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः, तद्विधा एव च तिर्यञ्चस्तेषां यदवधिज्ञानं तत् क्षायोपशमिकम् । [1]**तच्च षट्भेदम् ।** कथं? **एवं** वक्ष्यमाण**सूत्रानुसारेण,** सूत्रमाप्तवचनं तस्यानुसारः-पारम्पर्यं, तेन **ज्ञेयम्** ।।९०।। भेदानेव दर्शयति -

[1]**अणुगामिमणणुगामिं च हीयमाणं च वड्ढमाणं च ।**
अणवट्ठियं अवट्ठियमिय छब्भेयं भवइ एयं ।।९१।।

गाथा-८९ 1. **तुला** - तत्र भवप्रत्ययो नारकदेवानाम् ।। - तत्त्वा. १/२२ ।। नारकाणां देवानां च यथास्वं भवप्रत्ययमवधिज्ञानं भवति । भवप्रत्ययं भवहेतुकं भवनिमित्तमित्यर्थः । तेषां हि भवोत्पत्तिरेव तस्य हेतुर्भवति, पक्षिणामाकाशगमनवत्, न शिक्षा न तप इति । - तत्त्वा. भा. १/२२ ।।

गाथा-९० 1. **तुला** - यथोक्तनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् । - तत्त्वा. १/२३ । यथोक्तनिमित्तः क्षयोपशमनिमित्त इत्यर्थः । तदेतदवधिज्ञानं क्षयोपशमनिमित्तं षड्विधं भवति । शेषाणामिति नारकदेवेभ्यः शेषाणां तिर्यग्योनिजानां मनुष्याणां च । अवधिज्ञानावरणीयस्य कर्मणः क्षयोपशमाभ्यां भवति षड्विधम् । तद् यथा - अनानुगामिकं, आनुगामिकं, हीयमानकं, वर्धमानकं, अनवस्थितं, अवस्थितमिति । - तत्त्वा. भा. १/२३ ।

गाथा-९१ 1. **तुला** - अणुगामि - वड्ढमाणय - पडिवाईयरविहा छहा ओही । - कर्म वि. गा. ८ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[2]**तदेतद**वधिज्ञानमेवमनुगामिप्रभृतिभिः **षड्भेदं भवति** । [3]तत्रा**नुगामुकं** यत्र क्वचिदुत्पन्नं तत्रस्थस्य क्षेत्रान्तरगतस्यापि न प्रतिपतति भास्करप्रकाशवत् । [4]**अननुगामुकं च** यत्र क्षेत्रे स्थितस्योत्पन्नं ततः प्रच्युतस्य प्रतिपतति, प्रश्नादेशपुरुषज्ञानवत् । [5]**हीयमानं च** असङ्ख्येयेषु द्वीपसमुद्रादिषु यदुत्पन्नं क्रमशः सङ्क्षिप्यमाणं प्रतिपतति आ अङ्गुलासङ्ख्येयभागात् । प्रतिपतत्येव वा परिच्छिन्नेन्धनोपादानसन्तत्यग्निशिखावत् । [6]**वर्द्धमानं** पुनयदङ्गुलस्यासङ्ख्येयभागादिषूत्पन्नं वर्द्धते आ सर्वलोकात् । [7]**अनवस्थितं** पुनः पुनर्वर्द्धते हीयते च हीयते वर्द्धते च, प्रतिपतति चोत्पद्यते च सलिलोर्म्मिवत् । [8]**अवस्थितं** च यावति क्षेत्रे उत्पन्नं ततो न प्रतिपतति, आ केवलप्राप्तेरवतिष्ठते ।।९१।। यदि वा -

आमरणंतं च भवे भवंतरं वा वि संकमइ एयं ।
विसओ पुण दुविहस्स वि इमस्स जे रूविणो दव्वा ।।९२।।

इदमेवावस्थितसंज्ञमवधिज्ञानमा मरणान्तं भवेत् भवान्तरमपि वा सङ्क्रामति । भवप्रत्ययस्य क्षयोपशमसमुत्थस्येवावधेः को विषय? इत्याह - [1]**द्विविधस्याप्यस्य रूपिद्रव्याण्येव विषयः** । **'रूपिष्ववधिः'** इति वचनात् ।।९२।।

---

2. **तुला** - तं समासओ छव्विहं पन्नत्तं, तं जहा - आणुगामियं अणाणुगामियं वड्ढमाणयं हीयमाणयं पडिवाई अपडिवाई । - (नन्दीपत्र ८१-१) कर्म वि. स्वो. वृ. गा. ८ ।।
3. **तुला** - तत्रानुगामिकं यत्र क्वचिदुत्पन्नं क्षेत्रान्तरगतस्यापि न प्रतिपतति, भास्करप्रकाशवत् घटरक्तभाववच्च ।
4. **तुला** - अननुगामिकं यत्र क्षेत्रे स्थितस्योत्पन्नं ततः प्रच्युतस्य प्रतिपतति, प्रश्नादेशपुरुषज्ञानवत् ।
5. **तुला** - हीयमानकं असङ्ख्येयेषु द्वीपेषु समुद्रेषु पृथिवीसु विमानेषु तिर्यगूर्ध्वमधो वा यदुत्पन्नं क्रमशः सङ्क्षिप्यमाणं प्रतिपतति आअङ्गुलासङ्ख्येयभागात् प्रतिपतत्येव वा परिच्छिन्नेन्धनोपादानसन्तत्यग्निशिखावत् ।
6. **तुला** - वर्धमानकं यदङ्गुलस्यासङ्ख्येयभागादिषूत्पन्नं वर्धते आसर्वलोकात् । अधरोत्तरारणिनिर्मथनासन्नोपात्तशुष्कोपचीयमानाधीयमानेन्धनराश्यग्निवत् ।
7. **तुला** - अनवस्थितं हीयते वर्धते वर्धते हीयते च । प्रतिपतति चोत्पद्यते चेति । पुनः पुनरुर्मिवत् ।
8. **तुला** - अवस्थितं यावति क्षेत्रे उत्पन्नं भवति ततो न प्रतिपतत्याकेवलप्राप्तेरवतिष्ठते, आ भवक्षयाद् वा जात्यन्तरस्थायि भवति लिङ्गवत् । - तत्त्वा. भा. १/२३ ।।

गाथा-९२ 1. **तुला** - रूपिष्ववधेः । - तत्त्वा. १/२८ । रूपिष्वेव द्रव्येष्ववधिज्ञानस्य विषयनिबन्धनो भवति, असर्वपर्यायेषु । सुविशुद्धेनाप्यवधिज्ञानेन रूपीण्येवद्रव्याण्यवधिज्ञानी जानीते, तान्यपि न सर्वैः पर्यायैरिति ।। - तत्त्वा. भा. १/२८ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपरं च -

पयइत्थपयत्थपयासणेण सम्मीणमेस सम्मोही ।
अजहट्ठियदंसीणं मिच्छदिट्ठीण उ विभंगो ।।९३।।

तथाऽयमेवावधिः सम्यगवधित्वं विभङ्गत्वं च भजते, कुत ? आश्रयविशेषात् । एतदेव दर्शयति - **सम्यग्दर्शनिनामेव सम्यगवधिः** । सम्यगवधित्वमेवास्य केन हेतुना? इत्याह - **प्रकृतिस्थपदार्थप्रकाशनेन,** प्रकृतिस्थाः अर्हद्दृष्टिदृष्टा ये पदार्था जीवादयस्तेषां प्रकाशनेन साक्षात्कारेण । [1]**विभङ्गस्तु** केषाम्? इत्याह - **मिथ्यादृशां** मिथ्याऽर्हद्दृष्टिविसंवादिनी दृष्टिर्विचारो येषां ते तथा । अत एव**यथावस्थितार्थदर्शनास्ते** ।।९३।।

उक्तमवधिज्ञानं साम्प्रतं मनःपर्यायमाह -

आमाणुसुत्तराओ नगाओ पंचिंदियाण सन्नीणं ।
मुणइ मणोगयभावे जं तं मणपज्जवं बिंति ।।९४।।

[1]**आ मानुषोत्तरान् नगात्** मानुषोत्तरगिरिं मर्यादीकृत्य **पञ्चेन्द्रियाणां** तिर्यङ्मनुष्याणां **संज्ञिनां** गर्भजानां **यत् ज्ञानं मनोगतान्** चित्तावस्थितान् **भावांस्तत्पर्यायांश्च जानात्य**वबुध्यते **तन्मनःपर्ययं वदन्ति** कथयन्ति गणभृत्प्रभृतयः ।।९४।। तथा -

उजुविउलभेयओ सो दुहा विसेसो इमो उ विउलंमि ।
पढमाउ विसुद्धयरो अप्पडिवाई य विउलमई ।।९५।।

गाथा-९३ 1. **तुला -** विभङ्ग इत्यस्य चार्थं प्रकाशयति - अवधिर्भवक्षयोपशमनिमित्तो विपरीतोऽन्यथावस्तुपरिच्छेदी विभङ्ग इति, यथावस्थितवस्तुपरिच्छेदि च प्रमाणमिष्टं, न चैतत् तथेत्यतः अप्रामाण्यं मिथ्यादृष्टिपरिगृहीतानामिति । - तत्त्वा. सि. वृ. १/३२ ।।

गाथा-९४ 1. **तुला -** तथा परिः सर्वतोभावे अवनम् अवः, अवनं गमनं वेदनमिति पर्यायाः, परि अवः पर्यवः, मनसि मनसो वा पर्यवो मनःपर्यवः सर्वतस्तत्परिच्छेद इत्यर्थः, मनःपर्यवश्च स ज्ञानं च मनःपर्यवज्ञानम्। यद्वा मनःपर्यायज्ञानम्, तत्र संज्ञिभिर्जीवैः काययोगेन गृहीतानि मनःप्रायोग्यवर्गणाद्रव्याणि चिन्तनीयवस्तुचिन्तनव्यापृतेन मनोयोगेन मनस्त्वेन परिणमय्याऽऽलम्ब्यमानानि मनांसीत्युच्यन्ते, तेषां मनसां पर्यायाश्चिन्तनानुगताः परिणामाः मनःपर्यायाः, तेषु तेषां वा सम्बन्धिः ज्ञानं मनःपर्यायज्ञानम्, यद्वा आत्मभिर्वस्तुचिन्तने व्यापारितानि मनांसि पर्येति अवगच्छतीति मनःपर्यायम्, मनःपर्यायं च तद् ज्ञानं च मनःपर्यायज्ञानम् ।
- कर्म वि. वृ. गा. ४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तच्चेदं मनःपर्यायज्ञानं **द्विधा** भवति । कुतः? इत्याह - [1]**ऋजुविपुलभेदात्** । [2]अथ मिथः किमन्तरमनयोरित्याह - **'विसेसो इमो उ विउलंमि'** विपुले विपुलमतिलक्षणे भेदे । **तुः** पुनरर्थे । **प्रथमात्** मनःपर्ययभेदादयं विशेषः, यदयमाद्याद् **विशिष्टतरः** । विपुलमतिर्हि निखिलमपि मानुषं क्षेत्रं परिपूर्णं विस्पष्टतरं जानीते । इतरस्तु तदेव सार्द्धद्वयङ्गुलहीनमितरापेक्षया किञ्चिदस्पष्टं च पश्यति । तत् किमियानेव विशेषो? न, इत्याह - **'अप्पडिवाई य विउलमई'** विपुलमतिर्विपुलमतिलक्षणं ज्ञानम् अप्रतिपात्यप्रतिपतनस्वभावं स्वरूपेणावस्थितमित्यर्थः । इतरस्तु कर्मवशात् कदाचित् परिपतत्यपि ।।९५।।

अथ किंविषयमिदमित्याह -

विसओ इमस्स सुच्चिय माणुसखित्तस्स मज्झवत्तीणं ।
पंचिंदियसन्नीणं जं परियाणइ मणोदव्वे ।।९६।।

[1]**अमुष्यापि** मनःपर्यायस्य **स एवावधिज्ञानस्पृष्टो** ज्ञेयांऽशो **विषयो** गोचरः । केवलमिदं **मनुष्यक्षेत्रस्य मध्यवर्त्तिनां पञ्चेन्द्रियसंज्ञिनामेव मनोद्रव्याणि परिजानीते** । अवधिस्त्वपरापरक्षेत्रगतान्यपि रूपिद्रव्याणीति ।।९६।।

गाथा-९५ 1. ऋजुविपुलमती मनःपर्यायः ।। विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ।। - तत्त्वा. १/२४/२५ ।।
मनःपर्यायज्ञानं द्विविधम् - ऋजुमतिमनःपर्यायज्ञानम्, विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानं च । विशुद्धिकृतश्च अप्रतिपातकृतश्चानयोः प्रतिविशेषः । तद्यथा - ऋजुमतिमनःपर्यायज्ञानाद् विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानं विशुद्धतरम् । किञ्चान्यत् । ऋजुमतिमनःपर्यायज्ञानं प्रतिपतत्यपि भूयः, विपुलमतिमनःपर्यायज्ञानं तु न प्रतिपततीति ।।
- तत्त्वा. भा. १/२४/२५ ।।

2. तिरियं जाव अंतो मणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु दोसु य समुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पन्नाए अंतरदीवेसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ । तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिं अंगुलेहिं अब्भहियतरयं विसुद्धतरयं खेत्तं जाणइ पासइ । (नन्दी पत्र-१०८/१) ।
- कर्म. स्वो. वृ. गा. ८ ।।

गाथा-९६ 1. **तुला** - तदनन्तभागे मनःपर्यायस्य ।। - तत्त्वा. १/२९ ।।
यानि रूपीणि द्रव्याण्यवधिज्ञानी जानीते ततोऽनन्तभागे मनःपर्यायस्य विषयनिबन्धो भवति । अवधिज्ञानविषयस्यानन्तभागं मनःपर्यायज्ञानी जानीते, रूपिद्रव्याणि मनोरहस्यविचारगतानि च मानुषक्षेत्रपर्यापन्नानि विशुद्धतराणि चेति ।। - तत्त्वा. भा. १/२९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साम्प्रतमेतद्गतमेव किमपि प्रसङ्गेणाह -

मइसुयओहिन्नाणा विरयाणं हुंति अविरयाणं च ।
मणकेवलनाणाणि उ नियमेणं सव्वविरयस्स ।।९७।।

मतिश्रुतावधिज्ञानानि विरतानामविरतानां च भवन्ति । उभयस्यापि तदधिकारित्वात् । **मनःपर्यायकेवलज्ञाने तु नियमतो**ऽवश्यंतया **सर्वविरतस्य** यतेरेव जायेते । अनयोरन्यस्या-गोचरत्वात् ।।९७।।

एवं ज्ञानचतुष्टयमभिधाय लेशतः पञ्चमज्ञानस्य स्वरूपमाह -

केवलनाणं पुण सव्वदव्वपज्जायकालअक्खलियं ।
एगसरूवमणंतं अप्पडिवाई निरावरणं ।।९८।।

अस्यैवात्मनस्तथाभव्यत्ववशात् स्फटिकवलयवदपुनःसङ्घटनाय विघटिते घातिकर्म्मच-तुष्टये अनन्तवीर्यानन्दात्मकं यद् आत्मस्वरूपमुन्मीलति तत् [1]**केवलज्ञानमित्युच्यते** । तच्च [2]**सर्वेषु द्रव्येषु** धर्म्माधर्म्माकाशादिषु **सर्वेषु पर्यायेषु** देवमानवतिर्यग्नारकादिषु **सर्वेषु कालेषु** भूतभविष्यवर्त्तमानलक्षणेषु **अस्खलितम्** अप्रतिहतम्, पुनः किंविशिष्टम्? [3]**एकस्वरूपम्** न तु

गाथा-९८ 1. केवलज्ञानमिति । केवलं - सम्पूर्णज्ञेयं तस्य तस्मिन् वा सकलज्ञेये यज्ज्ञानं तत् केवलज्ञानम्, सर्वद्रव्यभावपरिच्छेदीति यावत् । अथवा केवलं एकं मत्यादिज्ञानरहितमात्यन्तिकज्ञानावरणक्षयप्रभवं केवलज्ञानं अविद्यमानस्वप्रभेदम् । - तत्त्वा. सि. वृ. १/१० ।।
मोहक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।। - तत्त्वा. १०/१ ।

2. सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।। - तत्त्वा. १/३० ।। सर्वद्रव्येषु सर्वपर्यायेषु च केवलज्ञानस्य विषयनिबन्धो भवति । तद्धि सर्वभावग्राहकं सम्भिन्नलोकालोकविषयम् । नातः परं ज्ञानमस्ति । न च केवलज्ञानविषयात् परं किञ्चिदन्यज्ज्ञेयमस्ति । केवलं परिपूर्णं समग्रसाधारणं निरपेक्षं विशुद्धं सर्वभावज्ञापकं लोकालोकविषयमनन्तपर्यायमित्यर्थः ।। - तत्त्वा. भा. १/३० ।।

3. तथा केवलम् - एकं मत्यादिज्ञानरहितत्वात् "नट्ठम्मि उ छाउमत्थिए नाणे" (आव. नि. गा. ५३९) इति वचनप्रामाण्यात् ।
शुद्धं वा केवलम्, तदावरणमलकलङ्कपङ्कापगमात् । सकलं वा केवलम्, तत्प्रथमतयैव निःशेषतदावरण-विगमतः संपूर्णोत्पत्तेः । असाधारणं वा केवलम्, अनन्यसदृशत्वात् । अनन्तं वा केवलम्, ज्ञेयानन्तत्वात् अपर्यवसितानन्तकालस्थायित्वाद्वा । निर्व्याघातं वा केवलम्, लोकाऽलोके वा क्वापि व्याघाताभावात् । केवलं च तद् ज्ञानं च केवलज्ञानम् यथावस्थितसमस्तभूतभवद्भाविभावस्वभावावभासि ज्ञानमिति भावना ।
- कर्म. वि. स्वो. वृ. गा. ४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिज्ञानादिवत् भेदप्रभेदादिभिर्विशकलितम् । तथा **अनन्तम्** लोकालोकप्रकाशकम् न पुनर्मनःपर्यायादिवत् परिमितिक्षेत्रगोचरम् । तथा **अप्रतिपाति** प्रतिपतनं हि स्वरूपात् प्रच्यवनं, तत्र विद्यते यस्य तदप्रतिपाति । अवधिज्ञानादीनां हि क्षायोपशमिकत्वात् परिपातोऽपि घटते, न पुनरस्य क्षायिकत्वात् । तथा **निरावरणं** निर्गतान्येकान्ततः प्रलीनान्यावरणानि घातिकर्म्मचतुष्टयलक्षणानि यस्य तन्निरावरणम्, इति ।।९८।।

एवं ज्ञानपञ्चकमभिधाय तत्र कर्त्तव्यतामुपदिशति -

एयं पंचविगप्पं नाणं नाणत्थिणा सया सम्मं ।
सुणियव्वं मुणियव्वं सद्दहियव्वं पयडियव्वं ।।९९।।

एतत् ज्ञानं पूर्वोक्तयुक्त्या **पञ्चविकल्पं** पञ्चप्रकारं **ज्ञानार्थिना** ज्ञानमभिलषता उत्तमनरेण, **सदा** सर्वकालं **सम्यक्** त्रिकरणशुद्ध्या गीतार्थमध्यस्थज्ञानमहोदधिसद्गुरुचरणसमीपे **श्रोतव्यम्** परमप्रमोदशालिना स्वकर्णाभ्यर्णचरं विधेयम्, तथा **ज्ञातव्यं**सूत्रार्थयोर्यथावत् परिशीलनेनावगन्तव्यं, तथा **श्रद्धेयं** सर्वज्ञवचनप्रामाण्यात्, विना हि श्रद्धानं सहस्रशः परिशीलितसूत्रार्था अपि पर्यटन्त्येव भविनो भवकान्तारे तथा **प्रकटनीयं** तदर्थिने जनाय स्वशक्त्यनुमानेन यथावत् प्ररूपणीयम् ।।९९।।

साम्प्रतं ज्ञानपञ्चकेऽपि यत्र विशेषोपयोगिता तदुपदर्शयन्नाह -

इत्थ य सुयनाणं चिय पाएण पयासयं पयत्थाणं ।
तप्पञ्चएण संपइ जिणा वि जं सद्दहिज्जंति ।।१००।।

अत्र पञ्चकेऽपि ज्ञानानां **प्रायो** बाहुल्येन **श्रुतज्ञानमेव पदार्थानां** जीवाऽजीवादीनां **प्रकाशकम्** अवभासकृत् **'निखिलस्यापि वाङ्मयस्य श्रुतज्ञानरूपत्वात्'** । किञ्च **साम्प्रतं** दुःषमादूषितेषु भरतादिक्षेत्रेषु **तत्प्रत्ययेन** श्रुतज्ञानाऽवष्टम्भेन **जिना अपि** भगवन्तः **श्रद्धीयन्ते** प्रतीयन्ते, तत्स्वरूपस्य तत्रैव निगदितत्वात् ।।१००।। तथा -

नज्जंति जीवगई कम्मपरिणई पुग्गलाण परिणामा ।
तह वट्टमाणतीयाणागयभावा वि सीयंति ।।१०१।।

जीवानां गतयस्तिर्यङ्नारकादिरूपाः **कर्म्मणां परिणतयः** शुभाऽशुभलक्षणाः । [1]**पुद्गलानां**

गाथा-१०१ 1. स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ।। - तत्त्वा. सू. ५/२३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणामाः स्पर्शरसवर्ण्णगन्धशब्दरूपेण तथा तथा परिणमनानि । **तथा वर्त्तमानातीतानागता भावा अपि** श्रुतबलादेवा**वसीयन्ते,** तस्य चैतद्रहस्यप्रकटनपटिष्ठत्वात् ।।१०१।।

एवं च यद् विधेयं तदाह -

तम्हा नाणमहन्नवपसत्थतित्थोवमे सया इत्थ ।
सविसेसं उज्जोगो निव्वुइकामेहिं कायव्वो ।।१०२।।

तस्मादेवं सति **अत्र** श्रुतज्ञाने **सविशेषमुद्योगः कार्यः** । किंविशिष्टे? **ज्ञानमहार्णवप्रशस्ततीर्थोपमे** । समुदितं हि ज्ञानपञ्चकं महार्णवप्रायं, श्रुतज्ञानं तु तत्र प्रशस्तावतारकल्पमतो **निर्वृतिकामैः** परमपदाभिलाषुकैः सविशेषमितरकर्त्तव्यत्यागेन तत्रोद्यमो विधेयः ।।१०२।। प्रोक्तं ज्ञानपञ्चकमधुना तदेव प्रकृते दानद्वारेऽवतारयन्नाह -

दाणं नाणस्स इमं जं सद्धासालिणो विणीयस्स ।
मेहाविस्स विणेयस्स संममब्भुट्ठियस्स पुरो ।।१०३।।
अवगन्निऊण नियतणुपीडं अवहत्थिऊण आलस्सं ।
गीयत्थेण गुरुणा सुत्तं अत्थो य दायव्वो ।।१०४।।

मत्यवधिमनःपर्यायकेवलानां दानं तावन्न घटते, अनक्षररूपत्वात् तेषाम्, अतोऽत्र **ज्ञानस्य** प्रस्तावात् श्रुतज्ञानस्य **इदं दानम्** । यदेवंविधस्य विनेयस्य गुरुणा सूत्रमर्थश्च दातव्यः प्रतिपाद्यः । किंविशिष्टस्य? **श्रद्धाशालिनः** श्रद्धा गुरुग्रन्थशुश्रूषायै क्षणे क्षणे प्रवर्द्धमाना हृदयानन्दाविष्कारिणी वासना, तया शालते श्रद्धाशाली, तस्य, अश्रद्दधाने हि नरि कृपापाथोधरैर्गुरुभिर्बह्वपि ज्ञानजलमभिवृष्टमूषरक्षेत्र इव कं गुणमुत्पादयति ? तथा **विनीतस्य** मनःशुद्ध्या सम्यग् विनयोपचारचतुरस्य, विनयपरिमलविकलो हि पुमान् सर्वत्र दुर्भग एव किं पुनर्गुरुकुले ? तथा **मेधाविनो** अर्थधारणक्षमया अतिसूक्ष्मरहस्यभेदिन्या प्रज्ञया समुपेतस्य, अप्राज्ञे हि प्रयासः शिलायां जलजारोपणमिव । एवंगुणसमग्रस्यापि पुरोऽनुपनम्रस्य नाधिकृतं ज्ञानदानमित्याह-'**सम्ममब्भुट्ठियस्स पुरो**' सम्यगागमोक्तप्रकारेण द्वादशावर्त्तादिवन्दनं विधाय पुरोऽभ्युत्थितस्य, एवंविधं च विनेयं श्रुताय सम्यगुपस्थितमवधार्य, किं कृत्वा गुरुणा सूत्रार्थौ दातव्यौ ? तदाह - '**अवगन्निऊण नियतणुपीडं**' अवगणय्य स्ववपुषो वेदनां, तथा **आलस्यम्** अनुद्यमम् **अपहस्त्य** । भवति हि निरन्तरश्रुतवाचनावितरणे वपुःपीडा, तज्ज्ञनिताश्चानुद्यमः, परं न तदा तौ पुरस्करणीयौ, महालाभ-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वात् ज्ञानदानस्य । किंविशिष्टेन **गुरुणा? गीतार्थेन** सम्यक् समयसागरावगाहनावगत-ज्ञानानुयोगरहस्येन । **सूत्रमङ्गप्रविष्टाङ्गबाह्यादि अर्थश्च** तद् व्याख्यानम् । एतद् द्वितयमपि परमवत्सलतया **देयम्** ।।१०३।।१०४।। अथैवं परमकारुणिकैर्गुरुभिर्वितीर्यमाणं श्रुतमन्तेवासिना कथं ग्रहीतव्यमित्याह -

तेणावि हु तं काले विणएणं बहुमईइ तवसा य ।
अणिगूहणेण सुत्तत्थतदुभएणं च घित्तव्वं ।।१०५।।

तेनापि विनेयेन तत् श्रुतं **ग्रहीतव्यम्** अङ्गीकर्त्तव्यम् । कथं? **काले** । तत्र व्रतप्रतिपत्तेरनन्तरं यस्य यतेर्यावद्भिर्दिनैर्यस्यागमग्रन्थस्याध्ययनेऽधिकारः स तस्य कालः । तथा च सूत्रम् -

जुग्गाण कालपत्तं सुत्तं देयं च इत्थ एस विही ।
उवहाणाइविसुद्धं सम्मं गुरुणा वि सुद्धेण ।।१।। [पञ्च व. गा. ५७०]
तिवरिसपरियागस्स उ आयारपकप्पनाममज्झयणं ।
चउवरिसस्स उ सम्मं सूयगडं नाम अंगंति ।।२।।
दसकप्पव्ववहारा संवच्छरपणगदिक्खियस्सेव ।
ठाणं समवाउ च्चिय दो अंगे अट्ठवासस्स ।।३।।
दसवासस्स विवाहा इक्कारसवासयस्स य इमे उ ।
खुड्डियविमाणमाई अज्झयणा पंच नायव्वा ।।४।।
बारसवासस्स तहा अरूणववायाइ पंच अज्झयणा ।
तेरसवासस्स तहा उट्ठाणसुयाइया चउरो ।।५।।
चउदसवासस्स तहा आसीविसभावणं जिणा बिंति ।
पन्नरसवासगस्स य दिट्ठीविसभावणं तह य ।।६।।
सोलसवासाईसु य इक्कुत्तरवड्ढिएसु जहसंखं ।
चारणभावणमह सुमिणभावणा तेयगनिसग्गा ।।७।।
एगुणवीसगस्स उ दिट्ठीवाओ दुवालसममंगं ।
संपुन्नवीसवरिसो अणुवाई सव्वसुत्तस्स ।।८।। इत्यादि । [पञ्च व. गा. ५८२-५८८]

तस्मादकालपरिहारिणा काल एवाध्येतव्यम्, तथा **विनयेन** द्वादशावर्त्तवन्दनादिपूर्वम् । अयमेव श्रुताध्ययने विधिः । उक्तं च -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विणओणएहिं पंजलिउडेहिं छंदमणुवत्तमाणेहिं ।
आराहिओ गुरुयणो सुयं बहुविहं लहु देइ ।।१।। तथा -
उवहियजोगदव्वो देसे काले परेण विणएणं ।
चित्तण्णू अणुकूलो सीसो सम्मं सुयं लहइ ।।२।। [ ]

बहुमत्या गुरुषु बहुमानेन । नूनं गणभृद्देश्याः खल्वमी मे गुरव इत्यादरपरेण । **तपसा** तपःपूर्वम् । यस्य श्रुतग्रन्थस्य यादृक्प्रमाणं तपस्तद् विधायेत्यर्थः । **अनिह्नवेन** श्रुतगुरोरन-पह्नवेन, गुरुजनापह्नवनं हि महतेऽनर्थाय, दिवाकीर्त्तिदत्तगगनगमनविद्याऽपलापकदकशूकरवत् । **सूत्रार्थतदुभयेन,** पूर्वमखण्डानि आगमसूत्राणि सादरमधीत्य ततः परिपाट्या तदर्थपरिशीलनं करोति, न पुनः पल्लवग्राहितया ।।१०५।। एवं श्रुतस्य दाने चादाने च विधिमभिधाय एतद्विषयमेवोदाहरणमुदीरयन्नाह -

इत्थ य सुत्तत्थाणं विहिगहणे अज्जरक्खियायरिओ ।
तस्सेव य विहिदाणे दिट्ठंतो वइरसामिगुरू ।।१०६।।

अत्र च सूत्रार्थयोर्विधिग्रहणे, तयोरेव च यथाविधि वितरणे श्रीमदार्यरक्षित-श्रीवज्रस्वामिनौ दृष्टान्तः । किञ्चित्सम्प्रदायसापेक्षश्चैतयोरपि व्यतिकरः । स चायम् । श्रीः ।

।। श्रुतग्रहण-वितरणोपरि श्रीआर्यरक्षित-वज्रस्वामिनोः कथानकम् ।।

अत्थि इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे उद्दायणनिवनिवेसियं नियरिद्धिपयरिसोवहसियतियसपुरं दसपुरं नाम नयरं । तत्थ य [1]जजणजाजण-अज्झयणअज्झावण-दाणप्पइग्गहपमुहप्पहाणमाहणोचियसयलकम्म-कुसलो पयइभद्दओ सोमदेवो नाम [2]भूमिदेवो परिवसइ । तस्स य सहावसोमा रुद्दसोमा नाम पणइणी । सा य तहाविहसुहकम्मपरिणइवसेण पढमं चिय अहिगयजीवाजीवा उवलद्धपुन्नपावा आसवसंवरविणिज्जराबंध-मुक्खाइवियारविसारया निग्गंथे पवयणे सम्मं [3]पत्तट्ठा लद्धट्ठा गहियट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिंजधम्माणु-

---

गाथा-१०६ 1.यजन याजन इति ।।

2. **भूमिदेवः** - भूदेवः ब्राह्मण इत्यर्थः ।।

3. **पत्तट्ठा** - प्राप्तार्थः अधिकृते कर्मणि निष्ठां गतः प्रज्ञः अनु. १७७ । प्राप्तार्थः लब्धोपदेशः औप. ६५ ।। **लद्धट्ठा** - लब्धार्थं अर्थश्रवणात् भग. १३५ । **गहियट्ठा** - परस्मात् भग. ५४२ । अर्थावधारणात् गृहीतार्थम् भग. १३५ । गृहीतः स्वीकृतोऽर्थो मोक्षमार्गरूपो येन स गृहीतार्थः । सूत्र. २ श्रु. ७ अ. ।। अवधारितत्त्वं दर्श. ।। **विणिच्छियट्ठा** - प्रश्नानन्तरं अत एवाभिगतार्थः भग. ५४३ । ऐदम्पर्यार्थस्योपलम्भात् । भग. १३५ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रायरत्ता इहलोइयसुहनिप्पिवासचित्ता सासयसुहसाहिलासा कालं वोलेइ । तीसे य सयलजणमणाणंदणा दुवे णंदणा । जिट्ठो अज्जरक्खिओ । कणिट्ठो फग्गुरक्खिओ त्ति । तत्थ अज्जरक्खिओ मुंजीबंधणाओ आरब्भ पयइपयणुत्तणेण नाणावरणस्स पिउणो चेव समीवे अहिज्झिओ सयलं पि निथकुलोचियं किरियाकलावं । कमेण य पवड्ढमाणावरावरगंथ-सत्थज्झयणमणोरहो महया निब्बंधेण अणुन्नविऊण गुरुजणं पत्तो पाडलिपुत्तं ।।

तत्थ य ठाऊण कस्स वि सयलविज्जाविसारयस्स दियविंदारस्स मंदिरे विमुक्कावरवावारो सम्ममहिज्झिउमारद्धो । लोउत्तरविणयावज्जियहिययाओ उवज्झायाओ थेवदिणेहिं पि तेण अहिज्झियाणि [१]सिक्खा - [२]कप्प - [३]वागरण - [४]छंद - [५]जोइस - [६]निरुत्त - [७]रिउवेय - [८]जजुवेय - [९]सामवेय - [१०]अथव्वणव्वेय - [११]मीमंसा - [१२]नायवित्थर - [१३]धम्मसत्थ - [१४]पुराणप्पभिईणि चउद्दसविज्जाठाणाणि । तओ सो जलहरु व्व अज्झावयजलनिहिणो विज्जाजलुप्पीलमादाय पडिनियत्तो नियनयराभिमुहं । पुरपरिसरसंठिए य तम्मि जाओ जणप्पवाओ । जहा किर चउवेयजलहिकुंभुब्भवो अज्जरक्खिओ समागओ त्ति । तं च सोऊण दियभत्तो विणिग्गओ [4]पच्चोणिं नरनाहो । ससम्माणं च समारोविऊण बंधुरसिंधुरखंधे महया महूसवेण पवेसिओ पुरं । ठिओ य नियमंदिरसमासन्नविज्जासालाए । तत्थ ठियस्स तस्स निरुवमविज्जालाभप्पमुइयमणेहिं सयणवग्गेहिं समुब्भियकणयथंभनिबद्धरयणतोरणसणाहो मंगलगेयमुहलकुलसुवासिणीजणपउत्तविचित्तमुत्ताहलसत्थिय-वित्थारो पारद्धो वद्धावणयविही । नरनाहपूयणिज्जु त्ति नायरलोयपइदिणोवणिज्जमाणविविहोवायणसएहिं थोवदिणेहिं पि पत्तो सो महंतं रिद्धिपयरिसं । कइवयदिणावसाणे य संभरियमज्जरक्खियस्स । जहा अहो मे पमाओ । जं देसंतरागएण अज्ज वि पयइपुत्तवच्छलाए नियजणणीए न पणमिया पायपउमा । जा किर निरंतरं मह चेव नाममंतक्खरपरावत्तणपरायणा अत्तणो मणं विणोएइ । सा कहमित्तियमित्तं मम पवासवेमणस्सं सहिस्सइ त्ति चिंतंतो समुट्ठिऊण कयमज्जणोवयारो घणधुसिणंगरागदुगुणदिप्पंतदेहच्छवी कंठकरचरण-निबद्धललंतमणिकणयभूसणो धरियधवलायवत्तो दाविंतो नियविभूइसंभारं पविट्ठो गेहब्भंतरे । दूराओ च्चिय महियलल्लुलंतचारुचामीयराहरणगणेण तेण पणमिया सविणयं जणणी । एसा वि य जीव नंद अक्खयाउओ होसु त्ति भणिऊण उदासीणेव ठिया । तओ पणमिऊण भणिया अज्जरक्खिएण नियजणणी । अम्मो ! कीस संगहियसमग्गवेयवेयंगरहस्से नायरनरनाहपमुहनीसेसजणपूयणिज्जे चिरेण देसंतराउ उवणए ममाइ तुमं पुव्वं व न पीइं पयडेसि । तओ पडिभणियं रुद्दसोमाए । पुत्तय ! केरिसं दिट्ठिवायमहिज्झिऊण तुममागओ जेण मह मणं पीणासि ? । केवलं हिंसापवत्तगकुसत्थपरिसीलणेण अप्पाणं परं च दुग्गाहेमाणं दुरंतदुग्गईए य पयडंतं भवंतं विभाविऊण खणेण मणे [5]झिज्झामि । तं च सोऊण जायमज्जरक्खियस्स हियए अहो ! धिरत्थु अइकढिणपाढसुढियकंठस्स मम इत्तियमित्तो गंथत्थसत्थपरिसीलणपरिस्समो । जप्पज्जयमेयरूवमंबा मणे

4. **पच्चोणी** - दे. संमुख आगमन इति ।। - पा. स. म. पृ. ५/१० ।।

5. **झिज्झ** अक (क्षि) क्षीण होना इति भाषायाम् । - पा. स. म. पृ. ३६७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खेयमुव्वहइ त्ति चिंतंतो भणिउमारद्धो । अंब ! पसीयसु तुमं संपयं पि दिट्ठिवायाहिज्झणेण पूरिस्सामि तुह मणोरहे । केवलं उवइससु तदुवज्झायं जेण तप्पायपउमंतिए दिट्ठिवायाहिगमं करेमि । तं च सोऊण तणयस्स तहाविहविणयवित्तीए वयणाणुकूलणेण य पमुइयमणाए सिचयंचलं भामंतीए भणियं रुद्दसोमाए । वच्छ ! सज्झमियाणिं मम नंदणोसि । न लज्जामि य संपयं तुमए पुत्तेण । किं तु पुत्तय ! अंगीकयसमणोवासगभावस्स तुह दिट्ठिवायज्झयणमणोरहो संपज्जिही । तओ भणियं सोमनंदणेण - अम्मो ! किमित्थ विरुज्झइ। सव्वहा जहा जहा दिट्ठिवायाहिगमजोग्गो होहामि तहा तहाएसेण सव्वं करिस्सामि । केवलमुवइससु तदज्झावगगुरुणु त्ति । तओ संलत्तं रुद्दसोमाए पुत्त ! मह चेव इक्खुवाडोवस्सए संति भयवं तोसलिपुत्तायरिया । तप्पायपउमपज्जुवासणाए तुमं कयकिच्चो होहिसि । तओ वज्जरियमज्जरक्खिएणं । अम्ब ! जइ एवं ता वइस्सामि पभाए तप्पायपउमंतियं ति भणंतो समुट्ठिऊण गओ सट्ठाणं । तत्थ य अहो दिट्ठिवाओ दरसणवियारु त्ति नामं पि ताव सुंदरमिमं ति तग्गयमेव चिंतस्स कहं पि वोलीणा जामिणी । पभायपायाए य विभावरीए कयसयलतक्कालसमुचियकायव्वो ईसीसि तिमिरतरंगिएसु वि पुरपहेसु अकुंठगुरुदंसणुक्कंठाविसंठुलिज्जमाणमाणसो तमेव इक्खुवाडमुद्दिसिय विणिग्गओ नियमंदिराओ सोमनन्दणो ।

इओ य तप्पिउणो सोमदेवस्स पियवयंसो उवनगरं निवासी एगो पहाणमाहणो समूलपत्ताणि नव उच्छूणि दसमस्स य खंडमादाय तस्स चेव सम्मुहं समागओ । मणागमंधयारु त्ति सम्ममणुवलक्खिऊण तेण भणिओ अज्जरक्खिओ । भद्द ! होउ तुह सिद्धी । कोसि तुमं ति । तेणावि समुवलक्खिऊण भणियं । अज्ज ! अज्जरक्खिओ खु अहं । तओ ससंभमं अवसप्पिऊण गाढमालिंगिओ तेण सोमनंदणो भणिओ य । वच्छ ! अइक्कंतवासरे अवरावरघरवावारवावडत्तणेण न जायं तुह दंसणं । तओ चेव दुम्मणायमाणमाणसस्स मह कहं कहंपि वोलीणा एसा सव्वरी । संपयं पुणं कहं रित्तहत्थो पियमित्तपुत्तं पेक्खामि त्ति इमाणि उच्छूणि समादाय तुह चेव दंसणसयन्हो समागओ म्हि । तओ भणियमज्जरक्खिएण । ताय ! साहु विहियं । वयह तुब्भे मंदिरब्भंतरं । समप्पेह उच्छूणि मह जणणीए । भणियव्वा य एसा जहा तुह पुत्तस्स मंदिराओ निग्गच्छंतस्स अहमेव पढमं सम्मुहो संजाओ त्ति । अहं पुण कज्जंतरेण गमिस्सामि । सो वि तह त्ति पडिवज्जिऊण पविट्ठो मंदिरब्भंतरं । पणामिया य उच्छुणो रुद्दसोमाए साहिओ य अज्जरक्खियसमागमवइयरो । पयइचउरचित्ताए चिंतियं च तीए । अवस्समिमिणा सुहसउणेण मह नंदणो पडिपुन्नाणि नव पुव्वाणि दसमस्स य खंडमहिज्जिहि त्ति । अज्जरक्खिओ वि नूणमेएण सउणेण मम एयस्स दिट्ठिवायस्स नव अज्झयणाणि वा वत्थूणि वा दसमस्स खंडं हिययंगमं भविस्सइ त्ति विभावंतो पत्तो उच्छुवाडदुवारदेसं । तत्थ य खणं ठाऊण वीमंसिउमारद्धो । जहा नूणं राईणं च गुरूणं पि अमुणियतदुवसप्पणपयारेहिं सहसा नोवसप्पणं कायव्वं । ता चिट्ठामि खणमिहेव । बहुप्पभायाए य विभावरीए गुरूण पायपउमपणमणत्थमुवणमंतेहिं समणोवासगेहिं समं मज्झे पविसस्सं ति चिंतयंतस्स चेव तस्स समागओ तत्थ ढड्ढरो नाम

6. **दिट्ठिवाय** - दृष्टिपात (वाद) दृष्टयो दर्शनानि नया वा उच्यन्ते अभिधीयन्ते पतन्ति वा अवतरन्ति यत्रासौ दृष्टिवादो दृष्टिपातो वा । प्रवचनपुरुषस्य द्वादशेऽङ्गे, स्था० - ४ठा. १ उ० । दृष्टिर्दर्शनं सम्यक्त्वाऽऽदि, वदनं वादो, दृष्टीनां वादो दृष्टिवादः । - प्रव. १४४ द्वार । सम. १२९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सड्ढो । सो पयइदुवारदेसाओ च्चिय कउत्तरासंगो पडुवन्नविन्नासेण दूरविसप्पिणा य सरेण निसीहियातिगं काऊण नमो खमासमणाणं ति भणंतो पविट्ठो उवस्सयब्भंतरं । तहेव य खमासमणदाणपुव्वं पंचंगचुंबिय-महीवट्ठेण पणमिया गुरुणो सेससाहुणो य । इरियावहियापडिक्कमणपुव्वं च सुत्तुत्तजुत्तीए दुवालसावत्तवंदणेण वंदिऊण भयवंतं तोसलिपुत्तायरियं पयट्टो सज्झायज्झयणाइसु । अज्जरक्खिएणावि पयइपडुपन्नेण तं सव्वमवहारिऊण तहेव विहियं । केवलमवंदिऊण ढड्ढरं समुवविट्ठो गुरूणं समीवे । तओ अहिणवधम्मो को वि एसु त्ति संभासिओ सूरीहिं । भद्दमुह ! कत्तो तुह धम्माहिगमु त्ति । तओ मायामयविप्पमुक्केण भणिय-मज्जरक्खिएण । भयवं ! इमाओ समणोवासगाउ त्ति । तओ विन्नत्तं सन्निहियसाहूहि सूरीणं । भयवं ! स एस रुद्दसोमाणंदणो समग्गवेयवेयंगपारगामी, जस्स अइक्कंतदिणे सिंधुरखंधाधिरूढस्स महीवइणा महामहूसवेण पुरपवेसो कारिओ । पढमो य एस पढमगुणठाणगठियाणं न नज्जइ कहिं पि समणोवासगसामायारिं सिक्खिओ त्ति । तओ वज्जरियमज्जरक्खिएण । भयवं ! खणे खणे परिणमणधम्माणो मणपरिणामा पाणीणं, तो इयाणिं मे परिणयं समणोवासगत्तं । केवलं काऊण महापसायं अज्झावेह मं दिट्ठिवायं ति । तओ संलत्तं तोसलिपुत्तायरिएहिं । देवाणुप्पिया ! पडिवन्नसमणधम्मस्स चेव दिट्ठिवायाहिगमाहिगारो । तत्थ वि न हि पढमं चिय, किं तु कमजोगेणं । तं च सोऊण तहाभव्वत्तवसओ वियलंतचरणावरणकम्मबंधणेण भणियं सोमनंदणेणं । भयवं ! को विरोहो । पसीयह, पव्वावेह इयाणिं पि ममं । केवलं मन्निमित्तो भविस्सइ कित्तियमित्तो वि देसंतरविहरणपरिस्समो भयवंताणं । जओ गहियदिक्खस्स इह चेव ठियस्स मम पुव्वाणुरायरत्तचित्ता नायरनरनाहाइणो कयाइ कुणंति किंपि वयविग्घं पि । सूरीहिं वि 'गरुओ एस सुयहरो भविस्सइ त्ति' सुयबलेण मुणिय सव्वं तहत्ति पडिवज्जिऊण तक्खणमेव पव्वाविओ इमो । विहरिया य अन्नत्थ गामनगराईसु । अज्जरक्खिएणावि भावसारं पडिवज्जिऊण पव्वज्जं निरवज्जाहारमित्तनिव्वत्तियदेहोवट्टंभेण मुसुमूरियदुद्दमिंदियदप्पमाहप्पेण सम्ममहियासियसुदुस्सहपरीसहोवसग्गवग्गेण निरंतरं गुरुचरणसुस्सूसण-गाढापरेण थोवदिणेहिं पि अहिज्जियाणि इक्कारस वि [7]अंगाणि । जत्तियमित्तो य दिट्ठिवाओ तोसलिपुत्तायरि-याणं परिप्फुडो आसि तत्तियमित्तो कओ हिययंगमो । निसुयं च तया तेण वुड्ढवायाओ जहा - एयंमि समए पगिट्ठो साइसओ य दिट्ठिवाओ सिरिवयरसामिणो । सो य भयवं संपयं पुरीए विहरइ त्ति । तओ दिट्ठिवायाहिगमपवद्धमाणसद्धेण सोमनंदणमुणिणा विणयविरइयंजलिणा तत्थ गमणत्थमापुच्छिया भयवंतो तोसलिपुत्तायरिया । तेहिं वि जोगु त्ति कलिय सायरं विसज्जिओ एसो । गच्छंतो अंतरा संपत्तो उज्जेणीए पविट्ठो य चिरपरिणयचरणधम्माणं सुयसागरपारगामीणं परमगीयत्थाणं[8] सिरिभद्दगुत्तायरियाणमुवस्सए । पणमिया य विणयपुव्वं सूरिणो । तेहिं वि सम्ममुवलक्खिऊण समुल्लसियातुल्लवच्छल्लेहि गाढमालिंगिऊण निवेसिओ

---

7. **अंग** - लोकोत्तराणि प्रवचनस्य द्वादश अङ्गान्याचाराङ्गादीनि । स्था० ।
अङ्गप्रविष्टश्रुतभेदा यथा - से किं तं अंगपविट्ठं दुवालसविहं पन्नत्तं तं जहा । आयारो[1] सूयगडो[2] ठाणं[3] समवाओ[4] विवाहपन्नत्ती[5] नायाधम्मकहाओ[6] उवासगदसाओ[7] अंतगडदसाओ[8] अनुत्तरोववाइदसाओ[9] पण्हावागरणाइं[10] विवागसुयं[11] दिट्ठिवाओ[12] य ।। - नं. आ. म. प्र. ध. ।।

8. **गीयत्थ** - गीतार्थः वस्त्रपात्रपिंडैषणाध्ययनादिच्छेदसूत्राणि च सूत्रतोऽर्थतस्तदुभयतो वा येन

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियासणसमीवे । भणिओ य वच्छ ! धन्नो कयपुन्नो तुमं । पसंसणिज्जं ते पंडिच्चं । निप्पज्जवाओ तुह गुणगणाणुराओ । जेण तए माहणकुलुप्पन्नेणावि चिरपरिचियं परूढदिढमूलं पि समुलमुम्मूलिऊण मिच्छत्तं, पडिवन्नो एस लीलाइ च्चिय विइन्नसग्गापवग्गसम्मो समणधम्मो सम्मं परिणओ य । संपयं च एयंमि अवसरे समागयस्स विसेससागयं तुह । जओ विहिविहियदुविह[9]संलेहणोहमियाणिमणसणं काउकामु म्हि । अओ होयव्वं तुमए निज्जामगेणं । तेण वि पयइविणीएण तं सव्वं तह त्ति सीसेण पडिच्छियं । भद्दगुत्तायरिया वि ठाविऊण ववत्थाए नियगच्छं कयकिच्चा पडिवन्ना अणसणं । ठिओ य सम्ममेगग्गमणो निज्जामगभावेण रुद्दसोमानंदणो मुणी, भणिओ य कयाइ एगंते भद्दगुत्तायरिएहिं । जहा-वच्छ ! गमिस्ससि तुमं दिट्ठिवायज्झयणत्थं वयरसामिणो समीवे । केवलं विभिन्नोवस्सयठिए अहिज्जियव्वं । जओ एरिसो को वि लोउत्तरो तेसिमंतेवासिगणे पणयपयरिसो, जेण जो कोई सोवक्कमाऊ तेहिं समं एगमंडलीए एगसिं पि भुंजइ सो नियमा तयणु पाणे परिच्चयइ त्ति । तेण वि तं तहेव पडिवन्नं । सूरिणो वि सम्ममाराहिय समाहिमरणा कमेण कालगया पत्ता तियसलोयं । इयरो वि विहरंतो कइवयदिणेहिं दिणावसाणसमये पत्तो सिरिवयरसामिसमलंकियाए पुरीए । वसिओ य परिसरि च्चिय तं रयणिं । तीए चेव जामिणीए थोवावसेसाए दिट्ठो सुमिणो सिरिवइरसामिणा । जहा किर केणावि आगंतुगपाडिच्छगेण पायसपडिपुन्नं मह पडिग्गहं पीयं । थेवमित्तं चेव तत्थावत्थियं ति । पुच्छिया य पभाए सुमिणत्थं नियपरिवारमुणिणो अन्नमन्नं वाहरंता य भणिया । भो भो अयमेयस्स सुमिणस्स परमत्थो । जहा किर कोइ अतिही मम समीपे समागमिस्सइ । सो य नीसेसं पि दिट्ठिवायमहिज्जिही । कित्तियमित्तं चेव परं तेणापढियं मम सयासे ठास्सइ त्ति भणंताण चेव काऊणं निसीहियं पविट्ठो अज्जरक्खिओ तदुवसयं । सुत्तुत्तजुत्तीए य दुवालसावत्तवंदणेण वंदिया सूरिणो । संभासिओ य भयवया । वच्छ ! कत्तो तुहागमणं ति तओ सीससंघडियकरकमलजुयलेणं विन्नत्तं सोमनंदणमुणिणा । भयवं ! तोसलिपुत्तायरियाणं पायपउमंतियाओ दिट्ठिवायमहिज्जिउं तुम्हाणं पयमूले समागओ म्हि । तओ सम्मं विभाविऊण भणिओ भयवया । भद्द ! तुमं सो अज्जरक्खिओ । तेणुत्तं भयवं ! आमं । किं वा अमुणियं नाणनिहीणं तुम्हाणं । तओ सहरिसं वागरियं वयरसामिणा । वच्छ ! सागयं ते । कहिं तुह पडिग्गहोवगरणाइयं । तेणुत्तं अमुगम्मि उवस्सइ त्ति । पुणो भणियं वयरसामिणा । वच्छ ! विभिन्नोवस्सयठियस्स दुक्करं तुहज्झयणं । तओ सविणयं पुणो भणियमज्जरक्खिएण भयवं ! अंतरा अवंतीए संगयाणं भयवंताणं भद्दगुत्तायरियाणं समाएसेणाहं पुढो वसहीए ठिओ म्हि । तओ ईससंकियचित्तेण

सम्यगधीतानि स गीतार्थः । व्य. प्र. २४ आ० । स्वयं व्यवहारमवबुद्ध्यते प्रतिपद्यमानो वा प्रतिपद्यते व्यवहारं स गीतार्थः । व्य. प्र. ९ आ० । सूत्रार्थतदुभयविदः अन्यथा हेयोपादेयपरिज्ञानयोगात् ते एतादृशा एवंविधा गीतार्था गणावच्छेदिनः । व्य. प्र. १७२ आ० ।।

9. **संलेहणा** - संलिख्यते शरीरकषायादीनि संलेखना । - तपोविशेषे स्था. २ ठा. २ उ. ।।
आगमोक्तेन विधिना शरीराद्यपकर्षणे । - प्रव. १३५ द्वार ।।
संलेहणा इह खलु, तवकिरिया जिणवरेहिं पण्णत्ता । जं तीए संलिहिज्जइ, देहकसायाइ णियमेणं ।।
- पञ्चव. गा. १३६६ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कओवओगेण य विन्नाओ परमत्थो सिरिवयरसामिणा । सप्पसायं च भणिओ इमो । भद्द ! महंतो हि ते भयवंतो, न अन्नहा समाइसंति । ता तत्थ चेव ठिओ जहाखणमुज्जुत्तचित्तो अहिज्जसु तुमं ति । सो वि तं सव्वं तह त्ति पडिवज्जिऊण पढिउमारद्धो । कमेण य सुस्सूसाइसमग्गगुणसंगयमहोअहिणा तेण अहीयाणि पडिपुन्नाणि नव पुव्वाणि । समुवट्ठिओ य दसमपुव्वज्झयणत्थं । भणिओ सूरीहिं । जहा वच्छ ! पढसु पढमं ताव एयगयाणि विसमजमगपयाणि त्ति । सो वि समारद्धो ताणि पढिउं । इओ य दसपुराओ संदिट्ठमम्मापिऊहिं अज्जरक्खियस्स । जहा वच्छ ! कीस अज्झंतनिरणुक्कोसमाणसो होऊण दूरदेसंतरं समस्सिओ । एयं खु अम्ह माणसे आसि - जं किर उज्जोइस्ससि सयलं पि कुलं, पडिबोहिस्ससि सुहिसयणबंधुवग्गं, पूरिस्ससि अम्हाण मणोरहे । ता किं ति वि इत्तियमित्ते काले सोयवियलाणमम्हाण नियदंसणमित्तेणावि मणं न पीणेसि त्ति भुज्जो भुज्जो भणिज्जमाणो वि अज्झंतज्झयणाणुरायरत्तचित्तो जा न किंचि पच्चुत्तरं दावेइ, ताव तेहिं गाढनिब्बंधं सिक्खविऊण पेसिओ तयंतिए तस्स चेव लहुसहोयरो फग्गुरक्खिओ । सो वि कमेण समागओ तत्थ भत्तिबहुमाणपुव्वं च पणमिऊण जिट्ठबंधुणो पायपउमं परमपणयगब्भिणं भणिउमारद्धो । जहा - भाय ! कीस निक्किंत्तिमाणुरायइत्तचित्तेसु वि अम्मापिइसुहिसयण-बंधवेसु एवमेगंतसो फरुसमणसा तुब्भे संजाया । किं च । भयवं ! जइ वि उदग्गभववेरग्गमुग्गरमुसुमूरिय-सिणेहनियलस्स तुह मणे न मणागं पि तप्पज्जओणुराओ । तहावि सव्वसत्तसाहारणी करुणा वि पणुल्लिउमुचिय त्ति । तं च सोऊण मणागमुक्कंठिओ सन्नाइजणदंसणे सो । तत्थ गमणत्थमापुच्छइ सिरिवयरसामिं । भयवया वि भणिओ पढसु ताव जमगपयाणि त्ति । तं च सोऊण सुविणीओ त्ति तुसिणाओ ठाऊण पुव्वं व पढिउमारद्धो । कइपयदिणावसाणे य पुणो भणिओ फग्गुरक्खिएण - भयवं ! किं विसुमरिओ अहं तुम्हाणं जं मणागमित्तं पि गमणुच्छाहं न धारेह । जओ सयलो वि सुहिसयणवग्गो पव्वज्जापडिवज्जणकउज्जमो वि तुम्हाणमेवागमणं पडिवालइ त्ति । तओ भणियमज्जरक्खिएण - वच्छ ! को इत्थ पज्जओ । जइ ताव तुमं पढमं इहेव मह सयासे पव्वयसि ता तेसिं पि नज्जइ संजमजोगुज्जमो । तओ उत्तमसत्तेण विन्नत्तं फग्गुरक्खिएण । भयवं ! किमित्थाणुचियं । को पीऊसपाणे परम्मुहो । ता पसीयह देह इहेव मह भवसयसहस्सदुहोहदलणदक्खं जिणदिक्खं ति । एवं सोऊण साहु साहु त्ति भणंतेण सहरिसमब्भुट्ठिओ सुयभणियविहाणेण पव्वाविओ फग्गुरक्खिओ अज्जरक्खिएण । कइवयदिणाइक्कमे पुणो गंतुं समुत्तेइओ फग्गुरक्खियमुणिणा सो दसपुरविहाराय गुरुमापुच्छेइ पुणो वि भणिओ भयवया पढसु ताव विसमजमगपयाणि त्ति । तओ अहो पिच्छं कहं सयणोवरोहगुरुनिओगसंकडे पडिओ म्हि । ता का गई । तहा वि अलंघणिज्जं गुरुसासणं ति चिंतंतो पुणोवि तहेव पढिउमारद्धो । थेवदिणेहि य अज्झंतविसमेण पराजिओ जमगपाढेण विणयविरइयंजली गुरुं विन्नवइ । भयवं ! कित्तियमित्तं मए दसमपुव्वस्स अहीयं कित्तियं चावसेसं ति । तओ ईसि विहसिऊण भणियं वयरसामिणा - वच्छ ! अहीओ बिंदु, अवसिस्सइ समुद्दो, परं मा उव्वियसु, होऊण धीरो अहिज्जसु, न तुह पन्नाए किंपि अगोयरं ति समुच्छाहिओ भग्गमणपरिणामो वि गुरूवरोहेण पुणो पढिउमारद्धो । कइवयदिणावसाणे य पुणो वि गमणुम्मुहं तं मुणिऊण चिंतियं वयरसामिणा । हंत किमेवं समुच्छाहिज्जमाणस्स वि इमस्स पुणो पुणो मणपरिणामो भज्जइ त्ति ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजाओ सोवओगो, मुणियं च जहा - नूणमय-मित्तो गओ न पुणो समागमिस्सइ । थोवावसेसं च अम्हाणं पि आउयं । ता ठाइस्सइ मह चेव सयासे दसमं पुव्वं, न पुरो पवित्तहि त्ति सम्मं परिभाविऊण विसज्जिओ अज्जरक्खिओ वयरसामिगुरूहिं । पत्तो य कमेण दसपुरं । पुरपरिसरसमावासियं च तं सोऊण अमंदाणंदपूरिज्जमाणमाणसा समुवट्ठिया सहरिसनायरनरनाहसुहिसयणाइणो सरुद्दसोमासोमदेवो य । पणमिओ य विणयविणमंतमोलिमंडलेहिं तेहिं सप्पणगं मुणिपुंगवो । उवविट्ठा य तस्स मुहससिजुन्हासयन्हलोयणचउरा पुरो धरणिवट्ठे । अज्जरक्खिओ वि भयवं विभाविऊण तेसिं धम्मसवणसावहाणत्तणं तओ सजलजलहरगज्जिगभीराए सवणसुहयाए वाणीए भणिउमारद्धो ।

भो भो देवाणुप्पिया कहिं पि पयंडचंडत्तमायंडमंडलुम्मीलियतिव्वदुव्वयणकिरणजालकरालंतराले, कहिं पि समुन्नयमाणवम्मीयकूडसंकडे, कहिं पि गुविलनियडिझुसिरदुस्संचरे, कहिं पि अगाहलोहावत्तगत्ताग-भीरतले, कहिं पि हासाइछक्कमक्कडगलालाजालसंछन्ने, कहिं पि विगहागिहकोइलगसंकुले, कहिं पि कामकोलविदलिज्जंतविसट्टसीलकुट्टिमतले, कहिं पि पमायमूसयपुंजीक[य]रयपडले, कहिं पि दारुणन्नाण-दुद्धरंधयारदुस्संचरे सिवपुरपयट्टभूरिभव्वजणविप्पइन्ने सुन्ने एयंमि भवणवणे खणं पि न जुत्तं वसिउं तुम्हारिसाणं सयन्नाणं । जओ एयंमि निवसंताणं अमुद्दमोहनिद्दामुद्दियविवेयलोयणाणं पाणीणमवस्सं गसइ रागोरगो । तप्पज्झया य पसरइ अतुच्छा विसमविसयविसमुच्छा । वियंभइ निब्भरो मिच्छत्तपित्तज्जरो । न उम्मीलइ मणागं पि पयत्थपयडणपरा दिट्ठी । कमेण य मुज्झंति सज्झरियचरित्तपाणेहिं पि । एवं च ठिए होऊण परमत्थदंसिणो नियनियपओयणपसाहणपयडियकित्तिमपेमपवंचेसु सुहिसयणकलत्तपुत्तेसु छित्तूण ममत्तबंधणं निक्खमह इमाओ सुन्नभवणवणाओ । पडिवज्जह निरुवमाणंदसुहसंदोहदाणदुल्ललियं सव्वसंग-चायरूवं सव्वविरइं, जहसत्तीए सम्मत्तमूलियं देसविरइं वा । एवं च सोऊण निपीयपीऊसपूर व्व संपत्तति-हुयणकमलाविलास व्व अजरामरपयपत्त व्व संजाया सयला वि सा परिसा । पडिवन्ना य राइणा सम्मत्तमूला देसविरई । अंगीकयाओ अज्जरक्खियसुहिसयणवग्गेहिं सुबहूहिं देससव्वविरईओ । रुद्दसोमा वि सव्वहा कयकिच्चमप्पाणं मन्नंती अविसंवाइणीहिं सुत्तुत्तजुत्तीहिं पडिबोहिऊण सोमदेवं सममेव तेण परिपूरिऊण धणकणयदाणाइणा दीणाणाहाइमणोरहे महामहूसवेण नियतणयचरणमूले पडिवन्ना संजमधुरं ति ।

तदेवं यथा दृष्टिवादाध्ययनप्रवर्द्धमानविशुद्धश्रद्धेन भगवता श्रीमदार्यरक्षितेन कुलक्रमागतं ब्राह्मण्यमगण्यं च भूपतिप्रतिपत्तिदानसम्मानस्वजनगौरवादिकमेकपद एवावगणय्य प्रतिपन्न-प्रव्रज्येन श्रीवज्रस्वामिनश्चरणसरसिजोपान्ते विनीतवृत्तिना सूत्रार्थयोरध्ययनमकारि, तथैवापरैर-प्यन्तेवासिभिर्विधेयं । यथा च सकलसङ्घलोकोपकृतिकृतप्रतिज्ञेनापि भगवता श्रीवज्रस्वामिना तस्य तथाविधमध्ययनोद्योगमभिवीक्ष्य कृतकृत्येनापि परमकारुणिकतया कियदप्यात्मनस्तनुक्लेशादिकमप्यादृत्य सूत्रार्थयोर्दानं विदधे, तथैव श्रुतसागरपारीणमतिभिरपरसूरिभिरपि विधेयमिति भावः ।।१०६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमणगारिगोयरमगारिविसयं तु नाणदाणमिणं ।
जं तेसि पढंताणं संपाडइ पुत्थयाईयं ।।१०७।।

एवं पूर्वोपवर्णितन्यायेन **अनगारगोचरं** साधुविषयं ज्ञानदानमुदीरितम् । **अगारिविषयं तुः** पुनरर्थे गृहमेधिगोचरं पुन**र्ज्ञानदानमिदं** वक्ष्यमाणस्वरूपं तदेव दर्शयति । **यत्** स श्रमणोपासक**स्तेषामनगाराणं पठतां** श्रुतं परिशीलयतां **पुस्तकादिकं** पुस्तकोपाध्यायप्रमुखं **सम्पादयति** सङ्घटयतीति ।।१०७।। तथा -

विरएइ उवट्ठंभं आहारेणं च चउव्विहेणावि ।
तह वत्थपत्तओसहसिज्जाईहिं विसुद्धेहिं ।।१०८।।

विरचयति निर्मिमीते, किं **तदुपष्टम्भं?** प्रस्तावात् ज्ञानाधारस्य मुनिजनदेहस्य, केन? **आहारेणं** भोजनेन । किंविशिष्टेन? **चतुर्विधेन** अशनपानखाद्यस्वाद्यलक्षणेन **अपि**शब्दः समुच्चये । **तथा वस्त्रपात्रौषधशय्यादिभिश्च,** तत्र वस्त्रं-कार्पासमुपलक्षणमिदं कम्बलादीनाम्, पात्रं-भोजनपात्रम्, औषधं-त्रिदोषघ्नमभयादि, शय्या-उपाश्रयः । कथम्भूतैः ? **विशुद्धैः** स्वयोग-निष्पन्नैः एभिश्चोपष्टम्भं मुनिजनस्य विरचयंस्तत्त्वतो ज्ञानादीनुपष्टम्भयति, तदाधारत्वात्तेषाम् । **'आगमग्राहिणां तूपष्टम्भो महते पुण्याय'** । यदाह -

पहसंतगिलाणेसुं आगमगाहीसु तह य कयलोए ।
उत्तरपारणगंमि य दिन्नं सुबहुप्फलं होइ ।। [श्राद्धदिनकृत्य गा. २७२] किञ्च -

पठति पाठयति पठतामसौ वसनभोजनपुस्तकवस्तुभिः ।
प्रतिदिनं कुरुते य उपग्रहं स इह सर्वविदेव भवेन्नरः ।।१०८।। [ ] तथा -

नाणड्ढयाण कुणइ य बहुमाणं तह तयंतिए सम्मं ।
ताणि अहिज्जइ गंथाणि जेसिमो होइ अहिगारी ।।१०९।।

तथा ज्ञानाढ्यानां ज्ञानगुणशालिनां प्रस्तावादाचार्योपाध्यायादीनां **कुरुते** प्रकटयति । किं तद्? **बहुमानं** विशेषगौरवं ज्ञानालोकभास्करत्वात् तेषाम् । **तथा तदन्तिके** तत्पदोपान्ते **सम्यक्** त्रिकरणशुद्ध्या **तानधीते ग्रन्थान् येषामसौ भवत्यधिकारी** पठनयोग्यः ।।१०९।। तानेव दर्शयति -

---

गाथा-१०८ 1. **तुला** - योग शा. ३/११९ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठप्पवयणमायाणुगयं सुत्तं जहन्नओ पढइ ।
उक्कोसेणं छज्जीवणिं तु जइ वयकउज्जोगो ।।११०।।

अष्टप्रवचनमात्रनुगतं सूत्रं जघन्यतः सामान्यवृत्त्या श्रमणोपासकः **पठति । उत्कर्षतस्तु षट्जीवनिकाख्यमध्ययनमध्येति** । तत् किं सर्वोऽपि? न, इत्याह **यदि व्रतकृतोद्योगः** यदि व्रतार्थं सर्वविरतिनिमित्तकृतोद्योगो विहितोपक्रमः स्यात् । व्रतोन्मुखस्यैव षट्जीवनिकापाठेऽधिकारः । किमत्र प्रमाणमिति चेत्, उच्यते आप्तोक्तिरेव । तथा च श्रावकसूत्रपठनाधिकारे -

'जहन्नेणं अट्ठप्पवयणमायाओ, उक्कोसेणं छज्जीवणिया ।
छज्जीवणियं तु पव्वज्जाए अभिमुहं वायावेइ' [ ] त्ति ।

अत्र च जहन्नेणं अट्ठप्पवयणमायाउ त्ति सूत्रप्रामाण्यात् केचिदुत्तराध्ययनाऽन्तर्गतस्य प्रवचनमात्रध्ययनस्य श्राद्धानां पठनाधिकारितामुपदिशन्ति । तच्च निपुणं विचार्यमाणं न चतुरचेतसां चेतसि सङ्गतिमङ्गति । यतस्तावदुत्कर्षतोऽपि व्रतोन्मुखस्यापि श्राद्धस्य दशवैकालिकप्रतिबद्ध-षट्जीवनिकाऽध्ययनमात्रमेवाध्येतुमनुज्ञातम् । अतः कथमस्य कालिकसूत्रोत्तराऽध्ययन-सम्बद्धस्य प्रवचनमात्रध्ययनस्य जघन्येन पठनेऽधिकारः । न चाऽन्यत् प्रवचनमात्रनुगतं किमपि विशेषसूत्रमुपश्रूयते । अतस्तावदिदमेव बहुश्रुतानां विमृशतां प्रायो विचारगोचरमवतरति । यदत्र प्रवचनमात्रनुगतसूत्रशब्देन सामायिकसूत्रमेवाभिप्रेतम् । कथं तत्र प्रवचनमातॄणामवतार इति चेत् ? उच्यते - करोमि भदन्त ! सामायिकमित्यनेन पञ्चानां समितीनामुपक्षेपः, प्रवृत्तिरूपत्वात् तासाम् । सावद्यं योगं प्रत्याख्यामीत्यनेन न च गुप्तीनां सङ्ग्रहः, निग्रहरूपत्वाद् गुप्तीनाम् । तथा च चूर्णिः -

इत्थ किर करेमि भंते सामाइयं ति, पंच समिईओ गहियाओ ।
सव्वं सावज्जं इच्छाइणा य तिन्नि गुत्तीओ संगहियाओ । समिईओ पवत्तणे, निग्गहे गुत्तीओ । [ ]
[1]**समिओ नियमा गुत्तो गुत्तो समियत्तणंमि भइयव्वो ।**
कुसलवइमुदीरंतो जं वयगुत्तो वि समिओ वि ।।१।। [बृहत्कल्प भा० गा० ४४५१]
एयाओ अट्ठप्पवयणमायाओ, जाहिं सामाईयं चउदसपुव्वाणि माइयाणि,
माउगाउदहिमूलं ति भणियं होइ । [ ] ।।११०।।

तथा –

गाथा-११० 1. **तुला** - निशीथ भा. ३ । - यो. शा. १/४२ वृत्तौ । उप. प. गा. ६०५ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिंडेसणअज्झयणं सुणइ परं अत्थओ गुरुसयासे ।
सेससुयस्स न सड्ढो अखंडरूवस्स अहिगारी ।।१११।।

पिण्डेषणाख्यमध्ययनं शृणोत्याकर्णयति । **परं** केवल**मर्थतो** न सूत्रतः पठति । क्व? **गुरुसकाशे** गीतार्थगुरुसमीपे । एतद् व्यतिरिक्तस्य **शेषश्रुतस्य** शेषागमस्य **श्राद्धः** श्रमणोपासकः पठनाय **नाधिकारी** । तत् किं सर्वस्य ? न, इत्याह **अखण्डरूपस्य**पूर्वापरानुसन्धानबन्धुरस्य, खण्डरूपं त्वालापकवाक्यगाथागाथाऽर्द्धादि पठत्येव, आज्ञासिद्धत्वादस्यार्थः ।।१११।। किञ्च -

न य तत्तियमित्तेणं उत्ताणो कुणइ देसणाईयं ।
गुरुनिरविक्खो होउं जम्हा सुत्ते निसिद्धमिणं ।।११२।।

न च तावन्मात्रेणैव गुरुकुलवासाधिगतार्थलेशमात्रेणै**वोत्तानः** सगर्वः सन् **न करोति देशनादिकम्** । आदिशब्दात् प्रायश्चित्तप्रदानादिकम् । किं कृत्वा ? कुशलोऽहं तावत् स्वयमेव धर्मोपदेशादौ, ततः पर्याप्तं स्वस्य लघुत्वकारिण्या **गुरु**परिचर्ययेति **निरपेक्षता** । अथ किमर्थमस्य देशनादि निषिद्ध्यते ? तदाह - **जम्हा सुत्ते निसिद्धमिणं** यत् यस्मात् कारणान्न खल्वस्माभिरसहिष्णुतयाऽसूयया वा प्रतिषिद्ध्यते, किन्तु सूत्रे सिद्धान्ते निषिद्धमिदमिति ।।११२।। तदेव दर्शयति -

किं इत्तो कट्ठयरं सम्मं अणहिगयसमयसब्भावो ।
अन्नं कुदेसणाए कट्ठयरागंमि पाडेइ ।।११३।।

इतोऽपि सकाशात् **किम**परं **कष्टतरं** विशिष्टकष्टहेतुः । यत् **सम्यक्** तत्त्ववृत्त्या **अनधिगतसमयसद्भावो**ऽप्यज्ञातसिद्धान्तरहस्योऽपि **अन्यं** स्वसदृशमेव **कुदेशनया** कुमतोपदेशेन **कष्टतराके** प्रस्तावात् भवावटे **पातयति** । अविदितसिद्धान्तोपनिषदो ह्यगीतार्थस्य केवलसाहसिक्यमात्रेण मुग्धजनविप्रतारणमन्धेनान्धाकर्षणमिव कस्य नाम न हास्याय स्यादित्यर्थः ।।११३।।

एवं च सति धर्मोपदेशे यस्याधिकारस्तं प्रदर्शयन्नाह -

भवसयसहस्समहणो विबोहओ भवियपुंडरीयाणं ।
धम्मो जिणपन्नत्तो पकप्पजइणा कहेयव्वो ।।११४।।

एवंविधो **जिनप्रज्ञप्तो धर्म्मो** यतिना साधुना **कथयितव्यः** प्ररूपणीयः, इयता द्वितीयपक्षस्य विक्षेपः । किंविशिष्टो धर्म्मः ? **भवशतसहस्रमथनः**, शतसहस्रेत्युपलक्षणम् । '**सम्यगाराधितो हि**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म्मः सकलमपि संसृतिजालं लीलयैवोच्छिन्द्यात्' । पुनः किंविशिष्टः? **भव्यपुण्डरीकाणां विबोधकः,** भव्याः-सिद्धिगमनयोग्यास्त एव ज्ञानादिलक्ष्मीनिवासत्वेन पुण्डरीकाणि कमलानि तेषां मयूखमालीव विशिष्टबोधोत्पादकः । एवंविधो धर्म्मो यतिना **कथयितव्यः** । तत् किं सर्वेण? न, इत्याह **प्रकल्पयतिना** । प्रकल्पो निषीथाध्ययनं, तदुपलक्षितेन परिशीलितनिशीथादिग्रन्थेन तदभिज्ञगुरुजनाऽनुगृहीतेन वा, न पुनर्मुनिमात्रेण ।।११४।।

ननूपदेशमालादिषु श्राद्धजनस्थितिव्यावर्णनावसरे **'पढइ सुणेइ गुणेइ जणस्स धम्मं परिकहेइ'** [**उपदेशमाला गा. २३३ उत्त.**] इत्यादि **श्रीधर्म्मदासाचार्येणा**भिहितं । इह चैवमुदीर्यते तत् कथमेतदिति प्रतिपत्तिनिरासायाह -

जं पुण पढइ सुणेइ जणस्स धम्मं कहेइ इच्छाइ ।
तं पच्छागडविसयं तेण वि जइ तं पुराहीयं ।।११५।।

यत् पुनरुपदेशमालादिषु **पठति शृणोति** गुणयति **जनस्य धर्म्मं कथयतीत्याद्यु**दीरितं, **तत् पश्चात्कृतविषयम्** आरूढपतितगोचरम्, पश्चात्कृतो व्यस्तपातितः स्वकर्म्मभिरेव ज्ञानदर्शन-चारित्रेभ्य इति पश्चात्कृतः तद्विषयं तदुद्देशभणितं । पश्चात्कृतो हि गीतार्थगुर्वाद्यसद्भावे गुरुमुखान्मयेदमिदमाकर्णितमिति धर्मार्थिने जनाय किञ्चिदुपदिशति । परं **तेनापि यावत् पुरा** व्रताऽवस्थाया**मधीतं** भवति तावदेवोपदेष्टव्यम्, न तु स्वमतिविकल्पितमन्यदपीति ।।११५।।

तम्हा मणसा वि सुयस्स सुयहराणं च कुणह नावन्नं ।
जं पज्जंतदुरंता मासतुसस्सेव सा होइ ।।११६।।

तस्मादास्तां तावत् स्वाच्छन्द्येन देशनादिकं, यावत् **श्रुतस्य** सिद्धान्तस्य **श्रुतधराणां च** तत्पारगाणां, आस्तां वाक्कायाभ्यां **मनसा** चेतसापि **नावज्ञां** करोति चिन्तयति । **यत्** यस्मात् कारणात् **सा** तदवज्ञा **पर्यन्ते** विपाके **दुरन्ता** दुःखदायिनी **भवति** । कस्येव? **माषतुषस्येव** कृत्रिममाषतुषाभिधानस्य मुनेरिव ।।

तस्मादास्तां तावत् स्वाच्छन्द्येन देशनादिकं, यावत् **श्रुतस्य** सिद्धान्तस्य **श्रुतधराणां च** तत्पारगाणां, आस्तां वाक्कायाभ्यां **मनसा** चेतसापि **नावज्ञां** करोति चिन्तयति । **यत्** यस्मात् कारणात् **सा** तदवज्ञा **पर्यन्ते** विपाके **दुरन्ता** दुःखदायिनी **भवति** । कस्येव? **माषतुषस्येव** कृत्रिममाषतुषाभिधानस्य मुनेरिव ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। श्रुतस्य अवज्ञाविषये माषतुषकथानकम् ।।

श्रूयते हि पुरा कोऽपि सूरिवरस्तथाविधज्ञानावरणक्षयोपशमवशात् युगप्रधानागमः विशेषतश्च व्याख्यालब्धिमान् । स च कदाचित् सूत्रार्थपौरुषीपरिसमाप्तौ सुतरां परिश्रान्तः । सिंहासनात् समुत्थाय क्षणं विश्रामकाम्यया यावत् शय्यामशिश्रियत् तावत् कुतोऽपि देशान्तरादुपनतानामपूर्वश्रमणोपासकानां धर्म्मोपदेशाऽऽलापादिनिमित्तमासन्नयतिभिरुत्थापितोऽनिच्छन्नपि समुत्थाय तदुचितालापादि च विधाय यावत् पुनर्विश्रामाय विविक्तं प्रत्यचलत् तावत् तेन दृष्टः स्व एव भ्राता तथाविधज्ञानावरणनिबिडत्वेनानधीतविशेषशास्त्रः केवलं परमेष्ठिपदानुस्मरणमात्रव्यापृतः क्वचित् कोणैकदेशे धर्म्मध्यानतत्परः । तं च तथा दृष्ट्वा स्थितमस्य चेतसि यथा नूनं धन्योऽयं मुनिरनधीतशास्त्रोऽपि मत्सकाशात् । य एवं स्वेच्छया सुखं विचरति । मम पुनरिदं ज्ञानमेव बन्धनप्रायमजायत । यद्वशादहं क्षणमात्रमपि न सुखासिकामधिगच्छामि । तत्प्रत्ययं च तेन तदा निबद्धं निबिडं ज्ञानावरणं कर्म्म । कालान्तरेऽपि च तस्यार्थस्यानालोचिताप्रतिक्रान्तस्तथैव पर्यन्ताराधनापुरस्सरं कृत्वा कालमुत्पन्नः सुरालये । तत्रोपभुज्य च निरुपमां सुरसम्पदं किञ्चिदवशिष्टसुकृतप्राग्भारः समुत्पन्नः पुत्रत्वेन कस्यापि महेभ्यस्य कुले । तत्र च परिशीलितस्वकुलोचितः सकलकलाकलापः संप्राप्तः सकलयौवतोन्मादनं यौवनम् । पुराऽपि च स्वभ्यस्ततया जैनधर्म्मस्य कदाचित् गीतार्थगुरुमुखादाकर्ण्य धर्म्मदेशनामुत्पन्नभववैराग्यस्तृणवदवगण्य सम्पदमनवद्यां सर्वविरतिं प्रतिपेदे । पाठयितुमुपक्रान्तश्च गुरुभिः षड्जीवनिकादिकं सामाचारीसूत्रम् । अत्रान्तरे च दत्तसङ्केतमिव प्राग्भवोपार्जितमुदीर्णमस्याशुभं ज्ञानावरणं कर्म्म तद्वशाच्च गृहस्थावस्थाऽधीतमपि यत् किमप्यासीत् तदप्येकपदेऽपि विस्मृतम् । कृतप्रयत्नशतैरपि गुरुस्थविरादिभिः सामायिकसूत्रमात्रमपि न ग्राहयितुं पारितः । तच्च तथाविधमतिदारुणमुदीर्णमस्य कर्म्मावलोक्य परमकारुणिकैश्चिन्तितं गुरुभिः यदस्य किमप्यल्पाक्षरमायतिहितं वचनमुपदिश्यते । यदि पुनस्तदत्यन्तपरिशीलनादस्य कर्म्महासो भवतीति विमृश्य 'मा रौषीः मा च तौषी'रिति तं प्रत्युपदिष्टम् । सोऽपि परमप्रमोदमेदुरमनाः सिद्धवचनमिव तदाचार्यवचनं शिरसा समादाय परिशीलयितुमुपक्रान्त नक्तंदिनोद्घोषपरस्यापि तस्य दारुणत्वात् कर्म्मणस्तदपि पदं 'माषतुष' इति रूपेण परिणतम् । तद्विधमेव च परिशीलयंस्तदेकतानमानसतया स्थानास्थानविभागमकलयन्नरपतिपथेऽपि संचरंस्तदेवोद्घोषयति । कदाचिच्च कर्म्मवशात्तदपि पदं विस्मरति । अत्रान्तरे च चतुष्पथमिलितैः पौरडिम्भरूपैः कृततुमुलैः सोपहासमुदीर्यते । अहो समायातः सोऽयं माषतुषाभिधानो मुनिः । तदाकर्णनाच्च स महात्मा तेषु परमं प्रीतिप्रकर्षमुद्वहन्नहो निष्कृत्रिमबन्धुकल्पा ममैते बालकाः यैर्जीवितव्यमिव सर्वस्वमिव परमनिधानमिव ममेदं पदं विस्मृतं स्मार्यते इति निरुपमक्षमासमाहितमनस्तस्य महामुनेस्तदेव पदं परिशीलयतस्तथा कथमपि शुभध्यानप्रकर्षः प्रादुरभूत् । यथा क्षपकश्रेणिमधिरुह्य समूलमुन्मूल्य च घातिकर्म्मचतुष्टयं लोकालोकप्रकाशकं विमलकेवलज्ञानमासादितवान् । अतः कियन्तः किलैवंविधा महात्मानो भाविनः । ये निरुपमक्षमाबलेन गलहस्तितमोहबलाः कृतकृत्यतां प्रपश्यन्ते(न्ति), तस्मदादावेव श्रुतस्य श्रुतधराणां चावज्ञां मनसाऽपि न कुर्व्वीत, एवंविधविपाकरूपत्वादस्याः । केवलममन्दानन्दमेदुरैः श्रुतवचनमनुमोदनीयमेवेति ।।११६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं दानद्वारस्य भेदत्रयमुपदर्श्य चतुर्थं प्रस्तावयन्नाह -

तुरियं तु भत्तिदाणं तं पुण पत्तेसु चेव दिज्जंतं ।
होइ सिवसुखफलयं पत्ताणि य सत्त खित्ताणि ।।११७।।

तुर्यं चतुर्थं **भक्तिदाना**ख्यं दानम् । **तत् पुनर्दीयमानं** सत् **शिवसौख्यफलदं भवति** । मोक्षसुखलक्षणेन फलेन फलति । अथ क्व दीयमानमिदमेवंफलं स्याद् ? इत्याह **पात्रेषु** । कानि पुनस्तानि पात्राणि ? उच्यते **पात्राणि सप्त क्षेत्राणि** वक्ष्यमाणलक्षणानि पात्रत्वेनावगन्तव्यानीति ।।११७।।

[1]सप्तक्षेत्रीमेवोपक्षिपति -

चाउव्वन्नो संघो जिणागमो जिणहरं च जिणबिम्बं ।
एएसु वित्तबीयं नियं कुटुंबीहिं वुत्तव्वं ।।११८।।

चातुर्वर्णश्चतुःप्रकारो वक्ष्यमाणलक्षण**सङ्घ** इति चत्वारि क्षेत्राणि । तथा **जिनागमः** पञ्चमं क्षेत्रम् । **जिनगृहं** षष्ठं क्षेत्रम् । **जिनबिम्बं** च सप्तमं क्षेत्रमिति । **एतेषु** सप्तस्वपि क्षेत्रेषु **कुटुम्बिभि**र्गृहमेधिभि**र्निजं** स्वकीयं **वित्तलक्षणं बीजं वपनीयं** व्ययनीयमित्यर्थः, समुचितश्च कुटुम्बिनां क्षेत्रे बीजवापः ।।११८।।

सङ्घस्य चातुर्वर्ण्यं व्यनक्ति -

समणा समणीओ य सावया साविया तहा ।
एसो चउव्विहो संघो विग्घसंघविघायणो ।।११९।।

[1]**श्रमणाः** । श्रमू तपसि खेदे च [प्रा. धा. १२०४, सि. है. धा. १२३३] । श्राम्यन्ति तपस्यन्ति परमपदायेति श्रमणाः निर्ग्रन्थास्तपस्विनः । **श्रमण्योऽ**पि तथैव । तथा शृण्वन्ति समाकर्णयन्ति सद्गुरुमुखारविन्दात् यतिश्रावकसामाचारीमिति [2]**श्रावकाः श्राविका** अप्येवमेव । एव**मेषः**

गाथा-११८ 1. **तुला** - सप्तानां क्षेत्राणां समाहारः सप्तक्षेत्री । जिनबिम्ब-जिनभवना-ऽऽगम-साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकालक्षणा, तस्यां न्यायोपात्तं धनं वपन् निक्षिपन्, क्षेत्रे हि बीजस्य वपनमुचितमित्युक्तं वपन्निति, वपनमिति क्षेत्रे उचितं नाक्षेत्रे इति सप्तक्षेत्र्यामित्युक्तम् । क्षेत्रत्वं च सप्तानां रूढमेव । - यो. शा. ३/११९ वृत्तौ । धर्म सं. अधि. २/५९ वृत्तौ ।।

गाथा-११९ 1. **श्रमण** - श्राम्यति तपसेति श्रमणः, श्रवणोऽपि, नन्द्यादित्वादनः ।-अभि. स्वो. ना. श्लो. ७५ ।

2. **श्रावक** - "संपत्तदंसणाई, पइदिअहं जइजणा सुणेई अ । सामायारि परमं, जो खलु तं सावगं बिंति ।।१।।
- सम्बो. प्र. ५/१ गा. ९६१ । श्रा. प्र. गा. २ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणश्रमणीश्रावकश्राविकालक्षणश्चतुर्विधोऽपि वर्गः [3]**सङ्घ**शब्दवाच्यः । किंविशिष्टः? **विघ्नसङ्घविघातकृत्** दुरितव्रातपातनपटुरिति ।।११९।।

ननु यदि श्रमणा निर्ग्रन्थास्ततस्तेषां दानं क्रोपयुज्यते? येन सप्तक्षेत्र्यां प्रथमं तदुपादानमित्याशङ्क्याह -

तत्थ य जिणिन्दसमणा भयवंतो जइ वि हुंति निग्गंथा ।
तह वि वयकायरक्खानिमित्तमरिहंति दाणमिणं ।।१२०।।

तत्र तेषु सप्तसु क्षेत्रेषु **जिनेन्द्रश्रमणाः** जैनयतयो **भगवन्तो यद्यपि निर्ग्रन्थाः** सबाह्याभ्यन्तरग्रन्थरहिता **भवन्ति,** तत्र बाह्यो ग्रन्थो धनादिषु नवसु मूर्च्छालक्षणः, आभ्यन्तरश्च मिथ्यात्ववेदत्रयहास्यादिषट्ककषायचतुष्टयरूपः । यदाह -

मिच्छत्तं वेयतियं हासाईछक्कगं च नायव्वं ।
कोहाईण चउक्कं चउदस अब्भिंतरा गंथा ।।१।। [प्रवचनसारो. गा. ७२१]

तदेवं द्विविधेनापि ग्रन्थेन रहिता निर्ग्रन्था एव ते । **तथापि व्रतकायरक्षानिमित्तमिदं** वक्ष्यमाणलक्षणं **दानमर्हन्ति** अस्य दानस्य योग्या भवन्ति । व्रतैरुपलक्षितः कायो व्रतकायः, यदि वा व्रतानि-प्राणातिपातविरत्यादीनि पृथगेव, कायश्च तदाधारं शरीरं, तद्रक्षानिमित्तम्, विना ह्याहारादीनि न शरीरं निर्वहति, तदभावे च दुष्पाल्य एव संयमः ।।१२०।।

यद् वा ते दानमर्हन्ति तदेव दर्शयति -

फासुयएसणियाइं अहाकडाइं च भत्तपाणाणि ।
तह वत्थपत्तकंबल-सिज्जासंथारपमुहाइं ।।१२१।।

ओसहभेसज्जाइं तह पवयणवुड्ढिहेउभूयाइं ।
सच्चित्ताइं पि अवज्झ-सयणपभिईणि अणवरयं ।।१२२।।

श्रद्धालुतां श्राति पदार्थचिन्तनाद्, धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम् ।
किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवनादथापि तं श्रावकमाहुरञ्जसा ।।२।।
- यो. शा. ३/११९ वृत्तौ । धर्म सं. अधि. २/५९ वृत्तौ ।।

3. **सङ्घ** - "संहन्यते इति सङ्घः", 'निघोद्धसङ्घ' - ।।५/३/३६ इति 'अलि' साधुः, यथा - श्रमणादिश्चतुर्विधः सङ्घः ।
- अभि. स्वो. ना. श्लो. १४१२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भत्तीइ देइ साहूणं सुद्धलेसुल्लसंतरोमंचो ।
उस्सग्गेणं सड्ढो अववायपयंमि पुण एवं ।।१२३।।

[1]**श्राद्धः**-श्रमणोपासकः साधुभ्यः साधयन्ति ज्ञानादिभिर्मुक्तिपदमिति व्युत्पत्त्या **साधवः** श्रमणाः **तेभ्यः**, एतानि वस्तूनि **ददाति** । तान्येवाह - **'भत्तपाणाइं'** भक्तपानानि अशनपानानि, उपलक्षणं चैतत् खाद्यस्वाद्यादीनाम् । किंविशिष्टानि ? **'फासुयएसणियाइं' 'अहाकडाइं च'** तत्र प्रासुकानि निर्जीवानि, एषणीयानि यतिजनोपयोगीनि, सुवर्णादीनि प्रासुकान्यप्यनेषणीयत्वेनानुपादेयानि । तथा यथाकृतानि स्वयोगनिष्पन्नानि न तु साधूद्देशेन संयोजितानि । एतच्च विशेषणत्रयं वस्त्रादिष्वपि संबध्यते । अतो यथा भक्तपानादीनि **तथा वस्त्रपात्रकम्बलशय्यासंस्तारप्रमुखानि औषधभैषज्यादीनि च** श्राद्धः साधुभ्यो ददाति । तत्र वस्त्रं-कार्पासं, पात्रं-दारुतुम्बादिरूपं, कम्बलमूर्णामयं, शय्या-उपाश्रयः पीठफलकादिमयी वा, संस्तारकोप्यूर्णामय एव, औषधमभयादि, भैषज्यं तेषामेव बहूनां समुदयः । एतत्प्रभृतीन्यन्यान्यपि देशकालोचितानि वस्तूनि पूर्वोक्तविशेषणत्रययुक्तानि संयमशरीरपुष्टिनिमित्तं वितरति तत् किमेकान्तेन प्रासुकान्येव ददाति नेतराणि? न, इत्याह **'सच्चित्ताइं पि अवज्झसयणपभिईणि'** सजीवान्यपि निजापत्यस्वजनस्वजनाऽपत्यप्रभृतीनि । अथ किमर्थमेषां दानमुपादानं च? इत्याह **'पवयणवुड्ढिहेउभूयाइं'** किंविशिष्टान्यपत्यादीनि? प्रवचनवृद्धिहेतुभूतानि जिनशासनोन्नतिनिमित्तानि । विना हि पात्रभूत-शिष्यं न खलु प्रवचनोन्नतिः संपनीपद्यते । कथं ददाति? **'भत्तीइ'** भक्त्या । सर्वथा धन्यः, पुण्यवान्, कृतकृत्योऽहमिति

गाथा-१२३ 1. **तुला -** "साहूण कप्पणिज्जं, जं नवि दिन्नं कहिंचि किंचि तहिं ।
धीरा जहुत्तकारी, सुसावगा तं न भुंजन्ति ।।१।।
वसही-सयणाऽऽसण-भत्त-पाणभेसज्जवत्थपायाई ।
जइवि न पज्जत्तधणो, थोवावि हु थोवयं दिज्जा ।।२।।" - उप. मा. २३९-२४०, सम्बो. प्र. श्रा. १३९-१४० ।।

"समणे निग्गंथे फासुअएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं, वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं, पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ" । - (भग.) यो. शा. ३/८७ वृत्तौ ।।

साधूनां च जिनवचनानुसारेण सम्यक् चारित्रमनुपालयतां दुर्लभं मनुष्यजन्म सफलीकुर्वतां स्वयं तीर्णानां परं तारयितुमुद्यतानामातीर्थकरगणधरेभ्य आ च तद्दिनदीक्षितेभ्यः सामायिकसंयतेभ्यो यथोचितप्रतिपत्त्या स्वधनवपनं यथा - उपकारिणां प्रासुकैषणीयानां कल्पनीयानां चाशनादीनां रोगापहारिणां च भेषजादीनां शीतादिवारणार्थानां च वस्त्रादीनां प्रतिलेखनाहेतो रजोहरणादीनां भोजनाद्यर्थं पात्राणाम् औपग्रहिकाणां च दण्डकादीनां निवासार्थमाश्रयाणां दानम् । न हि तदस्ति यद् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावापेक्षयाऽनुपकारकं नाम, तत् सर्वस्वस्यापि दानम्, साधुधर्मोद्यतस्य स्वपुत्र-पुत्र्यादेरपि समर्पणं च किं बहुना ? यथा यथा मुनयो निराबाधवृत्त्या स्वमनुष्ठानमनुतिष्ठन्ति तथा तथा महता प्रयत्नेन सम्पादनम् । - यो. शा. ३/११९ वृत्तौ ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासनया, न तु परोपरोधपरमत्सरित्वादिना । अत एव किंविशिष्टः? **'सुद्धलेसुल्लसंतरोमंचो'** शुद्धा निर्म्मला या लेश्या जीवपरिणतिस्तया समुल्लसद्रोमाञ्चः विनिर्यत्पुलकमुकुलः, विना हि वासनां प्रायो न खलु रोमोद्गमादिसंभवः । कथं? **उत्सर्गेण** उत्सर्गपदमाश्रित्य । ननु यद्ययमुत्सर्गाश्रितो दानविधिस्तत् किमपवादाश्रितोऽपि कोऽपि विधिरस्तीति प्रस्तावयन्नाह - **'अववायपयंमि पुण एवं'** अपवादपदे तु समुपस्थिते एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण ददाति ।।१२१।।१२२।।१२३।।

साम्प्रतं यत्रापवादावसरस्तान्येव निमित्तान्याह -

दुब्भिक्खडमरविड्डर - रोहगकंतारदेहगेलन्ने ।
समुवट्ठियंमि गीओ आभोयइ सपरगेहेसु ।।१२४।।
जइजणपाउग्गाइं जहुत्तपुव्वुत्तवत्थुजायाणि ।
दुलहेसु परिहरंतो तरतमभावेण गुरुदोसे ।।१२५।।
गिन्हेइ पयणुदोसे तेसिं पि हु असइ अह मिगविउत्ते ।
सुविवित्तंमि पएसे जहोचियं कुणइ जं भणियं ।।१२६।।

एतेष्वपवादपदेषु **गीतो** गीतार्थः श्राद्ध एतदेतत् करोति । तत्र **दुर्भिक्षम्** अवमम्, **डमरः** कुतोऽपि हेतोः प्रकुपितदेवतादिजनितमशिवम्, **विड्वरः** स्वचक्रपरचक्रसमुत्थः, **रोधो** दुर्गादिजनितः, **कान्तारो** निर्मनुषारण्यसंक्रमः **देहग्लानत्वं** ज्वरातीसारादिजनितं वपुषोऽबलत्वम्, अस्मिन् कारणकलापे **समुपस्थिते** यतीनां मधुकरवृत्त्या निर्वाहमसंभावयन् **स्वपरगेहेषु** स्ववेश्मसु स्वजनादिवेश्मसु च **यतिजनप्रायोग्यानि** सिद्धान्तभाषया मुनिजनोपयोगीनि **यथोक्तानि** प्रासुकैषणीयस्वयोगनिष्पन्नानि **पूर्वोक्तवस्तुजातानि** भक्तपानादीनि विलोकयति, तेषु च नवकोटिविशुद्धेषु **दुर्लभेषु** सत्सु यतीनां संयमशरीरोपष्टम्भाय **तरतमभावेन गुरुदोषाणि** भक्तादीनि **परिहरन्** वर्जयन् **गृह्णाति** आद्रियते प्रस्तावान्मुनीनां दानाय । किंविशिष्टानि? **प्रतनुदोषाणि** स्वल्पप्रायश्चित्तानि, कदाचिच्च **तेषामपि** स्वल्पदोषाणां भक्तादीना**मसति** अविद्यमानत्वे यतनया गीतार्थत्वेन **यथोचितं** तत्कालोचितं सर्वं **करोति** । क्व? सु**विविक्तप्रदेशे** एकान्तप्रदेशे । किंविशिष्टे? **मृगवियुक्ते** अगीतार्थजनरहिते आधाकर्म्मादिनाऽपि यतिजनं निर्वाहयतीत्यर्थः । यतः -

---

गाथा-१२६ 1. मृगः पशुः, यथा पशुः विवेकविकलस्तथा यो मुनिः विवेकरहितः सः अगीतार्थः इति औपम्यादवगन्तव्यम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वत्थ संजमं संजमाउ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ।
मुञ्चइ अइवायाओ पुणो विसोही न याविरई ।।१।। [ओघनिर्युक्ति गा. ४७]
।।१२४।।१२५।।१२६।।

नन्वपवाददानविधिरयं भगवद्भिः स्वमतिविकल्पित एव, किं वाऽसौ सिद्धान्ते क्वाऽप्यस्तीति आशङ्क्याह - **'जं भणियं'** - यत् यस्मादिदमागमे भणितम् -

फासुयएसणिएहिं फासुयओहासिएहिं कीएहिं ।
पूईकम्मेण तहा आहाकम्मेण जयणाए ।।१२७।। [ ]

अनेन क्रमेणासंस्तरणे गीतार्थश्रमणोपासकः साधुजनं निर्वाहयति, तत्र प्रथमं तावत् **प्रासु-कैषणीयैरा**हारैरिति शुद्धो भङ्गः । तदलाभे **प्रासुकावभासितैः** सिद्धान्तभाषया याचितैरित्यर्थः । अयं पूर्वस्मात् सदोषः, याचितकालाभे तु **क्रीतै**र्मूल्यक्रीतैः, याचितकदोषात् क्रीतदोषोऽपि महान् । क्रीतैरपि निर्वाहमपश्यन् पूतिकर्म्म करोति, **पूतिकर्म्मणा**प्यनिर्वाहे **आधाकर्म्मणा**ऽपि **यतनया** निर्वाहं करोति । किं बहुना ? योऽल्पप्रायश्चित्तो दोषस्तं तमुररीकरोति । सोऽयमागमप्रणीतो विधिरिति ।

उक्तं च -

[1]**संथरणंमि असुद्धं दुण्ह वि गिण्हंतदिंतयाणऽहियं ।**
आउरदिट्ठंतेणं तं चेव हियं असंथरणे [निशीथ भा. गा. १६५०] ।।१२७।।

मुनिजनदानविधिमेव निगमयन्नाह -

इय समणाणं दाणं समणीण वि एवमेव सव्वं पि ।
गीयत्थजणणिभइणीपणइणिपभिईहिं दावेइ ।।१२८।।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण **श्रमणानां दानम**भिहितम् । साम्प्रतमेतदनुयायिनः श्रमणीक्षेत्रस्य द्वितीयस्य दानविधिमाह - **'समणीण वि एवमेव सव्वं पि'** श्रमणीनामपि-साध्वीनामपि एवमेव

गाथा-१२७ 1.इयं गाथा दर्शनशुद्धिप्रकरणमध्ये - १२८ क्रमाङ्कः तथा अष्टकप्रकरणे २१/८ वृत्तिमध्ये ।।
छाया - संस्तरणेऽशुद्धं द्वयोरपि गृह्णददतोरहितम् । आतुरदृष्टान्तेन तदेव हितमसंस्तरणे ।
तुला - भवेत्पात्रविशेषे वा कारणे वा तथाविधे । अशुद्धस्याऽपि दानं हि द्वयोर्लाभाय नाऽन्यथा ।
- द्वा. द्वा. १/२३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिजनोक्तदानविधिनैव सर्वं भक्त्या दानादिकं **दापयति** । काभ्यः ? **गीतार्थजननीभगिनी-प्रणयिनीप्रभृतिभ्यः**, तासामेव तद्दानेऽधिकृतत्वात् ।।१२८।।

न चैतत् साधुजनदानमल्पसुकृतसम्भारलभ्यमिति दर्शयन्नाह -

परिचत्तसयललोइय - तिहिपव्वमहूसवा महामुणिणो ।
भोयणसमयातिहिणो धन्नाण हवंति गुणनिहिणो ।।१२९।।

एवंविधा **महामुनयः धन्यानामेव भोजनसमयेऽतिथयो भवन्ति,** तेषामतिथित्वमेव व्यनक्ति । किंविशिष्टा मुनयः? **परित्यक्तसकललौकिकतिथिपर्वमहोत्सवाः** तत्र तिथयः-अमावस्यादयः, पर्वाणि-संक्रान्तिसूर्यचन्द्रोपरागादीनि, महोत्सवाः-पाणिपीडनादयः, ते परित्यक्ता यैस्ते तथा । एवंविधा एवातिथिशब्दवाच्याः । यदाह -

तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना ।
अतिथिं तं विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः ।।१।। [धर्मसं. गाथा ४० वृत्तौ]

पुनः किंविशिष्टाः? **गुणनिधयः** ज्ञानादिरत्नसेवधयः, एवंविधाश्च धन्यानां सुकृतिनामेव भोजनसमये संविभागग्राहिणो भवन्ति ।।१२९।। किञ्च -

धन्नाण दाणबुद्धी धन्नयराणं च देयपरिसुद्धी ।
धन्नतमाणं तु जए जायइ सुहपत्तसंसिद्धी ।।१३०।।

इह हि दुःषमादोषदूषिते निखिलेऽपि **जगति धन्यानां** पुण्यवतामेव तावद् **दानबुद्धिरुत्पद्यते,** सत्यामपि च दानबुद्धौ **धन्यतराणां** प्रकृष्टतरधन्यत्वोपेतानां प्राणिनां **देयपरिशुद्धिर्देयस्य** वस्तुनः परिशुद्धिर्नवकोटिविशुद्धत्वं **सङ्घटते,** सत्यपि तद्विधे देयवस्तुनि **धन्यतमानां** प्रकृष्टतमधन्यत्वोपेतानां **शुभपात्रसंसिद्धिः** स्वपरतारकसत्पात्रसंप्राप्तिः, सोऽयमुत्तरोत्तरपुण्यप्रकर्षप्राप्यश्चित्तवित्त-पात्रलक्षणस्त्रिवेणीसङ्गम इति ।।१३०।। अपरं च -

कस्सवि कल्लाणगिहस्स चेव गेहंमि समणरूवधरा ।
पञ्चक्खनाणदंसणचरणा पिंडं पडिच्छंति ।।१३१।।

कस्यापि शतसहस्रेषु लभ्यस्यात एव **कल्याणगेहस्य** श्रेयःसदनस्यैव **गेहे** मन्दिरे **प्रत्यक्षज्ञानदर्शनचरणानि पिण्डं प्रतीच्छन्ति** भक्तपानाद्याददते । अथ कथं ज्ञानादीनां प्रत्यक्षत्वं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिण्डग्रहणं च? इत्याह **'समणरूवधरा'** । किंविशिष्टा ज्ञानादयः? श्रमणरूपधारिणः गुणगुणिनोरभेदविवक्षया मुनिमुद्राधारिणः ज्ञानाद्याधाराणां च मुनीनामुपष्टम्भदाने तत्त्वतो ज्ञानादीनामुपष्टम्भ इत्यर्थः ।।१३१।।

पुनः पात्रदानमेव विशेषतो व्यनक्ति -

आरंभनियत्ताणं छज्जीवनिकायरक्खणरयाणं ।
मुक्खपहसाहगाणं धन्ना जे देंति पत्ताणं ।।१३२।।

एवंविधेभ्यो भवाम्भोधियानपात्रेभ्यस्तदुपयोगिवस्तुजातं **ये ददति** त एव **धन्याः** । पात्राण्येव विशिनष्टि - **आरम्भनिवृत्तेभ्यः,** आरम्भः षड्जीवनिकायवधपुरस्सरं पाकाद्यारम्भस्तस्मान्निवृत्तेभ्यः, अत एव **पृथिव्यादिजीवनिकायरक्षणरतेभ्यः** । पुनः किंविशिष्टेभ्यः? **मोक्षपथसाधकेभ्यः** मुक्तिमार्गवशीकरणप्रवणेभ्यः, एवंविधेभ्यश्च परित्यक्तसकललौकिकव्यापारत्वेन लोकोत्तरपथप्रस्थितेभ्यः **सत्पात्रेभ्यो** दाने समीचीनमेव दायकानां धन्यत्वम् ।।१३२।।

ननु श्रमणोपासका एवास्मिन् दानधर्म्मेऽधिकृताः, किञ्च श्रमणा अपि केनापि विभागेनैनं भजन्ते न वा? इत्याह -

नियनियविसयविभागं पडुच्च संघे चउप्पयारे वि ।
विक्खाया इत्थ इमे सुपत्तदाणंमि दिट्ठंता ।।१३३।।

चतुष्प्रकारेऽपि सङ्घे निजनिजविषयविभागमङ्गीकृत्य स्वं स्वं दानस्थानमधिकृत्य **अमी** वक्ष्यमाणाः **सुपात्रदाने विख्याता** एव **दृष्टान्ताः** श्रूयन्ते ।।१३३।।

तद्यथा -

साहूसु बाहुसाहू अज्जासुं तह य पुप्फचूलऽज्जा ।
सड्ढेसु मूलदेवो चंदणबाला य सड्ढीसु ।।१३४।।

साधुषु श्रमणेषु स्वविभागमधिकृत्य **बाहुनामा साधुः** सुपात्रदाने दृष्टान्तः, **आर्यासु च पुष्पचूलार्या, श्राद्धेषु मूलदेवः, श्राद्धीषु च चन्दनबालेति** दृष्टान्तचतुष्टयं । किञ्चित्सम्प्रदायसापेक्षं च बाहुप्रभृतीनामितिवृत्तमतस्तदेव क्रमेणाह -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। सुपात्रदाने बाहुमुनिचरितम् ।।

अत्थित्थ जंबुदीवे पसत्थवत्थुप्पयासणपइवे । पुव्वविदेहे खित्ते निरंतरं जिणपयपवित्ते ।।१।।
विजयंमि पुक्खलावइनामे पुंडरिगिणि त्ति वरनयरी । अमराउरि व्व महिवलयदंसणत्थं समोइन्ना ।।२।।
तत्थ सुरासुरखेयर - नरवरमउडग्गमसिणियकमग्गो । धम्मवरचक्कवट्टी राया सिरिवइरसेणु त्ति ।।३।।
कह तंमि महीनाहे बाहिररिउणो लहंतु अवयासं । जं तप्पभावपहया अंतररिउणो वि न कमंति ।।४।।
भोगफलकम्मवसओ विउले माणुस्सए महाभोगे । आसत्तिविरहियस्स वि परिभुंजंतस्स तस्स तया ।।५।।
चविऊण देवलोगा धारिणीदेवीइ कुच्छिकमलंमि । उप्पन्ना तस्स इमे कमेण तणया भुवणगुरुणो ।।६।।
चउदस सुमिणुद्दिट्ठो चक्कहरो तत्थ नंदणो जिट्ठो । नामेण वज्जनाहो लोउत्तरगुणगणअगाहो ।।७।।
अपरो बाहुकुमारो चंदुज्जलचरियकयचमक्कारो । अन्ने तिन्नि सुबाहू पीढो य तहा महापीढो ।।८।।
पडिपुन्नपुन्नपब्भार - सारपरमाणुपिंडघडिय व्व । अहिदेवय व्व पंच वि ते पंचुत्तरविमाणाणं ।।९।।
वोलीणबालभावा कमेण ते विउलबुद्धिपोएण । सत्थत्थमहोअहिणो अचिरेण वि पारमणुपत्ता ।।१०।।
धाराकमेण तुरए वाहित्ता विउलवाहयालीए । रेवंतु व्व विरायंति ते कुमारा कुमारत्ते ।।११।।
पत्ता परं पयरिसं निजुद्धजुद्धेसु तह इमे भुवणे । जह तन्निउणजणेहिं ते चेव गुरु त्ति पडिवन्ना ।।१२।।
जिट्ठकणिट्ठविभागं परप्परं ते जहा न लंघंति । एवं पुरिसत्थेसु वि नयपोरिसपसरियपयावा ।।१३।।
लक्खिज्जइ तारुन्नं लायन्नतरंगिएसु अंगेसु । इंदियदमणेण मणे वयपरिणामो परं तेसिं ।।१४।।
तह तेहिं कित्तिलइया दाणजलेणं विवड्ढिया दूरं । बंभंडमंडवो जह लहु सच्छाओ कओ तीए ।।१५।।
इत्तो य वइरसेणो अरहा लोयंतिएहिं तियसेहिं । विन्नत्तो समयविऊहि नाह ! तित्थं पवत्तेसु ।।१६।।
अभिणंदिऊण वयणं तेसिं भयवं पि भुवणकारुणिओ । संवच्छरियं दाणं अनियाणं तो पयट्टेइ ।।१७।।
निव्वाविऊण सुइरं लोयं लोउत्तमेण दाणेण । सिरिवइरनाहतणयं चक्कहरं ठाविउं रज्जे ।।१८।।
दाऊण य विसयाइं बाहुप्पभिईण सेसतणयाणं । पडिवन्नो पवज्जं सुरअसुरनरेहि थुव्वंतो ।।१९।।
तप्पभिइं चिय भयवं भंजेउं भावसत्तुभडवायं । वग्गंतखंतिखग्गो तवतुरयगओ लहु पयट्टो ।।२०।।
बाहुप्पमुहा वि हु जिट्ठभायरं वज्जनाहनरनाहं । पियरं व परिचरंता सुहेण चिट्ठंति समचित्ता ।।२१।।
कालेण य झाणानल - पलित्तघणघाइकम्मवणगहणो । सिरिवइरसेणसामी पत्तो वरकेवलालोयं ।।२२।।
सुररइयपडिहारो मिच्छत्ततमंधयारसहसयरो । भव्वजणबोहणत्थं विहरइ वसुहाइ हयमोहो ।।२३।।
उप्पन्नचक्करयणो तइय च्चिय वज्जनाहचक्की वि । सह बाहुप्पभिईहिं सहोयरेहिं कुमारेहिं ।।२४।।
भयपणयपणइसामंत - मित्तसंछन्ननहयलाभोगो । निखिलं पि पुक्खलावइ - विजयं लीलाइ साहेइ ।।२५।।
चक्कित्तणाहिसेए अह जाए वज्जनाहचक्किस्स । बाहुप्पमुहा नियए रज्जे संठाविउं पुत्ते ।।२६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समगं सहोयरेणं विलसंति पुरीइ पुंडरिगिणीए । अखलियपसरा रूवंतरव्व सिरिवइरनाहस्स ।।२७।।
पुव्वभवज्जियनिरवज्ज - पुन्नपब्भारनिविडसंपडिए । उवभुंजंता भोए गयं पि कालं न याणंति ।।२८।।
अह भोगफले कम्मे कमेण पयणुत्तणं समणुपत्ते । जाए वयपरिणामे वयपरिणामेण सममेव ।।२९।।
इय संजाया बुद्धी सुत्तविउद्धस्स बाहुनरवइणो । रयणीइ पभायाए मायाए गलियपायाए ।।३०।।
पिच्छह अपत्थभोयणपडिमेसुं कह णु कामभोगेसु । आसज्जइ हयजीवो सासयसुहसाहणे कीवो ।।३१।।
हयइ दुही जो जत्तो भयइ विरागं स निच्छियं तत्तो । दुहहेऊसु वि जीवो विसएसु पसज्जए चुज्जं ।।३२।।
कूडाभिमाणनडिओ रज्जाइममत्तसंकडे पडिओ । अव्वो परव्वसो वि हु जीवो सुहिओ त्ति मन्नेइ ।।३३।।
निज्जियमयमयणाणं लोइयचिंतापरम्मुहमणाणं । सुहमिह निस्संगाणं मन्ने धन्नाण सुमुणीणं ।।३४।।
ता जइ तिहुयणताया ताओ संपइ अणुग्गहं कुणइ । तप्पायपउममूले तो पडिवज्जामि पव्वज्जं ।।३५।।
इय निच्छिऊण हियए नियसंकप्पं स जिट्ठभाउस्स । सिरिवइरनाहचक्किस्स साहए समसुहदुहस्स ।।३६।।
सो वि हु अहिणंदंतो तं वयणं तस्स सहरिसं भणइ । साहु सहोयर ! जाया एसा तुह सोहणा बुद्धी ।।३७।।
विसयामिसगिद्धेहिं धिद्धी अइतुच्छसुक्खलुद्धेहिं । अम्हेहि विमुद्धेहिं कलिओ अप्पा अणुप्पु [अणप्पा] व्व ।।३८।।
नत्थि च्चिय संसारे सच्चं परमत्थओ सुहं किंचि । नणु तेण परमपुरिसा पडिवन्ना परमपयमग्गं ।।३९।।
अज्ज वि न हु किंपि गयं साहेमो संपयं पि परमपयं । निक्कारणकारुणिओ जइ कुणइ अणुग्गहं ताओ ।।४०।।
इय चक्कहरे सह बाहुनरवरेणं पयंपिरे तइया । जाया लहुबंधूण वि सुबाहुपभिईण वयवंछा ।।४१।।
तत्तो य भुवणभाणू भयवं सिरिवयरसेणजिणनाहो । तत्थेव समोसरिओ मुणिऊण मणोगयं तेसिं ।।४२।।
तो परिसरंमि पुंडरिगिणीइ तक्कालमेव देवेहिं । रइयंमि समोसरणे सपाडिहेरे ठिओ भयवं ।।४३।।
उज्जाणपालयाओ मुणिऊणं तक्खणं जिणागमणं । हरिसभरभरियहियओ बाहुप्पभिईहिं परियरिओ ।।४४।।
चउरंगचमूकलिओ चलिओ वरचक्किरिद्धिदुल्ललिओ । वज्जाऊहु व्व सिरिवज्जनाहराया जिणं नमिउं ।।४५।।
परिचत्तरायककुहो विणीयवित्ती सहोयरेहि समं । ओसरणंमि पविट्ठो जिणरायाहिट्ठिए चक्की ।।४६।।
तिपयाहिणिऊण जिणं तिक्खुत्तो पणमिऊण विणएणं । जिणवयणलीणनयणो सबंधवो तत्थ उवविट्ठो ।।४७।।
सुरअसुरखयरनरतिरि - समूहसंसयहराइ वाणीए । पारद्धा धम्मकहा जिणेण जियरागमोहेण ।।४८।।

(वसन्ततिलकावृत्तम्)

"हंहो ! सुरासुरनभश्चरभूचराद्याः, सद्यः प्रमादमपहाय हितं कुरुध्वम् ।
दुर्वारदुःखचयसङ्कटनेन चित्त-मस्माद् भवभ्रमणतो यदि वा निवृत्तम् ।।४९।।
हिंसां परित्यजत सत्यमुरीकुरुध्वं, स्तेयं विमुञ्चत सहैव हि मैथुनेन ।
मूर्च्छामपाकुरुत धत्त भवे विराग-मेवं भविष्यथ निरस्तसमस्तदुःखाः ।।५०।।

गाथा-१३४ 1. चुज्ज - दे. आश्चर्य इति भाषायाम् । - पा. स. म. पृ. ३२९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्यन्तरौद्रपरिणामवशंवदेन, चित्तेन कोपकलुषेन विवेकशून्याः ।
कृत्वा वधं तनुभृतामतिमात्रपाप-भाराऽवरुद्धवपुषो नरकं पतन्ति ।।५१।।

हिंसानुबन्धकदुरध्यवसायजुष्टां शिष्टैर्विगर्हिततमां गिरमुद्विरन्तः ।
कन्याद्यलीकवचनप्रचितोरुपाप - तापाः पतन्त्युचितमेव भवाब्धिमध्ये ।।५२।।

विश्वस्तवञ्चनमनार्यधियो विधाय, मुष्णन्ति, हृष्टमनसः परवित्तजातम् ।
कालक्रमादुपनते विरसे फलेऽस्य, शोचन्ति भूरिभयभैरवरौरवस्थाः ।।५३।।

अङ्गैरनङ्गशरजर्जरितैरुपेताः, कान्तासुखं विषयिणः समुपाचरन्ति ।
जानन्ति नैव नरकेषु सुदुस्सहाग्नि - संतप्तलोहललनापरिरम्भपीडाम् ।।५४।।

मोहग्रहग्रहिलताकुलिताः कलत्र - पुत्रादिषु प्रतिकलं कलयन्ति मूर्च्छाम् ।
तत्प्रत्ययं च गुरुपातकमर्जयन्तो, यत् पर्यटन्ति भविनोऽत्र भवे न चित्रम् ।।५५।।

ऐश्वर्यराज्यविषयादिषु तन्ममत्वं मुक्त्वा विपाकविरसेषु विशेषविज्ञाः ।
सज्ज्ञानदर्शनचरित्रपवित्रमेन - मात्मानमाशु विरचय्य शिवं श्रयध्वम् ।।५६।।"

इय देसणाइ पहुणो तक्खणवियलंतसयलपडिबंधा । सिरिवज्जनाहबाहु - प्पमुहा विन्नविउमारद्धा ।।५७।।
सव्वमिणं नणु सच्चं उवइट्ठं जमिह तायपाएहिं । मुत्तव्वो एस भवो पभवो अइतिक्खदुक्खाणं ।।५८।।
तो काऊण पसायं सासयसिवसुक्खहेऊभूयाए । नियदिक्खाइ भवाओ परितायह ताय ! इत्ताहे ।।५९।।
इय भणिऊणं नियनिय - रज्जेसु निवेसिऊण नियतणए । सयमवि य परिहरित्ता तिणमिव तं रिद्धिपब्भारं ।।६०।।
सिरिवज्जनाहचक्की बाहुनरिंदो सुबाहुपमुहा य । पंच वि सहोयरा ते जिणपयमूलंमि पव्वइया ।।६१।।
अब्भत्थदुविहसिक्खा[2]मुणिधम्मे निम्मलम्मि अइदक्खा ।
जाया ते अचिरेणवि सुचरियचरणव्व मुणिवसहा ।।६२।।
जाओ य वज्जनाहो समग्गसुयसारबारसंगविऊ ! इक्कारसंगविउणो बाहुप्पमुहा य पुण चउरो ।।६३।।
भयवं पि वयरसेणो नाउं नियमुक्खसमयमासन्नं । सिरिवज्जनाहमुणिपुंगवस्स गच्छं समप्पेइ ।।६४।।
अह नामगोयवेयणिय - आउकम्मेसु झत्ति खीणेसु । सिद्धाणंतचउक्को, सिवमयलमणुत्तरं पत्तो ।।६५।।
भयवं पि वज्जनाहो गच्छं पालेइ समयनीईए । निव्वासिंतो संसय-तिमिरं सूरु व्व भव्वाणं ।।६६।।
तप्पायपउममूले बाहुप्पमुहा वि सम्ममुवउत्ता । पालिंसु पसमसारं सुसाहुधम्मं निरइयारं ।।६७।।
सव्वाओ लद्धीओ तवप्पभावाओ तेसि जायाओ । मुक्खफलस्स य अहवा एसो कुसुमुग्गमो तस्स ।।६८।।
कालक्कमेण थिरपरिणयंमि तत्तो चरित्तधम्मंमि । सविसेससंजमुज्जम - समूसुओ बाहुमुणिवसहो ।।६९।।
मुणिनाहवज्जनाहं सप्पणयं पणमिऊण विन्नवइ । भयवं ! इच्छामि अहं तुब्भेहिं अब्भणुन्नाओ ।।७०।।

---

2. **शिक्षा** - ग्रहण-आसेवनरूपा ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम्हाण य गच्छस्स य अहापवत्ताण भत्तपाणाणं । ओसहभेसज्जाणं उवगरणस्सोवओगिस्स ।।७१।।
संपाडणेण मुणिवइ ! वेयावडियं विसेसओ काउं । दुक्कम्मनिज्जरट्ठा जिणवयणाराहणट्ठा य ।।७२।।
अह सविसेसं मुणिनायगेण उच्छाहिओ स मुणिवसहो । निरवज्जंमि पयट्टो एगमणो तम्मि किच्चंमि ।।७३।।
न गणइ नियतणुपीडं संतप्पइ नेव तवणतावेण । वासासु नो विसीयइ सीयइ सीएण न महप्पा ।।७४।।
लाभंमि न हरिसिज्जइ दूमिज्जइ न हु मणे अलाभम्मि । उव्वहइ न निव्वेयं बालगिलाणेहिं [3]तोरविओ ।।७५।।
अमिलाणवयणसोहो मन्नंतो पुन्नठाणमप्पाणं । सुहडु व्व रणे खुब्भइ वेयावडियंमि न कयाइ ।।७६।।
गुरुणो तह गच्छस्स य दिंतो दाणोचियाणि वत्थूणि । उप्पाएइ समाहिं स महप्पा कप्परुक्खु व्व ।।७७।।
दिंतेण तेण तइया मुणीण मणवंछियाणि वत्थूणि । जं जं जए मणुन्नं तं तं समुवज्जियं सयलं ।।७८।।
गुरु[4]सेहगिलाणाणं वेयावडिएण तेण तस्स तया । संजाया कुकडाणं कम्माण विनिज्जरा विउला ।।७९।।
इहलोयंमि पसिद्धी वेयावच्चाउ संखससिधवला । विउला य चक्किभोया भवंतरे अज्जिया तेण ।।८०।।
[5]अरिहंतसिद्धपमुहे ठाणे वीसं पि सेवमाणेण । तित्थयरनामगोयं समज्जियं वज्जनाहेण ।।८१।।
विस्सामणेण सम्मं मुणीण सीलंगवहणखित्ताणं । मुणिणा सुबाहुणा वि हु उवज्जियं बाहुबलमतुलं ।।८२।।
गुरुपच्चएण अप्पच्चएण पच्छा वि अपडिकंतेण । पीढमहापीढेहिं विढत्तमित्थित्तणं तइया ।।८३।।
एवं वयगहणाओ चरित्तधम्मंमि तेसि निरयाणं । पुव्वाण सयसहस्सा वोलीणा चउदस कमेण ।।८४।।
अह नियसमयं मुणिउं मुणिवसहा ते दुहा वि संलिहिउं । पडिवन्ना पसमधणा सुयविहिणा अणसणं सव्वे ।।८५।।
इहलोए परलोए मरणे तह जीविए निरासंसा । धम्मज्झाणोवगया कालगया गुरुसमाहीए ।।८६।।
उववन्ना सव्वट्ठे पंच वि पंचुत्तरेसु वि पगिट्ठे । तित्तीससागराऊ पयणुकसाया परमसुहिणो ।।८७।।
इत्तो य जंबुदीवे इहेव भरहस्स मज्झखंडम्मि । इक्खागुवंसउप्पत्ति - पवरवसुहाविभागम्मि ।।८८।।
सुसमदुसमावसेसे छसु वोलीणेसु कुलगरवरेसु । नाभिंसि कुलगरे सत्तमंमि मिहुणाणुसट्ठिकरे ।।८९।।
तस्स वरपणइणीए सिरिमरुदेवाइ कुच्छिकमलंमि । सो वज्जनाहजीवो चविउं सव्वट्ठसिद्धाउ ।।९०।।
उप्पन्नो पुन्ननिही वसहप्पमुहा य तीइ वरसुमिणा । चउदस तइया दिट्ठा सिट्ठा समए य नाभिस्स ।।९१।।
होही कुलगरपवरो तुह तणओ देवि ! इय सुणंतं व । जायासूयं सहसा सुरवइणो आसणं चलियं ।।९२।।
मुणिऊणं ओहिणा सहरिसं च सक्को समागओ तत्थ । साहइ पुरओ तेसिं सुमिणाणं ताण फलमिणमो ।।९३।।
ओसप्पिणीइ पढमो तित्थयरो तुम्ह नंदणो होही । इह भरहे ता धन्ना तुम्हि च्चिय इत्थ भुवणयले ।।९४।।

---

3. **तोरविअ** - दे. उत्तेजित ।
4. **सेह** - शैक्ष - नवदीक्षित साधु । सेध्यते-निष्पाद्यते यः सः सेधः, शिक्षां वाऽधीत इति शैक्षः ।।
5. अरिहंत सिद्ध पवयण गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु । वच्छलया य एसिं अभिक्खनाणोवओगे य ।।१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिनंदिऊण एवं सुरनाहे नियथठाणमणुपत्ते । पुव्व व्व रविं समए मरुदेवी पसवइ जिणिंदं ।।९५।।
छप्पन्नदिसिकुमरीहिं विहियनीसेससूइकायव्वो । मंदरगिरिम्मि नीओ सोहम्मेसेण सो भयवं ।।९६।।
चउसट्ठिसुरिंदेहिं तत्थ य तित्थोदएहिं पवरेहिं । अहिसित्तो भत्तीए मणिमयकलसोवणीएहिं ।।९७।।
अह नाभिमंदिरम्मी वड्ढइ कप्पद्दुमु व्व सो भयवं । लालिज्जंतो सुरसुंदरीहिं सुरवइनिउत्ताहिं ।।९८।।
[6]वसहो लंछणमूरुंमि जं च सुमिणेसु पढमओ वसहं । पासइ किर मरुदेवी तेणं उसहु त्ति से नामं ।।९९।।
दट्ठूणमिक्खुजट्ठिं सक्कयरे सामिणा सिसुत्तंमि । पाणी पसारिओ जं तेणं वंसो वि इक्खागू ।।१००।।
पीणिज्जमाणदेहो दिव्वेहिं भोयणेहिं अणवरयं । उम्मुक्कबालभावो पत्तो नवजुव्वणारंभे ।।१०१।।
नाणत्तयपरियरियं पणसयधणुतुंगचंगतणुलट्ठिं । तत्ततवणिज्जवन्नं वसहंकं उसहजिणनाहं ।।१०२।।
पिक्खंतो नवतारुन्नपुन्नदेहं ललंतलावन्नं । आभोयंतो भोगप्फलं च कम्मं बहुं पहुणो ।।१०३।।
आगंतूणं सक्को अब्भत्थइ परिणयत्थमज्झत्थं । कुणसु पसायं पयडसु लोए नीइं ति जंपंतो ।।१०४।।
भयवं पि हु भुवणगुरू भवियव्वं तं तहा विभावंतो । तुसिणीओ चेव ठिओ उवरोहमहन्नवो तइया ।।१०५।।
अप्पडिसिद्धं नणु अणुमयं ति पीओ पुरंदरो तुरियं । सपरीवारो हि समग्ग - अग्गमहिसीहि परियरिओ ।।१०६।।
अन्नेहिं पि हु सहरिस - मिलंतसुरअच्छरासमूहेहिं । दाविंतो देविड्ढिं अब्भुयभूअं मणुस्साणं ।।१०७।।
गंधव्वाणीयपउत्त - तालतंतीमुयंगघणघोसं । अमररमणीमणोहर - कलमंगलमुहलियदियंतं ।।१०८।।
समगं सुमंगलाए देवीए किं च तह सुनंदाए । कारेइ पाणिगहणं पहुणो विहिणा सुणासीरो ।।१०९।।
होऊणं कयकिच्चो भिच्चु व्व नमंसिऊण भुवणगुरुं । सोहम्मं संपत्तो ललंतमणिकुंडलो सक्को ।।११०।।
भयवं पि हु भोगफलं कम्मं भोगेण चेव खवियव्वं । इय विलसइ ताहि समं दिव्वे भोए अणासत्तो ।।१११।।
तत्तो जिणस्स जम्माउ पुव्वलक्खेहिं छहिं अईएहिं । चविउं सव्वट्ठाओ जीवो सिरिबाहुसाहुस्स ।।११२।।
चउदससुमिणुद्दिट्ठो देवीइ सुमंगलाइ कुक्खीए । उववन्नो पीढस्स वि जीवो इत्थित्तणेण तहिं ।।११३।।
होही चक्की तुह नंदणु त्ति अभिणंदिया जिणिंदेणं । गब्भं निब्भरहरिसा उव्वहइ सुमंगला देवी ।।११४।।
सायरसुत्ती मुत्ताहलं व समए सुविच्छसच्छायं । पसवइ एसा तणयं थूयं पि य लक्खणोवेयं ।।११५।।

दंसणविणए आवस्सए य सीलव्वए निरइयारो । खणलव तवच्चियाए वेयावच्चे समाही य ।।२।।
अपुव्वनाणगहणे सुयभत्ती पवयणे पभावणया । एएहिं कारणेहिं तित्थयरत्तं लहइ जीवो ।।३।।
- आ. नि. १७९-१८०-१८१ । प्रव. सा. गा. ३१०-३११-३१२ ।।

6. **वसह** - वृषभ ऊर्वोर्वृषभलाञ्छनमभूद्भगवतो जनन्या च चतुर्दशानां स्वप्नानामादौ वृषभो दृष्टस्तेन वृषभः । उसह - ऋषभ ऋषति गच्छति परमपदमिति "ऋषिवृषिलुसिभ्यः कित्" ।। (उणा. ३३१) ।। इत्यभे ऋषभः । - अभि. स्वो. ना. श्लो. २६ । - आ. नि. हा. वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवसप्पिणीइ भरहे चक्की पढमो इमो जओ होही । जगगुरुणा तेणं चिय विहियं भरहु त्ति से नामं ।।११६।।
बंभाणस्स वि दुद्धरमेसा बंभव्वयं धुवं धरिही । बंभि त्ति तेण नामं वियरइ धूयाइ धुयमोहो ।।११७।।
इत्तो अणुत्तरुत्तमविमाणओ ठिइखएण चविऊण । देवीइ सुनंदाए गब्भे जीवो सुबाहुस्स ।।११८।।
पुत्ततेणुववन्नो तहा महापीठसाहुणो जीवो । धूयत्ताए तत्थेव पुव्वकम्माणुभावेण ।।११९।।
कप्पद्दुमं व उत्तरकुरुधरणी नंदणं अह सुनंदा । पसवइ उत्तमलक्खण - सहियं सोहणमुहुत्तम्मि ।।१२०।।
जणमणनयणाणन्दं दिंती सममेव तेण तणएण । ज०ाया तणया एरावणेण सह चंदलेह व्व ।।१२१।।
अकलियबाहुबलो किल होही नणु चक्कवट्टिणा वि इमो । इय बाहुबलित्ति सुयस्स तस्स नामं कयं पहुणा ।।१२२।।
जियसुरवहुसुंदेरा वि देहसोहाइ नंदणी एसा । सुंदरतवचरणरया होही इय सुंदरी भणिया ।।१२३।।
सयलकुसलिक्कजणणी जणणी भरहस्स पसवइ कमेण । एगूणं पन्नासं जुगलाणि पहाणतणयाणं ।।१२४।।
अह भरहमाइणो ते पिउणा सव्वन्नुणा सयं चेव । सयलं कलाकलापं लीलाए लंभिया कमसो ।।१२५।।
इय विस्सुयसंताणस्स तस्स जगबंधवस्स पुव्वाणं । वीइक्कंता वीसं लक्खा कोमारभावम्मि ।।१२६।।
अह मुणिऊणं समयं भुवणजणं ठाविउं ववत्थाए । सक्को सयमागंतुं करेइ रायाभिसेयं से ।।१२७।।
ठावइ विणीयनयरिं परिपूरावेइ मणिधणकणेहिं । तत्थ ठिओ भयवं पि हु निरवज्जं पालए रज्जं ।।१२८।।
उप्पाइयाणि सिप्पाणि पंच पडिसिप्पकप्पसहियाणि । संठाविओ य लोओ सयलो वि हु धम्मनीईए ।।१२९।।
संगहिया करितुरया गोमहिसिपसू य लोयसेयत्थं । तह उग्गभोगरायन्न - खत्तियाणं कया मेरा ।।१३०।।
इय तेवट्ठिलक्खा पुव्वाणं रज्जमणुहवंतस्स । वोलीणा जयगुरुणो खीणं कम्मं च भोगफलं ।।१३१।।
विन्नत्तेणं कप्पु त्ति तयणु लोगंतिएहिं तियसेहिं । संवच्छरियं दाणं पयट्टियं भुवणनाहेण ।।१३२।।
अह भरहो अहिसित्तो विणीयनयरीइ नियपए पहुणा । दिन्ना य बाहुबलिणो तक्खसिला नाम वरनयरी ।।१३३।।
अन्नेसिं पि सुयाणं दाऊण पुढो पुढो पुहविखंडं । कयसव्वसंगचाओ पव्वइओ पढमजिणराओ ।।१३४।।
संवच्छरं अणसिओ वाससहस्सं च रहिय छउमत्थो । पत्तो केवलनाणं घाइत्ता घाइकम्माणि ।।१३५।।
सरभसमिलियचउव्विह - देवनिकाएहि कए समोसरणे । अच्छब्भुयभूयाइ तित्थयरसिरीइ सो सहइ ।।१३६।।
उप्पन्नचक्करयणो भरहो [वि हु] विहियसामिपयपूओ । चक्काणुमग्गलग्गो चलिओ दिसिविजयमुद्दिसिउं ।।१३७।।
गच्छंतेण य पुव्वं पुव्वाइ दिसाइ मगहतित्थेसो । विहिओ निद्देसकरो अमरो वि हु किंकरु व्व निओ ।।१३८।।
एवं वरदामो दक्खिणाइ अवराइ तह पभाससुरो । विहिया य सिंधुदेवी नरदेवेणं निदेसकरी ।।१३९।।
सिंधुमिलिच्छाण तओ गिण्हइ दंडं पयंडभुयदंडो । पडिवत्तिं च पडिच्छइ कमेण वेयड्ढकुमरस्स ।।१४०।।
कयसागओ य तत्तो कयमालसुरेण कंदरं तिमिसं । उग्घाडावइ सेणाहिवेण विहिओवयारेण ।।१४१।।
मग्गेण तेण उल्लंघिऊण लीलाइ तयणु वेयड्ढं । भंजइ भुयभडवायं परकूलनिवासिमिच्छाणं ।।१४२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयणुक्करणि मुत्ताहलाणि करितुरयकणयरयणाइं । चिरसंचियाइं ते दिंति चक्किणो विक्कमक्कंता ।।१४३।।
चुल्लहिमवंतकुमरं बाणपओगेण सेवगं काउं । निक्खिवइ उसभकूडे उसभसुओ तयणु नियनामं ।।१४४।।
अह उत्तरे नियंबे वेयड्ढनगस्स संठवियसिबिरो । नमिविनमीविज्जाहरवइणो साहइ दढपइन्नो ।।१४५।।
तत्तो गंगादेवी पसाहिया भरहमब्भुयसरूवं । अब्भत्थिऊण ठावइ वाससहस्सं नियावासे ।।१४६।।
अणुकूलिऊण देविं साहेउं पुव्वनिक्खुडं तीसे । पत्तो खंडपयावं वेयड्ढगुहं महीनाहो ।।१४७।।
तिमिसं व तं पि उग्घाडिऊण उल्लंघिऊण वेयड्ढं । गंगापच्छिमकूले निहिणो उद्दिसिय सो ठाइ ।।१४८।।
अह नेसप्पप्पमुहा निहिणो तप्पुव्वपेरिया पुरओ । होऊणं पञ्चक्खा सीसआणं पडिच्छंति ।।१४९।।
इय छक्खंडं भरहं अखंडपरक्कमो पसाहित्ता । विणियत्तो स विणीयं सट्ठिसहस्सेहि वासाणं ।।१५०।।
चुलसीइसयसहस्सा पत्तेयं तस्स हरिकरिरहाणं । छन्नउई कोडीउ पत्तीण परक्कमधणाण ।।१५१।।
बत्तीसं च सहस्सा बद्धकिरीडाण सेवगनिवाणं । तहुगुणा जुवईणं लोउत्तररूवरेहाणं ।।१५२।।
सोलस तह य सहस्सा जक्खाण खणं पि तस्स अविउत्ता । नव निहिणो चउद्दस रयणा वसवत्तिणो तस्स ।।१५३।।
पुरनयरखेडकब्बड - मडंबगामागराण सुबहूण । एगपहू सिरिभरहो कमेण पत्तो विणीयपुरिं ।।१५४।।
चक्कित्तणाभिसेओ बारसवरिसेहिं तस्स निव्वडिओ । जाओ पयडपयावो भरहवई भारहे वासे ।।१५५।।
आपुव्वदक्खिणावर - जलनिहिणो आय चुल्लहिमवंतं । सरभसमुवसप्पंती न खलइ सेणव्व तस्साणा ।।१५६।।
किञ्च -
वररूवलडहलायन्न - ललियवेयड्ढभावसुभगाहिं । जं कामिज्जइ चउसट्ठिसहसवरकामिणीहिं सया ।।१५७।।
सेविज्जइ अत्थाणे किरीडतडघडिरअंजलिउडेहिं । सुरसामिउ व्व सामाणिएहि जं मउडबद्धेहिं ।।१५८।।
वियसियकमलवणं पिव गयणसरवरणि[य]विमाणमालाहि । दंसंतेहि नमिज्जइ जं नहयरचक्कवालेहिं ।।१५९।।
संकप्पाणंतरसंघडंत - मणवंछियत्थसत्थेहिं । आराहिज्जइ अनिमित्तमेव जं सुरसमूहेहिं ।।१६०।।
अप्पडिमपभावेणं बत्तीसविमाणलक्खपहुणा वि । आसिज्जइ सक्केणं वि निए य जं आसणद्धम्मि ।।१६१।।
तवजावकढिणकिरिया - कलावआयावणाइविरहे वि । जं सुद्धंतठियस्स वि उप्पज्जइ केवलन्नाणं ।।१६२।।
तं सव्वं चिय सिरिभरह - चक्किणो बाहुभवविढत्तस्स । वेयावच्चावसरे सुपत्तदाणस्स मुणह फलं ।।१६३।।
इति यदकृत बाहुसाधुरुद्धैरकृतनिदानमसौ सुपात्रदानम् ।
समजनि सुकृतेन तेन चक्री, परमपदं च विना श्रमं प्रपेदे ।।१६४।।

दर्शितं बाहुमुनिचरितम् । अधुना पुष्पचूलाकथानकमुच्यते -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। सुपात्रदाने पुष्पचूलासाध्वीकथानकम् ।।

सर्वेषामन्तरीपाणां समुद्राणां च मध्यमे । जम्बूद्वीपाभिधे द्वीपे क्षेत्रेऽत्रैव च भारते ।।१।।
अस्ति विस्तीर्णशस्तौधनिरस्तनिखिलाशुभम् । सुरश्रोतस्विनीतीरे पुष्पभद्राभिधं पुरम् ।।२।।
उल्लासितरतिर्लोकै - रनुल्लङ्घितशासनः । कलावत्प्रीतिदस्तत्र पुष्पकेतुर्महीपतिः ।।३।।
तस्य पुष्पवती देवी दिव्यैर्मौक्तिकमण्डनैः । अशोभत लतेवोच्चैः स्मितपुष्पवती सदा ।।४।।
प्राग्भवारोपितस्याथ तपःकल्पमहीरुहः । राज्यं फलमिव स्वादु बुभुजे स तया सह ।।५।।
देवी पुष्पवती गर्भं सा बभाराऽन्यदा मुदा । वन्ध्यात्वं हि पुरन्ध्रीणां वैधव्यमिव दुस्सहम् ।।६।।
सम्पूर्णदोहदा काले युगलक्षेत्रभूरिव । असूत युगलं कान्ति - जटालितदिगन्तरम् ।।७।।
स तस्यां जातयुग्मायां पिप्रिये पृथिवीपतिः । द्विगुणेन हि लाभेन कस्य न स्युर्मनोमुदः ।।८।।
उत्साहेनोत्सवेनेव सर्प्पता विदधे नृपः । पुष्पचूलं सुतं नाम्ना पुष्पचूलां च नन्दनीम् ।।९।।
प्रयत्नेन पितुर्मातुर्वात्सल्येन च लालितम् । अवर्द्धत मुदा तृप्तमिवापत्ययुगं तयोः ।।१०।।
तमीतमोवत् तस्याऽथ शिशुत्वे शान्तिमीयुषि । भानुप्रभेव प्रतिभा मनोनभसि दिद्युते ।।११।।
विनीतमभियुक्तं च तदपत्ययुगं क्रमात् । कलाजलनिधेः पारं प्रज्ञापोतेन लम्भितम् ।।१२।।
पुष्पायुधधनुःकेलिखुरलीसदृशं च तौ । प्रापतुर्यौवनं स्वस्वजात्या सस्पृहमीक्षितौ ।।१३।।
परस्पराश्रया प्रीतिस्तयोः प्रववृधेऽधिकम् । द्वन्द्वेन चरतोर्द्वन्द्वचरयोरिव पत्रिणोः ।।१४।।
पुष्पकेतुनरेन्द्रस्य पश्यतस्तत् तथा तयोः । तथाभाव्यवशाच्चित्ते चिन्तेत्थं समुपस्थिता ।।१५।।
तुल्यं रूपं वचस्तुल्यं तुल्यं लावण्यमेतयोः । तुल्यः कलाकलापश्च तुल्या च मनसः स्थितिः ।।१६।।
दैवाद् यदि वियोगोऽपि स्यात् परस्परमेतयोः । अत्याहितमपि प्रायस्तदा जायेत कर्हिचित् ।।१७।।
श्रूयते च पुराप्येषा व्यवस्था युग्मधर्म्मिणाम् । तथापि वर्त्तमानास्ते न च दुर्गतिगामिनः ।।१८।।
योजयिष्ये मिथुनकं ध्रुवं तदहमप्यदः । अन्यान्यसङ्गमेनाऽस्तु मा विडम्बनमेतयोः ।।१९।।
किन्तु लोकापवादोऽयममर्यादः समुद्रवत् । प्रसरन् वार्यतां केन विततोपायसेतुना ।।२०।।
हुं ज्ञातमथवा कार्येऽनार्ये मायैव जित्वरी । पातयिष्याम्यतः पौरान् क्वाप्यहं वचनच्छले ।।२१।।
इति निश्चित्य चित्तेऽर्थमास्थायास्थानमण्डपे । पौरानाह्वाययामास वेत्रपालेन भूपतिः ।।२२।।
ससम्भ्रमोपनम्रेषु नम्रेष्वेषु क्षितीश्वरः । दृशा मधुरया पश्यन् सप्रसादमदोऽवदत् ।।२३।।
हंहो ! पौरजनाः सम्यक् परिभाव्याभिधीयताम् । ममाकरे पुरे कोशे शुद्धान्तेऽन्यत्र वा क्वचित् ।।२४।।
यद्यदुत्पद्यते रत्नं तस्य कः स्यात् किल प्रभुः । कार्यतत्त्वं विचार्यैतद् दीयतां मम निर्णयः ।।२५।।
निबद्धाऽञ्जलयो मूर्ध्नि तेऽप्यूचुः सरलाशयाः । उत्तानार्थमिदं देव ! मीमांसामपि नार्हति ।।२६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नृरत्न ! यानि रत्नानि भवन्ति भुवनेऽपि हि । तेषामपि भवान् भोक्ता किं पुनर्निजनीवृति ।।२७।।
तद् भजस्व यथाकामं विश्राणय यथारुचि । यच्च यस्योचितं वस्तु कुरु तत् तेन सङ्गतम् ।।२८।।
पुनरुक्तं ब्रुवाणेषु तेष्वेवमवनीपतिः । आविश्चक्रे निजं भावं वल्मीक इव पन्नगम् ।।२९।।
निजवाक्यछले मग्नाः पिच्छिले कलभा इव । ततस्तेऽधोमुखास्तस्थुर्विलक्षा मार्गणा इव ।।३०।।
नृपं कदाग्रहात् तस्मात् निवर्त्तयितुमक्षमाः । ययुर्यथागतं सर्वे निर्वेदमलिनाननाः ।।३१।।
अथ पुष्पवती देवी दुर्वृत्तं तन्महीपतेः । निशम्य बोधयामास मौलामात्यैरनेकधा ।।३२।।
अवज्ञाय नृपस्तेषां वचनं तत् तथा व्यधात् । व्याला इव महीपाला ग्राह्यन्ते केन वा न यम् ।।३३।।
योजितं युगलं तच्च स्वाभिप्रायेण भूभुजा । रेमे, भवस्थितिः कामं स्वभ्यस्ता हि शरीरिणाम् ।।३४।।
वैराग्येण च तेनैव विरक्ता भववासतः । प्रवव्राज गुरोर्मूले देवी पुष्पवती तदा ।।३५।।
कियत्यपि गते काले कालज्ञः पृथिवीपतिः । पुष्पकेतुः पुष्पचूलं पुत्रं राज्ये न्यवीविशत् ।।३६।।
अजर्यमर्जयामास वानप्रस्थैः समं स्वयम् । सति शस्त्रक्षमे पुत्रे क्षत्रियाणां क्रमो ह्ययम् ।।३७।।
पैतृकं पुष्पचूलोऽपि राज्यं प्राज्यपराक्रमः । पालयामास सौम्येन प्रतापेन च दुःस्सहः ।।३८।।
पुष्पचूलाऽपि पञ्चापि शब्दादीन् विषयान् सुखम् । भुञ्जाना पुष्पचूलेन समं स्वैरमरंस्त सा ।।३९।।
विहरन्तोऽन्यदा तत्र पुरे परमनैष्ठिकाः । अत्रिकापुत्रनामानः सूरयः समुपागताः ।।४०।।
तस्थुः प्रतिश्रये क्वापि जन्तुबाधाविवर्जिते । रत्नत्रयधरैर्धीरैः साधुभिः साधु सेविताः ।।४१।।
इतश्च सा पुष्पवती देवी व्रतमुरीकृतम् । प्रतिपाल्य चिरं काले विपद्य त्रिदिवं ययौ ।।४२।।
ददर्श चावधेः पूर्व - भवाऽपत्ययुगं निजम् । संसारसुखसर्वस्वं विलसत् तदनारतम् ।।४३।।
आः कथं दुर्गतिपुरी - पान्थावेतौ भविष्यतः । अपरिज्ञाय सर्वज्ञ - शासनं क्लेशनाशनम् ।।४४।।
चिन्तयित्वेति विबुधः प्रतिबोधविधित्सया । सुप्तायाः पुष्पचूलायाः प्रतिरात्रमुपेत्य सः ।।४५।।
दुर्द्धरध्वान्तसंरुद्धान् दुर्गन्धीनतिभीषणान् । विलीनप्रवहत्पूय - पूर्णवैतरिणीतटान् ।।४६।।
असिपत्रवनीपत्र - शस्त्रसम्पातदारुणान् । कृत्रिमाम्भोदनिपत - दुल्काशनिनिरन्तरान् ।।४७।।
वैक्रियक्रूरसिंहाहि - गृध्र[7]कङ्ककुलाकुलान् । परमाधार्म्मिकक्लिष्ट - रटद्वारकसङ्कटान् ।।४८।।
कांश्चिद् वज्रानलालीढान् हिमानीसन्ततान् परान् । दर्शयामास नरकान् स्वप्नेऽत्यन्तभयङ्करान् ।।४९।।
तांस्तथा भीषणान् प्रेक्ष्य संक्षुब्धा पार्थिवप्रिया । भयभ्रान्ता जजागार व्याजहार च भूभुजे ।।५०।।
अथ प्रातर्नृपः शैव - बौद्धकापिलवैष्णवान् । पाखण्डिनः पिण्डयित्वा पप्रच्छ नरकस्थितिम् ।।५१।।
अन्यदन्यद् ब्रुवाणास्ते कदागमविमोहिताः । विसंवादिगिरः सर्वे विसृष्टाः पृथिवीभुजा ।।५२।।

गाथा-१३४ 7. कङ्क - कङ्कनामा पक्षीविशेषः, कङ्कते गच्छतीति कङ्कः । - अभि. स्वो. ना. श्लो. १३३३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुत्वा भगवतो भूप - स्तत्रस्थान् अन्निकासुतान् । प्रधानपुरुषैर्भक्त्या निजावासमनाययत् ।।५३।।
धृत्वा काण्डपटछत्रां पुष्पचूलामिलापतिः । तेभ्योऽपि पूर्ववन्नत्वा पप्रच्छ नरकस्थितिम् ।।५४।।
यथा साक्षात्कृताः स्वप्ने नरकाः पुष्पचूलया । तथैव पुरतस्तस्य मुनीन्द्रेण निवेदिताः ।।५५।।
प्रणिपत्य ततः सूरिं पुष्पचूला चमत्कृता । व्यजिज्ञपदमी स्वामिन् ! किं मयेव त्वयेक्षिताः ।।५६।।
जगाद भगवान् भद्रे ! भद्रमस्तु जिनागमे । त्रिलोकी यद्बलादेवं करस्थेव विभाव्यते ।।५७।।
संवादिवचनं सूरिं प्रीतचित्तः क्षितीश्वरः । सगौरवं नमस्कृत्य विससर्ज कृताञ्जलिः ।।५८।।
अथ पुष्पवतीदेवः स तथैव निशान्तरे । मणिस्तोमविनिर्माण - विमानचयबन्धुरान् ।।५९।।
शिरःपरिसरप्रेङ्खत् - पताकाप्रकाराञ्चितान् । रत्नतोरणतेजोभिः सम्भृतत्रिदशायुधान् ।।६०।।
जात्यजाम्बूनदच्छेद - छायकायलसत्सुरान् । अम्लानसुमनोदाम - सारसौरभसम्भृतान् ।।६१।।
सङ्कल्पानन्तरोद्भूत - नूतनाश्चर्यबन्धुरान् । दिव्यसङ्गीतकासक्त - शक्रसामानिकाऽमरान् ।।६२।।
ससम्भ्रमनमन्मौलि - मणिमालामिलत्क्रमैः । सूचितावसरं देवैः सेव्यमानदिवस्पतीन् ।।६३।।
दर्शयामास च स्वर्गान् अनर्गलसुखास्पदान् । स्वप्रान्तः पुष्पचूलायै साऽपि भर्त्रे शशंस तान् ।।६४।।
अनिर्णीते पुरेवाथ तस्मिन्नर्थे कुतीर्थिकैः । अन्निकातनयाचार्यान् पुनः पप्रच्छ पार्थिवः ।।६५।।
निवेदिते श्रुतबलात् स्वःस्वरूपे तथैव तैः । व्यजिज्ञपदिदं भक्त्या पुष्पचूला कृताञ्जलिः ।।६६।।
भगवन् ! कर्म्मणा केन गम्यते नरकावनौ । केन वा गम्यते नैव प्रसीदाऽऽदिश मे प्रभो ! ।।६७।।
अथोवाच मुनीन्द्रस्तां शृणु वत्से ! यदीच्छसि । प्ररूढगाढमिथ्यात्वाः सत्त्वाः संसृतिसंश्रिताः ।।६८।।
सदैवातुच्छमूर्च्छालाः सावद्यारम्भिणः सदा । निसर्गनिर्दयाः किं च पञ्चेन्द्रियवधे रताः ।।६९।।
मद्यमांसाशिनः क्रूराः परद्रव्यापहारिणः । अब्रह्मनिरताः पापाः पतन्ति नरकावटे ।।७०।।
ये तु तत्त्वत्रयोद्बुद्ध - श्रद्धानाः शुद्धचेतसः । निःशेषदोषनिर्मुक्ते सक्ताः सर्वज्ञशासने ।।७१।।
अमुक्तसन्निधानाश्च दयादयितया सदा । तथ्यपथ्यप्रियालापाः पर्वस्तेन्द्रियचापलाः ।।७२।।
पीतसन्तोषपीयूष - शान्तलोभदवार्चिषः । लोकधर्मविरुद्धे च कृत्यजाते पराङ्मुखाः ।।७३।।
पापाश्रवेभ्यो विरता निरताः सर्वसंवरे । मोक्षाभिलाषिणो भद्रे ! निपतन्ति न दुर्गतौ ।।७४।।
विकस्वरविवेकायास्तत्तवापि हि साम्प्रतम् । श्वभ्राभिनन्दिनि भवे रतिः कर्तुं न साम्प्रतम् ।।७५।।
तरङ्गतरला सम्पदायुर्वायुवदस्थिरम् । सुरचापोपमं रूपं करिकर्णचलं बलम् ।।७६।।
स्वप्नसङ्गमवत् प्रेम जरा नित्यमवारिता । अन्तकश्चान्तिकस्थोऽयं स्वहिताय यतस्व तत् ।।७७।।
निशम्याऽथ यथार्थां तां पुष्पचूला गिरं गुरोः । अन्तस्तरङ्गितोदग्र - भववैराग्यभावना ।।७८।।
व्यजिज्ञपन्नृपं देव तव यद्यस्मि हृत्प्रिया । सत्यमेव तदा मह्यं प्रसादय मनःप्रियम् ।।७९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वयि प्रणयिनि स्वामिन् ! स्वप्नदृष्टेषु यद्यहम् । नरकेषु पतिष्यामि किं प्रियत्वं तदा तव ।।८०।।
न च श्वभ्रनिपातस्य परित्राणेऽपरः प्रभुः । विना जैनेश्वरीं दीक्षामक्षेपान्मोक्षदायिनीम् ।।८१।।
तत् प्रसीदानुमन्यस्व मां व्रताय दयानिधे ! । न क्षमा क्षणमप्यत्र भवे स्थातुं भयानके ।।८२।।
एवमत्यन्तनिर्बन्धात् प्रार्थितः पार्थिवस्तया । जगाद युक्तमेवेदं स्वहिताय यदुद्यमः ।।८३।।
किन्तु जिहेम्यहं देवि ! त्वयि सामान्यभिक्षुवत् । गृहीतमुनिवेषायां पर्यटन्त्यां गृहाद् गृहम् ।।८४।।
अतः शुद्धान्तमध्यस्था व्रतं पालय निर्मलम् । आहारैरेषणीयैस्त्वं प्रीणयन्ती निजं वपुः ।।८५।।
ऊचे सूरिरपि द्रव्य - क्षेत्राद्धाभाववित् तदा । भद्रे ! मान्यो नरेन्द्रोऽयमेवमप्यस्तु ते व्रतम् ।।८६।।
आत्मारामत्वमेवात्र भावव्रतनिबन्धनम् । व्यवहारनयापेक्षा शेषा त्वेषा व्यवस्थितिः ।।८७।।
तथेति प्रतिपद्याथ सा प्रपेदे मुनिव्रतम् । क्रमेणाऽजनि गीतार्था गुरूणां परिचर्यया ।।८८।।
तत्राऽन्यदा मदोद्रेकहरं परगृहाशिनाम् । स्थूललक्षोत्कर्षहेतु - र्दुर्भिक्षमुदपद्यत ।।८९।।
पीड्यमाने जने तेन फलेन च कुकर्म्मणाम् । चुचुम्ब चिन्ता चित्तानि महेभ्यानामपि क्रमात् ।।९०।।
अनेषणादोषभयाद् भगवन्तोऽत्रिकासुताः । ततस्ते प्रेषयामासुः स्वं गच्छं स्वस्थभूमिषु ।।९१।।
क्षीणजङ्घाबलत्वेन विहर्तुं स्वयमक्षमाः । तस्थुरेकाकिनोऽप्यागिरो नैकान्तिका यतः ।।९२।।
वीर्याचाराद् भ्रमन्तस्ते भिक्षां गोचरचर्यया । श्राम्यन्ति विश्रसा कस्य न काले बलहारिणी ।।९३।।
पश्यन्ती तत् तथा पुष्पचूलार्या कार्यवेदिनी । प्रणम्य सादरं सूरीनिति भक्त्या व्यजिज्ञपत् ।।९४।।
जानामि पूज्यपादानामादेशाद् भगवन्निदम् । भुज्यते नार्यिकालाभो यदुत्सर्गेण साधुभिः ।।९५।।
किन्तु सम्पद्यते खेदो महान् गोचरचर्यया । अतोऽहमेव पूज्यानां भक्तपानाद्युपानये ।।९६।।
श्रुत्वेति वचनं तस्याश्चिन्तयामासुराशु ते । अपवादाऽऽसेवनेन धिग् धिग् नश्वरजीविताम् ।।९७।।
एकाकित्वं पुरस्तावद् द्वितीया नित्यवासिता । आर्यिकालाभभोगोऽयं तृतीयः समुपस्थितः ।।९८।।
किन्त्वेवमेव पश्यामि निर्वाहमहमात्मनः । विमृश्येति चिरं सूरि - रनुजज्ञे तथैव ताम् ।।९९।।
हृष्टतुष्टा ततः साऽपि वचसा तेन धीमती । यत्नेन महता सर्वं सूरिभ्यः तं प्रयच्छति ।।१००।।
शुश्रूषमाणा पुत्रीव पितरं सा मुनीश्वरम् । अमन्यत निजं जन्म कृतकृत्यमनिन्दिता ।।१०१।।
प्रासुकैरेषणीयैश्च भक्तपानैर्गुरोर्वपुः । पुष्णती सा युपोषोद्यैर्निजं व्रतवपुस्तदा ।।१०२।।
वर्द्धयन्ती समाधानं गुरोश्चित्तानुवर्त्तनात् । गुणाय दोषमप्येषा नित्यवासममन्यत ।।१०३।।
एवमस्याः प्रसक्ताया वैयावृत्त्ये मुनीशितुः । आत्यन्तिकशुभध्याना - दुदपद्यत केवलम् ।।१०४।।
व्यवहारनयं किन्तु मन्यमानः स केवली । कृतकृत्योऽपि भगवान्नात्मानं व्याकरोज्जने ।।१०५।।
पूर्वप्रयुक्तं विनयं निर्वाहयति चाऽञ्जसा । प्रमाणपुरुषाऽऽयत्ता यतः सर्वा व्यवस्थितिः ।।१०६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकारे श्लेष्मणो जाते सूरीणामथ कर्हिचित् । कटुतिक्तकषायादि यत् तेषां मनसो मतम् ।।१०७।।
अन्तरायक्षयात् प्राप्य केवली तदुपानयत् । अजायत चमत्कारः सूरीणामथ मानसे ।।१०८।।
अन्येद्युर्वारिदे वारिधारासारं विमुञ्चति । भक्तपानाद्युपादाय केवली समुपागमत् ।।१०९।।
आः किमेवं कृतं हन्त जलजन्तूपमर्दनम् । सूरिणैवमुपालब्धा केवली प्रत्यभाषत ।।११०।।
येषु येषु प्रदेशेषु ज्ञाता परिणतिर्मया । जीवानां जलकायानां तेषु तेष्वहमागमम् ।।१११।।
कथं ज्ञातमिदं ज्ञानात् किं ज्ञानं क्षायिकं ननु । श्रुत्वेति तत्पदौ सूरिः प्रणमन्नित्यवोचत ।।११२।।
आशातितः केवली हा कियत्कालमहो मया । अज्ञानपटलच्छन्न - तत्त्वालोकेन दुर्द्धिया ।।११३।।
अतीचाररजोभिर्मे पुरैव मलिनं व्रतम् । अवज्ञायाऽधुना काऽस्तु गतिः केवलिनं पुनः ।।११४।।
भूत्वाऽसौ मद्विनेयाऽपि विमलं प्राप केवलम् । अतः कर्म्मभिरेवाहं गुरुर्नान्येन हेतुना ।।११५।।
शोचन्तमिति तं खेदादवादीदिति केवली । मा विषीद मुनीन्द्र ! त्वं न भवान् गुरुकर्म्मकः ।।११६।।
उत्पत्स्यते भवेऽत्रैव गङ्गामुत्तरतस्तव । विमलं केवलज्ञानमतः किं तप्यसे मुधा ।।११७।।
तथेति प्रतिपेदे तत् सूरिः केवलिभाषितम् । स्वयं चाऽचिन्तयत् तावत् पालितं सुचिरं व्रतम् ।।११८।।
शिष्याश्चाध्यापिता गच्छः स्थापितः स्वव्यवस्थितौ । इति मे कृतकृत्यस्य प्रतिबन्धो भवेऽत्र कः ।।११९।।
विमृश्येति तदैवागादुपगङ्गं मुनीश्वरः । कः श्रेयसि समीपस्थे मन्दोऽपि हि विलम्बते ।।१२०।।
यावदारुरुहुर्नावं सूरयः परतीरगाम् । तावत् तेषामुदीयायावद्यं कर्म्माऽतिदारुणम् ।।१२१।।
तद्वशाद् देवता कापि मिथ्यादृष्टिर्दुराशया । निमज्जयितुमारेभे तां तरीं तदधिष्ठिताम् ।।१२२।।
विवेश यत्र यत्राऽसौ यतिज्येष्ठस्तदन्तरे । [8]मङ्गिन्यास्तत्तदेवाङ्गमन्तःसलिलमब्रुडत् ।।१२३।।
किमेतदिति सम्भ्रान्ते जने देवी जगौ दिवि । श्रेयः सम्पत्स्यते भिक्षौ पर्यस्तेऽन्तर्नदीह वः ।।१२४।।
एवमुक्ते धार्म्मिकेषु हाहाकारपरेष्वपि । वेदान्तर्वर्त्तिभिः क्रूरैः सूरिः पर्यस्य पातितः ।।१२५।।
पतन्तं सा प्रतीयेष त्रिशूलेन दुराशया । दीर्घसंसृतिसङ्गानामकृत्यं वा किमङ्गिनाम् ।।१२६।।
शूलदारितदेहोऽथ सूरिरन्तर्जलं ब्रुडन् । चिन्तयामास धिग् धिग् मे देहोत्थैः शोणितोर्म्मिभिः ।।१२७।।
विपद्यन्ते कोटिशोऽमी प्राणिनो जलकायिकाः । मृद्यन्ते द्वीन्द्रियाद्याश्च सङ्घट्टाद् वपुषः परे ।।१२८।।
अशक्येऽत्र प्रतीकारे का नाम परिदेवना । विचिन्त्येति नमश्चक्रे पञ्चापि परमेष्ठिनः ।।१२९।।
ददावालोचनां सिद्धसमक्षं स क्षमानिधिः । क्षमयामास सत्त्वांश्च सत्त्वसारश्चराचरान् ।।१३०।।
विशेषतो देवतायां तस्यां साम्यं समुद्वहन् । आरुरोह महात्माऽसौ विशुद्धां ध्यानसन्ततिम् ।।१३१।।
क्षपयित्वाऽथ कर्म्माणि कृत्स्नानि युगपत् तदा । अन्तःकृत्केवली जज्ञे भगवानत्रिकासुतः ।।१३२।।

8. **मङ्गिनी** - नौका-नाव । मङ्गो नौशीर्षमस्त्यस्यां मङ्गिनी ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिमानं सुराश्चक्रुस्तस्यां सिद्धतनौ तदा । ततः प्रभृति तीर्थं तत् प्रयाग इति गीयते ।।१३३।।
पुष्पचूलाऽपि पर्यायं केवलस्याऽनुपाल्य सा । शेषकर्म्मक्षयादन्ते प्रपेदे परमं पदम् ।।१३४।।
पुष्पचूलाचरित्रस्याऽनुवादोऽयं मया कृतः । नाऽऽर्यालाभोपभोगाय ग्राह्यमालम्बनं त्वदः ।।१३५।।
अपवादपदेऽपि पुष्पचूला, विरचय्येति सुपात्रदानमेतत् ।
अलभत परमं पदं तद्, अन्यैः सविशेषयतनीयमत्र दाने ।।१३६।।

उदीरितं पुष्पचूलोदाहरणम् । इदानीं मूलदेवाख्यानमभिधीयते ।।श्रीः।।

।। सुपात्रदाने मूलदेवकथानकम् ।।

अत्थित्थ गोडविसए विसयाण सिरोमणिम्मि वरनयरं । नयरंजियपोरजणं जणसुहयं पाडलीपुत्तं ।।१।।
तत्थ य खत्तियतणओ विणयाइगुणेहिं संघडियपणओ । मूलं कलालयाणं निवसइ सिरिमूलदेव त्ति ।।२।।
छेएसु [9]छइल्लो विउसो विउसेसु तह भडेसु भडो । वाईसु धाउवाई विडो विडेसुं नडेसु नडो ।।३।।
चंदु व्व कलंकेणं भुयंगसंगेण चंदणतरु व्व । जूयवसणेण दूरं स दूसिओ पयइसुहओ वि ।।४।।
खरकोमलवयणेहिंपिउणा भणिओविमुयइन हुजूयं । अवमाणिओतओ सो न[10]गंजणाकम्मस्सवसणाओ ।।५।।
तत्तो अभिमाणधणो विणिग्गओ सो पुराउ सुत्रमणो । सयलरसरायहाणिं पत्तो य कमेण उज्जेणिं ।।६।।
तत्थ य वामणरूवं काउं गुलियापओगओ लोए । विम्हयमुप्पायंतो विविहविणोएहिं विलसेइ ।।७।।
निवसइ य तत्थ वररूवलडहलायन्नलालियविन्नाणा । गणिया य देवदत्ता ऊसियपत्ता सजाईए ।।८।।
सा वेसत्तं पत्ता वि कम्मवसओ अणिंदियायारा । गुणरागिणी य पडिवन्नवच्छला पयणुला(लो)भा य ।।९।।
अह कयगवामणो सो दंसेउं तीइ नियकोसल्लं । अविदूरम्मि पयट्टो गाएउं तुंबरु व्व सयं ।।१०।।
मुच्छंतीसुं पडुगामरागघणमुच्छणासु सुइजुयले । सहस त्ति देवदत्ता विम्हियचित्ता भणइ चेडिं ।।११।।
को एस मंजुघोसो जो गाएइ मुणिय साहेसु । विन्नत्तं तीइ तओ सामिणि ! सो एस वामणगो ।।१२।।
अह माहवियं नामेण खुज्जचेडिं तयंतिए एसा । पेसइ आणयणत्थं अब्भत्थइ सा वि तं गंतुं ।।१३।।
तो भणइ मूलदेवो गच्छ तुमं नाहमागमिस्सामि । को वेसासुं सज्जिज्ज संभलीपरवसठिईसुं ।।१४।।
गंतुं परिवत्तंती सयलकलाजलहिपारगेणिमिणा । अप्फालिऊण सहस त्ति सरसदेहा इमा विहिया ।।१५।।
तो तस्स वइयरंमी विन्नत्ते तीइ देवदत्ता वि । सविसेसविम्हियारं भणेइ जह तह सणमे... ? ।।१६।।
घणचाडुकोडिघडणाहिं कहवि अब्भत्थिऊण उवणीए । तो तम्मि देवदत्ता पडिवत्तिमकित्तिमं कुणइ ।।१७।।

9. **छइल्ल** - (दे) विदग्ध, चतुर, होंशियार इति भाषायाम् । - प्रा. ल. ना. । कुमा. च. ।।
10. **गंजण** - गञ्जन - अपमान, तिरस्कार इति भाषायाम् । - वज्जा. । पा. स. म. पृ. २८२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह गेयनट्टविन्नाणविराय(यार ?)मेसिं वियारमाणाणं । वीणाविणोयनिउणो समागओ तयणु तत्थेगो ।।१८।।
ता सवण [?] दंडताडियतंती-तल-मंदमज्झतारसरं । सो सयलजणनिक्कलं लहु वीणं वाएउमारद्धो ।।१९।।
वत्रंती तं निउणं भणिया धुत्तेण देवदत्ताऽवि । अत्तो अवंतिलोओ निउणो सयलासु वि कलासु ।।२०।।
तत्तो संकियचित्ताइ देवदत्ताइ जंपिओ धुत्तो । पडिहासइ तुह हियए असंगयं किमिह साहेसु ।।२१।।
निब्बंधेणं पुट्ठो भणइ सगव्भा धुवं इमा वीणा । वज्जइ कहं ति वुत्तेण तक्खणा तेण निउणेण ।।२२।।
केसो तंतीहिंतो पाहणखंडं च तह य दंडाओ । अवणेऊणं वीणा आलविया झत्ति सज्जेउं ।।२३।।
तो पडिउं पाएसुं वीणाकारो सगोरवं भणइ । अज्जप्पभिइं तं चेव मह गुरू पसिय सिक्खवसु ।।२४।।
इत्थंतरम्मि पत्तो नट्टायरिओ वि तत्थ वसुभूई । भरहनिउणु त्ति धुत्तस्स संसिओ देवदत्ताए ।।२५।।
अह भारहे वियारम्मि पत्थुए वामणु त्ति अवगणिओ । नट्टायरिएण इमो वक्खाणंतस्स तस्स तओ ।।२६।।
पुव्वावरभणिईणं पाडेइ विरोहसंकडे सो तं । ता वसुभूई कोवेण गोवए नियमत्राणं ।।२७।।
मा होउ विलक्खत्तं इइ दक्खा झत्ति देवदत्ताऽवि । विन्नवइ मूलदेवं करजुअलं जोडिऊण तओ ।।२८।।
निसुणेसु वल्लहवयणं अवधारसमओ त्ति देवदत्तो हं । आगंतव्वं तुमए इय पभणंतो मनुए सो ।।२९।।
तत्तो य देवदत्ता चेडिं आणवइ लहु उवट्टवसु । मद्दणनिउणं कंपि हु समयं तिय जेण ण्हाए सो ।।३०।।
अह भणइ मूलदेवो अलमाहवणेण तस्स अहमेव । दाहामि मद्दणं तुह जहसत्तीए भवसु पउणा ।।३१।।
एयं पि जंपिउंतं बलेण तह परियरेण सो कुमरो । पिव आणमाणपासम्मि किं कुणइ परं पि परि(र)वसिओ ।।३२।।
तो तीइ समाएसेणं झत्ति सयसहसलक्खपागाणि । समुवट्टियाणि तिल्लाणि वामणो तयणु मद्देइ ।।३३।।
नहरोमेसु [1]तयाएंऽसुएसु मंसंडिएसु अइनिउणो । मिउमंदमज्झनिविडं करप्पयारं करेमाणो ।।३४।।
मद्देइ तीइ अंगं जह सा सुहपयरिसेण निद्दाइ । परिसीलियाण सम्मं कलाण किं दुक्करं अहवा ।।३५।।
तो मद्दणाऽवसाणे रंजियचित्ताइ देवदत्ताए । भणिओ एसो नूणं न होसि तं वामणगमित्तो ।।३६।।
ता कीस महा मोहेसि पसिय साहेसु नियसब्भावा । तुह चिट्ठिएहिं सुंदर जायं मह तम्मयं हिययं ।।३७।।
इय तीइ जंपिरीए गुलियं ओसारिऊण वयणाओ । पयडेइ मूलदेवो नियरूवं वम्महसरूवं ।।३८।।
तं अच्चब्भुयभूयं सा गणिया तस्स पिक्खिउं रूवं । ठाणि ठाणि ठाणं सयलकलाणं ति संतुट्ठा ।।३९।।
दाऊण मद्दणं सयमिमीइ सो मज्जणं पि कारविओ । चंदणविलित्तगत्तो विभूसिओ देवदूसेहिं ।।४०।।
कयमज्जणोवयारा सयं पि वरवत्थभूसणसणाहा । वच्चंती रायउलं पत्थेउं नेइ सह तं पि ।।४१।।
कयरूवपरावत्तो सो धुत्तधुरंधरो तहिं पत्तो । गहियमुयंगो रंगंगणंमि लग्गो य वाएउं ।।४२।।
करणंगहाररुइरे फुरंतरसभावभंगिसुभगंमि । नट्टंमि संपयट्टा सुविसट्टे देवदत्ताऽवि ।।४३।।

---

1. **तयाएंऽसुएसु** - त्वचायां असृजि इत्यर्थः ज्ञातव्यः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तह कहवि तत्थ तीए नरवइणो रंजियं तया चित्तं । वियरइ वरं जहा से सा वि हु नो सीकरेइ तयं ।।४४।।
अह गाइउं पयट्टा समगं पच्छन्नमूलदेवेण । सरमहुरिमाइ अवगणियदिव्वगंधव्वगेएण ।।४५।।
तुट्ठो पुणो वि राया वियरइ से अंगलग्गमाभरणं । सुपसन्नमणा पहुणो नणु जंगमकप्परुक्ख व्व ।।४६।।
अह पाडलिपुरपहुणो दुवारओलग्गएण निउणेण । सिरिविमलसीहनामेण निवइणो तत्थ विन्नत्तं ।।४७।।
एवं गंधव्वकला पाडलिपुत्तंमि मूलदेवस्स । देव ! मए सिक्खविया भुवणे वि हु न उण अन्नस्स ।।४८।।
ता गेयनट्टविन्नाण - नाणपुन्नाइ देवदत्ताए । बज्झउ पट्टो सिरिमूलदेवओ दुइयठाणंमि ।।४९।।
तत्तो [12]पिसंडिपट्टं वियरंते नरवइंमि सा भणइ । उद्दिसिय मूलदेवं कलागुरू देव मम एसो ।।५०।।
एयस्स तो अणुन्ना इत्थ पमाणं ति तीइ संलत्ते । पच्छन्नमूलदेवेण जंपियं गिन्हसु पसायं ।।५१।।
अह आलवेइ वीणं धुत्तो विस्सावसु व्व तत्थ सयं । उप्पायंतो मोहं सो पसुवइणो पसूणं व ।।५२।।
विन्नवइ विमलसीहो पुणो वि सो देव ! निच्छियं एसो । सो चेव मूलदेवो कला जमेसा न अन्नस्स ।।५३।।
अह मूलदेवविसयं उक्कंठं पत्थिवंमि पयडंते । ओसारिऊण गुलियं नडु व्व सो पायडो जाओ ।।५४।।
दुल्लक्खो वि हु दूरं साहु तुमं लक्खिओ त्ति भणिरेण । विमलेण मूलदेवो सरभसामालिंगिओ कंठे ।।५५।।
पणमेइ पायपउमं तत्तो उवसप्पिऊण नरवइणो । तेणाऽवि सबहुमाणं सम्माणं लंभिओ दूरं ।।५६।।
अह रंगसमत्तीए राया परिवड्ढमाणमणरंगो । कहकह वि देवदत्ताइ पत्थिओ तं विसज्जेइ ।।५७।।
पूरिज्जमाणकामो गुणाऽणुरत्ताइ देवदत्ताए । न मुयइ दुरोदरं सो धी ! वसणविडंबियं पुरिसं ।।५८।।
इत्तो य तीइ नयरीइ धणयतुल्लो धणेण सत्थाहो । अयलु त्ति देवदत्ताइ रत्तचित्तो स पढमं पि ।।५९।।
भाडीदाणेण गिहंमि तीइ विलसइ य सामिउ व्व सया । धणमेव वसीकरणं रूवाजीवाण पाएण ।।६०।।
वंचियतद्दिट्ठिपहो चिट्ठइ तत्थेव मूलदेवो वि । इयरो वि नियइ छिद्दं विडंबणे तस्स धुत्तस्स ।।६१।।
हीलेइ देवदत्तं निद्धणधुत्तम्मि तम्मि अणुरत्तं । सा तीइ कुट्टिणी वि हु विविहोवाए पयट्टंती ।।६२।।
भणइ य फुडरक्खरं चिय मुंच हले ! मूलदेवमेयं तं । सेवइ न पक्खिणी वि हु रुक्खं सुहकंखिरी अहलं ।।६३।।
अह भणइ देवदत्ता अम्मो एगंतओ न मे चित्ते । विलसइ धणाणुराओ गुणाणुराओ वि नणु अत्थि ।।६४।।
के संति गुणा किर निद्धणस्स नज्जंति नणु परिक्खाए । कीरउ नाम परिक्खा एवं होउ त्ति सा भणिउं ।।६५।।
पेसइ अयलसयासे चेडिं किर अज्ज देवदत्ताए । मह सामिणीइ सुंदर ! अच्छइ उच्छूसु अहिलासो ।।६६।।
सो वि हु परितुट्ठमणो महापसाउ त्ति जंपिरो झत्ति । पेसइ भरिउं सगडिं समूलपत्ताण उच्छूणं ।।६७।।
ते दट्ठुं संतुट्ठा परिजंपइ संभली हले ! पिच्छ। कप्पतरुस्स व अकलिय - मुदारचरियत्तमयलस्स ।।६८।।
सा भणइ अंब ! किमहं करेणुगा ? मह कए जमेएण । उपणीया एवमिमे पिच्छसु बीयस्स वि विवेगं ।।६९।।

12. **पिसंडि (दे)** कनक-सुवर्ण इति भाषायाम् । - सुपा. ६०७ । कुमा. प्र. ९२, १४५ । पाइय स. म. पृ. ५९९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय भणिय मूलदेवो तहेव चेडीमुहेण आणत्तो । गिन्हेइ सो वि मुणिउं उच्छूणि सुछित्तजायाणि ।।७०।।
छित्तूण मूलपत्ताणि पव्वसंधीउ तयणु तच्छित्ता । अंगुट्ठपव्वमाणाणि कुणइ खंडाणि एएसिं ।।७१।।
चाउज्जायगपरिवासियाणि काऊण ताणि निक्खवइ । अहिणवसरावपुडए उवरिं मुद्दं च से देइ ।।७२।।
पेसइ हत्थे चेडीइ देवदत्ता य जंपए तत्तो । पिच्छसु अंब ! विसेसं सुवन्नरीरीण[13] व इमेसिं ।।७३।।
तो ताडिय व्व सीसंमि दूमिया वज्जनिट्ठुरा अज्जू । चिंतइ निद्धणमेयं निव्वासिस्सं कह गिहाओ ।।७४।।
अह एगंते अयलेण मिलिय गुरुरोसकलुसिया एसा । इणमिणमो कायव्वं तुमए एवं ति मंतेइ ।।७५।।
तो गंतूणं अयलोवि देवदत्ताइ सह विणोएहिं । खणमासिऊण पभणेइ देवदत्ते वयं गामे ।।७६।।
अमुगम्मि सन्निवेसे विसेसकज्जेण नणु गमिस्सामो । होही कालक्खेवो किञ्चिरो तत्थ अम्हाणं ।।७७।।
अह हरसिया वि किर दूमियव्व सा भणइ देव ! तुब्भेहिं । कायव्वो न विलंबु त्ति सरलहियया विसज्जेइ ।।७८।।
साहु पउत्थो अयलु त्ति तुट्ठचित्ताइ देवदत्ताए । नीसंकं वासगिहे पवेसिओ मूलदेवो वि ।।७९।।
सच्छंदं जा विलसइ तेण समं ताव कुट्टिणिपउत्तो । भडचडयरेण महया अयलो वि हु तत्थ संपत्तो ।।८०।।
दट्ठूण य तं इंतं पल्लंकतलम्मि गोविओ तीए । सहस त्ति मूलदेवो न पत्तकालं तहिं अन्नं ।।८१।।
आगंतूणं अयलो उवविट्ठो तम्मि चेव पल्लंके । धुत्तो तले निलुक्को अक्काए सन्निओ तस्स ।।८२।।
भणियं च सत्थनाहेण देवदत्ते निमित्तमासज्ज । अम्ह न जायं गमणं परिस्समो तह वि अंगेसु ।।८३।।
ता पगुणेसु समग्गं मज्जणसामग्गियं ति तेणुत्ते । सव्वं पि उवट्ठवियं निमेसमित्तेण दासीहिं ।।८४।।
अह भणइ देवदत्ता सत्थाहं इत्थ न्हाणवीढम्मि । कुणह पसायं जेणं कीरइ अंगेसु अब्भंगो ।।८५।।
सो भणइ देवदत्ते ! इत्थ ठिओ चेव अज्ज मज्जिस्सं । पभवइ जेण न एयं अनिमित्तक्किओवणयं ।।८६।।
दूसेसि[14] कीस वरदेवदूस - भूसियमरालदलतूलिं । को एस असग्गाहु त्ति तीइ वुत्तो पुणो भणइ ।।८७।।
आणानिद्देसकरे ममाइ उव्वहसि कीस किविणत्तं । रयणागरंमि मित्ते लवणस्स कहं असंपत्ती ।।८८।।
अंनाइ विलसियमिणं नूणं सयलं ति मुणियतत्ता वि । पडियारमपिच्छंती तुन्हिक्का चेव सा ठाइ ।।८९।।
पारद्धा मज्जेउं अयलो अयलासणो तहिं चेव । खलिमलजलेहिं चंडु व्व खवलिओ मूलदेवो वि ।।९०।।
वियलियसयलोवाओ वारीपडिउ व्व तयणु गयराओ । नियवसणोवहयमई सो धुत्तो चिंतये तत्तो ।।९१।।
"कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कस्याऽऽपदोऽस्तं गताः,
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवम्;
को वा दुर्जनवागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पुमान्।।९२।।"

13. **रीरी** - धातुविशेष, पीतल इति भाषायाम् । - सुपा. १४२ । कुमा. प्रा. ११ । - पाइय स. म. पृ. ७१३ ।।
14. 'मात्रे' इत्यर्थः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय तम्मि चिंतिरे कुट्टिणी वि अयलस्स सुभडसंघायं । पगुणीकाउं अयलं पि दिट्ठिसत्राइ पेरेइ ।।९३।।
तो कोवकंपिरतणू अयलो केसेसु मूलदेवं तं । आयड्ढिऊण एवं सक्खेवं भणिउमाढत्तो ।।९४।।
विउसो सि नाणविन्नाणनीइनिउणो सि सत्तसारो सि । एयंमि अवसरे तुह ता भण को कीरए दंडो ।।९५।।
जइ देवदत्तमेयं भुत्तुं वंछेसि दविणसाहीणं । ता गामपट्टगं पिव धणवुड्ढीए न किं लेसि ।।९६।।
इय तम्मि जंपिरे गरुयपरिभवुब्भंतचित्तवित्तिस्स । फुरियं न किंपि विन्नाणरासिणो वि हु तया तस्स ।।९७।।
तो तं अदिन्नवयणं लज्जामीलंतलोयणं दट्ठुं । चिंतइ अयलो एसो महाणुभावो वि दिव्ववसा ।।९८।।
जइ वि वसणम्मि पडिओ तह वि हु मह जुज्झए न लंघेउं । एगसरूवा उ जए न हुंति कस्स वि दसाउ जओ ।।९९।।
इय चिंतिऊण भणिओ भद्द ! विमुक्कोसि तं खु सप्पुरिसो । उवयरियव्वं समए तुमए वि कयन्नुणा मज्झ ।।१००।।
इय अयलेण विमुक्को अमुक्कमेरेण मूलदेवो वि । निग्गंतूणं न्हाओ कम्मि वि कासारसलिलम्मि ।।१०१।।
ता अयलस्सऽवयारे उवयारे तह य बद्धलक्खमणो । बिन्नायडमुद्दिसिउं स पत्थिओ पत्थिवकुमारो ।।१०२।।
गच्छंतस्स य मग्गे संघडिया से महाडवी एगा । पुव्वाऽणुभूयगुरुआवयाइ भइणि व्व दुल्लंघा ।।१०३।।
अडवीमुहंमि चिट्ठइ पाहेयसहायविरहिओ जाव । टक्को सद्धडनामो ताव दिओ तत्थ संपत्तो ।।१०४।।
संबलथइयाहत्थं तं दट्ठुं सो मणंमि ऊससिओ । साहु महं सुसहाओ [होसु] जट्ठि व्व थेरस्स ।।१०५।।
इय चिंतिऊण भणिओ तेण दिओ भद्द ! कत्थ गंतव्वं । सो भणइ वीरभद्दे गामे अडवीतडत्थम्मि ।।१०६।।
तेणावि हु सो पुट्ठो जंपइ बिन्नातडंमि जामि अहं । जइ एवं ता जाओ एगो मग्गो चिरं अम्ह ।।१०७।।
इय भणिऊण पयट्टा परुप्परालावअवगणियखेया । संपत्ता मज्झन्हे एगस्स तडे तडागस्स ।।१०८।।
करचरणवयणसोयं काउं ते दोवि तरुतले लीणा । भट्टो तओ पयट्टो भुत्तुं भूउ व्व एगागी ।।१०९।।
छुहिओ भुंजइ एसो भुत्तो दाहिइ ममावि इय इयरे । चिंतंतम्मि निबद्धा संबलथइया दिएण तओ ।।११०।।
तणुसंबलु त्ति अज्जं न देइ कल्ले धुवं महं दाही । इय तस्स दिणं बीयं तइयं पि तहेव वोलीणं ।।१११।।
अह तइयवासरंते अंते अडवीइ दोवि ते पत्ता । भट्टो य पयट्टंतो गामं पइ जंपिओ तेण ।।११२।।
तुह आसाए एसा भद्द ! मए लंघिया महाअडवी । उवयारी मज्झ तुमं ता नियनामं पयासेसु ।।११३।।
सो पभणइ लोएहिं निग्घिणसम्मु त्ति दिन्नसन्नो हं । तक्को सद्धडनामो तुमं पि नामं नियं कहसु ।।११४।।
मं मुणसु मूलदेवं रायसुयं तो जया तुमं मज्झ । निसुणेसि रायरिद्धिं आगंतव्वं तया तुमए ।।११५।।
इय भणिय मूलदेवो वच्चंतो भोयणस्स समयंमि । एगंमि सन्निवेसे पविसइ भत्ताभिलासेण ।।११६।।
हिडंतस्स य भिक्खापुडम्मि पडिया इमस्स कुम्मासा । कयकिच्चो तेहिं चिय एसो विणियत्तए जाव ।।११७।।
ताव तवतेयतवणो अट्ठमयट्ठाणदप्पकप्परणो । विहुणियवम्महजोहो भव्वाण विइन्नपडिबोहो ।।११८।।
सम्मत्तमासखमणो पारणगनिमित्तमेव पविसंतो । एगो महातवस्सी उवट्ठिओ सम्मुहो तस्स ।।११९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्तो तं दट्ठूणं अणब्भपीयूसवुट्ठिमिव तुट्ठो । वियसंतनयणनलिणो एवं चिंतेउमारद्धो ।।१२०।।
चिंतामणिकामगवी - सुरतरुणो वि हु कयाइ लब्भंति । भोयणसमए लब्भइ न उणो एयारिसं पत्तं ।।१२१।।
ता वसणं पि हु एयं मन्नामि महूसवं व अहमहुणा । पत्ते इमंमि पत्ते भवजलनिहिजाणवत्तम्मि ।।१२२।।
इय चिंतिऊण नमिऊण पायजुयलं लुलंतसीसेण । विन्नत्तो मुणिवसभो एवं सिरिमूलदेवेण ।।१२३।।
भयवं ! जइ वि हु एए कुम्मासा तुम्ह अणुचियं दाणं । पसिऊण तह वि गिन्हह मह चेव अणुग्गहट्ठाए ।।१२४।।
तत्तो दव्वं खित्तं कालं भावं च मुणिय परिसुद्धं । पडिगाहइ तं पिंडं अरत्तदुट्ठो स मुणिसीहो ।।१२५।।
तो मुणिणाऽणुग्गहियं मन्नंतो चित्तपुन्नमप्पाणं । उल्लसियसुद्धभावो सो एवं भणिउमारद्धो ।।१२६।।
धन्नाणं खु नराणं कुम्मासा हुंति साहुपारणए । मुणिदाणरंजियमणा पभणइ गयणंमि अह देवी ।।१२७।।
पच्छद्धेणं मग्गसु जं रुइयं भद्द ! तो भणइ सो वि । गणियं च देवदत्तं हत्थिसहस्सं च रज्जं च ।।१२८।।
एवं होउ त्ति पडिच्छिऊण देवी अदंसणं पत्ता । कुम्मासेहिं सेसेहिं पाणवित्तिं कुणइ सो वि ।।१२९।।
वच्चंतो तुट्ठमणो कमेण बिन्नातडस्स सविहम्मि । सो देसियसालाए सुत्तो गंतूण रयणीए ।।१३०।।
पिच्छइ पभायसमए पडिपुन्नं चंदमंडलं सुमिणे । मुंचंतममयवुट्ठिं पविसंतं नियववयणंमि ।।१३१।।
तइय च्चिय तं सुमिणं दिट्ठं एगेण देसिएण तहिं । अक्खंडखंडमंडग - लाहफलं कहियमियरेहिं ।।१३२।।
फलियं च तस्स कत्थइ गिहत्थयणमहूसवम्मि पत्तस्स । तुट्ठो यवगूरलाभे वि उच्छवो अहव फेरुस्स ।।१३३।।
चिंतइ य मूलदेवो सुमिणं एयं न एयमित्तफलं । ता सुमिणपाढयाओ पुच्छिस्समहं फलमिमस्स ।।१३४।।
इयं गंतुं बिन्नायडसविहुज्जाणम्मि सोऽणुकूलेइ । मालागारे कुसलो पुप्फावचयाइणा सम्मं ।।१३५।।
गिन्हिय पुप्फफलाइं तेहिंतो सुमिणपाढगगिहम्मि । गंतुं तं परिपूयइ पणमइ सुमिणं च साहेइ ।।१३६।।
सो वि चमक्कियचित्तो तं पभणइ सोहणे मुहुत्तम्मि । सुमिणफलं साहिस्सं परिणसु ता कन्नगं मज्झ ।।१३७।।
सो भणइ ताय ! अन्नायसीलकुलपोरिसाण संबंधो । न हु जुत्तो तेणुत्तं गुणेहिं तुह साहियं मज्झ ।।१३८।।
इय पुणरुत्तं भणिएण तेण कन्ना इमस्स परिणीया । कहियं च सुमिणयफलं सत्तदिणब्भंतरे रज्जं ।।१३९।।
तत्थेव तओ तुट्ठो चिट्ठंतो पंचमंमि दिवसम्मि । गंतुं तडागतीरे सुत्तो सहयारतरुमूले ।।१४०।।
अह तम्मि चेव दिवसे दिव्ववसा सन्निवायदोसेण । पत्तो समवत्तिपुरं पुरनाहो तत्थ निरवज्जो ।।१४१।।
अहिसित्ताणि य दिव्वाणि तयणु करितुरयछत्तपभईणि । पत्ताइं भमंताइं मूले सिरिमूलदेवस्स ।।१४२।।
गुलगुलियो गयराओ हएण हेसारवो तहिं विहिओ । पत्तं सिरंमि छत्तं ढलियाओ चामराओ सयं ।।१४३।।
गहिऊण कणयकलसं अहिसित्तो करिवरेण सो सीसे । सिरिमूलदेवकुमरो ठविओ नियपिट्ठिभागंमि ।।१४४।।
अह पंचसद्दपडिसद्द - सवणसंखुद्धसयलरिउचक्को । सुरराउ व्व पविट्ठो पुरम्मि वररिद्धिदुद्धरिसो ।।१४५।।
उवविट्ठो य सहाए मणिमयसीहासणे इमो जाव । ताव गयणंमि जाया दिव्वा एवंविहा वाया ।।१४६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विक्कमराओ राया एसो देवेहिं इत्थ संठविओ ! जो मन्निस्सइ न इमं तस्स करिस्संति ते सिक्खं ।।१४७।।
तत्तो भयपणयनमंत-मोलिमंडलमिलंतपयपीढा । सामन्तमंतिपमुहा सीसेण वहंति से आणं ।।१४८।।
इय मूलदेवराया कमेण पसरंतनिरुवमपयावो । संजाओ भुवणयले मुणिंददाणाऽणुभावेण ।।१४९।।
उज्जेणिवइयरं तं सुमरंतो नियमणंमि संघडइ । तप्पहुणा सह एसो मित्तिं जियसत्तुराएण ।।१५०।।
इत्तो य मूलदेवे अयलेण तहा तया पराभूए । फुरियाहराइ कोवेण देवदत्ताइ सो भणिओ ।।१५१।।
किं रे ! मुणिया तुमए परिणीया नियकुडुंबिणि व्व अहं । जं मह गेहे एवं वियंभसे सामिउ व्व तुमं ।।१५२।।
तम्हा नाऽऽगंतव्वं अओ वरं मंदिरंमि मम तुमए । निव्वासिऊण इय तं सा पत्ता नरवइसयासे ।।१५३।।
विन्नत्तो य नरिंदो पुव्विं पि पडिस्सुओ वरो देव ! दिज्जउ मज्झं राया वि भणइ पत्थेसु जं रुइयं ।।१५४।।
अयलो मज्झ गिहंमी अओ वरं देव ! नाणुमंतव्वो । कायव्वा साहीणा य केवलं मूलदेवस्स ।।१५५।।
किं कारणं ति पुट्ठे निवेण चिट्ठइ अहोमुही जाव । ता रन्नो विन्नत्तो स वइयरो माहवीइ तया ।।१५६।।
तो कुविएण निवेणं अयलो आणाविउं इमं भणिओ । रे ! रयणजुयलमेयं तुमए विच्छोहियं पाव ! ।।१५७।।
ता पाणहरणदंडेण दंडइस्सं तुमं ति इय भणिए । कहकहवि देवदत्ताइ मोइओ तत्थ सत्थाहो ।।१५८।।
भणिओ निवेण मुक्को सि देवदत्ताइ वयणओ किंतु । अम्ह पुरीइ पवेसो तुह तुट्ठे मूलदेवम्मि ।।१५९।।
निव्वासिओ स एवं अयलो पुहवीतलंमि परियडइ । पुरनगरआगराईसु मूलदेवं विमग्गंतो ।।१६०।।
इत्तो य विक्कमनिवो चिंतइ निल्लवणभोयणेणं व । किं मह इमिणा रज्जेण देवदत्ताविउत्तेण ।।१६१।।
तत्तो पहाणपुरिसेण वियडपाहुडसहायसहिएण । अज्झंतपणयपुव्वं भणाविओ इय अवंतीसो ।।१६२।।
विइयं चिय तुम्हाणं जं पणओ अम्ह देवदत्ताए । ता जइ वंछइ एसा तुम्हाण य होइ मणरंगो ।।१६३।।
ता इत्थ पेसियव्वा इय वुत्ते तेण भणइ जियसत्तू । कित्तियमित्तं एयं रज्जं पि हु मे तदायत्तं ।।१६४।।
अह वाहरिउं सम्माणपुव्वयं साहिऊण वुत्तंतं । बिन्नायडंमि रन्ना विसज्जिया देवदत्ता सा ।।१६५।।
तुट्ठो य तयागमणेण मूलदेवो निवो समं तीए । भुंजइ तिवग्गसारं मुणिदाणसमज्जियं रज्जं ।।१६६।।
इत्तो य सत्थवाहो अयलो वि हु मूलदेववुत्तंतं । कत्थइ अपावमाणो पारसकूलंमि संपत्तो ।।१६७।।
तत्थ य विविहाणि कयाणगाणि गहिऊण दविणसाराणि । दिव्ववसा विन्नायडवेलाकूलंमि ओइन्नो ।।१६८।।
अवयरिउं जाणाओ मणिमुत्ताहलपवालपडहत्थं । गहिऊण पाहुडं पुहइपालपयमूलमणुपत्तो ।।१६९।।
पविसंतु च्चिय मुणिओ निवेण नूणं इमो स अयलु त्ति । सुमरंति पुव्वजम्मं पि सुमइणो किमुय अणुभूयं ।।१७०।।
अयलो वि हु अमुणंतो तत्तं मुत्तुं उवायणं पुरओ । विन्नवइ देव ! पेसह पंचउलं सुंककरणत्थं ।।१७१।।
वज्जरइ पत्थिवो सत्थवाह तत्थत्थि कोउगं अम्ह । ता सयमागच्छामो कुणह पसायं ति सो भणइ ।।१७२।।
अह सह कारणिएहिं पत्तो सयमेव तत्थ नरनाहो । को मुणइ तारिसाणं मणसो कोवं पसायं वा ।।१७३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिट्ठेसु य पण्णेसु मंजिट्ठापट्टसुत्तपमुहेसु । भणइ निवो सत्थाहं इत्तियमित्तं चिय किमेयं ।।१७४।।
वीमंसिऊण सम्मं साहिज्जा सत्थवाह मह रज्जे । जं सुंकचोरियाए दंडो पाणेसु अइचंडो ।।१७५।।
अन्नह न वित्रविज्जइ जीवियकामेहिं देव ! देवस्स । इय तेणुत्ते जुत्ता कारणिया पत्थिवेणेवं ।।१७६।।
जइ एवं ता मुंचह इमस्स नणु सञ्चवाइणो भो भो । दाणद्धं परिभावेह ते य भंडाणि अइनिउणं ।।१७७।।
मुणियनिवमाणसेहिं निउणं तो तेहिं मग्गमाणेहिं । लक्खियमसारभंडेसु गोवियं सारभंडवयं ।।१७८।।
पयडीकयं च पुरओ निवस्स तो सो वि सत्थवाहं तं । कोपानलपज्जलिओ बंधावइ तक्करं व पुरो ।।१७९।।
तत्थेव य पंचउलं संठविउं गिन्हिउं च सममयलं । पत्तो पमुइयचित्तो नियया वासं महीनाहो ।।१८०।।
तत्थ य बंधे मोआविऊण भणिओ निवेण सत्थाहो । उवलक्खसि भद्द ! ममं ति वित्रवइ अह सो वि ।।१८१।।
तिहुयणपयडपयावं देवं दिवसेसरं भवंतं च । को न मुणइ भणइ निवो पुच्छामि अहं नणु विसेसं ।।१८२।।
सुमरामि नाह नाहं इय वुत्ते तेण झत्ति नरनाहो । पयडेइ देवदत्तं तं दट्ठुं तयणु अयलो वि ।।१८३।।
लज्जाइ परिभवेण य भएण आलिंगिओ स जुगवं पि । संखुद्धमणो बाढं निवेण आसासिओ एवं ।।१८४।।
आसि तए जं भणियं उवयरियव्वं तए वि समयम्मि । सो एसो नणु समओ उवयारो पाणदाणं ते ।।१८५।।
अह जायहिययसुत्थो सत्थाहो पत्थिवस्स चलणेसु । सीसं निवेसिऊणं एवं भणिउं समारद्धो ।।१८६।।
अमुणियनिययपमाणेण जं मए देव ! तुज्झ अवरद्धं । सीहस्स सियालेण व तं खमसु दयाइ मह इन्हिं ।।१८७।।
फलियं तं तइय च्चिय पावं मह जं निवेण नयराओ । निव्वासिओ लभिस्सं तुमए तुट्ठे पवेसमहं ।।१८८।।
अह सो सम्माणेउं मुक्को करुणायरेण नरवइणा । नियय पहाणनरेहिं पवेसिओ तह य उज्जेणिं ।।१८९।।
इय निव्वूढपइन्नो कयन्नुचूडामणी नरवरिंदो । पालेइ मूलदेवो जिणिंदधम्मं च रज्जं च ।।१९०।।
सहायशून्योऽप्यतिनिर्द्धनोऽपि, विपत्पयोधौ पतितोऽप्यगाधे ।
सुरेन्द्रराज्योपममाप राज्यं सत्पात्रदानादिति मूलदेवः ।।१९१।।

कथितं मूलदेवाख्यानकं । साम्प्रतं चन्दनबालोपाख्यानमुच्यते ।। श्रीः ।।

।। सुपात्रदाने चन्दनबालाकथानकम् ।।

अस्तीह वत्सनीवृति कौशाम्बीत्यभिधया पुरी प्रवरा । तस्यां च शतानीको नृपतिर्निर्जितपरानीकः ।।१।।
मृगनयनसदृशनयना मृगलाञ्छनबिम्बतुल्यवरवदना । सन्मार्गमार्गणरता तस्याऽस्ति मृगावती देवी ।।२।।
सर्वोपधाविशुद्धः सुबुद्धिनामाऽस्ति भूपतेः सचिवः । आनन्दितपतिहृदया नन्दानाम्नी प्रिया तस्य ।।३।।
अलकायामिव धनदस्तत्रापरिमितधनो धनः श्रेष्ठी । मूलं संसृतिवल्लेर्मूलेति सधर्मिणी तस्य ।।४।।
क्षितिदयितसचिवपत्न्योस्तयोर्मिथः स्नेहराग इव हृदये । प्रससार जैनधर्मे नीलीरागोपमो रागः ।।५।।
अवनादवनिपतेर्मन्त्रबलान्मन्त्रिणश्च तद्राज्यम् । अकुतोभयसंचारं दिने दिने प्रववृधेऽभ्यधिकम् ।।६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चम्पेशेन कदाचिद् दधिवाहनभूभुजा सह विरोधः । कौशाम्बीभर्तुरभूत् परस्परप्रातिकूल्येन ।।७।।
अतिनिभृतिचारनयनैरन्योन्यं पश्यतोस्तयोश्छिद्रम् । वत्साऽधिपः प्रमत्तं दधिवाहनमन्यदा बुबुधे ।।८।।
अक्षेपगमनदक्षं नौसाधनमतिजवं शतानीकः । प्रगुणीचकार चम्पां गन्तुं गाङ्गेन मार्गेण ।।९।।
भटकोटिभिः परीतः सायं पोतांश्च तानधारुह्य । स चचाल छलघाती जवपाती नागनाथ इव ।।१०।।
गत्वा च रात्रिशेषे रुरुधे दधिवाहनं मदाध्मातः । विविशुश्च पुरीमध्यं कृततुमुलाः सैनिकास्तस्य ।।११।।
करितुरगकोशशुद्धान्तसङ्करेष्वरिगणेन रुद्धेषु । चम्पाधिपमपनिन्युस्तदा तदाप्ता युयुत्सुमपि ।।१२।।
सविशेषं जितकासी चम्पेशपलायनेन वत्सेशः । तस्य नगरीविलोपे यद्ग्राहं घोषयामास ।।१३।।
सप्ताङ्गमपि प्राज्यं राज्यं चम्पाधिपस्य जग्राह । स विनैव युद्धखेदं मेदुरतरभाग्यसम्भारः ।।१४।।
धनकनककोटिकलितां विलुण्ठ्य मध्येदिनं पुरीमखिलाम् । व्यावर्त्तत कृतकृत्यः पुष्टानीकः शतानीकः ।।१५।।
तस्मिन्नथ विध्वंसे पत्नी दधिवाहनस्य नश्यन्ती । वसुमत्या सह सुतया भयविधुरा धारणी देवी ।।१६।।
कारभिकेणैकेन प्राप्ता काकेन रत्नमालेव । संचारिता च सैन्यैः सहैव वत्साधिपस्य पुरीम् ।।१७।।
मार्गे गच्छन्नघृणः पृष्टो दुष्टौष्ट्रिकः कटकलोकैः । कथयत्येनां पत्नीं विधाय पुत्रीं धनैर्दास्ये ।।१८।।
श्रुत्वैवं श्रुतिदुःसहमश्रुतपूर्वं वचस्ततस्तस्य । हा कथमिदमपि मह्यं विधाप्यते दुष्टदैवेन ।।१९।।
हैहयकुलेऽस्मि जाता दधिवाहनभूभुजा च परिणीता । जिनवचनभावितमतिस्तदिदं श्रुत्वाऽपि जीवामि ।।२०।।
इति दुःसहसङ्घट्टात् स्फटिकोपलनिर्मलं सुशीलायाः । दुःखानलावलीढं पुस्फोट तदा हृदयमस्याः ।।२१।।
तद् दृष्ट्वा कारभिकः स चिन्तयामास धिगिदमापतितम् । मद्वचनाशनिपाताल्लतेव नूनं विपत्रेयम् ।।२२।।
मैवं भवतु सुताया अपि जननीविरहविधुरहृदयायाः । इति लालयन्निमां पथि सुखेन निन्ये स कौशाम्बीम् ।।२३।।
दत्त्वा तृणं च मूर्द्धनि दध्रे च चतुःपथे स तां बालाम् । प्रतिकूले हि विधातरि विधुरं किं नोपपद्येत ।।२४।।
तत्रैव दैवयोगादुपागतः पूर्वसूचितः श्रेष्ठी । भूरिधनो धननामा ददर्श चैनामथो दध्यौ ।।२५।।
इयमाकृतिरेतस्याः कथयत्यमले कुले ध्रुवं जन्म । विक्रीतानुपतिष्यति तपस्विनी क्वापि नीचकुले ।।२६।।
तदियं तरङ्गतरला क्लेशशतैर्राजिता यदि विभूतिः । उपयुज्यते कथञ्चन परोपकारे तदा सफला ।।२७।।
इति तां नृपशोस्तस्मादसौ च यद्यावदर्थितैरर्थैः । आनिन्ये निजवेश्मनि पुत्रीमिव वत्सलस्तदनु ।।२८।।
उपनिन्ये च तदैव हि मूलायै सादरं सदयहृदयः । पालय पुत्रीवदिमामित्येनामन्वशाच्च धनः ।।२९।।
आहारवस्त्रताम्बूल-भूषणाद्यैर्निरन्तरं रुचिरैः । स्वयमुद्युक्तश्चैनामनिन्द्यचरितामुपचचार ।।३०।।
नामान्वयादि दक्षा पर्यनुयुक्तापि नाचचक्षेऽसौ । समये हि समुत्कीर्त्तनमेषामुत्कर्षहेतुः स्यात् ।।३१।।
चन्दनवदियं बाला सकलजनाह्लादकारिणी यस्मात् । चन्दनबालां नाम्ना श्रेष्ठी तां व्याजहार ततः ।।३२।।
सद्वृत्तैर्विनयेन प्रियवादितया च सर्वजनहृद्या । पितृवेश्मनीव रेमे स्वच्छन्दं वसुमती तत्र ।।३३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्रान्तरे च भगवान् सिद्धार्थनरेन्द्रनन्दनो वीरः । चरमस्तीर्थाधिपतिस्तृणमिव सन्त्यज्य राज्यसुखम् ।।३४।।
भवशतनिबद्धदुर्द्धर - कर्म्मबलोद्दलननिश्चलारम्भः । दुर्गोपसर्गवर्ग - व्यतिकरदुर्द्धर्षगुरुतेजाः ।।३५।।
दुष्करतरविविधतपो - ऽभिग्रहनिगृहीतनूतनविकारः । छद्मस्थ एव विहरंस्तामेव पुरीमुपेयाय ।।३६।।
तत्र च पौषप्रतिपदि कृष्णायां भुवनबान्धवो भगवान् । सविशेषकर्म्मनिर्जरण-काम्ययाऽभिग्रहं जगृहे ।।३७।।
द्रव्यं कुल्माषाः खलु कौशाम्बी पुरवरी त्वसौ क्षेत्रम् । कालो गोचरकालव्यतिक्रमः किञ्च भावोऽयम् ।।३८।।
नृपतिसुता परवेश्मनि दासी मुण्डितशिरोरुहा रुदती । अष्टमतपोऽवसाने निगडैर्निगडितपदद्वन्द्वा ।।३९।।
देहल्या बहिरेकं चरणं मध्ये परं च संस्थाप्य । कुल्माषान् किल मह्यं यदि दास्यति सूर्प्यकोणेन ।।४०।।
तदहं ध्रुवं विधास्ये पारणकं नाऽन्यथेति जगदीशः । धृत्वा चित्ते दुर्ग्रहमभिग्रहं तस्थिवांस्तत्र ।।४१।।
प्रतिवासरं च विचरति गोचरकालव्यतिक्रमेऽनुगृहम् । अप्राप्य कल्प्यमविकल्प-मानसः सुस्थ एवास्ते ।।४२।।
एवमदीनमनस्कस्य तस्य दुर्ज्ञेयनियमनिरतस्य । एकाहवद् व्यतीता मासाः पञ्चाऽप्रपञ्चस्य ।।४३।।
अन्येद्युर्भुवनगुरुर्भवने सचिवस्य विहरणाय गतः । चलितश्चाकृतभिक्षः साक्षाच्चक्रेऽथ तं नन्दा ।।४४।।
आः किमिति कमपि जगृहे जगद्गुरुर्नाद्य मद्गृहात् पिण्डम् । जल्पन्तीमिति नन्दां प्रत्यूचुश्चेट्य इति तत्र ।।४५।।
स्वामिनि ! समेति नित्यं देवार्यः किन्तु दीयमानमपि । नादत्ते किमपि कुतोऽपि तन्निशम्याथ सा दध्यौ ।।४६।।
नियतमभिग्रहधारी जगद्गुरुर्येन गोचरगतोऽपि । नादत्ते ननु भिक्षां क्षामतनुः केवलं भ्रमति ।।४७।।
धिक् धिक् प्रमादपरतां ममेति तस्यां भृशं विषण्णायाम् । प्रत्याजगाम सदनं तदैव नृपमन्दिरात् सचिवः ।।४८।।
नलिनीमिव हिमपातग्लपितां मलिनाननामिमां वीक्ष्य । पप्रच्छ तद् विषादस्य कारणं कारणिकमुख्यः ।।४९।।
सोपालम्भमथोचे सचिवं नन्दापि मन्दमुखरागा । अन्यान्यशास्त्रपरिशीलनेन धिक् तालुशोषस्ते ।।५०।।
किं कार्यं तव बुद्ध्या बोद्धव्यं बुध्यसे यया नैव । खरकर्म्मणां प्रवृत्तौ केवलमुपयुज्यते यदि सा ।।५१।।
यद्यस्ति बुद्धिवैभवमवदातं किमपि तद् भुवनभर्तुः । कृत्वा कञ्चिदुपायं चित्तस्थमभिग्रहं विद्धि ।।५२।।
श्रुत्वेति तामथोचे सचिवः स्थाने त्वयास्युपालब्धः । बाहुभ्यामम्भःपतितरणप्रायं तु कार्यमिदम् ।।५३।।
चरमाब्धिपयोऽञ्जलिभिर्मातुं सङ्ख्यातुमुडुगणं शक्तिः । कस्यापि कदापि भवेत् न ज्ञातुमभिग्रहमिमं तु ।।५४।।
किन्तु करिष्ये यत्नं सुस्था भव भाविभूरिभद्रेण । केनापि पूर्णनियमः करिष्यतेऽसौ यथा स्वामी ।।५५।।
तत्रस्था जल्पमिदं सकलं शुश्राव भूपतिभुजिष्या । देव्याश्च मृगावत्यास्तदैव साऽचीकथद् गत्वा ।।५६।।
श्रुत्वाऽथ भुवनभर्त्तुस्तत्तादृगभिग्रहाग्रहविशेषम् । अन्तःस्फुरदुरुखेदा प्रवृत्तसन्तप्तनिःश्वासा ।।५७।।
करतलकलितकपोला निश्चलनीचैर्विमुक्तनयनयुगा । सा दृष्टाऽवनिपतिना पृष्टा खेदस्य हेतुं च ।।५८।।
सा साक्षेपमथोचे सेयं वृत्तिस्त्रिवर्गसारा ते । साधु सदाचारत्वं साधु पुराचारवेदित्वम् ।।५९।।
छलघाताय रिपूणां राज्ये तव चारसंग्रहो नियतम् । न पुनर्धर्म्माधर्म्म - प्रवृत्तिलोपावलोकार्थम् ।।६०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानास्यपि यदि तद्वद यदस्ति चरमो जिनः पुरीह मम । तस्याभिग्रहसङ्ग्रह - समुत्थखेदस्य का वार्त्ता ।।६१।।
मासाः पञ्च बभुवुर्भुवनगुरोरनशितस्य पर्यटतः । कठिनहृदयोऽसि यस्त्वं प्रवृत्तिमपि नैव जानासि ।।६२।।
तस्मात् तथा कथञ्चन यतस्व जीवेश ! देशकालज्ञ ! । विज्ञायते यथाऽयं हृदयस्थोऽभिग्रहो भर्त्तुः ।।६३।।
इति वचनं दयितायास्तदनाकर्णितचरं समाकर्ण्य । मन्दाक्षविलक्षमुखः सविषादमिदं जगादैनाम् ।।६४।।
देवि ! नृदेवत्वं मम दूरे प्रसृताक्षि ! नृपशुरेवास्मि । यस्य निरस्य विवेकं वैकल्यमतुल्यमुल्लसितम् ।।६५।।
परदोषवीक्षणविधौ भवन्ति खलु भूभुजः सहस्राक्षाः । सन्मार्गमार्गणे पुनरनाहतं नैकमपि चक्षुः ।।६६।।
अहह सुबुद्धिर्नाम्ना मन्त्री मम तत्त्वतस्तु निर्बुद्धिः । यस्य प्रमादनिद्रा निर्मुद्रा विलसति ममेव ।।६७।।
तन्मा विषीद सुन्दरि ! चरितार्था कथनमात्रतस्त्वमसि । कृतयत्नोऽस्म्यधुनैव हि विज्ञातुमभिग्रहं भर्तुः ।।६८।।
इति वादिनि नरनाथे सचिवोऽपि समाजगाम तत्रैव । अत्यर्थमुपालब्धस्तत्रार्थेऽमंस्त सोऽपि तथा ।।६९।।
धर्म्माधिकारिणमथो तत्त्वज्ञं सर्वदर्शनाभिज्ञम् । इत्यादिशन्नृपस्त्वं जैनरहस्यानि जानीषे ।।७०।।
कीदृगभिग्रहवर्गः के नियमाः कश्च पारणककल्पः । निपुणं निरूप्य साधय पारणकविधिं जिनेन्द्रस्य ।।७१।।
सोऽप्याह देव नियता भवन्ति नाभिग्रहा मुनीन्द्राणाम् । द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं वाऽऽलम्ब्य ते हि स्युः ।।७२।।
तदिहास्तु योगिगम्ये भावे ननु मादृशस्य को विषयः । विविधविधानैर्दानं प्रवर्त्यतां देव ! किन्तु पुरि ।।७३।।
एवं कृते कदाचित् घटेत यदि नाम पारणं भर्तुः । विदधे च तत्तथैव हि नृपेण न तु साध्यसिद्धिरभूत् ।।७४।।
अथ सा चम्पाधिपतेस्तनूद्भवा वसुमती पुराभिहिता । धनवेश्मनि निवसन्ती भेजे नवयौवनारम्भम् ।।७५।।
सुकुमारं वपुरस्याः स्वभावसुभगानि हसितललितानि । अङ्गावयवविभक्तिं रुचिरत्वं चिकुरभारस्य ।।७६।।
पश्यन्ती धनगृहिणी तुच्छप्रकृतिर्विचिन्तयामास । श्रेष्ठी पुत्रीत्येनां प्रकटं व्याहरति सर्वत्र ।।७७।।
सादरमुपचरति पुनर्वस्त्राभरणैर्निरन्तरं रुचिरैः । को वेत्ति चित्तवृत्तिं पुंसामत्यन्तचपलानाम् ।।७८।।
प्रोद्भिन्नयौवनां यदि गृहिणीभावेऽधिरोपयत्येनाम् । जीवन्मृता तदाहं परिभवपात्रं भविष्यामि ।।७९।।
इति निजविकल्पकलुषा योषाजनसुलभसम्भृतासूया । छिद्राणि चन्दनाया व्यालीव विलोकयति मूला ।।८०।।
अन्येद्युर्विपणिपथान्मध्याह्ने स समागमत् श्रेष्ठी । दैवान्न तत्र चासीत् सन्निहितः कोऽपि कर्म्मकरः ।।८१।।
दृष्ट्वा च चन्दना तं श्रमविवशं पितरमागतं पुरतः । दत्त्वाऽऽसनमुपनिन्ये चरणप्रक्षालनाय जलं ।।८२।।
श्रेष्ठी बभाण वत्से ! तिष्ठ त्वं कर्म्मठाऽसि खलु नात्र । पितृभक्त्यासौ तदपि प्रारेभे क्षालनं पदयोः ।।८३।।
श्रमवशविसंस्थुलोऽस्याः कालिन्दीसोदरश्चिकुरभारः । पतयालुरभूद् यावत् पादोदकपिच्छिलावन्याम् ।।८४।।
उज्झिक्षेप तदा तं लीलायष्ट्या करस्थया श्रेष्ठी । वातायनोपविष्टा ददर्श मूलाऽपि तदशेषम् ।।८५।।
चिन्तितवती च तदिदं यच्चिन्तागोचरे पुरा मेऽभूत् । पत्नीव्यवहारोऽयं पुत्रीचेष्टितमिदं न खलु ।।८६।।
भवतु विनष्टं न किमप्युपेक्षणीयाऽधुनाप्यसौ नैव । कार्यं नखविच्छेद्यं परशुच्छेद्यं विधत्ते कः ।।८७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति चिन्तासममस्याः श्रेष्ठी पुनरपि जगाम विपणिपथम् । उत्तीर्योपरिभूमेर्द्वाराणि पिधाय सा चण्डा ।।८८।।
बद्ध्वाऽथ चन्दनांतांनिबिडंपरिताड्य सुबहुनिर्भर्त्स्य । मुण्डितमुण्डांकृत्वानिधायपदयोश्चनिगडानि ।।८९।।
नीत्वा गृहैकदेशे गुप्तिप्रायेऽपवरककोणे ताम् । निक्षिप्य स्थगयित्वा द्वाराण्यथ तालकं दत्त्वा ।।९०।।
ऊचे परिजनमेषा यः पुरतः श्रेष्ठिनः स्वरूपमिदम् । कथयिष्यति स मरिष्यति मदीयहस्तादविभ्रान्तम् ।।९१।।
समये धनोऽपि सदनं प्रापत् तां चन्दनामनालोक्य । क्रीडन्ती क्वापि भविष्यतीति पप्रच्छ न विशेषम् ।।९२।।
शयनक्षणेऽप्यदृष्ट्वा दध्यौ सुता भविष्यति पुरैव । एवमगादस्य दिनं द्वितीयमप्यात्मसङ्कल्पैः ।।९३।।
तातीर्थिकदिनेऽपि हि ददर्श यावन्न चन्दनां श्रेष्ठी । शङ्कितहृदयस्तावत् पप्रच्छ परिच्छदं स्वीयम् ।।९४।।
रे रे कथयत क्वास्ति चन्दना मम नन्दना ? । नाऽऽख्यास्यथ विदन्तश्छेत्रिग्रहीष्यामि वस्तदा ।।९५।।[15]
श्रुत्वेदं स्थविरा तत्र काचिच्चेटीत्यचिन्तयत् । जीविताऽहं चिरतरं प्रत्यासन्ना मृतिर्मम ।।९६।।
कथिते चन्दनोदन्ते किं मूला मे करिष्यति ? । एवं विचिन्त्य तामाख्यन्मूलाचन्दनयोः कथाम् ।।९७।।
श्रेष्ठिनोऽदर्शयद् गत्वा चन्दनारोधवेश्म सा । द्वारं चोद्घाटयामास स्वयं श्रेष्ठी धनावहः ।।९८।।
तत्र च क्षुत्पिपासार्त्तां दवस्पृष्टां लतामिव । निगडैर्यन्त्रितामंहयोर्नवात्तां करिणीमिव ।।९९।।
परिमुण्डितमुण्डां च भिक्षुकीमिव चन्दनाम् । अश्रुपूरितनेत्राब्जामीक्षाञ्चक्रे धनावहः ।।१००।। (युग्मम्)
विश्वस्ता भव वत्से ! त्वमिति जल्पन्नुदश्रुदृक् । तद्भोज्यार्थं रसवतीं ययौ श्रेष्ठी द्रुतद्रुतम् ।।१०१।।
विशिष्टं तत्र चाऽपश्यन् भोज्यं दैवाद्धनावहः । कुल्माषान् शूर्पकोणस्थांश्चन्दनायै समर्पयत् ।।१०२।।
भुञ्जीथास्तावदेतांस्त्वं यावत् त्वन्निगडच्छिदे । कर्मारमानयामीति जल्पित्वा श्रेष्ठ्यगाद् बहिः ।।१०३।।
चन्दनोर्ध्वस्थिता चैवमचिन्तयदहो क्व मे । तस्मिन् राजकुले जन्म क्व चावस्थेयमीदृशी ।।१०४।।
भवेऽस्मिन्नाटकप्राये क्षणाद्वस्त्वन्यथा भवेत् । स्वानुभूतमिदं मे हि किं सम्प्रति करोमि हा ।।१०५।।
षष्ठस्य पारणायामी कुल्माषाः सन्ति सम्प्रति । यद्यायात्यतिथिस्तस्मै दत्त्वा भुञ्जेऽन्यथा न हि ।।१०६।।
एवं विचिन्त्य सा द्वारे ददौ दृष्टिमितस्ततः । तदा चाऽऽगान्महावीरो भिक्षायै पर्यटन् प्रभुः ।।१०७।।
अहो पात्रमहो पात्रमहो मे पुण्यसंचयः । मुनिर्महात्मा कोऽप्येष भिक्षायै यदुपस्थितः ।।१०८।।
चिन्तयित्वेति साऽचालीद्वाला कुल्माषशूर्पभृत् । एकमङ्घ्रिं न्यधादन्तर्देहल्या अपरं बहिः ।।१०९।।
निगडैर्देहलीं सा तु समुल्लङ्घितुमक्षमा । तत्रस्थैवाऽऽर्द्रया भक्त्या भगवन्तमभाषत ।।११०।।

---

15. ९५ श्लोकतः १२५ श्लोकपर्यन्तकथाभागः सम्प्राप्ते संवेगी-पाटण-प्रतिमध्ये खण्डितोऽस्ति । अत एव स्थानशून्यतानिवारणार्थं त्रिषष्टिशलाकाचरित्रस्य दशमपर्वस्य चतुर्थसर्गस्य ५६१ तः ५९८ पर्यन्तश्लोका उद्धृत्यात्र संस्थापिताः सन्ति । संवेगी-पाटण-प्रतिमध्ये १२६ आरभ्य १२८ श्लोकाः सन्ति, अत्र क्रमबद्धाः क्रमाङ्काः १३३ तः १३५ सन्ति ।। - सम्पा. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामिन्ननुचितं भोज्यं यद्यप्येतत्तथापि हि । परोपकारैकरत ! गृहाणानुगृहाण माम् ।।१११।।
द्रव्यादिभेदसंशुद्धं ज्ञात्वा पूर्णमभिग्रहम् । तस्यै कुल्माषभिक्षायै स्वामी प्रासारयत् करम् ।।११२।।
अहो धन्याऽहमेवेति ध्यायन्ती चन्दनाऽपि हि । चिक्षेप शूर्पकोणेन कुल्माषान् स्वामिनः करे ।।११३।।
स्वाम्यभिग्रहसंपूर्त्या प्रीतास्तत्राययुः सुराः । वसुधाराप्रभृतीनि पञ्च दिव्यानि च व्यधुः ।।११४।।
तुन्नुटुर्निगडास्तस्यास्तत्पदे काञ्चनानि च । जज्ञिरे नूपुराण्यासीत् केशपाशश्च पूर्ववत् ।।११५।।
सर्वांगीणं च तत्कालं रत्नालङ्कारधारिणी । श्रीवीरभक्तैर्विदधे विबुधैरथ चन्दना ।।११६।।
उत्कृष्टनादं विदधू रोदःकुक्षिंभरि सुराः । जगुश्च ननृतुश्चोच्चै रङ्गाचार्या इवोन्मुदः ।।११७।।
मृगावतीशतानीकौ सुगुप्तो नन्दया सह । तत्रैयुः सपरीवाराः श्रुत्वा तं दुन्दुभिध्वनिम् ।।११८।।
आययौ देवराजोऽपि शक्रो मुदितमानसः । संपूर्णाभिग्रहं नाथं नमस्कर्तुं द्रुतद्रुतम् ।।११९।।
दधिवाहनराजस्य संपुलो नाम कञ्चुकी । चम्पावस्कन्द आनीतो राज्ञा मुक्तस्तदैव हि ।।१२०।।
तत्रायातो वसुमतीं दृष्ट्वा तत्पादयोर्नतः । विमुक्तकण्ठमरुदत् सद्यस्तामपि रोदयन् ।।१२१।।
किं रोदिषीति राज्ञोक्तः साश्रुः प्रोवाच कञ्चुकी । दधिवाहनराजस्य धारिण्याश्चेयमात्मजा ।।१२२।।
तादृग्विभवविभ्रष्टा पितृभ्यां रहिता च हा । इयं वसत्यन्यगृहे दासीवत्तेन रोदिमि ।।१२३।।
राजाऽप्यूचे न शोच्येयं संपूर्णाभिग्रहो यया । जगत्त्रयत्राणवीरः श्रीवीरः प्रतिलाभितः ।।१२४।।
मृगावत्यप्यभाषिष्ट धारिणी भगिनी मम । इयं तदुहिता बाला ममापि दुहिता खलु ।।१२५।।
पञ्चाहन्यूनषण्मासतपःपर्यन्तपारणम् । कृत्वा धनावहगृहान्निर्ययौ भगवानपि ।।१२६।।
वसुधारामथाऽऽदित्सुं लोभप्राबल्यतो नृपम् । व्याजहार शतानीकं सौधर्माधिपतिः स्वयम् ।।१२७।।
नेह स्वस्वामिभावो यद्रत्नवृष्टिं जिघृक्षसि । यस्मै ददाति कन्येयं स एव लभते नृप ! ।।१२८।।
गृह्णात्विमां क इत्युक्ता राज्ञा प्रोवाच चन्दना । अयं धनावहः श्रेष्ठी पिता हि मम पालनात् ।।१२९।।
जग्राह वसुधारां तां ततः श्रेष्ठी धनावहः । भूयोऽप्याखण्डलोऽवोचच्छतानीकनरेश्वरम् ।।१३०।।
बाला चरमदेहेयं भोगतृष्णापराङ्मुखी । भविष्यत्यादिमा शिष्योत्पत्रे वीरस्य केवले ।।१३१।।
आस्वामिकेवलोत्पत्तिः रक्षणीया त्वया ह्यसौ । इत्युक्त्वा मघवा नाथं नत्वा च त्रिदिवं ययौ ।।१३२।।
इति शक्रशासनात् तां निन्ये नृपतिस्तदा निजावासम् । मूलां धनञ्च सदनात् तदैव निर्यासयामास ।।१३३।।
तीर्त्वा निजां प्रतिज्ञां विजहाराऽन्यत्र भुवननाथोऽपि । प्रणिपत्य च तं जग्मुः सुरासुराद्या निजं स्थानम् ।।१३४।।
षाण्मासिकस्य तपसो दिनपञ्चकेन, न्यूनस्य पारणमिति क्षितिपालपुत्री ।
निर्माप्य सा चरमतीर्थपतेरवाप्य शिष्यात्वमस्य च पदं परमं प्रपेदे ।।१३५।।१३४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्यातं सोदाहरणं साधुसाध्वीलक्षणं क्षेत्रद्वयम् । साम्प्रतं श्रावकश्राविकारूपे क्षेत्रद्वये कुटुम्बिनां वित्तबीजोपयोगितामुपदिशन्नाह -

अहिगयजीवाजीवाण सम्ममुवलद्धपुन्नपावाणं ।
चिरपरिणयधम्माणं खरकम्मनियत्तचित्ताणं ।।१३५।।
निम्मलतवोरयाणं अजियाहाराण बंभयारीणं ।
आवस्सयनिरयाणं समाणधम्माण सड्ढाणं ।।१३६।।
रहतित्थजत्त-पडिमापइट्ठ-सम्मत्तविरइगहणेसु ।
पक्खचउमासंवच्छर-तवउत्तरपारणाईसु ।।१३७।।
सगिहाणं सम्माणं दाणं च गुणाणुरागओ कुणइ ।
धम्मथिरत्तनिमित्तं अहिणवधम्माण सविसेसं ।।१३८।।

एवंविधानां **समानधर्म्माणां श्राद्धानां** तृतीयक्षेत्ररूपाणां सुश्रमणोपासकः सम्मानादि करोतीत्युत्तरगाथापदेन सम्बन्धः । तत्र समानेन तुल्येन धर्मेणार्हतेन चरन्तीति समानधर्म्माणः, एकधर्म्माचार्योपदिष्टविशिष्टसामाचारीनिरता वा, तेषाम् । तत् किमेकाकिनामेव? न, इत्याह **सगृहाणाम्, 'गृहिणी गृहमुच्यते'** इति वचनात् सपत्नीकानाम्, अनेन च चतुर्थक्षेत्रोपक्षेपः, उपलक्षणं च गृहिणी यावत् आपितृमातृभ्रातृपुत्राद्युपेतानामपि । तानेव विशिनष्टि - किंविशिष्टानाम्? **अधिगतजीवाजीवानाम्** अधिगतौ यथावत् परिज्ञातौ जीवाऽजीवौ उक्तलक्षणौ यैस्ते तथा । विदितजीवाजीवतत्त्वानामित्यर्थः ।

तथा **सम्यगुपलब्धपुण्यपापानाम्** - सम्यक्-जिनोक्तयुक्त्या उपलब्धे-अवबुद्धे पुण्यपापे यैस्तेषाम् । परिशीलितपुण्यपापप्रकृतिपरिणतीनाम्, उपलक्षणं च जीवाजीवपुण्यपापानि आश्रवसंवरादीनाम्, यावत् समस्ततत्त्वप्रत्यलप्रतिभानामित्यर्थः । तथा च भगवतीसूत्रम् -

अहिगयजीवाजीवा उवलद्धपुन्नपावा आसवसंवरकिरियाहिकरणप्पमुखकुसला असहिज्जा देवासुरनाग-सुवन्नजक्खरक्खसकिन्नरकिंपुरिसगारुडगंधव्वमहोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा । निग्गंथे पावयणे निस्संकिया निक्कंखिया निवितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा [1]अट्ठिमिंजपेमणुरायरत्ता । अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठो(ट्ठे) अयं परमट्ठे

गाथा-१३८ 1. **अट्ठिमिंजपेमणुरायरत्ता** - अस्थिमिञ्जाप्रेमानुरागरक्ताः - अस्थीनि च कीकशानि मिञ्जा च

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसे अणट्ठे त्ति ।। [भग. २श. ५ उ०]

तथा **चिरं** प्रतिपत्तितः प्रभृति **परिणतो** जीवेन सहैकीभूतो **धर्म्मः** प्रस्तावादार्हतो **येषां** ते तथा । अत एव **खरकर्मभ्यो**ऽङ्गारकर्मादिभ्यो **निवृत्तं** व्यावृत्तं **चित्तं येषां** ते तथा । सम्यक्परिणतजैन-धर्म्मरहस्यानां हि कुतः खरकर्म्मसु प्रवृत्तिः ।

तथा **निर्म्मलतपोरतानां** निर्मलमाशंसादिविरहितं यत् तपो द्वादशभेदं, तत्र रतानामासक्तानाम् । विना हि तपः कुकर्म्मणां दुष्करमुन्मूलनम् ।

तथा **अजीवाहाराणामेकान्ततः** परित्यक्तसचित्तानां परिमितसचित्तानां वा ।

तथा **ब्रह्मचारिणामा**जन्मनियमितमैथुनप्रवृत्तीनां स्वदारसन्तोषादिविषयविभागवतां वा । सर्वथा सञ्चित्तपरिहारब्रह्मचर्य उत्कृष्टश्रावकपक्षे परिमितिकरणं तु जघन्यापेक्षम् । तथा चागमः - **उक्कोसेणं सावगो अजियाहारी बंभयारि [ ] त्ति** ।

तथा **आवश्यकनिरतानां** आवश्यकेषु अवश्यकृत्येषु षट्सु सामायिकादिषु निरतानां प्रतिदिनव्यापृतानां, एवंभूतानां साधर्म्मिकाणां सन्मानादि विधत्ते । केषु अवसरेषु? इत्याह - **रथतीर्थयोर्यात्रायाम् ।** यात्राशब्दस्योभयत्र सम्बन्धात् । रथयात्रायां तीर्थयात्रायां **प्रतिमा**प्रासादादि-**प्रतिष्ठासु** तथा ग्रहणशब्दस्य द्वयेऽपि योगात् **सम्यक्त्वग्रहणावसरे देशविरतिप्रतिपत्तिप्रस्तावे च ।**

तथा **पक्षे चतुर्मासके संवत्सरे** च यच्चतुर्थषष्ठाऽष्टमादिविशेष**तपस्तस्योत्तरपारणपारण-कादिषु,** न चात्र नियमः साधर्मिकवात्सल्यस्य प्रतिदिनविधेयत्वात् । केवलं रथतीर्थयात्रादिषूक्ता-वसरेषु विशेषतः पूर्वोक्तगुणयुक्तानामन्येषामपि सामायिकसूत्रमात्रधारिणां यावत् परमेष्ठिपदा-नुसारिणामपि **सम्मानमञ्जलिबद्धासनप्रदानादिकं दानं च** यथौचित्येन भोजनवस्त्रालङ्करणादि-वितरणरूपं **करोति ।** कुतः? इत्याह - **गुणानुरागतः ।** गुणाः-सम्यक्त्वादयस्तेषु योऽनुरागः-प्रीतिविशेषस्तस्मात् । गुणाधारत्वात् साधर्म्मिकलोकस्य न तु कृतप्रतिकृतिवाञ्छया । तथा **अभिनवधर्माणाम**चिरप्रतिपन्नजिनमतानां **विशेषतः** सम्मानादि निर्मिमीते । कुतः? इत्याह -

---

तन्मध्यवर्तिधातुरस्थिमिञ्जास्ताः प्रेमानुरागेण सार्वज्ञप्रवचन-प्रीतिरूपकुसुम्भादिरागेण रक्ता इव रक्ता येषां ते तथा । - भ. २ श. ५. उ० । सम्यक्त्वासितान्तश्चेतः । सु. सूत्र. २ श्रु. ७ अ. । "अयमाउसो णिग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे" इत्येवमुल्लेखेन सम्यक्त्विषु ज्ञा. ५. अ. । लद्धट्ठा गहिअट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा य । अहिगयजीवाईया अचालणिज्जा पवयणाओ ।।१।। तह अट्ठिअट्ठिमिञ्जाणुरायरत्तो जिणिंदपन्नत्तो । एसो धम्मो अट्ठो परमट्ठो सेसगमणट्ठो ।।२।। - दर्श. प्र. - गा. ९०-९१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म्मस्थैर्यनिमित्तं यथा तेषां धर्म्मे सुदृढं मनो भवतीति ।।१३५।।१३६।।१३७।।१३८।।

अथ किमर्थं साधर्मिकेष्वेवमादरः ? इत्याह -

जम्हा सुलहा नियकज्जसिद्धिसंबंधबंधुणो भुवणे ।
दुलहा उ धम्मसंबंधबंधुरा बंधवा धणियं ।।१३९।।

यस्मात् कारणात् **भुवने** जगति **निजकार्यसिद्धिसम्बन्धबान्धवाः**[1] स्वप्रयोजननिष्पत्तिमात्रदर्शितसम्बन्धाः सम्बन्धिनः पदे पदे **सुलभा** एव स्वयमेव, स्वकार्यतात्पर्यपर्यवसितत्वात् प्रायशः पुंसाम् । **तुः** पुनरर्थे । **धर्म्मसम्बन्धबन्धुराः** पुनः सम्बन्धेन सुतरां **दुर्लभाः** दुष्प्रापाः, दुर्लभे च वस्तुनि कस्य नाम नादरः । किमुक्तं भवति - किल पितृमातृभ्रातृपुत्रादिसम्बन्धाः प्रतिभवसुलभा अपि भवाभिनन्दित्वेन न खलु प्राणिनां पारमार्थिकप्रीतिहेतवः, साधर्म्मिकास्तु ऐहिकामुष्मिकसकलसुखनिबन्धनस्य धर्म्मस्य प्रवृत्त्यङ्गत्वेन स्थैर्योत्पादकत्वेन च लोकद्वयेऽपि हिता एव ।।१३९।।

तम्हा समाणधम्माण वच्छलत्तेण धम्मवच्छलं ।
तम्मि य पुण वच्छलं अतुल्लकल्लाणकुलभवणं ।।१४०।।

तस्मादेवं सति **समानधर्म्माणां**[1] **वत्सलत्वेन** सम्मानदानादिलक्षणेन तत्त्वतो **धर्म्म एव वात्सल्यम्, तस्मिंश्च** धर्मे प्रस्तावादार्हते **वात्सल्यमान्तरप्रीतिरूपम् अतुल्यानां** निरुपमानां **कल्याणानां** श्रेयसां **कुलभवनम्,** सद्धर्म्मानुरागस्यैव समस्तशास्त्रसन्ततिहेतुत्वात् ।।१४०।।

गाथा-१३९ 1. स्वप्रयोजननिष्पत्तिमात्रदर्शिताः पाठान्तरे ।

गाथा-१४० 1. श्रावकेषु स्वधनवपनं यथा - साधर्मिकाः खलु श्रावकस्य श्रावकाः, समानधार्मिकाणां च सङ्गमोऽपि महते पुण्याय, किं पुनस्तदनुरूपा प्रतिपत्तिः ? सा च स्वपुत्रादिजन्मोत्सवे विवाहेऽन्यस्मिन्नपि तथाविधे प्रकरणे साधर्मिकाणां निमन्त्रणम्, विशिष्टभोजन-ताम्बूल-वस्त्राभरणादिदानम्, आपन्ननिमग्नानां च स्वधनव्ययेनाप्यभ्युद्धरणम्, अन्तरायदोषाच्च विभवक्षये पुनः पूर्वभूमिकाप्रापणम्, धर्मे च विषीदतां तेन तेन प्रकारेण धर्मे स्थैर्य्यारोपणम्, प्रमाद्यतां च स्मारण-वारण-चोदन-प्रतिचोदनादिकरणम्, वाचना-प्रच्छना-परिवर्तनाऽनुप्रेक्षा-धर्मकथादिषु यथायोग्यं विनियोजनम्, विशिष्टधर्मानुष्ठानकरणार्थं च साधारणपोषधशालादेः करणमिति । श्राविकासु धनवपनं श्रावकवदन्यूनातिरिक्तमुन्नेतव्यम् । तच्च ज्ञान-दर्शन चारित्रवत्यः शील-सन्तोषप्रधानाः सधवा विधवा वा जिनशासनानुरक्तमनसः साधर्मिकत्वेन माननीयाः । - यो. शा. प्र. ३/११९ । धर्म. सं. अ. २/५९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणियं खित्तचउक्कं पंचमखित्तं जिणागमं भणिमो ।
केवलिदिट्ठे भावे जो पयडइ दूसमाए वि ।।१४१।।

एवं च पूर्वोक्तयुक्त्या साधुसाध्वीश्रावकश्राविकालक्षणं **क्षेत्रचतुष्कं** वित्तबीजोपयोगित्वेन **भणितं** प्ररूपितम् । साम्प्रतं **जिनागम**रूपं **पञ्चमं क्षेत्रं भणामः । यो** हि जिनागमः **दुःषमायां** तीर्थङ्करगणधरादिसातिशयपुरुषप्रोषितेऽपि काले **केवलिदृष्टान् भावान्** तदर्थिने जनाय **प्रकटयत्य**वबोधयतीति ।।१४१।।

अस्य चागमस्य दुःषमायां प्रायः पुस्तका एवाधार इत्युत्तरगाथया बिभणिषुरादिश्रुतस्यैव परमपुरुषप्रणीतत्वेन महिमानमारोपयन्नाह-

उम्मीलियकेवलनाण-मुणियतिहुयणगयत्थसत्थेहिं ।
तिवईदारेण जिणेहिं अत्थओ जं किलक्खायं ।।१४२।।

भुवणब्भुयबुद्धिधरेहिं गणहरिंदेहिं जं च गहिऊण ।
सुत्तत्तेण निबद्धं जिणपवयणवुड्ढिकामेहिं ।।१४३।।

अह तेसि वयणपंकयमयरंदसमं नमंतसीसेहिं ।
चउदसपुव्वधरेहिं जमहीयमहीणमेहेहिं ।।१४४।।

तत्तो दसपुव्वधराइएहिं कमहीयमाणपन्नेहिं ।
गीयत्थगणहरेहिं जं पावियमित्तियं समयं ।।१४५।।

तस्स सुयस्स भगवओ तव्विहमेहाविपत्तविरहाओ ।
पाएण दूसमाए आहारो पुत्थया चेव ।।१४६।।

तस्यैवंविधस्य श्रुतस्य भगवतः सर्वातिशयनिलयस्य पुस्तका एव दुःषमायामाधारः । यत् किम्? **यज्जिनैर्भ**गवद्भिरर्थतोऽर्थद्वारेण **किलेत्या**प्तोक्तौ **आख्यातं** प्रज्ञप्तम् । किंविशिष्टैः? **उन्मीलितकेवलज्ञानज्ञातत्रिभुवनगतार्थसार्थैः** । कथम्? **त्रिपदीद्वारेण** उत्पादव्ययध्रौव्य-

---

गाथा-१४१ 1. **जिनागम** - जिनागमो हि कुशास्त्रजनितसंस्कारविषसमुच्छेदनमहामन्त्रायमाणो धर्माधर्म-कृत्याकृत्य-भक्ष्याभक्ष्य-पेयापेय-गम्यागम्य-सारासारादिविवेचनहेतुः सन्तमसे दीप इव समुद्रे द्वीपमिव मरौ कल्पतरुरिव संसारे दुरापः जिनादयोऽप्येतत्प्रामाण्यादेव निश्चीयन्ते । - यो. शा. ३/११९ वृत्तौ ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षणपदत्रयीपरिपाट्या ।।१४२।।

तथा **यच्च गणधरेन्द्रैस्तीर्थकृदनन्तरशिष्यैर्जिनेभ्य एव गृहीत्वा** अर्थत उपजीव्य **सूत्रत्वेन निबद्धम्** । किंविशिष्टैः? **भुवनाद्भुतबुद्धिभृद्भिः** ये हि किलार्हतमुखारविन्दात् पदत्रयमात्रमाधारमवाप्यान्तर्मुहूर्त्त[कालेन] द्वादशाङ्गीरूपं श्रुतं ग्रथयन्ति । कः किल तेभ्योऽप्यपरो भुवनाद्भुतबुद्धिधारीति । अथ किमर्थममीभिः श्रुतं सूत्रत्वेन निबद्धम्? इत्याह - **जिनप्रवचनवृद्धिकामैः**, विना हि श्रुतं कुतः प्रवचनस्य प्रवृत्तिरिति ।।१४३।।

अथ गणभृद्भ्य एव **यत्** श्रुतं तद्विनेयै**श्चतुर्दशपूर्वभृद्भिरधीतमाम्नातम्** । किंविशिष्टम्? **तेसिं वयणपंकयमयरंदसमं** तेषां गणभृतां मुखारविन्दमकरन्दप्रतिमम् । किम्भूतैः? **नमन्तसीसेहिं** विनयविनमन्मौलिभिः, अनेनागमाध्ययने विनयो मूलाङ्गमिति दर्शितम् । पुनः किंविशिष्टैः? **अहीनमेधैः** परिपूर्णार्थावधारणशक्तियुक्तैः, विना हि तादृशीं प्रज्ञां कुतः पूर्वपठनसौष्ठवम्? ।।१४४।।

ततस्तेभ्यश्चतुर्दशपूर्वभृद्भ्यो यच्छ्रुतमुपजीव्य इयतीं भूमिं प्रापितम् । कैः? इत्याह - **दशपूर्वधरादिभिर्वज्रस्वामिप्रभृतिभि**र्**गीतार्थगणधरै**श्चापरैरपि चूर्णिकारादिभिः । कथम्भूतैः? **क्रमहीयमानप्रज्ञैः** दुःषमानुभावादपचीयमानप्रतिभै**रपीयतीं** भूमिमिदं **समयं यावत् प्रापितम्** ।।१४५।।

तस्यैवंविधस्य तीर्थकृद्गणधरादिपारम्पर्योपनतस्य **भगवतः श्रुतस्य** किमर्थं **साम्प्रतं पुस्तका एवाधार** इत्याह - **तव्विहमेहाविपत्तविरहाओ** तद्विधमेधाविपात्रविरहतः, पूर्वं हि बीजबुद्धयः कोष्ठबुद्धयः पदानुसारिप्रज्ञाश्च सर्वज्ञशासने पात्रभूताः पुमांसोऽभूवन्, ते च सकलेतरनरविलक्षणप्रज्ञागुणेन गुरुमुखादेव श्रुतसारमवधारयितुमलम्भूष्णवोऽभूवन्, ऐदंयुगीनाश्च मुनयः संहननसमयादिदोषात् प्रहीयमाणप्रज्ञाः कथमागमस्याधारतामाकलयितुमलं, अतः पुस्तका एवागमग्रन्थानामाधार इति सुव्यवस्थितम् ।।१४६।।

एवं च सति किं कर्त्तव्यमित्याह -

तम्हा जिणिंदसमयं भत्तीए पुत्थएसु लेहेइ ।
अव्वुच्छित्तिनिमित्तं सत्ताणमणुग्गहत्थं च ।।१४७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मादेवमवगम्य **जिनेन्द्रसमयं** सर्वज्ञोपज्ञमागमं सुश्रमणोपासकः **पुस्तकेष्वक्षराधारेषु लेखयति** । कथम्? **भक्त्या** धन्यम्मन्यतया न तु परोपरोध-प्रसिद्ध्यादिकाम्यया । किमर्थमित्थं विधत्ते? तदाह - **अव्युच्छित्तिनिमित्तं** कलिकालकलुषितेऽपि जगति यथा जिनागमो व्यवच्छेदं नाप्नोत्येतन्निमित्तम् तथा **सत्त्वानां** सुलभबोधीनामसुमतामनुग्रहार्थं च ।।१४७।।

ननु भवतु पुस्तकलेखनेनाऽव्युच्छित्तिरागमस्य, सत्त्वानुग्रहस्तु कथं जिनागमादुत्पद्यत इत्याशङ्क्याह -

जिणमयपयमित्तं पि हु पीयं पीऊसमिव जओ हरइ ।
मिच्छाविसमिह नायं रोहिणियचिलाइपुत्ताई ।।१४८।।

आस्तां तावदपारसंसारपारावारनिस्तारपोतप्रतिमः समस्तोऽपि द्वादशाङ्गीरूपो जिनागमः । यावज्जिनमतस्य **पदमात्रमपि पीतं** श्रुतिपुटेनोपात्तं **मिथ्याविषम**सद्ग्रहगरलं **हरत्य**पनयति । किंवत्? **पीयूषमिव** । यथा हि पीयूषममृतं पीतमास्वादितं विषं हलाहलं गलहस्तयति । कथमिदमवसीयत इति चेत् ? उच्यते - **इहास्मिन्नर्थे ज्ञात**मुदाहरणम् । किमेकमेव? न, इत्याह - **रोहिणियचिलाइपुत्ताई** रौहिणेयचिलातीपुत्रौ तावत् प्रथमोदाहरणमादिशब्दादन्येऽप्येवंप्रकाराः परिभाव्याः । सम्प्रदायगम्यौ च रौहिणेयचिलातीपुत्रौ । स चायम् -

।। जिनवचनश्रवणफले रौहिणेयकथानकम् ।।

अत्थि मगहेसु नयरं रायगिहं अमरनयररमणिज्जं । तत्थ परक्कमपडिहय - पडिवक्खो सेणिओ राया ।।१।।
तस्स सुओ नयपोरिसभवणं अभओ त्ति भुवणविक्खाओ । उप्पत्तियाइचउविह - निम्मलवरबुद्धिदुद्धरिसो ।।२।।
तस्स य अदूरदेसे पुरस्स वेभारगिरिनिउंजम्मि । निवसइ कूरायारो चोरो लोहक्खुरो नाम ।।३।।
लुंपंतो धणनिवहं रममाणो रम्मरमणिनियरं च । नियभंडारं अंतेउरं व मन्नइ स रायगिहं ।।४।।
बहुमन्नइ सो तं चिय तक्करवित्तिं समग्गवित्तीसु । पावाण पावचरिएसु चेव चित्तं जओ रमइ ।।५।।
अणुरूवो रूवेणं तणओ तेणस्स तह य चरिएहिं । भज्जाइ रोहिणीए संजाओ तस्स रोहिणीओ ।।६।।
नियय्मवसाणसमयं मुणिउं लोहक्खुरो अह कयाइ । पभणइ पुत्त जंपेमि किंपि जइ कुणसि अवियप्पं ।।७।।
विणएण भणइ सो वि हु ताय समाइसह को किर कुलीणो । लंघइ आणं पिउणो विसेसओ चरमसमयम्मि ।।८।।

गाथा-१४७ १. तुला - न ते नरा दुर्गतिमाप्नुवन्ति, न मूकतां नैव जडस्वभावम् ।
न चान्धतां बुद्धिविहीनतां च, ये लेखयन्तीह जिनस्य वाक्यम् ।।१।। - यो. शा. प्र. ३/११९ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिसचलेण करेणं परामुसंतो तओ तणुं तस्स । पभणइ एसो पुत्तय ! जइ एवं तो निसामेसु ।।९।।
जो सो सुररइयंमी ओसरणे कुणइ देसणं वीरो । मा तस्स सुणिज्ज गिरं करिज्ज सेसं जहिच्छाए ।।१०।।
इय तं पन्नविऊणं सकम्मपरिणामभायणं एसो । संजाओ इयरेण वि कयाणि से चरमकिच्चाणि ।।११।।
वियलियसोओ कमसो असामियं पिव स रायगिहनयरं । लुंटेइ जहिच्छाए अहिणवलोहक्खुरु व्व तओ ।।१२।।
तम्मि य समए सामी चरमो तित्थंकरो महावीरो । चउदससहस्ससंखेहिं समणसीहेहिं परियरिओ ।।१३।।
संचारिज्जंतेसुं सुरेहिं पुरओ सुवन्नकमलेसुं । मुंचंतो पयकमले समोसढो रायगिहनयरे ।।१४।।
रइयंमि समोसरणे चउव्विहेहिं पि सुरनिकाएहिं । उवविट्ठो सो भयवं सव्वाइसएहिं दिप्पंते ।।१५।।
अह सव्वसत्तसाहारणाए संसयहराइ महुराए । जोयणपसप्पिणीए वाणीए कुणइ धम्मकहं ।।१६।।
इत्थंतरंमि चोरो रोहिणिओ नयरवइयरं मुणिउं । जा एइ तत्थ पिच्छइ ताव तहिं तं समोसरणं ।।१७।।
अह सुमरंतो वयणं पिउणो चिंतेइ जइ पहेणिमिणा । वच्चिस्सं निसुणिस्सं जिणस्स ता निच्छियं वयणं ।।१८।।
निसुए य तम्मि भज्जइ पिउणो परलोयपत्थियस्साणा । न य अन्नो गमणपहो ता होउ इमो इहोवाओ ।।१९।।
इय ठइऊणं कन्ने गाढं अंगुलिमुहेहिं तुरियपदं । लंघेइ स तं वसुहं पइदियहं मोहिओ पिउणा ।।२०।।
अन्नंमि दिणे पत्तस्स तस्स ओसरणपरिसरे झत्ति । विद्धो पाओ पावस्स कंटएणं सियमुहेणं ।।२१।।
जइ कड्ढिस्सं हत्थं कन्नाओ सुणिस्समस्स ता वयणं । न उण अणुद्धियसल्लो सक्को चलिउं पयाउ पयं ।।२२।।
इय चिंतिऊण एगो अणन्नगइणा इमेण कन्नाओ । ओसारिओ करो लहु उद्धरिओ कंटओ जाव ।।२३।।
ताव जयवच्छलेणं जिणेण ससुरासुराइ परिसाए । [1]साहिप्पं(ज्जं)तं निसुयं देवसरूवं इमं तेणं ।।२४।।
असेयगत्ता अनिमेसनेत्ता पयग्गभागेहि भुवं अपत्ता ।
भवंति देवा अमिलाणदामा संकप्पसिज्झंतसमग्गकामा ।।२५।।
हा बहु सुयं ति चित्ते समुव्वहंतो स तक्करो खेयं । तुरियपयं ओसरिओ तओ पएसाओ नरपसुओ ।।२६।।
अह तेण तया तेणेण नयरलोओ उवहुओ बाढं । मिलिऊण सेणियनिवं उवट्ठिओ दुट्ठदलणखमं ।।२७।।
पुट्ठे सुहनिव्वाहे निवेण नायरजणेहिं विन्नत्तं । देहेसु देव ! कुसलं देवपसाएण अम्हाणं ।।२८।।
किं तु धणं जणवच्छल ! छलप्पहाणेहिं देव ! तेणेहिं । दढदंडनिगूढं पि हु हीरइ नियपाणिठवियं व ।।२९।।
ज(सु)त्तीइ उवालद्धो राया नायरजणेहिं आरक्खं । विप्फुरियतिव्वकोवो साहिक्खेवं इमं भणइ ।।३०।।
रे ! रे ! किं मह रिणिओ होउं अह बंधवो अहव चोरो ! गिन्हेसि तुमं वित्तिं निच्चिंतो सुयसि तह रत्तिं ।।३१।।
संकेइएहिं तुमए तेणेहिं मुसिज्जइ जणो मज्झ । ता तक्करे विमग्गसु मग्गसु वा अप्पणो ठाणं ।।३२।।
अह दंडपासिएणं विन्नत्तं देव ! अत्थि इह चोरो । नामेणं रोहिणिओ को वि अणेगरूवु व्व ।।३३।।

गाथा-१४८ 1. साहिप्पंतं - साह (कथय, शास) क. व. कृ. ।। - पा. स. म. पृ. ८९७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लुंटइ सयलं पि पुरं अणुधावंतस्स मह समित्तस्स । गिन्हित्तु सारभंडं उप्पयमाणो घराओ घरं ।।३४।।
किर णेण विज्जुखेवेण झत्ति विज्जाहरु व्व तिव्वजवो । उल्लिहियनहयलं पि हु सालं लीलाइ लंघेइ ।।३५।।
मुक्को य जइ पएण वि ता मुक्को देव ! पयसहस्सेण । ता सो न मज्झ सज्झो गिन्हउ देवो नियहिगारं ।।३६।।
अह दिट्ठिसन्निएणं रन्ना अभएण सो इमं भणिओ । पविसिज्ज जया नयरं स तक्करो नियबलेहिं तया ।।३७।।
परिवेट्ठिज्जसु सालं बाहिं अह हक्किओ तए मज्झे । सयमेव इमो पडिही अलक्खिए बाहिरबलम्मि ।।३८।।
तत्तो लग्गणएहि च उवणीओ नियपएहिं सो तेसिं । होही सुहेण गिज्झो सज्झो न हु अन्नहा एसो ।।३९।।
तेण वि तहत्ति विहिए सालिग्गामाउ आगएणिमिणा । रोहिणिएण न मुणिओ तइया पुररोहवुत्तंतो ।।४०।।
अह पुव्वकमेणं चिय स पविट्ठो जा पुरंमि ता झत्ति । आरक्खिएहिं हण हण हण त्ति भणिरेहिं विक्खित्तो ।।४१।।
अह तेसि नियंताण वि मयपोयाण व इमो मयारि व्व । उल्लंघिऊण सालं पडिओ बाहिरबले पबले ।।४२।।
तो आगयमित्तु च्चिय बंधित्ता झत्ति सुहडसत्थेहिं । उवणीओ सो रन्नो स एस चोरु त्ति भणिरेहिं ।।४३।।
जह साहुपालणं मह धम्मो तह चेव दुट्ठनिग्गहणं । ता उचियनिग्गहेणं निग्गह इमं ति निवभणिए ।।४४।।
विन्नत्तं अभएणं देव ! अलुत्तो इमो जओ पत्तो । तम्हा वियारपुव्वं अरिहइ मारं सुनयसारो ।।४५।।
अह पुट्ठो सो रन्ना रोहिणिओ तं सि कत्थ वा वससि । कस्स सुओ का वित्ती किमागओ इत्थ सो भणइ ।।४६।।
सामिय ! सालिग्गामे कुडुंबिओ दुग्गचंडनामो हं । अज्जेव कज्जवसओ समागओ तुम्ह नयरम्मि ।।४७।।
पिक्खणअक्खित्तमणो ठिओ म्हि रत्तिं कहिं पि देवउले । तस्स समत्तीइ बहिं वज्झंतो नाह ! सहस त्ति ।।४८।।
ललक्कमुक्कहक्केहिं हक्किओ दंडपासियनरेहिं । पाणभएण पलाणो पत्तो पायारमूलम्मि ।।४९।।
जइ ठामि धुवं मरणं सालं लंघेमि संसओ मरणे । इय चिंतिऊण फुडिओ वप्पो कंपंतगत्तेण ।।५०।।
भवियव्वयावसेणं जीवंतो जाव निवडिओ बाहिं । जालि झसु व्व ता पुण पडिओ एयाण कूडंमि ।।५१।।
एसो मह वुत्तंतो अवराहो एस चेव मह देव ! । ता नीइनलिणनलिणीबंधव ! सम्मं विभावेसु ।।५२।।
इय सोऊणं रन्ना गुत्तीए पेसिओ तहा गामे । तस्स पउत्तिनिमित्तं नियपुरिसो तक्खणा चेव ।।५३।।
तस्स य सालिग्गामे अत्थि गिहं भारिया तहा एगा । तह दुग्गचंडनामेण मुणइ तं तत्थ गामो वि ।।५४।।
तो पत्थिवपुरिसेणं पुट्ठो गामो पयंपए एवं । अत्थि इह दुग्गचंडो कुडुंबिओ सो गओ य पुरं ।।५५।।
इय तस्स सरूवे तेण साहिए निवइणा तओ अभओ । कारेइ सुरापाणेण परवसं तक्करं एयं ।।५६।।
सज्जावेइ य एगं पासायं मणिमयं विमाणं व । तत्थ क्कयसंकेयं रम्मं नरनारिनिवहं च ।।५७।।
संचारिओ य चोरो मयविवलो तेण तम्मि पासाए । मणिमयपल्लंके साइओ य वरदेवदूसधरो ।।५८।।
परिणयमओ य समए उवविट्ठो जाव एस पल्लंके । ताव जय जीव नंदसु भद्दं तुह होउ इय भणिरो ।।५९।।
सयलो वि हु परिवारो उवट्ठिओ तस्स विन्नवइ एवं । देव ! तुमं उप्पन्नो कयपुन्नो इह विमाणम्मि ।।६०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता विलससु सच्छंदं एयाहिं वरच्छराहिं सह सुहय ! । एसो तुह परिवारो विमाणसामी तुमं चेव ।।६१।।
जा चिंतइ रोहिणिओ किं सच्चं सुरवरो अहं जाओ । ता तेहिं लहु विइन्नो संगीयत्थेण स महत्थो ।।६२।।
अह कणयदंडमंडियपाणी पुरिसो भणेइ तत्थेगो । किं एयं पारद्धं भणंति ते पिक्खणं पहुणो ।।६३।।
को संगीययसमओ इयाणि पुच्छेह ता पहुं पढमं । पुव्वभवसंचियाइं सुकयाइं दुक्कयाइं च ।।६४।।
तो ते भणंति पडिहार ! सामिलाभेण सव्वमम्हाणं । विम्हरियं ता तुब्भे करेह जं इत्थ करणिज्जं ।।६५।।
अह विणयरइयंजलिपुडेण पुरिसेण तेण विन्नत्तो । रोहिणिओ पहु ! साहह दुक्कयसुकयाणि नियया णि ।।६६।।
ता लोहक्खुरतणओ चिंतइ सच्चं किमेयमिह अहवा । विहिओ इमो पवंचो अभएणं मज्झ मुणणत्थं ।।६७।।
अह तहभव्वत्तणओ फुरियं तं तस्स माणसे तइया । कंटयउद्धरणखणे निसामियं सामिणो वयणं ।।६८।।
सव्वन्नुपणीयाइं तेसुं सुरलक्खणाइं जा नियइ । ताव न पिक्खइ इक्कं पि तयणु सो मुणइ तं कूडं ।।६९।।
कूडस्स कूडमेव हि णणु जुत्तं उत्तरं ति चिन्तन्तो । भणिओ पडिहारेणं पुणो वि सो सामि ! साहेसु ।।७०।।
अह स भणइ रोहिणिओ भद्द ! मए निम्मियाइं परजम्मे । कंचणरयणमयाइं जिणिंदभुवणाइं रम्माइं ।।७१।।
वेरुलियफलिहविद्दुममयाउ पडिमाउ तेसु ठवियाओ । आराहिया य गुरुणो तिगरणसुद्धीइ अणवरयं ।।७२।।
दिन्नं च महादाणं सीलं परिसीलियं तवो चिन्नं । भावेण तित्थजत्ताउ तह य तित्थेसु विहियाउ ।।७३।।
वयणामयं च [पीयं] परमगुरूणं सया सयन्हेणं । तं नत्थि जं न विहियं पाएण मए सुकयठाणं ।।७४।।
नाह ! नियदुक्कयंपि हु साहसु चोरिक्कमाइयं किंपि । न हु एगदसाइ जओ तइज्जजम्मु त्ति सो भणइ ।।७५।।
किह साहुवग्गसंसग्गसालिणो मह घडिज्ज दुच्चरियं । किं वा दुक्कयकम्मा उविंति नणु सग्गभूमीसु ।।७६।।
इय तम्मि वइयरे साहियंमि अभएण भणइ नरनाहो । मुच्चउ चोरो वि इमो सक्को को लंघिउं नीइं ।।७७।।
एवं निवेण मुक्को चिंतइ चित्तंमि तयणु रोहिणिओ । धिद्धी अणज्जताएण वंचिओ किच्चिरं कालं ।।७८।।
जइ न मए तं वयणं वइज्ज मह कन्नगोयरे गुरुणो । ता अज्ज विविहमारेहिं मारिओ किं न हुज्जाहं ।।७९।।
मह भावविरहियस्स वि जायं संजीवणं व तं वयणं । चेयन्नसुन्नयस्स वि रसायणं आउरस्स जहा ।।८०।।
धिद्धी मह वि वियारो जयगुरुणो वयणमवगणेऊण । चोरस्स तस्स वयणंमि पच्चओ जं कओ एवं ।।८१।।
इच्चाइ विचिंतंतो पत्तो जयबंधवस्स पयमूले । पणमित्तु भावसारं एवं विन्नविउमारद्धो ।।८२।।
तुह निक्कारणकारुणिय ! जयइ जोयणपसप्पिणी वाणी । उग्घाडंती दढमोहजडुजडियाणि सवणाणि ।।८३।।
धन्नाण कन्नकुहरे अखलियपसरं पसप्पए एसा । ही ही मए अहन्नेण ठइयकन्नेण परिहरिया ।।८४।।
निज्जीवा जीवस्स वि घडिभग्गा भग्गवस्स नियपन्ना । जीइ पुरो सा वि मए वियलविया जं अभयबुद्धी ।।८५।।
अप्पडिहयप्पयावो वि चंडदंडोवि सेणियनरिन्दो । पच्चाविओ मए जं तं तुह वयणस्स माहप्पं ।।८६।।
ता जह मरणाउ अहं जयवच्छल ! पालिओ तए अज्ज । तह चेव भवावडनिवडिरं पि मं रक्ख इत्ताहे ।।८७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय वित्तत्तो करुणामहन्नवो तक्करेण तेण तया । सिरिवीरजिणो भयवं दयाइ से कहइ जइधम्मं ।।८८।।
विन्नवइ पुणो एसो भयवं ! किमहं इमस्स धम्मस । जुग्गो न व त्ति साहसु भणइ जिणो भद्द ! जुग्गोऽसि ।।८९।।
जइ एवं गिन्हिस्सं पव्वज्जं सामि ! तुम्ह पयमूले । अत्थि परं वत्तव्वं मह किंची सेणियनिवेण ।।९०।।
जंपइ निवो पयंपसु नीसंकं भणइ तो इमो देव ! । निसुओ तुमए चोरो जो रोहिणिओ स एस अहं ।।९१।।
मुसियं सयलं पि पुरं तुज्झ मए तक्करस्स अवरस्स । संका वि न कायव्वा ता पेसह नियपहाणनरं ।।९२।।
दंसेमि जेण लुत्तं पुव्वविलुत्तं तओ अणुन्नाओ । तुब्भेहिं सामिमूले करेमि निरवज्जपव्वज्जं ।।९३।।
तोऽणुन्नाओ रन्ना अभओ कोउगपरेहिं पोरेहिं । अणुगम्मंतो पत्तो रोहिणियाहिट्ठियं ठाणं ।।९४।।
तत्तो सुसाणवणगिरि - निउंजपमुहेसु विसमदेसेसु । खित्ताइं निहाणाइं दंसइ सोऽभयकुमारस्स ।।९५।।
अभओ वि नायरायणं जं जस्स समप्पए स तं तस्स । को तारिसाण लोभो पररमणीसु व परधणेसु ।।९५।।
रोहिणिओ वि हु नियमाणुसाण कहिऊण वत्थुपरमत्थं । संबोहिऊण तो ते समागओ सामिपयमूले ।।९७।।
अह सेणिएण कीरंत - सयलनिक्खमणसमयकायव्वो । पव्वइओ स महप्पा पयमूले भुवणनाहस्स ।।९८।।
आरब्भ चउत्थाउ छम्मासं जाव तिव्वतवचरणं । दुक्कम्ममम्मनिम्मूलणाय सो कुणइ एगमणो ।।९९।।
आराहिऊण समए दुहा वि संलेहणं स मुणिसीहो । मरणाराहणजुत्तो पत्तो तियसालयं विमलं ।।१००।।
एकेन वाक्येन जिनोदितेन, विनाऽपि भावं श्रुतिसङ्गतेन ।
अवापदित्थं ननु रौहिणेयः, संपत्तिमापत्तिमपास्य दूरम् ।।१०१।।

उदाहृतं रौहिणेयोदाहरणम् । अधुना चिलातीपुत्राऽऽख्यानमाख्यायते -

।। जिनवचनश्रवणफले चिलातीपुत्रकथानकम् ।।

कमलाविलासजुट्ठं धम्मेण नएण तह य परिपुट्ठं । अत्थित्थ खिइपइट्ठं नामेण पुरं गुणगरिट्ठं ।।१।।
तत्थासि जन्नदेवु त्ति माहणो माहणोचियाचारो । जस्स मणे दुव्वारो विलसइ विज्जाअहंकारो ।।२।।
पयईइ पज्झणीओ एसो जिणसासणस्स मूढप्पा । गुरुदेवधम्मनिंदा - परायणो गमइ दियहाइं ।।३।।
निसुणंति सया मुणिणो निंदं खिंसं च तस्स वयणाओ । अन्नाणु त्ति उविक्खंति खंतिगुणकणयकसवट्टा ।।४।।
वारिज्जंतो वि गुरूहिं अन्नया तत्थ खुड्डगो एगो । समुवट्ठिओ विवाए तेण समं पज्झणीएण ।।५।।
जाया तत्थ पइन्ना हारइ जो इत्थ वयणरणरंगे । सो तस्स होइ सीसो रायाएसो इमो तत्थ ।।६।।
तत्तो य सहानाहे सब्भेसु य वायमंडवठिएसु । वाइपडिवाइणो ते कयपक्खपरिग्गहा दो वि ।।७।।
लग्गा उग्गाहेउं अखलियलीलियाइ दिव्ववाणीए । दीसंता विउसेहिं विम्हयविप्फुल्लनयणेहिं ।।८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छलजाइनिग्गहेहिं निग्गहिओ तयणु जन्नदेवदिओ[2] । सो वायलद्धिदुद्धरिस - बुद्धिणा तेण खुल्लेण ।।९।।
लज्जाविलिज्जमाणो बलावि पव्वाविओ दिओ तइया । जियकासिणा स मुणिणा जिणपवयणपङ्कणीउ त्ति ।।१०।।
तो गहियदव्वलिंगो सासणदेवीइ जन्नदेवदिओ । संबोहिओ कमेणं पडिवन्नो भावचारित्तं ।।११।।
पालेइ एगचित्तो सुत्तत्थे पढइ कुणइ तिव्वतवं । तणुवत्थविसयमलगोयरं तु उव्वहइ विचिकिच्छं ।।१२।।
सन्नाइणो वि कमसो उवसंता तस्स देसणाईहिं । किं सुमणसंगमेणं न वहंति तिला वि सोरब्भं ।।१३।।
नीरागे वि हु रागं न जन्नदेवंमि पणइणी मुयइ । विसएहि वेलविज्जंति मुणियतत्ता वि किमु अन्ने ।।१४।।
होउ इमो वसवत्ती मम त्ति पारणगदिवसपत्तस्स । सा देइ तस्स वसियरणकम्मणं पिम्मसम्मूढा ।।१५।।
तो तेण [3]वलक्खेयर - पक्खेण व खीयमाणतणुलट्ठी । चंदु व्व जन्नदेवो स देवभूयं समणुपत्तो ।।१६।।
अह तेण विरागेणं विरत्तचित्ता इमस्स पत्ती वि । पडिवन्ना पव्वज्जं निरवज्जं पालए निज्झं ।।१७।।
पइवसणपावमेसा अपडिक्कमिऊण सुगुरुपयमूले । कालेणं कालगया उववन्ना देवलोगम्मि ।।१८।।
इत्तो य मगहविसए रायगिहे पुरवरम्मि धणनिलओ । सिट्ठी नामेण धणो भद्दा से भारिया अत्थि ।।१९।।
दासी य तस्स गेहे चिलाइया नाम तीइ गब्भंमि । सो जन्नदेवजीवो चविऊणं देवलोगाओ ।।२०।।
विचिगिच्छादोसेणं नीयकुले दारओ समुप्पन्नो । भन्नइ चिलाइपुत्तु त्ति जणणिनामेण सव्वत्थ ।।२१।।
कालेण जन्नदेवस्स पुव्वभवभारियाइ जीवो वि । पंचसुयाणं उवरिं तणया सिट्ठिस्स संजाया ।।२२।।
कयसुंसुमाभिहाणा वड्ढइ सा धणमणोरहेहिं समं । विहिओ चिलाइउत्तो बालग्गाहो स तीइ तओ ।।२३।।
सो उण सहावचवलो कलहइ सह नायराण डिंभेहिं । सिट्ठी य उवालंभं लहइ सया तस्स दोसेण ।।२४।।
अह दीहदंसिणा सो धणेण निव्वासिओ नियघराओ । दुव्वित्तो तणओ वि हु धाडिज्जइ किमुय दासेरो ।।२५।।
पत्तो य परियडंतो सीहगुहं नाम चोरपल्लिं सो । संघडिओ य निसंसो निसंसचरिएहिं चोरेहिं ।।२६।।
कालक्कमेण पत्ते समवत्तिपुरं पुराणपल्लीसे । सु च्चिय पयम्मि ठविओ तयत्थमिव निम्मिओ विहिणा ।।२७।।
इत्तो य सुंसुमा वि हु मयरद्धयरायरायहाणिं व । सुविभत्तसयलगत्ता पत्ता नवजुव्वणारंभं ।।२८।।
अह अन्नया चिलाई - तणओ नियतक्करे पयंपेइ । वच्चामो रायगिहं पविसामो तत्थ धणगेहं ।।२९।।
तुम्हाण धणस्स धणं तणया पुण सुंसुमा महं होही । इय ते कयसंकेया दुक्का धणमंदिरे रत्तिं ।।३०।।
ओसोयणीइ सयलं पि घरजणं निम्मिऊण निच्चिट्ठं । तो लुंटिउं पयट्टा धणस्स ते सारभंडारं ।।३१।।
ऊसरिऊण धणो वि हु पंचहिं तणएहिं सह ठिओ बाहिं । किं कुणउ पुरिसयारो पडिकूले हयकयंतम्मि ।।३२।।
गहिऊण धणं तेणा चिलाईतणओ वि सुंसुमाकत्रं । तुरियतुरियं पलाणा ते नियपल्लिं पवणजवणा ।।३३।।

---

2. द्विजः ।

3. **वलक्खेयरपक्ख** - वलक्ख-शुक्लपक्ष, वलक्खेयर-कृष्णपक्ष इति भाषायाम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह दंडवासियनरे भणइ धणो एह वञ्झिमो पिट्ठं । चोरविलुत्तं वित्तं तुम्हाण नियत्तह सुयं मे ।।३४।।
तत्तो धणलोभेणं लग्गा ते तक्कराण अणुमग्गं । पंचहिं सुएहिं सहिओ धणो वि तूणीरधणुहत्थो ।।३५।।
इत्थ गया इत्थ ठिया इह भुत्ता आसिया इहं चोरा । इय पयविसारएहिं घिप्पंता ते गया सविहं ।।३६।।
दट्ठूण सुहडसत्थं उवट्ठियं पिट्ठओ अइमहत्थं । पाणभएण पलाणा मुत्तूण धणाणि ते तेणा ।।३७।।
सह सुंसुमाइ चलिओ चिलाइतणओ वि अग्गओ जाव । ताव य गहिऊण धणं आरक्खनरा पडिनियत्ता ।।३८।।
जाव न मुंचइ पिट्ठिं सिट्ठी तणयासिणेहओ ससुओ । ता चलिउं असमत्था सा तेणारोविया खंधे ।।३९।।
मंदपयं वञ्चंतो भारक्कंतो चिलाइपुत्तो तो । दिट्ठो ससुएण धणेण धावमाणेण अणुमग्गं ।।४०।।
जह मह न इमा मा होउ तह इमेसिं पि इय विचिंतंतो । कमलं व कंठनालाउ लुणइ सो सुंसुमासीसं ।।४१।।
जह निहओ पुव्वभवे इमीइ नेहेण जत्रदेवो सो । तह इहभवंमि तेण वि निहया एसाऽणुरागेण ।।४२।।
वग्गिरखग्गो दाहिणकरेण वामेण धरियसिरकमलो । सो जमनयरदुवारस्स खित्तवालु व्व सहइ तया ।।४३।।
सिट्ठी वि तं कबंधं दट्ठुं तणयाइ निट्ठुरं नियय । सीसं वच्छं पुट्ठं कुट्टंतो रुयइ सुयसहिओ ।।४४।।
विलवइ पुणोवि मुच्छइ पुणोवि तणयाइ नियइ अंगाइं । सोयमहागहगहिओ किं किं न धणो तया कुणइ ।।४५।।
अह निप्फलप्पयासो तणयानिहणेण पडिनियत्तंतो । पडिओ महाडवीए सिट्ठी पत्तं च मज्झन्हं ।।४६।।
बाहिं समेण सुढिओ अंतो सोएण सल्लिओ तइया । इय चिंतिउं पवत्तो नियय विवेओचियं एसो ।।४७।।
पिच्छह मह असुहाणं कम्माण विवागमागयं सहसा । जं सव्वस्सं मुसियं गेहाओ तक्करगणेण ।।४८।।
पाणेहिंतो अहिया निहया तणया य तेण पावेण । मरणावत्थं पत्तो पुत्तेहिं समं अहं पि हहा ।।४९।।
मूढा नियमाहप्पं कप्पंति कयाइ कज्जसिद्धीए । तस्सेव असिद्धीए निंदंति निरत्थयं च परं ।।५०।।
जम्हा सुहकम्मेहिं सिज्झंति समीहियाइं सयलाइं । विहडंति य असुहेहिं ता केस परेसि गुणदोसा ।।५१।।
तम्हा न इत्थ दोसो दस्सूणं न य चिलाइपुत्तस्स । न हु दंडवासियाणं दोसो मह चेव कम्माणं ।।५२।।
एवं च ठिए तं किंपि सुचरियं अहमओ वरं काहं । जेणेरिसो न निवडइ पुणो वि मह दुहसावत्तो ।।५३।।
इय चिंतंतो पत्तो रायगिहे तयणु सुंसमाइ इमो । काऊणं मयकिच्चे ठविउं नीईइ सकुडुंबं ।।५४।।
वेरग्गेणं तेणेव चरमतित्थंकरस्स पयमूले । पव्वइओ धणसिट्ठी चरियचरित्तो दिवं पत्तो ।।५५।।
इत्तो चिलाइपुत्तो रागेणं सुंसुमाइ मुहकमलं । पुणरुत्तं पिक्खंतो संपत्तो दक्खिणाहुत्तं ।।५६।।
दुहतत्तसत्तसरणं पसमामयपूरपूरियं पुरओ । पिक्खइ उस्सग्गठियं घणं व चारणमुणिं एगं ।।५७।।
तं तस्स पसमभावं रुद्दत्तं अत्तणो य चिंतंतो । नियदुच्चरिएण मणं विलीणहियओ मुणिं भणइ ।।५८।।
संखेवेणं धम्मं मह साहसु अज्जहा तुह वि सीसं । एएण किवाणेणं एयं पिव लहु लुणिस्सामि ।।५९।।
नाणेण य मुणइ मुणी निहित्तमेयंमि बोहितरुबीयं । मुक्खफलेणं फलिही अचिरेण वि तो तयं भणइ ।।६०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवसमविवेयसंवरमित्तियमिह मुणसु धम्मसव्वस्सं । इय पभणंतो गयणे उप्पइओ चारणमुणिंदो ।।६१।।
तत्तो चिलाइपुत्तो पयत्तयं मंतपयसमं एयं । पुणरुत्तं सुमरंतो इय वीमंसेउमारद्धो ।।६२।।
कोहाईण कसायाण निग्गहे उवसमो इमो होइ । सो कत्थ मज्झ दुद्दम-कसायदमियस्स अणवरयं ।।६३।।
तम्हा कयावराहे वि पाणिनिवहे विमुक्कको वो हं । इय मज्झ होउ एगं उवसमरूवं पयं पढमं ।।६४।।
धणधन्नाइसु मुच्छाविच्छेओ भन्नए किर विवेगो । सो वि हु न मज्झ नडियस्स विविहरूवाभिलासेहिं ।।६५।।
इन्हि न मे धणमन्नं खग्गं तह सुंसुमासिरं मुत्तुं । तम्हा इमेसि चाएण होउ मह नणु विवेगो वि ।।६६।।
पंचन्हमिंदियाणं मणसो य निए निए जमिह विसए । अणवारिओ पयारो असंवरो ताव किर एसो ।।६७।।
ता करणनिग्गहेणं मणसो एगग्गयाइ तह इन्हिं । मह भावसंवरो वि हु नणु होउ मुणिंदनिद्दिट्ठो ।।६८।।
इय चिंतिऊण सव्वं काऊण य तं तहा महासत्तो । काउस्सग्गे स ठिओ दिट्ठमुणिंदाणुसारेण ।६९।।
झाणट्ठियस्स तत्तो मुणिस्स जं तस्स तत्थ संजायं । इय पुव्वसूरिभणियाऽ-णुसारओ तं निसामेह ।।७०।।
जो तिहिं पएहिं धम्मं समभिगओ संजमं समारूढो । उवसमविवेयसंवर[4] चिलाइपुत्तं नमंसामि ।।७१।।
अहिसरिया पाएहिं सोणियगंधेण जस्स कीडीओ । खायंति उत्तमंगं तं दुक्करकारयं वंदे ।।७२।।
धीरो चिलाइपुत्तो मुयंगलीयाहिं चालणि व्व कओ । जो तहवि खज्जमाणो पडिवन्नो उत्तमं अट्ठं ।।७३।।
अट्ठाइज्जेहिं राइंदिएहिं पत्तं चिलाइपुत्तेण । देविंदामरभवणं अच्छरगणसंकुलं रम्मं ।।७४।।
इत्थं चिलातीतनयो विधाय, धर्म्मस्य लोकस्य तथा विरुद्धम् ।
वाक्यैकदेशेन जिनागमस्य, सुशीलितेन त्रिदिवं प्रपेदे ।।७५।।१४८।।

एवं सति यद् विधेयं तदाह -

तम्हा सइ सामत्थे वित्थारइ पुत्थएहिं जिणसमयं ।
वायावेइ य विहिणा मेहागुणसंगयमुणीहिं ।।१४९।।

तस्मात् रौहिणेयचिलातीपुत्रादिदृष्टान्तावष्टम्भेन जिनमतानुगतपदमात्रस्याप्येवं प्रभावातिशयमवगम्य **सामर्थ्ये** वित्तादिपुष्कलत्वे **सति** विद्यमाने सुश्रमणोपासकः समस्तमप्यङ्गप्रविष्टाङ्गबाह्यादिरूपं श्री**जिनेन्द्रसमयं पुस्तकैर्विस्तारयति** । किमुक्तं भवति - नवीनपुस्तकानामालेखनेन, विक्रीयमाणानां सङ्ग्रहणेन, उभयेषामपि प्रतिपालनेनेत्यर्थः । यदाह -

लेखयन्ति नरा धन्या ये जिनागमपुस्तकम् ।
ते सर्ववाङ्मयं ज्ञात्वा सिद्धिं यान्ति न संशयः ।।१।। [योगशास्त्र प्र. ३/११९ वृत्तौ]

4. प्राकृतत्वाद् विभक्तिप्रत्ययलोपः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असामर्थ्ये तु दशवैकालिकादिसूत्रमात्रलेखनेनापि पुस्तकक्षेत्रमाराधयति । [1]तथा **वाचयति** चतुर्विधश्रीश्रमणसङ्घस्य मीलनेन तान् जिनागमान् तदनुसारीण्यपराण्यपि तीर्थकृद्गणभृन्महर्षि-चरितप्रभृतीनि व्याख्यानयति । कथं? **विधिना** पुस्तकपूजोपचारसङ्घसम्मानमहोत्सवपुरस्सर-मित्यर्थः । केभ्यो? **मेधागुणसंगति(त)मुनिभ्यः** महार्थावधारणक्षमप्रज्ञागुणशालिभ्यो गुरुभ्यस्तच्छिष्यादिभ्यश्च गुर्वायत्तत्वादागमानुयोगस्येति ।।१४९।।

ननूचित एव स्वसमयलेखनेन सुश्रावकाणां जिनप्रवचनविस्तारः । अथ परसमयानुगतमपि किमप्यमीषां संग्रहीतुमुचितं न वेत्याशङ्क्याह -

ससमयपरसमयविऊ ते वि तयत्थावभासणसमत्था ।
परतित्थीणं पि तओ पमाणसत्थाणि निउणाणि ।।१५०।।
वागरणछंदलंकार - कव्वनाडयकहाइ लेहेइ ।
जं सव्वं सम्मसुयं सम्मद्दिट्ठीहिं परिगहियं ।।१५१।।

किल मेधागुणसङ्गतेभ्यो मुनिभ्यः समयशास्त्राणि व्याख्यानयतीत्युक्तम्, **ते** च **तेषां महार्थानामर्थावभासनसमर्थाः** कथं स्युः ? इत्याह **स्वसमयपरसमयवेदिनः** । अपरिशीलिते हि परसमये नानानयानुसरणेन केषाञ्चित् क्रियावादिनामन्येषामक्रियावादिनामपरेषामज्ञानवादिनां तदितराणां च वैनयिकानामेवं त्रिषष्ट्यधिकत्रिशतीसंख्यानां पाखण्डिनां निजनिजनयव्यवस्थाप-नाय प्रश्नोत्तरपराणां विषयविभागमजानानाः कथं ते स्वसमयार्थव्यवस्थापने पटवो भवेयुरतः **परतीर्थिकानामपि** तदुपयोगीनि **निपुणानि** महार्थानि **प्रमाणशास्त्राणि** न्यायधर्मोत्तरकमल-शीलप्रभृतीनि, तथा **व्याकरणानि** पाणिनिशाकटायनप्रमुखानि, **छन्दांसि** पिङ्गलजयदेवादीनि, **अलङ्कारान्** सरस्वतीकण्ठाभरणप्रभृतीन् तथा **काव्यानि** कालिदासत्रयीशिशुपालवधकिरा-तार्जुनीयादीनि, **नाटकानि** शाकुन्तलवीरचरितादीनि, **कथाः** कादम्बरीवासवदत्ताद्याः, **आदि-**शब्दादन्यदपि गुरुजनोपयोगिपरसमयानुगतमपि सुश्राद्धो **लेखयति** । नन्वमीषां परतीर्थिग्रन्थानां सङ्ग्रहणेन न कश्चिद्दोषाश्लेष इत्याशङ्क्याह-**यद्** यस्मात् **सम्यग्दृष्टिभिर्**जिनप्रवचनविशारदैः **परिगृहीतमङ्गीकृतं सर्वं** परसमयाद्यपि **सम्यक् श्रुतत्वेन** परिणमति । सर्वनयमयत्वाज्जिन-

---

गाथा-१४९ 1. **तुला** - लिखितानां च पुस्तकानां संविग्नगीतार्थेभ्यो बहुमानपूर्वकं दानम्, व्याख्यायमानानां च प्रतिदिनं पूजापूर्वकं श्रवणं चेति । - यो. शा. ३, प्र. ११९ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतस्येति ।।१५०।।१५१।।

न च जैनागमलेखनं केवलं लेखयितुस्तन्मात्रस्यैव पुण्यस्य निबन्धनं यावदुत्तरोत्तरस्यापीति निदर्शयन्नाह -

जे केइ जप्पवत्तिय - पुत्थयगंथत्थसवणओ जीवा ।
पावाइं परिहरंती स होइ तप्पुन्नफलभागी ।।१५२।।

ये केचन लघुकर्माणः **प्राणिनो यत्प्रवर्त्तितपुस्तकग्रन्थार्थश्रवणतः पापानि** प्राणिवधानृत-भाषणपरधनापहारमद्यमांसमैथुनासेवनादीनि देशतः सर्वतो वा **परिहरन्ति । स** पुस्तकप्रवर्त्तक-**स्तत्परिहार**पुण्यफलविभागभाजनं **सम्पनीपद्यत** इत्यहो जिनमतस्याऽतिशय इति ।।१५२।।

भणियं [1]सुसावगोचिय-मिय पुत्थयखित्तमह समासेणं ।
जिणमंदिरखित्तं पि हु सुयाणुसारेण साहेमि ।।१५३।।

भणितं व्याख्यातं **सुश्रावकोचितं** सुश्रमणोपासकसमुचित**मिति** पूर्वोक्तप्रकारेण वित्तबीजोप-योगि**पुस्तकाख्यं** पञ्चमं **क्षेत्रम् ।अथा**नन्तरं **समासेन** संक्षेपेण **जिनमन्दिरक्षेत्रमपि** षष्ठं **श्रुतानुसारेण** समयनीत्या **कथयामि** ।।१५३।।

सम्मत्तधरो सड्ढो सविसेसं बोहिसोहणसयण्हो ।
कारेइ जिणाययणं नीइविढत्तेण वित्तेणं ।।१५४।।

एवंविधः **श्राद्धो** जिनायतनं **कारयति** । किंविशिष्टः ? पुरैव **सम्यक्त्वधारी,** विना हि सम्यक्त्वं न हि जिनप्रवचनप्रभावनाङ्गभूतेषु जिनभवननिर्म्माणादिषु प्रवृत्तिसम्भवः । पुनः किंविशिष्टः ? तस्या एव **बोधेः शोधने** नैर्मल्योत्पादने **सविशेषं** सुतरां **सतृष्णः** साभिलाषः । भवत्येव हि **जिनायतन**बिम्बादिनिर्माणे सम्प्रतिराजादेरिव नैर्मल्यं दर्शनस्य । कैः ? **वित्तै**र्द्रव्यैः [1]किम्भूतैः ? **नीत्युपार्जितैः** स्वामिमित्रद्रोहविश्वस्तवञ्चनचौर्यदुरोदरादिपरिहारेण स्वकुलोचितवृत्त्या न्यायोपात्तैः,

---

गाथा-१५३ 1. (०मिय) सम्पादकः । संवेगी-पाटण-मूलगाथायाः प्रतमध्ये सुसावगोचियनियपुत्थयखित्तम् पाठो वर्तते, किन्तु वृत्तिमध्ये सुश्रावकोचितं इति पुस्तकाख्यं पञ्चमं क्षेत्रम् तदनुसारेण 'सुसावगोचियमिय, पुत्थयखित्तम् पाठः समुचितो ज्ञायते ।'

गाथा-१५४ 1. न्यायार्जितवित्तेशो मतिमान् स्फीताशयः सदाचारः । गुर्वादिमतो जिनभवनकारणस्याधिकारीति ।। - षो. प्र. ६/२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यायोपात्तं हि पुष्कलमपि वित्तं सुक्षेत्रेषु घुणक्षतमिव बीजं न विशिष्टफलायेत अतो नीत्यर्जितैरित्युक्तम् ।।१५४।।

ननु किमर्थं श्राद्धः कारयतीत्युक्तम् उच्यते -

अहिगारी जं एसो दोसो पुण अणहिगारिणो नियमा ।
आणाभंगाईओ दुरंतभवभमणपेरन्तो ।।१५५।।

[1]**यद्** यस्मा**देष** तत्र जिनायतननिर्माणादौ **अधिकारी** भगवद्भिर्जिनराजैर्नियुक्तः सावद्ययोगेषु हि विरताविरतरूपत्वात् श्रमणोपासकस्य, सर्वविरतत्वेना**नधिकारिणः पुनर्यते**: प्रत्युत तन्निर्माणे **दोष एव** । कः ? इत्याह - **आज्ञाभङ्गादिः** आदावेव तावदर्हदाज्ञाभङ्गः । कथं ? द्रव्यस्तवरूपत्वाज्जिनभवनादिविधानस्य, साधूनां भावस्तव एव भगवद्भिरनुज्ञात इति, तस्माच्चानवस्था, तस्याश्च मिथ्यात्वम्, मिथ्यात्वाच्च संयमविराधनेति दोषस्तोमः समुदेति, स च **दुरन्तभवभ्रमणपर्यवसान** इति कृतं जिनाज्ञाभङ्गेन ।।१५५।।

अत्राह परः -

नणु जिणभवणाणमिहं महयारंभेण होइ निम्माणं ।
आरंभे कह णु दया? जिणधम्मो पुण दयामूलो ।।१५६।।

नन्विति प्रश्ने । यद्यपि विरताविरतस्य श्रमणोपासकस्य नास्त्येवैकान्ततः सावद्ययोगनियमस्तथाप्यस्त्येव महारम्भेभ्यो निवर्त्तनम् । **जिनभवनानां** च **निर्माणं** क्षितिखननदलपाटकानयनगर्त्तापूरणेष्टकाचयनजलप्लावनवनस्पतित्रसकायविराधनारूपेण **महारम्भेण भवति, आरम्भे** च पूर्वोदितानां पृथिव्यादीनां निर्दयनिर्दलनेन, **नु** इति वितर्के, **कथं दया ?** दययैव किं प्रयोजनमिति चेत्, तत्र यतो **जिनधर्म्मस्य दयैव मूलनिबन्धनम्,** परमकारुणिकत्वात् तदुपदेष्टृणामिति

गाथा-१५५ 1. अहिगारिणा इमं खलु कारेयव्वं विवज्जए दोसो । आणाभंगाउ च्चिय धम्मो आणाइ पडिबद्धो ।।
- दर्श. शु. गा. १८ ।।

"छज्जीवकायसंजमो दव्वत्थए सो विरुज्झए कसिणो । तो कसिणसंजमविऊ पुप्फाईयं न इच्छन्ति ।।१।। अकसिणपवत्तगाणं विरयाविरयाण एस खलु जुत्तो । संसारेपयणुकरणो दव्वत्थए कूवदिट्ठंतो ।। तथा द्रव्यस्तवरूपत्वात् पूजायाः तस्य च भावस्तवहेतुत्वात्प्रधानत्वाच्च यतीनां न द्रव्यस्तवेऽधिकारः ।।
- अष्ट. प्र. २/५ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।।१५६।। आचार्यः प्राह -

सज्झं होइ विमद्दो पुढवाईणं धुवो समारंभे ।
किंतु बुहा गुरुलाभे कज्जे सज्जंति जं भणियं ।।१५७।।

हंहो ! पर ! **सत्यं** यथार्थमेवैतत् भवद्वचनम्, यद् दयामूलो जिनधर्म्मः, अत एवोत्सर्गन्यायेन स्वयंसिद्धोपलकाष्ठादिदलस्य ग्रहणेन सूत्रधारभृतकानतिसन्धानेन भृतकानामधिकमूल्यवितरणेन षट्जीवनिकाययतनापूर्वकं जिनभवनानां निर्माणमुचितम् । असम्भवे तु निरवद्यदलादेरितरथापि निर्मिमीते, तथा सति **पृथिव्यादीनां ध्रुवो** निश्चितो **विमर्दः** सम्भवत्येव, **किन्तु** एवं सत्यपि **बुधा** गुरुलाघवप्रेक्षावन्तो विद्वांसः **कार्ये** कर्त्तव्ये **संसज्यन्ते** । किम्भूते? **गुरुलाभे,** सामर्थ्यादल्पव्यये च । कथमिदमवसीयते इति चेत्, तदाह - **'जं भणियं'** यद् यस्माद् भणितमागमेऽपि ।।१५७।। तदेव दर्शयति -

कुणइ वयं धणहेउं धणस्स वणिओ वि आगमं नाउं ।
इय संजमस्स वि वओ तस्सेवट्ठा न दोसाय ।।१५८।। [ ]

आसतां तावदितरे सत्त्वसाराः क्षत्रियादयः, यावत् **वणिगपि** जातिस्वभावादल्पसत्त्वो नैगमोऽपि धनस्य बहुक्लेशायासोपार्जितस्य वित्तस्य **व्ययं करोति** । किं कृत्वा? **ज्ञात्वा**ऽवबुध्य । किं तत्? **आगमं** शतसहस्रगुणितं लाभम् । कस्य? तस्यैव **धनस्य** । अत एव किंविशिष्टं व्ययं? **धनहेतुं** धनस्य कारणम् । द्रव्यक्षेत्रकालादिसम्यग्विभावनेन, कदापि व्ययोऽपि क्रियमाणो लाभरूपेण परिणमति । दृष्टान्तमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकेन योजयति । **एवम**मुनैव प्रकारेण कस्मिन्नपि देशे काले वा गुरुलघुभावविभावनेनोत्सर्गापवादविदुरैः **संयमस्यापि व्ययस्तस्यैव विवृद्धये** क्रियमाणो **न दोषाय** प्रत्युत गुणाय । एवमस्मिन्नपि जिनभवनादिप्रारम्भे यद्यपि देशविरतानामारम्भोपमर्दादिजनितः कियानपि पापमललेपः संक्रामति, तथापि जिनभवननिष्पत्तावुत्तरगाथावक्ष्यमाणैर्दुष्कर्म्मनिर्जराहेतुभिरभिभूयत एवारम्भसम्भृतमेनः ।।१५८।।

गाथा-१५७ 1. **तुला** - कारणविधानमेतच्छुद्धा भूमिर्दलं च दार्वादि ।
भृतकानतिसंधानं स्वाशयवृद्धिः समासेन ।।३।। - षो. प्र. ६/३ ।।
जिणभवणकारणविही सुद्धा भूमिदलं च कट्ठाई ।
भियगाणइसंधाणं सासयवुड्ढी य जयणा य ।। - दर्श. शु. गा. १७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मनिर्जराहेतूनेव दर्शयति -

संतम्मि जिणाययणे वंदणवडिया मुणीण धम्मकहा ।
भद्दगबोही सम्मत्तसुद्धि विरईदुगाइगुणा ।।१५९।।

[1]**सति** हि **जिनायतने** एते गुणा यथासम्भवं सम्भवन्ति, तद्यथा - **मुनीनाम**नगाराणां **वन्दन-वृत्तिः** विहारप्रसङ्गसङ्गता हि साधवो विज्ञाय नगरग्रामादिषु जिनायतनं प्रायो वन्दनार्थमुपनमन्ति, उपनताश्च श्राद्धानां श्रद्धालुतामवधार्य **धर्म्मकथायां** प्रवर्त्तन्ते, तदाकर्णने च स्वस्वकर्मक्षयोपशमानुमानेन केचित् प्राणिनो **भद्रका** भवन्ति, अपरेषां **बोधिलाभः**, केषाञ्चित् पूर्वोपात्तस्यैव **सम्यक्त्वस्य** शङ्कादिदोषकलुषितस्य **विशुद्धि**स्तदन्येषां देशविरतिसर्वविरतिलक्षणं **विरतिद्विकमादि**शब्दात् संशयोच्छेदजातिस्मरणाद्या **गुणाः** संपद्यन्ते, अनेन च विशिष्टगुणगौरवविभागेन गृह्यन्त एव विधिचैत्यविधायिनः ।।१५९।। किञ्च -

इक्कस्स वि ताव जियस्स भवदुहाओ विमोयणं धम्मो ।
किं पुण तत्तियमित्ताण भव्वजीवाण जं भणियं ।।१६०।।

एकस्यापि तावज्जीवस्य **संसृतिक्लेशेभ्यो विमोचनं** महते **धर्माय** । **किं पुनस्तावन्मात्राणां** पूर्वोदितानां भद्रकादीनां **भव्यजीवाना**मिति ।।१६०।।

यद् यस्माद् भणितमेतदेव **श्रीधर्म्मदासाचार्येण** -

सयलंमि वि जियलोए तेण इहं घोसिओ अमाघाओ ।
इक्कं पि जो दुहत्तं सत्तं बोहेइ जिणवयणे ।।१६१।। [उपदेशमाला गा. २६८]

[1]**इहास्मिन्** जगति **सकलेऽपि जीवलोके तेन** सुकृतिना **घोषित** उद्घोषितः **'अमाघाओ'**

गाथा-१५९ 1. **तुला** - पिच्छिस्सं इत्थ अहं वंदणगनिमित्तमागए साहू ।
कयपुन्ने भगवंते गुणरयणनिही महासत्ते ।।१।।
पडिबुज्झिसंति इहं दट्ठूण जिणिंदबिंबमकलंकं ।
अन्ने वि भव्वसत्ता काहिंति तओ वरं धम्मं ।।२।।
ता एयं मे वित्तं जमित्थमुवओगमेइ अणवरयं ।
इय चिंतापरिवडिया सासयबुड्ढी य मुक्खफला ।।३।।
- पञ्च व. ११२६, ११२७, ११२८ । पञ्चा. ७ गा. २६-२७-२८ ।।

गाथा-१६१ 1. **तुला** - सकलेऽपि समस्तेऽपि जीवलोके तेन महात्मना इह घोषितो वाक्पटहेन अमाघातो

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमारिपटहः । यः किं? **यः एकमपि** भवदुःखार्त्तं **सत्त्वं जिनवचने** जिनवचनोपदेशमन्त्रेण मोहोरगविषमूर्च्छितं **बोधयति** जागरयति, उपदिष्टजिनवचना हि भाविभद्राः प्राणिनः कियतामसुमतां रक्षार्थं नोद्यच्छन्ति ।।१६१।। पुनः प्रकृते योजयति -

ता भावुवयारकरं सिरिभरहाईहिं सयमिहाइन्नं ।
विहिणा कारवणं चेइयाणं सिवकारणं बिंति ।।१६२।।

तत् तस्माद् **विधिना** समयसमुचितेन **चैत्यानाम**र्हदायतनानां **कारणं** निर्मापणं **शिवकारणं** परम्परया मोक्षहेतुकं **वदन्ति** पूर्वमुनय इति शेषः । यतः पूर्वोदितन्यायेन विरत्यादिलाभहेतुतया **भावोपकारकरं** । तथा **श्रीभरतचक्रवर्त्तिप्रभृतिभिः** प्रमाणपुरुषैः **स्वयमाचीर्णम्** । श्रूयते हि किलावसर्प्पिणीप्रथमपार्थिवस्य प्रथमतीर्थाधिपतेः प्रथमनन्दनेन चक्रवर्त्तिना भरतभूभुजा श्रीमदष्टापदगिरिवरोपरिष्टात् कारितमेकयोजनायामं त्रिगव्यूतोच्छ्रायं अनेकमणिनिर्म्माणं चतुर्गोपुरोपशोभितं प्रतिद्वारोत्तम्भितरत्नतोरणविनिस्सरत्प्रभापटलजटालितसकलदिक्चक्रवालं विमलमणिसालभञ्जिकाजनितापस्सरोगणावतरणभ्रमं मस्तकन्यस्तशस्ततपनीयकलसश्रेणिशोभितं उपरिप्रेङ्खोलदमलवैजयन्तीराजिविराजितम् निजनिजवर्णप्रमाणेपेताभिर्विचित्ररत्नसुघटितत्तदङ्गावयवाभिः प्रत्यङ्गसङ्गतमहार्घ्यमणिभूषणप्रभोद्भासिताभिः अष्टप्रातिहार्यवैभवजनितचित्तचमत्काराभिः पुरो विन्यस्तमणिमयदर्प्पणाद्यष्टाष्टमङ्गलाभिः स्वर्णमणीमयसकलपूजोपकरणपटलाशून्यपरिसराभिः श्रीऋषभस्वामिप्रभृतिचतुर्विंशतिजिनराजप्रतिमाभिरन्तरधिष्ठितं सर्वस्वमिव समग्रस्वर्गविमानसम्पदाम्, रहस्यमिव भवनाधिपभवनविभूतीनाम्, प्रतिच्छन्द इव मन्दरनन्दीश्वरादिशाश्वतार्हच्चैत्यानाम्, अन्यतरदिव विजयवैजयन्तादिविमानानाम्, सिंहनिषद्यासंस्थानसंस्थितं चतुर्विंशतिजिनायतनमिति । तदेवमेवम्प्रकारैर्महात्मभिर्नरशार्दूलैः स्वयं करणेन अन्येषामपि कर्त्तव्यतयोपदर्शितमर्हच्चैत्यानां विधिना विधानं कथं न मुक्तये संपद्येत? ।।१६२।।

एवं च नवीनजिनायतननिर्माणविषयक्षेत्रमभिहितम् । साम्प्रतं जीर्णोद्धारमधिकृत्याह -

उद्धरणं पुण जिन्नाण जिणहराणं विसेसओ होइ ।
इहपरलोयसुहयरं जह वग्गुरसेट्ठिणो तस्स ।।१६३।।

अमारिरित्यर्थः । एकमपि किं पुनर्बहून्, यो दुःखार्त्तं सत्त्वं जीवं बोधयति जिनवचने भगवद्वचोविषय इति, स हि बुद्धः सन् सर्वविरतो मोक्षंगतो वा यावज्जीवं सकलकालं वा सर्वजन्तून् रक्षतीति भावना ।।

- उप. मा. हेयो. वृ. गा. २६८ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीर्णशीर्णानां कालपर्यायेण परिशटितपतितानां पुनर्**जिनगृहाणामुद्धरणं पुनर्नवीकरणं विशेषतः** सविशेष**मिहाऽमुत्र** च **सुखसर्वस्वसंप्रदानप्रवणमुपपद्यते** । कथमिदमिति चेत्, तदाह - **यथे**ति दृष्टान्तोपन्यासे यथा **तस्य** कथानकोक्तस्य **वग्गुरनाम्नः श्रेष्ठिनो** जीर्णोद्धरण**मुभयलोकसुखावहमजायत** सम्प्रदायगम्यश्चायमर्थः, स चायं -

।। जीर्णोद्धरणविषये वग्गुरश्रेष्ठिकथानकम् ।।

अत्थित्थ नयविसालं कोडीसरघरफुरंतझयमालं । गयणग्गलग्गसालं नामेण पुरं पुरिमतालम् ।।१।।
तत्थासि सयलसत्थत्थ - सत्थपरमत्थवित्थरविहन्नू । नयपडिहयपडिसत्तू राया नामेण जियसत्तू ।।२।।
पसरंतचागभोगो सविवेगो पयइभद्दगो तत्थ । नायरजणेसु नयरिद्धिवग्गिरो वग्गुरो सेट्ठी ।।३।।
पणईयणअक्खुद्दा भद्दा नामेण तस्स वरभज्जा । गुरुदेवधम्मपईसयण-समुचियायरण सइ सज्जा ।।४।।
सो पुव्वजम्मनिम्मिय - सुचरियसंभारपूरसंघडिए । सह तीइ विउलभोए भुंजंतो गमइ दियहाइं ।।५।।
सफला से ववसाया पसायसमुहो सया वि नरनाहो । अणुकूलो नयरजणो तहविहु पडिकूलकम्मवसा ।।६।।
अणुरूवपणइणीसंगओ वि नवजुव्वणो वि सुहिओ वि । वट्टइ अणभिन्नु च्चिय अवज्झमुहदंसणसुहाणं ।।७।।
गंभीरो वि हु सिरिभायणं पि सो विउलसत्तनिलओ वि । वडवानलेण जलहि व्व तप्पए तेण दुक्खेणं ।।८।।
संगच्छइ गणएहिं सम्माणइ मंतवाइणो सययं । संसज्जइ विज्जेहिं उज्जुत्तो उवयरइ धुत्ते ।।९।।
ओसहिवलए धारइ नवं नवं वहइ मणिगणं सीसे । अच्चेइ देवयाओ बहुस्सुए पज्जुवासेइ ।।१०।।
वियरइ विउलवलीओ पयट्टए तह य भूरिदाणाइं । किं किं संताणकए न चिट्ठए वग्गुरो सिट्ठी ।।११।।
भद्दा वि हु पिक्खंती पोरपुरंधीओ बंधुरतरेहिं । सच्छंदहसिरकीलिर - धरधूलीधूसरंगेहिं ।।१२।।
पविसंतेहिं लहु बाहुमूलवच्छयलजाणुविवरेसु । मम्मणपयंपिरेहिं नियया वज्जेहिं सुहयाउ ।।१३।।
दूमिज्जइ हिययम्मी दीहं नीससइ मुयइ अंसूणि । सुन्नं नियइ दिसाओ वुन्नं वयणं समुव्वहइ ।।१४।।
सेवेइ ओसहाइं ओवायइ देवयाउ सयलाउ । तित्थेसु सह पिएणं अभिन्नपुत्तीइ मज्जेइ ।।१५।।
गिन्हइ अभिग्गहाइं भूमीए सुयइ सेवइ सईओ । जं जं सुणइ जणाओ तं तमवज्झत्थिणी कुणइ ।।१६।।
एवं ते अणवरयं अगणंता दविणहाणिं तणुपीडं । विविहोवाए पयडंति विनडिया सुयदुरासाए ।।१७।।
अह अन्नया समेओ सिट्ठी सुहिसयणपणइवग्गेण । कयसुइनेवत्थाए भद्दाइ सपरियणाइ जुओ ।।१८।।
विउलाण असणखाइमसाइमपाणाण भरिय सयडीउ । सगडमुहे उज्जाणे संपत्तो कीलणनिमित्तं ।।१९।।
कयभोयणोवयारा तंबोलुज्जोइयाणणमयंका । मयमयकयमुहवट्टा वरमल्लमहल्लधम्मिल्ला ।।२०।।
नियनियपियासमेया लग्गा जा तत्थ कीलिउं तरुणा । ता वग्गुरो वि भद्दासमन्निओ नियइ वणलच्छिं ।।२१।।
कोमलदलललियपसूण - सरसफललोललोयणा जाव । जायापइणो वच्चंति किच्चिरंपि हु वणुद्देसं ।।२२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता पासायं एगं सिहरसिहाल्हसिरगुरुसिलाजालं । परितुट्टभारवट्टं भूमिगयथंभसंभारं ।।२३।।
उप्पट्टकुट्टिमतलं वियलियपायारलुलियकविसीसं । पिक्खंति कालपरिणाम-विसरिसं तहवि ससिरीयं ।।२४।।
अह कोउगेण पविसंति जाव ते तस्स गब्भगिहमज्झं । ता मल्लिनाहपडिमं नियंति लोयणसुहावट्टिं ।।२५।।
तत्तो तक्कालसमुल्लसंत - गुरुहरिसवियसियच्छिजुया । भद्दगभावत्तणओ पूयंति नमंति पुणरुत्तं ।।२६।।
मुणिउं सपाडिहेरं सोहाइसएण तं तओ पडिमं । संघडियअंजलिउडा सविणयमेवं पयंपंति ।।२७।।
जइ देव ! तुह पभावेण कहवि अम्हं सुओ सुया वा वि । होही ता तुह भवणं असंसयं उद्धरेहामो ।।२८।।
तप्पभिइं आजम्मं धम्मं तुह सम्मयं च काहामो । उत्तमपूयाइ तुमं पूइस्सामो तह तिसंझं ।।२९।।
इय भणिउं भत्तीए पुणरुत्तं पणमिऊण मल्लिजिणं । सह सयणपरियणेहिं संपत्ता ते नियावासं ।।३०।।
अह तहभव्वत्तणओ जिणसासणदेवयाणुभावेण । पाउब्भूओ गब्भो अणब्भवुट्ठि व्व भद्दाए ।।३१।।
तत्तो अमंदआणंद-पूरपूरिज्जमाणहियएण । भद्दापिएण गेहे आहूया थवइणो सव्वे ।।३२।।
अह तेहिं समं विन्नाणनाणकुसलेहिं झत्ति संपत्तो । सिरिमल्लिनाहभवणं वणसंडपइट्ठियं सिट्ठी ।।३३।।
सम्माणिऊण भणिया तेण तओ विस्सकम्मनिम्माया । भो ! भो ! उद्धरह इमं अचिरेण जिणिंदपासायं ।।३४।।
जं उवजुज्जइ इत्थं महग्घमवि उवलदारुमाईयं । तं मह साहह सव्वं अविलंबं जह पणामेमि ।।३५।।
अह फलिहवयरवरइंदनीलवेरुलियविद्दुमाईहिं । उत्तमदलेहिं विहियं पुणत्रवं तेहिं तं भवणं ।।३६।।
सम्माणियदोहलया भद्दा वि हु पसवए सुयं समए । जणनयणाणंदकरं चन्दं खीरोयवेलव्व ।।३७।।
जं तारिसरिद्धीए तस्स पमोयस्स समुचियं जं च । तं पुत्तजम्मवद्धावणम्मि सिट्ठी कुणइ सव्वं ।।३८।।
सिरिमल्लिसामिणा से मणोरहो जह पमाणमुवणीओ । कलसपडायासीमं तह तेण वि तस्स पासाओ ।।३९।।
अह पुत्तजम्मणमहे संजाए मासपरिमिए सिट्ठी । सह सयलनायरेहिं समग्गनियबंधुवग्गेण ।।४०।।
भरिऊणं भंडीउ चउव्विहेणावि भक्खभुज्जेण । सगडमुहे संपत्तो वणंमि पुव्वुत्तजुत्तीए ।।४१।।
तत्थ य सिरिमल्लिजिणं अब्भुयभूयाइ परमभत्तीए । न्हवणविलेवणपूया-पणिहाणपुरस्सरं नमिउं ।।४२।।
अणिवारियं च दाऊण भोयणं गोरवेण सव्वेसिं । तंबोलवत्थसम्माणपुव्वयं भणइ ते सिट्ठी ।।४३।।
हंहो ! सुणंतु तुब्भे नायरसुहिसयणबंधवा सव्वे । विइयं चिय तुम्हाणं जह वंझा आसि मे भज्जा ।।४४।।
को वा मए इमीए संताणकए उवक्कमो न कओ । उवयारु व्व खलेसुं तह सयलो निप्फलो जाओ ।।४५।।
संपइ सिरिमल्लिजिणेसरस्स एयस्स नणु पभावेण । संपुन्नो मह एसो मणोरहो दुल्लहो वि दढं ।।४६।।
ता मह अज्जप्पभिइं एसु ञ्चिय नणु जिणेसरो देवो । धम्मो इमस्स सरणं गुरुणो एयस्स दंसणिणो ।।४७।।
जाओ सुसावगो हं अओ वरं चत्तसयलमिच्छत्तो । इय सोउं समणोवासगेहिं उववूहिओ एसो ।।४८।।
गमणागमणपवित्ती जाया से मंदिरे मुणीणं पि । तेसिं संसग्गाओ संजाओ सो वि गीयत्थो ।।४९।।
सह भद्दाइ तिसंझं पूयंतो मल्लिसामिणो पडिमं । जिणधम्मसंगयमणो वग्गुरसिट्ठी गमइ कालं ।।५०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्तो य तंमि समए सामी सिद्धत्थनंदणो वीरो । सिरिचरमतित्थनाहो छउमत्थविहारुगो तत्थ ।।५१।।
सगडमुहपुरिमतालाण अंतरे संठिओ य पडिमाए । वग्गुरसिट्ठी य तया न्हाओ कयविमलनेवत्थो ।।५२।।
पूओवगरणपडलग-करेहिं किंकरनरेहिं परियरिओ । सिरिमल्लिनाहभवणंमि पत्थिओ पूयणनिमित्तं ।।५३।।
इत्थंतरम्मि अडवीसलक्खसंखाण वरविमाणाणं । समसमयं सामीहिं सेविज्जन्तो सुरवरिन्दो ।।५४।।
ईसाणकप्पसामी वसहगई सूलपहरणो तत्थ । सिरिवद्धमाणसामिस्स वंदणत्थं समोइन्नो ।।५५।।
दिट्ठो य तेण वग्गुरसिट्ठी अवगन्निऊण भगवंतं । वञ्चंतो जिणपडिमाण पूयणत्थं पसत्रमणो ।।५६।।
परिचिंतियं च धिद्धी मुद्धत्तमिमस्स धम्मियस्सावि । पञ्चक्खं तित्थयरं अवहत्थिय जो वयइ एवं ।।५७।।
तम्हा बोहेमि इमं ति चिंतिउं दिव्वरूवनेवत्थो । वियडमणिमउडकुंडल-गेविज्जधरो सुराहिवई ।।५८।।
वागरइ वग्गुरं भद्द ! कत्थ तं पत्थिओ सि एगमणो । भणइ ससंभममेसो वि देव ! वञ्चामि जिणभवणं ।।५९।।
कं तत्थ गएण तए कायव्वं निव्वियप्पमण ! भणसु । विन्नवइ इमो पूया जिणिंदपडिमाण रम्माणं ।।६०।।
पडिमा वि जेसि पुज्जा पुज्जा ते किन्न नाम जिणचंदा । सो भणइ देव नियमेण सामिणो पूयणिज्जा ते ।।६१।।
जइ एवं ता एयं सिद्धत्थनरिंदनंदणं सामिं । पञ्चक्खं तित्थयरं अवहत्थिय किं पुरो वयसि ।।६२।।
इय सुरवइणा भणिओ ससंभमो नियइ वग्गुरो सामिं । पंचंगचुंबियधरो परेण विणएण तो नमइ ।।६३।।
विन्नवइ सामि ! अहिणवधम्मो हं अमुणिऊण परमत्थं । छउमत्थतित्थनाहाणमेवमवहत्थिउं चलिओ ।।६४।।
ता खमसु मह महायस ! अवराहमिणं पुणो वि न हु काहं । इय अज्जवेण भणिरं तं सुरनाहो पयंपेइ ।।६५।।
भद्द ! गयरागदोसो भयवं एसो हु परमकारुणिओ । न हु तूसइ नो रूसइ पूयावन्नाहिं कस्सावि ।।६६।।
सुंदर ! तुमं पि धन्नो इहलोगत्थे वि जेण जिणधम्मो । पडिवज्जिऊण एवं पालिज्जइ एगचित्तेण ।।६७।।
तम्हा लोगदुगे वि हु सुहायरे रमसु इत्थ जिणधम्मे । इयं त अणुसासिय नमिय सामियं वज्जइ सुरिंदो ।।६८।।
अह वग्गुरो वि पूयाविच्छड्डेण परेण सिरिवीरं । परिपूइऊण सो मल्लिनाहभवणम्मि संपत्तो ।।६९।।
तप्पभिइं सविसेसं थिरचित्तो सो जिणिंदधम्मम्मि । सम्मत्तमूलियाइं पडिवन्नो बारसवयाइं ।।७०।।
सम्मं कम्मादाणे परिज्झयंतो पवत्तए वित्तिं । सत्तसु खित्तेसु नियं च वित्तबीयं निओएइ ।।७१।।
तह तस्स धम्मराओ निम्माओ माणसे समुल्लसिओ । जह सुज्झिय भयणिज्जो संजाओ मंदधम्माणं ।।७२।।
इय आजम्मं परिपालिऊण सो सावगत्तमकलंकं । मरिउं पंडियमरणेण थिरसमाही दिवं पत्तो ।।७३।।
इत्थं किलैहिकमपि प्रतिपद्य हेतुं, वल्गद् विवेकगरिमा ननु वल्गुरोऽयम् ।
उद्धृत्य जैनसदनं भववारिराशेरात्मानमेव सुकृती ध्रुवमुद्दधार ।।७४।।१६३।।

एवं प्रदर्शितं सनिदर्शनं षष्ठं जिनायतनक्षेत्रम् । अधुना सप्तमं जिनबिम्बक्षेत्रमभिधित्सुराह –

निम्मविए जिणभवणे जिणबिंबं तत्थ ठावए मइमं ।
आणन्दसन्दिरच्छा हत्थं पिच्छंति जं भव्वा ।।१६४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]एवं पूर्वोदितेन न्यायेन **निर्म्मिते जिनभवने, तत्र** तस्मिन् **मतिमान्** विशुद्धबुद्धिर्**जिनबिम्बम-**र्हत्प्रतिच्छन्दं **स्थापयति** । प्रभावनापुरस्सरमिति **यत्** बिम्बं **भव्याः** समासन्नमुक्तयः **प्रेक्षन्ते** विलोकयन्ति । किंभूताः? **हत्थ**मत्यर्थ**मानन्दस्यन्दिताक्षाः** परमानन्दविगलत्प्रमोदाश्रुनयनाः भवति हि सर्वोत्तमवस्तुदर्शनात् परितोषाश्रुवर्षा इति ।।१६४।।

विहिणा तन्निम्माणं विहिणा कारिज्ज तप्पइट्ठाणं ।
विहिपूयाइविहाणं विहिणा थुइथुत्तपणिहाणं ।।१६५।।

तस्य जिनबिम्बस्य तावदादौ **निर्म्माणं विधिना** लौकिकलोकोत्तरशास्त्रसंवादपूर्वं निर्दोषदलेन मानोन्मानप्रमाणलक्षणव्यञ्जनोपेतस्य प्रसादनीयस्य कर्तुः कारयितुः प्रतिष्ठापकस्य वाप्युदयहेतो-रर्हद्बिम्बस्य निर्म्माणं विदधीत ।। यतः -

[1]**पासाईया पडिमा लक्खणजुत्ता समत्तकत्तव्वा ।**
जह पल्हाएइ मणं तह निज्जरमो वियाणाहि ।।१।। [व्यवहारभा. गाथा-२६३५]

तथा **विधिनै**वागमोक्तप्रकारेणैव **तस्य प्रतिष्ठापनं** प्रतिष्ठाविधिं **कारयेत्** । विधिहीने हि प्रतिष्ठाकर्म्मणि बिम्बानामसकलत्वान्न खलूत्तरोत्तरपूजाविधिरेधते । तथा पूजाविधिः **पूजाविधानं** पूर्वाचार्यनिदर्शितेन विधेयं । तद्यथा -

[2]**गन्धैर्माल्यैर्विनिर्यद्वहलपरिमलैरक्षतैर्धूपदीपैः [3]सान्नाज्यैः[घ्यैः]**
प्राज्यभेदैश्चरुभिरुपहितैः पाकपूतैः फलैश्च ।
अम्भःसम्पूर्णपात्रैरिति हि जिनपतेरर्च्चनामष्टभेदाम् ।
कुर्वाणा वेश्मभाजः परमपदसुखस्तोममाराल्लभन्ते ।।१।। [ ]

गाथा-१६४ 1. **तुला** - जिनगेहं विधायैवं शुद्धमव्ययनीवि च । द्राक् तत्र कारयेद् बिम्बं साधिष्ठानं हि वृद्धिमत् ।। - द्वा. द्वा. ५/१० ।।

गाथा-१६५ 1. **छाया** - प्रासादिका प्रतिमा लक्षणयुक्ता समस्तालङ्करणा । यथा प्रह्लादयति मनः तथा निर्जरां विजानीहि ।। "लक्खणजुत्ता पासादीया समत्तलंकारा पल्हायति जह मणं तह निज्जरमो वियाणाहि ।।१८९।। इति व्यवहारभाष्ये षष्ठोद्देशके गाथा । सम्बोधप्रकरणे-१/३२२ ।।

2. **तुला** - योगशास्त्रतृतीयप्रकाशे ११९ श्लोकस्य वृत्तौ ।

3. **तुला** - **"सान्नाज्यैः** यो. शा. ३/११९ मु. । "संपूर्वाद् नयतेर्हविषि समो दीर्घत्वं च - सान्नाय्यं हविः" इति सिद्धहेम० बृहद्वृत्तौ ५/१/२४ "हविः सान्नाय्यम् ... ।।८३१।। ... हव्यपाकः पुनश्चरुः ।।८३३।। हव्यस्य पाको हव्यपाकः । चर्यते भक्ष्यते चरुः पक्वं होतव्यम्" - इति स्वोपज्ञवृत्तिसहिते अभिधानचिन्तामणौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा **विधिनैवाप्तप्रणीतयुक्त्यैव** ते श्रीजिन**स्तुतिस्तोत्रप्रणिधानं** विदध्यात्, तत्र स्तुतयः-प्रणिपातदण्डकचतुर्विंशतिस्तवश्रुतस्तवसिद्धस्तुतिप्रभृतयो याश्च चैत्यवन्दनावसरे कायोत्सर्ग-प्रान्तेषु दीयन्ते, स्तोत्राणि च महार्थान्युदारबन्धानि सद्भूतगुणानुगतानि भक्तामरादीनि, प्रणिधानं-जिनानामेव भगवतां छद्मस्थकेवलिसिद्धत्वाद्यवस्थाऽनुस्मरणं, सर्वमेतदन्यदपि यात्रास्नात्रादि-कृत्यजातं विधिपूर्वमेव कुर्वीत । अविधिना हि विधीयमानं सत्कर्म्मापि मन्दाग्नेः परमान्नभोजनमिव प्रत्युतानर्थाय जायते ।।१६५।।

अथ किमर्थमयमियान् विधिविधाने किलादर इति चेत्? तदाह -

[1]**धन्नाणं विहिजोगो विहिपक्खाराहगा नरा धन्ना ।**
विहिबहुमाणी धन्ना विहिपक्खअदूसगा धन्ना ।।१६६।। [दर्शनशुद्धिप्रकरण गा. २८]

विधिशब्दोऽत्र सर्वत्र समयोक्तयुक्तिवाची, अतो **धन्यानां** सुचरितसुकृतानामेव परिपूर्णो **विधियोगः** संपद्यते । तथा तस्य **विधिपक्षस्याराधका** यथोक्तकारिणश्च **नरा धन्याः** । तथा येषां तथाविधकुसामग्रीसङ्गमेन विधियोगविधिपक्षसमाराधनलक्षणं द्वितयं नोपपद्यते, केवलं विधौ बहुमानमनुमोदनं विदधति, तेऽपि **विधिबहुमानिनो धन्या** एव । अथ कथञ्चित् कर्म्मगुरुत्वादिना विधिबहुमानविधानमात्रस्याप्यसम्भवः केवल**मदूषकत्व**मात्रमेव **विधिपक्षस्य** येषां तेऽपि **धन्या** एव । विधिहीना विध्यनाराधका विध्यबहुमानिनो विधिपक्षदूषकाश्च नराः सर्वथाऽप्यधमा एवेति, कथं माऽस्तु विशुद्धधियां विधावादरः ? इति ।।१६६।। तथा -

सुयसंघतित्थपमुहं सव्वं तित्थंकरेहिं ताव कयं ।
तस्स पडिच्छंदंमी कयंमि सुकयं कयं सयलं ।।१६७।।

किल **सर्वमप्येतद्** भगवद्भि**स्तीर्थकरैस्तावत्कृतम्** । किं तद्? इत्याह - **श्रुतसङ्घतीर्थ-प्रमुखम्** । तत्र श्रुतं-द्वादशाङ्गगणिपिटकम्, सङ्घः-साधुसाध्वीश्रावकश्राविकारूपः, तीर्थं-प्रवचनं प्रथमगणधरो वा । तदेतदखिलं तीर्थकृद्भिर्निर्मितम्, अर्हन्मूलत्वादेतत्प्रवृत्तेः, **तस्य** च भगवतस्तीर्थपतेः **प्रतिच्छन्दे** प्रतिमारूपे **निर्मिते** किल प्रतिमाकारकेणैव **सकलमपि** पूर्वोदितमन्यदपि **सुकृतं प्रवर्त्तित**मित्यहो **'जिनबिम्बकारयितुः सुकृतसन्ततिः'** इति ।।१६७।।

गाथा-१६६ 1. **तुला** - सम्बो० स० गा. १२४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ किंमय्यः किलामूरर्हत्प्रतिमाः कर्त्तव्यास्तदाह -

वेरुलियफलिहविद्दुम - पमुक्खरयणेहिं सेलधाऊहिं ।
धन्ना जयंमि कारियजिणपडिमा हुंति अप्पडिमा ।।१६८।।

एवंविधाः केचन **जगति धन्याः** पुमांसो भवन्ति । [1]किंविशिष्टाः ? **कारितजिनप्रतिमाः** विनिर्मितार्हत्प्रतिकृतयः । कैर्दलैः ? इत्याह - **वैडूर्यस्फटिकविद्रुमप्रमुखैः** षोडशजातिरूपैरपि **रत्नैः** तथा **शैलधातुभिः** । तत्र शैलः-पाषाणः, धातवः-स्वर्णरूप्यपित्तलाद्यास्तैः, प्रस्तावाद् दारुमृदादिभिश्च यदुक्तम् -

[2]**सन्मृत्तिकामलशिलातलरूप्यदारु - सौवर्णरत्नमणिचन्दनचारुबिम्बम् ।**
कुर्वन्ति जैनमिह ये स्वधनानुरूपम्, ते प्राप्नुवन्ति नृसुरेषु महासुखानि ।।१।। [ ]

अत एतत्प्रायैर्दलैः कारितजिनप्रतिमाः सुकृतिनोऽप्रतिमा निरुपमा **भवन्ति** । विरोध छायया चैतत् पदद्वयम्, ये किल कारितजिनप्रतिमास्ते कथमप्रतिमा भवन्तीति परिहारस्तु व्याख्यात एव ।।१६८।। किञ्च -

अइदुल्लहं पि बोहिं जिणप्पडिमाकारिणो लहु लहंति ।
देवाहिदेवपडिबिम्बकारओ जह सुवन्नयरो ।।१६९।।

न केवलं **जिनप्रतिमाकारिणां** जगत्यनन्यसामान्यत्वमेव गुणः, किन्तु ते **बोधिं** सम्यक्त्वलाभरूपामपि **लघु** शीघ्रं **लभन्ते** । किम्भूताम्? **अतिदुर्लभां** सुदुष्प्रापामपि । कथमिदमवसीयत इति चेत्? तदाह - यथेति दृष्टान्तोपन्यासे । **यथा** स **देवाधिदेवप्रतिबिम्बकारकः कुमारनन्दीसुवर्णकार**स्तद्वदिति । सम्प्रदायगम्यश्च सुवर्णकृत् । स चाऽयम् -

।। जिनबिम्बकारककुमारनन्दीसुवर्णकारकथानकम् ।।

अत्थित्थ भरहवासे वासे नीसेसउत्तमनराणं । परचक्कनिप्पकंपा चंपानामेण वरनयरी ।।१।।
तत्थ य कुमारनंदी मंदीकयधणयधणफडाडोवो । निवसइ सुवन्नयारो पयईए चेव सवियारो ।।२।।

गाथा-१६८ 1. **तुला -** जिनबिम्बस्य तावद्विशिष्टलक्षणलक्षितस्य प्रसादनीयस्य वज्रेन्द्रनीला-ञ्जन-चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त-रिष्टा-ऽङ्क-कर्केतन-विद्रुम-सुवर्ण-रूप्य-चन्दनोपल-मृदादिभिः सारद्रव्यैर्विधापनम् ।।
- योगशास्त्रतृतीयप्रकाशे श्लोक-११९ वृत्तौ ।।

2. **तुला -** योगशास्त्रतृतीयप्रकाशे-११९ श्लोकस्य वृत्तौ ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जं जं कन्नं पासइ रूववइं तीइ तीइ पियराणं । दाऊण कणयसयपंचयं स परिणेइ अवितित्तो ।।३।।
एवं परिणंतेणं तेण वरपिययमाण संघडिया । पंचसया पासाए संठविया एगथंभम्मि ।।४।।
कस्स वि अवीससंतो ईसालुत्तेण चत्तपरकिच्चो । रत्तिंदिणमणुभुंजइ ताहिं समं जुव्वणरहस्सं ।।५।।
इत्तो य पंचसेलगदीवाओ दुन्नि वंतरसुरीओ । हासा तहा पहासा कयाइ नंदीसरे दीवे ।।६।।
नियपिययमेण सह विज्जुमालिणा पिक्खणक्खणं काउं । पुरओ वेमाणियसुरवराण चलियाउ ठिइवसओ ।।७।।
गंतूण नियत्ताणं आउसमत्तीइ पिययमो ताणं । सहस ज्झिय निव्वाणो पडुपवणेणं पईवु व्व ।।८।।
तव्विरहविहुरियाओ ताओ चिन्तन्ति मणुयलोगम्मि । थीलोलं कंपि नरं दुग्गाहेमो सरूवेणं ।।९।।
अचिरेण होइ जेणं अम्हं सामि त्ति पेहमाणीओ । पिक्खंति एगथंभे पासाए तं सुवन्नयरं ।।१०।।
पंचहिं सएहिं सह पिययमाण करिणीण जूहनाहं व । विलसंतं चिंतंति य जुग्गो एसो धुवं अम्हे ।।११।।
जो इत्तियमित्ताहिं कामिज्जंतो वि कामिणीहिं सया । न हु तिप्पइ सो खुब्भइ निब्भंतं दंसणेण म्हं ।।१२।।
इव चिंतिऊण दिव्वं नियरूवं पयडिऊण तस्स पुरो । बहुहावभाववि्भमपुव्वं पिक्खंति तं ताओ ।।१३।।
तत्तो तग्गयचित्तो पुच्छइ तुज्झे कओ व काओ वा । पभणंति ताओ नणु देवयाओ अम्हे मुणसु मणुय ! ।।१४।।
तत्तो पत्तो मोहं झत्ति इमो लद्धचेयणो पुणो पुणवि । अच्चत्थं पत्थिंतो तो गच्छंतीहिं सो भणिओ ।।१५।।
जइ अम्हेहिं कज्जं तो इज्जसु पंचसेलदीवम्मि । इय भणिउं गयणयले उप्पइयाओ सुरवहूओ ।।१६।।
दाउं कुमारनंदी वि महरिहं पाहुडं नरिन्दस्स । उग्घोसावइ पडहं एरिसउग्घोसणापुव्वं ।।१७।।
जो पंचसेलदीवे कुमारनंदिं कहं पि पाउणइ । दीणाराणं कोडिं सो लहइ इहेव अविलंबं ।।१८।।
सोऊण तं च छित्तो पडहो एगेण तत्थ थेरेण । कारावियं च पगुणं सुवन्नकाराउ बोहित्थं ।।१९।।
पूरावियं च बहुविहपत्थयणोहिं मणुन्नरूवेहिं । दविणं च नियसुयाणं दव्वावियं तेण सव्वं पि ।।२०।।
आरूढेसुं दोसु वि उत्तंभियसियवडं तओ झत्ति । जलहिजलंमि पयट्टं जाणं गयणे विमाणं व ।।२१।।
अह दिन्नदिणे भणिओ सुवन्नकारो स तेण थेरेण । पिच्छसि पुरओ नग्गोहपायवं सेलपायम्मि ।।२२।।
खणमित्तेणं जाणं तलम्मि एयस्स वच्चिही एयं । तइया तुममुवउत्तो लग्गिज्ज इमस्स साहाए ।।२३।।
रयणीए इत्थ तिपया भारुंडा पक्खिणो महाकाया । दीवाउ पंचसेलाउ इंति निच्चंपि सयणत्थं ।।२४।।
एगस्स कस्सइ तुमं मज्झिमचरणंमि ताण लग्गिज्ज । निविडकडच्छियकन्नो कयगाढपरिग्गहो बाढं ।।२५।।
उट्ठीणेसु पभाए तेसु तुमं पंचसेलदीवम्मि । वच्चिहिसि निव्विलम्बं उवउत्तो एगचित्तो य ।।२६।।
एयं च जाणवत्तं तओ परं निवडियं महावत्ते । नियमा विणस्सिही ता अपमत्तो होसु तं भद्द ! ।।२७।।
इय जंपिराण ताणं संपत्तं झत्ति तत्थ तं जाणं । विहियं तहेव सव्वं सुवन्नयारेण थेरुत्तं ।।२८।।
पत्तो य पंचसेले हासपहासाण मंदिरे य इमो । दट्ठूण ताण ऋद्धिं सविसेसं विम्हिओ हियए ।।२९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणिओ य ताहिं भद्दय ! इमेण देहेण नोवभुज्जामो । अम्हे ता मुयसु इमं अग्गिपवेसाइणा देहं ।।३०।।
होऊण पाणनाहो अम्हाणं तयणु दिव्वरूवधरो । विलससु सिच्छाइ तुमं भोए मणवंछिए इत्थ ।।३१।।
इय सोउं सोयंतो हा कह वञ्चामि कह करिस्सामि । तो करउडेण काउं मुक्को सो ताहि चंपाए ।।३२।।
पुट्ठो सविम्हएणं जणेण तो भद्द ! कह तुमं पत्तो । कह व नियत्तो दिट्ठं च किं तए भणइ तो सो वि ।।३३।।
दिट्ठं जं दट्ठव्वं जं वित्तं पंचसेलए दीवे । पसयच्छिचंदवयणे हा हासे पहासे य ।।३४।।
इय वियलं विलवंतो इंगिणिमरणत्थमुज्जमंतो य । मित्तेण नागिलेणं सुसावगेणं इमो भणिओ ।।३५।।
मित्त न जुत्तं एवं मरिउं तुह निंदिएण नणु विहिणा । तुच्छाण कामभोगाण कारणे दारुणफलाणं ।।३६।।
को नाम किर सयन्नो रयणं पिव माणुसत्तणं एयं । हारइ काणवराडगसमाण भोगाण कज्जेण ।।३७।।
भोगेसु चेव वंछा जइ तुह तहवि हु समायरसु धम्मं । मुक्खफलो नवरमिमो कामत्थफलो वि जं होइ ।।३८।।
तम्हा जिणिंदधम्मं रम्मं सम्मं समायरसु मित्त ! । मुञ्चसि जेण दुहाणं सुहाण तह भायणं होसि ।।३९।।
इय पन्नविज्जमाणो वि तेण सो विसयमोहिओ बाढं । मरिउं इंगिणीमरणेण पंचसेलाहिवो जाओ ।।४०।।
दट्ठूण नागिलो वि हु पसुमरणं तं नियस्स मित्तस्स । परिचत्तसव्वसंगो पव्वइओ सुगुरुपयमूले ।।४१।।
चरिऊण निक्कलंकं सामन्नं दढविरत्तचित्तो सो । मरिउं समाहिमरणेण अच्चुए सुरवरो जाओ ।।४२।।
इत्तो दीवे नंदीसरंमि संपत्थियाण जत्ताए । गाउं सुराण पुरओ हासपहासाउ चलियाओ ।।४३।।
भणिओ य विज्जुमाली नियययपिओ ताहिं गिन्हसु मुयंगं । सक्काएसो एसो सो जंपइ केरिसो सक्को ।।४४।।
जो देइ ममाएसं इय भणिरस्सेव तस्स तो मुरओ । सयमेव गले पडिओ मुत्तु व्व सकम्मपरिणामो ।।४५।।
पुणरुत्तं तम्मंतो ऊसारेउं स लज्जिरो मुरयं । भणिओ इमाहिं पिययम ! मा लज्जसु सज्जसु सकज्जे ।।४६।।
एयारिसकम्माणं एयारूवं जओ फलं होइ । गायव्वं अम्हेहिं वाएयव्वो तए मुरओ ।।४७।।
तहवि हु अणिच्छमाणस्स तस्स हत्था सयं चिय पयट्टा । कमसो सिढिलियलज्जो सो वि हु तं वाइउंलग्गो ।।४८।।
इत्थंतरम्मि नागिलसुरेण जत्तागएण सो दिट्ठो । मुणिओ य ओहिनाणेण एस सो मज्झ मित्तु त्ति ।।४९।।
तो नेहेण दयाए य पेरिओ जाव सो तमल्लियइ । ताव उलूउ व्व रविस्स तस्स तेयं असहमाणो ।।५०।।
दूरं इमो पलाणो तेण वि हेमंतदिणयरेणेव । संहरिउं नियतेयं भणिओ सो भद्द ! मं मुणसि ।।५१।।
पभणइ इमो वि को हं महड्ढिए जो सुरे न याणिस्सं । तत्तो नागिलरूवं पयडिय सो तं पुणो भणइ ।।५२।।
हे मित्त ! तया तुमए जिणिंदधम्मो न जं समाइन्नो । वारिज्जंतेण तहा अंगीकयमिंगिणीमरणं ।।५३।।
तस्स विवागेण तुमं पाडहिओ एरिसो समुप्पण्णो । तुह वेरग्गेण मए पडिवन्ना पुण सुमुणिदिक्खा ।।५४।।
तं पालिऊण सम्मं देवो हं अच्चुए समुप्पन्नो । इय सुणिय विज्जुमाली वज्जाभिहउ व्व जंपेइ ।।५४।।
हा कह मए न विहिओ रम्मो जिणनाहदेसिओ धम्मो । धिद्धी विसयपसत्तेण नियसिरे जालिओ जलणो ।।५५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आमरणन्तं एयं परपेसत्तं उवट्ठियं इन्हिं । ही कह निव्वाहिस्सं कस्स व पुरओ निवेइस्सं ।।५७।।
इय पलवंतो अज्जुयसुरेण आसासिओ इमो एवं । मित्त ! अइक्कंतपयत्थसोयणे को णु परमत्थो ।।५८।।
एयमिह पत्तयालं खत्तियकुंडंमि वज्ज तं नयरे । तत्थ य पासायवडिंसयस्स वरचित्तसालाए ।।५९।।
सव्वालंकारफुरंतकंतदेहं पि निग्गहियमोहं । गिहवासगयं पि विमुक्कसयलघरकज्जवावारं ।।६०।।
सिद्धत्थपत्थिवसुयं पिच्छसु पच्छिमजिणं महावीरं । भावजइत्तेण ठियं उवरोहा जिट्ठबंधुस्स ।।६१।।
सम्मं विभाविऊणं एगमणो तस्स सामिणो रूवं । जहदिट्ठं कुणसु तुमं चंदणकट्ठेण लट्ठेण ।।६२।।
तस्स पभावेण भवंतरंमि लहिउं सुदुल्लहं बोहिं । वियरसु भवुब्भवाणं दुक्खाण जलंजलिं मित्त ! ।।६३।।
अंगुट्ठपमाणं पि हु परमिट्ठीणं विणिम्मियं बिंबं । तिरिनरयगईण धुवं रुंभइ रुंदाणि दाराणि ।।६४।।
दोगच्चं दोहग्गं कुमाणुसत्तं कुदेवभावं च । सुहभावेणं जिणबिम्बकारिणो मित्त ! न लहंति ।।६५।।
ता सज्जसु इह कज्जे तुमं पि इइ विज्जुमालिणं भणिउं । अज्जुयसुरो सठाणे संपत्तो दित्ततेइल्लो ।।६६।।
खत्तियकुंडग्गामे हासपहासापई तओ गंतुं । पिच्छइ पणमइ भत्तीए धम्मज्झाणट्ठियं वीरं ।।६७।।
निउणं निरूविऊणं जगगुरुणो तं तहाविहं रूवं । हरियंदणदलममलं लेइ महाहिमवओ तयणु ।।६८।।
निम्मवइ चारुरूवं पडिमं जीवंतसामिणो तेण । अच्चेइ कंठदेसम्मि दिव्वमंदारमालाए ।।६९।।
अह अन्नचंदणेणं संपाडइ संपुडं स निव्विवरं । ठावेइ तत्थ देवाहिदेवपडिमं पयत्तेण ।।७०।।
करकलियसंपुडो जाव जलहिमग्गेण एइ ता नियइ । आछम्मासं उप्पायभमिरमेगं महाजाणं ।।७१।।
उवसंहरिऊण तओ उप्पायं झत्ति दिव्वसत्तीए । गयणगएणं भणिओ पोयवई तेण तियसेण ।।७२।।
भो भो भमिरं एयं कुलालचक्कं व पवहणं तुज्झ । संठवियं ताव मए तुमं पि नणु कुणसु मह वयणं ।।७३।।
गिन्हसु संपुडमेयं वज्जसु देसं च सिंधुसोवीरं । तत्थ पुरे वीयभए रायपहे संठविय एयं ।।७४।।
उग्घोसणं करिज्जसु लब्भइ देवाहिदेवपडिम त्ति । गिन्हेइ सायरं जो तस्स तए अप्पणिज्जमिणं ।।७५।।
न य भायव्वं तुमए एयस्स पभावओ जलहिमग्गे । खेमेण तुमं गमिहसि लहिहसि लाभं च जहइट्ठं ।।७६।।
सो वि हु महापसाओ त्ति जंपिरो संपुडं पडिच्छेइ । सीसेण जोडियकरो विन्नवइ इमं च तं तियसं ।।७८।।
तुज्झ पसाएण मए तियसुत्तम ! परमकारुणिय ! एसो । उप्पायमहापलओ लीलाए लंघिओ अज्ज ।।७८।।
ता नाह ! तुहाएसं संपुडविसयं तहेव विरइस्सं । अन्नो वि मज्झ दिज्जउ नियस्स पेसस्स आएसो ।।७९।।
भणियं च पंचसेलाहिवेण तुह हुंतु सिवयरा मग्गा । संपुडगहणेण तए सव्वं पि हु मज्झ नणु विहियं ।।८०।।
इय तं विसज्जिऊणं तियसो संपट्ठिओ नियय्यदीवं । वणिओ जलहिमुल्लंघिऊण कुसला तडं पत्तो ।।८१।।
गंतूण य वीयभए रायपहे संपुडं च ठविऊण । उग्घोसणाइ सव्वं तियसाइट्ठं कयमिमेण ।।८२।।
तावसभत्तो राया पत्तो य उदायणो सयं तत्थ । मिलिया य सइवकापिलमीमंसगसुगयदंसणिणो ।।८३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंभाणु त्ति हरु त्ति य विन्हु त्ति य तह तहागउ त्ति इमो । पभणंता तं संपुडमुग्घाडेउं पयट्टंति ।।८४।।
अइकढिणा वि कुढारा सियधारा सारसारसंघडिया । तम्मि पउत्ता भज्जंति झत्ति नवंगघडिय व्व ।।८५।।
[1]अच्छोडंति य संपुडमेगे सलिलेहिं मंतपूएहिं । जुंजंति मंतजुत्तिं परे तदुग्घाडणपडिट्ठं ।।८६।।
तहवि रहस्सं व कुलीणगोयरं पायडं न तं होइ । कज्जंमि दिव्वसज्झे वंझा नणु माणुसी किरिया ।।८७।।
आदिणयरोदयाओ मज्झन्हे वि हु न जा महीनाहो । भुवणम्मि एइ ताव य देवीइ पभावईइ तहिं ।।८८।।
निज्जुत्ता पडिहारी रन्ना वि हु तं विसज्जिउं देवी । तत्थेव समाहूया कहिओ सयलो वि वुत्तंतो ।।८९।।
सा पुण विवित्तचित्ता जाणियजिणसासणुत्तनवतत्ता । चेडगनरिंदधूया अहिणवधम्माण गुरुभूया ।।९०।।
भणियं च तीए सामिय विस्से वि हु एस विस्सुओ मग्गो । अन्नस्स नामगहणे न हु अन्नो दंसणं देइ ।।९१।।
देवाहिदेवमेयं हरिहरबंभाइनामधेएहिं । पभणंता दंसणिणो पावंति न दंसणं तेण ।।९२।।
जियरागदोसमोहो अरिहो देवाहिदेवसद्देणं । भन्नइ जयंमि नन्नो जहत्थसन्नो य सो भयवं ।।९३।।
जंपइ निवो पमाणं किमित्थ देवी भणेइ पञ्चक्खं । ता को इत्थ विलंबो देवाएसस्स सा भणइ ।।९४।।
तो रन्नाऽणुन्नाया सुइभूया जक्खकद्दमरसेण । अच्छोडेउं संपुडमिय विन्नविउं समारद्धा ।।९५।।
दुट्ठट्ठकम्मनिट्ठवण ! अट्ठवरपाडिहेरसुपइट्ठ ! । वरनाणनिलय ! देवाहिदेव ! मह दंसणं देसु ।।९६।।
इय भणिए तीइ महासईइ सहस त्ति संपुडं एयं । उग्घडियं दिणयरकिरणसंगमे कमलकोसं व ।।९७।।
अमिलाणदिव्वदामा पडिमा चरमस्स तित्थनाहस्स । पाउब्भूया तत्तो जणनयणाणं अमयवुट्ठी ।।९८।।
जयइ जिणसासणं चिय जस्स पभावा परिप्फुरइ एवं । इय तत्थ समुग्घुट्ठं मुइयहियएण लोएण ।।९९।।
जय तिहुयणिक्कवच्छल ! छलवज्जिय ! जियकसायभडवाय ! ।
जरजम्ममरणविरहिय ! हियदंसण ! जिणवइ ! नमो ते ।।१००।।
इय थोऊणं देवी पभावई पणमिऊण पुणरुत्तं । जंपइ पोयाहिवइं तं चिय धन्नो सि हे भाय ! ।।१०१।।
जेणेसा उवणीया तिहुयणचिंतामणिस्स जिणपहुणो । अप्पडिमा वरपडिमा कह णु तए पाविया एसा ।।१०२।।
तो तेणावि हु सव्वो कहिओ तल्लाभवइयरो तीए । दिव्वपडिम त्ति तत्तो सविसेसं पमुइया देवी ।।१०३।।
विन्नविऊण नरिन्दं उस्सुंको उक्करो स कारविओ । सयले वि हु नियदेसे दिन्नं अन्नं पि से वित्तं ।।१०४।।
सम्माणिऊण एवं विसज्जिओ पोयवाणिओ रन्ना । परमविभूईइ तओ पडिमा वि पवेसिया गेहे ।।१०५।।
विन्नविउं रायाणं देवीए कारिओ य पासाओ । फलिहदलेहि देवाहिदेवपडिमाकए तत्थ ।।१०६।।
तिक्कालं पि हु परिमलमिलंतफुल्लंधएहिं फुल्लेहिं । घुसिणघणसार[2]मयमयकालागुरुचंदणेहिं च ।।१०७।।

गाथा-१६९ 1. अच्छोड - (आ+छोट्य) सिंचना, छिटकना इति भाषायाम् । - पा. स. म. पृ. २२ ।।
2. मयमय=मृगमदः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूएइ परमभत्तीइ गेयनट्टाइयं च सयमेव । पयडेइ तस्स पुरओ पभावई भावओ निच्चं ।।१०८।।
सासयपूयाहेउं वियरइ राया वि सासणे तस्स । देवाहिदेवबिंबस्स भूमिगामागराइयं ।।१०९।।
एवं पभावईए पूइज्जंती विचित्तपूयाहिं । सा विज्जुमालिपडिमा वीयभए पुरवरम्मि ठिया ।।११०।।
पज्जोयपओगेणं ठाणंतरसंकमो जह इमीए । अप्पत्थुयं ति तं इत्थ न भणियं नेयमन्नत्तो ।।१११।।
इत्थं बिम्बं जीवतः स्वामिनोऽयम्, मित्रादेशात् कारयित्वाऽतिभक्त्या ।
उत्पन्नोऽपि प्रेष्यरूपे सुरत्वे, विद्युन्माली बोधिबीजं प्रपेदे ।।११२।।१६९।।

एवं सप्तक्षेत्रीं व्याख्याय तामेव निगमयन्नाह -

इय सत्तसु खित्तेसुं सुयपन्नत्तेसु वित्तबीयं जं ।
उप्पइ गिहीहिं तं भावसलिलसित्तं सिवप्फलयं ।।१७०।।

इत्यनन्तरोदितेषु **सप्तसु क्षेत्रेषु श्रुतप्रज्ञप्तेषु** समयप्रणीतेषु **वित्तबीजं यत् गृहमेधिभिरुप्यते, तत् भावसलिलेन** श्रद्धाजलेन **सिक्तं** सदनन्तरपरम्परप्रकारेण **शिवफलदं** सम्पद्यत इति ।

एवमियता प्रपञ्चेनोत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीयमूलद्वारे व्याख्यातमभयाऽनुकम्पाज्ञानभक्ति-लक्षणैश्चतुर्भिर्भेदैः सोदाहरणैः सहितमाद्यं दानप्रतिद्वारम् । ततश्च -

आद्यं तेष्वसुमत्समूहमनुगृह्णाति प्रियोत्पादनाद्,
दीनानाथसमुद्धृतौ धृतधुरं दानं द्वितीयं पुनः ।
तार्तीयिकमपाकरोति च जगत्यज्ञानजाड्यं महत्,
तुर्यं स्यादनुशीलितं च विधिना स्वर्गापवर्गप्रदम् ।।१।। किञ्च –

प्रपञ्चयति चातुरीं प्रथयति प्रभावोदयम्, मुदं वितनुते परामुपचिनोति शुभ्रं यशः ।
शमं नयति मत्सरं सुभगतां च दत्तेऽञ्जसा, निदानरहितं कृतं ननु तनोति दानं न किम् ।।२।। श्रीः ।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र-सूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीयमूलद्वारे प्रथमं **दानप्रतिद्वारं** समाप्तमिति ।।१७०।। श्रीः ।।

गतं दानद्वारम् । अधुना द्वितीयं शीलद्वारमुच्यते ।।

दाणगुणसंगओ वि हु गरुयारंभो वि भद्दजाई वि ।
सीलेण सोहइ नरो करि व्व कमपीवरकरेण ।।१७१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरः पुमान् पूर्वोदित**दानगुणसंगतोऽपि** प्रवर्त्तितचतुर्विधदानप्रकारोऽपि, तथा **गुरुतरारम्भोऽपि** गुरुतरा महेच्छजनोचिता आरम्भाः सत्कर्मोपक्रमा यस्य स तथा । तथा **भद्रजातिरपि** शशधरकरावदातकुलद्वयोपेतोऽपि **शीलेन** वक्ष्यमाणलक्षणेन **शोभते** श्रियमुद्वहति । क इव केन ? **करीव क्रमपीवरेण करेण** । यथा हि वारणपतिर्दानगुणेन निरन्तरमदधाराधोरणीवर्षेण सङ्गतोऽपि पर्वतनितम्बपरिणमनादिमहारम्भसुभगोऽपि भद्रजातिरपि क्रमपीवरेणोपर्युपर्युपचीयमानेन शुण्डादण्डेन दीप्यते तथा शीलेन पुमानपीति भावः ।।१७१।।

शीलमेव स्वरूपनिवेदनपुरस्सरमुपवर्ण्ययन्नाह -

सीलं अबंभचाओ नाओ इव चरणहरिणरायस्स ।
पसरइ जस्स मणवणे न हणइ तं मयणमायंगो ।।१७२।।

शीलशब्देन यद्यपि सदाचारादयोऽपि निगद्यन्ते, तथाप्यत्र [1]**शीलमब्रह्मत्यागो** मैथुनविवर्जनम्, तच्च **चरणमेव** दुष्कर्मकुरङ्गभङ्गसुभगत्वेन **हरिणराजः** सिंहस्**तस्य नाद इव** गुञ्जितमिव । **यस्य** सुकृतिनो **मनोवने** स्वान्तकान्तारे **प्रसरति, तं मदन** एव शीलवनोद्दलनप्रबलपराक्रमत्वेन **मातङ्गो** मदकलः स **नाक्रामति** । किमुक्तं भवति - यथा पञ्चाननननादमेदुरमरण्यं मातङ्गो नाभिभवति, तथा विमल-शीलालङ्कृतचित्तमङ्गिनमनङ्ग इति मनोभवत्वात् कामस्य ।।१७२।।

पुनः शीलमेवानुरूपकैर्योजयति -

सीलं सुहतरुमूलं सीलं नालं व नाणनलिणस्स ।
सीलं वम्महसूलं सीलं सालो वयपुरस्स ।।१७३।।

ऐहिकामुष्मिक**सुखमेव तरुस्तस्य शीलं मूलम्,** तन्मूलत्वात् सुखशाखिविस्तारस्य । तथा **ज्ञानमेव** तत्तदतिशयसौरभ्यसुभगम्भावुकत्वेन मुनिमधुकरनिकरसेव्यत्वेन [च] **नलिन**मिव **तस्य शीलं नालं,** तदायत्तत्वात् तत्शोभायाः । तथा **मन्मथस्य** सौख्यप्रमथनसमर्थत्वेन **शूलं शीलम्** । तथा **व्रतानि** प्राणातिपातविरमणादीनि, तान्येव सुलभसमस्तशस्तवस्तुस्तोमसंभृतत्वेन **पुरं तस्य** सकलोपद्रवविद्रावणप्रवणत्वेन **शीलं शालः** प्राकार इति ।।१७३।।

गाथा-१७२ 1. **शीलं** - मैथुनविरतिरुपमष्टादशविधम् । - धर्मसं० का. श्लो. १३ वृत्तौ ।।
दिव्यौदारिककामानां कृतानुमतिकारितैः । मनोवाक्कायतस्त्यागो ब्रह्माष्टादशधा मतम् ।।१।।
- यो. शा. प्र. १/३३

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साम्प्रतं शीलस्यैव दुष्पाल्यतामुल्लासयन्नाह -

बाहाहि जलहितरणं हुयवहजालोलिकवलणं तह य ।
असिधाराचंकमणं तुलाइ सुरसेलतुलणं च ।।१७४।।
अन्नं पि दुक्करं जं तं पि हु सुकरं कयाइ कस्सावि ।
पालणमिक्कं चिय निक्कलंकसीलस्स न हु सुकरं ।।१७५।।

किलैतावदपि तावज्जगति निरतिशयपुंसामत्यन्तदुष्करं । किं तद्? इत्याह-यत् **बाहुभ्यां** दोर्भ्यां **जलधितरणं** पारावारपरपारयानम् । **तथा हुतवहज्वालावलिकवलनं** ज्वलनकीलावली-लिहनम् । तथा **असिधाराचङ्क्रमणं** निस्तृंश(निस्त्रिंश)नेमिक्रमन्यासः । तथा **तुलया सुरशैल-तुलनम्** धटेन हाटकाचलोन्मानविधानम् । तथा **अन्यदप्युक्तदुष्करवर्गादत्यन्तदुष्करमपि यत्तदपि कदापि** कस्मिन्नपि देशे काले वा **कस्यापि** दिव्यशक्त्यादिपुरस्कृतस्य पुंसः सर्वमेव **सुकरं** सुनिर्माणम् । **केवलमेकस्य निष्कलङ्कस्य** वाङ्मनोविकारैरप्यमलीमसस्य **शीलस्याब्रह्मपरिहार-लक्षणस्य पालनमा**मरणान्तं निर्वाहः कस्यापि विवेकपरिपाकपेशलमतेरपि प्रायो **न सुकरम्,** ब्रह्मणोऽप्यत्र जिह्मितप्रभावत्वात् ।।१७४।।१७५।।

अथ कथमेवं शीलस्य दुष्पाल्यत्वमिति चेत् तदाह -

ससिणेहहिययजलिए वम्महदहणेऽभिमाणघणधूमे ।
सहसक्खो वि न पिक्खइ किच्चाकिच्चं किमु दुयक्खो ।।१७६।।

स्त्रीपुंसां परस्पराश्रयकामराग**स्नेहवत्** यत् **हृदयं,** तत्र **मन्मथ** एव शीलकाननप्लोषपटुत्वेन दहन इव **दहनस्तस्मिन् ज्वलिते** । किंभूते? **अभिमानघनधूमे** अभिमान एव घनो धूमो यस्य स तथा तस्मिन्, आभिमानिकरसानुविद्धत्वात् कामप्रवृत्तेः, एवंविधे च मन्मथधूमध्वजे ज्वलिते **सहस्राक्षोऽपि** विद्यमानदशशतलोचनः पुरन्दरोऽपि इदं **कृत्यमिदं** चाऽ**कृत्यमिति न पश्यति, किमुत द्व्यक्षः,** लोचनद्वयदुस्थः सामान्यः पुमान्, स्निग्धे ह्याश्रये द्विगुणं दीप्यते वह्निः सधूमश्च भवति, युक्तं च धूमध्यामलितदशदिशि कृशानावुदयिनि लोचनानां स्वविषयग्रहणापटुत्वम् । एवं च कृत्याकृत्ययोरुपादेयत्वहेयत्वानवगमे समीचीनैव दुःशीलतेति ।।१७६।।

कामिन्य एव विमलशीलप्रतिकूलस्य केलती(केलि)कान्तस्य संजीवनमतः प्रतिभयोत्पादनेन तासु प्रसक्तिमपाकुर्वन्नाह -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीणपओहरचच्चरतिवलीतिपहम्मि जइ मयच्छीणं ।
पुरिसो मणं पि खलिओ ता छलिओ मयणभूएण ।।१७७।।

पीनपयोधरचत्वरे त्रिवलीत्रिपथे च **यदि मृगाक्षीणां पुरुषो मनागपि** मनोविकारमात्रेणापि **स्खलितः** प्रबुद्धानुरागो जातस्तदा निश्चितं **मदनभूतेन** मन्मथपिशाचेन **छलित** एव, स्पृहणीयतमत्वात् पूर्वोदितसीमन्तिनीजनावयवानां, प्रस्खलत्येवाविवेकिनां सरागं चेतः, समुचितश्च चत्वरत्रिपथकेषु संचलने पुरुषस्य पिशाचच्छलः । यदुक्तम् -

मध्यत्रिवलीत्रिपथे पीवरकुचचत्वरे च चपलदृशाम् ।
छलयति मदनपिशाचः पुरुषं हि मनागपि स्खलितम् ।।१।। [ ] इति ।।१७७।।

पुनः कामविकारस्यैव स्फूर्त्तिं दर्शयति –

गंथत्थवियारे पत्थुयंमि एगे पसू परे विउसा ।
मारवियारंमि पुणो उभए वि पसु व्व दीसंति ।।१७८।।

ग्रन्थार्थविचारे प्रस्तुते शास्त्राभिधेयमीमांसायां प्रक्रान्तायाम् । **एके** अनभ्यस्तशास्त्रा विशेष-परिज्ञानशून्यत्वेन **पशव** इव लक्ष्यन्ते, **अपरे** तु दुर्भेद्यग्रन्थरहस्यप्रकाशनेन **विद्वांसः** प्रतीयन्ते, अतः शास्त्रविचारावसरे पशुत्वपण्डितत्वजनितं स्फुटामेवाऽस्ति तयोरन्तरम् । **मारविकारे** मन्मथोत्थविसंस्थुलतायामुपस्थितायां **पुनः** पशुः पण्डितश्च **द्वावपि पशू इव दृश्येते** । द्वयोरपि निर्विशेषं पशुक्रियाप्रवृत्तिदर्शनात्, अतः शास्त्रविचारपाण्डित्यं सदप्यसत्, प्रोद्भूतं हि मारविकारं यो मुकुलयितुमीष्टे स एव तत्त्वतो विद्वानिति भावः । किञ्च **'निकामं वाम एव कृत्स्नोऽपि कामव्यवहारः'** ।।१७८।। तथाहि -

विहुरंमि हुंति सरणं जं सबला एस विस्सुओ मग्गो ।
वम्महविहुरम्मि पुणो अबला सरणं ति अच्छरियं ।।१७९।।

निखिलेऽपि जगत्येष वक्ष्यमाणो **मार्गो विश्रुतः** प्रतीत एव । **यत् विधुरे** सङ्कटे सङ्कटिते **सबला** बलवत्तराः किलाबलानां **शरणं भवन्ति** । अस्य तु सत्पथप्रमथनस्य **मन्मथस्य विधुरे** प्रोद्भूते **यदबलाः शरणं** प्रपद्यन्ते **तदाश्चर्यम्,** जगत्प्रवृत्तिवैपरीत्यान्महच्चित्रम्, अथ च सीमन्तिनीचरणशरणा एव प्रायः कामिनो मन्मथव्यथां यापयन्ति, अतस्तत्त्वतः किं तेषां माहात्म्यमिति ।।१७९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः स्मरस्यैव निस्तृंशतां (निस्त्रिंशतां) व्यनक्ति -

कयकेसवेसपरियरपरिवत्ता निन्हवंति अप्पाणं ।
दंसणिणो हा तह वि हु वम्महवाहेण हम्मंति ।।१८०।।

किलामी **दर्शनिनो** न खलु दर्शनमुद्रानिमित्तं **केशवेषपरिकरपरिवर्त्तं** प्रकाशयन्ति । तत्र केशपरिवर्त्तो मुण्डत्वशिखाजटाधारणादिः, वेषपरिवर्त्तस्तु पीतश्वेतरक्तकौपीननिवसननग्नत्वादिः, परिकरपरिवर्त्तस्तु दण्डकमण्डलुस्फटिकपुष्करबीजाक्षमालादिः, अतो नेयं तेषां दर्शनमुद्रा, किन्तु मनोभवभये**नात्मानं निह्नोतुं** वेषपरिवर्त्तः । तत् किं स्यात्? तथा विधानेन तेषां किञ्चित् परित्राणं नेत्याह - **तथापि** कृतकेशवेषपरिकरवैकृता अपि पाखण्डिनो, **हा** इति खेदे, **मन्मथव्याधेन** स्मरमृगयुना **हन्यन्ते** ब्रह्मव्रतप्राणेभ्यः पृथक् क्रियन्ते, अतो मनसो वीतरागत्वमेव मनोभवाऽभिभवमूलबीजं न पुनर्दर्शनमुद्राङ्गीकार इति भावः ।।१८०।।

न चाज्ञानोपहतानामेव विषयेषु प्रसक्तिर्यावत् ज्ञानवतामपीति दर्शयन्नाह -

अमुणियविसयविवागा छागा इव ववहरंतु किमजुत्तं ।
अहह गुरुत्तं कम्माण मुणियतत्ता वि मुज्झंति ।।१८१।।

अज्ञातविषयविपाकाः परिणामदारुणत्वं विषयाणामजानत**श्छागा इव** पशव इव यद् **व्यवहरन्ति** विषयेषु प्रवर्त्तन्ते, तत्र **किमयुक्तम्,** अज्ञानस्यैव तेषां प्रवर्त्तकत्वात् । **अहह** इति खेदे । महदिदं मनसः क्लेशकारणं, यत् **ज्ञाततत्त्वा अपि** यथावद् विदितविषयविपाकवैरस्या अपि **मुह्यन्ति** मोहं यान्ति, तत्र **कर्म्मणां गुरुत्वं,** कर्म्मगुरुतैव तेषां विषयप्रवृत्तौ हेतुः, अत एवाकर्म्माण एव वीतरागा इति ।।१८१।।

एवमप्रतिहतेऽपि स्मरशासने लघुकर्म्मतया येषां सर्वसंयमोद्योगस्तान् प्रस्तौति -

धन्नाण मणे रमणीअमलियसीलंगरागसुभगम्मि ।
विलसइ चारित्तसिरी परिचत्तसवत्तिसंतावा ।।१८२।।

धन्यानामासन्नपर[म]पदानामेव **मनसि संयमलक्ष्मीर्विलसति** । कथम्भूते? **रमणीभिरमलितम**नुपमर्दितं यत् **शीलम**ब्रह्मत्यागस्तदेव स्वभावसुरभित्वेनाङ्ग**रागो** विलेपनं, तेन **सुभगे** स्पृहणीये । किम्भूता चारित्रश्रीः? **परित्यक्तसपत्नीसन्तापा** इतराङ्गनारागव्यासङ्गविवर्जिते हि

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यमिनां मनसि निःसपत्नमेतस्या विलसनमिति ।।१८२।।

अजिह्मब्रह्मव्रतोपनिषन्निष(ष्प)न्नमतीनेवं पुनः स्तौति -

दुद्धरमयरद्धयभिल्ल - भल्लिसल्लियमणे जणे जाण ।
भिन्नं न सीलकवयं अवयंसा ति ञ्चिय जयस्स ।।१८३।।

दुर्द्धरः सुरासुरैरपि दुर्वारो यो **मकरध्वजः** पुष्पधन्वा स एव विचित्रपत्रावलीवलयितकुच-शैलनिलयकान्ताकान्तारावनिनित्यनिवासदुर्ल्ललितत्वेन **भिल्ल** इव भिल्लस्तस्य **भल्लयः** पक्ष्मलाक्षी-कटाक्षश्रेणयः, ताभिः **शल्यितमनसि** विद्धहृदि **जने** चराचरे, **येषामुदग्रवैराग्यतरङ्गितचेतसां शीलमेव** ब्रह्मवपुःपालनप्रवणत्वेन **कवचं** कङ्कटं **न भिन्नं, त एवा**ऽस्य ससुरा-ऽसुर-नरस्य **जगतोऽवतंसा** मण्डनानि, तैरेव भुवनमिदं भ्राजत इति ।।१८३।।

अथ किमेवंविधाः पुमांसः केऽपि जगत्यभूवन्न वेत्याशङ्क्याह -

सच्चं पहीणरागा भयवंतो आसि इत्थ तित्थयरा ।
तयणुगुणो तेसि जओ पयासए संघसंताणो ।।१८४।।

सत्यं निःसंशय**मिहा**स्मिन् जगति भगवन्तः परमैश्वर्यसंपन्निलयास**तीर्थकृतः प्रहीणरागाः** प्रक्षीणप्रेमाणोऽभूवन् । **यत् तेषां सङ्घसन्तानस्तदनुगुणः** प्रतनुरागः **प्रकाशते** सर्वत्र प्रकटमेवोपस्तूयेत ।।१८४।।

तमेव दर्शयति -

सुव्वंति थूलभद्दो रायमई तह सुदंसणो सिट्ठी ।
सुस्साविया सुभद्दा तंमि इमे सीलदिट्ठंता ।।१८५।।

तस्मिन् अर्हतां सङ्घसन्ताने **अमी** प्रोच्यमानस्वरूपाः **शीलप्रतिपालने दृष्टान्ताः** समये **श्रूयन्ते** । कथम्? **स्थूलभद्रः** साधुषु । साध्वीषु च **राजीमती** । श्रावकेषु **सुदर्शनश्रेष्ठी** । **श्राविकासु** च **सुभद्रेति** उपलक्षणं चैते यावदेवम्प्रकाराः किलान्येऽपि भूयांसोऽभूवन्निति विविधसंविधा[न]कपवित्रं च **श्रीस्थूलभद्रस्वामिनश्च**रित्रमतस्तत् सामस्त्येनावश्यकचूर्ण्यादि-ग्रन्थेभ्योऽवसेयम्, इह तु शीलपालनदृष्टान्तमात्रमेव सङ्कटयिष्यते । तथाहि -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। शीलप्रतिपालने श्रीस्थूलभद्रकथानकम् ।।

उर्व्वीसर्वस्वभूतायां पूर्व्वस्यां दिशि पत्तनम् । अस्ति पाटलिपुत्राख्य - मनाख्येयसुखास्पदम् ।।१।।
तत्र विश्वजनानन्दी नन्द इत्यवनीपतिः । पतिव्रताव्रतं यत्र व्यधत्त वसुधा चिरम् ।।२।।
राज्येऽस्य स्वर्पतेर्वाचस्पतिवत् सचिवोऽभवत् । शकटाल इति ख्यातो विशालमतिवैभवः ।।३।।
विश्वप्रकाशजनक - मुदयाद्रेरिव क्रमात् । पुष्पदन्तनिभं तस्मात् पुत्रद्वयमजायत ।।४।।
स्थूलभद्रस्तयोर्ज्येष्ठः प्रष्ठः श्रेष्ठगुणश्रियाम् । श्रीकरेणोर्दृढालानः कनीयान् श्रीयकः पुनः ।।५।।
दन्तीव दन्तयुग्मेन नेत्रद्वन्द्वेन वक्त्रवत् । शुशुभे सचिवस्तेन तनयद्वितयेन सः ।।६।।
पुण्यपादपसम्भूतं भोग्यकर्मफलं महत् । भुञ्जानः स्थूलभद्रोऽस्थादुपकोशानिकेतने ।।७।।
पूर्यमाणधनः पित्रा तया चिक्रीड सोऽन्वहम् । नलकूबरवत् कामं रम्भयेवाकुतोभयः ।।८।।
तथा विलसतस्तस्य ययौ द्वादशवत्सरी । तदा वररुचिः सेहे पितरं नास्य मत्सरी ।।९।।
अनार्यो विप्रतार्याथ तं नन्दं मेदिनीपतिम् । बुद्धिशस्त्रेण विदधे यशःशेषं स धीसखम् ।।१०।।
विपन्नेऽस्मिन् विषण्णोऽथ महीनाथस्तदात्मजम् । बभाण श्रीयकं भ्रातर्गृहाण स्वपितुः पदम् ।।११।।
सोऽब्रवीदस्ति मे ज्यायान् स्थूलभद्रः सहोदरः । न मेऽधिकारः सत्यस्मिन् प्रदीपस्येव भास्वति ।।१२।।
द्वाःस्थेन स्थूलभद्रोऽथ समानीतः क्षितीश्वरम् । प्रणनाम नरेन्द्रोऽपि तस्मै मुद्रामढौकयत् ।।१३।।
देवालोच्य ग्रहीष्यामि मुद्रामिति तदीरिते । जगाद नृपतिः क्रीडोपवने मेऽत्र मन्त्र्यताम् ।।१४।।
गतस्तत्र विविक्तेऽसौ चिन्तयामास धीधनः । धर्म्मार्थकामाः संसारफलं तावच्छरीरिणाम् ।।१५।।
ऐहिकामुष्मिकस्वार्थ-प्रथनप्रवणेषु तु । पुंमर्थेष्वेषु नैकोऽपि नृपव्यापारिणां यतः ।।१६।।
भिन्नसन्धानदुर्ध्यानात् सन्धिविग्रहसङ्ग्रहात् । नीतौ छलप्रधानायां कथं स्याद् धर्म्मसम्भवः ।।१७।।
सामाद्युपायचिन्तायां पिशुनच्छिद्रमुद्रणात् । नक्तन्दिनं नृपोपास्त्या कुतस्त्या कामसङ्कथा ।।१८।।
उत्पाद्य कृत्रिमागांसि तैर्यदप्यर्ज्यते धनम् । दुरुदर्कं जलौकानामसृक्पानमिवात्र तत् ।।१९।।
पुमर्थसार्थशून्येन तीव्रपापानुबन्धिना । तदलं मे नियोगेन वियोगेन सुखश्रियः ।।२०।।
परार्थानामपि चेदात्मा परायत्तः करिष्यते । स्वार्थस्य सिद्धये किन्न स्वायत्तस्तद् विधीयते ।।२१।।
तातपादेषु जीवत्सु यत् सुखं स्वैरिणो मम । इदानीमात्तमुद्रस्य कुतः परवशस्य तत् ।।२२।।
सुखाय सेव्यते तावत् सावद्योऽयं गृहाश्रमः । न चेतदस्ति कार्यं मे गृहवासेन किं ततः ।।२३।।
इयत्कालं यथा क्षेपो ममाभूत् भोगभुक्तये । तथा साम्प्रतमप्यस्तु ननु संसृतिमुक्तये ।।२४।।
विमृश्येति महात्माऽथ स्वयमेवोज्जखान सः । पञ्चभिर्मुष्टिभिः केशान् क्लेशानिव भवोद्भवान् ।।२५।।
स्वरत्नकम्बलप्रान्तं छित्त्वा चक्रे रजोहतिम् । गृहीतयतिमुद्रोऽथ नरेन्द्रमिदमब्रवीत् ।।२६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजन् ! गृहीता मुद्रेयमलं मे मुद्रयाऽन्यया । इदमालोचितं धर्म्मे भूयास्त्वमपि तत्परः ।।२७।।
साधु साधु त्वया साधो सुपर्यालोचितं कृतम् । इति हर्षाद् ब्रुवाणेन प्रणेमे स महीभुजा ।।२८।।
धर्म्मलाभाशिषं दत्त्वा सत्त्वाबाधाविवर्जिते । पथि प्रतस्थे स्थिरधीः स्थूलभद्रस्ततः ततः ।।२९।।
विप्लाव्यास्मानसौ वेश्याऽवसथं न प्रयास्यति । इत्यालोकगतेनोच्चै-रालुलोके महीभृता ।।३०।।
दुर्गन्धशबसान्निध्येऽप्यविकूणितनासिकः । स पुद्गलपरीणाम - विज्ञस्तेनैक्षि सञ्चरन् ।।३१।।
नीरागं तमथो ज्ञात्वा पिप्रिये पृथिवीपतिः । गत्वा सम्भूतपादान्ते स्थूलभद्रोऽप्यधाद् व्रतम् ।।३२।।
सामाचारीप्रवीणोऽथ निरपेक्षो वपुष्यपि । दुस्तपं स तपस्तेपे कर्म्मकक्षाशुशुक्षणिम् ।।३३।।
कियत्यपि गते काले शकटालात्मजो मुनिः । आययौ पाटलीपुत्रं विहरन् गुरुभिः सह ।।३४।।
तदा प्रववृते तत्र त्रासितप्रोषिताङ्गिनः । अनङ्गरङ्गजीवातुः क्रमप्राप्तस्तपात्ययः ।।३५।।
प्रणिपत्याथ सम्भूतविजयं मुनयस्त्रयः । गृहीत्वा दुर्ग्रहान् जग्मुः पृथग् पृथगभिग्रहान् ।।३६।।
ययौ सिंहगुहामेकस्तेषु सर्ण्यबिलं परः । तृतीयः कूपमण्डूकं चतुर्मासीमुपोषिताः ।।३७।।
द्वयोस्तपःप्रभावेन शान्तौ [1]पारीन्द्रपन्नगौ । अप्रमत्ततयाऽन्यस्य मुमुदे जलदेवता ।।३८।।
ततश्च स्थूलभद्रोऽपि सम्भूतविजयं गुरुम् । गुरुभक्त्या नमस्कृत्य कृताञ्जलिरदोऽवदत् ।।३९।।
भगवद्भिरनुज्ञातः प्रणीतरसभोजनः । वर्षासु स्थातुमिच्छामि कोशावेश्मन्यहं प्रभो ! ।।४०।।
ज्ञात्वाऽस्य प्रणिधानेन योग्यतां रागनिग्रहे । तेनानुज्ञा ददे धुर्ये धुरमारोपयेन्न कः ।।४१।।
स मुनीन्दोस्तदादाय वचनं शकुनोपमम् । ययौ कोशागृहं साऽपि समायान्तं ददर्श तम् ।।४२।।
अचिन्तयच्च भग्नोऽयं नूनं व्रतमहाहवात् । सस्मार तेन मां विन्ध्यावनीमिव मतङ्गजः ।।४३।।
भोगलालितमेतस्य सुकुमारं स्वभावतः । वपुः क्व सहते कष्टं [2]कुकूलाग्निमिवाम्बुजम् ।।४४।।
अत्यन्तकर्कशेनासौ तपसा कर्शितोऽपि हि । मुञ्चति स्वं न लावण्यं बालेन्दुः कौमुदीमिव ।।४५।।
साध्वसौ विदधे भग्नो व्रतादत्र यदागमत् । ममेवाययमुष्याहमेव विश्रम्भभाजनम् ।।४६।।
इत्यादि चिन्तयन्ती सा गवाक्षादुत्ततार च । गृहगोपुरमेतस्याः स मुनिः प्रविवेश च ।।४७।।
ससम्भ्रमथादूरादुपसृत्य स्मिताननाः । मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिः स्वामिप्रतिपत्त्या तमब्रवीत् ।।४८।।
स्वागतं स्वामिपादानामद्य मे सुदिनं दिनम् । त्वद्दर्शनमभूद् यत्र मनोरथपथातिगम् ।।४९।।

गाथा-१८५ 1. **पारीन्द्र** - पारिः पशुः तस्य, तेषु इन्द्रः पारिन्द्रः । पृषोदरादित्वात् पारीन्द्रोऽपि । - अभि. स्वो. ना. श्लो. १२८४ ।।

2. **कुकूल** - तुषानल - फोतरानो अग्नि इति भाषायाम् । कूयते कुकूलः पुंक्लीबलिङ्ग "दुकूलकुकूल" ।। (उणा-४९१) ।। इति साधुः । - अभि. स्वो. ना. श्लो. ११०१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथैवानुगृहीतोऽयं जनः स्वैर्दर्शनामृतैः । कृत्यादेशेन केनापि तथैवाश्वनुगृह्यताम् ।।५०।।
स्थूलभद्रोऽब्रवीद् भद्रे ! त्वदा[3]ऽऽक्रीडवनालये । वर्षासु स्थातुमिच्छामि तवाबाधा न चेद् भवेत् ।।५१।।
प्रत्यूचे नाथ ! सर्वस्वनाथेनेदं किमीरितम् । प्राणा यस्य वशे तस्य बाह्यवस्त्वर्थना वृथा ।।५२।।
अनुज्ञातस्तयैवं स गृहोपवनसंश्रयम् । विलाससदनं तस्या भेजे संयमिनां वरः ।।५३।।
भोजनावसरे प्राप्ते प्रार्थितः स तयाऽग्रहीत् । सर्वेन्द्रियाह्लादकरमाहारमपि तद्गृहे ।।५४।।
व्रताधारस्य देहस्य दत्ताधारे मुनीश्वरे । धर्म्मध्याननिलीनेऽथ कोशा चेतस्यचिन्तयत् ।।५५।।
मनो मे हृतमेतेन पूर्वमस्यापि तन्मया । धनैर्गृहमिवापूरि हृदयं चास्य मे गुणैः ।।५६।।
विमुक्तगुरुगच्छः सत्रेकाकी मद्गृहालयः । सरसाहारसक्तश्च विरक्तः प्रायसो व्रते ।।५७।।
केवलं लज्जया भावं नाविर्भावयति स्वकम् । अहमेवापनेष्यामि व्रीडावरणमस्य तत् ।।५८।।
विचिन्त्येति चिरं सायमेव योषाजनोचितम् । विहितोदारशृङ्गारा शृङ्गाररसवाहिनी ।।५९।।
पुष्पाङ्गरागताम्बूलप्रभृतिप्राभृताञ्चिता । क्षोभाय स्थूलभद्रस्य स्थूलबुद्धिरथाचलत् ।।६०।। युग्मम् ।।
ददर्श च मुनिं दूरादन्तर्मुखविलोचनम् । मथिते मन्मथे जेयः कोऽन्तरारिष्वितीक्षितुम् ।।६१।।
लुठन्ती मुनिपादान्ते सालसं शुशुभेऽथ सा । भल्लीवात्मभुवो व्यस्तपतिता मुनिहृङ्कृतेः ।।६२।।
ससंभ्रमं स्नेहगर्भं सोपालम्भमथो मुनिम् । गणिकाग्रामणीरेषा वक्तुमित्युपचक्रमे ।।६३।।
दिष्ट्याद्य नाथ ! दृष्टोऽसि दृशोरमृतदृष्टिवत् । सृष्टिरद्य मम श्लाघ्या जघन्याऽप्यघनाशन ! ।।६४।।
विहाय मामशरणामेकां विरहविक्लवाम् । इयत्कालं परिभ्रान्तः क्व प्राणेश ! कृशोऽसि किम् ।।६५।।
तक्षितं मे वपुस्तीक्ष्णैः कृशमस्तु स्मराशुगैः । तव निष्ठुरचित्तस्य कृशत्वे हेतुरस्ति कः ।।६६।।
योषिदन्तरचिन्ता वा चित्ते तत्र गतो न किम् । धिगयं मेऽथवा जल्पः कल्पद्रुरसि जङ्गमः ।।६७।।
तथापि नाथ ! रुष्टास्मि मां विप्लाय गतस्तदा । दृष्ट्वा नरेन्द्रमेषोऽहमागतोऽस्मीति यत् किल ।।६८।।
यदि वाऽलमुपालम्भैर्भाग्यैर्मे त्वमिहागतः । निर्वापय वियोगाग्निमतः स्वैः सङ्गमामृतैः ।।६९।।
इति चाटूक्तिपीयूषकुल्याभिः प्लावितोऽप्यलम् । ववृधे तस्य धीरस्य धर्म्मध्यानधनञ्जयः ।।७०।।
स्मरज्यारवतुल्येषु व्यर्थीभूतेषु चादुषु । आविश्चक्रे विकारौघान् [4]रूपाजीवाङ्गिकानथ ।।७१।।
दृढमेव दृढीकर्त्तुं धम्मिल्लं माल्यगर्भितम् । उत्क्षिपन्ती भुजलते सा दोर्मूलमदर्शयत् ।।७२।।
सज्जयन्तीव कूर्प्पाससन्धिबन्धनजालिकाः । साक्षाच्चक्रे मुमुक्षोः सा वक्षः पीनोन्नतस्तनम् ।।७३।।

---

3. **आक्रीड** - आक्रीडन्तेऽस्मिन्नाक्रीडः । क्रीडोद्यान, प्रमदवन इति भाषायाम् । - अभि. स्वो. ना. श्लो. १११९ ।।
4. **रूपाजीवा** - रूपं सौन्दर्यमाजीवो यस्याः अथवा रूपेणाऽऽजीवति रूपाजीवा । वेश्या इति भाषायाम् । - अभि. स्वो. ना. श्लो-५३२ ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अङ्गभङ्गोपदेशेन तेन मध्यस्य तानवम् । सीत्कारिणीव दशनैर्ददंश दशनच्छदम् ।।७४।।
नीवीनिबिडनव्याजाद् गम्भीरं नाभिमण्डलम् । रतेरिव निधानं सा सोरुमूलमदर्शयत् ।।७५।।
कराङ्गुलीदलस्फोट - कर्णकण्डूतिजृम्भणैः । निःश्वासशुष्करुदितैर्हावभावानभावयत् ।।७६।।
स्मरसञ्जीवनैरेवं भावैरस्याः शरीरजैः । ग्रावाणोऽपि हि भिद्यन्ते किं पुनश्चेतनो जनः ।।७७।।
स्थूलभद्रे स्मरव्यालवैनतेये तु ते तदा । मुद्गशैले जलानीव नाभूवन् कार्यकारिणः ।।७८।।
अनुकूलानुपसर्गान् कारं कारं दिवानिशम् । निर्विन्ना स्वयमेवासौ मुनिमेवं व्यजिज्ञपत् ।।७९।।
नखोल्लिखनवद् वज्रे वज्रकर्कशमानसे ! । त्वय्यऽभूद् विफलोऽयं मे निखिलोऽपि ह्युपक्रमः ।।८०।।
अतस्त्वमेव धन्योऽसि स्तुत्यं वृत्तं तवैव हि । त्वयैव रत्नगर्भा भूः मनोभवमदापह ! ।।८१।।
अनुरक्तां पूर्वभुक्तामेकामेको निशान्तरे । कोऽन्यः किरति मामेवं त्वामृते दुर्द्धरव्रत ! ।।८२।।
अज्ञानचेष्टितं तन्मे क्षमस्व क्षमिणां वर ! । नातः परमहं किञ्चित् प्रतिकूलं करोमि ते ।।८३।।
प्रशान्तां तामिति मुनिः करुणावरुणालयः । विषयग्रामवैरस्यं प्रकाश्य प्रत्यबोधयत् ।।८४।।
सम्यक् सम्यक्त्वमूलानि व्रतानि गृहिणामसौ । जग्राहाभिग्रहं भूपाभियुक्तादितरे नरे ।।८५।।
अनुग्रहात् मुनेस्तस्य शान्तमिथ्यापथग्रहा । एवं सुश्राविका जज्ञे कोशावेश्याऽपि सा तदा ।।८६।।
इतस्ते मुनयः सिंहगुहासर्प्पबिलावटान् । पयोदसमयप्रान्ते परित्यज्याययुर्गुरुम् ।।८७।।
आसनादुत्थितैः किञ्चिदेते दुष्करकारकाः । इत्यालापसुधावृष्ट्या गुरुभिस्तेऽभिनन्दिताः ।।८८।।
तीर्णः प्रतिज्ञापाथोधेः स्थूलभद्रोऽपि कार्त्तिकीम् । राकातिथिमतिक्रम्य जगाम गुरुसन्निधौ ।।८९।।
सुहिताङ्गममुं नित्यप्रणीतरसभोजनात् । दृष्ट्वा ससंभ्रमं दूरमुत्थाय गुरवोऽवदन् ।।९०।।
एह्येहि वत्स ! लोकेऽस्मिन्नतिदुष्करकारक । स्थूलभद्रमहासाधो ! स्मरापस्मारहारक ! ।।९१।।
तच्छ्रुत्वा मुनयो दध्युः पूर्वाभिग्रहिणो हृदि । अहो लोकस्थितौ प्रीतिः कापि धर्म्मवतामपि ।।९२।।
दुष्करं किमसौ चक्रे नित्याशी चित्रवेश्मगः । हुं ज्ञातमथवा मन्त्रिपुत्रोऽयमिति कीर्त्यते ।।९३।।
इतीर्ष्याकलुषेष्वेषु विहरत्सु तथैव हि । वर्षाकालो द्वितीयोऽपि क्रमेण समुपाययौ ।।९४।।
ततः सिंहगुहासाधुः स्थूलभद्रगतेर्ष्यया । गुरून् पप्रच्छ वर्षासु स्थातुं कोशानिकेतने ।।९५।।
अनिर्वाहं विदन्तोऽमी तूष्णीं यावदवस्थिताः । तावदौत्सुक्यनुन्नोऽयमगमद् गणिकागृहम् ।।९६।।
वसतिं याचिता तेन ददौ पूर्ववदेव सा । दध्यौ च स्थूलभद्रस्य मत्सरेणायमाययौ ।।९७।।
द्रष्टव्यमस्य तद् धैर्यमिति सा विभ्रमैकभूः । विलासकणिकामेकामाविश्चक्रे मुनिं प्रति ।।९८।।
तावतैवोल्लसद्भ्रूकं दृष्ट्वा यावद् ययौ निशि । विसृज्य लज्जां मुनिना भोगार्थं तावदर्थिता ।।९९।।
बोधयाम्यमुमित्येषा बभाषे स्वकुलोचितम् । पणस्त्रियो वयं मुग्ध ! स्वाधीना धनिनां परम् ।।१००।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थस्ते कियतार्थेन लक्षेणेति तयोदिते । आचचक्षे पुनर्भिक्षुः क्व लक्षं भैक्ष्यभक्षिणाम् ।।१०१।।
क्लेशे प्रपातयाम्येनमिति सा तं पुनर्जगौ । नेपालं गच्छ तत्रास्ति भूपालः श्रावकः किल ।।१०२।।
सोऽपूर्वमुनये दत्ते लक्षार्घं रत्नकम्बलम् । श्रुत्वैवं सोऽप्यगात् किं न कुर्युः कामविडम्बिताः ।।१०३।।
दिनैः कतिपयैः प्रातः कृतकृत्यस्ततो मुनिः । प्रयत्नगोपितं तस्यै हृष्टोऽदाद्रत्नकम्बलम् ।।१०४।।
चिक्षेप तत्क्षणं वह्नौगृहश्रोतसि साऽथ तम् । तद् दृष्ट्वा मुनिरप्येनां सविषादमदोऽवदत् ।।१०५।।
प्राप्तं क्लेशशतैरेनं प्रत्यूहशतपालितम् । रत्नकम्बलमेवं किं विनाशयसि बालिशे ! ।।१०६।।
लब्धावकाशा कोशापि मुनिमूचे स्मिताननना । एतज्ज्ञानासि यत् ज्ञेयं तन्न जानासि किं मुने ! ।।१०७।।
वह्नौगृहसमा साऽहं व्रतं ते रत्नकम्बलः । कष्टात् प्राप्तं पालितं च विनिक्षिपसि किं मयि ? ।।१०८।।
वचसा तेन कोशाया मन्त्रेणेव महौजसा । शशामास्य मुनेः सद्योऽप्यपस्मारः स्मरोद्भवः ।।१०९।।
साधु साधु महाभागे ! बोधितोऽहं त्वयाऽधुना । विषमेषुविषावेग - मूर्च्छितः स्ववचोऽमृतैः ।।११०।।
धीरेण स्थूलभद्रेण का स्पर्धा विक्लवस्य मे । स्थिरेण सुरशैलेन तूलपूलस्य का तुला ।।१११।।
मिथ्यास्तु दुष्कृतं तन्मे दुर्ध्यानस्यास्य मिमितः । अनुमन्यस्व गच्छामि गुरुं त्वमपि मे गुरुः ।।११२।।
इति संप्रतिपन्नं तं क्षमयित्वा महामुनिम् । सा प्रणम्य च वर्षान्ते विससर्ज कृताञ्जलिः ।।११३।।
आलोच्य दुष्कृतं सोऽपि गुरुमूले निजं मुनिः । क्षमयित्वा स्थूलभद्रं संयमे सुस्थितोऽभवत् ।।११४।।
स्थूलभद्रचरित्रैस्तैः प्रबोध्य रथकारकम् । कोशापि सुस्थिता धर्म्मे क्रमात् सुगतिमासदत् ।।११५।।
चरणविटपिमूलं पालयित्वेति शीलम्, सकलसमयकोशं भद्रबाहोः प्रपद्य ।
गणधरमहिमानं प्राप्य च स्वायुषोऽन्ते, त्रिदिवपदमुदारं स्थूलभद्रः प्रपेदे ।।११६।।

देशितं लेशतः स्थूलभद्रचरितम् । साम्प्रतं राजीमतीज्ञातमुच्यते - ।। श्रीः ।।

।। शीलप्रतिपालने श्रीराजीमतीकथानकम् ।।

अत्थित्थ लवणजलनिहि - लहरिलिहिज्जंतकंतपायारा । सिरिवारवई नयरी सुरवइविणिउत्तधणयकया ।।१।।
तत्थ य वेयड्ढनगिंदकंदरापयडपसरियपयावो । सिरिनवमवासुदेवो कन्हो नामेण नरनाहो ।।२।।
पढमस्स दसाराणं समुद्दविजयस्स नंदणो तत्थ । बावीसमतित्थयरो अरिट्ठनेमी वसइ कुमरो ।।३।।
तत्थेव जायवकुले तणुब्भवो भोयवह्निणो वसइ । वग्गंतउग्गसेणो राया सिरिउग्गसेणु त्ति ।।४।।
पइपिम्मविडविपीऊससारणी धारणी पिया तस्स । अइमुत्तकंससिरिसङ्खभामपमुहो य संताणो ।।५।।
अवराइयाउ चविऊण पुव्वभवजसमईसुरो तइया । धूयत्ताए धारिणिदेवीकुच्छीइ ओइन्नो ।।६।।
सम्माणियदोहलया पडिपुन्नदिणेसु सोहणमुहुत्ते । लक्खणलंछियगाया जाया वरकन्नगा तत्तो ।।७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुयजम्मपमोयाओ वि अहियमहमहियमाणसो राया । वद्धावणयं कारइ तीइ कुमरीइ जम्मम्मि ।।८।।
सम्माणदाणपुव्वं समए परिपूइउं सयणवग्गं । दिन्नं रन्ना नामं सिरिरायमइ त्ति कन्नाए ।।९।।
परिकीलंती विविहं सवयाहिं नरवरिंदकन्नाहिं । सा मुयइ बालभावं सियपक्खे चंदलेह व्व ।।१०।।
गहिऊण कलाकोसं सयलं पि हु अह सरस्सई तीए । संकंता मणभवणं भुवणब्भुयभावसंवलियं ।।११।।
दट्ठुं अहिट्ठियं भारईइ तो तीइ वयणमंगाइं । आलिंगइ सव्वाइं जुव्वणलच्छी वि सच्छंदं ।।१२।।
दिसि दिसि विसप्पिरेहिं तीए लावन्नलहरिपूरेहिं । चामीयररसरसियं व सहइ सन्निहियगयणयलं ।।१३।।
कारणवसेण लीलाइ कुणइ सा जत्थ चक्खुविक्खेवं । नीलुप्पलदलपयरं व निवडए तत्थ निव्विवरं ।।१४।।
तीए मुहिंदुमंडल - लुलंतजुन्हाजलेण विमलम्मि । बहुलधवलाण पक्खाण अंतरं नज्जइ न भुवणे ।।१५।।
निक्खिवइ तीइ दिट्ठि अंगावयवंमि जम्मि जम्मि जणो । मंडलियचावदंडं तहिं तहिं वम्महं नियइ ।।१६।।
इय तीइ उव्वणे जुव्वणंमि समुवट्ठियंमि चिंतेइ । सिरिउग्गसेणराया जुग्गो एईइ को णु वरो ।।१७।।
इत्तो य सिवादेवीसमुद्दविजएहि पभणिओ कन्हो । जह तह अरिट्ठनेमिं पडिवज्जावेसु परिणयणं ।।१८।।
तेण वि नियदइयाउ सिरिरुप्पिणिसच्चभामपमुहाओ । भणियाओ नियदियरं उवरोहह पाणिगहणत्थं ।।१९।।
तो ताहिं विविहवेयड्ढभंगिसुभगाहिं लडहभणिईहिं । तह कहवि हु पन्नविओ उवरोहमहोअही भयवं ।।२०।।
जह मन्नइ परिणयणं मुणियं तं वइयरं तओ कन्हो । पत्थेइ उग्गसेणाउ रायमइकन्नयं अणहं ।।२१।।
कस्सेयं न हु रुइयं कस्स वि हियए मणोरहो न इमो । किंतु थिरं नियबंधुं करिज्ज इय भणिय सो देइ ।।२२।।
सोउं रायमई वि हु पुव्वभवब्भत्थनेहमोहेण । तम्मयहियया जाया विहिया य विवाहसामग्गी ।।२३।।
सुरअसुरखेयरेहिं नरनरनाहेहिं तयणु परियरिओ । चलिओ परिणयणत्थं अरिट्ठनेमी अकामो वि ।।२४।।
दट्ठूण पुरो वाडं कडुरडिरकुरंगसमयपसुजालं । जाणंतो वि हु सारहिमिय पुच्छइ परमकारुणिओ ।।२५।।
पसुणो इमे किमेवं अवरुद्धा नाह ! भोयणनिमित्तं । नणु कस्स तुम्ह पाणिग्गहणे मिलियाण सयणाणं ।।२६।।
तं सोउं ते सव्वे मोयावइ बंधणाउ भुवणगुरू । नियय्यरहं च नियत्तइ लहु सारहिणा पराहुत्तं ।।२७।।
तो दसहिं दसारेहिं केसवरामेहिं ठाइउं पुरओ । भणिओ जिणो किमेवं कुमार ! नणु चिट्ठियं तुमए ।।२८।।
जंपइ जयप्पईवो पसुणो जह मोइया मए एए । तुम्हाण बंधणाओ तह अप्पाणं पि मोइस्सं ।।२९।।
बंधणमुक्खो पुण सव्वसंगचाएण सो य दिक्खाए । तम्हा पडिवज्जिस्सं पव्वज्जं चेव निरवज्जं ।।३०।।
इय तम्मि जंपिरे मुच्छिरेहिं रुइरेहिं पलविरेहिं बहुं । रुद्धो खणं स बंधूहिं तत्थ भवबंधणसमेहिं ।।३१।।
भणिओ दसारसीहेण तयणु कन्हेण कोमलगिराए । कुमर ! न जुत्तो एवं बंधुजणो तुज्झ अवगणिउं ।।३२।।
जप्पज्जया जुगुच्छा तुह जाया ते विमोइया पसुणो । ता कुणसु पाणिगहणं पूरेसु मणोरहे अम्ह ।।३३।।
कमसो य भुत्तभोओ पव्वज्जं पि हु करिज्ज किमजुत्तं । तं सोउं भुवणगुरू वि जंपए सुणसु जउनाह ! ।।३४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारम्मि अणंते अणंतसो मरणजम्मणपराण । के के न बंधुणो नणु जीवा जीवाण इह जाया ।।३५।।
[6]जह संझाए सउणाण संगमो जह पहे य पहियाणं । सयणाणं संजोगा तहेव खणभंगुरा राय ! ।।३६।।
सव्वे सकज्जकंखी सव्वे सकडोवभोइणो जीवा । को कस्स इत्थ सयणो ममत्तमिह बंधणनिमित्तं ।।३७।।
तम्हा ममत्तमुच्छिंदिऊण महिऊण मोहमाहप्पं । परमपयंमि पसज्जह मा रज्जह निग्गुणंमि भवे ।।३८।।
इय भवविरागजणणीहिं परमसंवेगसारणीहिं तया । पन्नवणाहिं पन्नवइ बंधुवग्गं जिणो कहवि ।।३९।।
तत्तो लोगंतियसुरवरेहिं विन्नवियसंजमावसरो । संवच्छरियं दाणं नेमिजिणो दाउमारद्धो ।।४०।।
सोऊण वइयरं तं मुणिऊण य जिणवरं वयाभिमुहं । दुस्सहविरहासणिनिबिडताडिया रायमइकुमरी ।।४१।।
पुणरुत्तं मुच्छंती पुणरुत्तं पलविरी इमं भणइ । हा नाह ! अहन्नाए पुरावि मुणियं मए एवं ।।४२।।
जमहं तुज्झ अजुग्गा तिणमणिमाल व्व रायहंसस्स । पडिवन्नविवाहेणं तुमइ च्चिय किं नु वेलविया ।।४३।।
किन्नो पयलइ मेरू जलनिहिणो न हु मुयंति किं मेरं । तुम्हारिसा वि हु जए जइ पडिवन्नं न पालंति ।।४४।।
जणिऊणं विस्सासं आसा मुसुमूरिया तए मज्झ । वरमिह जच्चंध च्चिय न हु उक्खयचक्खुणो मणुया ।।४५।।
अहवा न तुज्झ दोसो दोसो संकप्पदइय मह चेव । तुह पणइणित्तजुग्गं न तवं तवियं पुरा जीए ।।४६।।
इच्चाइ पलवमाणी भणिया आलीहिं अलमलं मुद्धे ! । किं तेणं नीरसेणं लोइयववहारबज्झेण ।।४७।।
एयं पि नणु अयत्ने सयत्नजणसमुचियं ठियं तम्मि । जं एरिसचिट्ठेणं परिणिय न विडंबियासि तुमं ।।४८।।
पज्जुन्नसंबपमुहा संति महाबाहुणो जउकुमारा । अब्भत्थणासएहि पत्थिस्संती तुमं ते वि ।।४९।।
इय सोऊण सरोसा उब्भडभिउडी सहीउ सा भणइ । को एस नणु पलावो कुलप्पसूयाण तुम्हाणं ।।५०।।
संकप्पिओ मणे जो वयणेण य जंपिओ पिययमुत्ति । मुत्तूण तं पि अन्नं पि कंपि दइयं अहं काहं ।।५१।।
इयरतरूणं कप्पद्दुमेण एरावणेण य गयाणं । चिंतामणिणा उपलाण सामिणा किं च भिच्चाणं ।।५२।।
का अन्नकुमाराणं [7]समसीसी नेमिनाहकुमरेणं । ता मा पुणो भणिज्जह सुमिणेवि हु दुस्सवं एवं ।।५३।।
जइ मज्झ अहन्नाए लग्गो पाणी न पाणिगहणंमि । वयसमए वि हु तस्सेव नवरि मह लग्गए हत्थो ।।५४।।
इय काऊण पइन्नं रायमईए ठियाइ मोणेणं । ओहयसंकप्पाओ ठियाउ से सहयरीओ वि ।।५५।।
रायमईइ पइन्नं नाणेणं तह य लोयवाएणं । जाणंतो वि हु नेमी नीरागो चिट्ठइ तहेव ।।५६।।
दाऊणं वच्छरियं दाणं सुरअसुरखयरपुज्जंतो । पडिवन्नो पव्वज्जं उज्जितनगिंदसिहरम्मि ।।५७।।
चउनाणधरो धीरो देसेसुं आरिएसु इयरेसुं । विहरइ नेमी दुक्कम्म - मम्मनिम्महणतल्लिच्छो ।।५८।।
इत्तो कणिट्ठभाया अरिट्ठनेमिस्स तत्थ रहनेमी । अणुरत्तो रायमइं विविहोवाएहिं उवयरइ ।।५९।।

---

6. **तुला** - वैराग्यशतक गा. ३८ ।। तस्या गाथायाः चतुर्थपादः - तहेव खणभंगुरो जीव ! इति ।।
7. **समसीसी** (दे) स्पर्धा बराबरी इति भाषायाम् । - पा. स. म. पृ. ८६७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दियरु त्ति सरलचित्ता पडिच्छइ सा वि तस्स उवयारं । अणुरत्ता मम गिन्हइ एस त्ति विचिंतए सो वि ।।६०।।
अह अन्नया विवित्ते भणइ इमो सुयणु बंधुणा मज्झ । जं तुममेवं चत्ता अन्नाणं कारणं तत्थ ।।६१।।
को नाम किर सयन्नो चइज्ज दिट्ठं सुहं अदिट्ठकए । मा हुज्ज तारिसि ह्रिय तुमं पि सुवियारचित्तासि ।।६२।।
ता गिन्हसु मह पाणिं उवभुंजसु दिव्वजुव्वणारंभं । संसारकडुयविडविस्स महुरफलमित्तियं मुद्धे ! ।।६३।।
तं सोउं सा चिंतइ इय संकप्पो इमो ममं पावो । ओलग्गइ उवयरइ य धिरत्थु ता एयचरियस्स ।।६४।।
जुत्तीइ निवारिस्सं इमं ति परिचिंतिऊण अन्नदिणे । सा पियइ मु[सु]द्धदुद्धं अग्घायइ तयणु मयणफलं ।।६५।।
वमिऊण कणयथाले रहनेमिं भणइ पिवसु दुद्धमिणं । सो भणइ मंडलो हं किं जं वंतं पिविस्सामि ।।६६।।
अह जंपइ रायमई जइ एवं मुणसि मुद्ध ! ता कीस । नियजिट्ठभाउवंतं पि पत्थसे मं विवाहत्थं ।।६७।।
होऊण तस्स भाया पागयजणसमुचियं पयं पत्तो । किं रे मूढ ! न लज्जसि विमुक्कमज्जाय ! तस्सावि ।।६८।।
ता मा इज्जसु इमिणा मणेण मह मंदिरंमि इइ भणिओ । नियवसहपाडिओ इव रहनेमी जाइ नियगेहे ।।६९।।
अह चउपन्नदिणेहि वयगहणाओ गएहिं जयगुरुणो । पडिमाठियस्स रेवयगिरिंदसिहरम्मि रम्मंमि ।।७०।।
सुक्कज्झाणानलसंपलित्त - घणघाइकम्मकक्खस्स । विगयावरणमणंतं केवलनाणं समुप्पन्नं ।।७१।।
चलियासणेहिं चउसट्ठिसुरवरिंदेहिं कयसमोसरणो । ससुरासुराइ परिसाइ जयगुरु कुणइ धम्मकहं ।।७२।।
उज्जाणपालएहि विन्नत्ते नेमिनाणवुत्तंते । सुव्वन्नस्स दुवालस कोडीओ तेसि सड्ढाउ ।।७३।।
दाऊण पीइदाणेण सयलहरिकुलनरिंदपरियरिओ । वंदणवडियाइ गओ सह रामेणं तयणु कन्हो ।।७४।।
सोउं अरिट्ठनेमिस्स दुट्ठकम्मट्ठगंठिनिट्ठवणिं । वरधम्मदेसणं भव्वपाणिणो के न पडिबुद्धा ।।७५।।
वरदत्तप्पामुक्खा जाया गणहारिणो तया तत्थ । अज्जाउ अज्जजक्खिणिपमुहाओ निज्जियमोहाओ ।।७६।।
सुस्सावया य जाया समुद्दविजयाइणो नरवरिंदा । सिवदेविप्पमुहाओ सुसाविआओ नेमिस्स ।।७७।।
रायमई पव्वइया विरत्तचित्ता भवाउ पुव्विं पि । रहनेमिप्पमुहा वि हु सीसा सिरिनेमिणो जाया ।।७८।।
तित्थं पवत्तिऊणं सामी अन्नत्थ विहरिउं सुइरं । कालक्कमेण पुणरवि संपत्तो रेवयगिरिम्मि ।।७९।।
वासारत्तो पत्तो तया य तो समणसमणिपरियरिओ । तत्थेव ठिओ भयवं बोहिंतो भव्वपाणिगणं ।।८०।।
अह अन्नया गएसुं गोयरचरियाइ समणिसमणेसु । दुद्धरधारासारो वारिहरो वरिसिउं पत्तो ।।८१।।
तरुतलसेलगुहासुं जलजीवनिकायरक्खणरएसु । समणिसमणेसु सहसा इओ तओ लीयमाणेसु ।।८२।।
पव्वयगुहाइ जीए रहनेमि पुव्वमेव संलीणो । भवियव्वयावसेणं रायमई वि हु तहिं पत्ता ।।८३।।
अमुणिय तं तत्थ ठियं सा उवगरणाइं अंगलग्गाइं । उव्वाविउं पवत्ता रमणीयणपत्तजयपत्ता ।।८४।।
तो तीइ अंगुवंगाइं लडहलायन्नलच्छिललियाइं । दट्ठूण मयणतक्कर - परिमुसियविवेयसव्वस्सो ।।८५।।
रहनेमिमुणी लहु पयडिऊण अप्पाणयं पुरो तीए । कामिजणसमुचियाइं पयडइ चाडूणि भोगत्थं ।।८६।।
दट्ठूण तं अकम्हा पम्हुट्ठविवेगमागयं पुरओ । संगोविअंगुवंगा रायमई भणिउमारद्धा ।।८७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[8]कहन्नु कुज्जा सामन्नं जो कामे न निवारई । पए पए विसीयंतो संकप्पस्स वसं गओ ।।८८।।
वत्थगंधमलंकारं इत्थीओ सयणाणि य । अच्छंदा जे न भुंजंति न से चाइ त्ति वुच्चइ ।।८९।।
जे य कंते पिए भोए लद्धे वि पिट्ठि कुव्वई । साहीणे चयइ भोए से हु चाइ त्ति वुच्चइ ।।९०।।
समाइ पेहाइ परिव्वयंतो सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
न सा महं नोवि अहं पि तीसे इच्चेव ताओ विणइज्ज रागं ।।९१।।
आयावयाही चय सोगमल्लं कामे कमाही कमियं खु दुक्खं ।
छिंदाहि दोसं विणइज्ज रागं एवं सुही होहिसि संपराए ।।९२।।
पक्खंदे जलियं जोइं धूमकेउं दुरासयं । नेच्छंति वंतयं भोत्तुं कुले जाया अगंधणे ।।९३।।
धिरत्थु ते जसोकामी जो तं जीवियकारणा । वंतं इच्छसि आवेउं सेयं ते मरणं भवे ।।९४।।
अहं च भोगरायस्स तं च सि अंधगवन्हिणो । मा कुले गंधणा होमो संजमं निहुओ चर ।।९५।।
जइ तं काहिसि भावं जा जा दिच्छसि नारीओ । [9]वायाइद्धो व्व हढो अट्ठिअप्पा भविस्ससि ।।९६।।
तीसे सो वयणं सुच्चा संजयाइ सुभासियं । अंकुसेण जहा नागो धम्मे संपडिवाइओ ।।९७।।
एवं करिंति संबुद्धा पंडिया पवियक्खणा । विणियट्टंति भोगेसु जहा से पुरिसुत्तमु त्ति ।।९८।।
गंतूण जिणसयासे आलोएऊण नियदुच्चरियं । रहनेमिमुणिसीहो निहुओ सामन्नमणुचरिउं ।।९९।।
समए य घाइकम्मक्खएण उवलद्धकेवलालोओ । कयकिच्चो स महप्पा सासयठाणं समणुपत्तो ।।१००।।
राजीमत्यपि सङ्कटेऽतिविकटे निर्वाह्य शीलं तथा, निर्व्याजव्रतवारिणा च सुचिरं प्रक्षाल्य चेतोमलम् ।
शुक्लध्यानधनञ्जये ज्वलितवत्याधाय कर्मेन्धनम्, लब्ध्वा केवलमाससाद पदवीमद्वैतसौख्यास्पदाम् ।।१०१।।

व्याहृतं राजीमत्युदाहरणम् । अधुना सुदर्शनोपाख्यानमुच्यते ।। श्रीः ।।

।। शीलप्रतिपालने सुदर्शनकथानकम् ।।

अस्त्यङ्गविषयवसुधा - सुधांशुवदनाललाटिकाप्रतिमा । चम्पेति पुरी तस्यां दधिवाहनभूपतिरतीन्द्रः ।।१।।
प्रथितप्रियप्रसादादपरसपत्नीजनात् सदाप्यभया । परलोकादप्यभया नाम्नाप्यभया प्रिया तस्य ।।२।।
निःशेषपौरमुख्यः श्रेष्ठी तत्राभवद् ऋषभदत्तः । अन्वितसंज्ञा चासीदर्हद्दासी प्रिया तस्य ।।३।।
भूतकोऽभूत् तद्गेहे सुभगः स प्रतिदिनं वने गत्वा । चारयति तस्य महिषीः सुखेन निर्वहति तद्वृत्त्या ।।४।।
स कदापि दन्तवीणावादनविद्यागुरौ तुषारर्त्तौ । सह महिषीभिः प्रविशन् प्रदोषसमये पुरीमध्यम् ।।५।।

8. तुला - ८८ तः ९९ पर्यन्तानि श्लोकानि दशवैकालिकसूत्रे श्रामण्यपूर्विकाध्ययने गाथा-१-११ ।।

9. हढो वनस्पतिविशेषः उत्तराध्ययनसूत्र - अ. २२/४४ गाथामध्ये वाया इद्धो व्व हढो पाठः । दशवैकालिकश्रामण्यपूर्विकाध्ययनस्य गाथा-९ मध्ये वायाविद्धु व्व हडो पाठः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिसरभूमावेकं कायोत्सर्गस्थितं निरावरणम् । उपशममिव पिण्डस्थं महामुनिं वीक्ष्य हृदि दध्यौ ।।६।।
अहह हिमानीपाते सत्त्वानामशनिपाततुल्येऽस्मिन् । कथमाच्छादनविरहाद् यापयिता यामिनीमेषः ।।७।।
इति तस्य मुनेश्चिन्तां चिन्तामणिसन्निभां हृदि दधानः । शतयामामिव कथमपि स तां त्रियामामतीयाय ।।८।।
अविभातायामेव हि स विभावर्यामुपात्तमहिषीकः । समुपेत्य सत्त्वनिलयं तथैव वशिनां वरमपश्यत् ।।९।।
परितोषहषितरोमा संयमिनं यावदयमुपेयाय । द्रष्टुं मुनिमिव तावत् सहस्रकिरणोऽप्युदीयाय ।।१०।।
ध्यानावधिसंपूर्त्तावथ पदमाद्यं नमस्कृतेरुच्चैः । उच्चारयन् मुनीन्दुः समुत्पपात द्रुतं नभसि ।।११।।
ननु गगनगमनविद्या - पदमेवेति चिन्तयन् सुभगः । निशि दिवसे पथि गेहे गच्छंस्तिष्ठन् शयानश्च ।।१२।।
शुचिरप्युच्छिष्टोऽपि हि निविष्टहृदयः स तत्पदं पठति । पशुसहचरितमतीनां विवेकिता तादृशी कास्तु ।।१३।।
श्रेष्ठी कदाचिदेनं प्रोचे श्रुतमिदमहो त्वया कस्मात् । तल्लाभवृत्तमखिलं सोऽप्याख्यत् तदनु तुष्टोऽयम् ।।१४।।
परमेष्ठिनमस्कारं समस्तमध्याप्य चान्वशादेनम् । भद्र ! न केवलमस्माद् गगनगतिर्मन्त्रतः किमुत ।।१५।।
स्वर्गापवर्गयोरपि गतिरस्मादेव देहिनां भवति । किन्तूत्सि(च्छि)ष्टेनाऽयं पठनीयो न त्वया मन्त्रः ।।१६।।
व्यसनी व्यसनमिवासौ न मुमोचाऽध्ययनमस्य तु तथैव । व्यर्थः खलूपदेशः कदाग्रहग्रहिलिते मनसि ।।१७।।
अन्येद्युरम्बुवाहव्यतिकरसुभगांबरासु वर्षासु । महिषीरादाय ययौ स यावदुपनदि ततोऽकस्मात् ।।१८।।
जलपूरेणापूर्यत नद्याः श्रोतस्ततः स भीतमनाः । यावत् पश्यति तावत् सैरभ्यः परतटं जग्मुः ।।१९।।
आकाशगमनविद्याबुद्ध्याऽथोच्चारयन् नमस्कारम् । द्रुतमुत्पपात निपपात चान्तरा वारिणि स नद्याः ।।२०।।
तीक्ष्णमुखेनाखण्ड्यत खादिरकीलेन हृदयमस्य तदा । परमेष्ठिनमस्कारं मुमोच न तु वेदनार्त्तोऽपि ।।२१।।
मर्मणि निहतः कीलेन तेन स विपद्य पञ्चपदशरणः । अर्हद्दासीकुक्षावुत्पन्नस्तनयभावेन ।।२२।।
तार्त्तीयिके मासे समजनि गर्भानुभावतस्तस्याः । जिनपतिपूजनमुनिजनदानादौ दोहदः प्रवरः ।।२३।।
कल्पद्रुम इव सद्यः श्रेष्ठी तदखिलमकारयत्तुष्टः । सम्पूर्णदोहदोऽस्या गर्भः शुभसंभृतिर्ववृधे ।।२४।।
मासेषु नवसु दिवसेषु चार्द्धनवमेषु सा व्यतीतेषु । ग्रहनिवहे शुभशंसिन्युदयिनि कामं मुहूर्त्ते च ।।२५।।
मलयमही चन्दनमिव नन्दनवनमेदिनीव मन्दारम् । अर्हद्दासी सुषुवे शुभलक्षणलक्षितं तनयम् ।।२६।।
वर्द्धापनके श्रेष्ठी मासप्रमिते प्रवर्त्तमानेऽथ । शुभदर्शन इति तनयं नाम्नाऽपि सुदर्शनं विदधे ।।२७।।
न्यायोपात्तं धनमिव सुक्षेत्रारोपितं च बीजमिव । धर्म्म इव शुद्धचित्ते ववृधेऽथ सुदर्शनः क्रमशः ।।२८।।
दिनपतिरिव मध्याह्ने विमुक्तबाल्यः क्रमादृषभतनुजः । सुविशुद्धया स बुद्ध्या भेजे क्षमयेव जैनमुनिः ।।२९।।
स कलापीव कलापं कलाकलापं कुलोचितमवाप्य । सविशेषमेव शुशुभे वलक्षपक्षे सुधांशुरिव ।।३०।।
वनमिव वसन्तलक्ष्मीर्गगनं ज्योतिस्ततिश्च सायमिव । मदकलमिव मदलेखा तारुण्यश्रीरमुं भेजे ।।३१।।
वयसा कुलेन रूपेण गुणगणैः संज्ञया स्वभावेन । कन्यां मनोरमामथ परिणिन्ये ऋषभदत्तसुतः ।।३२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पित्रोरेव न केवलमानन्दकरः सुदर्शनः सोऽभूत् । पुरभर्त्तुः पौराणामपि निजनिर्म्मलगुणग्रामैः ।।३३।।
भूपतिपुरोधसा सह कपिलेनाकृत्रिमाऽभवत् प्रीतिः । तस्य न कस्य सुधांशुः प्रियाकरः किमुत कुमुदस्य ।।३४।।
विपणौ गृहेऽथ गोष्ठे नरपतिसदने दिने च रात्रौ च । अवियुक्तः कपिलोऽभूत् तेन छायेव देहस्य ।।३५।।
कपिलस्य चास्ति कपिलानाम्नी दयिता निसर्गतश्चपला । सा तमुवाच कदाचित् कालमियन्तं नयसि कुत्र ।।३६।।
सोऽप्यूचे प्रियसुहृदः सुदर्शनस्यान्तिके सदैवास्मि । कोऽयं सुदर्शनो ननु जजल्प कपिलोऽपि तां तदनु ।।३७।।
किं नालिकेरवसतेर्द्वीपात् त्वं नालिके ! समायाता । या वेत्सि नो सुदर्शनमपि विश्रुतमद्भुतैश्चरितैः ।।३८।।
पुरहूत इव महिम्ना यः कन्दर्पश्च रूपसम्पत्त्या । वाचस्पतिरिव बुद्ध्या शरदिन्दुरिवान्तरविशुद्धया ।।३९।।
उन्नतिगुणेन गिरिरिव गम्भीरतया तरङ्गिणीरमणः । चिन्तामणिरिव दानैः सुधेव मधुराक्षरालापैः ।।४०।।
गुणरत्नरोहणगिरेर्वरवर्णिनि वर्ण्यते कियदथाऽस्य । यस्यैकमेव शीलं तुलनां नाप्नोति केनापि ।।४१।।
श्रुत्वा कपिलादेवं कपिला चपलेन्द्रिया स्वभावेन । दध्रे श्रुतानुरागात् सुदर्शने दर्शनोत्कण्ठाम् ।।४२।।
अन्येद्युरवनिभर्त्तुर्निदेशतः प्रचलिते क्वचित् कपिले । छलमाप्य चिरात् कपिला सदने च सुदर्शनस्य ययौ ।।४३।।
अवदच्चैनं सुहृदस्तवाद्य केनापि गदविकारेण । महदपटुत्वं वपुषो नाप्नोति कथञ्चनापि रतिम् ।।४४।।
तेनैवाहं प्रहिता तवान्तिके त्वां द्रुतं समानेतुम् । आकर्ण्य तदुत्तस्थौ सुदर्शनः सम्भ्रमोद्भ्रान्तः ।।४५।।
अज्ञायि मया नायं कष्टं मित्रस्य वेदनातङ्कः । जल्पन्निति कपिलगृहं सुदर्शनस्त्वरितपदमाप ।।४६।।
क्व नु मेऽस्ति मित्ररत्नं सुदर्शनेनेति जल्पिते कपिला । प्रत्यूचे मध्येगृहमस्तीति विवेश सोऽप्यन्तः ।।४७।।
तत्रापश्यन्नेनं पप्रच्छ स्वच्छमानसः क्वास्ति । अन्तर्गर्भापवरकमस्ति निवाते प्रसुप्तोऽयम् ।।४८।।
प्रविवेश तत्र यावत् सुदर्शनः सत्रिरुध्य तावदसौ । द्वाराणि मध्यलीना पृष्टा तेन क्व कपिल इति ।।४९।।
कपिलेन किं विधेयं प्रतिजागृहि तावदत्र मां कपिलाम् । किं प्रतिजागरणीयं कपिलायाः स इति तामवदत् ।।५०।।
वक्षोजबाहुमूले गभीरनाभिनितम्बजघनानि । सुललितविचलितनेत्रव्याजेन व्यञ्जयन्ती सा ।।५१।।
स्मरशरजर्जरिताङ्गी स्खलदक्षरमार्षभिं बभाषेऽथ । कपिलाद् गुणनिवहस्ते यदादि सुन्दर ! मयाऽश्रावि ।।५२।।
पुष्पायुधस्तदाद्यपि मण्डलितोद्दण्डचण्डकोदण्डः । सुभग ! त्वदेकशरणामशरणवन्मां हहा हन्ति ।।५३।।
दिष्ट्या तदद्य सुन्दर ! कपटेनापि प्रवेशितः सदनम् । मदनोन्मादं तन्मे स्वसङ्गमन्त्रेण निगृहाण ।।५४।।
दध्यौ सुदर्शनोऽपि हि धिक् धिक् पटु कपटनाटकममुष्याः । केन व्याजेनाहं कियतीं सङ्क्रामितो भूमिम् ।।५५।।
प्रत्युत्पन्नमतिः स प्रत्यूचे किमिह सुन्दरि ! विरुद्धम् । अनुरागवतां किं पुनरनभिज्ञा त्वमसि मञ्जरिते ।।५६।।
आकारमात्रचित्रे त्वमर्कशलभोपमे मयि प्रीतिम् । प्रतिपन्नासि वृथा नन्वपण्डिते पण्डकोऽस्मि यतः ।।५७।।
तच्छ्रुत्वा सहसैव हि विगलितरागा विवृत्य सा द्वारम् । तमुवाच गच्छ गच्छ भ्रान्तास्मि कियच्चिरमपात्रे ।।५८।।
अपचक्रमे त्वरितं कूटाच्छुटितः कुरङ्ग इव सोऽथ । दध्यौ च साधु मुक्तः कियतैव हि दुर्गतिनिपातात् ।।५९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदतः परं परौकसि कदाचिदेकाकिना न गन्तव्यम् । न प्रत्ययस्य कार्यः स्त्रीवाचि स्वयमनालोच्य ।।६०।।
क्रूरासु राक्षसीष्विव नीतिष्विव च प्रपञ्चबहुलासु । चपलासु च विद्युत्स्विव न स्त्रीष्वतिगतिः कार्या ।।६१।।
विमृशन्निति स महात्मा जगाम निजमन्दिरं निरतिचारः । सविशेषधर्म्मा धर्म्माप्रमद्वरः समयमनयच्च ।।६२।।
अन्येद्युरिन्द्रमहसि प्रवर्त्तमाने वनेऽचलद् भूपः । आर्षभिकपिलोपेतः शशीव गुरुभार्गवानुगतः ।।६३।।
आरुह्य नरविमानं राज्ञी तत्राऽभया सकपिलाऽगात् । पुत्रैः षड्भिः सहिता मनोरमा चार्षभेः पत्नी ।।६४।।
दृष्ट्वा मनोरमामथ विस्मयविस्मेरलोचना कपिला । अवदत् केयं धन्या निरुपमरूपा सपुत्रा च ।।६५।।
अभयोचे किं मुग्धे ! सुदर्शनस्यापि वल्लभामेनाम् । नो वेत्सि भर्तृमित्रस्य तस्य विश्वप्रकाशस्य ।।६६।।
कपिलोचे यद्येषा सुदर्शनप्रेयसी तदा ह्यस्याः । विपुलं कलासु कौशलमेवं या नन्दनान् सुषुवे ।।६७।।
अभया प्राह किमेतत् प्रकाशितं कौशलं त्वयाऽमुष्याः । स्वाधीनभर्तृकाणां स्त्रीणां सुलभो हि सन्तानः ।।६८।।
कपिलाप्यवदत् सत्यं स्यादेवं यदि पतिः पुमान् भवति । षण्ढे भर्त्तरि यदभूदेवं तन्मे महच्चित्रम् ।।६९।।
अभयाह पण्डकत्वं कथमस्याः प्रियतमस्य ते विदितम् । कपिलापि स्वानुभवं सर्वं राज्ञ्यै तदाचख्यौ ।।७०।।
उपहस्य साऽवदत् तां षण्ढः स परं परप्रणयिनीषु । अस्यां तु पुष्पकेतुश्छलितासि ततः प्रवीणापि ।।७१।।
कपिला प्राह विलक्षा दक्षायां किमधिकं सखि ! त्वयि तत् । यद्यस्ति कौशलं ते सुदर्शनं तद् रमस्व ननु ।।७२।।
अवददवनीशपत्नी सविभ्रमं वीक्षितो मयाऽश्माऽपि । भजते मदनोन्मादं सचेतनः किमु पुमान् कामी ।।७३।।
नीत्वा वशे सुदर्शनमर्हसि वक्तुं सखि ! त्वमिदमेव । कपिले ! जानीहि मया सुदर्शनं दासतां नीतम् ।।७४।।
रतिपतिपताकिनीभिर्ललनाभिररण्यवासिनोऽनशनाः ।
मुनयोऽप्यवतार्यन्ते विषयाध्वनि विषयिणः किमुत ।।७५।।
न करोमि चेद् वशेऽमुं ज्वलनं प्रविशामि किं बहूक्तेन । इति ते मिथो ब्रुवाणे वनं गते तदनु सदनं च ।।७६।।
अभयाऽथ पण्डितायास्तदेव धात्र्याः प्रतिश्रुतं स्वस्य । कथयामास ततः सा पिधाय कर्णावदोऽवादीत् ।।७७।।
पुत्रि ! न सुन्दरमेतत् त्वया प्रतिज्ञातमात्मनोऽनुचितम् ।
चलति सुमेरुः स्थानात् सुदर्शनो न तु सदाचारात् ।।७८।।
ब्रह्माचरणोपनिषन्निषण्णमतयः सुसाधवो गुरवः । यस्य स गुरुशीलः सन्नब्रह्म निषेवते किमिति ।।७९।।
युवतिज्वलनसमीपे विलीयते मदनमिव मनो येषाम् । ननु तेऽन्ये पविकठिनः सुदर्शनोऽयं महासत्त्वः ।।८०।।
अन्येऽपि जिनमतज्ञाः परनारीं सोदरेति मन्यन्ते । स्वकलत्रमात्रतुष्टः सुश्राद्धशिरोमणिः किमयम् ।।८१।।
निगृहीतेन्द्रियविकृतिर्यतिरिव गृहवासमाश्रितोऽप्येषः ।
शक्येत कथय तत् कथमभिसर्त्तुमथोऽभिसारयितुम् ।।८२।।
बाहुभ्यामम्भःपतितरणं विधुधारणं च हस्तेन । प्रतिजानीते भुवि यः स सङ्गमोपायमेतस्य ।।८३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुशकाशालम्बनवत् प्रवाहपतने तथाप्युपायोऽयम् । यदयं पर्वदिनेषु प्रतिपद्य विशेषतो नियमम् ।।८४।।
शून्यागारमठादिषु तिष्ठत्येकः ततः कथञ्चिदपि । सञ्चार्यतेऽतिनिभृतं केनापि छद्मना गेहे ।।८५।।
अभयाह सुन्दरोऽयं ननु प्रकारः प्रपञ्चिते चास्मिन् । मम हस्तगतः स्थास्यति कियच्चिरं निर्विकारोऽयम् ।।८६।।
मातर्यतस्व तस्मादस्मिन् कार्ये धृतावधाना त्वम् । त्वदुपायस्यासाध्यं नेदं मम कौशलस्येव ।।८७।।
स्वीकृत्य पण्डितायां तथेति तत्राथ सावधानायाम् । समुपस्थितं स्वसमये तस्यां पुरि कौमुदीपर्व ।।८८।।
पटहाघोषणपूर्वकमुर्वीशः पुरजनानथादिक्षत् । सर्वर्द्ध्या सर्वैरप्यनुगम्योऽहं महस्यस्मिन् ।।८९।।
तच्छ्रुत्वा हृदि दध्यौ सुदर्शनः किमिदमाः परापतितम् । अयमिह राजादेशश्चातुर्मासिकमितः पर्व ।।९०।।
जिनबिम्बानां पूजनमर्हच्चैत्येष्वथो परीपाटी । समता पौषधमावश्यकानि कथमत्र भावीनि ।।९१।।
उपदामादाय ततो व्यजिज्ञपद् भूपतेः स्वसङ्कल्पम् । समनुज्ञातस्तस्थौ च भूभुजा भ्रातृकल्पेन ।।९२।।
कृत्वा समाहितमनाः पूजाचैत्यायनोपवासादि । धृतपौषधः स सायं चतुःपथे प्रतिमया तस्थौ ।।९३।।
ज्ञात्वा च पण्डिता तत् सर्वमुवाचाभयां भवति तेऽद्य । यदि पुनरुपाहितं हृदि किन्तु नृपो नानुगन्तव्यः ।।९४।।
सद्यः शिरोविबाधां विधाय साऽप्युत्तरं धराभर्तुः । तस्थौ व्याजविधाने निर्व्याजा योषितां हि मतिः ।।९५।।
सान्तःपुरपौरजने वनं गते तदनु मेदिनीदयिते । लेप्यमयीं स्मरमूर्त्तिं निधाय याने पुरुषदेश्यं ।।९६।।
आच्छाद्य पण्डितागाद् सिंहद्वारेऽथ यामिकैः पृष्टा । किमिदं गच्छति सापि प्रोचे देवी वनं न गता ।।९७।।
अपटुतया देहस्य स्मरादिदेवान् ततो गृहस्थैव । सा पूजयिष्यति ततः प्रतिमेयं याति मदनस्य ।।९८।।
अन्येषामप्यर्द्धास्त्रिदशानामिह समागमिष्यन्ति । तेप्यूचुरिमामेकां दर्शय यायास्ततोऽस्खलितम् ।।९९।।
कृत्वा तथेति सागाद् एवं द्वित्रीर्निनाय सुरमूर्त्तीः । अस्खलिताऽथ सुदर्शनमपि निन्ये यानमारोप्य ।।१००।।
धर्म्मध्याननिलीनं मुमोच सा तं पुरोऽभयादेव्याः । स्मरजीवातूनि ततः प्रारेभे साऽपि चाटूनि ।।१०१।।
सुभगा ! स्वामिगमनं ते भाग्यैस्त्वमभङ्गुरैरिहानीतः । चिररोपितो मनोरथतरुरद्य ममास्तु फलमाली ।।१०२।।
अपरिचितेऽप्यसुखार्त्ते कुर्वीत कृपां भवादृशाः सन्तः । स्मरविधुरितां त्वदर्थे किं मां न शमयसे कठिन ! ।।१०३।।
अत्याहितं यदि स्यान्मम त्वदर्थे तदा तपःकष्टैः । वनितावधोद्भवादपि न पाप्मनो मुच्यसे मूढ ! ।।१०४।।
मुञ्च तपोऽतिकठोरं सुकुमारां मामुपास्व सुविचार ! । इदमेव फलं तपसः स्वाधीनाः स्युर्यदेणदृशः ।।१०५।।
इति सा स्वचाटुजल्पैरप्यविकल्पान्तरं तमालोक्य । कोमलबाहुमृणालीद्वयेन परिषस्वजे सपदि ।।१०६।।
मण्डलितस्तनमण्डलमालिङ्गनमनु तदङ्गमङ्गानि । विन्यस्य सा स्मरार्त्ता कदर्थयामास भृशमेनम् ।।१०७।।
आविश्चकार यं यं कामस्योद्दीपनाय सा भावम् । स स धर्म्मध्यानस्य प्रदीपनायार्षभेरभवत् ।।१०८।।
जगृहे स तदाऽभिग्रहमस्मान्मे सङ्कटाद् विमुक्तस्य । पारणकमन्यथाऽहं मरणावधि निरशनो जातः ।।१०९।।
अभयाऽप्यथो विलक्षा दध्यौ जज्ञे कृशा निशा तावत् । तस्माद् यदि न प्रीत्या भीत्याऽपि वशं नयाम्येनम् ।।११०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति विरचितातिविकट - भृकुटीभीषणमुखी बभाषे सा । रे दुर्विदग्ध ! मधुरैव सर्वथाऽहं त्वया दृष्टा ।।१११।।
किमिह बहुभिः प्रलापैरनुकूलां चाटुकारिणीमेवम् । यदि मामरे न भजसे भजसे यममन्दिरं तर्हि ।।११२।।
एवं स्थितेऽप्यकम्पितहृदयेऽथ सुदर्शने निजागः सा । गोपायितुं नखाग्रैर्विलिलेख निजं वपुः पापा ।।११३।।
इति पूत्कार च हहा पराभवत्येष कोऽपि मां दुष्टः । तच्छ्रुत्वा च ससम्भ्रम-ममिलन्नथ यामिकास्तत्र ।।११४।।
दृष्ट्वा सुदर्शनं तेऽप्यस्मिन्निदमहह नैव सम्भवति । इति चकिताः क्षितिभर्त्तुर्व्यजिज्ञपन् व्यतिकरमशेषम् ।।११५।।
आकर्ण्य तन्नरेशः ससम्भ्रमः स्वयमुपागतस्तत्र । अभयाऽप्यवादिताऽपि हि रुदती जगतीशमिदमूचे ।।११६।।
स्वामिन् यावदिहाहं पूजाकर्म्मणि भृशं प्रसक्तास्मि । तावत् पिशाचवदसौ प्रविष्ट एवात्र ही दुष्टः ।।११७।।
अनवाप्य चाटुकोटिभिरभीष्टमेवं व्यचेष्टत च दुष्टः । उदितं मयाऽपि रुदितं बलमबलानां किमन्यदिह ।।११८।।
अस्मादिदमतिदुर्घटममृतद्युतिमण्डलादिवोल्कार्चिः । इति पप्रच्छ नरेन्द्रः सुदर्शनं हन्त किमिदमहो ।।११९।।
दध्यौ दयापरोऽयं मयोदिते सूनृते म्रियेतासौ । अकृतसुकृता वराकी निपतेदपि दुर्गतिं घोराम् ।।१२०।।
उपकारिण्युपकारः क्रियते ननु लौकिकी व्यवस्थेयम् ।
अपकारिण्युपकारः क्रियते यः स खलु सुकृतः स्यात् ।।१२१।।
जिनवचनभावितोऽहं समाधिमरणेन परभवगतोऽपि । प्रायः सुखी भविष्याम्यतो न किञ्चिद् वदिष्यामि ।।१२२।।
इति कृतमौने तस्मिन्नशङ्कत क्षितिपतिस्तदा दोषम् । प्रायेण पारदारिकचौराणामुत्तरं मौनम् ।।१२३।।
आदिक्षदथारक्षान् कोपाटोपेन पाटलितनयनः । उद्धाव्य दोषमखिले पुरेऽमुमारोपयत शूलाम् ।।१२४।।
उत्पाटितस्ततोऽसौ क्षितिदयितनिदेशतः पुरारक्षैः । ग्रहकल्लोलाल्लभते क्षणं शशी किमिह नानिष्टम् ।।१२५।।
मण्डितमुखः स मष्या कृताङ्गरागश्च चन्दनैः शोणैः । करवीरपुष्पमाली धृतसूर्प्पो रासभारूढः ।।१२६।।
अन्तःपुरेऽपराधी निगृह्यते ननु सुदर्शनः सोऽयम् । दोषो न नाम नृपतेरिति विहिताघोषणः पुरतः ।।१२७।।
भ्राम्यति पुरे स यावत् तावन्मुक्तारवैर्जनैरूचे । नृपतिर्नोचितकारी नास्मिन् सम्भवति दोषोऽयम् ।।१२८।।
संभ्राम्यमाण एवं पुरतो निजमन्दिरस्य संप्राप्तः । ददृशे च मनोरमया पवित्रप्रहारप्रहतयैव ।।१२९।।
अहह सदाचारोऽयं पतिर्मम क्षितिपतिः प्रियाचारः । विधिरत्र दुराचारः केवलमथवा न सोऽपि ननु ।।१३०।।
पूर्वभवसम्भृतानां कुकर्म्मणामेव परिणतिः सेयम् । मम दयितस्योपनता तदस्तु कोऽत्र प्रतीकारः ।।१३१।।
हुं ज्ञातमयमुपायः प्रविश्य सदनोदरं शुचिर्भूत्वा । अर्हत्प्रतिमापूजां विधाय विदधे प्रतिज्ञां सा ।।१३२।।
भगवत्यो जिनशासनदेव्यः शृण्वन्तु मे प्रतिज्ञातम् । अत्याहितं यदि स्यान्निर्दोषस्यापि मे भर्त्तुः ।।१३३।।
त्यक्ताहारा तदहं कायोत्सर्गं न पारयिष्यामि । पतिधर्म्मविरहितायाः किं मे ननु जीवितव्येन ।।१३४।।
इति सङ्कल्पेनास्यां कायोत्सर्गेण निश्चलाङ्गायाम् । निन्युर्वधे नियुक्ताः सुदर्शनं शूलिकाऽभ्यर्णे ।।१३५।।
आरोपयन्ति तस्यां क्लिश्यन्मनसोऽथ यावदेते तम् । शूलाग्रे तावदभूत् सौवर्णं कमलमतिरम्यम् ।।१३६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुमुचुः खड्गाघातं नृपतिभयाद् यावदस्य ते कण्ठे । स पपात तावदमरप्रसूनमालात्वमापद्य ।।१३७।।
अथ चकितास्तदशेषं क्षोणीनाथस्य ते तदाचख्युः । सम्भ्रान्तः सोऽपि ततः सिन्धुरमधिरुह्य तत्राऽऽगात् ।।१३८।।
दूरात् प्रसारितभुजः परिरभ्य सुदर्शनं महीनाथः । मन्दाक्षविलक्षमुखः सखेदमिदमब्रवीदेनम् ।।१३९।।
दिष्ट्या नासि विनष्टः प्रकृष्टनिजपुण्यपौरुषेण सखे ! ।
सुचरितदुश्चरितेष्वपि समवर्त्तिनि मयि विरुद्धेऽपि ।।१४०।।
व्यापाद्य पुरुषरत्नं भवादृशं भुवनभूषणमदोषम् । कं प्रतिदर्शयिताहे निजमुखमपवादमलमलिनम् ।।१४१।।
पटुकपटनाटिकानां वनितानां वचसि विहितविश्वासाः । पञ्चत्वं पञ्चजनाः प्रतिपद्यन्ते किमपवादम् ।।१४२।।
कोऽन्यो विना भवन्तं सत्त्वधनो यः स्वमृत्युमादृत्य । रक्षितवानपराधिनमगाधकरुणारसाम्भोधेः ।।१४३।।
अलमिह बहुभिर्जल्पैरसमीक्षितकारिणामहं मुख्यः । क्षमिणां त्वमग्रणीः पुनरतः क्षमस्वापराधं मे ।।१४४।।
इति बहुविधमभिधायाधिरोप्य तं गन्धसिन्धुरस्कन्धे । निन्ये नृपः स्ववेश्मन्यपनिन्ये दस्युवेषं च ।।१४५।।
गन्धाम्बुभिः सुगन्धिभिरभिषिच्य शुचीनि दिव्यदूष्याणि । परिधाप्य भूपतिस्तं स्वभूषणैर्भूषयामास ।।१४६।।
अभयागतं च सर्वं पप्रच्छोपांशु[10] तच्छशंसासौ । क्रोधाज्झिधांसुमेनं निषिषेध पदोर्निधाय शिरः ।।१४७।।
अथ पार्थिवानुमत्या समस्तनृपककुदमेदुरिततेजाः । स जगाम निजं मन्दिरमुदारमङ्गलगणोद्भासि ।।१४८।।
अभया भयेन भर्त्तुर्मुमोच पाशप्रयोगतः प्राणान् । नंष्ट्वा च पण्डितागात् कुसुमपुरं देवदत्तां च ।।१४९।।
इति विपुलशीलसेतु-व्यतिकरतो विपदपांनिधिं तीर्त्वा । श्रेष्ठी सुदर्शनोऽभूत् सविशेषं सुस्थितो धर्म्मे ।।१५०।।
स कदाचिच्चतुरन्तात्निर्विण्णो दीर्घसंसृतिभ्रमणात् । अपुनर्भवाय भेजे जिनमुनिदीक्षामनाकाङ्क्षः ।।१५१।।
विहितविविधोपधानः परिशीलितविमलसमयशास्त्रौघः । सविशेषमघविघातप्रयतश्चैकाकितामभजत् ।।१५२।।
विहरन्नप्रतिबद्धः कदापि स जगाम पाटलीपुत्रम् । यत्रास्ति देवदत्तासद्मनि सा पण्डिता पूर्वम् ।।१५३।।
सा चैतया पुरैव हि पुंसामुपवर्णनाप्रबन्धेषु । तैस्तैः सुदर्शनगुणैरकुण्ठमुत्कण्ठिताऽस्ति कृता ।।१५४।।
स गतो गोचरचर्यां पण्डितया वीक्ष्य दक्षयाऽलक्षि । सम्भ्रमसम्भृतयाऽथ प्रदर्शितो देवदत्तायै ।।१५५।।
भक्त्या निमन्त्रितोऽसौ भिक्षाव्यपदेशतस्तया गेहे । गणिकासदनमजानन् मुनिरप्योघाद् गतस्तत्र ।।१५६।।
द्वाराण्यथो पिधाय प्रकटितवेश्यानुरूपवैदग्ध्या । मधुरैरुपसर्गैस्तं कदर्थयामास साऽत्यर्थम् ।।१५७।।
दृषदुपक्लृप्त इवासौ न मनागपि विक्रियां ययौ यावत् । निर्विण्णया तयाऽथो सायं तावत् परित्यक्तः ।।१५८।।
निरवधिसमृद्धतेजास्तपोविवृद्ध्या तपोनिधिः सोऽथ । गत्वोद्याने तस्थौ रात्रिप्रतिमां प्रतिज्ञाय ।।१५९।।
तमथ ददर्श तथास्थितमभया सा व्यन्तरीत्वमापन्ना । प्राग्जन्ममत्सरेण प्रारेभे यातनास्तदनु ।।१६०।।
न द्वेषं प्रतिकूलैर्न रागमनुकूलचेष्टितैस्तस्याः । अभजत मुनिः खरद्युतिसुधांशुधामभिरिवाद्रिपतिः ।।१६१।।

10. उपांशु अव्य. (उप+अंश्+ड) निर्जन, एकांत, मौन इति भाषायाम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपसर्गेषु यथाऽस्याः प्रवर्द्धते मनसि गाढभावेशः । समचित्तस्य मुनेरपि शुक्लध्यानान्तरेषु तथा ।।१६२।।
निर्व्विण्णा सुरयोषा दोषाशेषे कठोरतामुचत् । प्रक्षीणघातिकर्म्मा केवलकमलां च मुनिरभजत् ।।१६३।।
सन्निहितैः सुरनिवहैः केवलिमहिमाथ मुनिपतेर्विदधे । कनककमलोपविष्टश्च केवली धर्म्ममाचष्ट ।।१६४।।
अमृतरससारणीभिर्वाणीभिस्तस्य कटुकषायवनी । भव्याङ्गिनां प्रपेदे शोषं पोषं शमवनी च ।।१६५।।
भूयांसः प्रतिबुद्धाः प्राणिगणा व्यन्तरी च साप्यभया । गणिका च देवदत्ता धात्रेयी पण्डिता च तदा ।।१६६।।
इत्थं प्राप सुदर्शनः क्षितितले शीलप्रभावात् परम्, गार्हस्थ्येऽपि समुन्नतिं नृपतिभिर्देवैश्च कृप्तार्च्चनः ।
मुक्त्वा सङ्गमभङ्गुरेण मनसा स्वीकृत्य चाथ व्रतम्, काले केवलसम्पदं च विशदामासाद्य भेजे शिवम् ।।१६७।।

उदाहृतं सुदर्शनोदाहरणम् । अधुना सुभद्रावृत्तान्तमुदीर्यते ।। श्रीः ।।

।। शीलपरिपालने सुभद्राकथानकम् ।।

अत्थित्थ विउलदीवोदहीण लहुओ वि सव्वमज्झत्थो । सप्पुरिसु व्व सुवित्तो जंबुदीवु त्ति दीववरो ।।१।।
तस्स य भारहवासे मज्झिमखंडे य अंगदेसम्मि । अलय व्व पुरी चंपा चुज्जं बहुधणयकयसोहा ।।२।।
तत्थ जियसयलसत्तू राया नामेण आसि जियसत्तू । कयदाणजलपवाहो सया वि नयपोरिससणाहो ।।३।।
नीसेसनयरमित्तो जिणदत्तो वसइ तीइ सत्थाहो । सलिलेहिं सलिलरासि व्व विउलविहवेहिं अत्थाहो ।।४।।
जिणदासीइ पियाए उयरसरोवरमंगलवाल व्व । विणयाइगुणअमुद्दा वरतणया तस्स य सुभद्दा ।।५।।
सुइसीलसङ्गनिलयाइ रूवलावन्नगुणमणुन्नाए । निवसइ जीइ सरीरे समगं धम्मो य कामो य ।।६।।
तञ्चन्नियभत्तेणं सत्थाहसुएण बुद्धदासेणं । कीलंती नियघरे दिट्ठा सा अन्नया कन्ना ।।७।।
तो तीइ रूवसोहग्गविब्भमेहिं स विब्भमियहियओ । चिंतइ अहो सणाहो इमो इमीए मणुयलोगो ।।८।।
उत्तमवंसप्पभवा सगुणा नइ(?)सालिणी सुमज्झा य । धन्नस्स पाणिपणयं लहिज्ज एस्सा धणुलय व्व ।।९।।
इय चिंतंतो पत्तो तम्मयहियओ स मंदिरे नियए । संपेसिया य वरगा तेण तया सिट्ठिणो सविहे ।।१०।।
भणिया य तेण ते नणु समाणकुलरूवजुव्वणधणाण । उचिउ च्चिय संबंधो वत्तव्वं किं तु इह किंपि ।।११।।
नियनियकुलागएहिं विरुद्धधम्मेहिं वासियमणाणं । एयाण कह णु पीई घडिज्ज पडिकूलचिट्ठाणं ।।१२।।
तीए य विणा धम्मत्थकामनिव्वाहहेउभूयाए । मिहुणाण मणहराण वि विडंबणा चेव घरवासो ।।१३।।
तम्हा विरुद्धधम्मस्स तस्स नियकन्नयं न देमि अहं । इत्थत्थे सयणेहि न रूसियव्वं मणागपि ।।१४।।
इय सोउं सो चिंतइ कवडेण वि जा मए न जिणधम्मो । पडिवन्नो ताव इमाइ संगमो दुल्लहो मज्झ ।।१५।।
तो सो अलक्खिओ च्चिय जिणसमणोवस्सयंमि संपत्तो । वंदित्तु भावसारं च भणिउमेवं समारद्धो ।।१६।।
भयवं निव्विन्नमिमं इमाउ भवभमणओ मणं मज्झ । ता पसिऊण निवेयह जिणधम्मं निम्मलं निययं ।।१७।।
जह तेण तरंडेण व तरिऊण भवोदहिं अगाहं पि । वच्चामि मुक्खदीवं तुम्हामणुग्गहेणाहं ।।१८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेहि वि से जिणधम्मो सरलसहावेहिं सम्ममुवइट्ठो । कवडेण य पडिवन्नो इमेण अइगूढहियएणं ।।१९।।
अह तहभव्वत्तणओ परिसीलंतस्स तस्स तं धम्मं । उल्लसिओ सुहभावो जायं तत्तत्थसद्दहणं ।।२०।।
तो गऊण गुरूणं पुरओ विणएण विन्नवइ एवं । जिणदत्तसुयालोभेण एस धम्मो मए पुव्विं ।।२१।।
छउमेणं पडिवन्नो इय सम्मं मुणह संपयं किंतु । इय मज्झ मणंमि ठियं एसत्थो एस परमत्थो ।।२२।।
ता पसिऊणं पुणरवि अणुग्गहं कुणह मज्झ सविसेसं । जं जं धम्मरहस्सं तं तं सव्वं पि उवइसह ।।२३।।
तत्तो गुरुकुलवासं सेवंतो सम्ममेव थिरचित्तो । संजाओ गीयत्थो कमेण सहवासओ तस्स ।।२४।।
विविहोवयारपुव्वं जिणपडिमाओ गिहंमि अच्चेइ । वच्चइ जिणिंदभवणं गुरुणो वंदेइ विणएण ।।२५।।
पूएइ समणसंघं वच्छल्लं कुणइ तुल्लधम्माणं । इय एसो संजाओ कमसो सुस्सावगो चेव ।।२६।।
सुणिउं जिणदत्तो वि हु पुव्वावरवइयरं तमेयस्स । साहम्मिउ त्ति तुट्ठो वियरइ से कन्नयं नियगं ।।२७।।
तो दोहि वि पक्खेहि पमुइयहियएहिं सोहणमुहुत्ते । पाणिग्गहणमिमेसिं विच्छड्डेणं विणिम्मवियं ।।२८।।
परिणीया वि सुभद्दा पुव्वं पिव मंदिरंमि नियपिउणो । चिट्ठइ सुहंसुहेणं कीलंती विविहकीलाहिं ।।२९।।
विन्नत्तो जिणदत्तो तयणु विणीएण बुद्धदासेणं । ताय ! पसिऊण पेसह नियधूयं ससुरगेहंमि ।।३०।।
भणिओ य सिट्ठिणा सो वच्छ न इत्थत्थि पत्थणाजुग्गं । किं पुण धम्मविरोहेण घरजणो तुज्झ पडिकूलो ।।३१।।
तत्थ ट्ठियाइ इमीए वियरिस्सइ जं व तं व अववायं । ता जयसु तह कहं पि हु सिणेहहाणी जह न होइ ।।३२।।
मुणियतयाभिप्पाओ पयंपए तयणु बुद्धदासो वि । भिन्नघरे ठाविस्सं अज्ज अहं नंदणिं तुम्ह ।।३३।।
भावोवलद्धितुट्ठेण सिट्ठिणा तयणु पेसिया धूया । ठविया य पुढो गेहे धणकणयसमाउले तेण ।।३४।।
सविसेसं ईसानलपज्जलिओ तयणु घरयणो तस्स । साइणिजणु व्व मग्गइ पए पए छिद्दमेईए ।।३५।।
अह तीइ सुभद्दाए सुसावियाए घरम्मि जिणसमणा । पविसंति पाणभोयणओसहभेसज्जकज्जेण ।।३६।।
असहंतीओ साहूण भत्तिबहुमाणपुव्वयं दाणं । जंपंति जणणिभइणीउ बुद्धदासं उवंसु तओ ।।३७।।
वच्छ ! न मच्छरमम्हाण जं तए नियघरपणइणी एवं । संठविया भिन्नघरे पूरेसि य वंछियं तीए ।।३८।।
किं तु न जुत्तं एयं अइप्पसंगो जमित्थ समणाणं । बलवं हि इंदियगणो कयाइ विउसं पि धरिसेइ ।।३९।।
तं सोऊण सुभद्दापियो य रोसा इमं पयंपेइ । अम्मो ! न चिंतिउं पि हु जुत्तमिमं तुम्ह किं वुत्तं ।।४०।।
अपि जलइ जले जलणो जलणाओ लुलिज्ज अह जलुप्पीलो ।
अविरलगरलुग्गारो अमयकराओ वि वियलिज्ज ।।४१।।
पवणो वि हुज्ज पंगू मयरहरो पि हु चइज्ज मज्जायं । न उ एईइ वियारो मणे वि मणयं पि जाइज्ज ।।४२।।
तम्हा न इत्थ संका केण वि सुमिणे वि कहवि कायव्वा । तं सोउं तुसिणीयाओ ताओ चिट्ठंति खुद्धाओ ।।४३।।
सविसेसं च सुभद्दाइ छिद्दमणुमवि सुनिउणमूहंति । परदोसपिच्छणं चिय कुलधम्मो दुज्जणाण जओ ।।४४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह अन्नया पविट्ठो खवगमुणी मंदिरे सुभद्दाए । तस्स य भूरेणुकणो खरपवणपणुल्लिओ नयणे ।।४५।।
दूमिज्जंतो वि दढं स मुणी अवणेइ तत्र नयणाओ । अप्पडिकम्मत्तणओ निरविक्खो नियदेहे वि ।।४६।।
चिंतइ सा तं दट्ठुं चिट्ठंतो दिट्ठिघायगो एस । ता जाव नावणीओ न ताव मणनिव्वुई मज्झ ।।४७।।
वीमंसिऊण एवं भिक्खट्ठं तस्स ईसि नमिरस्स । रसणग्गेणं कणुगो अवणीओ झत्ति दक्खाए ।।४८।।
भवियव्वयावसेणं मुणिभाले तीइ भालवट्टाओ । धणपिट्ठचुन्नतिलओ अलक्खिओ चेव संकंतो ।।४९।।
दुन्हं पि अणाभोगेण तम्मि तह चेव संठिए तिलए । गिहिउं साहू भिक्खं निक्खंतो तीइ गेहाओ ।।५०।।
दट्ठुं सतिलयभालं मुणिं हसंतीहिं दिन्नकरतालं । जणणिभइणीहिं भणिओ तओ सुभद्दापिओ एवं ।।५१।।
ए एहि वच्छ ! पिच्छसु सयमेव सइत्तणं सपत्तीए । उवभुत्तमुत्तमुणिभालतिलयपयडं पडुप्पन्नं ।।५२।।
पुव्वभणियाणि अम्हं मच्छरगणणाइ गणसि तं ताव । निम्मच्छरो किमुत्तरमिह काहिसि साहुतिलयम्मि ।।५३।।
दढपञ्जएण तेणं मणम्मि तस्स वि विलीयमुप्पन्नं । किं कसिणरयणछाया न लंछणत्तं गया ससिणो ।।५४।।
चिंतइ य इमो एवं निम्मलकुलजुयलसंभवा वि इमा । सव्वप्पणा वि सव्वस्ससामिणी निम्मिया वि मए ।।५५।।
धम्मे य जिणुद्दिट्ठम्मि अट्ठमिंजाणुरायरत्तावि । जइ एवं किर ववसइ धिरत्थु ता जुवईजाईए ।।५६।।
इय जायमणवियप्पो तप्पभिइं सिढिलपेम्मसम्माणो । ववहारमित्तउ च्चिय अणुयत्तइ चिट्ठियं तीए ।।५७।।
मुणियसरूपा सा वि हु चिंतइ धिद्धी पमायओ मज्झ । तं किं पि समावडियं जेणिह मुहला खला हुंति ।।५८।।
एवंविहे [1]विलीए सक्खं चिय चक्खुगोयरे कह णु । न पियस्स विप्पियाहं जंपंति न दुज्जणा किं वा ।।५९।।
किंतु न चित्ते वि इमं पइपिसुणा जमिह मज्झ पडिकूला । अणुकूला इक्क च्चिय मणसुद्धी होउ मह धम्मे ।।६०।।
किं च गिहवासवसिरीइ विसयवासंगरंगियमणाए । जं मज्झ किल कलंको न दूमए सो तहा हिययं ।।६१।।
किं पुण अणगारवरस्स तस्स मणवयणकायसुद्धस्स । मह चेव निमित्तेणं जो अववाओ स दूमेइ ।।६२।।
न य तस्स चेव इक्कस्स दूसणे उवरमिज्ज वयणिज्जं । सयलं पि हु जिणसासणमिमाउ पाउणइ मालिन्नं ।।६३।।
ता जीवियनिरविक्खा तं काहमुवक्कमं अहं जत्तो । मरणं व पाउणिस्सं कलंकमेयं व अवणिस्सं ।।६४।।
इय कयविणिच्छया सा सुइभूया धरियधवलनेवत्था । परमगुरूणं पडिमाओ पूइउं परमभत्तीए ।।६५।।
कयसागाराणसणा जिणबिम्बाणं पुरो इमं भणइ । देवो वा देवी वा जिणपवयणपाडिहेरकरो ।।६६।।
जो अत्थि सो निसामउ न जाव एयं कलंकमवणीयं । ता मह इहट्ठियाए अणसणमह काउस्सग्गो य ।।६७।।
परिवत्तंती चिट्ठइ परमिट्ठिपयाणि सा खणं जाव । ता नियतणुतेएणं उज्जोयंतो दस दिसाओ ।।६८।।
पाउब्भूओ पुरओ ललंतमणिकुंडलो सुरो एगो । भणइ सुभद्दं भद्दे ! जिणसासणपाडिहेरकरो ।।६९।।
सम्मद्दिट्ठी अमरो तुहप्पभावेण आगओ इत्थ । आइससु जं मए इह कायव्वं निव्वियप्पमणा ।।७०।।

---

11. विलीए (व्यलीक) अप्रिय, विप्रिय, विप्रियकर्ता इति भाषायाम् ।। - पा. स. म. पृ. ७९९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पायडिए संकप्पे तीइ सुरो भणइ सयणु ! मा तप्प । मुद्दिस्समहं गोसे पुरीदुवाराणि सव्वाणि ।।७१।।
अत्ते जणे भणिस्सं जा इत्थ सइत्तगव्वमुव्वहइ । उग्घाडउ कवाडे सा चालणिकलियजलसित्ते ।।७२।।
तुह चेव पओगेणं एयं सव्वं भविस्सइ सुसीले ! । इय भणिय गए तियसे सा तुट्ठा वोलए रयणिं ।।७३।।
संघडियासु पभाए अइनिब्भच्छं पुरीपओलीसु । अंतो बहिं च लोओ सरिपूरेण व तओ रुद्धो ।।७४।।
गोमहिसिखरुट्ठाइसु निरोहसुढिएसु कडुरडंतेसु । जाओ समाउलमणो निरुद्धसासु व्व नयरिजणो ।।७५।।
मुणियसरूवो राया ससंभमो सयमुवागओ तत्थ । विविहपओगे कारेइ तयणु गोउरपयारत्थं ।।७६।।
ता किंपि पयारंतरमपाउणंतो समाइसइ भिच्चे । रे ! कढिणकुढारेहिं तडत्ति लहु तोडह कवाडे ।।७७।।
मयणमय व्व न कम्मं कुणंति सियपरसुणो वि जा तत्थ । ता मुणियं नरवइणा दिव्वपकोवो इमो कोवि ।।७८।।
तत्तो विमुक्ककेसो उल्लपडो पूयपडलपडहत्थो । उड्डमुहो घडियकरो सनायरो नरवई भणइ ।।७९।।
देवस्स दाणवस्स गंधव्वस्स व गणस्स जक्खस्स । जस्स पुरेणऽवरद्धं अहव मए सो खमउ इन्हिं ।।८०।।
तो भणियचरो अमरो फुरंतदेहो पयंपए गयणे । तं पुव्वुत्तपओगं सयलं पि हु पुरपहुस्स पुरो ।।८१।।
अहमहमिगाइ तत्तो उत्ताणाओ सइत्तगव्वेण । कय सुइनेवत्थाओ चाउव्वन्नाउ नारीओ ।।८२।।
निवनायराण पुरओ खिवंति जा चालणीसु किल सलिलं । ताव रहस्सं व मणंमि ताण तं ठाइ न हु तासु ।।८३।।
तत्तो विलक्खवयणासु नमिरनयणासु अन्नमन्नेणं । पच्छायंतीसु पलाइरीसु लहु नयरिनारीसु ।।८४।।
कयरोलो हसइ जणो जहा जलं चालणीसु एयाहिं । संठवियं दाराणि वि उग्घाडीहंति तह चेव ।।८५।।
इत्थंतरे सुभद्दा सासुनणंदाउ भणइ सुविणीया । वित्रासेमि अहं पि हु अप्पाणं तुम्ह आएसा ।।८६।।
हसिरीहिं ताहि भणिया सइत्तणं तुह मुणंति न मुणिणो । ता कीस मुहा रोवेसि उपरि चूलं कलंकस्स ।।८७।।
एयं ता तुम्ह मणे सच्चं तह वि हु तुलिस्समप्पाणं । इय भणिउं कयसमुचियनेवत्था लेइ चालणियं ।।८८।।
सुमरंती परमिट्ठिप्पयाइं नियसीलनिम्मलयरेण । सलिलेण पूरइ तयं जणं च गुरुविम्हयरसेण ।।८९।।
अह सेलभायणम्मि व पयट्ठिए चालणीइ सलिलम्मि । अंधारियाओ सहसा सासुनणंदाओ भद्दाए ।।९०।।
उद्दिसिय पुव्वगोउरमह चलिया सा महासई जाव । ता मुणिउं नरनाहो सनायरो एइ पच्चोणिं ।।९१।।
दट्ठूण तं तहट्ठियमह भणइ ससंभमं महीनाहो । ए एहि पुत्ति ! पूरिसु मणोरहे नयरिलोयस्स ।।९२।।
सच्चं तुमं सइ त्रिय कहन्नहा ठाइ चालणीइ जलं । उग्घाडिय पुरदारे तहवि हु पयडेसु नियचरियं ।।९३।।
इय उच्छाहिज्जंती निवेण सा पुव्वगोउरं गंतुं । सुमरियपरमिट्ठिपया जलेण अच्छोडइ कवाडे ।।९४।।
तिक्खुत्तो तह विहिए रुडंति (झडत्ति) कुंचारवं कुणंताइं । उग्घडियाइं कवाडाइं कमलकोस व्व गोसम्मि ।।९५।।
उल्लसिओ जयसद्दो नंदउ एसा महासइ त्ति तओ । एसा सा बंभाणी एस त्रिय तह महादेवी ।।९६।।
पणवन्नकुसुमवुट्ठी मुक्का सीसम्मि तीइ तियसेहिं । पहयाउ दुंदुहीओ गयणे गंभीरसद्दाओ ।।९७।।
लग्गो चलणेसु तओ नायरो नरवई सुभद्दाए । भणइ तए उद्धरिओ वसणसमुद्दाउ एस जणो ।।९८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इह काहिं काहिं अप्पा लहूकओ न हु सइत्तभंतीए । आरोविया पडाया तुमए नियवंसपासाए ।।९९।।
धन्नो सो जिणदत्तो जस्स घरे पुत्ति ! तं समुप्पन्ना । नंदउ स बुद्धदासो वि जस्स घरणित्तमुव्वहसि ।।१००।।
इक्कु ञ्चिय जिणधम्मो निच्छम्मो अहव जयउ तिजए वि । जस्स पभावेणेवं जुवईण वि हुंति माहप्पा ।।१०१।।
इय थुव्वंती एसा पए पए निवइणा सलोएण । दक्खिणपच्छिमपोलीउ पयडए लहु तह च्चेव ।।१०२।।
निरहंकारा वि मणे विसेसओ धम्मउन्नइनिमित्तं । गंतुं उत्तरपोलीइ अह सुभद्दा इमं भणइ ।।१०३।।
जा कावि मज्झ तुल्ला जुवई इह होइ तीइ नणु एसा । एमेव पयडियव्वा इअ भणिए सा तहेव ठिया ।।१०४।।
तत्तो निवेण करिणीपिट्ठे आरोविया धरियछत्ता । वज्जंतपुरस्सरपंचसद्दरवमुहरियदियंता ।।१०५।।
अणुगम्मंती सिंधुरखंधारूढेण धरणिनाहेण । सा पत्ता जिणभवणे थुव्वंती बंदिविंदेहिं ।।१०६।।
तत्थ य परमिट्ठीणं पूयापणिहाणमाइयं काउं । तह चेव गुरुसमीपे संपत्ता भत्तितल्लिच्छा ।।१०७।।
आगमभणियविहाणेण पणमिउं पायपंकए तेसिं । ठाणे ठाणे दिंती दाणं पत्ता नियगिहम्मि ।।१०८।।
समुचियउवायणेहिं सनायरं पूइऊण नरनाहं । सा भणइ सामिय ! इमो जिणिंदधम्मस्स माहप्पो ।।१०९।।
पसमंति विग्घसंघा इमाउ विलसंति मंगलालीओ । तम्हा पसंसणिज्जो एसु च्चिय का अहं इत्थ ।।११०।।
अह साहु साहु भणिरेण भूमिनाहेण पीइदाणम्मि । तं दिन्नं जं तीए भुज्जइ आसत्तपज्जायं ।।१११।।
आमंतिऊण पत्ते सनायरे नरवरे नियावासं । होऊण बुद्धदासो पुरो सुभद्दाइ इय भणइ ।।११२।।
अमुणियमाहप्पेणं तुज्झ मए दुव्वियप्पनडिएणं । जं पयडियमवमाणं अवरद्धं तं खु ता गरुयं ।।११३।।
तह वि हु बहुक्खमाए खमियव्वं सव्वमेव मह तुमए । को तुज्झ समो जीए सुरा वि इय पाडिहेरकरा ।।११४।।
भणियं च तीइ सुंदर ! न इत्थ थोवो वि तुज्झ अवराहो । मह कम्मपरिणईए उवट्ठियं निट्ठियं च इमं ।।११५।।
तो मुक्कमच्छरेणं ससुरकुलेणं गुणाणुरत्तेणं । सम्माणिया सुभद्दा सविसेसं देवय व्व तया ।।११६।।
चिरकालदढपरूढं हत्थं उच्छिंदिऊण मिच्छत्तं । पडिवन्नं तेहिं तया सम्मत्तं मुक्खतरुमूलं ।।११७।।
उन्नयसीसो विहिओ जिणदत्तो वि हु सुयाइ जं जुवई । मसिकुञ्चयं कुसीला घडइ सुसीला य कुलकलसं ।।११८।।
भावाणुरत्तचित्तेण बुद्धदासेण परिचरिज्जंती । अह सा गमेइ समयं महासई धम्मकम्मरया ।।११९।।
इत्थं सुभद्रा गुरुभाविभद्रा, शुभ्रं यशः प्राप महीतलेऽस्मिन् ।
यस्य प्रभावाद् भजनीयमेतन्न कस्य शीलं शिवसौख्यमूलम् ।।१२०।। [उपजाति]

तदेवं समाप्तं सुभद्राप्रबन्धप्रदर्शनेन तुर्यं शीलोदाहरणम् ।।

किञ्च - रूपं दर्प्पकरूपदर्प्पदलनोत्तालं यदस्मिन् जने,
सौभाग्यं च कुरङ्गशावकदृशां नेत्रामृतस्यन्दि यत् ।
किञ्च-न्यञ्चि विश्ववीरनिकषं यत् पौरुषोष्मायितम् ।
यच्चायुः कुलपर्वतप्रतिभटं तच्छीललीलायितम् ।।१।। तथा –

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदा शान्तं स्वान्तं सकलकुविकल्पव्यपगमा -
दुपादेयं वाचं मधुमधुरहृद्याक्षरमुचम् ।
प्रतिप्राणिप्रीतिप्रचयचतुरं चेष्टितमपि,
प्रपद्यन्ते धन्याः परिचरितशीलाः प्रतिभवम् ।।२।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीमद**भयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र-सूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीयमूलद्वारे द्वितीयं **शीलप्रतिद्वारं** समाप्तमिति ।।१८५।। श्रीः ।।

एवमुत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये द्वितीयमूलद्वारे व्याख्यातं सोदाहरणं द्वितीयं शीलप्रतिद्वारम् । साम्प्रतं क्रमप्राप्तं तृतीयं तपःप्रतिद्वारं प्रस्तावयन्नाह -

सीलं च पणीयाहार - सुह(हि)यदेहस्स दुल्लहं पायं ।
ता देहसोहणकए जहसत्तीए तवं तवसु ।।१८६।।

शीलं च पूर्वोपवर्णितं **प्रणीताहारसुहितदेहस्य** सरसभोजनोपचितगात्रस्य प्राणिनः **प्रायो** बाहुल्येन **दुर्लभं** दुष्पालम्, क्वचित् स्थूलभद्रादौ व्यतिरेकस्यापि दर्शनात् प्रायःशब्दोपादानम् । **तत्** तस्मात् **शक्तेरनतिक्रमेण** हे शिष्य ! **तपो** वक्ष्यमाणं **तपस्व** । किमर्थम् ? इत्याह - **देहशोधनकृते** । देहस्य शोधनं रसशोषणेन धातूनामपचयः, स च तपसैव भवति । उपचितेषु हि देहधातुषु प्रायः प्रादुर्भवन्ति मान्मथा विकाराः ।।१८६।।

साम्प्रतं तपःशब्दस्यैव निरुक्तमाह -

तावेइ जेण कम्मं तविज्जए जं च सिवसुहत्थीहिं ।
तेणिह तवं ति भन्नइ तं दुविहं बारसविहं च ।।१८७।।

[1]**इह**स्मिन् जिनप्रवचने **तेनेदं तपो भण्यते, यद्** यस्मात् **कर्म्म** ज्ञानावरणादिरूपं **तापयति** प्रतनूकरोति, तथा **तप्यते** परिशील्यते । कैः ? **शिवसुखार्थिभिर्मोक्षसुखाभिलाषुकैः, तच्च द्विविधं द्वादशविधं च** वक्ष्यमाणन्यायेन ।।१८७।।

गाथा-१८७ 1. तपस्तु तप्यन्ते रसादिधातवः कर्माणि चानेनेत्यन्वयात्, यदाह - "रस-रुधिर-मांस-मेदो-ऽस्थि-मज्ज-शुक्राण्यनेन तप्यन्ते । कर्माणि चाशुभानीत्यतस्तपो नाम नैरुक्तम्" ।।१।। - यो. शा. प्र. ४/८८ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तदेव द्वैविध्यं द्वादशविधत्वं च दर्शयन्नाह -

बाहिर-अब्भिंतरभेयओ दुहा ते य दो वि पत्तेयं ।
छब्भेया इय एवं बारसभेयं सुएभिहियं ।।१८८।।

बाह्याभ्यन्तररूपेण **भेदद्वयेन** तावत् तपो **द्वेधा, तौ च द्वावपि प्रत्येकं षड्भेदौ, इत्येवमेतद् द्वादशभेदं श्रुते** समयेऽभिहितम् ।।१८८।। तत्रादौ बाह्यं भेदषट्कं प्रदर्शयन्नाह -

[1]**अणसणमूणोयरिया वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ ।**
कायकिलेसो संलीणया य बज्झो तवो होइ ।।१८९।।

(१)[2]तत्र अशनमाहारस्तत्परिहारो **अनशनम्,** तच्च नमस्कारसहितादि षण्मासान्तं श्रीमन्महावीरतीर्थे, प्रथमजिनतीर्थे तु संवत्सरपर्यन्तम्, मध्यमतीर्थकृत्तीर्थेष्वष्टौ मासान् यावत् ।

गाथा-१८९ 1. **तुला -** दशवै. नि. ४७ ।। - पञ्चा. १९/१ ।। पञ्चव. गा. ८४५ ।। प्रव. सा. गा. २७० ।। अनशनमूनोदरता वृत्तेः संक्षेपणं रसत्यागः । कायक्लेशः संलीनतेति बाह्यं तपः प्रोक्तम् ।। - प्रशमरति गा. १७५ ।। अनशनमौनोदर्यं वृत्तेः संक्षेपणं तथा । रसत्यागस्तनुक्लेशो लीनतेति बहिस्तपः ।। - यो. शा. प्र. ४/८९ ।।

2. **तुला -** (१) अशनमाहारः, तत्परित्यागोऽनशनम् । तद् द्विधा-इत्वरं यावज्जीविकं च । इत्वरं नमस्कारसहितादि श्रीमन्महावीरतीर्थे षण्मासपर्यन्तम्, श्रीनाभेयतीर्थे तु संवत्सरपर्यन्तम्, मध्यमतीर्थकरतीर्थेषु त्वष्टौ मासान् यावत् । यावज्जीविकं तु पादपोपगमनेङ्गिनीभक्तप्रत्याख्यानभेदात् त्रिविधम् । तत्र पादपोपगमनं द्विधा-सव्याघातमव्याघातं च । तत्र सतोऽप्यायुषः समुपजातव्याधिविधुरेणोत्पन्नमहावेदनेन वा देहिना यदुत्क्रान्तिः क्रियते तत् सव्याघातम् । निर्व्याघातं तु - "निप्फाइआ य सीसा गच्छो परिपालिओ महाभागो । अब्भुज्जओ विहारो अहवा अब्भुज्जयं मरणं ।।१।। इति दशा-वयःपरिणामे सति त्रस-स्थावररहिते स्थण्डिले पादपवद् निश्चेष्टस्य येन तेन संस्थानेन प्रशस्तध्यानव्यापृतान्तःकरणस्य प्राणोत्क्रान्तिः यावदवस्थितिरिति । तदेतद् द्विविधमपि पादपोपगमनम् । इङ्गिनी श्रुतविहितः क्रियाविशेषः, तद्विशिष्टमनशनमिङ्गिनी । अस्य प्रतिपन्ना तेनैव क्रमेणायुषः परिहाणिमवबुध्य तथाविध एव स्थण्डिले एकाकी कृतचतुर्विधाहारप्रत्याख्यानश्छायात उष्णमुष्णाच्छायां सङ्क्रामन् सचेष्टः सम्यग्ध्यानपरायणः प्राणान् जहाति इत्येतदिङ्गिनीरूपमनशनम् । यस्तु गच्छमध्यवर्ती समाश्रितमृदुसंस्तारकः समुत्सृष्टशरीरोपकरणममत्वस्त्रिविधं चतुर्विधं वाऽऽहारं प्रत्याख्याय स्वयमेवोद्ग्राहितनमस्कारः समीपवर्त्तिसाधुदत्तनमस्कारो वोद्वर्तनपरिवर्तनादि कुर्वाणः समाधिना कालं करोति, तस्य भक्तप्रत्याख्यानमनशनम् ।

(२) अथौनोदर्यम् - ऊनमवममुदरं यस्य स ऊनोदरः, तस्य भाव औनोदर्य्यम् । तच्च चतुर्धा अल्पाहारौनोदर्य्यम्, उपार्धौनोदर्य्यम्, अर्धौनोदर्यम्, प्रमाणप्राप्तात् किञ्चिदूनौनोदर्य्यं च । तत्राहारः पुंसो द्वात्रिंशत्कवलप्रमाणः । कवलश्चोत्कृष्टावकृष्टौ वर्जयित्वा मध्यम इह गृह्यते । स चाविकृतस्वमुखविवर-प्रमाणः । तत्र कवलाष्टकाभ्यवहारोऽल्पाहारौनोदर्य्यम् । अर्धस्य समीपमुपार्धं द्वादश कवलाः, यतः कवलचतुष्टयप्रक्षेपात् सम्पूर्णमर्धं भवति, ततो द्वादश

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इदमित्वरम्, यावत्कथिकं तु भक्तप्रत्याख्यान-इङ्गिनीपादपोपगमरूपम् । तत्र भक्तप्रत्याख्यान-

---

कवला उपार्धोनोदर्यम् । षोडश कवला अर्धोनोदर्य्यम् । प्रमाणप्राप्ताहारो द्वात्रिंशत् कवलाः स चैकादिकवलैरूनश्चतुर्विंशतिकवलान् यावत् प्रमाणप्राप्तात् किञ्चिदूनोनोदर्य्यम् । चतुर्विधेऽप्यस्मिन्नेकैककवलहानेन बहूनि स्थानानि जायन्ते । सर्वाणि चामून्यौनोदर्य्यविशेषाः । योषितस्तु अष्टाविंशतिः कवला आहारप्रमाणम्, यदाह - "बत्तीसं खलु कवला आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ । पुरिसस्स महिलियाए अट्ठावीसं भवे कवला ।।१।। तस्याः पुरुषानुसारेण न्यूनाहारादिकं भावनीयम् ।

(३) तथा वर्ततेऽनयेति वृत्तिर्भैक्षम्, तस्याः सङ्क्षेपणं ह्रासः । तच्च दत्तिपरिमाणकरणरूपम् एक-द्वित्र्याद्यगारनियमो रथ्या-ग्रामार्ध-ग्रामनियमश्च । अत्रैव द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावाभिग्रहा अन्तर्भूताः ।

(४) तथा रसानां मतुलोपात् विशिष्टरसवतां वृष्याणां विकारहेतूनाम् अत एव विकृतिशब्दवाच्यानां मद्य-मांस-मधु-नवनीतानां दुग्ध-दधि-घृत-तैल-गुडा-ऽवगाह्यादीनां च त्यागो वर्जनं रसत्यागः ।

(५) तथा तनुः-कायः, क्लेशः-शास्त्राविरोधेन बाधनं तनुक्लेशः । ननु तनोरचेतनत्वात् कथं क्लेशसम्भवः ? उच्यते शरीर-शरीरिणोः क्षीरनीर-न्यायेनाभेदादात्मक्लेशे तनुक्लेशस्यापि सम्भवात् तनुक्लेश इत्युक्तम् । स च विशिष्टासनकरणेनाऽप्रतिकर्मशरीरत्व-केशोल्लुञ्चनादिना चावसेयः । ननु परीषहेभ्यः कोऽस्य विशेषः ? उच्यते स्वकृतक्लेशानुभवरूपस्तनुक्लेशः परीषहास्तु स्वपरकृतक्लेशरूपा इति विशेषः ।

(६) तथा लीनता विविक्तशय्यासनता । सा चैकान्तेऽनाबाधेऽसंसक्ते स्त्री-पशु-पण्डकविवर्जिते शून्यागार-देवकुल-सभा-पर्वत-गुहादीनामन्यतमस्मिन् स्थानेऽवस्थानं मनो-वाक्-काय-कषायेन्द्रियसंवृतता च ।

इति षट्प्रकारं बहिस्तपो बाह्यं तपः । बाह्यत्वं च बाह्यद्रव्यापेक्षत्वात्, परप्रत्यक्षत्वात्, कुतीर्थिकैर्गृहस्थैश्च कार्य्यत्वाच्च । अस्मात् षड्विधादपि बाह्यात् तपसः सङ्गत्याग-शरीरलाघव-इन्द्रियविजय-संयमरक्षण-कर्मनिर्जरा भवन्ति ।। - यो. शा. श्लो. ८९ वृत्तौ ।।

तुला - अथ तपोभेदान् दर्शयन्नाह - 'अणे'त्यादि, (१) - अनशनं-अभोजनं यावत्कथिकेत्वरभेदं, तत्र यावत्कथिकं पादपोपगमनमिङ्गितमरणं भक्तपरिज्ञा चेति त्रिधा, तत्राद्यं सर्वथा परिस्पन्दवर्जितप्रतिकर्म चतुर्विधाहार-त्यागनिष्पन्नं च, द्वितीयमपि तथैव, नवरमिङ्गितदेशे चङ्क्रमणाद्यपरिहारवत्, तृतीयं तु सप्रतिकर्म त्रिविधचतुर्विधा-हारत्यागनिष्पन्नं चेति, इत्वरं पुनश्चतुर्थभक्तादिषण्मासान्तं

(२) - तथोनोदरस्य - स्तोकाहाराभ्यवहारादपरिपूर्णोदरस्य करणमूनोदरिका, सा च द्रव्यतो द्वात्रिंशत्कवलमान-पूर्णाहारापेक्षयैकादिकवलन्यूनाहारग्रहणतो- ऽनेकविधा, भावेनोनोदरिका तु कषायत्यागः ।

(३) - तथा वृत्तेः-भिक्षाचर्यायाः सङ्क्षेपणं-अल्पताकरणं वृत्तिसङ्क्षेपणं द्रव्याद्यभिग्रहग्रहणं, तत्र द्रव्यतो लेपकृदेव इतरदेव वा द्रव्यं मया ग्राह्यमित्यादि, एवं क्षेत्रतः स्वग्राम एव परग्राम एव वा एतावत्स्वेव वा गृहेषु यल्लप्स्यत इत्यादि, एवं कालतः पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽपराह्णे वा, भावतः पुनरुत्क्षिप्तमेव वा निक्षिप्तमेव वा गायतो वा रुदतो वा यल्लप्स्यत इत्यादि ।

(४) - तथा रसानां-दुग्धदध्यादीनां सर्वेषामन्यतरेषां वा त्यागः त्यजनं रसत्यागः ।

(५) - तथा कायस्य देहस्य क्लेशः-औचित्येन विबाधनं कायक्लेशो वीरासनोत्कटुकासनगोदोहिकाशीतवातातप-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनशनं गच्छे स्थितस्यैव तीव्रवेदनीयोदयादुद्भूत दुस्सहवेदनस्याहारपरिहारेण भवति, यदि वा वयःपरिणामे कृतकृत्यस्य यदाह -

[3]**निप्फाइया य सीसा गच्छो परिपालिओ महाभागो ।**
अब्भुज्जओ विहारो, अहवा अब्भुज्जअं मरणम् ।। [ ] इति ।

इङ्गिनीपादपोपगमे तु एकाकिनः शून्यारण्यतीर्थादिषु जायते, केवलमिङ्गिनी सचेष्टस्य, पादपोपगमं तु निरुद्धबाह्यचेष्टस्य ।

(२)**ऊनोदरता** द्वात्रिंशतः कवलेभ्यो यथाशक्ति शनैः शनैराहारं न्यूनयति यावदष्टकवलाहार इति । इदं पुरुषापेक्षं, स्त्रीणांस्त्वष्टाविंशतिकवला आहारप्रमाणमतस्तासामष्टाविंशतेरारभ्योनोदरता भावनीया । यदाह -

[4]**बत्तीसं खलु कवला आहारो कुच्छिपूरओ भणिओ ।**
पुरिसस्स महिलियाए अट्ठावीसं भवे कवला ।।१।। [प्रवचनसारो० गा० ८६६]

(३)**वृत्तिसङ्क्षेपणम्** - वृत्तिर्वर्त्तनं भिक्षा, तस्याः सङ्क्षेपणं परिमितग्रहणं, दत्तिभिर्भिक्षाभिश्च । अत्रैव द्रव्यक्षेत्रकालभावाभिग्रहा अन्तर्भावनीयाः ।

(४)**रसत्यागः** - रसाः क्षीरदधिघृततैलगुडावगाह्यप्रभृतयो विकारहेतवस्तेनैव विकृतिशब्दवाच्याः, तेषां त्यागो वर्जनं धर्म्मबुद्धया करणनिग्रहाय च रसत्यागः ।

(५)**कायक्लेशः** कायो देहस्तस्य शास्त्राविरोधेन बाधनं क्लेशः । दुर्लभलाभबुद्धया कायोत्सर्गोत्कटिकासनकेशोल्लुञ्चनातापनादिषु दुष्करकृत्येषु वर्त्तनम् ।

सहनशिरोलोचादिरनेकविधः ।

(६) - तथा संलीनस्य-संवृतस्य भावः संलीनता, सा चेन्द्रियकषाययोगविविक्तचर्याभेदाच्चतुर्धा, तत्राद्यत्रयं प्रतीतं, विविक्तचर्या तु स्त्रीपशुपण्डककुशील-वर्जनवद्याश्रयाश्रयं चशब्दः समुच्चये, बाह्यं-अनाभ्यन्तरं, आसेव्यमान-स्यास्य लोकैरपि ज्ञायमानत्वात् स्थूलदृष्टीनामपि च कुतीर्थिकानां तपस्तथा प्रतीतत्वात्, तपः प्रतीतं भवतिस्यात् ।।

- पञ्चा. श्री अभय. १९/२ वृत्तौ ।।

स्वोपज्ञवृत्तियुते धर्मसङ्ग्रहे तृतीयाधिकारे गा. १२५ वृत्तौ तपाचारस्वरूपम् प्रोक्तं तद् दृश्यताम् ।
दृश्यतां तत्त्वार्थसूत्रे (९/१९) तद्भाष्ये सिद्धसेनगणिविरचितायां तद्वृत्तौ च ।।
दृश्यतां पञ्चवस्तुके गा. ८४५ वृत्तौ बाह्यतपस्वरूपम् ।।

3. **छाया** - निष्पादिताश्च शिष्या गच्छः परिपालितो महाभागः । अभ्युद्यतो विहारः अथवा अभ्युद्यतं मरणम् ।।
तुला - यो. शा. प्र. ४/८९ वृत्तौ ।। धर्म सं. तृतीयाधिकारे गा. १५०/१५१ वृत्तौ ।।

4. **छाया** - द्वात्रिंशत् खलु कवला आहारः कुक्षिपूरको भणितः । पुरुषस्य महिलाया अष्टाविंशतिर्भवेयुः कवलाः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६)**संलीनता** - इन्द्रियनोइन्द्रियसंगुप्तता । तत्र रागद्वेषहेतुभ्यो मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिभ्यो संहृतव्यापाराणामिन्द्रियाणामात्मन्येव संयोजनमिन्द्रियसंलीनता । तथा आर्त्तरौद्रध्यानपरिहारेण क्रोधादीनामुदयनिरोधः, उदयप्राप्तानां च वैफल्यापादनं नोइन्द्रियसंलीनता ।

तदिदं षट्प्रकारं बाह्यं तपः । बाह्यत्वं च बाह्यद्रव्यापेक्षत्वात्, परप्रत्यक्षत्वात्, कुतीर्थिकैर्गृहस्थैश्च क्रियमाणत्वाच्च । अस्माच्च षड्विधादपि तपसः सङ्गत्याग-शरीरलाघव-इन्द्रियविजय-संयमरक्षा-कर्म्मनिर्जरागुणोदयाः ।।१८९।।

आभ्यन्तरं तपोऽधिकृत्याह -

[1]**पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।**
झाणं उस्सग्गो वि य अब्भिंतरओ तवो होइ ।।१९०।।

[2]तत्र प्रायो बाहुल्येन चित्तं विशोधना **प्रायश्चित्तम्,** तच्च दशविधम् । [3]आलोचनं [4]प्रतिक्रमणं [5]मिश्रं

गाथा-१९० 1. **तुला** - दशवै. नि. ४८ ।। - पञ्चा. १९/३ ।। पञ्चव. गा. ८४६ ।। प्रव. सा. गा. २७१ प्रायश्चित्तं वैयावृत्त्यं स्वाध्यायो विनयोऽपि च । व्युत्सर्गोऽथ शुभं ध्यानं षोढेत्याभ्यन्तरं तपः ।। - यो. शा. प्र. ४/९० ।। प्रायश्चित्तध्याने वैयावृत्त्यविनयावथोत्सर्गः । स्वाध्याय इति तपः षट्प्रकारमाभ्यन्तरं भवति ।। - प्रशम. श्लो. १७६ ।।

2. **तुला** - मूलोत्तरगुणेषु स्वल्पोऽप्यतीचारश्चित्तं मलिनयतीति तच्छुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तम्, प्रकर्षेण अयते गच्छत्यस्मादाचारधर्म इति प्रायो मुनिलोकस्तेन चिन्त्यते स्मर्य्यतेऽतिचारविशुद्ध्यर्थमिति निरुक्तात् प्रायश्चित्तमनुष्ठानविशेषः । अथवा प्रायो बाहुल्येन व्रतातिक्रमं चेतसि सञ्जानीते चेतंश्च न पुनराचरतीत्यतः प्रायश्चित्तम् । अथवा प्रायोऽपराध उच्यते, स येन चेतसि विशुध्यति तत् प्रायश्चित्तम् ।

प्रायश्चित्तं च दशविधम् - आलोचनम्, प्रतिक्रमणम्, मिश्रम्, विवेकः, व्युत्सर्गः, तपः, छेदः, मूलम्, अनवस्थाप्यता, पाराञ्चितकमिति । तत्राऽऽलोचनं गुरोः पुरतः स्वापराधस्य प्रकटनम् । तच्चासेवनानुलोम्येन प्रायश्चित्तानुलोम्येन च । आसेवनानुलोम्यं येन क्रमेणातिचार आसेवितस्तेनैव क्रमेण गुरोः पुरतः प्रकटनम् । प्रायश्चित्तानुलोम्यं च गीतार्थस्य शिष्यस्य भवति । स हि पञ्चक-दशक-पञ्चदशकक्रमेण प्रायश्चित्तानि गुरुलघ्वपराधानुरूपाणि विज्ञाय यो योऽपराधो गुरुस्तं तं प्रथममालोचयति, पश्चाल्लघुं लघुतरं च । अतीचारमुख्यपरिहारेण प्रतीपं क्रमणमपसरणं प्रतिक्रमणं, मिथ्यादुष्कृतसंप्रयुक्तेन पश्चात्तापेन 'पुनरेवं न करिष्यामि' इति प्रत्याख्यानम् । मिश्रमालोचनप्रतिक्रमणरूपम्, प्रागालोचनं पश्चाद् गुरुसन्दिष्टेन प्रतिक्रमणम् । विवेकः संसक्तान्न-पानो-पकरण-शय्यादिविषयस्त्यागः ।

व्युत्सर्गोऽनेषणीयादिषु त्यक्तेषु गमनागमन-सावद्यस्वप्रदर्शन-नौसन्तरणोच्चारप्रस्रवणेषु च विशिष्टः प्रणिधानपूर्वकः कायवाङ्मनोव्यापारत्यागः । तपस्तु च्छेदग्रन्थानुसारेण जीतकल्पानुसारेण वा येन केनचित् तपसा विशुद्धिर्भवति तत् तद् देयमासेवनीयं च । छेदस्तपसा दुर्दमस्याहोरात्रपञ्चकादिना क्रमेण श्रमणपर्यायच्छेदनम् । मूलं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[4]विवेको [5]व्युत्सर्गः [6]तपः [7]छेदः [8]मूलं [9]अनवस्थाप्यता [10]पाराञ्चितकमिति ।।

महाव्रतानां मूलत आरोपणम् । तथा अवस्थाप्यत इत्यवस्थाप्यः तन्निषेधादनवस्थाप्यः, तस्य भावोऽनवस्थाप्यता दुष्टतरपरिणामस्याऽकृततपोविशेषस्य व्रतानामारोपणम्, तपःकर्म चास्योत्थाननिषदनादिकर्मकरणाशक्तिपर्य्यन्तम् । स हि यदोत्थानाद्यपि कर्तुमशक्तस्तदाऽन्यान् प्रार्थयते - 'आर्य्याः ! उत्थातुमिच्छामि' इत्यादि । ते तु तेन सह संभाषणकुर्वाणास्तत्कृत्यं कुर्वन्ति, यदाह –

"उट्ठिज्ज निसीइज्ज व भिक्खं हिंडिज्ज मत्तगं पेहे । कुविअपिअबंधवस्स व करेइ इयरो वि तुसिणीओ ।।१।।" एतावति तपसि कृते तस्योत्थापना क्रियते । तथा पारमन्तं प्रायश्चित्तानां तत उत्कृष्टतरप्रायश्चित्ताभावात्, अपराधानां वा पारमञ्चति गच्छतीत्येवंशीलं पाराञ्चितं तदेव पाराञ्चितकम् । तच्च महत्यपराधे लिङ्ग-कुल-गण-सङ्घेभ्यो बहिष्करणम् ।

एतच्च छेदपर्य्यन्तं प्रायश्चित्तं व्रणचिकित्सातुल्यं पूर्वसूरिभिरभिहितम् । तत्र तनुरतीक्ष्णमुखो रुधिरमप्राप्तस्त्वग्लग्नः शल्यो देहादुद्धियते, न तत्र व्रणस्य मर्दनं विधीयते शल्यात्पत्वेन व्रणस्याल्पत्वात् । द्वितीये तु लग्नोद्धृतशल्ये मर्दनं क्रियते न तु कर्णमलेन पूर्य्यते । तृतीये तु दूरतरगतशल्ये शल्योद्धार-मर्दन-कर्णमलपूरणानि क्रियन्ते । चतुर्थे तु शल्याकर्षण-मर्दन-रुधिरगालनानि वेदनापहारार्थं क्रियन्ते । पञ्चमे तु गाढतरावगाढशल्योद्धरणम्, ततो गमनादिचेष्टा निवार्य्यते । यावच्छल्येन मांसादि दूषितं तावत् छिद्यते, गोनसभक्षितादौ पादवल्मीके वा, पूर्वोक्तक्रियाभिरनुपशमाद् विसर्पति अङ्गच्छेदः सहास्थ्ना शेषरक्षार्थं विधीयते च । एवं द्रव्यव्रणदृष्टान्तेन मूलोत्तरगुणरूपस्य चारित्रपुरुषस्यापराधरूपो व्रण आलोचनादिना छेदान्तेन प्रायश्चित्तविधिना शोधनीयः,

यदाहुर्भगवद्भद्रबाहुस्वामिपादाः -

"[1]तणुओ अतिक्खतुंडो असोणिओ केवलं तया लग्गो । उद्धरिउं अवयज्झइ सल्लो न मलिज्जइ वणो उ ।।१।। लग्गुद्धियम्मि बीए मलिज्झइ परं अदूरगे सल्ले । उद्धरण-मलण-पूरण-दूरयरगए तइयगम्मि ।।२।। मा वेयणा उ तो उद्धरित्तु गालिंति सोणिअ चउत्थे । रुज्झउ लहुं ति चेट्ठा वारिज्जइ पंचमे वणिणो ।।३।। रोहेइ वणं छट्ठे हिअमिअभोई अभुंजमाणो वा । तत्तियमेत्तं छिज्जइ सत्तमए पूइमंसाइ ।।४।। तह वि अठायमाणे गोणसखा इयाए रप्फए वा वि । कीरइ तयंगछेओ सअट्ठिओ सेसरक्खट्ठा ।।५।। मूलोत्तरगुणरूवस्स ताइणो परमचरणपुरिसस्स अवराहसल्लपहवो भाववणो होइ नायव्वो ।।६।। भिक्खेरियाइ सुज्झइ अइयारो कोइ वियडणाए उ । बीओ हाऽसमिओ मि त्ति कीस सहसा अगुत्तो अ ।।७।। सद्दाइएसु रागं दोसं च मणे गओ तइअगम्मि । नाउं अणेसणिज्जं भत्ताइविगिंचणे चउत्थे ।।८।। उस्सग्गेण वि सुज्झइ अइयारो कोइ कोइ उ तवेणं । तेण वि असुज्झमाणे छेयविसेसा विसोहिंति ।।९।।"

- आव. नि. गा. १४३४-१४४२ ।।

"[1]तणुओ अतिक्खतुंडो' इति तनुरेव तनुकं कृशमित्यर्थः, न तीक्ष्णतुण्डमतीक्ष्णमुखमिति भावना । नास्मिन् शोणितं विद्यत इत्यशोणितम्, केवलं नवरं त्वग्लग्नम्, उद्धृत्य अवउज्झति सल्लो त्ति परित्यज्यते शल्यम्, प्राकृतशैल्या तु पुलिङ्गनिर्देशः सल्लो, 'न मलिज्जइ वणो य' न च मृद्यते व्रणः अल्पत्वात् शल्यस्येति गाथार्थः । प्रथमशल्यजे अयं विधिः, द्वितीयादिशल्यजे पुनरयम् - लग्गुद्धियम्मि, लग्नमुद्धृतं लग्नोद्धृतम्, तस्मिन् द्वितीये, कस्मिन् ? अदूरगते शल्य इति योगः, मनाग् दृढलग्न इति भावना । अत्र 'मलिज्जइ परं' ति मृद्यते यदि परं व्रण इति उद्धरणं शल्यस्य, मर्दनं व्रणस्य, पूरणं कर्णमलादिना तस्यैवैतानि क्रियन्ते दूरगते तृतीये शल्य इति गाथार्थः । 'मा वेयणा उ तो उद्धरेत्तु गालंति सोणिय चउत्थे । रुज्झउ लहुं ति चिट्ठा वारिज्जइ' इति मा वेदना भविष्यतीति तत उद्धृत्य शल्यं गालयन्ति शोणितं चतुर्थे शल्य इति । तथा रुह्यतां शीघ्रमिति चेष्टा परिस्पन्दादिलक्षणा वार्यते निषिध्यते । पञ्चमे शल्ये उद्धृते, व्रणोऽस्यास्तीति व्रणी

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]तत्राऽऽलोचनं गुरोः पुरतः आसेवनानुलोम्येन प्रायश्चित्तानुलोम्येन वा स्वापराधस्य प्रकटनम् ।

प्रमाददोषव्युदास - भावप्रसाद-नैःशल्या-ऽनवस्थाव्यावृत्ति-मर्यादाऽत्याग-संयमदार्ढ्या-ऽऽराधनादि प्रायश्चित्त-फलम् ।

अथ वैयापृत्त्यम् । व्यापृतो व्यापारप्रवृत्तः प्रवचनोदितक्रियानुष्ठानपरः, तस्य भावः कर्म वा वैयापृत्त्यम् । व्याधि-परीषह-मिथ्यात्वाद्युपनिपाते तत्प्रतीकारो बाह्यद्रव्यासंभवे स्वकायेन तदानुकूल्यानुष्ठानं च । तच्चाचार्योपाध्याय-स्थविर-तपस्वि-शैक्ष-ग्लान-साधर्मिक-कुल-गण-सङ्घलक्षणविषयभेदेन दशधा । तत्र स्वयमाचरति परांश्चाचारयति, आचर्यते सेव्यत इति वाऽऽचार्यः । स पञ्चधा - प्रव्राजकाचार्यः, दिगाचार्यः, उद्देशाचार्यः, समुद्देशानुज्ञाचार्यः, आम्नायार्थ-वाचकाचार्य इति । तत्र सामायिकव्रतादेरारोपयिता प्रव्राजकाचार्यः । सचित्ताचित्तमिश्रवस्त्वनुज्ञायी दिगाचार्यः । प्रथमत एव श्रुतमुद्दिशति यः स उद्देशाचार्यः । उद्देष्टुर्गुर्वभावे तदेव श्रुतं समुद्दिशत्यनुजानीते वा यः सः समुद्देशानुज्ञाचार्यः । आम्नायमुत्सर्गाऽपवादलक्षणमर्थं वक्ति यः स प्रवचनार्थकथनेनानुग्राहकोऽक्षनिषद्याद्यनुज्ञायी आम्नायार्थवाचकः । आचारगोचरविनयं स्वाध्यायं चाचार्यालब्धानुज्ञाः साधव उप समीपे ऽधीयतेऽस्मादित्युपाध्यायः । स्थविरो वृद्धः । स श्रुत-पर्याय-वयोभेदात् त्रिविधः । श्रुतस्थविरः समवायाङ्गं यावदध्येता, पर्यायस्थविरो यस्य दीक्षितस्य विंशत्यादीनि वर्षाणि, वयःस्थविरः सप्तत्यादिवर्षजीवितः । विकृष्टं दशमादिकिञ्चिन्यूनषण्मासान्तं तपः कुर्वस्तपस्वी । अचिरप्रव्रजितः शिक्षार्हः शैक्षः । रोगादिक्लिष्टशरीरो ग्लानः । साधर्मिकाः समानधर्माणो द्वादशविधसम्भोगवन्तश्च । बहूनां गच्छानामेकजातीयानां समूहः कुलं चान्द्रादि । गच्छस्त्वेकाचार्यप्रणेयः साधुसमूहः । कुलसमुदायो गणः कोटिकादिः । साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका-समुदायः सङ्घः । एषामाचार्यादीनामन्न-पान-वस्त्र-पात्र-प्रतिश्रय-पीठ-फलक-संस्तारकादिभिर्धर्मसाधनैरुपग्रहः, शुश्रूषा-भैषजक्रिया, कान्तारदुर्भिक्षरोगोपसर्गेषु परिपालनम् एवमादि वैयापृत्त्यम् ।

अथ स्वाध्यायः । सुष्ठु मर्यादया कालवेलापरिहारेण पौरुष्यपेक्षया वाऽध्ययनं स्वाध्यायः । स पञ्चविधः - वाचनम्, प्रच्छनम्, अनुप्रेक्षा, आम्नायः, धर्मोपदेशश्चेति । तत्र वाचनं शिष्याध्यापनम् । प्रच्छनं ग्रन्थार्थयोः सन्देहच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा परानुयोगः । अनुप्रेक्षा ग्रन्थार्थयोरेव मनसाऽभ्यासः । आम्नायो घोषविशुद्धं परिवर्तनम्, गुणनम्, रुपादानमिति यावत् । धर्मोपदेशोऽर्थोपदेशो व्याख्यानमनुयोगो वर्णनमिति यावत् ।

अथ विनयः । विनीयते क्षिप्यतेऽष्टप्रकारं कर्मानेनेति विनयः । स चतुर्धा ज्ञानदर्शनचारित्रोपचारभेदात् । तत्र सबहुमानं ज्ञानग्रहणाऽभ्यास-स्मरणादि-र्ज्ञानविनयः । सामायिकादौ लोकबिन्दुसारपर्यन्ते श्रुते भगवत्प्रकाशित-पदार्थान्यथात्वासम्भवात् तत्त्वार्थश्रद्धानिःशङ्कितत्वादिना दर्शनविनयः । चारित्रवतश्चारित्रे समाहितचित्तता चारित्रविनयः,

---

तस्य व्रणिनः रौद्रतरत्वाच्छल्यस्येति गाथार्थः ।। 'रोहेइ वणं छट्ठे' इति रोहयति व्रणं षष्ठे शल्ये उद्धृते किम् ? पूतिमांसादीति गाथार्थः । तहवि य अठायेति तथापि च अट्ठायमाणे त्ति अतिष्ठति सति विसर्पति इत्यर्थः, गोनसभक्षितादौ रुष्क (रुम्फ) कैर्वापि, क्रियते तदङ्गच्छेदः सहास्थिकः शेषरक्षार्थमिति गाथार्थः । एवं तावद् द्रव्यव्रणस्तद्भिकित्सा च प्रतिपादिता ।

अधुना भावव्रणः प्रतिपाद्यते - 'मूलुत्तरगुणरूवस्स' गाहा । इयमन्यकर्तृकी सोपयोगा चेति व्याख्यायते । मूलगुणाः प्राणातिपातादिविरमणलक्षणाः, पिण्डविशुद्ध्यादयस्तु उत्तरगुणाः, एते एवं रूपं यस्य स मूलगुणोत्तरगुणरूपस्तस्य, तायिनः, परमश्चासौ चरणपुरुषश्चेति समासः, तस्य अपराधाः गोचरादिगोचराः, त एव शल्यानि, तेभ्यः प्रभवः सम्भवो यस्य स तथाविधः भावव्रणो भवति ज्ञातव्यः इति गाथार्थः । - इति आवश्यकसूत्रस्य हारिभद्र्यां वृत्तौ पृ. ७६५-७६६ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२]अतीचाराभिमुख्यपरिहारेण प्रतीपं क्रमणमपसरणं प्रतिक्रमणम्, तच्च मिथ्यादुष्कृत-सम्प्रयुक्तेन पश्चात्तापेन पुनरेवं न करिष्यामीति प्रत्याख्यानम् ।

प्रत्यक्षेष्वाचार्यादिष्वभ्युत्थाना-ऽभिगमना-ऽञ्जलिकरणादिरुपचारविनयः, परोक्षेष्वपि काय-वाङ्-मनोभिरञ्जलिक्रिया-गुणसंकीर्तना-ऽनुस्मरणादिरुपचारविनयः ।

अथ व्युत्सर्गः । व्युत्सर्जनीयस्य परित्यागो व्युत्सर्गः । स द्विविधः-बाह्य आभ्यन्तरश्च । तत्र बाह्यो द्वादशादिभेदस्योपधेरतिरिक्तस्य अनेषणीयस्य संसक्तस्य वाऽन्नपानादेर्वा त्यागः, मृत्युकाले शरीरस्य च त्यागः । ननु व्युत्सर्गः प्रायश्चित्तमध्य एवोक्तस्तत् किं पुनरत्र वचनेन ? सत्यम्, सोऽतिचारविशुद्ध्यर्थ उक्तः, अथ तु सामान्येन निर्जरार्थ इत्यपौनरुक्त्यम् ।

अथ शुभध्यानम् । शुभमार्त्त-रौद्रविवेकेन शुभरूपं धर्म्य-शुक्लरूपं ध्यानं शुभध्यानम् । अत्रार्तरौद्रध्याने उक्तपूर्वे, धर्म्यं शुक्लं च शुभध्याने वक्ष्येते । इत्यनेन प्रकारेण षोढाऽऽभ्यन्तरं तपः इदं चाभ्यन्तरस्य कर्मणस्तापकत्वात्, अभ्यन्तरैरेवान्तर्मुखैर्भगवद्भिर्ज्ञायमानत्वाच्चाभ्यन्तरम् । ध्यानस्य सर्वेषां तपसामुपरि पाठो मोक्षसाधनेष्वस्य प्राधान्यख्यापनार्थः, यदाह - "संवर-विणिज्जराओ मोक्खस्स पहो तवो पहो तासिं । ज्झाणं च पहाणगं तवस्स तो मोक्खहेऊ तं ।।१।। - ध्यानशतके गा. ९६ ।। यो. शा. प्र. ४/९० वृत्तौ ।।

तुला - उक्तं बाह्य तपः, अथान्तरमाह - 'पाये'त्यादि, प्रायश्चित्तं-उक्तशल्यार्थमालोचनादिप्रायुक्तं तथा विनीयते-अपोह्यते कर्मानेनेति विनयः, स च ज्ञानदर्शनचारित्रमनोवाक्कायोपचारभेदात् सप्तधा, तत्राद्यो मत्यादीनां श्रद्धानभक्ति-बहुमानतद्दृष्टार्थभावनाविधिग्रहणाभ्यासरूपः १, द्वितीयस्तु सम्यग्दर्शनगुणाधिकेषु शुश्रूषाऽनाशातनाभेदात् द्वेधा, तयोश्चाद्यः [१]सत्कारा-[२]ऽभ्युत्थान-[३]सन्माना-[४]ऽसनाभिग्रहा-[५]ऽऽसनानुप्रदान-[६]कृतिकर्मा-[७]ऽञ्जलिग्रहा-[८]ऽऽगच्छदनु-गमन-[९]स्थितपर्युपासन-[१०]गच्छदनुव्रजनभेदाद्दशधा प्रसिद्ध एव, नवरं सत्कारो-वन्दनादिः, गौरव्यदर्शने विष्टरत्यागः, सन्मानोवस्त्रादिपूजनं, आसनाभिग्रहः पुनः तिष्ठत एवासनानयनपूर्वकमुपविशतात्रेति भणनं, आसनानुप्रदानं-आसनस्य स्थानान्तरसञ्चारणं, आगच्छतोऽनुगमनं-अभिमुखयानमिति, अनाशातनाविनयस्तु पञ्चदशधा, तद्यथाजिनधर्मसूरि-वाचकस्थविरकुलगणसङ्घसांभोगिकक्रियाज्ञानपञ्चकानामनाशातनाभक्तिबहुमानवर्णवादाश्चेति, अत्र च क्रिया आस्तिक्य-मुच्यते २, चारित्रविनयस्तु सामायिकचारित्राणां श्रद्धानकरणप्ररूपणानि ३ मनोवाक्कायविनयास्तु आचार्यादिष्वकुशलानां चित्तादीनां सदा निरोधः कुशलानां पुनरुदीरणेति ६, उपचारविनयस्तु सप्तधा - अभ्यासासनं १ छन्दोऽनुवर्त्तनं २ कृतप्रतिकृतिः ३ कारितनिमित्तकारणं ४ दुःखार्तगवेषणं ५ देशकालज्ञानं ६ सर्वत्रानुमति ७ चेति, प्रतीतश्चायं, नवरं कृतप्रतिकृतिर्नाम विनयात्प्रसादिताः सूरयः श्रुतं दास्यन्तीत्यभिप्रायेणाशनदानादियलः, कारित-निमित्तकरणं तु - सम्यगर्थपदमध्यापितस्य विशेषेण विनये वृत्तिस्तदर्थानुष्ठानं चेति, दुःखार्त्तगवेषणं तु - दुःखितस्य प्रतीकारकरणमिति ७ २ । तथा व्यावृत्तस्य - अशनाददानव्यापारवतो भावः कर्म वा वैयावृत्त्यं, तच्चाचार्योपाध्यायस्थविरतपस्विग्लानशैक्ष-साधर्मिककुलगणसङ्घभेदाद्दशधा । तथैवेति समुच्चये, सुष्ठु आ - मर्यादयाऽध्यायः-अध्ययनं स्वाध्यायः, स च पञ्चधा - वाचनापृच्छनापरिवर्तनानुप्रेक्षाधर्मकथाभेदादिति ४ । तथा ध्यातिर्ध्यानं-अन्तर्मुहूर्तमात्रं चित्तैकाग्रता, तच्चार्तरौद्र-धर्म्यशुक्लभेदाच्चतुर्धा, तत्राद्ययोर्भवहेतुत्वादितरयोश्च मुक्तिनिमित्तत्वादितरे एव तपः ५ । तथा उत्सर्जनंत्यजनमुत्सर्गः, स च द्वेधा-द्रव्यतो भावतश्च, द्वावपि चतुर्धा, तत्र द्रव्यतश्चतुर्धा गणशरीरोपध्याहारभेदात्, भावतस्तु चतुर्धा

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३)मिश्रमालोचनप्रतिक्रमणरूपं, प्रागालोचनं पश्चाद् गुरुसन्दिष्टेन विधिना प्रतिक्रमणम् ।

(४)विवेकः संसक्तान्नपानोपकरणशय्यादिविषयस्त्यागः ।

(५)व्युत्सर्गोऽनेषणीयादिषु त्यक्तेषु गमनागमन-सावद्यस्वप्नदर्शन-नौसन्तरणोच्चारप्रश्रवणेषु च विशिष्टप्रणिधानपूर्वकः कायवाङ्मनो-व्यापारपरिहारः ।

(६)तपस्तु छेदग्रन्थानुसारेण जीतकल्पानुसारेण वा येन केनचित्तपसा विशुद्धिर्भवति तत्तद् देयमासेवनीयं च ।।७।।

(७)छेदस्तपसा दुर्दमस्य अहोरात्रपञ्चकादिना क्रमेण श्रमणपर्यायच्छेदनम् ।

(८)मूलं महाव्रतानां मूलत आरोपणम् ।

(९)अनवस्थाप्यता दुष्टपरिणामस्याकृततपोविशेषस्य व्रतानामनारोपणम् । तपःकर्म्म चास्योत्थाननिषदनादिकर्म्मकरणाशक्तिपर्यन्तम् । स हि यदोत्थानाद्यपि कर्तुमशक्तस्तदा अन्यान् प्रार्थयते, आर्या ! उत्थातुमिच्छामीत्यादि । ते तु तेन सह सम्भाषणमकुर्वाणास्तत्कृत्यं कुर्वन्ति । यदाह -

उट्ठिज्ज निसीइज्ज व भिक्खं हिंडिज्ज मत्तगं पेहे ।
कुवियपियबंधवस्स व करेइ इयरो वि तुसिणीओ ।।१।। [व्यवहारभाष्ये प्र. ३ गाथा-३६८]

एतावति तपसि कृते तस्योत्थापना विधीयते ।

(१०)तथा पारमन्तं प्रायश्चित्तानां, तत उत्कृष्टतरप्रायश्चित्ताभावात् । अपराधानां वा पारमञ्चति गच्छतीत्येवंशीलं पाराञ्चितं, तदेव पाराञ्चितकम् । तच्च महत्यपराधे लिङ्गकुलगणसङ्घेभ्यो बहिःकरणं ।

मुक्तिनिमित्तत्वादितरे एव तपः ५ । तथा उत्सर्जनं-त्यजनमुत्सर्गः, स च द्वेधा-द्रव्यतो भावतश्च, द्वावपि चतुर्धा, तत्र द्रव्यतश्चतुर्धा गणशरीरोपध्याहारभेदात्, भावतस्तु चतुर्धा चित्तकोपाधित्यागरूपत्वादस्य ६ । 'अब्भिंतरउ' त्ति आभ्यन्तरकं-अबाह्यं, लौकिकैः, प्रायो ऽनभिलक्ष्यत्वात्तंत्रान्तरीयैर्भावतोऽनासेव्यमानत्वान्मोक्षप्राप्त्यन्तरङ्गत्वाच्च तपो-निर्जराहेतुर्भवति-स्यादिति गाथार्थः ।। - पञ्चा. अभय. १९/३ वृत्तौ ।।

स्वोपज्ञवृत्तियुते धर्मसङ्ग्रहे तृतीयाधिकारे गा. १२५ वृत्तौ तपाचारस्वरूपं प्रोक्तं तद् दृश्यताम् ।

दृश्यतां तत्त्वार्थसूत्रे (९/२०-४६) तद्भाष्ये सिद्धसेनगणिविरचितायां तद्वृत्तौ च ?

दृश्यतां पञ्चवस्तुके गा. ८४६ वृत्तौ अभ्यन्तरतपस्वरूपम् ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतच्छेदपर्यन्तं प्रायश्चित्तं व्रणचिकित्सातुल्यं पूर्वसूरिभिरभिहितम् । तत्र तनुरतीक्ष्णमुखो रुधिरमप्राप्तस्त्वचालग्नः शल्यो देहादुद्धियते । न तत्र व्रणस्य मर्दनं विधीयते, शल्याल्पत्वेन व्रणस्याल्पत्वात् । द्वितीये तु लग्नोद्धृतशल्ये मर्दनं क्रियते, न तु कर्णमलेन पूर्यते । तृतीये तु दूरतरगतशल्ये शल्योद्धारमर्दनकर्णमलपूरणानि क्रियन्ते । चतुर्थे तु शल्याकर्षणमर्दनरुधिरगालनानि वेदनाऽपहारार्थं क्रियन्ते । पञ्चमे तु गाढतरावगाढशल्योद्धरणं ततो गमनादिचेष्टा निवार्यते । षष्ठे हितमितभोजनो अभोजनो वा शल्योद्धारानन्तरं भवति । सप्तमे तु शल्योद्धारानन्तरं यावच्छल्येन मांसादि दूषितं तावच्छिद्यते । गोनसभक्षितादौ पादवल्मीके वा पूर्वोक्तक्रियाभिरनुपशमाद् विसर्प्पति अङ्गच्छेदः सहाऽस्था शेषरक्षार्थं च विधीयते । एवं द्रव्यव्रणदृष्टान्तेन मूलोत्तरगुणरूपस्य चारित्रपुरुषस्यापराधरूपो व्रण आलोचनादिना छेदान्तेन प्रायश्चित्तविधिना शोधनीयः । यदाहुर्भगवद्भद्रबाहुस्वामिपादाः –

तणुओ अतिक्खतुंडो असोणिओ केवलं तयालग्गो ।
उद्धरिउं अवणिज्जइ सल्लो न मलिज्जइ वणो उ ।।१।।

लग्गोद्धियम्मि बीए मलिज्जइ परं अदूरगे सल्ले ।
उद्धरण-मलण-पूरण दूरयरगए तइयगम्मि ।।२।।

मा वेयणा उ तो उद्धरित्तु गालिंति सोणिय चउत्थे ।
रुज्झउ लहुं ति चेट्ठा वारिज्जइ पंचमे वणिणो ।।३।।

रोहेइ वणं छट्ठे हियमियभोई अभुंजमाणो वा ।
तित्तियमित्तं छिज्जइ सत्तमए पूइमंसाइ ।।४।।

तह वि य अठायमाणे गोणसखइयाइ रप्फए वा वि ।
कीरइ तयंगछेओ सअट्ठिओ सेसरक्खट्ठा ।।५।।

मूलोत्तरगुणरूवस्स ताइणो परमचरणपुरिसस्स ।
अवराहसल्लपहवो भाववणो होइ नायव्वो ।।६।। [आवश्यकनिर्युक्तौ गाथा-१४३४-१४३९]

प्रमाददोषव्युदास - भावप्रसाद - नैःशल्य - अनवस्थाव्यावृत्ति - मर्यादाऽत्याग-संयमदार्ढ्याऽऽराधनादि प्रायश्चित्तफलम् ।

(२)**विनयस्तु** विनयद्वार एव व्याख्यास्यते ।।

(३)व्यापृतो व्यापारप्रवृत्तः प्रवचनोदितक्रियानुष्ठानपरस्तस्य भावः कर्म्म वा **वैयावृत्यम्** । तच्च

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- [१]आचार्य-[२]उपाध्याय-[३]स्थविर- [४]तपस्वि-[५]शैक्ष्य-[६]ग्लान-[७]साधर्मिक-[८]कुल-[९]गण-[१०]सङ्घलक्षण-भेदेन दशधा ।

[१]तत्र ज्ञानादिपञ्चविधमाचारं स्वयमाचरति परांश्चाचारयतीत्याचार्यः । [२]आचारगोचरं विनयं स्वाध्यायं चाचार्यलब्धानुज्ञाः साधव उप समीपे अधीयते अस्मादित्युपाध्यायः । [३]स्थविरो वृद्धः, स श्रुत-पर्याय-वयोभेदात् त्रिविधः, श्रुतस्थविरः समवायाङ्गं यावदध्येता, पर्यायस्थविरो यस्य दीक्षितस्य विंशत्यादीनि वर्षाणि, वयःस्थविरः सप्तत्यादिवर्षजीवितः । [४]विकृष्टं दशमादि किञ्चिन्यूनषण्मासान्तं तपः कुर्वंस्तपस्वी । [५]अचिरप्रव्रजितः शिक्षार्हः शैक्ष्यः । [६]रोगादि-कृष्टशरीरो ग्लानः । [७]साधर्म्मिकाः समानधर्म्माणो द्वादशविधसम्भोगवन्तश्च । [८]बहूनां गच्छाना-मेकजातीयानां समूहः कुलं चन्द्रादि, गच्छस्त्वेकाचार्यप्रणेयः साधुसमूहः । [९]कुलसमुदायो गणः कोटिकादिः । [१०]साधु-साध्वीश्रावकश्राविकासमुदायः सङ्घः । एषामाचार्यादीनामन्नपानवस्त्रपात्र-प्रतिश्रयपीठफलकसंस्तारकादिभिर्धर्म्मसाधनैरुपग्रहः शुश्रूषाभेषजक्रियाकान्तारोगोपसर्गेषु परि-पालनमेवमादिवैयावृत्त्यम् ।

[४-५]**स्वाध्यायध्याने** तु वाङ्मनोगुप्तिप्रस्तावे पुरस्ताद् व्याख्यास्येते ।

[६]अथ **व्युत्सर्गः** । व्युत्सर्जनीयस्य परित्यागो व्युत्सर्गः, स बाह्यो आभ्यन्तरश्च । तत्र बाह्यो द्वादशादिभेदस्योपधेरतिरिक्तस्यानेषणीयस्य संसक्तस्य च अन्नपानादेस्त्यागः । आभ्यन्तरः कषायाणां मृत्युकाले शरीरस्य च परिहारः, इत्यनेन प्रकारेण षोढा **आभ्यन्तरं तपः** । इदं चाभ्यन्तरस्य कर्म्मणस्तापकत्वादभ्यन्तरैरेवान्तर्मुखैर्भगवद्भिर्ज्ञायमानत्वादाभ्यन्तरम् ।।१९०।।

साम्प्रतमिदमेव तपस्तप्यमानं यथा सकामनिर्जराफलं भवति । तथाह –

बारसभेयं पि इमं न तविज्ज तवं इमेहिं कामेहिं ।
इहपरलोइयपूया-पहुत्तजसकित्तिपमुहेहिं ।।१९१।।
पुव्विं दुच्चिन्नाणं दुप्पडिकंताण वेयणिज्जाणं ।
सकडाणं कम्माणं केवलमुम्मूलणट्ठाए ।।१९२।।

इदं तु **तपो द्वादशभेदमपि अमीभिरुच्यमानैः कामैरभिलाषैर्न तप्येत** । कैः? इत्याह - **ऐहिकपारलौकिकपूजा-प्रभुत्व-यशः-कीर्तिप्रमुखैः** । किमुक्तं भवति - इहलोके ममास्मा-त्तपसः पूजासत्कारादयो भवन्त्विति बुद्ध्या न तपस्तप्येत, तथा परलोके दिव्यानि सुखानि मे

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायन्ताम्, प्रभुत्वमीशित्वं वा सम्पद्यताम्, तथा यशः सर्वदिग्व्यापकं जीवत्प्रसिद्धिरूपं वा प्रभवतु, कीर्त्तिरेकदिग्गामिनी लोकान्तरितप्रसिद्धिरूपा वा प्रादुर्भवतु इत्यादिभिरन्यैरप्येवम्प्रकारैः कामैर्न तपः कुर्वीत ।।१९१।।

तर्हि किंफलमाकलदुष्करस्यास्य तपसो विधानमित्याह - **केवलं स्वकृतानां कर्म्मणां** ज्ञानावरणादीनां समूलोन्**मूलनाय** । किम्भूतानां? **पूर्वम**नादौ संसारे **दुश्चीर्णानां** दुष्टाध्यवसायेन निबद्धानां । तथा **दुष्प्रतिक्रान्तानां** गुर्वादीनां पुरतोऽनालोचिताप्रतिक्रान्तानाम् । अत एव **वेदनीयानाम**वश्यवेद्यानाम् । एवंविधानां कर्म्मणामामूलत उच्छेदनार्थम् । यदाहुः -

न इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा । नो परलोगट्ठयाए तवमिहिट्ठिज्जा । नो कित्तिवन्नसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा । नन्नत्थ पुव्विं दुच्चिन्नाणं दुप्पडिकंताणं वेयणिज्जाणं कडाणं कम्माणं निज्जरट्ठाइ त्ति [ ]।।१९२।।

ननु दयादानादयोऽपि कर्म्मनिर्मूलनोपायाः सन्ति, तत् किमतिदुष्करतपःक्लेशेनेत्याशङ्क्याह -

न य अन्नो वि हु बलवं एयाण निकाइयाण कम्माणं ।
दुट्ठाण दलणहेऊ हविज्ज सुत्ते जओ वुत्तं ।।१९३।।

अमीषां च दुष्टाध्यवसायनिमित्तत्वेन **दुष्टानां कर्म्मणां न चान्यो** दयादानादिर्**दलनहेतु**र्विफलीकारकारणं । तर्हि निष्फलैव दयादानादिप्रवृत्तिः न, इत्याह - किम्भूतानां कर्म्मणां **निकाचितानां** बन्धस्य प्रकर्षावस्थामापन्नानाम् । अयमाशयः - स्पृष्ट[नि]धत्तबद्धानि हि कर्म्माणि विलीयन्त एव यमदमादिभिः, निकाचितानां तु कर्म्मणां दलने तप एव **बलवत्तरम्** । कथमिदमिति चेत्, **'सुत्ते जओ वुत्तं'** यद् यस्मात् सूत्रे समये एतदेवोक्तम् ।।१९३।। तदेव दर्शयति –

सव्वासिं पगडीणं परिणामवसादुवक्कमो भणिओ ।
पायमनिकाइयाणं तवसा उ निकाइयाणंपि ।।१९४।।

सर्वासामेव मूलोत्तरकर्म्म**प्रकृतीनां परिणामवशात्**शुभाध्यवसायप्रकर्षा**दुपक्रमः** प्रोज्ज्वलनं

गाथा-१९२ 1. **तुला -** चउव्विहा खलु तवसमाही भवइ । तं जहा - नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, नो कित्तिवन्नसद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, नऽन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा चउत्थं पयं भवइ । भवइ अ इत्थ सिलोगो - विविहगुणतवोरए य निच्चं, भवइ निरासए निज्जरट्ठिए । तवसा धुणइ पुराणपावगं जुत्तो सया तवसमाहिए ।। - दश. ९ अ. ४३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवद्भिरभिहितं । किन्तु **प्रायो** बाहुल्येन **अनिकाचितानां** स्पृष्टाद्यवस्थास्थितानां । **तुः** पुनरर्थे । **तपसा** पुर्न**निकाचितानामपि** प्रकृतीनामुपक्रमः संभवति । अत्र च निकाचितानामिति निकाचितानामिव निकाचितानां, निकाचनयोग्याऽध्यवसायप्रकर्षभूमिसामीप्यमारोपितानामित्यर्थः । अवश्यनिकाचितानां तु वेदनाभावान्न संक्षय इति ।।१९४।।

एवं च तपःप्रभावमवबुद्ध्य किं विधेयमित्याह –

तम्हा चिरचित्रकुकम्मसेल - दंभोलिसच्छहम्मि तवे ।
सययं समग्गमंगल - मूले सम्मं समुज्जमह ।।१९५।।

तस्मादेवं सत्यस्मिन् **तपसि सम्यक्** त्रिकरणशुद्ध्या **सततं समुद्यच्छत** । किम्भूते ? **चिरचीर्णकुकर्म्मशैलदम्भोलिप्रतिमे** भूरिभवोपात्तकुकर्म्मशिलोच्चयदलनकर्कशकुलिशसदृशे, पुनः किंविशिष्टे? **समग्रमङ्गलमूले** दूर्वाऽक्षतादिमङ्गलेभ्यः प्रकृष्टतमे **तपो मङ्गलमादिममिति श्रुतेः** ।।१९५।। तथा –

पसमंति विग्घसंघा दुद्दंता इंदिया य दम्मंति ।
सिज्झंति वंछियत्था तवेण देवा वसे हुंति ।।१९६।।

अनेन तपसा तदेतद् भवति । किं तद्? इत्याह-**विघ्नसङ्घाः** प्रत्यूहव्यूहाः **प्रशाम्यन्ति** । श्रूयते हि हिंस्रसत्त्वसम्पातभयङ्करे कान्तारे नलविप्रयुक्तायां दवदन्त्यास्तीव्रतपःप्रभावाद् विविधविघ्नोपशान्तिः । तथा **दुर्दान्तानि** इतरोपायैः प्रायशो दुर्निग्राह्याणि **इन्द्रियाण्यक्षाणि** तपसा **दाम्यन्ति**। तीव्रतपःप्रक्षीणधातूनां हि कुतः करणचापलप्रवृत्तिः ? तथा **सिध्यन्ति** निष्पद्यन्ते **वाञ्छितार्था** मनोऽभिलषितानि कार्याणि । सुलसा-देवक्यादीनामिव तपःप्रगुणितगीर्वाणानुग्रहादङ्गजलाभः । तथा **देवास्त्रिदशा** अपि **तपसा वशीभवन्ति** किङ्करत्वमाचरन्ति । कृष्णस्येव अष्टमतपोऽवसाने सुस्थितो लवणार्णवपतिः ।।१९६।।

पुनस्तपोमहिमानमुदीरयन्नाह –

आमोसहि-विप्पोसहि-खेलोसहि-जल्लओसहीपमुहं ।
जं जिणसमए सुम्मइ तं तवतरुणो फलं सयलं ।।१९७।।

गाथा-१९५ 1. **तुला** - धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो । देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो । - दश. द्रुम. अ. गा. १ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]तदेतत् **सकलमपि तपःपादपस्य फलम्** । यत् किम्? **यज्जिनसमये** अर्हदागमे **श्रूयते,** किं तद्? इत्याह - **आमर्शौषधिविप्रुडौषधिखेलौषधिजल्लौषधिप्रमुखम्** । किमुक्तं भवति - किल तपस्विनां हि तीव्रतपःप्रभावाद् देहस्य स्पर्श-विप्रुट्-खेल-जल्लाः नख-केश-रदादयश्चान्येऽपि देहावयवाः सर्वौषधिरूपतां भजन्ते । कस्तूरिकाकर्पूरादिभ्योऽप्यधिकतरपरिमलाश्च भवन्ति । तथाहि - मेघमुक्तं नदीवाप्यादिगतं च वारि तदङ्गसङ्गममात्रात् सर्वरोगहरं भवति । तथा तीव्रविष-मूर्च्छिता अपि तदीयाङ्गसङ्गिवातस्पर्शादेव देहिनः सपदि निर्विषीभवन्ति । विषसंपृक्तमप्यन्नं तन्मुखप्रविष्टमविषं भवति । घोरापस्मारभूतप्रेताद्यावेशविसंस्थुला अपि तद्वचःश्रवणमात्रात्तद्दर्शनाच्च वीतविकारा भवन्ति, एवं च यथा तपस्विनां स्पर्शनदर्शनादयो महामहिमानस्तथा विप्रुट्खेलजल्ल-प्रभृतयोऽपि । श्रूयते हि महात्मना श्रीसनत्कुमारचक्रवर्त्तिमुनिना गलत्पामा निजकरकिशलयाङ्गुली श्लेष्मलवलेपात् तप्ततपनीयशलाकासुन्दरा विरचितेति । यथा च निरुपमतपोऽनु-भावान्महात्मनामामर्शादिलब्धयः सम्पद्यन्ते तथा अणुत्व-महत्त्व-लघुत्व-गुरुत्व-प्राप्ति-प्राकाम्य-

---

गाथा-१९७ १. तुला - कफविप्रुण्मलामर्शसर्व्वौषधिमहर्द्धयः ।

सम्भिन्नश्रोतोलब्धिश्च यौगं ताण्डवडम्बरम् ।। - यो. शा. प्र. १/८

महर्द्धिशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । कफः श्लेष्मा । विप्रुडुच्चारः पुरीषमिति यावत् । मलः कर्ण-दन्त-नासिका-नयन-जिह्वोद्भवः शरीरसम्भवश्च । आमर्शो हस्तादिना स्पर्शः । सर्व्वे विण्-मूत्र-केश-नखादय उक्ता अनुक्ताश्च औषधयो योगप्रभावान्महर्द्धयो भवन्ति । अथवा महर्द्धयो विभिन्ना एवाणुत्वादयः । तथा श्रोतांसीन्द्रियाणि संभिन्नानि सङ्गतानि एकैकशः सर्व्वविषयैः, तेषां लब्धिः, योगस्येदं यौगं ताण्डवडम्बरं विलसितम् ।

किञ्च - मेघमुक्तमपि वारि यदङ्गसङ्गमात्राद् नदीवाप्यादिगतमपि सर्व्वरोगहरं भवति । तथा विषमूर्च्छिता अपि यदीयाङ्गसङ्गिवातस्पर्शादेव निर्विषीभवन्ति, विषसंपृक्तमप्यन्नं यन्मुखप्रविष्टमविषं भवति, महाविषव्याधिबाधिता अपि यद्वचःश्रवणमात्राद् यद्दर्शनाच्च वीतविकारा भवन्ति, एष सर्वोऽपि सर्वौषधिप्रकारः । एते कफादयो महर्द्धिरूपाः ।

अथवा महर्द्धयो विभिन्ना एव । विक्रियालब्धयोऽनेकधा, अणुत्व-महत्त्व-लघुत्व-गुरुत्व-प्राप्ति-प्राकाम्येशित्ववशित्वा-ऽप्रतिघातित्वा-ऽन्तर्द्धान-कामरूपित्वादिभेदात् । अणुत्वमणुशरीरविकरणम्, येन बिसच्छिद्रमपि प्रविशति तत्र च चक्रवर्तिभोगानपि भुङ्क्ते । महत्त्वं मेरोरपि महत्तरशरीरकरणसामर्थ्यम् । लघुत्वं वायोरपि लघुतरशरीरता । गुरुत्वं वज्रादपि गुरुतरशरीरतया इन्द्रादिरपि प्रकृष्टबलैर्दुःसहता । प्राप्तिर्भूमिस्थस्य अङ्गुल्यग्रेण मेरुपर्व्वताग्रप्रभा-करादिस्पर्शसामर्थ्यम् । प्राकाम्यमप्सु भूमाविवाऽप्रविशतो गमनशक्तिः, तथा अप्स्विव भूमावुन्मज्जननिमज्जने । ईशित्वं त्रैलोकस्य प्रभुता तीर्थकर-त्रिदशेश्वरऋद्धिविकरणम् । वशित्वं सर्वजीववशीकरणलब्धिः । अप्रतिघातित्वं अद्रिमध्येऽपि निःसङ्गगमनम् । अन्तर्द्धानमदृश्यरूपता । कामरूपित्वं युगपदेव नानाकाररूपविकरणशक्तिः इत्येवमादयो महर्द्धयः । - यो. शा. प्र. १/८ वृत्तौ ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईशित्व-वशित्व-अप्रतिघातित्व-अन्तर्द्धान-कामरूपित्वादयोऽपि । तत्र अणुत्वमणुशरीरविकरणं येन बिशच्छिद्रमपि प्रविशति, तत्र च चक्रवर्त्तिभोगानपि भुङ्क्ते । महत्त्वं मेरोरपि महत्तरशरीरकरणसामर्थ्यम् । लघुत्वं वायोरपि लघुतरशरीरता । गुरुत्वं च वज्रादपि गुरुतरशरीरत्वेन इन्द्रादिभिरपि प्रकृष्टबलैर्दुस्सहता । प्राप्तिर्भूमिष्ठस्य अङ्गुल्यग्रेण मेरुपर्वताग्रचन्द्रार्कमण्डलादिस्पर्शसामर्थ्यम् । प्राकाम्यमप्सु भूमाविव प्रविशतो गमनशक्तिः, अप्स्विव भूमावुन्मज्जननिमज्जनेन च । ईशित्वं त्रैलोक्यस्य प्रभुता, त्रिदशेश्वर-तीर्थकरऋद्धेर्विकरणम् । वशित्वं सर्वजीववशीकरणलब्धिः । अप्रतिघातित्वं पर्वतमध्येऽपि निस्संगगमनम् । अन्तर्द्धानमदृश्यरूपता । कामरूपित्वं युगपदेव नानाकाररूपविकरणशक्तिः । इत्यादयोऽन्याश्च [2]प्रज्ञाश्रमणत्वादिलब्धयः सर्वास्तपःप्रभावादुद्भवन्तीत्यलं प्रसङ्गेन ।।१९७।।

---

2. **तुला** - अथवा प्रकृष्टश्रुतावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूतासाधारणमहाप्रज्ञर्द्धिलाभा अनधीतद्वादशाङ्गचतुर्दशपूर्वा अपि सन्तो यमर्थं चतुर्दशपूर्व्वी निरूपयति तस्मिन् विचारकुच्छ्रेऽप्यर्थेऽतिनिपुणज्ञाः प्राज्ञश्रमणाः । अन्येऽधीतदशपूर्व्वा रोहिणीप्रज्ञाप्यादिमहाविद्यादिभिरङ्गुष्ठप्रसेनिकादिभिरल्पविद्याभिश्चोपनतानां भूयसीनामृद्धीनामवशगा विद्यावेगधारणात् विद्याधरश्रमणाः । केचिद् बीज-कोष्ठ-पदानुसारिवृद्धिविशेषर्द्धियुक्ताः । सुकृष्टसुमतीकृते क्षेत्रे क्षित्युदकाद्यनेककारणविशेषापेक्षं बीजमनुपहतं यथानेकबीजकोटीप्रदं भवति तथैव ज्ञानावरणादिक्षयोपशमातिशयप्रतिलम्भादेकार्थबीजश्रवणे सति अनेकार्थबीजानां प्रतिपत्तारो बीजबुद्धयः । कोष्ठागारिकस्थापितानामसङ्कीर्णानामविनष्टानां भूयसां धान्यबीजानां यथा कोष्ठेऽवस्थानं तथा परोपदेशादवधारितानां श्रोतानामर्थग्रन्थबीजानां भूयसामनुस्मरणमन्तरेणाविनष्टानामवस्थानात् कोष्ठबुद्धयः । पदानुसारिणोऽनुस्रोतः पदानुसारिणः प्रतिस्रोतः पदानुसारिण उभयपदानुसारिणश्च । तत्रादिपदस्यार्थं ग्रन्थं च परत उपश्रुत्य आ अन्त्यपदादर्थ-ग्रन्थविचारणासमर्थपटुतरमतयोऽनुस्रोतः पदानुसारिबुद्धयः । अन्तपदस्यार्थं ग्रन्थं च परत उपश्रुत्य ततः प्रातिकूल्येनादिपदाद् आ अर्थग्रन्थविचारपटवः प्रतिस्रोतः पदानुसारिबुद्धयः । मध्यपदस्यार्थं ग्रन्थं च परकीयोप-देशादधिगम्याद्यन्तावधिपरिच्छिन्नपदसमूहप्रतिनियतार्थग्रन्थोदधिसमुत्तरणसमर्थासाधारणातिशयपटुविज्ञाननियता उभयपदानुसारिबुद्धयः । बीजबुद्धिरेकपदार्थावगमादनेकार्थानामवगन्ता, पदानुसारी त्वेकपदावगमात् पदान्तराणामवगन्तेति विशेषः ।

तथा मनोवाक्कायबलिनः । तत्र प्रकृष्टज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयोपशमविशेषेण वस्तूद्धृत्यान्तर्मुहूर्त्तेन सकलश्रुतोदध्यवगाहनावदातमनसो मनोबलिनः । अन्तर्मुहूर्तेन सकलश्रुतवस्तूच्चारणसमर्था वाग्बलिनः । अथवा पदवाक्यालङ्कारोपेतां वाचमुच्चैरुच्चारयन्तोऽविरहितवाक्क्रमाहीनकण्ठा वाग्बलिनः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमाविर्भूतासाधारणकायबलत्वात् प्रतिमयावतिष्ठमानाः श्रमक्लमविरहिता वर्षमात्रप्रतिमाधरा बाहुबलिप्रभृतयः कायबलिनः ।

तथा क्षीरमधुसर्पिरमृतास्रविणः । येषां पात्रपतितं कदन्नमपि क्षीरमधुसर्पिरमृतरसवीर्यविपाकं जायते वचनं वा शारीरमानसदुःखप्राप्तानां क्षीरादिवत् सन्तर्पकं भवति ते क्षीरास्रविणो मध्वास्रविणः सर्पिरास्रविणोऽमृतास्रविणश्च ।

केचिदक्षीणर्द्धियुक्ताः, ते च द्विविधा अक्षीणमहानसा अक्षीणमहालयाश्च । येषामसाधारणान्तरायक्षयोपशमादल्पमात्रमपि पात्रपतितमन्नं गौतमादीनामिव बहुभ्यो दीयमानमपि न क्षीयते तेऽक्षीणमहानसाः । अक्षीणमहालयर्द्धि-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च तपःप्रभावमवबुध्य किं विधेयमित्याह –

उत्तमपुरिसपणीए उत्तमपुरिसेहिं चेव आइन्ने ।
निम्महियभावरोगे वेरग्गकरे तवे रमह ।।१९८।।

प्राप्ताश्च यत्र परिमितभूप्रदेशेऽवतिष्ठन्ते तत्रासंख्याता अपि देवास्तिर्यञ्चो मनुष्याश्च सपरिवाराः परस्परबाधारहितास्तीर्थकरपर्षदीव सुखमासते । इति प्रज्ञाश्रमणादिषु महाप्रज्ञादयो महर्द्धयो दर्शिताः ।

सर्वेन्द्रियाणां विषयान् गृह्णात्येकमपीन्द्रियम् । यत्प्रभावेन सम्भिन्नस्रोतो लब्धिस्तु सा मता ।।१।।

- यो. शा. प्र. १/८ वृत्तौ ।।

तथा - चारणाशीविषावधिमनःपर्यायसम्पदः । योगकल्पद्रुमस्यैता विकासिकुसुमश्रियः ।। - यो. शा. प्र. १/९ ।।

अतिशयचरणाच्चारणा अतिशयगमनादित्यर्थः तत्सम्पत् तल्लब्धिरित्यर्थः । आशीविषलब्धिर्निग्रहानुग्रहसामर्थ्यम्। अवधिज्ञानलब्धिर्मूर्तद्रव्यविषयं ज्ञानम् । मनःपर्यायज्ञानलब्धिर्मनोद्रव्यप्रत्यक्षीकरणशक्तिः । एता लब्धयो योगकल्पवृक्षस्य कुसुमभूताः । फलं तु केवलज्ञानं मोक्षो वा । तथाहि -

द्विविधाश्चारणा ज्ञेया जङ्घा-विद्योत्थशक्तितः । तत्राद्या रुचकद्वीपं यान्त्येकोत्पातलीलया ।।१।।
वलन्तो रुचकद्वीपादेकेनोत्पतनेन ते । नन्दीश्वरे समायान्ति द्वितीयेन यतो गताः ।।२।।
ते चोर्ध्वगत्यामेकेन समुत्पतनकर्म्मणा । गच्छन्ति पाण्डकवनं मेरुशैलशिरःस्थितम् ।।३।।
ततोऽपि वलिता एकोत्पातेनायान्ति नन्दनम् । उत्पातेन द्वितीयेन प्रथमोत्पातभूमिकाम् ।।४।।
विद्याचारणास्तु गच्छन्त्येकेनोत्पातकर्म्मणा । मानुषोत्तरमन्येन द्वीपं नन्दीश्वराह्वयम् ।।५।।
तस्मादायान्ति चैकेनोत्पातेनोत्पतिता यतः । यान्त्यायान्त्यूर्द्ध्वमार्गेऽपि तिर्यग्यानक्रमेण ते ।।६।।

अन्येऽपि बहुभेदाश्चारणा भवन्ति । तद्यथा आकाशगामिनः पर्यङ्कावस्थानिषण्णाः कायोत्सर्गशरीरा वा पादोत्क्षेपनिक्षेपक्रमाद्विना व्योमचारिणः । केचित्तु जल-जङ्घा-फल-पुष्प-पत्र-श्रेण्य-ग्निशिखा-धूम-नीहारा-ऽवश्याय-मेघ-वारिधारा-मर्कटतन्तु-ज्योतीरश्मि-पवनाद्यालम्बनगतिपरिणामकुशलाः । जलमुपेत्य वापी-निम्नगा-समुद्रादिष्वप्कायिकजीवानविराधयन्तो जले भूमाविव पादोत्क्षेपनिक्षेपकुशला जलचारणाः । भुव उपरि चतुरङ्गुलप्रमिते आकाशे जङ्घानिक्षेपोत्क्षेपनिपुणा जङ्घाचारणाः । नानाद्रुमफलान्युपादाय फलाश्रयप्राण्यविरोधेन फलतले पादोत्क्षेप-निक्षेपकुशलाः फलचारणाः । नानाद्रुम-लता-गुल्म पुष्पाण्युपादाय पुष्पसूक्ष्मजीवानविराधयन्तः कुसुमतलदलावलम्बनासङ्गतयः पुष्पचारणाः । नानावृक्षगुल्मवीरुल्लताविताननानाप्रवालतरुणपल्लवालम्बनेन पर्णसूक्ष्मजीवानविराधयन्तश्चरणोत्क्षेपनिक्षेपपटवः पत्रचारणाः । चतुर्योजनोच्छ्रितस्य निषधस्य नीलस्य चाद्रेष्टङ्कच्छिन्नां श्रेणिमुपादायोपर्य्यधो वा पादपूर्वकमुत्तरणावतरणनिपुणाः श्रेणिचारणाः । अग्निशिखामुपादाय तेजःकायिकानविराधयन्तः स्वयमदह्यमानाः पादविहारनिपुणा अग्निशिखाचारणाः । धूमवर्त्ति तिरश्चीनामूर्ध्वगां वा आलम्ब्यास्खलितगमनास्कन्दिनो धूमचारणाः । नीहारमवष्टम्भ्याप्कायिकपीडामजनयन्तो गतिमसङ्गामश्नुवाना नीहारचारणाः । अवश्यायमाश्रित्य तदाश्रयजीवानुपरोधेन यान्तोऽवश्यायचारणाः । नभोवर्त्मनि प्रविततजलधरपटलपटास्तरणे जीवानुपघातिचङ्क्रमणप्रभवो मेघचारणाः । प्रावृषेण्यादिजलधरादेर्विनिर्गतवारिधारावलम्बनेन प्राणिपीडामन्तरेण यान्तो वारिधाराचारणाः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवंविधे **तपसि रमध्वम्** । किम्भूते? **उत्तमपुरुषैस्तीर्थकृद्गणधरादिभिः प्रणीते** समुपदिष्टे । तथा **तद्विधैरेव पुरुषैराचीर्णे** स्वयमनुष्ठिते । तथा **निर्मथितभावरोगे** विलोडितप्रबलान्तरारिरुजि । **वैराग्यकरे** भवविरागोत्पादिनि ।।१९८।।

उत्तमपुरुषाचीर्णत्वमेव तपसो दृष्टान्तैः स्पष्टयन्नाह -

बलदेवमुणी भयवं बंभी य सुसाहुणी तवे तिव्वे ।
आणंदो य महप्पा सुसाविया सुंदरी नायं ।।१९९।।

तीव्रे तपसि बलदेवमुनिर्भगवान् मुनिषूदाहरणम्, **ब्राह्मी च साध्वीषु, आनन्दश्च महात्मा** सुश्रमणोपासकेषु, **सुन्दरी च सुश्राविकासु** ज्ञातमिति । आम्नायसापेक्षाश्च बलदेवादयः । स चायम् -

।। तपधर्मविषये बलदेवकथानकम् ।।

अत्थित्थ भरहवासे विलासभवणं व भुवणलच्छीए । सोरियपुरं ति नयरं नयरंजियनायरजणोहं ।।१।।
नीइनईण समुद्दो समुद्दविजउ त्ति तत्थ नरनाहो । वसुदेवो लहुभाया तस्स य सोहग्गकुलगेहं ।।२।।
दिसिविजयकोउगेणं परिहिंडंतेण तेण परिणीया । रन्नो रुहिरस्स सुया सयंवरा रोहिणी नाम ।।३।।
तस्स य महुराहिवउग्गसेणतणएण कंसनामेण । पिइवेरिएण पीई संघडिया निच्चवासाउ ।।४।।
इत्तो य जरासंधस्स अद्धचक्किस्स कोइ सामंतो । पडिकूलो निद्दलिओ वसुदेवजुएण कंसेण ।।५।।
परितुट्ठेणं दिन्ना जीवजसा नाम तयणु नियकन्ना । कंसस्स जरासंधेण तह य महुराउरीरज्जं ।।६।।
पुव्वभवमच्छरेणं कंसो वि ठविऊण पंजरे पियरं । सयमेव ठिओ रज्जे भुयभडवाएण गज्जंतो ।।७।।
अज्जंतपणयवसओ वसुदेवो ठाविओ तहिं तेण । महुराउरीइ विलसंति दोवि दोगुंदुग व्व तओ ।।८।।

वारिधाराचारणाः । कुब्जवृक्षान्तरालभाविनभःप्रदेशेषु चन्द्रार्कग्रहनक्षत्राद्यन्यतमज्योतीरश्मिसम्बन्धेन भुवीव पादविहारकुशलाः ज्योतीरश्मिचारणाः । पवनेष्वनेकदिग्मुखोन्मुखेषु प्रतिलोमानुलोमवृत्तिषु तत्प्रदेशावलीमुपादाय गतिमस्खलितचरणविन्यासमास्कन्दतो वायुचारणाः ।

तपश्चरणमाहात्म्याद् गुणादितरतोऽपि वा । आशीविषाः समर्थाः स्युर्निग्रहेऽनुग्रहेऽपि च ।।१।।
द्रव्याणि मूर्त्तिमन्त्येव विषयो यस्य सर्वतः । नैयत्यरहितं ज्ञानं तत् स्यादवधिलक्षणम् ।।२।।
स्यान्मनःपर्ययो ज्ञानं मनुष्यक्षेत्रवर्त्तिनाम् । प्राणिनां समनस्कानां मनोद्रव्यप्रकाशकम् ।।३।।
ऋजुश्च विपुलश्चेति स्यान्मनःपर्ययो द्विधा । विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां विपुलस्तु विशिष्यते ।।४।।

- यो. शा. प्र. १/१० वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउहिं महासुमिणेहिं तणओ संसूइओ य बलदेवो । वसुदेवभूमिवइणो रोहिणिदेवीई संजाओ ।।९।।
देवइरन्नो धूया वरिया कंसेण देवई इत्तो । वसुदेवस्स निमित्तं पारद्धो तीइ वीवाहो ।।१०।।
[इत्तो] अइमुत्तमुणी विहरंतो तत्थ कंसलहुभाया । संपत्तो सव्वविऊ जीवजसाए य दियरु त्ति ।।११।।
मयभिंभलाइ[1] आलिंगिओ य सो तीइ एहि एहि त्ति । सत्ता य तेण एसा तिव्वतवेणं महामुणिणा ।।१२।।
नञ्झसि जीइ विवाहे एवं मयपरवसा तुमं पावे ! तीए सत्तमगब्भो तुह पियपियराण खयकालो ।।१३।।
संकियहियओ कंसो वयणछले पाडिऊण वसुदेवं । मग्गेइ सत्तगब्भे पढमि च्चिय देवईइ तओ ।।१४।।
जाएसु छसु सुएसुं कंसस्स य अप्पिएसु उप्पन्नो । देवइगब्भम्मि हरी सत्तमहासुमिणसञ्झविओ ।।१५।।
काऊण विणिमयं कन्नगाइ नंदस्स तयणु वसुदेवो । नियगोउलंमि मुंचइ कन्हं बलदेवकयरक्खं ।।१६।।
नेमित्तियवयणविसंकिरेण कंसेण तस्स मुणणत्थं । वावारिए निसुंभइ सिसू वि सो मेसविसतुरए ।।१७।।
नवजुव्वणेण तेणं चाणूरं हणिय भाइवहगु त्ति । निहओ कंसो भइणी य परिणीया सच्चभामा से ।।१८।।
नेमित्तियवयणेणं सव्वे वि हु सबलवाहणा तत्तो । जायवभूवा पत्ता पच्छिमजलरासिकूलम्मि ।।१९।।
हरिपुत्तपेरिएणं हरिणा धणयं तओ समाइसिउं । लवणाहिवदिन्नमहीइ कारिया बारवइनयरी ।।२०।।
कालेण जरासंधो मुणिउं ते तत्थ विलसिरे कुद्धो । चउरंगचमूकलिओ चलिओ ता तेण सो उवरिं ।।२१।।
[2]सवडम्मुहा य भिडिया ते सुहडा तस्स अद्धचक्किस्स । दप्पुद्धराण दुन्ह वि बलाण जाओ महासमरो ।।२२।।
अट्ठावीसाए नंदणेहिं मगहाहिवस्स बलदेवे । एगूणसत्तरीए रुट्ठे तह वासुदेवम्मि ।।२३।।
निम्महिउं हरिसिन्नं पडिहरिणा बलपहारिणा तत्तो । सामंतसयसहस्सं नियय जुगवं समाइट्ठं ।।२४।।
विदलिज्जंते जायवकुलम्मि अह तेहि परिभवं तस्स । असिहंतो तियसेहि वि अक्खलियपरकम्मो नेमी ।।२५।।
धणुगुणटंकारेणं ससंखसद्देण मोहिउं सहसा । चावे कवए छत्ते छिंदइ करुणापरो तेसिं ।।२६।।
अह रामकेसवेहि निहएसु सुएसु वड्ढियामरिसो । जुज्झइ सव्वबलेणं पडिविन्हू विन्हुणा सद्धिं ।।२७।।
निट्ठियसत्थो चक्कं मुंचइ मगहाहिवो तयणु कन्हे । करचडिएणं तेणेव तस्स सो छिंदए सीसं ।।२८।।
सुरनरवरखयरेहिं कयजयसद्देहिं तयणु उग्घुट्ठं । बलदेववासुदेवा उप्पन्ना इह इमे नवमा ।।२९।।
लीलाइ च्चिय अह साहिऊण खंडाइं तिन्नि भरहस्स । विलसंति रज्जलच्छिं सच्छंदं लच्छिहररामा ।।३०।।
इत्तो सिरिनेमिजिणो समुद्दविजयंगओ गहियदिक्खो । घाइक्खएण संपत्तकेवलो विहरए वसुहं ।।३१।।
कइयाइ समोसरिओ उज्जाणे रेवयंमि सो भयवं । दट्ठुं नियनयरिसिरिं पुट्ठो कन्हेण गयतन्हो ।।३२।।
भयवं ! बारवईए एवंविहरिद्धिबंधुरतराए । होही कुओ विणासो मज्झ य तो भणइ सव्ववू ।।३३।।

गाथा-१९९ 1. भिंभल - (विह्वल) । - पा. स. म. पृ. ६५२ ।।
2. सवडम्मुह - (दे) वि. अभिमुख-संमुख इति भाषायाम् । - पा. स. म. पृ. ८८२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीवायणाउ निहणं नयरीए तुज्झ जरकुमाराओ । इय भणिए जरकुमारो पत्तो तत्तु च्चिय अरन्नं ।।३४।।
दीवायणो य कुविएहिं तयणु संबाइएहिं गंतूणं । दढजट्ठिलिट्ठमुट्ठीहि निहणिओ बंधइ नियाणं ।।३५।।
मुत्तुं केसवरामे मुक्खो नन्नस्स पुरवरीहिंतो । मरिऊण य उप्पन्नो अग्गिकुमारो इमो बलवं ।।३६।।
वसुदेवं मुत्तूणं पव्वइएसुं पुरा दसारेसु । रोहिणिदेवइवज्जं तहेव वसुदेवपत्तीसु ।।३७।।
सुणिउं बारवईए धुवं विणासं विरत्तचित्तेसु । पज्जुन्नसंब[3]सारणपमुहेसुं गहियदिक्खेसु ।।३८।।
निब्बंधेणं मोयाविऊण कन्हाउ कहवि अप्पाणं । सिरिरुप्पिणिजंबवइप्पमुहासु पवन्नचरणासु ।।३९।।
लहिऊण छलं दीवायणो वि मुंचइ पुरीइ वज्जग्गिं । छहिं मासेहि य दड्ढा बारवई धणकणसमिद्धा ।।४०।।
उद्दिसिऊणं दक्खिणमहुरं तो रामकेसवा चलिया । वच्चंता संपत्ता कोसंबवणंमि ते तत्थ ।।४१।।
तन्हातरलं कन्हं रामो मुत्तूण तरुतलपसुत्तं । वच्चइ सलिलस्स कए पत्तो अह तत्थ जरकुमरो ।।४२।।
पीयंबरपच्छाइयदेहं दट्ठूण तयणु सो कन्हं । कणयहरिणु त्ति मुंचइ बाणं विंधइ य पायतले ।।४३।।
पयडियपज्जाएणं हरिणा सो मुणिय पलविरो भणिओ । मा परिझूरसु बंधव ! न अन्नहा होइ जिणभणियं ।।४४।।
दाऊण कुत्थुहमणिं स पेसिओ पंडवाण सविहंमि । परिपुन्नाऊ सयमवि कालगओ तत्थ नवमहरी ।।४५।।
दट्ठूण य बलभद्दो तं तह निहणं गयं नियबंधुं । उम्मुक्कसीहनाओ पलवंतो भमइ वणखंडं ।।४६।।
कत्थइ अपिच्छमाणो विणासगं तस्स नेहवियलमणो । रुट्ठं ति मन्नमाणो कन्हं आरोवए खंधे ।।४७।।
हिंडइ य वणाउ वणं जिव्वं न्हावेइ तयणु पूएइ । आलिंगइ संभासइ वियलमणो जाव छम्मासा ।।४८।।
अह पुव्वबंधवेणं सिद्धत्थेणं सुरेण सो दिट्ठो । पडिबोहिओ य अघडंतवत्थुसंघडणनाएहिं ।।४९।।
देवाउ जराकुमरस्स आगमं कन्हमरणमह नाउं । जंपइ पियबंधवविरहियस्स किं जुत्तमिन्हिं मे ।।५०।।
भणइ सुरो वि हु सिरेनेमिभाउणो तुज्झ पुरिससीहस्स । पव्वज्जं परिवज्जिय जुज्जइ अन्नं न इत्ताहे ।।५१।।
तो साहु साहु भणिरो सीरी सरिसंगमम्मि रम्मंमि । सक्कारइ कन्हतणुं चंदणकट्ठेहिं लट्ठेहिं ।।५२।।
कयवयचित्तं नाउं सव्वन्नू नेमिजिणवरो रामं । पेसइ चारणसमणं करुणारससायरो तत्थ ।।५३।।
तप्पायपउमूले सम्मं पडिवज्जिऊण सामन्नं । तुंगियगिरिम्मि तत्तो बलदेवमुणी ठिओ भयवं ।।५४।।
आरब्भ चउत्थाओ स विगिट्ठं अट्ठमासपज्जन्तं । तवइ तवं तावितो कुकम्ममम्माणी मुणिवसहो ।।५५।।
पुव्वपणएण तह तिव्वतवप्पहावेण तस्स हियहियओ । मुंचइ न पायमूलं सिद्धत्थवरो सुरो सययं ।।५६।।
अह अन्नदिणे नयरं पविसंतो मासपारणे दिट्ठो । अवडतडसंठियाए इमो सडिंभाइ जुवईए ।।५७।।
अच्चब्भुयभूएणं मुणिणो रूवेण परवसा एसा । बंधिय रज्जु कंठंमि कुंभबुद्धीइ डिंभस्स ।।५८।।
पारद्धा पक्खिविउं कूवे तं वइयरं च सो दट्ठुं । चिंतेइ दंतचित्तो धिद्धी मह रूवमवि एयं ।।५९।।

3. सारण - एक यादव कुमार - अंत. ३ ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो रूव-जुव्वणाणं अणिच्चयं साहिऊण बोहेइ । तं रामं राममुणी गिन्हइ य अभिग्गहं एयं ।।६०।।
अज्जप्पभिइं वसिमे पविसिस्सं नेव पारणत्थं पि । सत्थाहकट्ठहारयपसंगओ होउ मह वित्ती ।।६१।।
इय कयविणिच्छओ सो तत्थेव य सेलकाणणंमि ठिओ । तप्पइ दिप्पंततणू अदीणहियओ तवं तिव्वं ।।६२।।
तणकट्ठहारएहिं उवणीयं फासुएसणीयमसणं । गिन्हइ कयाइ एसो निरविक्खो नियसरीरे वि ।।६३।।
कट्ठाइहारिणो ते गंतुं नियनियपहूण साहिंति । दिव्वसरूवो पुरिसो कोवि वणे तवइ तिव्वतवं ।।६४।।
किं अम्ह रज्जलुद्धो तवइ तवं अहव साहए मंतं । को वि इमो इइ भीया तुच्छमणा ते वि चिंतेउं ।।६५।।
मुणिणो हणणनिमित्तं सव्वे वि हु सबलवाहणा मिलिउं । तत्थागया वियारो को वा अत्राणनडियाणं ।।६६।।
सिद्धत्थसुरेण विउव्विएहिं सीहेहिं लक्खसंखेहिं । उत्तासिया तओ ते भीया मुणिसरणमल्लीणा ।।६७।।
पणमित्तु भावसारं पुणो पुणो खामिऊण मुणिसीहं । नरसीहु त्ति य नामं दाउं से ते गया सपुरं ।।६८।।
सवणसुहयाइ संसयहराइ तस्सोवएसवाणीए । हरिहरिणदीविसदूलपभिइणो जायसंबोहा ।।६९।।
केई सुसावगत्तं पत्ता जाया य भद्दगा केवि । अवरे समयाइ ठिया पडिवन्ना अणसणं अन्ने ।।७०।।
उज्झियपिसियाहारा विमुक्कवेरा परुप्परं सव्वे । ते बलमुणिणो अंते अंतेवासि व्व चिट्ठंति ।।७१।।
मुणिपुव्वभवाणुचरो जाइसरो तत्थ हरिणगो एगो । सविसेसं संविग्गो एगग्गो सेवए साहुं ।।७२।।
भमिऊण वणे तणकट्ठहारए नियइ भोयणसमए । दट्ठूण य तुट्ठमणो मुणिणो पासे समल्लियइ ।।७३।।
सीसे निवेसिऊणं मुणिचलणे दंसए पएसं तं । मुंचइ मुणी वि झाणं तस्सणुकंपाइ कारुणिओ ।।७४।।
गिन्हइ गंतुं भिक्खं निरविक्खो वि हु नियंमि देहंमि । तेसि अणुग्गहट्ठा अणुकंपट्ठा य हरिणस्स ।।७५।।
अह अन्नया पहाणं दारुदलं गिन्हिउं तहिं पत्ता । रहकारा पारद्धा य छिंदिउं सरलतरतरुणो ।।७६।।
मुणिऊण आगए ते मिगो वि मुणिपुंगवस्स विन्नवइ । सो मासपारणत्थं कुरंगमग्गाणुगो एइ ।।७७।।
दट्ठुं रहकारपुरस्सरो वि सहस त्ति राममुणिसीहं । विम्हियमणो विचिंतइ अहह महंतं खु अच्छरियं ।।७८।।
निम्माणुसे वणे कह जंगमकप्पद्दुमु व्व एस मुणी । मह चेव पुन्नपब्भारपेरिओ निच्छियमुवेइ ।।७९।।
अब्भुयभूयं रूवं इमस्स लावन्नमन्नजणदुलहं । लोउत्तरो य पसमो धन्नो हं अतिहिणा इमिणा ।।८०।।
इय चिंतंतो अब्भुट्ठिऊण पंचंगपुट्ठमहिवट्ठो । पणमिय पाणत्राइं उवणामइ एसणिज्जाइं ।।८१।।
बलदेवो वि हु भयवं चिंतइ सद्धापरो इमो कोइ । सग्गापवग्गहेउं दाणं मे दाउमहिलसइ ।।८२।।
ता जइ न हु गिन्हिस्सं सद्धाभंगो इमस्स ता होही । विग्घो य सुग्गईए इय बुद्धीए पडिच्छेइ ।।८३।।
हरिणो वि हु उड्ढमुहो अमंदआणंदसंदिरच्छिजुओ । वणछिंदयं मुणिं पि हु पिक्खंतो चिंतई एवं ।।८४।।
देहे वि निरीहेणं तिव्वतवोरासिणा महामुणिणा । पिच्छह कह रहयारो वि पिंडग्गहणे[ण]णुग्गहिओ ।।८५।।

4. रामं - रामा स्त्री. द्वि. ए० ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वणछिंदओ वि धन्नो उच्छिंदइ अज्ज कम्मवणगहणं । एयारिसंमि पत्तंमि भत्तिदाणं पउंजंतो ।।८६।।
अहमेव परमधन्नो मुणि व्व जो न हु तवं तविउमीसो । वणछिंदउ व्व दाउं पि दूसिओ तिरियजाईए ।।८७।।
इय जा तिन्नि वि एए धम्मज्झाणम्मि संति संलीणा । ताव य पयंडपवणेण पेरिओ अद्धछिन्नतरू ।।८८।।
पडिओ तेसिं उवरिं विसुद्धझाणा य पाविया निहणं । पउमुत्तरि विमाणे य बंभलोगम्मि उप्पन्ना ।।८९।।
थेवो वि परिचओ उत्तमाण न हु निप्फलु त्ति बलमुणिणा । अप्पसम ञ्चिय विहिया पिच्छह रहयारहरिणा वि ।।९०।।

वर्षाणां शतमित्यसौ मुनिपतिश्चारित्रमत्युत्तमं, निर्वाह्याथ तपोबलेन विफलीकृत्यान्तरारिव्रजम् ।
प्राप्तः पञ्चमकल्पमप्रतिहतं तत्रापि भुक्त्वा सुखं, मोक्षं यास्यति भारतेऽत्र भगवान् श्रीकृष्णतीर्थान्तरे ।।९१।।
[शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्]

कथितं बलदेवाख्यानकम् । अधुना लेशतो ब्राह्मीज्ञातमभिधीयते - ।।श्रीः।।

।। तपधर्मविषये ब्राह्मीकथानकम् ।।

लोकलोकोत्तराचारस्फुटीकरणवेधसः । युगादिजिननाथस्य युगादिजगतीपतेः ।।१।।
जज्ञे सुमङ्गलादेव्यां देवी ब्राह्मीव देहिनी । ब्राह्मीति पुत्री त्रैलोक्यलोकम्पृणगुणोज्ज्वला ।।२।। युग्मम् ।।
व्यतीतशैशवा सम्यगष्टाभिर्धीगुणैर्युता । अष्टादशाऽपि हि लिपीः स्वामिना साऽथ शिक्षिता ।।३।।
अमानवलिपौ रूपे स्मरोज्जीविनि यौवने । अनुलेपिकलाकोशे वर्त्तमाने मनोहति ।।४।।
गृहस्थमपि चित्तेन वीतरागतयाश्रितं । ध्यायन्त्याः पितरं तस्या वीतरागमभून्मतः ।।५।।
अथ त्रिजगतीभर्त्तुर्वृषभस्य बिडौजसा । समये समयज्ञेन चक्रे राज्यपदोत्सवः ।।६।।
आदिश्य धनदं रत्नस्वर्णप्राकारमन्दिराम् । अचीकरद् विनीताख्यां पुरीं भर्त्तुः पुरन्दरः ।।७।।
ज्ञानत्रयधरः स्वामी संविदानस्तथास्थितिम् । हस्त्यश्वगोरथादीनां विदधे सङ्ग्रहं तदा ।।८।।
उग्रान् भोगांश्च राजन्यान् क्षत्रियानप्यसूत्रयत् । कर्म्मणामनुमानेन तदा च पुरुषान् प्रभुः ।।९।।
शिल्पानि कल्पयामास दण्डनीतिमदर्शयत् । पाशुपाल्यं वणिज्यां च कृषिं शुल्कस्थितिं च सः ।।१०।।
गोत्रश्रोत्रव्यवस्थां च पाणिपीडनकर्म्म च । शब्दविद्यादिविद्याश्च सर्वाः प्रावर्त्तयत् प्रभुः ।।११।।
ऋजून् युयोज विनये दुर्विनीतानशिक्षयत् । पितेव पालयामास स धर्म्मविजयी प्रजाः ।।१२।।
एवं भोग्यफलं कर्म्म भुञ्जानस्य जगद्गुरोः । त्र्यशीतिः पूर्वलक्षाणामतिचक्राम जन्मनः ।।१३।।
चारित्रावारके कर्म्मण्यथ शान्तिमुपेयुषि । प्रक्षीणविषये भर्त्तुर्दीक्षोन्मुखमभून्मनः ।।१४।।
अत्रान्तरे च चित्तज्ञैः सुरैः सारस्वतादिभिः । तीर्थप्रवृत्तये स्वामी प्रेरितः प्रीतमानसैः ।।१५।।
वत्सरावधिभिर्दानैर्वनीपकजनेप्सितैः । रौद्रदारिद्र्यदावार्तं निर्वाप्य जगतीजनम् ।।१६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथौचित्येन राज्यानि वितीर्य स्वाङ्गजन्मनाम् । निरञ्जनमनाः स्वामी स्वयं व्रतमुपाददे ।।१७।।
मनांसि संज्ञिजीवानां मनुष्यक्षेत्रवर्त्तिनाम् । प्रकाशयदथ ज्ञानं तुर्यमाविरभूत् प्रभोः ।।१८।।
द्रव्ये क्षेत्रे च काले च भावे चाप्रतिबद्धधीः । निर्ममो निःकषायश्च सहमानः परीषहान् ।।१९।।
आर्यानार्येषु देशेषु प्रक्षीणप्रेमबन्धनः । स धीरेष्वेकधौरेयो विजहार निराश्रयः ।।२०।।
अनार्याः प्रशमं प्रापुः कृतमौनादपि प्रभोः । अजल्पन्नपि कल्पद्रुः किं वा दत्ते न कल्पितम् ।।२१।।
व्रताद् वर्षं निरशनश्छीर्णचित्रतपास्ततः । छद्मस्थस्तस्थिवान् स्वामी सहस्रं परिवत्सरान् ।।२२।।
कपाटद्वयवत् शुक्लध्यानभेदद्वयेऽग्रिमे । व्यक्तीकृते प्रभुः प्राप ज्ञानरत्नमनश्वरम् ।।२३।।
ततः समवसरणे सुरासुरविनिर्मिते । निविष्टः प्राङ्मुखः स्वामी चामीकरमयासने ।।२४।।
सान्तः पुरपरीवारश्चतुरङ्गचमूवृतः । तत्रागाद् भरतश्चक्री नमस्कर्तुं जगद्गुरुम् ।।२५।।
सुरासुरनिकायेषु नभश्चरनरेषु च । भगवद्वदनाम्भोजनिलीननयनालिषु ।।२६।।
जगद्द्रोहकरीं मोहनिद्रां विद्रावयन्नथ । उपदेशाभीशु[1]पूरं मुमोच जिनभानुमान् ।।२७।।
अनादिप्रतिपन्थित्वं मिथ्यात्वस्य जगत्पतिः । प्रथयामास विश्वासघातितां घातिकर्म्मणाम् ।।२८।।
विषयाणां च वैरस्यं कषायाणां च वैशसम् । दारुणत्वं प्रमादस्याविरतेरधृतिक्रियाम् ।।२९।।
क्लिष्टत्वं दुष्टयोगानां दौरात्म्यं चार्त्तरौद्रयोः । हेयत्वं संसृतेर्मुक्तेरुपादेयत्वमञ्जसा ।।३०।।
तया देशनया भर्त्तुः पुण्डरीकपुरस्सराः । प्रदीपनमिव त्यक्त्वा गृहवासं प्रवव्रजुः ।।३१।। विशेषकम् ।।
अत्रान्तरे जगद्भर्त्तुः पुत्री ब्राह्मी सदःस्थिता । श्रोत्राञ्जलिपुटे पीत्वा भगवद्देशनामृतम् ।।३२।।
मायेन्द्रजालसदृशं स्वप्नसंगमसन्निभम् । हरिश्चन्द्रपुरीतुल्यं सुरचापसमप्रभम् ।।३३।।
द्विजिह्वजिह्वाचपलं करिकर्णचलाचलम् । धनयौवनराज्यादि विभाव्य क्षणभङ्गुरम् ।।३४।।
स्वाधीनां पैतृकीं त्यक्त्वा कमलां पुष्कलामपि । स्वामिनः पादपद्मान्ते प्रवव्राज निरञ्जना ।।३५।। कलापकम् ।।
अभ्यस्य द्विविधां [2]शिक्षां निरपेक्षा वपुष्यपि । दुस्तपं सा तपस्तेपे कर्म्मकक्षाशुशुक्षणि ।।३६।।
सोपधानानि सर्वाणि स्वोचितानि श्रुतानि सा । अधीयाय धियां धाम स्थविराणामुपासना[3][त] ।।३७।।
प्रायश्चित्तादिना सार्धं तपसाऽभ्यन्तरेण च । विदधे बाह्यमप्युच्चैरबाह्यमलमुक्तये ।।३८।।

गाथा-१९९ 1. **अभीशु** - किरण इति भाषायाम् । (अभि+अश+उन् अत इत्वम्) अभ्यश्नाति तमांसीत्यभीशुः पुल्लिङ्गौ । "केवयुभुरणटवध्वटर्वादयः । (उणा-७४६) इति उदन्तो निपात्यते । अभीषुरिति गौडः ।
- अभि. चि. स्वो. नो. श्लो. ९९ ।।

2. ग्रहणशिक्षारूपां आसेवनशिक्षारूपां द्विविधां शिक्षाम् ।

3. उपास्ते या इति उपासना ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टमाद् दशमात् नित्यं द्वादशाद्य चतुर्दशात् । आचाम्लादिभिश्चक्रे मासार्द्धादपि पारणम् ।।३९।।
एकादीन् द्वादशप्रान्तान् अपि मासानुपोषिता । सा पारणेऽपि विकृतीर्नादत्त त्यक्तविक्रिया ।।४०।।
सबाह्याभ्यन्तरेणाथ सा बाह्याभ्यन्तरं मलम् । तपोऽनलेन निर्दह्य दिदीपे तपनीयवत् ।।४१।।
तनुत्वस्य प्रकर्षोऽभूद् यथाऽस्यास्तपसा तनौ । सर्वत्र साम्यभावेन ध्यानशुद्धेस्तथा हृदि ।।४२।।
आरुह्य क्षपकश्रेणिमपूर्वकरणक्रमात् । सा प्राप केवलज्ञानमज्ञानतमसो रविम् ।।४३।।
पश्यन्ती विश्वविश्वानि करामलकवत् ततः । सहैव स्वामिना स्वैरं विजहार महीमसौ ।।४४।।
एवं तपोभिः परिभूय भूयस्तराणि कर्म्माणि पुरार्जितानि ।
तत्त्वोपदेशैरनुगृह्य भव्यान् ब्राह्मी परब्रह्मपदं प्रपेदे ।।४५।। श्रीः ।।

एवं ब्राह्मीदृष्टान्तमभिधाय, साम्प्रतमानन्दोपाख्यानं लिख्यते -

।। तपधर्मविषये आनन्दकथानकम् ।।

[1]तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नयरे होत्था । वन्नओ । तत्थ जियसत्तू राया । वन्नओ । तत्थ आणंदे नाम गाहावई अड्ढे जाव अपरिभूए । तस्स णं चत्तारि हिरन्नकोडीओ निहाणपउत्ताओ, चत्तारि वुड्ढिपउत्ताओ, चत्तारि [2]पवित्थरपउत्ताओ, चत्तारि [3]वया, दसगोसहेस्सिया । से आणंदे बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं बहूसु कज्जेसु मंतेसु गुज्झेसु निच्छएसु ववहारेसु आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे । सयस्स वि य णं कुडुंबस्स मेढिभूए सव्वकज्जवड्ढावए यावि हुत्था । तस्स णं सिवनंदा नाम भारिया । अहीण जाव सुरूवा तस्स इट्ठा अणुरत्ता । इट्ठे जाव पंचविहे माणुस्सए भोए तेण समं अणुभवमाणी विहरइ ।

तस्स णं वाणियगामस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे कुल्लागे नाम संनिवेसे । तत्थ आणंदस्स बहवे मित्तनाइनियगसंबंधिणो अड्ढा जाव अपरिभूया परिवसंति । तस्स य णं वाणियगामस्स उत्तरपुरत्थिमे भागे दूइपलासे चेइए । तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए । परिसा निग्गया । कूणिए राया । जहा जियसत्तू निग्गच्छइ जाव पज्जुवासइ । तए णं से आणंदे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे एवं संपेहेइ । गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि पज्जुवासामि । तए णं न्हाए कयबलिकम्मे माणुस्सयपरिवारपरिखित्ते पायचारेणं जेणामिव दूइपलासे चेइए जेणेव भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ । तिक्खुत्तो वंदइ जाव पज्जुवासइ तए णं से आणंदे भगवओ अंतिए धम्मं सुच्चा हट्ठ० । जाव एवं वयासी सद्दहामि

---

1. आनन्दो वणिजग्रामाभिधानवासी महर्द्धिको गृहपतिर्महावीरेण बोधित एकादशोपासकप्रतिमां कृत्वोत्पन्नावधिज्ञानो मासिक्या संलेखनया सौधर्ममगमदिति वक्तव्यताप्रतिबद्धे उपासकदशायाः प्रथमेऽध्ययने च । अत्र बहुलतया समानार्थकः पाठो दृश्यते इति ।

2. **प्रविस्तरो** - धनधान्यद्विपदचतुष्पदादिविभूतिविस्तरः ।

3. **व्रजाः** - गोकुलानि

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णं भंते ! निग्गंथं जाव से जहेव तुब्भे वयह त्ति । जहा णं देवाणुप्पिया बहवे राईसर० जाव पव्वइया । नो खलु अहं तहा संचाएमि मुंडे जाव पव्वइत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्त सिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि । अहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेहि । तए णं से आणंदे भगवओ महावीरस्स अंतिए [4]तप्पढमयाए थूलं पाणाइवायं थूलं मुसावायं थूलं अदिन्नादाणं पच्चक्खाइ । [5]सदारसंतोसि नऽन्नत्थिच्चाए सिवनंदाए भारियाए अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ । इच्छापरिमाणं करेमाणे [6]नन्नत्थ चउहिं हिरन्नकोडीहिं निहाणपउत्ताहिं चउहिं वुड्ढिपउत्ताहिं चउहिं वित्थरपउत्ताहिं अवसेसं हिरन्नविहिं पच्चक्खाइ । नन्नत्थ दससाहस्सिएहिं चउहिं वएहिं अवसेसं चउप्पयविहियं । पंचहिं हलसएहिं अवसेसं खित्तविहिं । पंचहिं सगडसएहिं [7]दिसाजत्तिएहिं पंचहिं संवहणिएहिं सेसं सगडविहिं । चउहिं वाहणेहिं दिसाजत्तिएहिं संवहणिएहिं सेसं संवहणविहिं पच्चक्खाइ । [8]भोगोपभोगविहिं पच्चक्खायमाणे एगं [9]गंधकासाइए सेसं [10]उल्लणियाविहिं अल्लमहुलट्ठीए सेसं दंतवणविहिं । खीरामलाओ सेसं फलविहिं । [11]सयसहस्सपागतिल्लेहिं सेसं अब्भंगविहिं । सुरभिणा गंधवट्टएणं सेसं उवट्टणविहिं । [12]अट्ठहिं उट्टिएहिं उदगस्स घडेहिं सेसं मज्जणविहिं । [13]खोमजुयलेण सेसं वत्थविहिं । अगुरुकुंकुमचंदणमाइएहिं सेसं विलेवणविहिं । सुद्धपउमेण मालइकुसुमदामेण वा सेसं पुप्फविहिं । मट्ठकन्निज्जएहिं नाममुद्दाए य सेसं आभरणविहिं । [14]अगुरुकुंदुरुक्कधूवमाइएहिं सेसं

---

4. **'तप्पढमयाए'** त्ति तेषाम् अणुव्रतादीनां प्रथमं तद्भावस्तत्प्रथमता तया ।

5. **'सदारसंतोसि'** स्वदारैः सन्तोषः स्वदारसन्तोषः स एव स्वदारसन्तोषिकः स्वदारसन्तोषिर्वा स्वदारसन्तुष्टिः, तत्र परिमाणं - बहुभिर्दारैरुपजायमानस्य सङ्क्षेपकरणं, कथम् ? 'नन्नत्थ'ति न मैथुनमाचरामि अन्यत्र एकस्याः स्त्रियाः किमभिधानायाः ? शिवनन्दायाः, किम्भूतायाः भार्यायाः स्वस्येति गम्यते, एतदेव स्पष्टयन्नाह - अवशेषं तद्वर्जं मैथुनविधिं तत्प्रकारं तत्कारणं वा तथावृद्धव्याख्या तु 'नन्नत्थ'त्ति अन्यत्र तां वर्जयित्वेत्यर्थः ।

6. **'नन्नत्थ'त्ति** - नैव करोमीच्छां हिरण्यादौ, अन्यत्र चतसृभ्यो हिरण्यकोटीभ्यः, तां वर्जयित्वेत्यर्थः ।

7. **'दिसाजत्तिएहि'** त्ति दिग्यात्रा देशान्तरगमनं प्रयोजनं येषां तानि दिग्यात्रिकानि तेभ्यो ऽन्यत्र ।

8. **'भोगोपभोग'** त्ति सकृदासेव्यत इति भोगः आहारकुसुमविलेपनादिः, उपभुज्यते पौनःपुन्येन सेव्यते इत्युपभोगो-भवनवसनवनितादिः ।

9. **'गंधकासाइए'** त्ति गन्धप्रधाना कषायेण रक्ता शाटिका गन्धकाषायी तस्याः ।

10. **'उल्लणिय'** त्ति स्नानजलार्द्रशरीरस्य जललूषणवस्त्रम् ।

11. **'सयसहस्सपागतिल्लेहिं'** त्ति द्रव्यशतस्य सत्कं क्काथशतेन सह यत्पच्यते कार्षापणशतेन वा तच्छतपाकम्, एवं सहस्रपाकमपि ।

12. **'उट्टिएहिं** उदगस्य घडेहिं' त्ति उष्ट्रिका-बृहन्मृन्मयभाण्डं तत्पूरणप्रयोजना ये घटास्ते उष्ट्रिकाः, उचितप्रमाणा नातिलघवो महान्तो वेत्यर्थः ।

13. **'खोमजुयलेणं'** त्ति कार्पासिकवस्त्रयुगलादन्यत्र, इह च सर्वत्राऽन्यत्रेतिशब्दप्रयोगेऽपि प्राकृतत्वात्पञ्चम्यर्थे तृतीया द्रष्टव्येति ।

14. **अगरुकुंदुरुक्क** इत्यत्र उपासकदशाङ्गे मुद्रिते अगरुतुरुक्कं पाठोऽस्ति । तुरुक्कधूव' त्ति सेल्हकलक्षणो धूपः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धूवणविहिं । एगाए [15]कट्ठपिञ्जाए सेसं [16]पिञ्जविहिं । एगेहिं [17]घयपुन्नेहिं [18]खंडखज्जएहिं वा सेसं [19]भक्खविहिं । [20]कलमसालिओयणेण सेसं ओयणविहिं । [21]कलायसूवेण वा मुग्गमाससूवेण वा सेसं सूयविहिं । [22]सारइएणं गोघएणं सेसं घयविहिं । छुव्वसुत्थिय[?]मंडुक्कियसेसं [23]सागविहिं । एगं पालंकासेसं [24]माहुरयविहिं । सिणेहं व दालिअं व सेसं तेमणविहिं । इक्केणं [25]अंतलिक्खोदएणं सेसं पाणियविहिं । [26]पंच सोगंधिएणं तंबोलेणं सेसं मुहवासविहिं पच्चक्खाइ । तयणंतरं [27]चउव्विहमणत्थं दंडं पच्चक्खाइ । तं जहा - [28]अवज्झाणायरियं, पमायायरियं, हिंसप्पयाणं, पावकम्मोवएसं । एवं सामाइयं देसावगासियं पोसहोववासं अतिहिसंविभागं च पडिवज्जइ । एवं पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मनिरइयारं पडिवज्जिय समणं भगवं महावीरं वंदइ । वंदित्ता एवं वयासी नो खलु मे भंते कप्पइ अज्जप्पभिइं [29]अण्णउत्थिया वा अन्नउत्थियदेवयाणि वा अन्नउत्थियपरिग्गहियाइं वा चेइयाइं वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं

---

15. **'कट्ठपेज्ज'** त्ति मुद्गादियूषो घृततलिततण्डुलपेया वा ।

16. **'पिञ्जविहि'** त्ति पेयाहारप्रकारम् ।

17. **'घयपुत्र'** त्ति घृतपूराः प्रसिद्धाः ।

18. **'खण्डखज्ज'** त्ति खण्डलिप्तानि खाद्यानि खण्डखाद्यानि ।

19. **'भक्ख'** त्ति खरविशदमभ्यवहार्यं भक्षमित्यन्यत्र रूढम्, इह तु पक्वान्नमात्रं तद्विवक्षितम् ।

20. **'कलमसालि'** त्ति पूर्वदेशप्रसिद्धः, 'ओयण' त्ति ओदनः-कूर ।

21. **'कलायसूय'** त्ति कलायाः चणकाकारा धान्यविशेषा मुद्गा माषाश्च प्रसिद्धाः ।

22. **'सारइएणं गोघएणं'** त्ति शारदिकेन शरत्कालोत्पन्नेन गोधृतेन ।

23. **'साग'** त्ति शाको वस्तुलादिः ।

24. **'माहुरय'** त्ति अनम्लरसानि शाकनकानि ।

25. **'अन्तलिक्खोदयं'** त्ति यज्जलमाकाशात्पतदेव गृह्यते तदन्तरिक्षोदकम् ।

26. **'पंचसोगंधिएणं'** त्ति पञ्चभिः - एलालवङ्गकर्पूरकल्लोलजातीफललक्षणैः सुगन्धिभिर्द्रव्यैरभिसंस्कृतं पञ्चसौगन्धिकम् ।

27. **'अणत्थं दण्डं'** त्ति अनर्थेन - धर्मार्थव्यतिरेकेण, दण्डोऽनर्थदण्डः ।

28. **'अवज्झाणायरियं'** त्ति 'अपध्यानम्'-आर्त्तरौद्ररूपं तेनाचरितः-आसेवितो योऽनर्थदण्डः स तथा तं, एवं 'प्रमदाचरितम'पि, नवरं प्रमादो - विकथारूपोऽस्थगिततैलभाजनधरणादिरूपो वा, 'हिंस्रं' हिंसाकारिशस्त्रादि तत्प्रदानंपरेषां समर्पणं, 'पापकर्मोपदेशः' 'क्षेत्राणि कृषत' इत्यादिरूपः ।

29. **'अण्णउत्थिया व'** त्ति जैनयूथाद् यदन्यद् यूथं-सङ्घान्तरं तीर्थान्तरमित्यर्थः तदस्ति येषां ते **ऽन्ययूथिकाः** - चरकादिकुतीर्थिकाः **तान्,** अन्ययूथिक**दैवतानि वा** - हरिहरादीनि, **अन्ययूथिकपरिगृहीतानि वा चैत्यानि** अर्हत्प्रतिमालक्षणानि, यथा भौतपरिगृहीतानि, वीरभद्रमहाकालादीनि **'वन्दितुं वा'** अभिवादनं कर्तुं, **'नमस्कर्तुं वा'** प्रणामपूर्वकं प्रशस्तध्वनिभिर्गुणोत्कीर्तनं कर्तुं, तद्भक्तानां मिथ्यात्वस्थिरीकरणादिदोषप्रसङ्गादित्यभिप्रायः, तथा **पूर्वं** - प्रथममनालपेन सता अन्यतीर्थिकैः तानेव **'आलपितुं वा'** सकृत्सम्भाषितुं, **'संलपितुं वा'** पुनः पुनः संलापं कर्तुं,

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा, तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा, दाउं वा अणुप्पयाउं वा, णण्णत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारेणं । कप्पइ मे समणे निग्गंथे फासुयएसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थ-पडिग्गहकंबलपायपुंछणेण पीढफलगसिज्जसंथारएणं ओसहभेसज्जेण य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, अभिगिण्हित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठमाइयाइ, आइयइत्ता पुणो वंदिय भगवओ अंतियाओ निक्खमिय जेणेव वाणियगामे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिवनंदं भारियं एवं वयासी । एवं खलु देवाणुप्पिए ! मए भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते । से वि य मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिए ! भगवंतं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि । तयंतिए दुवालसविहं गिहिधम्मं निरइयारं पडिवज्जाहि । तए णं सा सिवनंदा तेण एवं वुत्ता हट्ठ० जाव खिप्पामेव नरविमाणेणं जेणेव भगवं तेणेव गच्छइ वंदइ जाव पज्जुवासइ । तओ भयवओ अंतिए धम्मं सुच्चा हट्ठ० जाव गिहिधम्मं पडिवज्जइ । तमेव जाव जाणपवरं[30] दुरुहिय जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव पडिगया । तए णं भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ जाव एवं वयासी । पभू णं भन्ते ! आणंदे समणोवासए देवाणुप्पिआ णं मुंडे जाव पव्वइत्तए । नो इणट्ठे समट्ठे गोयमा ! आणंदे णं समणोवासए बहूइं वासाइं समणोवासयपरियागं पाउणोहिइ, पाउणोहित्ता जाव सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे विमाणियदेवत्ताए उववज्जिहि । तत्थ णं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई होहिइ त्ति । तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया जाव विहरइ । तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासयस्स उच्चावएहिं सीलव्वयगुणवयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चउदसवच्छराइ विइक्कंताइ पनरसमस्स अंतरे वट्टमाणस्स कयाइ पुव्वरत्तावरत्तसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था ।

एवं खलु अहं वाणियगामे बहूणं ईसर जाव सयस्स वि कुडुंबस्स आधारो तेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि भगवओ अंतियं धम्मपन्नत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए । तं सेयं खलु ममं कल्लं जाव जलंते विपुलं असणं ४

यतस्ते तन्नायोगोलकल्पाः खल्वासनादिक्रियायां नियुक्ता भवन्ति, तत्प्रत्ययश्च कर्मबन्धः स्यात्, तथा ऽऽलापादेः सकाशात्परिचयेन तस्यैव तत्परिजनस्य वा मिथ्यात्वप्राप्तिरिति, प्रथमालापेन त्वसम्भ्रमलोकापवादभयात् "कीदृशस्त्वम्" इत्यादि वाच्यमिति, तथा **'तेभ्यः'** अन्ययूथिकेभ्योऽशनादि दातुं वा सकृत्, अनुप्रदातुं वा पुनरित्यर्थः, अयं च निषेधो धर्मबुद्ध्यैव, करुणया तु दद्यादपि, किं सर्वथा न कल्पत इत्याह - **'नन्नत्थ रायाभिओगेणं'** ति 'न' इति न कल्पत इति यो ऽयं निषेधः सो ऽन्यत्र राजाभियोगात्, तृतीयायाः पञ्चम्यर्थत्वाद् राजाभियोगं वर्जयित्वेत्यर्थः, राजाभियोगस्तु - राजपरतन्त्रता, गणः - समुदायस्तदभियोगो - पारवश्यता गणाभियोगस्तस्मात्, **बलाभियोगो** नाम राजगणव्यतिरिक्तस्य बलवतः पारतन्त्र्यं, देवताभियोगोदेवपरतन्त्रता, **गुरुनिग्रहो**-मातापितृपारवश्यं गुरूणां वा-चैत्यसाधूनां निग्रहः-प्रत्यनीककृतोपद्रवो गुरुनिग्रहः तत्रोपस्थिते तद्रक्षार्थमन्ययूथिकादिभ्यो दददपि नातिक्रामति सम्यक्त्वमिति, **'वित्तिकन्तारेणं'** त्ति वृत्तिः-जीविका तस्याः कान्तारम्-अरण्यं तदिव कान्तारं क्षेत्रं कालो वा वृत्तिकान्तारं, निर्वाहाभाव इत्यर्थः, तस्मादन्यत्र निषेधो दानप्रणामादेरिति प्रकृतमिति ।

30. **'दुरुहिय'** - इत्यत्र उपा. मुद्रिते दुरूहइ दुरूहइत्ता पाठोऽस्ति ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहा पूरणो जाव जिट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवित्ता तं मित्तजिट्ठपुत्तं आपुच्छित्ता कुल्लाए सन्निवेसे णातकुलंसि पोसहसालं पडिलेहित्ता समणस्स भगवओ [31]महावीरस्स अंतियं [32]धम्मपन्नत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए एवं संपेहेइ । गोसे य तं सव्वं तहेव काऊण जिट्ठपुत्तमित्तजाइवग्गं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ । जेणेव कुल्लाए सन्निवेसे जेणेव नाइकुले जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ । पोसहसालं पमज्जइ । उच्चारपासवणभूमिओ पडिलेहेइ । दब्भसंथारयं संथरइ । दब्भसंथारयं [33]दुरुहइ । पोसहसालाए पोसहिए दब्भसंथारोवगए भगवओ धम्मपन्नत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ ।

तए णं से आणंदे [34]पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं सम्मं काएणं फासेइ जाव आराहेइ । एवं [35]दुच्चं [36]तच्चं [37]चउत्थं [38]पंचमं [39]छट्ठं [40]सत्तमं [41]अट्ठमं [42]नवमं [43]दसमं [44]इक्कारसमं जाव आराहइ । तएणं से इमेणं एयारूवेणं उरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवकम्मेणं सुक्के जाव किसे धमणिसंतए जाए । तए णं तस्स

---

31. **'महावीरस्स अंतियं'** ति अन्ते भवा आन्तिकी महावीरसमीपाभ्युपगतेत्यर्थः तां ।

32. **'धम्मपण्णत्तिं'** ति धर्मप्रज्ञापनामुपसम्पद्य अङ्गीकृत्यानुष्ठानद्वारतः ।

33. दुरूहइ दुरूहइत्ता इति पाठः उपा. मु. अस्ति ।।

34. **'पढमं' ति** - एकादशानामाद्यामुपासकप्रतिमां-श्रावकोचिताभिग्रहविशेषरूपामुपसम्पद्य विहरति, तस्याश्चेदं स्वरूपम् - '[1]सङ्कादिसल्लविरहियसम्मद्दंसणजुओ उ जो जन्तू । सेसगुणविप्पमुक्को एसा खलु होइ पढमा उ ।।१।।

सम्यग्दर्शनप्रतिपत्तिश्च तस्य पूर्वमप्यासीत्, केवलमिह शङ्कादिदोषराजाभियोगाद्यपवादवर्जिततत्वेन तथाविध-सम्यग्दर्शनाचारविशेषपालनाभ्युपगमेन च प्रतिमात्वं सम्भाव्यते, कथमन्यथा ऽसावेकमासं प्रथमायाः पालनेन द्वौ मासौ द्वितीयायाः पालनेन एवं यावदेकादशमासानेकादश्याः पालनेन पञ्च सार्धानि वर्षाणि पूरितवानित्यर्थतो वक्ष्यतीति, न चायमर्थो दशाश्रुतस्कन्धादावुपलभ्यते, श्रद्धामात्ररूपायास्तत्र तस्याः प्रतिपादनात्,

35. **'दुच्चं'** त्ति द्वितीयां व्रतप्रतिमाम् । इदं चास्याः स्वरूपम् -

[2]दंसणपडिमाजुत्तो पालेन्तो ऽणुव्वए निरइयारे । अणुकम्पाइगुणजुओ जीवो इह होइ वयपडिमा ।।१।।

36. **'तच्चं'** त्ति तृतीयां सामायिकप्रतिमाम्, तत्स्वरूपमिदम् -

[3]वरदंसणवयजुत्तो सामाइयं कुणइ जो तिसञ्झासु । उक्कोसेण तिमासं एसा सामाइयप्पडिमा ।।१।।

37. **'चउत्थं'** त्ति चतुर्थीं पौषधप्रतिमाम्, एवंरूपाम् -

[4]पुव्वोदियपडिमजुओ पालइ जो पोसहं तु सम्पुण्णं । अट्ठमिचउद्दसाइसु चउरो मासे चउत्थी सा ।।१।।

38. **'पञ्चमं'** त्ति पञ्चमीं प्रतिमाप्रतिमां, कायोत्सर्गप्रतिमामित्यर्थः, स्वरूपं चास्याः -

[5]'सम्ममणुव्वयगुणवयसिक्खावयवं थिरो य नाणी य । अट्ठमिचउद्दसीसुं पडिमं ठाएगराईयं ।।१।।

---

१ - **छाया** - शङ्कादिशल्यविरहितसम्यग्दर्शनयुक्तस्तु यो जन्तुः । शेषगुणविप्रमुक्त एषा खलु भवति प्रथमा तु ।।१।।

२ - **छाया** - दर्शनप्रतिमायुक्तः पालयन् अणुव्रतानि निरतिचाराणि । अनुकम्पादिगुणयुतो जीव इह भवति व्रतप्रतिमा ।।१।।

३ - **छाया** - वरदंसणव्रतयुक्तः सामायिकं करोति यस्तु त्रिसंध्यासु । उत्कृष्टेन त्रीन् मासान् एषा सामायिकप्रतिमा ।।१।।

४ - **छाया** - पूर्वोदितप्रतिमायुतः पालयति यः पोषधं तु सम्पूर्णम् । अष्टमीचतुर्दश्यादिषु चतुरो मासान् चतुर्थ्येषा ।।१।।

५ - **छाया** - सम्यक्त्वाणुव्रतगुणव्रतशिक्षाव्रतवान् स्थिरश्च ज्ञानी च । अष्टमीचतुर्दश्याः प्रतिमां तिष्ठत्येकरात्रिकीम् ।।१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कयाइ धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमज्झत्थिए समुप्पन्ने । जं नं अहं इमेणं उरालेणं तवेणं जाव धमणिसंतए जाए । तं अत्थि तामेव अज्जवि उट्ठाणाइसत्ती अणुत्तरे य सद्धाधिइसंवेगे जाव य मे धम्मायरिए

असिणाण वियडभोई (अस्नानो ऽरात्रिभोजी चेत्यर्थः) मउलिकडो (मुत्कलकच्छ इत्यर्थः) दिवसबम्भयारी य ।
राइं परिमाणकडो पडिमावज्जेसु दियहेसु ।।२।।
झायइ पडिमाए ठिओ तिलोयपुज्जे जिणे जियकसाए । नियदोसपच्चणीयं अण्णं वा पञ्च जा मासा ।।३।।'

39. **'छट्ठिं'** त्ति षष्ठीं अब्रह्मवर्जनप्रतिमाम्, एतत्स्वरूपं चैवम् -

'[6]पुव्वोदियगुणजुत्तो विसेसओ विजियमोहणिज्जो य । वज्जइ अबम्भमेगन्तओ य राइंपि थिरचित्तो ।।१।।
सिङ्गारकहाविरओ इत्थीए समं रहम्मि नो ठाइ । चयइ य अइप्पसङ्गं तहा विभूसं च उक्कोसं ।।२।।
एवं जा छम्मासा एसोऽहिगओ उ इयरहा दिट्ठं । जावज्जीवंपि इमं वज्जइ एयम्मि लोगम्मि ।।३।।'

40. **'सत्तमिं'** त्ति सप्तमीं सचित्ताहारवर्जनप्रतिमामित्यर्थः, इयं चैवम् -

'[7]सच्चित्तं आहारं वज्जइ असणाइयं निरवसेसं । सेसवयसमाउत्तो जा मासा सत्त विहिपुव्वं ।।१।।

41. **'अट्ठमिं'** त्ति अष्टमीं स्वयमारम्भवर्जनप्रतिमां तद्रूपमिदम् -

'[8]वज्जइ सयमारम्भं सावज्जं कारवेइ पेसेहिं । वित्तिनिमित्तं पुव्वयगुणजुत्तो अट्ठ जा मासा ।।'

42. **'नवमिं' त्ति** नवमीं भृतकप्रेष्यारम्भवर्जनप्रतिमाम्, सा चेयम् -

'[9]पेसेहिं आरम्भं सावज्जं कारवेइ नो गुरुयं । पुव्वोइयगुणजुत्तो नव मासा जाव विहिणा उ ।।'

43. **'दसमिं' त्ति** दशमीं उद्दिष्टभक्तवर्जनप्रतिमाम्, सा चैवम् -

'[10]उद्दिट्ठकडं भत्तंपि वज्जए किमुय सेसमारम्भं । सो होइ उ खुरमुण्डो सिहलिं वा धारए कोइ ।।१।।
दव्वं पुट्ठो जाणं जाणे इइ वयइ नो य नो वेत्ति । पुव्वोदियगुणजुत्तो दस मासा कालमाणेणं ।।२।।

44. **'एक्कारसमिं'** त्ति एकादशमीं श्रमणभूतप्रतिमाम्, तत्स्वरूपं चैवम् -

'[11]खुरमुण्डो लोएण व रयहरणं ओग्गहं च घेत्तुणं । समणब्भूओ विहरइ धम्मं काएण फासेन्तो ।।१।।
एवं उक्कोसेणं एक्कारस मास जाव विहरेइ । एक्काहाइपरेणं एवं सव्वत्थ पाएणं ।।२।। इति ।।

अस्नानो दिवसभोजी मुत्कलकच्छो दिवसब्रह्मचारी च । रात्रौ कृतपरिमाणः प्रतिमावर्जेषु दिवसेषु ।।२।।
ध्यायति प्रतिमया स्थितः त्रैलोक्यपूज्यान् जिनान् जितकषायान् । निजदोषप्रत्यनीकमन्यद्वा पञ्च यावन्मासान् ।।३।।

६ - **छाया** - पूर्वोदितगुणयुक्तो विशेषतो विजितमोहनीयश्च । वर्जयत्यब्रह्मैकान्ततस्तु रात्रावपि स्थिरचित्तः ।।१।।
शृङ्गारकथाविरतः स्त्रिया समं रहसि न तिष्ठति । त्यजति चातिप्रसङ्गं तथा विभूषां योत्कृष्टम् ।।२।।
एवं यावत् षण्मासान् एषोऽधिकृतस्तु इतरथा दृष्टम् । यावज्जीवमपीदं वर्जयति एतस्मिन् लोके ।।३।।

७ - **छाया** - सचित्तमाहारं वर्जयति अशनादिकं निरवशेषम् । शेषपदसमायुक्तो यावन्मासान् सप्त विधिपूर्वम् ।।१।।

८ - **छाया** - वर्जयति स्वयमारम्भं सावद्यं कारयति प्रेष्यैः । वृत्तिनिमित्तं पूर्वगुणयुक्तोऽष्ट यावन्मासान् ।।१।।

९ - **छाया** - प्रेष्यैरारम्भं सावद्यं कारयति नो गुरुकम् । पूर्वोदितगुणयुक्तो नव मासान् यावद्विधिनैव ।।१।।

१० - **छाया** - उद्दिष्टकृतं भक्तमपि वर्जयति किमुत शेषमारम्भम् । स भवति तु क्षुरमुण्डः शिखां वा धारयति कोऽपि ।।१।।
द्रव्यं पृष्टो जानन् जानामीति नो वा नैवेति । पूर्वोदितगुणयुक्तो दश मासान् कालमानेन ।।२।।

११ - **छाया** - क्षुरमुण्डो लोचेन वा रजोहरणमवग्रहं च गृहीत्वा । श्रमणभूतो विहरति धर्मं कायेन स्पृशन् ।।१।।
एवमुत्कृष्टेनैकादश मासान् यावत् विहरति । एकाहादेः परतः एवं सर्वत्र प्रायेण ।।२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव जिणे सुहत्थी विहरइ ताव मे सेयं अपच्छिममारणंतियसंलेहणाए झूसियस्स भत्तपाणं पडियाइक्खियस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए तं च सव्वं तहेव निव्वत्तेइ ।

तए णं तस्स आणंदस्स अन्नया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं सोहणेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिन्नाणे समुप्पन्ने । पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंचजोयणसइयं खित्तं जाणइ पासइ । एवं दक्खिणेणं एवं पच्चत्थिमेणं । उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं जाणइ पासइ । उड्ढं जाव सोहम्मं कप्पं जाणइ पासइ । अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं नरयं चउरासीइवाससहस्सठिइयं जाणइ पासइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए परिसा निग्गया जाव पडिगया । तए णं तस्स जिट्ठे इंदभूइ नामं गणहरे जहा पन्नत्तीए तहा भिक्खायरियाए अणुपविसइ । जाव अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं पडिगाहिइ, पडिगाहित्ता वाणियगामाओ पडिनिग्गच्छइ । कोल्लागसन्निवेसस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे बहुजणं अन्नमन्नस्स एवमाइक्खमाणं निसामेइ । एवं खलु देवाणुप्पिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे नाम समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिमं जाव अणवकंखमाणे विहरइ । तए णं तस्स गोयमस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पन्ने । गच्छामि णं आणंदं समणोवासयं पासामि । तओ जेणेव कुल्लाए जेणेव पोसहसाला जेणेव आणंदे तेणेव उवागच्छइ । तए णं से आणंदे भगवं गोयमं इज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ० जाव हियए भगवं गोयमं एवं खलु भंते ! अहं इमेणं ओरालेणं तवेण जाव धमणिसंतए जाए । नो संचाएमि देवाणुप्पियस्स अंतियं पाउब्भवित्ताणं तं तुब्भे णं भंते ! इच्छाकारेणं अणभिओगेणं इओ चेव एह जेणं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाएसु वंदामि । तए णं भगवं गोयमे जेणेव आणंदे जाव उवागच्छइ । से वि य णं भगवओ तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाए वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी । अत्थि णं भंते ! गिहिणो गिहमावसंतस्स ओहिन्नाणे समुप्पज्जइ । हंता अत्थि । जइ भंते ! एवं ता मम वि गिहिणो ओहिन्नाणे समुप्पन्ने । जाव लोलुयच्चुयं नरयं जाणामि पासामि । तए णं से भगवं तं एवं वयासी । अत्थि णं आणंदा जाव उप्पज्जइ, नो चेव णं एवमहालए । तं णं तुमं एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव तवोकम्मं पडिवज्जाहि । तए णं से आणंदे भगवं एवं वयासी । अत्थि णं भंते ! जिणपन्नत्ताणं सब्भूयाणं भावाणं आलोइज्जइ । आणंदा ! नो इणट्ठे समट्ठे । तं णं भंते ! तुब्भे चेव एयस्स ठाणस्स आलोएह जाव पडिवज्जह । तए से तेणं एवं वुत्ते संकिए कंखिए आणंदस्स अंतियाओ पडिनिक्खम्म जेणेव भगवंतो तेणेव जाव अहं संकिए इहं हव्वमागए । तं णं भंते ! किं आणंदेणं तस्स ठाणस्स आलोएयव्वं उयाहु मए । गोयमा ! तुमं चेव णं तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव आणंदं समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि । से वि य णं तं सव्वं तहेव पडिवज्जित्ताणं विहरइ । तए णं आणंदे बहूहिं सीलव्वएहिं जाव अप्पाणं भावित्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता इक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसिए छेइत्ता, आलोइयपडिकंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगमहाविमाणस्स उत्तरपुरत्थिमेणं अरुणे विमाणे देवत्ताए उववण्णे । तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । तत्थ णं आणंदस्स वि देवस्स चत्तारि

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । आणंदे णं भंते ! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं अणंतरं चइत्ता कहिं गच्छिहि त्ति । कहिं उववज्जिहि त्ति । गो. महाविदेहे वासे सिज्झहि त्ति ।।

इत्यानन्दगृही गृहीतनियमः श्रीवीरपादान्तिके, सावद्यं गृहकृत्यजातमखिलं कृत्वा कृती पुत्रसात् ।
कुर्वन् तीव्रतरं तपः शुचितया चित्तस्य लब्ध्वाऽवधिम्, सौधर्म्मे विबुधत्वमेत्य च शिवं गामी विदेहेष्वथ ।।१।।
[शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्]

गतमानन्दोपाख्यानं, साम्प्रतं सुन्दरीदृष्टान्त उच्यते -

।। तपधर्मविषये सुन्दरीकथानकम् ।।

ओसप्पिणी इमीसे तइए अरयम्मि सावसेसम्मि । कुलगरकुलंमि सामी उप्पन्नो पढमतित्थयरो ।।१।।
वोलीणबालभावो भावारिविमद्दबद्धकक्खो वि । भोगफलकम्मवसओ वसइ गिहि ञ्चिय अणासत्तो ।।२।।
कप्पदुमेसु तइया पलीयमाणेसु समयदोसेण । पीणेइ मिहुणनिवहं जंगमकप्पदुमो भयवं ।।३।।
कइयाइ बालजुयलगमेगं सफलस्स तालरुक्खस्स । जाव तलंमि निलीणं ता पवणपणुल्लियं सहसा ।।४।।
पडियं तालस्स फलं मिहुणनरो तेण विणिहओ मम्मे । पंचत्तं संपत्तो पढमेण अकालमरणेण ।।५।।
अह जूहपरिब्भट्ठा मिगीव मिगसावलोयणा कन्ना । नाभिस्स समुवणीया मिहुणेहिं इमा अणाह त्ति ।।६।।
संगहिया य इमेणं उसभस्स इमा भविस्सपत्ति त्ति । परिवड्ढिया कमेणं पत्ता नवजुव्वणारंभं ।।७।।
सुरवइउवरोहेणं समयंमि सुमंगला सुणंदा य । सा परिणीया पहुणा जणाण ठिइदंसणट्ठाए ।।८।।
देवीइ सुनंदाए समगं सिरिबाहुबलिकुमारेणं । वरलक्खणपडिपुन्ना धन्ना कन्ना समुप्पन्ना ।।९।।
तीसे य तिजयगयसार - रूवपरमाणुसुंदरतणूए । सिरिसुंदरि त्ति नामं विणिम्मियं भुवणनाहेणं ।।१०।।
सा मुक्कबालभावा भुवणजणाणंदकंदवणमाला । बाला कलासु कुसला विहिया सव्वत्तुणा पिउणा ।।११।।
करडिघड व्व मएणं ससहरमुत्ति व्व सरयसमएणं । पूरेण सरि व्व इमा पसाहिया जुव्वणगुणेणं ।।१२।।
लोउत्तरविणएणं पियंवयत्तेण लडहभावेणं । सव्वेसि बहुमया सा विसेसओ भरहचक्किस्स ।।१३।।
किंतु लहुकम्मयाए पहीणपायंमि कामरागम्मि । हियर्यमि निव्वियारा चिट्ठइ नवजुव्वणा वि इमा ।।१४।।
तेसीइ पुव्वलक्खे अह पालेउं गिहत्थपज्जायं । संसारचारयाओ विरत्तचित्तो भुवणनाहो ।।१५।।
कयसव्वसंगचाओ कालेणं पत्तकेवलालोओ । पढमोसरणम्मि ठिओ पुरम्मि सिरिपुरिमतालंमि ।।१६।।
अह धम्मदेसणाए अमोहवयणस्स तस्स जयगुरुणो । सुरवरनरतिरिगणे परमं संवेगमावन्ने ।।१७।।
संघस्स मूलथंभे पव्वइए उसभसेणकुमरंमि । बीयत्थंभनिभाए बंभीइ पवन्नचरणाए ।।१८।।
भरहे सुसावगत्तं पडिवन्ने गहियसुद्धसम्मत्ते । सा सुंदरी कुमारी भवभमणाओ सुनिव्विन्ना ।।१९।।
विन्नवइ बाहुबलिणं संजमजोगुज्जमाय अह तेणं । दिन्नाणुन्ना भरहं उवट्ठिया सयलकुलसामिं ।।२०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोयाविंती सव्वायरेण भवचारयाउ अप्पाणं । भरहेण नेहमोहियमणेण न विसज्जिया एसा ।।२१।।
ओहयमणसंकप्पा वि सासणं तस्स लंघिउमसत्ता । सम्मत्तमूलियाइं पडिवन्ना सावयवयाइं ।।२२।।
अन्नत्थ भुवणनाहंमि विहरिए मोहतिमिरखरकिरणे । चक्काणुमग्गलग्गे चलिए भरहे दिसिजयाय ।।२३।।
नयरीइ विणीयाए परिट्ठिया सुंदरी विचिंतेइ । चरणावरणं कम्मं पिच्छह कह मज्झ अइनिबिडं ।।२४।।
जं तायवयणसवणेण मुणियनिग्गुणभवो वि भरहवई । एयारिसपडिबंधे पाडइ मं ही अबंधु व्व ।।२५।।
वयसा वएण तवसा जिट्ठ च्चिय सव्वहा वि मे बंभी । जा तायपायमूले निम्मूलइ कम्मवणगहणं ।।२६।।
मह पुण जइ वि विरत्तं चित्तं भववासपासओ तह वि । किर कित्तिओ गिहित्ते हविज्ज सावज्जपरिहारो ।।२७।।
किं वा अघडियसंघडणचिंतणेणं इमेण मह इन्हिं । ताव तवु च्चिय सारो वए वि इहइं पि तं काहं ।।२८।।
न य एगंतेणं अणसणेण निव्वहइ देहजत्ता वि । देहं च विणा विहलो वयगहणमणोरहो होही ।।२९।।
ता कायव्वं च तवं देहं पि हु संजमो य वोढव्वं । इय चिंतिऊण चित्ते कया पइन्ना इमीइ इमा ।।३०।।
जइया मं भरहवई वयाय अणुमन्निही महाभागो । तइया हं विरमिस्सं आयामतवाओ एयाओ ।।३१।।
इय कयविणिच्छया सा आयामतवंमि तंमि अइकढिणे । [संचिट्ठिउ] पयट्टा किं दुग्गं दढपइन्नाणं ।।३२।।
निन्नेहभायणेणं मणं पि से नेहविरहियं मन्ने । तेणं चिय अइफरुसं इय नियदेहे वि संजायं ।।३३।।
हिययालवालरूढे रागदुमे तीइ तवदवो दिन्नो । तप्पल्लवुट्ठअहरो तेणाऽतंबोलविच्छाओ ।।३४।।
तिव्वेण तेण तवसा उम्मीलइ पंडिमा तयंगेसु । अब्भिंतरं विसुद्धिं सयराहं वाहरंतुच्चं ।।३५।।
जणउ किसत्तं जुत्तं अज्झंतं कक्कसं तवो तीए । देहम्मि सो तह च्चिय तहवि हु लवणिमजलुप्पीलो ।।३६।।
सट्ठिं वाससहस्साइं चरइ सा तं तवं महासत्ता । संवच्छराणसणिणो जिणस्स पुत्ति त्ति किमजुत्तं ।।३७।।
इत्तो य पडिनियत्तो भरहवई साहिउं भरहखित्तं । तह बारसवारिसिओ संजाओ सोऽभिसेयमहो ।।३८।।
तस्संते य निउत्तेहिं चक्किणो सयणदंसणावसरे । सा सुंदरी कुमारी वि दंसिया तारिसरूवा ।।३९।।
दिट्ठा य तेण अज्झंतकिसतणू सा निदाहसरिय व्व । विच्छाया य पकामं पभायमयलंछणतणु व्व ।।४०।।
तत्तो साहिक्खेवं छक्खंडवई निओइणो भणइ । किं रे ! मज्झ वि गेहे दरिद्दगेहि व्व न हु अन्नं ।।४१।।
संतं पि सूवयारा अहव पमाएण नो पकप्पंति । होऊण गुत्तिया ते ता किं भुंजंति मह वित्तिं ।।४२।।
खज्जूरहारहूरा - दाडिमकयलीफलाण ते रुक्खा । किं सव्वे समगं चिय तावसतेयग्गिणा दड्ढा ।।४३।।
गोमहिसीणं खीरं हीरइ किमदिट्ठचेडगगणेहिं । जं एरिसं अवत्थं पडिवन्ना सुंदरी कुमरी ।।४४।।
अह वा साहीणेसु वि समत्थवत्थूसु आउरा एसा । ता किं जीवइ विज्जेसु कोइ वज्जेण अह निहया ।।४५।।
के साहिया मए नणु भारहवासे विरोहिणो अवरे । पच्चक्खविवक्खेसुं भवारिसेसुं ठिएसु पुरो ।।४६।।
अह विणयविरइयंजलपुडेहिं सभएहिं तेहिं विन्नत्तं । कुणउ पसायं देवो अवहारउ जमिह परमत्थं ।।४७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देविंदस्स व देवस्स अत्थि भुवणे वि किंत्र साहीणं । सुंदरिकुमरीइ पुणो किसत्तणे कारणं इणमो ।।४८।।
जप्पभिइं देवी णं वयगहणाओ निवारिया एसा । तप्पभिइं गिहवासे निवसइ उवरोहमित्तेण ।।४९।।
एवं ठिए वि देवस्स विजयजत्तादिणाओ आरब्भ । आयंबिलाणि एसा निरंतरं कुणइ जा अज्ज ।।५०।।
तं सोउं भरहवई पभणइ धिद्धी मए इमीइ इमो । नेहेण अज्जवेण व संजमजोगुज्जमो खलिओ ।।५१।।
आलवइ तं च कोमलगिराइ सुंदरि ! वयं किमिच्छेसि ? । आमं ति तीइ भणिए सप्पणयं भणिउमारद्धो ।।५२।।
अणुरूवं खु अवज्झं तं चिय तायस्स तेण इय भणसि । विसयामिसम्मि गिद्धा तत्तविमुद्धा न उण अम्हो ।।५३।।
जीयंमि चले लोलंमि जुव्वणे भंगुरेसु भोगेसु । को नाम किर सयन्नो भववासे वसिउमहिलसइ ।।५४।।
असुइदलनिम्मिएणं असुइसरूवेण असुइपुट्ठेण । देहेण सुई धम्मो जं घिप्पइ तं खु दक्खत्तं ।।५५।।
तं चिय वियक्खणा जा असारभंडेण पुग्गलेणिमिणा । सयलसुहतिलयभूयं सिवसुक्खं वंछसे घित्तुं ।।५६।।
आबालकालओ ह्रिय अलित्तचित्ताइ विसयपंकेण । उव्वहइ तुज्झ रेहं बंभि ह्रिय न हु जए अन्ना ।।५७।।
तम्हा इत्तियकालं वयविग्घो तुज्झ जं मए विहिओ । तं खमसु तह य सज्जसु निरवज्जे संजमुज्जोगे ।।५८।।
इय सहरिसेण भरहेसरेण सा सुंदरी कयाणुन्ना । ऊससियतणू जाया तवदुब्बलं व अवणेउं ।।५९।।
संकप्पियं च तीए जइ ताओ कुणइ संपयं करुणं । ता अविलंबियमित्तो पूरेमि मणोरहं निययं ।।६०।।
इत्थंतरंमि सामी सुरअसुरनरिंदविंदनयचलणो । अट्ठावयंमि सेले समोसढो पढमजिणनाहो ।।६१।।
गुरुहरिसपूरपूरियहियया अह सुंदरी जिणागमणे । पढमं पि पट्ठिएणं चित्तेणंतो रविज्जंता ।।६२।।
सह भरहचक्कवइणा संपत्ता सामिपायमूलंमि । तद्दंसणमित्तेण वि मन्नइ मुत्तं व अप्पाणं ।।६३।।
पुव्विं पि भवविरत्ता विसेसओ धम्मसवणओ तइया । सिरविरइयंजलिउडा एवं विन्नवइ जिणनाहं ।।६४।।
संकप्पोवणएणं ताय ! तए जह अहं अणुग्गहिया । वयवियरणेण संपइ तह पसियसु परमकारुणिय ! ।।६५।।
मा पडिबज्झसु गेहे अहासुहं कुणसु वंछियं वच्छे ! । दिन्नाणुन्ना एवं जयगुरुणा सा पहिट्ठमणा ।।६६।।
अज्जब्भुयभूइए भरहेणं विहियनिक्खमणमहिमा । पढमजिणपायमूले पव्वइया सुंदरी कुमरी ।।६७।।
अब्भत्थदुविहसिक्खा दिक्खादिवसाओ सा समारब्भ । दुक्करतवचरणरया मायामयविप्पमुक्कमणा ।।६८।।
इक्कारसन्हमंगाण सुत्तमत्थं च भाविरी सम्मं । भववासनिप्पिवासा सिवत्थिणी चरणमणुचरइ ।।६९।।
गिहवासे ह्रिय तीए आयामतवं तहा तवन्तीए । पयइठिइप्पएसा रसा य कम्माण संखिविया ।।७०।।
जं किं पि कम्मसेसं तं पि हु तवसंजमेहिं निम्महिउं । उप्पाडियं अणन्तं तीइ तओ केवलन्नाणं ।।७१।।
इत्यचिन्त्यविभवेन तादृशा, दुश्चरेण तपसाऽतिभूयसा ।
कर्म्मबन्धमवधूय दूरतः सुन्दरी पदमवापदव्ययम् ।।७२।।

समाप्तमिदं सुन्दरीतपोवृत्तम् ।। एवं च -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलं यस्य विदुर्दुरक्षदमनं स्कन्धश्च निस्सङ्गता, शाखा
द्वादश भावनाः प्रवितता मैत्र्यादयः पल्लवाः ।
तत्तल्लब्धिविजृम्भितानि सुमनःश्रेणी च मोक्षं फलम्,
सेव्यः कस्य न विश्वतापशमनः सोऽयं तपःपादपः ।।१।। अपि च -

मोघत्वं न गिरां स्फुरन्ति पुरतो यच्चिन्तितार्थव्रजाः,
निर्व्याजां च भुजिष्यतां क्षितिभुजोऽप्युच्चैर्भजन्तेऽत्र यत् ।
यत् कुर्वन्ति च किङ्करत्वममराः केषामपि क्ष्मातले,
निश्छद्मान्तरसञ्चितस्य तपसस्तद् विद्धि विस्फूर्जितम् ।।२।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेव**सूरिपट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र**-**सूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा**-**मृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीये मूलद्वारे तृतीयं **तपःप्रतिद्वारं** समाप्तमिति ।।१९९।। श्रीः ।।

तदेवं तपःप्रतिद्वारमभिधाय भावनाप्रतिद्वारमभिधित्सुराह -

कज्जलरेहारहियं चित्तं जह रसवई विणा लवणं ।
पाणियहीणु व्व मणी वियलियकलसु व्व पासाओ ।।२००।।
वयणं व नयणहीणं लायन्नविवज्जियं व तारुन्नं ।
न विणा भावं सोहइ एसो दाणाइओ धम्मो ।।२०१।।

एष दानादिर्दानशीलतपोलक्षणः पूर्वोपवर्णितो **धर्म्मः, [1]भावं विना** विशुद्धवासनाव्यतिरेकेण **न शोभते** । अत्रोपमानान्याह - किंवत् ? यथा **चित्रमा**लेख्यं न शोभते, किम्भूतं ? **कज्जलरेखा**-**रहितं** मषीलेखनीसंचारशून्यं, तस्या एव तदवयवोन्मीलनहेतुत्वात् । **यथा** च **रसवती** न भाति, कथं ? **लवणं विना,** मधुरादिरससद्भावेऽपि रसवत्यां प्रायः क्षाररसस्यैव विशेषरुचिनिमित्त-त्वात् । यथा च **मणि**र्मौक्तिकादिर्न द्योतते, किंविशिष्टः ? **पानीयहीनः** । मौक्तिकादिषु हि प्रायो जलच्छायैव तद्विद्भिर्विचार्यते । यथा च **प्रासाद**स्त्रिदशालयो **विगलितकलशः** शातकुम्भादि-

गाथा-२०१ 1. भाव्यते भववैराग्यादिसमुत्पादनाय पुनः पुनर्मनसि स्मरणेनात्मा मोक्षाभिमुखीक्रियते यया सा भावनाऽनित्यादिद्वादशविधा मैत्र्यादिचतुर्विधा । - शा. सु. १/२ ।। भावश्च सत्परिणामपूर्वकसर्वव्रताचारपरि-पालनेनाभिनवबन्धनिवृत्तिपुराणकर्मक्षपणातः स्वस्वरूपप्रापणं । - शा. सु. १०/१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुम्भशून्यो मनोरमत्वं न बिभर्त्ति ।।२००।।

तथा – यथा **वदनं** मुखं सुषमां नो वहति, किम्भूतं ? **नयनहीनं** लोचनविनाकृतं तयोरेव तच्छोभानिबन्धनत्वात् । यथा च **तारुण्यं** यौवनं न विराजते । किंविशिष्टं ? **लावण्यविवर्जितं** लवणिमगुणवन्ध्यं । लावण्यस्यैव प्रायो रागिमनोमोहकत्वात् । एवं च भावशून्योऽन्यो दानादि-धर्म्मोऽपि । श्रद्धाविकला हि दानादयो निष्फलाः स्वल्पफला वा प्रायः सम्पद्येरन्निति ।।२०१।।

कथमिदमिति चेत्, उच्यते -

जं कट्ठमणुट्ठाणं दाणं सीलं तवो विणा भावं ।
तमकामनिज्जराए निवडइ सव्वं पसूणं व ।।२०२।।

यत्शब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, अतो **यत् कष्टमनुष्ठानं** कष्टहेतुत्वात् कष्टं । अनुष्ठानमावश्यक-चक्रवालसामाचारीकेशोल्लुञ्चनातापनादिकम् । यच्च **दानं** पूर्वोपवर्णितम् । यच्च **शीलं** प्राक् प्रदर्शितमेव । यच्च **तपो**ऽनन्तरोक्तम्, **तदे**तत् **सकलमपि भावं विना** श्रद्धावन्ध्यम् । **अकाम-निर्जरायाम**ज्ञानक्लेशाधिसहनरूपायां **निपतति** । केषामिव ? **पशूनामिव** । यथा हि तिर्यञ्चः स्वसञ्चितदुष्कर्मपारवश्यात् क्षुत्पिपासाशीतोष्णादिवेदनां वेदयन्तोऽप्यज्ञानवशान्न निर्जराभाज-स्तद्वदिति ।।२०२।।

किञ्च दानादिषु दुष्कर्मप्रमथने प्रायस्तपसः प्राधान्यम् । भावनायास्तु ततोऽपि कोटिगुणित-निर्जराफलत्वमुपदर्शयन्नाह –

जं जम्मकोडिघडिएण तिव्वतवसा न खिज्जए कम्मं ।
उयह सुहभावपसरो खयेइ तं पि हु खणद्धेण ।।२०३।।

यत् कर्म मोहनीयादि **तीव्रेण** दुष्करेणापि **तपसा** द्वादशभेदेन । प्रस्तावात् भावशून्येन **न क्षीयते** । किंविशिष्टेन? **जन्मकोटिसङ्घटितेन** भवलक्षशतसुसञ्चितेनाऽपि । **'उयह'** पश्यत । यूयमिति प्रेक्षावदामन्त्रणम् । **शुभभावप्रसरः** विशुद्धध्यानप्रकर्ष**स्तदपि** कर्म्म **क्षपयति,** निष्ठां नयति । यदि पुनः पूर्वस्मादपि पुष्कलेन, न इत्याह - **क्षणार्द्धेन** क्षणः पञ्चदशलेशलक्षणस्तस्यार्द्धं सार्द्धसप्तलेशरूपं, तन्मात्रेणातिजघन्येन कालेनेत्यर्थः । अतः सुमहदन्तरं तपोनिर्जराभावना-निर्जरयोरिति ।।२०३।। किञ्च -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एगे संकप्पतरंगिएहिं विसएहिं वेलविज्जंता ।
सुमिणे वि अदिट्ठसुहा विहुरा अहरं गइं जंति ।।२०४।।

एके केचन निर्विवेकाः **सङ्कल्पतरङ्गितैर्**मनोमात्रप्रेङ्खोलद्भिर्**विषयैः** शब्दादिभि**र्विप्लाव्यमाना**-स्तत्त्वतस्तु **स्वप्नावस्थायामप्यदृष्टसुखाः** । एवं सत्यपि दुरध्यवसाय**विधुरा अधरां** नरकलक्षणां **गतिं यान्ति** कण्डरीकादिज्ञातेन ।।२०४।। तथा -

अन्ने भुंजंता वि हु विउले माणुस्सए महाभोगे ।
तं किंपि सुद्धभावं धरंति मुच्चंति लहु जेण ।।२०५।।

अन्ये तु विकस्वरविवेकपरिपाकपेशलमतयो **विपुलान् मनुष्यसम्बन्धिनो महाभोगान् भुञ्जाना अपि तत् किमपि** स्वगोचरं केवलिगोचरं वा **शुभभावनाप्रकर्षमारोहन्ति येन शीघ्रं** कर्म्मबन्धनेभ्यो **मुच्यन्ते** । आदर्शगृहान्तरपूरितशुक्लध्यान**भरतचक्रवर्त्त्यादि**वत् ।।२०५।।

एवं च सति किमायातमित्याह -

तम्हा न बज्झचिट्ठा असुहा व सुहा व बलवई इत्थ ।
मणवित्तीइ गुरुत्तं समयविऊ दिंति जं बिंति ।।२०६।।

तस्मादत्रावास्मिन् धर्म्मव्यवहारे **बाह्या चेष्टा** कायिकी वाचिकी वा **न बलवती** न कार्यकारिणी । किम्भूता? **अशुभा** आश्रवरूपा, **शुभा** संवररूपा **वा** । किन्तु **समयविदः** सिद्धान्ततत्त्वज्ञाः **मनोवृत्ते**श्चेतोव्यापारस्यैव **गुरुत्वं** कार्यकारित्व**मारोपयन्ति** ।।२०६।।

यत्तयेव वदन्ति -

वावाराणं गरुओ मणवावारो जिणेहिं पन्नत्तो ।
जो नेइ सत्तमीए अहवा मुक्खं पराणेइ ।।२०७।।

व्यापाराणां कायिकवाचिकमानसिकानां **मध्ये मनोव्यापार** एव **जिनैः** सर्वविद्भिः **गुरुः** कार्यकारी **प्रज्ञप्तः** । **यः** प्राणिनं **सप्तमीं** माघवत्यभिधानां नरकावनीं **नयति,** यश्च **मोक्षम**जरामरं पदमपि **लम्भयति** । अन्वयव्यतिरेकाभ्यामत्र राजर्षि**प्रसन्नचन्द्र** एवोदाहरणमिति ।।२०७।। साम्प्रतं सिंहावलोकितन्यायेन पुनस्तपसः सकाशात् भावनाया एव प्रकृष्टतमत्वं दृष्टान्तेन स्पष्टयन्नाह –

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिरपरिचिएण न कयं तवेण तं बाहुबलिमहामुणिणो ।
जं सुद्धभावणाए विहियं तक्कालमिलियाए ।।२०८।।

बाहुबलेर्महामुनेस्तपसाऽनशनेन तत्र कृतं नोपनीतं । किम्भूतेन ? **चिरपरिचितेन** संवत्सरं यावत् परिशीलितेन । यत् किम् ? **यत् शुद्धभावनया** निर्मलमनोवासनया **विहितं** निर्मितम् । किंविशिष्टया ? **तत्कालमिलितया** तदैव मनोगोचरमवतीर्णया । अक्षरार्थोऽयम् । भावार्थस्तु कथानकगम्यस्तच्चेदम् -।। श्रीः ।।

।। भावधर्मविषये बाहुबलिकथानकम् ।।

अत्थित्थ भरहवासे विणीयनयरीइ उत्तरदिसाए । [1]बहलीनामा विसओ विसेसओऽसेसविसयाणं ।।१।।
दिट्ठंमि जम्मि निवसिरनरवंछियकामकामधेणुम्मि । तत्तियमित्ता भूमी पडिहासइ दिव्वभूमि व्व ।।२।।
पुन्नजणसेवणिज्जा धणएण सुसामिणा विहियरक्खा । अलयाउरि व्व सक्खा तक्खसिला नाम तत्थ पुरी ।।३।।
जीइ समीवारामा सव्वोउयसाहिसयसहस्सजुया । पंचतरुमित्तवित्तं हसंति कुसुमेहिं तिअसवणं ।।४।।
परिसरभूमी जीए फुरंततेएण धम्मचक्केणं । उदयगिरिसिहरवसुह व्व सइ सन्निहियसहसयरा ।।५।।
फलिहमया पासाया सुपइट्ठा जीइ सियमऊहेहिं । जोइसविमाणाणि हसंति ठाणविरहेण भमिराणि ।।६।।
अभया अखीणविभवा चिंताणंतरघडंतमणकामा । जव्वासिजणा तियसेहिं विसरिसा जइ निमेसेणं ।।७।।
तीए य पबलभुयबल - गलहत्थियसयलसुहडभडवाओ । सिरिरिसहसामितणओ राया नामेण बाहुबली ।।८।।
ससिरविमिसेण उड्ढं तिरियं खीरोयवाडवनिहेण । पायाले वि हु पायालनाहवज्जानलछलेण ।।९।।
भूसंति अद्धघुसिणेण तिहुयणं जस्स मित्तसत्तूणं । रइअरइकरा जुगवं जसप्पयावा पसप्पंता ।।१०।।
विंझगिरिरोहरोहणमहीउ भीयाओ करितुरयरयणे । उवणिंति तिहुयणं पि हु जस्स पयावद्दियं दट्ठुं ।।११।।
भीया हढग्गहाओ सुवन्नरयणायला वि पढमं पि । वियरंति जस्स दंडं सुवन्नरयणागरमिसेण ।।१२।।
कप्पद्दुमु ति पणईहिं पलयकालानलु त्ति वेरीहिं । पणय भयपरवसेहिं सेविज्जइ जो सयाकालं ।।१३।।
पीणियमणो पियाहिं वसंतसिरिसन्निहाहिं अणवरयं । सोमजसप्पमुहेहिं कुमाररूवेहिं कुमरेहिं ।।१४।।
उवहाविसुद्धबुद्धी विणयनयविक्कमप्पवीणेहिं । मंतिगणेहि य चिंतिज्जमाणछग्गुणसंचारो ।।१५।।
पूयंतो य तिसंझं रयणमयं रिसहसामिपडिबिम्बं । साहीणनवनिहाणु व्व दाणसत्तिं पयासिंतो ।।१६।।
सुविसट्टनट्टसविवेयागयनिरवज्जवज्जसज्जमणो । सुरराओ इव सग्गे गयं पि कालं न याणेइ ।।१७।।
अह अन्नया निविट्ठो सेवगनिवनिब्भरम्मि अत्थाणे । घडियंजलिणा एवं पडिहारेणं स विन्नत्तो ।।१८।।

गाथा-२०८ 1. बहली - देशविशेषः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छक्खंडभरहवइणो भरहस्स सुवेगनामओ दूओ । देव ! दुवारे दंसणमिच्छइ को इत्थ आएसो ।।१९।।
साणंदेणं रन्ना दिन्नाणुन्नेण वित्तवालेण । अत्थाणंमि विमुक्को विम्हयथिमिओ तओ दूओ ।।२०।।
लोलंतकणयसिंखलरवेण नियसामिणो पसायं व । पयडं स वाहरंतो सप्पणयं पणमइ नरिंदं ।।२१।।
समुचियठाणम्मि इमं दिन्ने उचियासणम्मि उवविट्ठं । दिट्ठीइ अमयवुट्ठीइ सिंचिरो नरवई भणइ ।।२२।।
कुसलं सुवेग ! जिट्ठस्स भाउणो मज्झ भरहनाहस्स । निव्वत्तिया य तेणं निव्विग्घेणं विजयजत्ता ।।२३।।
करितुरयकोसकुमरा सुद्धंतं मन्तिणो चमूवइणो । पोरा जाणवया वि य सुहेण मह भाउणो संति ।।२४।।
सामाइणो उवाया निरवाया लहु फलंति अज्जस्स । तह संधिविग्गहाईणि सुट्ठु चिंतंति मंतिगणा ।।२५।।
निसुणेइ अप्पियं पि हु परिणइपत्थं ति विउसजणवयणं । हिययं न वेलविज्जइ इमस्स पडुचाडुयारेहिं ।।२६।।
इंदियदुद्दंतहया निहिया वि विवेयवाहयालीए । मज्जायरज्जुविरहेण उप्पहे न हु पयट्टंति ।।२७।।
नीइपरिपालियाओ पसवइ गोमंडलाओ से विमलो । बंभंडभंडपूरणपवणो जसखीरपब्भारो ।।२८।।
तह लालियाउ तह पालियाउ तह गाहियाउ विणयपहं । सुमरंति तायपायाण किं पयाओ पुराणाओ ।।२९।।
कज्जेण केण सुंदर ! अज्जेण विसज्जिओ सि मह सविहं । संभरइ भरहनाहो किं संपइ बंधुवग्गं पि ।।३०।।
इच्चाइ नेहगब्भं सोवालंभं च पभणिओ रन्ना । विणएण सुवेगो वि हु भावन्नू विन्नवइ एवं ।।३१।।
जो तिहुयणस्स वि खमो जोगखेमंमि नियय्यतेएणं । तस्स सयं चिय सिद्धं कुसलं सिरिभरहनाहस्स ।।३२।।
दिसिविजए से विग्घा हविज्ज कह तिहुयणिक्कमल्लस्स । अहियाओ घडइ विग्घो तुल्लो वि न तस्स भुवणम्मि ।।३३।।
करितुरयकोसपमुहं विद्दविउं तस्स कस्स किर सत्ती । को नाम जीवियत्थी लुंपइ सेसस्स सीसमणिं ।।३४।।
पयतलल्लुलंतसीसाण मणुयपुहईसराण का गणणा । जं देवदाणवा वि हु भिच्च व्व भयंति भरहवइं ।।३५।।
सामाइणो उवाया तह विग्गहसंधिपभिइणो भुवणे । तेणं चिय निम्मविया कह न फलिस्संति तस्सेव ।।३६।।
अविणयपहंमि पहियं भुवणजणं जो पयट्टए विणए । नियकरणवग्गनिग्गहणपोरिसे तस्स किं भणिमो ।।३७।।
उवजीवइ विउसजणो तं चिय विसमेसु अत्थसत्थेसु । तेहिंतो को अहिओ उवएसो तस्स किर होही ।।३८।।
सुरकिन्नरीहिं गिज्जइ सुरवइपुरओ वि तस्स जसपसरो । भूमंडलंमि पसरइ तस्स पसिद्धि त्ति को पसिणो ।।३९।।
कह तायस्स पयाओ भरहंमि सुसामियं सुमरंति । सुलहे सहयारफले अहिलसइ न मंजरिं को वि ।।४०।।
जइ भग्गविणयमग्गा न बंधुवग्गा भयंति भरहवइं । कुलमेरामयरहरो सो वि हु ता तेन संभरिओ ।।४१।।
बंधु त्ति निब्भएहिं न बंधवेहिं पि तंमि ठायव्वं । आणासाराण विणा न सेवगं बंधवो को वि ।।४२।।
किं च सिरिभरहवइणो चुलसीहयगयरहोहनाहस्स । छण्णवइकोडिवरसुहड-गामसामिस्स किमसज्झं ।।४३।।
किं वा परेहिं इक्को सुसेणसेणावई पसप्पंतो । खयसमयकुवियचंडीसभीसणो रुज्झए केण? ।।४४।।
चक्कहरो वि करेणं तोलिंतो चक्कमिक्कहेलाए । ससुरासुरं पि भुवणं आरोवइ संसयतुलाए ।।४५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुविकप्पं किंपि मणे काउं जइ बंधुणो विणिक्खंता । इत्तियमित्तेणं चिय भायव्वं न हु तए तत्तो ।।४६।।
पररिद्धिमच्छरिल्ला पिसुणा पलवंति तत्थ जं किंपि । पणइजणवच्छलो न हु भरहवई धरइ तं हियए ।।४७।।
ता चक्कवट्टिभावे वि तस्स सेवा अवस्सकायव्वा । तब्भूमिनिवसिरेहिं किं पुण बंधुस्स जिट्ठस्स ।।४८।।
ता तुज्झ वि बाहुबले ! रज्जेण सजीविएण जइ कज्जं । ता भयसु भरहनाहं अह होसु रणाय लहु सज्जो ।।४९।।
तव्वयणपवणसंधुक्कियं पि कोवानलं निगूहंतो । अह जंपइ बाहुबली उब्भडभुयदप्पअप्पडिमो ।।५०।।
भो ! साहु दूयधम्मो तुमए निव्वाहिओ हु निच्छम्मो । एवं अक्खलियपयं पयंपिरेणं पुरो मज्झ ।।५१।।
सज्झं जं सेविज्जइ भरहो छक्खंडखोणिवालेहिं । तह देवदाणवेहि य विमुक्कमाहप्पदप्पेहिं ।।५२।।
लंघइ न को वि आणं सक्कस्स व तस्स अवितहं तं पि । जं पुण कारणमित्थं तं सुणसु सुवेग ! एगमणो ।।५३।।
जाणंति भूमिवइणो सव्वे सुरअसुरखेयरा य तहा । मज्झ भुयजुयलविलसिर-पयंडचंडिमचमक्कारं ।।५४।।
आराहंता चित्तं मह चेव तओ कुणंति भरहस्स । मह जिट्ठभाउणो सेवग व्व सेवाइयं सव्वं ।।५५।।
ता जइ मज्झ भुएणं सेविज्जइ तेहिं तेयवियलेहिं । तित्तियमित्तेणं चिय उत्ताणो कह णु तुज्झ पहू ।।५६।।
बंधुसिणेहो तेणं पयासिओ सोयरेसु जारिसओ । तत्तो वि विसिट्ठयरं मह सावक्कस्स दंसेही ।।५७।।
मुक्का य अलुद्धेहिं रज्जधुरा रणधुरा य जइ तेहिं । ता किं तहेव मन्नइ ममं पि भरहो निरारंभं ।।५८।।
का एसा नणु मज्झं बिभीसिया तस्स हरिकरिरहाणं । इक्को वि हु तेयस्सी निहणइ सूरु व्व तमनिवहं ।।५९।।
जंपंतु तस्स भिच्चा जं किंपि अदिट्ठभुयबला मज्झ । सयमणुभूयं पि इमं भरहो वि हु किं न संभरइ ।।६०।।
बालत्तणे मइ च्चिय जं सो चलणेसु धरिय लीलाए । रूवु व्व मयगलेणं गयणे उच्छालिओ दूरं ।।६१।।
मा पडिऊण विणस्सउ इमु त्ति करुणाइ झल्लिओ जेहिं । मह अज्ज वि नणु एए सुवेग ! ते चेव भुयदंडा ।।६२।।
अहह ! अणप्पेहिं पिव उविक्खिओ मंतिमाइएहिं इमो । काराविही अवज्जं कज्जं अज्जो ममाहिंतो ।।६३।।
सेणा सेणानाहो चक्कं तियसा तडंमि ठाहिंति । इक्कु च्चिय नणु भरहो सहिही मह भुयबलामोडीं ।।६४।।
एवं ठिए य गच्छसु सुवेग ! वेगेण एउ ता भरहो । सज्जु च्चिय एस जणो सया वि कयपडिकयं काउं ।।६५।।
इय सो साहिक्खेवं तक्खसिलासामिणा सयं भणिओ । संभंतमणो दूओ विणिग्गओ रायभुवणाओ ।।६६।।
अविलंबपयाणेहिं गंतुं भरहाहिवस्स तं सव्वं । साहेइ बाहुबलिणो बलाबले वोचियं भणियं ।।६७।।
उच्छाहिओ तओ सो सुसेणपमुहेहिं लहु पहाणेहिं । विजयाय बाहुबलिणो भरहवई कुणइ पत्थाणं ।।६८।।
मयधारासारेणं सिंचंता मेइणीतलं चलिया । चुलसीइसयसहस्सा जंगमसेल व्व मायंगा ।।६९।।
तावइया य तुरंगा तत्तियमत्ता य वरतरसयंगा । छण्णवइकोडिसंखा पाइक्का विक्कमिक्कधणा ।।७०।।
इय सिन्नविमद्देणं जलथलभूमीण विणिमयं कमसो । कुणमाणो संपत्तो भरहो बहलीविसयसीमं ।।७१।।
पणिहिमुहाओ मुणिउं भरहं तत्थागयं च बाहुबली । तक्खणपयाणभंभारवमुहलियसयलदिसिवलओ ।।७२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहमहमिग्गाइमिलिएहिं सबलसामंतचक्कवालेहिं । सुरसामिउ व्व सामाणिएहिं परिवारिओ सहसा ।।७३।।
चउरंगचमूभरभग्ग-भोगिपुंगवफणामणीजालो । कालुव्व विवक्खाणं तक्खसिलासामिओ चलिओ ।।७४।।
आगंतूण य कमसो अदूरदेसंमि भरहसिन्नस्स । दिन्नावासो मन्नइ चक्किबलं च लुयपीयं [पायं] व ।।७५।।
दिट्ठं तं जेहिं तया सिन्नं दुन्ह वि नरिंदचंदाणं । संपिंडियतिहुयणदंसणम्मि न हु कोउगं तेसिं ।।७६।।
अह बंदिविंदविंदारएसु उभओ वि संचरंतेसु । नियनियपहुकज्जसमुज्जएसु सामंतसुहडेसु ।।७७।।
सन्नद्धबद्धकवएसु देवदाणवबलेसु व खणेणं । अन्नुन्नसम्मुहं संठिएसु निवचक्किसिन्नेसु ।।७८।।
जा संफेडो होही ताव य ठाऊण गयणमग्गंमि । विंदारयविंदेहिं नरवसहा दो वि ते भणिया ।।७९।।
भुवणस्स वि भयजणओ पारंभो एस को णु तुम्हाणं । तसथावरजीवदयावरस्स रिसहस्स तणयाणं ।।८०।।
अहवा माणधणाणं दुन्ह वि केणावि कारणेण इमं । जायं तह वि न जुज्जइ निरत्थओ पाणिसंमद्दो ।।८१।।
उत्तमजुज्झेण तओ तुम्हे दो चेव जुज्झह इयाणिं । एवं न हु भिज्जिस्सइ वज्जं वज्जेण कइया वि ।।८२।।
तं जुत्तिजुत्तमायन्निऊण दोहि वि तहेव पडिवन्नं । ओहट्टिउं ठियाइं बलाइं दुन्नि वि तयाणाए ।।८३।।
अह सहसा संछन्ने गयणे सुरअसुरखेयरगणेहिं । सब्भेसु व सिन्नेसुं ठिएसु मज्झत्थभावेण ।।८४।।
अच्छोडियम्मि गंधोदएण सुरमुक्ककुसुमपयरम्मि । ओइन्ना धरणियले सिंधुरखंधाउ चक्किनिवा ।।८५।।
काऊण दिट्ठिजुज्झे पइन्नमन्नुन्नसम्मुहा दो वि । जाया अणमिसनयणा सोहम्मीसाणसक्क व्व ।।८६।।
नलिण व्व दिणे तेसिं मणयं पि न लोयणा निमीलंति । अन्नुन्नं सव्वुत्तमसत्तोलोयणसयन्ह व्व ।।८७।।
चिट्ठंताण तह च्चिय उब्भडतडिपडिहय व्व सहस त्ति । दिट्ठी जिट्ठस्स तया घडिया रिसहेसतणयस्स ।।८८।।
अह उवरि बाहुबलिणो सुमणा सुमणा मुयंति सुमणाइं । आणंदकलयलो तह बलंमि तस्सेव संजाओ ।।८९।।
विमणम्मि य चक्किबले बाहुबली सहरिसं भणइ भरहं । संपइ वायाजुद्धे धुरंधरत्तं धरसु धीर ! ।।९०।।
अह मंथायलपक्खेवखुहियखीरोयपडिरवरउद्दं । उम्मुयइ सीहनायं भरहवई कोवदुव्विसहं ।।९१।।
अइकढिणकुम्मकप्पर-पयंडबंभंडखंडणुड्डमरं । तह बहलीनाहो वि हु मुंचइ नायं महाकायं ।।९२।।
एवं मुंचंतेहिं अन्नुन्ननिनायपाडिसिद्धीए । कंठरवं तेहिं तया सद्दमयं तिहुयणं विहियं ।।९३।।
दुज्जणमित्ति व्व कमेण हीयए भरहसामिणो सद्दो । अहियाहियं पवड्ढइ बलिणो पुण सुयणमित्ति व्व ।।९४।।
अह पक्खाइपरिग्गहपुव्वं सक्कयगिरा विवइराणं । छलजाइनिग्गहेहिं लहुएण पराजिओ जिट्ठो ।।९५।।
अह कोवफुरियअहरो भरहवई बाहुजुद्धमारभइ । अब्भिट्टा ते दो वि हु पप्फोडिंता दढं तिवइं ।।९६।।
खणमुप्पयंति गयणे जुडंति विहडंति जंति भूवीढं । कोवाउ सिणेहाउ व पीडंति परुप्परं अंगं ।।९७।।
अह खेइऊण सुइरं चक्कहरं धरिय तयणु चरणेसु । उल्लालइ गयणयले बाहुबली लिडुलीलाए ।।९८।।
हाहारवमुहरेसुं सुरअसुरनरेसु संकियमणेसु । ही ही न सुट्ठु विहियं मइ त्ति भणिरेण तो बलिणा ।।९९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरपरिहदीहरेहिं नियभुयदंडेहिं झल्लिओ झत्ति । गयणयलाउ पडंतो दुकोडिनरबलधरो भरहो ।।१००।।
मुक्ककुसुमुक्करेहिं सुरेहिं अह साहु साहु भणिरेहिं । उचियन्नुत्तं सह पोरिसेण परिवत्तियं बलिणो ।।१०१।।
तत्तो विलक्खवयणं दट्ठुं जिट्ठं पयंपइ कणिट्ठो । उव्वहसि कीस हियए मुहा विसायं महीनाह ! ।।१०२।।
जुज्झंताण अणियया कियवाण व जयपराजया जम्हा । ता धरिउं धीरत्तं नरिंदसद्दूल ! जुज्झेसु ।।१०३।।
जह दट्ठुट्ठो रोसेण वज्जगंठिं व निट्ठुरं मुट्ठिं । सुसिलिट्ठं काऊणं वच्छयले हणइ तं भरहो ।।१०४।।
उवयारि व्व कयग्घे मोघीभूयम्मि तम्मि घायम्मि । वच्छत्थलम्मि बहलीनाहो वि हु निहणए भरहं ।।१०५।।
दंडाहयं व चक्कं पिक्खंतो तिहुयणं पि तो भमिरं । मुच्छानिमीलियच्छो चक्कहरो सरइ धरणियलं ।।१०६।।
सह नियसित्तेण तया अक्खंडछखंडसामिए लुलिए । मत्तं व मुच्छियं पिव संजायं सयलमपि भरहं ।।१०७।।
अह सिंचंतो वच्छत्थलम्मि नयणंसुएहिं भरहवइं । निंदंतो नियबलं वीयंतो अंचलेहिं बली ।।१०८।।
चिंतइ कुसलं अज्जस्स तायपायाणुभावओ होउ । अन्नह मए नियाणं पाणाण जलंजली दिन्नो ।।१०९।।
सुत्तविउद्धु व्व तओ सहसा अब्भुट्ठिऊण भरहवई । दप्पुब्भडो पयंडं दंडं तोलइ करग्गेण ।।११०।।
भंजइ तेण किरीडं सुहडकीरीडस्स नियकणिट्ठस्स । अह साहु साहु भणिरो सो वि कुणंतो करे दंडं ।।१११।।
कम्मं व खवगसाहू वम्मं निद्दलइ भरहनाहस्स । तस्स विरहेण सो वि हु दिप्पंतो सहसकिरणु व्व ।।११२।।
दंडरयणेण सीसे तडत्ति ताडेइ तक्खसिलनाहं । कुलिसकढिणम्मि सो तम्मि लग्गिउं होइ सयखंडो ।।११३।।
आजाणुमेइणीए खुत्तो घाएण तेण नरनाहो । माहप्पं चक्किबलस्स पायडंतु व्व पुहवीए ।।११४।।
तव्वियणाए य खणं मिलियनयणो मुणि व्व झाणत्थो । ठाऊण विणिक्खंतो करि व्व पंकाउ स महीओ ।।११५।।
अह संभंतमणेहिं दीसंतो देवदाणवगणेहि । ताडइ भरहं सो वि हु सीसंमि पयंडदंडेणं ।।११६।।
आकंठं निब्भुट्ठो महीइ चक्की वि तेण घाएणं । नियकणिट्ठस्स बलं कहिउं चलिउ व्व असुराणं ।।११७।।
तत्तो असरिसलज्जाअवमाणविसायअयसपमुहेहिं । भावेहिं भावियमणो भरहो भूमीओ नीहरिउं ।।११८।।
चिंतइ हंत किमेयं असुयमदिट्ठं अचिंतणिज्जं च । सामन्नपत्थिवाओ पराजओ जमिह चक्किस्स ।।११९।।
न य चक्कहराण जुगं जुगवं एगंमि होइ खित्तंमि । न खलु दुवे अप्पाणो एगम्मि मणुस्सदेहम्मि ।।१२०।।
ता किं एअत्थं चिय छक्खंडं साहियं मए भरहं । अहवा एएण जिओ चक्कि ह्रिय होमि न हु अहयं ।।१२१।।
इय चिंतिरस्स पन्नयमुप्पायंतं इमस्स चक्कित्ते । भावन्नुएण सहसा जक्खसहस्सेण उवणीयं ।।१२२।।
तिजयगयसयलतेयस - परमाणुविणिम्मियं व दिप्पंतं । चडियं चक्किस्स करंमि चक्करयणं तओ तइया ।।१२३।।
उप्पन्नपच्चओ अह नियचक्कित्तम्मि तम्मि हत्थगए । जाओ दुगुणुच्छाहो अमोहमेयं ति भरहवई ।।१२४।।
दट्ठूण तं तहट्ठियमह बाहुबली विचिंतए हियए । धिद्धी तायसुयत्तं इमस्स धी विक्कमुक्करिसो ।।१२५।।
जं देवदाणवाणं पच्चक्खं तह पइन्नामारुहिउं । मइ दंडजोहिणि इमो जाओ चक्काउहो एवं ।।१२६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता केरिसिं विभीसिं दावेइ इमो महं रहंगेण । किं चुन्नेमि सचक्कं एयं एएण दंडेण ।।१२७।।
इय चिंतिरस्स उत्तोलिऊण हत्थेण भामिउं गयणे । सव्वबलेण विमुक्कं तस्सोवरि चक्किणा चक्कं ।।१२८।।
तस्सामोहत्तणओ जाओ हाहारवो तया भुवणे । तहवि असंभंतमणो [2]बहलीनाहो विचिंतेइ ।।१२९।।
किं जिन्नखप्परं पिव दंडेण इमं करेमि सयखंडं । चडयं व उप्फडंतं सेणो इव अहव झंपेमि ।।१३०।।
अहवा इमस्स पहुणो माहप्पं ता मए पुरा दिट्ठं । पिक्खामि तं इमस्स वि इय चिंतंतस्स तस्स तया ।।१३१।।
आगंतूणं चक्कं दाऊण पयाहिणं खणं ठाउं । पुणरवि गंतूण ठियं करकमले चक्कवट्टिस्स ।।१३२।।
सामन्ने वि हु पहवइ चक्कं वंसुब्भवे न चक्किस्स । किं पुण चरमसरीरम्मि तारिसे पुरिससीहम्मि ।।१३३।।
उम्मुक्कतेयलेसु व्व तावसो संपयं न किं पि इमो । तहवि पइन्नाभंगस्स ताव दंसेमि फलमस्स ।।१३४।।
इय कोवकडारक्खो तक्खसिलासामिओ दढं मुट्ठिं । उग्गीरिऊणं पत्तो जा सविहे भरहनाहस्स ।।१३५।।
ता तहभव्वत्तणओ विप्फुरियं तस्स माणसे एवं । धिद्धी मह ववसाओ एयस्स व इय अमज्जाउ ।।१३६।।
जइ विसयपसत्तेणं जिट्ठेण इमेण चिट्ठियं एयं । ता तं चिय कुणमाणो कहमेयाओ अहं अन्नो ।।१३७।।
अहवा इमस्स दोसो न इत्थ परमत्थओ मणागं पि । सक्क व्व चक्किणो जं अप्पडिहयसासणा हुंति ।।१३८।।
ता भोगिभोगभंगुरतरेहिं भोगेहिं मह अलं इत्तो । जाण अणज्जाण कए एवमवज्जाणि कीरंति ।।१३९।।
इय सो पसन्तचित्तो भरहवइं भणइ भाय ! मरिसेसु । जं रज्जमत्तकज्जेणं खेइओ तं मए एवं ।।१४०।।
रज्जेण बंधवेहिं कलत्तपुत्तेहिं कोसदेसेहिं । पज्जत्तं मह इत्तो जेसि विवागो इमो एवं ।।१४१।।
जिणनाहनंदणाण वि जाणियतत्ताण विसयकज्जेणं । अम्हाण वि जइ एवं हविज्ज ता कह न अन्नेसिं ।।१४२।।
तो तायपायपउमाण एस काहामि अणुगमं इन्हिं । इय भणिउं मुट्ठीए तीइ ञ्चिय लुणइ सो केसे ।।१४३।।
तो साहु साहु भणिरेहि पुप्फवुट्ठी सुरेहिं से विहिया । अणुमोयइ को कम्मं न उत्तमं उत्तमनराणं ।।१४४।।
अह चिंतइ बाहुबली किं इत्तो जामि तायपायंते । अहवा न जामि जं तत्थ संति मह भाउणो लहुगा ।।१४५।।
उप्पन्नकेवले ते छउमत्थो कह अहं पणिवइस्सं । उप्पन्नकेवलो ता इत्तो तायं गमिस्सामि ।।१४६।।
इय काऊण पइन्नं ठिओ स तत्थेव देवसेलु व्व । मुक्को वि हु विसएहिं चडिओ हत्थे कसायाणं ।।१४७।।
अह भरहो वि हु नियएण तेण कम्मेण लज्जिओ बाढं । पणमिउं बाहुबलिमुणिं एवं विन्नवइ अंसुमुहो ।।१४८।।
धन्नो सि तुमं बंधव ! जेण तए तिहुयणिक्कमल्लेणं । मह चेव दयाइ इमं रज्जं रट्ठं च परिचत्तं ।।१४९।।
तं चिय पुत्तो तायस्स चरसि जो तायतुल्लमायारं । विसयामिसरसगिद्धा धिद्धी अम्हारिसा पुरिसा ।।१५०।।
इय झूरिऊण सुइरं सोमजसं ठाविऊण तस्स पए । अप्पडिहयप्पयावो पुणो वि पत्तो विणीयपुरिं ।।१५१।।

---

2. **बहलीनाहो** - बहली देशविशेषः, भारतवर्ष का एक उत्तरीय देश । बहलीअ नाहो इति बहलीनाहो ष. त. स. । तक्खसिलाइ पुरीए बहलीविसयावयंसभूयाए कुमा. प्र. २१२ । - पा. स. म. पृ. ६३१ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयवं पि बाहुबली चत्तममत्तो नियंमि देहम्मि । विसहइ परीसहोहं दुव्विसहं साहसिक्कधणो ।।१५२।।
सिसिरानिलेहिं सिसिरम्मि तत्तनारायदुस्सहतरेहिं । मणयं पि न सो भिज्जइ वज्जदलेण व विणिम्मविओ ।।१५३।।
गिम्हंमि तवणसंतत्तवसुमईकणसणाहपवणेहिं । ताविज्जइ दावानलसिहाहिं सिहरि व्व सो भयवं ।।१५४।।
गिरिसरिपूरेहि घणागमंमि तणकट्ठकंटयघणेहिं । धंधोलिज्जइ वणपायवु व्व झंझानिलेहिं च ।।१५५।।
चरणंतरालसंभूय-भूरिवम्मीयसिहरनीहरिया । वडपाय व्व वडम्मी लंबंति भुयंगमा तंमि ।।१५६।।
निच्चलतणुसंठाणे वणेयरा गिरिनियंबबुद्धीए । कुव्वंति गंडकंडूविणोयमिह महिसमायंगा ।।१५७।।
तणवणलयावलीढंमि तम्मि वणपायवि व्व विहगगणा । निम्मियनीडा कीडंति कटु रडंता सवणमूले ।।१५८।।
चरणतलुब्भिन्नाओ अदंभचरियस्स दब्भसूईओ । तणुछायासंलीणा लिहंति मिगसावगा तस्स ।।१५९।।
इय निरसणस्स एयस्स एगट्ठाणट्ठियस्स वोलीणे । संवच्छरम्मि भयवं अमूढलक्खो जुगाइजिणो ।।१६०।।
मुणिउं विबोहसमयं बंभिं तह सुंदरिं च पेसेइ । अणुसासिऊण ते वि हु कमेण तस्संतियं पत्ते ।।१६१।।
निउणं निरूविरीहिं कह कह वि हु वणलयावलीढंगो ।
उवलक्खिओ स ताहिं तिपयाहिणिओ पणमिओ य ।।१६२।।
भणिओ य जहा जिट्ठज्ज तायपाया समाइसंति तुमं । न हु हत्थिविलग्गाणं उप्पज्जइ केवलन्नाणं ।।१६३।।
इय भणिऊण गयाहिं ताहिं सो विम्हिओ विचिंतेइ । परिचत्तसव्वसंगस्स कह णु मे गयवरारुहणं ।।१६४।।
न य तायनंदणीओ इमाउ वितहं वयंति ता किमियं । हुं नायं माणु ञ्चिय हत्थी तत्थाधिरूढो हं ।।१६५।।
धिद्धी मूढेण मए कुविकप्पो कप्पिओ इमो हियए । जं छउमत्थो लहुए नाणड्ढे कह णु पणमिस्सं ।।१६६।।
न हु इत्तिएण जायइ जिट्ठत्तं जेण पुव्वजाओ हं । स कणिट्ठो वि हु जिट्ठो नाणाइगुणेहिं जो पुट्ठो ।।१६७।।
को होउ ताण तुल्लो महाणुभावाण नाणनिलयाणं । सिरिरिसहसामीसीसाण छिन्नभववासपासाणं ।।१६८।।
ही कह मए मुह ञ्चिय इत्तियकालं किलेसिओ अप्पा । अन्नाणेण व कूडाभिमाणविनडिज्जमाणेण ।।१६९।।
पक्खावहिणो वि हणंति संपराया अणुत्तरं नाणं । संवच्छरट्ठिईसुं तेसु कहं केवलं मज्झ ।।१७०।।
किं वा ण सोइएणं इमिणाऽइक्कंतकज्जजाएणं । गच्छामि संपयं पि हु नमामि ते हं महासत्ते ।।१७१।।
इय सुद्धभावणाभाविएण उप्पाडियं व तेण पयं । उप्पन्नं च अणंतं तइय ञ्चिय तस्स वरनाणं ।।१७२।।
अह सो तित्रपइन्नो गंतूणं सामिणो समोसरणे । तिपयाहिणिऊण जिणं केवलिपरिसाइ आसीणो ।।१७३।।
इत्थं बाहुबली बलीयसि पुरारूढोऽभिमानद्विपे,
तीव्रेणाऽपि समाससाद तपसा नानुत्तरां संविदम् ।
सद्यो भावनया विशुद्धतरया तां प्राप च प्रीणितः,
तद् भावेन दधात्ययं सफलतां दानादिधर्मः खलु ।।१७४।।२०८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शितं भावनायां साधुप्रतिबद्धं श्रीबाहुबलेरुदाहरणम् । साम्प्रतं साध्वीप्रतिबद्धं मृगावतीज्ञातमभिधित्सुराह -

सुहभावमणुपविट्ठो दोसो वि कयावि कुणइ गुणकज्जं ।
जाओ किन्न पमाओ मिगावईए सिवोवाओ ।।२०९।।

कदाचिदिति पात्रापेक्षम् कस्मिन्नपि पात्रविशेषे **दोषोऽपि गुणकार्यं करोति** । किम्भूतः ? **शुभभावं** विशुद्धाध्यवसाय**मनुप्रविष्टः** शुभभावनारूपेण परिणतः । इदमेवोदाहरति - **मृगावत्या** वक्ष्यमाणस्वरूपायाः **प्रमादो** दोषरूपोऽपि **शिवोपायः** सिद्धिनिबन्धनं **किं न जातः ?** अपि तु जात एव, स्वप्रमाददोषविगर्हणावसरे हि तस्याः किल केवललाभः समभूत् । सङ्क्षेपार्थोऽयम् । व्यासार्थस्तु कथानकगम्यस्तज्ज्ञेदम् -।। श्रीः ।।

।। भावधर्मविषये मृगावतीकथानकम् ।।

अत्थित्थ भरहवासे वासवपरिपालियंमि दिग्भागे । सागेयं नाम पुरं फुरंतनीसेसपुरिसत्थं ।।१।।
तस्स य परिसरदेसे विसिट्ठवणसंडमज्झयारम्मि । अत्थि फुडपाडिहेरो सुरप्पिओ नाम जक्खवरो ।।२।।
पइवरिसं चित्तिज्जइ सो पुण सुमणुन्नवन्नगयणेहिं । जत्तामहो य कीरइ पोरेहिं महारिहो तस्स ।।३।।
चित्ताणंतरमेसो मुसुमूरइ चित्तकरनरं नियमा । अह कह वि न चित्तिज्जइ ता मारिं कुणइ नयरम्मि ।।४।।
पारद्धा चित्तयरा तस्स भएणं पलाइउं तत्तो । रुद्धा य ते निवेणं नियनायरमारिभीएणं ।।५।।
गहिऊण य लग्गणए संकलिया ते परुप्परं रन्ना । नामाइं पत्तएसुं च लेहियाइं पुढो ताणं ।।६।।
निक्खित्ताणि य घडए जमक्खवडलोवमंमि सव्वाइं । नीहरइ जस्स पत्तं पढमं पि स चित्तए जक्खं ।।७।।
इय वच्चंते काले कोसंबिपुरीओ आगओ एगो । चित्तयरजुवा स ठिओ गिहंमि एगाइ थेरीए ।।८।।
तप्पुत्तेणं मित्ती समाणसीलेण तस्स संजाया । तम्मि य वरिसे पत्तं नीहरियं थेरिपुत्तस्स ।।९।।
मुणियसरूवा सा वि हु करुणसरं रुयइ भाविसुयविरहा । आगंतुगेण पुट्ठा य साहए जक्खवुत्तंतं ।।१०।।
भणिया य तेण अम्मो ! सुत्थमणा होसु मुंचसु विसायं । चित्तयररक्खसं तं जक्खं अहमेव चित्तिस्सं ।।११।।
जंपइ थेरी पुत्तय ! एवं पि हु वेयणा मह तहेव । जं पुत्तनिव्विसेसो तुमं पि अब्भागओ य तहा ।।१२।।
संलत्तं चित्तयरेण अंब ! निच्छयविणासिणा इमिणा । देहेण उवयरिज्जइ जं तं चिय सासयं भुवणे ।।१३।।
तो मज्झ जीविएण वि मह भाया जियउ इय भणेऊण । समुवट्ठियंमि समए छट्ठतवं कुणइ सो पढमं ।।१४।।
न्हाओ सुइनेवत्थो वरचंदणदवविलित्तसव्वंगो । अट्ठउडेण पडेणं कयमुहकोसो य एगमणो ।।१५।।
पच्चग्गवन्नएहिं अपुट्ठपुव्वाहिं लेहणीहिं तहा । चित्तइ जहसत्तीए चित्तयरजुवा स तं जक्खं ।।१६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह चित्तसमत्तीए अट्ठंगसिलिट्ठमेइणीवट्ठो । नमिऊण विणयसारं सुरप्पियं विन्नवइ एसो ।।१७।।
भयवं ! गुज्झय ! तुज्झं न विस्सकम्मा वि निम्मिउं सत्तो । अणुरूवं चित्तविहिं किं पुण अम्हारिसो कीडो ।।१८।।
अन्नाणविलसियमिणं तह वि हु मे खमसु सामि ! पसिऊणं । इय तस्स चिट्ठिएणं तुट्ठो जक्खो इमं भणइ ।।१९।।
भो ! वरसु वरं विणएण तुज्झ मह रंजियं दढं हिययं । सो भणइ सामि ! एवं जइ ता मारिज्ज मा लोयं ।।२०।।
जंपइ जक्खो तुह रक्खणेण सिद्धं इमं वरसु अन्नं । विन्नवइ सो वि सामिय ! कयकिच्चो इत्तिएणाहं ।।२१।।
अह सविसेसं तुट्ठो परत्थपत्थणपरस्स तस्स सुरो । भणइ नियकज्जसज्जं वरसु वरं किंपि भो भद्द ! ।।२२।।
जंपइ चित्तयरजुवा जइ एवं देव ! ता तुह पसाया । पिच्छामि जस्स कस्सवि दुपयस्स चउप्पयस्सावि ।।२३।।
एगं पि किर पएसं तयाणुसारेण सयलमवि रूवं । लिहिउं मह होउ मई एवं होहि त्ति भणइ सुरो ।।२४।।
अह निवइनायरेहिं सुइरं सम्माणिओ इमो सरिओ । निअजम्ममहि पुणरवि कोसंबिपुरवरिं पत्तो ।।२५।।
तत्थत्थि सयाणीओ राया सो अन्नया सहासीणो । पुच्छइ पूएऊणं किमन्नरज्जे ण मह रज्जे ।।२६।।
सो भणइ देव ! देवस्स वासवस्सेव किंपि न हु ऊणं । नवरं न हु चित्तसहा पहासए तारिसी तुज्झ ।।२७।।
इय सुणिउं आणत्ता चित्तयरा तक्खणं नरिंदेण । गहिओ सभाविभागो सव्वो वि हु विभइउं तेहिं ।।२८।।
लद्धवरो जक्खाओ जो चित्तयरो समागओ तस्स । सुद्धंतसमीवगओ सभाविभागो विभागम्मि ।।२९।।
दिट्ठो पायंगुट्ठो समुद्दिओ जालयंतरालेण । चित्तयरेणं तेणं देवीइ मिगावईइ तया ।।३०।।
तत्तियमित्तेणं चिय तेणं संभाविऊण सयलं पि । रूवं मिगावईए लिहियं सुरपाडिहेराओ ।।३१।।
नित्तुम्मीलणसमए मसिबिंदू लेहणीमुहाउ तओ । गुज्झपएसे पडिओ अवणीओ तेण सहस त्ति ।।३२।।
दुज्झं पि तहा पडिओ अवणीओ तेण सो वि हु तहेव । तज्झं पि तहा पडिए चित्तयरजुवा स चिंतेइ ।।३३।।
होयव्वमित्थममुणा पुणरुत्तं पडइ तेण अवणीओ । इयबुद्धीए पुणरवि न सो तया तेण अवणीओ ।।३४।।
निव्वत्तियंमि चित्ते पिक्खंतेणं सयाणियनिवेणं । रूवं मिगावईए सावयवं तं तया दिट्ठं ।।३५।।
हा कह ममेगगोयरमित्थठियं मुणइ एस मसगं ति । ता दुट्ठेणं इमिणा नूणं विद्धंसिया देवी ।।३६।।
इय कोवकडारक्खो तक्खणमारक्खिए समाइसइ । रे ! दोसेणं इमिणा मारह एयं दुरायारं ।।३७।।
तत्तो चित्तयराणं सेणी मिलिऊण विन्नवइ भूवं । देव ! इमो लद्धवरो अवि दिट्ठे एगदेसम्मि ।।३८।।
कुणइ समग्गं रूवं खुद्दमणो पत्थिवो तओ तस्स । दंसइ खुज्जाइ मुहं जहट्ठियं सो वि तं लिहइ ।।३९।।
उप्पन्नपच्चओ वि हु अमरिसवसओ नरेसरो तस्स । दाहिणकरअंगुट्ठं छिंदावइ अंगुलीसहियं ।।४०।।
सो वि हु तह परिभूओ पुरओ जक्खस्स अणसिओ ठाइ । भणिओ य तेण वामेण पाणिणा चित्तसु जहिच्छं ।।४१।।
तुट्ठो मणंमि सो वि हु रुट्ठो कोसंबिसामिए य दढं । दोसं विणा वि जमहं विडंबिओ दुम्मएणिमिणा ।।४२।।
जो पायहओ उत्थाय चडइ सीसंमि सो वरं रेणू । अवमाणे वि हु सुत्थो न उणो पुरिसु त्ति चिंतंतो ।।४३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्तफलयंमि रूवं विचित्तनेवत्थभूसणसणाहं । विलिहइ मिगावईए जहसत्तीए स चित्तयरो ।।४४।।
गंतूण य उज्जेणिं पज्जोयनिवस्स जुवइलोलस्स । उब्भडभुयजुयलबलस्स दंसए तस्स चित्तयरो ।।४५।।
अह अब्भुयभूयं दट्ठुं रूवं अवंतिनाहो वि । वियसंतवयणनयणो सप्पणयं भणइ तं एवं ।।४६।।
नूणं नियविन्नाणस्स पयरिसो दंसिओ इमो तुमए । न उणो भुवणुच्छंगे वरंगणा एरिसी का वि ।।४७।।
अव्वो अउव्ववेहा को वि तुमं जो विणा पडिच्छंदं । अपडिच्छंदं दंसेसि एरिसं कामिणीरूवं ।।४८।।
जंमि निविट्ठा दिट्ठी अंगावयवे इमीइ पढमं पि । न सरइ अन्नत्थ तओ दुब्बलगोणि व्व कलखुत्ता ।।४९।।
इच्चाइ तम्मयमणे उज्जेणीनायगे पभणिरंमि । विन्नवइ देव ! रूवस्स लेसमित्तं इमं लिहियं ।।५०।।
रूवस्स इमीइ पुणो सव्वावयवोहसोहमाणस्स । दप्पणतलंमि दीसइ जइ पडिबिंबो न अन्नत्थ ।।५१।।
किं भणसि ? अत्थि कत्थइ एरिसरूवा वि कामिणी का वि ।
सो भणइ देव ! कोसंबिसामिणो पडुपयावस्स ।।५२।।
निवइस्स सयाणीयस्स पणइणी नणु मिगावई एसा । जीए तणुसुंदेरं सिरिहंति सुरंगणाओ वि ।।५३।।
भणइ निवो जइ एवं पुरओ वि सयाणीयस्स ता तस्स । पंचाणणु व्व हरिणस्स एस गिन्हामि तं इन्हिं ।।५४।।
तं सोऊणं तुट्ठो निएण सो पडिकिएण चित्तयरो । सम्माणिओ निवेणं जहागयं पडिगओ झत्ति ।।५५।।
चिंतइ पज्जोओ वि हु हढेण मुसुमूरिउं सयाणीयं । गिन्हामि तं मयच्छिं लच्छिं लच्छीहरु व्व अहं ।।५६।।
अहवा करेमि सामं पढमं ता तंमि मा निदेसकरो । निवडउ इमो वराओ वसणसमुद्दे अगाहम्मि ।।५७।।
इय निच्छिऊण दूओ विसज्जिओ लोहजंघनामो से । गंतूण सो वि पभणइ साहिक्खेवं सयाणीयं ।।५८।।
हंहो कोसंबीसर ! सरभससामंतपणयपयकमलो । आइसइ अवंतीसो भवंतमब्भंतदुद्धरिसो ।।५९।।
अत्थि मिगसावनयणा मिगावई नाम पणयणी तुज्झ । इत्थी अहं तमणुरत्तो पेसेउ इमं तओ तरए ।।६०।।
इत्तियकालं च इमा वसिया तुह मंदिरम्मि दिव्ववसा । अब्भंतमणुचिए वि हु जह किर रिट्ठस्स परपुट्ठा ।।६१।।
संपइ संबोहेउं पेसिज्ज इमं लहु मम समीवे । जइ कज्जं रज्जेणं विउलेणं जीविएणं च ।।६२।।
तव्वयणपवणपज्जालियस्स रोसानलस्स जालोलिं । सोणनयणंसुमिसओ कोसंबीसो वि पयडंतो ।।६३।।
भिउडीभासुरवयणो जंपइ रे दूय ! किं अवज्झु त्ति । असमंजसं पयंपसि धिद्धी तुह सामिसंदेसो ।।६४।।
जस्स अणायत्तंमि वि ममाइ एमाइवयणविन्नासो । सायत्तासु पयासुं का होही तस्स किर नीई ।।६५।।
ता मा जंपिज्ज पुणो मुंचसु लहु नयणगोयरं मज्झ । जं तुह पहुणो जुज्झइ करिज्ज सज्जो वि तमसेसं ।।६६।।
इय धरिसिऊण दूओ कोसंबिनिवेण पेसिओ सव्वं । गंतूणं माणधणस्स साहए ऽवंतिनाहस्स ।।६७।।
अह सो विमुक्कमेरो मयरहरो इव महीयलं सयलं । पच्छायंतो चतुरंगबलमहुम्मीहिं संचलिओ ।।६८।।
चउदसनिवसेणीहिं बलोयही तस्स उवचयं पत्तो । जंबुद्दीवनईहिं व तावइयाहिं लवणजलही ।।६९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अविलंबपयाणेहिं आगच्छंतं इमं अमियसित्तं । सोऊण सयाणीओ खुहिओ हिययंमि सहस त्ति ।।७०।।
थीलोलेण न संधिं न विग्गहं अइबलेण [सह जुत्तं] । [इय चिंतिरस्स] जाव कोसंबिनिवस्स अइतावो ।।७१।।
आयंकेणं तेणेव पत्थिया पढममेव से पाणा । अइचंडचंडपज्जोयजायणाभीयभीय व्व ।।७२।।
तयणु धसक्कियहिययया मियावई चिंतए अहो मज्झ । पडिकूलकम्मवसओ पिच्छह कह संकडो पडिओ ।।७३।।
दप्पुद्धरेण रुद्धा पज्जोयनिवेण पुरवरी ताव । मुक्को य पाणनाहो पाणेहिं अणिट्ठिउच्छाहो ।।७४।।
कुमरो खीरकंठो अणुप्पवेसोऽहियंमि इय नीई । सो पुण इमंमि चवले कीरंतो कुलकलंकाय ।।७५।।
ता मह अबलाइ इहं सढंमि एयंमि समुचिया सढया । इय निच्छिऊण दूओ पज्जोयपयंतिए पहिओ ।।७६।।
गंतूण य एगंते विन्नत्तो तेण मालवाहिवई । विन्नवइ देव ! देवी मिगावई मह मुहेणेवं ।।७७।।
संपत्ते परलोयं सकम्मपरिणामओ सयाणीए । सव्वप्पणा वि संपइ तुह पाया चेव मह सरणं ।।७८।।
किं पुण उदयणकुमरो दुद्धमुहो सत्थधारणे अखमो । जणयविउत्तो मुक्को मए वि सव्वप्पणा अबलो ।।७९।।
पज्झंतपत्थिवेहिं सबलेहिं छलप्पहारपउणेहिं । पज्जाइज्जइ नूणं पेइयरज्जं अणज्जेहिं ।।८०।।
तं सोउं परितुट्ठो पज्जोओ भणइ सामिए वि मए । को उदयणस्स सत्तो दित्तं पि हु हंत अक्कमिउं ।।८१।।
विन्नवइ तओ दूओ पत्थावन्नू पुणो वि पज्जोयं । देवीइ देव एयं पुव्विं पि वियक्कियं किंतु ।।८२।।
दूरंमि देवपाया पज्जासन्ना य वेरिणो अम्हं । ओसहिगणो गिरिंदे सीसंमि भयंकरो भुयगो ।।८३।।
ता जइ देवो इच्छइ निव्विग्घं संगमं मए सद्धिं । ता उज्जेणीइट्ठाहिं इत्थ कारेउ पायारं ।।८४।।
कुलिसकढिणाहिं ताहिं अज्झंतदढे गढंमि निम्मविए । तुय(ह) भुयपरिहावरिए विलसउ कुमरो जहिच्छाए ।।८५।।
सोऊण तं तह च्चिय पारद्धमवंतिसामिणा अहवा । लोभेण व कामेणं कुणंति नडिया न किं पुरिसा ।।८६।।
चउदससामंतनिवा सबला सेणीइ ठाविया मग्गे । हत्थाणुहत्थियाए यंति अवंतीउ इट्ठाउ ।।८७।।
जाओ थेवदिणेहि वि निव्विवरत्तेण एगखंडु व्व । कोसंबीइ पुरीए लंकावप्पु व्व वरवप्पो ।।८८।।
दूयमुहेणं भणिओ मिगावईए पुणो अवंतीसो । घयतिल्लधन्नतणकट्ठसंचयं कुणह इह देव ! ।।८९।।
तं पि हु तहेव विहिए पवियारमूढेण तेण तो सा वि । चेडगनरिंदधूया रोहगसज्जा ठिया मज्झे ।।९०।।
पिहियाइं गोउराइं सुहडा अट्टालएसु संठविया । बाणावलि व्व धणुजंता विच्छुया पडइ गोलाली ।।९१।।
पालंबाओ मुक्कु व्व मक्कडो विहलफाल इव दीवी । सिन्नेहिं अवंतीसो सामरिसो रुंधिउं नयरिं ।।९२।।
बुद्धिबलेणं महिलाइ कहमहं अइबलो वि वेलविओ । इय चिंतंतो चिट्ठइ निच्चं पि अणिट्ठियारंभो ।।९३।।
अह अन्नया विरत्ता भवाउ चिंतइ मिगावई देवी । सामी कुणइ पसायं जइ कह वि हु चरमतित्थयरो ।।९४।।
ता दुग्गरोहगाउ व इमाउ भवरोहगाउ अप्पाणं । मोएमि पवन्नवया पयमूले तस्स जयगुरुणो ।।९५।।
इय संकप्पं मुणिउं सव्वन्नू तीइ तयणु विहरंतो । वच्छेसरनयरीए समोसढो बाहिरुज्जाणे ।।९६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुणिऊण परमगुरुणो कारुन्नमहन्नवस्स आगमणं । अभया पभावओ से गोउरदाराणि पयडेउं ।।९७।।
चउरंगचमूकलियं काऊणं उदयणं सुयं पुरओ । गुरुरिद्धीइ समेया मियावई तयणु नीहरिया ।।९८।।
गंतूण समोसरणे तिपयाहिणिऊण तिहुयणिक्कगुरुं । पणमिय उचियपएसे एगमणा सुणइ धम्मकहं ।।९९।।
पज्जोओ वि हु राया पसंतवेरो जिणाणुभावेण । आगंतुं उवविट्ठो पयमूले भुवणनाहस्स ।।१००।।
तत्तो भवउव्विग्गा मिगावई विन्नवेइ जिणनाहं । पज्जोयाणुन्नाया भयवं ! इच्छामि पव्वज्जं ।।१०१।।
इय भणिउं पज्जोयं उवट्ठिया तं पि भणइ साणुणयं । मुंचसु खेयं नरनाह ! जमहमेईइ वेलविओ ।।१०२।।
उत्तमपुरिसो खु तुमं उत्तममग्गे अहं पि नणु चलिया । ता होउं सुसहाओ पडिवज्जसु धम्मबंधुत्तं ।।१०३।।
उदयणकुमरो वि इमो तुह पुत्तो ता इमस्स वोढव्वा । जोगक्खेमा तुमए इय भणिउं मुयइ उच्छंगे ।।१०४।।
लोउत्तरतित्थयराणुभावओ मालवाहिवो वि तया । सव्वं पसन्तचित्तो मन्नइ अणुमन्नए य इमं ।।१०५।।
गंतूण य कोसंबिं ठावइ रज्जे सयाणीयस्स सुयं । तत्तो निक्खमणमहं मिगावईए सयं कुणइ ।।१०६।।
पज्जोयपणइणीहिं अट्ठहि अंगारवइपमुक्खाहिं । समगं मिगावई सामिपायमूलंमि पव्वइया ।।१०७।।
चंदणबालाइ पवत्तिणीइ तत्तो समप्पिया पहुणा । गहणासेवणसिक्खं सम्मं परिसीलए पढमं ।।१०८।।
परिणयचरणा कमसो मणसो असमाहिकारिणीं चिट्ठं । सव्वस्स परिहरंती पसंतचित्ता तवं तवइ ।।१०९।।
गुरुगुरुणीणं मणकुमुयकाणणं सव्वया वियासंती । जुन्ह व्व मयंकेणं विहरइ सा सामिणा सद्धिं ।।११०।।
परिवाडीए पुणरवि कोसंबीए जिणो समोसरिओ । सुरअसुरविहियवरपाडिहेरदिप्पंतमाहप्पो ।।१११।।
चरमाइ पोरसिए चरमजिणिंदस्स वंदणाय तया । ओइन्ना ससिसूरा सहाविएहिं विमाणेहिं ।।११२।।
उज्जोइज्जइ भुवणं दूरचरेहिं पि तव्विमाणेहिं । आसन्नोइन्नेहि य जायं सयलं पि तेयमयं ।।११३।।
तेहि उ तहट्ठिएहि वि दिणावहिं नियसमयसंघडियं । मुणिउं चंदणबाला सपरीवारा गया वसहिं ।।११४।।
अज्जा मिगावई पुण जगगुरुणो धम्मदेसणक्खित्ता । समए सपरीवारं न गयं पि पवत्तिणिं मुणइ ।।११५।।
दिणबुद्धीइ तह च्चिय जा चिट्ठइ सामिणो समोसरणे । ता वंदिय जिणचंदं निक्खंता पुप्फदंता वि ।।११६।।
तत्तो कुवलयकज्जलमलीमसे विलुलियंमि तिमिरंमि । हा कहमेयं ति इमा पच्छाहुत्तं नियइ जाव ।।११७।।
ताव न पिच्छइ गुरुणिं न परीवारं मणंमि तो खुद्धा । तुरियपयं वसहीए मिगावई जाव संपत्ता ।।११८।।
विहियावस्सयजोगं कयसज्झायं पवत्तिणिं ताव । पिच्छइ संथारगयं पणमइ पाए तओ तीए ।।११९।।
मुणिऊण उवालद्धा चंदणबालाए सा जहा वच्छे ! । उत्तमकुलजायाए उत्तमगुरुदिक्खियाए य ।।१२०।।
रत्तिं उवस्सयाओ बाहिं किं तुज्झ जुज्जए ठाउं । सा भणइ पुणो एवं भयवइ ! नाहं करिस्सामि ।।१२१।।
एयं पुण अवराहं पमायदोसेण आगयं मज्झ । पसिऊण खमह इय भणिय सा पुणो पडइ पाएसु ।।१२२।।
तइआ पवत्तिणी वि हु दंसणवरणोदयाउ निद्दाणा । पज्झुत्तरमलहंती मिगावई पुण तहेव ठिया ।।१२३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाए पवत्तिणीए पणइपरेणं सिरेण सेवंती । पुणरुत्तं निंदंती पमायदोसं नियं हियए ।।१२४।।
वेरग्गभावणाओ भावंती नाणगब्भवेरग्गा । अज्झवसायविसुद्धिं अपत्तपुव्वं च पावंती ।।१२५।।
लहिउं अउव्वकरणं आरुहिउं तक्खणं खवगसेणिं । पत्ता केवलनाणं मिगावई सुद्धभावेणं ।।१२६।।
अह कालरत्तिवेणीदंडं व भुयंगमं तहिं भीमं । नाणनयणेण पिच्छइ सविहंमि पवत्तिणीइ इमा ।।१२७।।
भूलुलियं बाहुलयं सहसा उक्खिवइ सा तओ तीए । अह चंदणा विणिद्दा मिगावइं [1]नियइ तह चेव ।।१२८।।
धिद्धी पमायवसओ विसज्जिया न हु तुमं मए भद्दे ! । किं वा पुट्ठो बाहू सा भणइ पयाइ इह सप्पो ।।१२९।।
कह पिच्छसि ? नाणेणं, कयरेणं ? केवलेण इय भणिए । पाएसु निवडिऊणं खमावए चंदणा एयं ।।१३०।।
आसाइओ मए हा केवलनाणी कहं ति गरहंती । सुविसुज्झमाणलेसा सा वि हु लहु केवलं लहइ ।।१३१।।
इत्थं प्रमादाध्वनि धावितेन सद्ध्यानवीरेण निबर्हितेषु ।
चतुर्षु घातिप्रतिपन्थिषु द्राक् मृगावती केवलमासासाद ।।१३३।।२०९।।

पुनर्भावनायामेव श्राद्धप्रतिबद्धं दृष्टान्तमभिधित्सुराह -

वियलियकुलाभिमाणो, विमुक्कमेरो वि केवलं जत्तो ।
पत्तो स इलापुत्तो, तस्स नमो सुद्धभावस्स ।।२१०।।

तस्मै विशुद्धाय भावाय नमोऽस्तु । यस्मात् स कथायां वक्ष्यमाण **इलापुत्रो** महेभ्यसूनुः **केवलं प्राप्तः** । किम्भूतः ? **विगलितकुलाभिमानोऽपि** विस्रस्तगोत्राहङ्कारोऽपि । तथा **मुक्तमर्यादः** समुल्लङ्घिताभिजनजनव्यवस्थोऽपि । गाथाक्षरार्थोऽयम् । भावार्थस्तु कथानकगम्यस्तद्भेदम् - ।। श्रीः ।।

।। भावधर्मविषये इलापुत्रकथानकम् ।।

जम्बूद्वीपाभिधे द्वीपे क्षेत्रमत्रास्ति भारतम् । अखण्डमपि यत् प्राहुः षट्खण्डमिति पण्डिताः ।।१।।
तत्र त्रिवर्गकमलाविलासैकनिकेतनम् । इलावर्द्धनमित्यस्ति पुरं सर्वर्द्धिबन्धुरम् ।।२।।
उद्वृत्तशात्रवक्ष्माभृत्पक्षनिस्तक्षणक्षमः । सुत्रामेव क्षितौ तत्र जितशत्रुर्महीपतिः ।।३।।
श्यामलासिलता यस्य शोणपाणितलाश्रया । [1]रेजे गेलं च मालेव रक्तोत्पलविसर्पिणी ।।४।।
विश्वासभाजनं तस्य मनः स्वमिव भूपतेः । नाम्ना गुणनिधिस्तत्र महेभ्यः सान्वयाभिधः ।।५।।
कुलसीमन्तिनीयोग्य-समग्रगुणधारिणी । सदा प्रियसदाचारा प्रिया तस्यास्ति धारिणी ।।६।।

गाथा-२०९ 1. **नियइ** - णिअ (दृश्) णिअइ-जोवुं । - षड. हे. ४/१८१ ।।
गाथा-२१० 1. रेजेऽङ्गेऽलं इति पाठः समीचीनो भाति । - सम्पा. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगण्यपुण्यप्रचयोपचितं पञ्चधाऽपि तौ । भुञ्जानौ विषयग्राममासाते सातनिर्भरौ ।।७।।
तुल्येऽपि वयसि प्रेम्णि प्ररूढेऽपि मिथस्तयोः । न सन्ततिरभूद् दैवादपि सल्लक्षणाङ्गयोः ।।८।।
भवद्भुः कटुरप्येष सेव्यस्तेन बुधैरपि । लोकद्वयहितं तातसुतं च सुकृतं च यत् ।।९।।
विचिन्त्येति गृहीत्वा तौ पूजोपकरणं बहु । इलाभिधानां सकलां जग्मतुः पद्मदेवताम् ।।१०।।
सोपचारामथार्चां तौ विधाय प्रयताविति । उपयाचितकं तस्यै चक्रतुः पुत्रकाम्यया ।।११।।
देवि ! त्वदनुभावेन भावी यद्यावयोः सुतः । तदा त्वन्नाम दास्यावः करिष्यावश्च तेऽर्चनाम् ।।१२।।
भेजेऽनुकूलतां कर्म्म प्राक्तनं च तदा तयोः । प्रसादसौमनस्यं च सा बभार सुराङ्गना ।।१३।।
ततस्तदनुभावेन सा दध्रे धारिणी क्रमात् । अदभ्रमुदरे गर्भं हृदि हर्षं च निस्तुषम् ।।१४।।
सुषुवे चावधिं प्राप्य दिनेऽभ्युदयशंसिनि । रत्नं समुद्रवेलेव सुतं कान्तितरङ्गितम् ।।१५।।
अमन्दनान्दीनिनद-वाचालितनभोऽन्तरम् । मुदा गुणनिधिः सोऽथ विदधे वृद्धिमङ्गलम् ।।१६।।
समये सगयज्ञश्च समं स्वजनबान्धवैः । इलादेव्याः पुरोऽप्युच्चैश्चक्रे वर्द्धापनोत्सवम् ।।१७।।
इलापुत्र इति प्रीत्या ददौ पुत्रस्य नाम च । कृतकृत्यस्ततः श्रेष्ठी निजं धाम जगाम सः ।।१८।।
वर्द्धमानः प्रमोदेन सह पित्रोर्दिने दिने । इलापुत्रोऽथ समभूत् स क्रमादष्टवार्षिकः ।।१९।।
ततश्चोन्मीलितप्रज्ञं विज्ञायामुं कलागुरोः । उपनिन्ये पिता सर्व्वमनिन्द्यं समये कृतम् ।।२०।।
आवर्जितकलाचार्यः प्रज्ञया विनयेन च । अचिरेणैव जग्राह स कलाः स्वकुलोचिताः ।।२१।।
अथ स्मरधनुर्वेदप्रवृत्तिप्रणवोपमम् । स यौवनमनुप्राप तापकृद् धनधर्म्मयोः ।।२२।।
तथापि चापलोन्मुक्तो मुक्तसङ्ग इव क्वचित् । मुमोच लोचने नैष योषादिषु विकारिणी ।।२३।।
तथाविधं च तं वीक्ष्य विषयेषु श्लथाशयम् । चिन्तयामासतुः स्नेहकातरौ पितराविति ।।२४।।
आवयोरेक एवायं नन्दनश्चित्तनन्दनः । असङ्ख्यानि च वित्तानि पयांसीव पयोनिधेः ।।२५।।
न दत्ते नोपभुङ्क्ते च स्वेच्छयाऽमूनि यद्यसौ । तदेतत्सङ्ग्रहः क्लीबस्त्रीसङ्ग्रहवदावयोः ।।२६।।
विचिन्त्येति विनिर्मुक्तः स दुर्ललितसंसदि । पित्रा रात्रिन्दिवं सार्द्धं तया चिक्रीड निर्भरम् ।।२७।।
अत्रान्तरे च विगलत्पयोधरभरास्वलम् । अतिक्रान्तासु वर्षासु जरन्नारीष्विव क्रमात् ।।२८।।
सरोजवदना चारुचक्रवाकघनस्तनी । प्रादुरासीत् शरत् सिन्धुरोधःपृथुनितम्बिनी ।।२९।। युग्मम् ।।
निशीथिन्यां सरः प्रेक्ष्य विकसत्कुमुदाकरम् । स्फुटनक्षत्रताराढ्यं स्पर्द्धयेवाभवन्नभः ।।३०।।
क्षेत्रेषु वर्षणं काले विमलत्वनिबन्धनम् । इत्यूचुरिव निर्मोकनिर्मला जलदास्तदा ।।३१।।
सेव्याः स्वच्छान्तरा एव न तु कालुष्यदूषिताः । सरःसरित्पयांस्यासन्नुपादेयान्यतस्तदा ।।३२।।
वनद्विपमदामोदभ्रान्ताः केशरिणः क्रुधा । पुच्छैराच्छोटयामासुश्छायाः सप्तच्छदाश्रयाः ।।३३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सस्यसम्पदमापद्य विपक्वफलपेशलाम् । जहास कासच्छलतः कृतकृत्यो घनात्ययः ।।३४।।
वाचालितमरालेऽस्मिन् वाचंयमशिखिव्रजे । शरत्काले समित्रोऽगादिलापुत्रस्तदा वनम् ।।३५।।
क्रीडद्भिर्विविधं तत्र धनयौवनगर्वितैः । नागरैर्नर्त्यमानां स प्रत्यग्रोद्भिन्नयौवनाम् ।।३६।।
दृग्विलासदर्शयन्तीं लसदिन्दीवरा दिशः । लावण्यलहरीपूरैः प्लावयन्तीं वनस्थलीम् ।।३७।।
विद्याधरीमिव हृतां शापभ्रष्टामिवामरीम् । मनोभुवः प्रभावर्द्धिमिव स्त्रीरूपधारिणीम् ।।३८।।
अङ्गहारैर्नवनवैर्मनांसि वशिनामपि । मोहयन्तीं ददर्शैकां नटपुत्रीमिलासुतः ।।३९।। कलापकम् ।।
तद् दृष्ट्वा तादृशं तस्या रूपमप्रतिमं तदा । शलभस्येव तस्याथ दृग्विमोहो महानभूत् ।।४०।।
ममाज्ञां त्रिजगन्मान्यामवाज्ञासीदसौ चिरम् । इति क्रोधादिवाविध्यत् पुष्पधन्वा तदाथ तम् ।।४१।।
अथालिखितवद्भित्रे पुस्तविन्यस्तमूर्त्तिवत् । दृषदीव समुत्कीर्णः स जज्ञे निश्चलाङ्गकः ।।४२।।
दातुं कुलाभिमानस्य जलाञ्जलिमिवाथ सः । आविश्चकार सर्वाङ्गं स्वेदं सत्त्वसमुद्भवम् ।।४३।।
पापद्रुमाङ्कुरोद्भेद इव रोमोऽप्यभूत् [तदा] । अकृत्यचकितस्येव कम्पः समुदपद्यत ।।४४।।
सहैव त्रपया नष्टा चेतनाप्यस्य चेतसः । किं वा न रागिणां कुर्यात् स्मरापस्मारघस्मरः ।।४५।।
तथाविधं च तं प्रेक्ष्य भावमस्योपलक्ष्य च । विचक्षणैर्मित्रगणैः स तदेति न्यगद्यत ।।४६।।
महच्चिरमभूद् गेहादिहास्माकमुपेयुषाम् । भविष्यत्यधृतिः पित्रोस्तव कोमलचित्तयोः ।।४७।।
प्रकृत्यैवार्यचित्तस्त्वमनार्या वनभूमयः । साम्प्रतं तदिह स्थातुमसाम्प्रतमतः परम् ।।४८।।
एवमुक्तोऽपि संसक्त इव पङ्के मतङ्गजः । तद्रूपमोहितो यावन्न चचाल पदात् पदम् ।।४९।।
बलादपि स निन्ये तैस्तावदावसथं प्रति । धारयन् मनसा सार्द्रनखविच्छेदवेदनाम् ।।५०।।
गृहेऽपि विलुठंस्तल्पे स्वल्पेऽम्भसि स मीनवत् । कथञ्चिन्न रतिं प्राप रतिनाथविसंस्थुलः ।।५१।।
विमुक्तनित्यकृत्यं तं निश्वसन्तं मुहुर्मुहुः । दृष्ट्वा विशङ्कितैर्मित्रैस्तत्पित्रे तन्न्यवेद्यत ।।५२।।
ततोऽनुचितवृत्तेन तेन सूनोः श्रुतिस्पृशा । विदीर्णमिव तस्याभूत् हृदयं नयशालिनः ।।५३।।
उपेत्य स द्रुतपदं दधानमपथे पदम् । विनेतुमेवं प्रारेभे तनयं नयकोविदः ।।५४।।
समुत्पन्नोऽसि वत्स ! त्वं कुले प्रालेयनिर्मले । मतिस्तवावजानाति पुत्र ! चित्रशिखण्डिजम् ।।५५।।
समस्तशास्त्रनिस्यन्दरहस्यानां त्वमास्पदम् । त्वमेवालम्ब्यसे लोकैः स्खलद्भिर्नयवर्त्मनः ।।५६।।
तदमीषां गुणानां ते कस्यानुगुणमीदृशम् । वत्स ! धत्सेऽनुरागं यत् तस्यां [2]शैलूषयोषिति ।।५७।।

---

2. **शैलूषयोषिति** - 'नटकन्या' इति भाषायाम् । शैलूष - शिलूषस्य ऋषेरपत्यं शैलूषः वेषान्तरमिति वा "कोरदूषाटरूष" ।। (उणा-५६१) ।। इत्यादिना ऊषान्तो निपात्यते ।। अभि. चि. ना. श्लो. ३२८ स्वो. वृ. ।। शैलूषस्य योषित् तस्मिन् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्फुटीकृतेऽत्र दुर्वृत्ते तव कर्णेजपव्रजैः । गृह्णात्यह्नाय सर्वस्वमपि मे वत्स ! भूपतिः ।।५८।।
कुर्वन्ति पङ्क्तिबाह्यं मां ध्रुवं सम्बन्धिबान्धवाः । एवं त्वयैव क्लृप्तः स्यात् कलङ्कोऽस्मिन् कुले मम ।।५९।।
तस्मादस्मादपस्मारात्रिवारय मनो निजम् । शतशः सन्ति नन्वेताः स्वाधीनाः कुलकन्यकाः ।।६०।।
सुरूपयाऽपि किं वत्स ! जातिदूषितया तया । श्वपाककूपे यद् वारि शिशिरेणापि तेन किम् ? ।।६१।।
लज्जामवगणय्याथ स प्रोचे पितरं तदा । तात ! जानामि यत् तातपादैरादिष्टमञ्जसा ।।६२।।
शतशोऽपि विचिन्वानः किन्तु जानामि तत्रहि । पातके पातुकं येन हतं चेतो निवर्त्त्यते ।।६३।।
व्याकरोमि कियन्मात्रमत्रपोऽहं पुरस्तव । किन्तु नाप्नोमि यदि तां तदा जीवामि न ध्रुवम् ।।६४।।
एवं गुणनिधिर्बुद्ध्वा निर्बन्धमधमेऽस्य तत् । ययाचे तं नटं पुत्रीं पुत्रव्यापत्तिकातरः ।।६५।।
कोट्याऽपि हाटकस्यैनां देहि मह्यं निजात्मजाम् । इयमेव यतो दैवाज्जीवातुर्नन्दनस्य मे ।।६६।।
[3]रङ्गाजीवोऽप्युवाचैवं श्रेष्ठिन् ! सुष्ठु वचस्तव । किं तु स्याद् गणितं वित्तं गणितानेव वासरान् ।।६७।।
इयं तु मद्गृहे बाला सकलद्वीपसम्पदाम् । आकर्षणौषधिः कोशमक्षीणं तदसौ मम ।।६८।।
सुवर्णेनापि तुलितां तदेनां न ददाम्यहम् । एतदर्थी सुतस्ते चेज्जामाताऽस्तु गृहे मम ।।६९।।
युक्तियुक्तं तदाकर्ण्य जायाजीवस्य जल्पितम् । अभ्यधत्त महेभ्यस्तत् सर्वं पुत्रस्य दुर्म्मनाः ।।७०।।
इलापुत्रोऽपि तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास चेतसि । अकृत्यमपि तातेन कृतं मत्प्रीतिमिच्छता ।।७१।।
शठस्य सदनुष्ठानमिवाभूत् तत् तु निःफलम् । अहं च तां विना स्थातुं निमेषमपि न क्षमः ।।७२।।
आचारपूतस्तातो मे तेन चालङ्कृतं कुलम् । कलङ्कस्तु ममैवायं मदुराचारसम्भृतः ।।७३।।
पीडा पित्रोर्यादृशी स्यादेनामनुसृते मयि । ततः शतगुणा सा स्यादलाभेऽस्या मृते मयि ।।७४।।
इत्यादि चिन्तयत्रेव स्मरेणाचिन्त्यशक्तिना । स तदा श्रेष्ठिनः सूनुः मातङ्गचरितः कृतः ।।७५।।
कुलाभिमानमालानस्तम्भं भङ्क्त्वाऽथ हेलया । त्रोटयित्वा च गोत्रस्य सुव्यवस्थितिशृङ्खलाम् ।।७६।।
अवमत्य महामात्रान् ज्ञानाङ्कुशकरान् गुरून् । सुहृत्सम्बन्धिबन्धूंश्च विधूय प्रतिकारवत् ।।७७।।
स्रंसमानं पुरोऽपश्यत् कीर्त्तिकौशेयमात्मनः । लज्जयाऽबलया दूरं परित्यक्तश्च भीतया ।।७८।।
स दुर्बोधाध्वना धावन् नटीं विन्ध्याटवीमनु । जगाम मदनोन्माद-मदविह्वललोचनः ।।७९।। कुलकम् ।।
ततो भरतपुत्रेण प्रोक्तोऽसौ वत्स ! मत्सुता । चतुर्विधेऽप्यभिनये परं प्रावीण्यमश्नुते ।।८०।।
अनभिज्ञस्तु तत्र त्वमेवं वां सङ्गमो मुधा । अधीष्व तस्मादस्माकं विद्यां विद्याविशारद ! ।।८१।।

---

3. **रङ्गाजीव** - 'नट' इति भाषायाम् । शैलूषो भरतः सर्वकेशी भरतपुत्रकः । धर्मीपुत्रो रङ्गजायाऽऽजीवो रङ्गावतारकः ।। नटः कृशाश्वी शैलाली । अभि. चि. ना. श्लो. ३२८/३२९ ।। रङ्गेण जायया वाऽऽजीवति रङ्गाजीवो जायाऽऽजीवः । - अभि. चि. ना. श्लो. ३२८ स्वो. वृ. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स तथेति प्रतिपद्याथ प्रारेभेऽभ्यासमाश्रुतम् । अकृत्यमपि कुर्वन्ति स्त्रीवशाः किमु तादृशम् ।।८२।।
प्रौढप्रज्ञाबलान्नाट्ये स तथा प्राप नैपुणम् । रङ्गाचार्यत्वमभजद् यथा रङ्गोपजीविषु ।।८३।।
भणितोऽथ भ्रङ्कुशेन स पुनः श्रेष्ठिनन्दनः । आविष्कुरु कलां स्वस्य पुरः कस्यापि भूपतेः ।।८४।।
उपार्जिते त्वया तस्मात् पुष्कलेऽर्थे करोमि ते । विस्तरेणातिमहता पाणिग्रहमहोत्सवम् ।।८५।।
याचितोऽवसरं तेन ततो वेन्नातटप्रभुः । सपौरान्तःपुरस्तस्थावधास्थानं विभूष्य सः ।।८६।।
इलापुत्रोऽथ शैलूषपुत्र्या सह तदा तया । ननर्त्त नर्त्तयन्बुद्धेः प्रेक्षकाणां शिरांस्यपि ।।८७।।
रङ्गाजीवाङ्गजायां स भूभुजङ्गोऽथ रङ्गभृत् । इलापुत्रव्ययेनास्याः सङ्गमिच्छन्ननर्गलम् ।।८८।।
बभाण भद्र ! वंशाग्रनृत्यकौतूहलं हि नः । चिरादस्ति ततः तत्र प्रावीण्यं प्रकटीकुरु ।।८९।। युग्मम् ।।
रङ्गावन्यामथो वंशं निचखान नटाग्रणीः । तस्योपरि ददौ दारुफलकं कीलकान्वितम् ।।९०।।
निधाय पदयोर्दारुपादुके छिद्रसंयुते । निस्त्रिंशफलकव्यग्र-पाणियुग्मः क्रमादथ ।।९१।।
कुर्वाणः करणान्यग्रे सप्त वंशस्य सप्त च । पश्चाद्भागे स वंशाग्रं ययौ निरवलम्बनः ।।९२।। युग्मम् ।।
निधाय पादुकारन्ध्रेष्वथ कीलान्यवास्थित । विशिष्माय जनः सर्वस्तेनास्याद्भुतकर्म्मणा ।।९३।।
दातुं प्रगुणितांश्चास्मै हारकेयूरकङ्कणान् । अदत्तेऽरिनृपे दत्ते किन्तु पूर्वं न कोऽपि हि ।।९४।।
धृतद्रोहो महीनाथस्तस्याथ पुनरादिशत् । नावधारितमस्माभिः सम्यक्करणकौशलम् ।।९५।।
तद्भूयो दर्शयेत्युक्ते स तथैवाकरोत् पुनः । नृपतिर्निस्त्रपः किन्तु न दृष्टमिति जल्पति ।।९६।।
हाहारवमुखे लोके विदन्नपि नृपाशयम् । इलापुत्रः पुनश्चक्रे त्रिः स्वं करणकौशलम् ।।९७।।
फलकाग्रस्थितः सोऽथ चिन्तयामास चेतसि । धिगन्धंकरणं कामतमः सञ्छक्षुषामपि ।।९८।।
क्वान्यथा पृथिवीनाथः प्रथितः पृथुभिर्गुणैः । कामं विगर्हिता शिष्टैः क्व चेयं नटकन्यका ।।९९।।
अप्सरःप्रतिमास्वासु स्वकान्तासु सतीष्वपि । लुब्धोऽधमायामस्यां यद् वधे मम धियं दधे ।।१००।।
उपालम्भोऽथवा कोऽस्य मयैव ननु किं कृतम् । ज्वलन्तं पर्वते वह्निं पश्यामि न पदोः पुरः ।।१०१।।
शय्यामिव पणस्त्रीणामनेकविटसेविनाम् । शिष्टैः पुटीमिवोच्छिष्टां वर्जनीयां च दूरतः ।।१०२।।
नटकन्यामिमामेकामशक्तेन मयोज्झितुम् । हा हा कलङ्कितं स्वीयं सितांशुविमलं कुलम् ।।१०३।।
मया गृहप्रसूतेन सर्वथाऽनुपयोगिना । पित्रोर्विषद्रुमेणेव सन्तापः प्रत्युतार्पितः ।।१०४।।
तमस्विना प्रदोषेण कामं सङ्कोचितानि च । मुखपद्मानि बन्धूनां[4] बन्धकीबन्धुना मया ।।१०५।।
भश्मनेवोद्योतिताश्च दुर्जनाननदर्प्पणाः । उद्धूलितमिदं विश्वं दुर्यशःपांशुवृष्टिभिः ।।१०६।।

4. **बन्धकीबन्धुना** - बध्नाति चित्तं बन्धकी "दृकृ" - (उणा-२७) इत्यकः स्त्रियां ङीप् । अभि. चि. ना. श्लो. ५२८ स्वो. वृ. ।। बध्नाति मनः स्नेहादिनो बन्ध+उ बन्धु । श. र. म. ।। बन्धक्याम् बन्धुः, तेन इति समासः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तमाङ्ग कुलास्त्रीचं सङ्क्रान्तेनान्यपुष्टवत् । भक्ष्याभक्ष्यविभागश्च वह्निनेव मयोज्झितः ।।१०७।।
गुरूणामुपदेशाश्च बधिरेणेव न श्रुताः । अन्धेनेव न दृष्टश्च पुरस्तान्नरकावटः ।।१०८।।
सर्वोऽपि विषयासङ्गः कलङ्कस्तावदायतौ । विरुद्धस्त्रीसमुत्थस्तु कलङ्कस्याऽपि चूलिका ।।१०९।।
धन्यास्त एव लोकेऽस्मिन् शुचयो मुनिपुङ्गवाः । आजन्माऽपि न लिप्ता ये विषयाशुचिकर्दमैः ।।११०।।
इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टिः क्वापीभ्यवेश्मनि । पपात तत्र दृष्टाश्च तेन जैनेन्द्रसाधवः ।।१११।।
दधानाः पञ्च समितीर्गुप्तित्रयपवित्रिताः । शीलाङ्गभारवोढारः प्रौढसंवरकङ्कटाः[5] ।।११२।।
सन्तापिता न कोपेन मानेनोत्तानिता न तु । नोलुण्ठिताश्च शाठ्येन लोभेन क्षोभिता न च ।।११३।।
कन्दर्प्पसर्प्पपक्षीन्द्राः प्रमाददववारिदाः । पिण्डं चारित्रयात्रार्थं गृह्णन्तः शुद्धिबन्धुरम् ।।११४।।
सर्वावयवरम्यासु लावण्यजलसिन्धुषु । तद्दात्रीषु य जैत्रासु भल्लीष्विव मनोभुवः ।।११५।।
सोपचारं सविनयं देयवस्तुगणं पुरः । ढौकयन्तीषु निर्व्याजं भक्तिव्यक्तिपरास्वलम् ।।११६।।
वात्सल्यललितैश्चित्तैः कारुण्यरसवाहिनीम् । दृशं व्यापारयन्तः स्वां स्वसृष्विव सुतास्विव ।।११७।।
एवंविधांश्च तान् वीक्ष्य स दध्यौ पुनरप्यहो । तुल्येऽपि पुंस्त्वेऽमीषां च मम च स्फीतमन्तरम् ।।११८।। कुलकम् ।।
अमी हि यन्महात्मानः पादाग्रलुठितास्वपि । एवंविधासु नारीषु कुलीनास्वपि निस्पृहाः ।।११९।।
अकुलीनामनायत्तां नटीमनुसरन् पुनः । अभिजातोऽपि जातोऽहमवजातः स्वचेष्टितैः ।।१२०।।
मानुषं जन्म माणिक्यं कर्करेणेव हारितम् । मया भोगाभिलाषेण तुच्छेनातुच्छवैभवम् ।।१२१।।
मुहूर्त्तः कोऽपि किं सोऽपि ममायास्यति सम्मुखः । यस्मिन् सङ्गविमुक्तोऽहं भविष्यामि निराश्रवः ।।१२२।।
इति चिन्तयतस्तस्य विश्वेऽपि समताजुषः । स्वावारकक्षयाज्ज्ञे यथाख्यातं व्रतं तदा ।।१२३।।
विलीनं मोहनीयं च क्षीणा विषयवासना । विशुध्यमानलेश्योऽधादपूर्वकरणे पदम् ।।१२४।।
यथा वंशाग्रमारूढः पूर्वं द्रव्यादिवाञ्छया । क्षपकश्रेणिमारूढस्तथा परपदेच्छया ।।१२५।।
क्षणात् क्षयमवाप्तेषु युगपद् घातिकर्म्मसु । विमलं केवलज्ञानं स महात्मा समासदत् ।।१२६।।
देवैर्वितीर्णवेषोऽथ वंशादुत्तीर्य संसदि । सुवर्णकमलासीनः प्रारेभे धर्म्मदेशनाम् ।।१२७।।
यानपात्रमिवाम्भोधौ विधुरे च शरण्यवत् । निधानमिव निःस्वत्वे महाव्याधौ सुवैद्यवत् ।।१२८।।
अन्धकारे यथा दीपः कान्तारे मार्गदेशकः । तृष्णायां शिशिरं वारि क्षुधायां वरभोजनम् ।।१२९।।
मानुषत्वं तथैवास्मिन् संसारेऽत्यन्तदुर्लभम् । कथञ्चित् प्राप्य सफलं कुरुध्वं धर्म्मकर्म्मभिः ।।१३०।।

---

5. **कङ्कट** - कच, बख्तर इति भाषायाम् । सन्नाहो वर्म कङ्कटः । जगरः कचं दंशस्तनुत्रं माठ्युरश्छदः अभि. चि. ना. श्लो. ७६६ । कवते कवचं पुंक्लीबलिङ्गः, "कल्यवि" - ।। (उणा-११४) इत्यचः, कं वञ्चतीति वा । अभि. चि. ना. श्लो. ७६६ स्वो. वृ. ।। सर्वायुधैः कङ्कटभेदिभिश्च - रघु. ७/५ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकृत्यमिव मिथ्यात्वं परित्यजत दूरतः । सत्कृत्यमिव सम्यक्त्वं कुरुध्वं सन्निधौ सदा ।।१३१।।
पाशबन्धवद् दूरं प्रतिबन्धं विमुञ्चत । अतुच्छमूर्छाहेतूंश्च कषायविषपादपान् ।।१३२।।
विषयामिषमिश्रां च प्रमादमदिरामिमाम् । पीत्वाहमिव लोकेऽस्मिन् भजध्वं मा विडम्बनाम् ।।१३३।।
व्यजिज्ञपदथ क्षमापस्तदा केवलिनं मुदा । भगवन् ! भवता लोके कथं प्राप्ता विडम्बना ।।१३४।।
अब्रवीत् सर्वविद् राजन्ननादिनिधने भवे । अनुभूता हि भूयस्यो विषयोत्था विडम्बनाः ।।१३५।।
अतः कति निवेद्यन्ते किन्तु प्राग्भव एव हि । भोगेच्छामात्रतो मेऽत्र यदजायत तच्छृणु ।।१३६।।
वसन्तनगरेऽभूवमहं षट्कर्म्मनिर्म्मलः । द्विजन्मा विभवी जायाऽप्यनुरूपैव मेऽभवत् ।।१३७।।
अवियुक्तस्तया सार्द्धमेकचित्तो दिवानिशम् । अनयं समयं देव्या शिवयेव शिवः सुखम् ।।१३८।।
भवे च तत्र गोत्रे मे जैनो धर्म्मः पुराप्यभूत् । निर्वाह्य सुचिरं तं च विरक्तः संसृतेः क्रमात् ।।१३९।।
गुरुमूले प्रपन्नोहं व्रतं पत्न्यपि मे तथा । पतिव्रतानां नारीणां किमन्यदुचितं ननु ।।१४०।।
वैराग्यबृंहकान्युच्चैः प्लुतानि प्रशमामृतैः । अधीयानोऽपि शास्त्राणि सन्तप्तोऽहं स्मराग्निना ।।१४१।।
स्वप्रियागोचरं प्रेम व्यस्मार्षं व्रतवत्र हि । धर्म्मपत्न्यपि मे जातिमदं नैव मुमोच सा ।।१४२।।
तदनालोच्य मृत्वा च द्वावपि त्रिदिवं गतौ । सोऽहं गुणनिधेः सूनुश्च्युतः स्वर्गादिहाऽभवम् ।।१४३।।
जज्ञे जातिमदात्तस्मादेषा शैलूषवेश्मनि । फलन्ति वैपरीत्येन मदस्थानानि यन्नृणाम् ।।१४४।।
तेनावधीर्यं मर्यादां धर्म्मस्य च कुलस्य च । अनुरक्तोऽहमेतस्यां प्राग्भवाभ्यासवासितः ।।१४५।।
सेयं विडम्बना मेऽत्र भोगेच्छामात्रतोऽप्यभूत् । उपभुक्तास्तु विषया विषादप्यतिदारुणाः ।।१४६।।
तस्मादस्मादपस्मारात् स्मरोत्थाच्चित्तमात्मनः । निर्वर्त्त्य निर्वृतिमनु प्रयतध्वं सुमेधसः ! ।।१४७।।
इति देशनया तस्य राजा वेत्रातटप्रभुः । तद्राज्ञी नटपुत्री च विशुद्धध्यानयोगतः ।।१४८।।
यथाख्यातं व्रतं प्राप्य विमलं केवलं तथा । सर्वेऽपि कृतकृत्यास्ते प्रापुः पदमनश्वरम् ।।१४९।।
तदेवं सम्प्राप्य प्रथममसमोन्मादमदन-व्यथावस्थां दुस्थां तदनु च विरागोपनिषदम् ।
स्फुटज्ञानालोकप्रकटभुवनः सोऽथ भगवान्, इलापुत्रः क्षेत्रं शिवमचलमक्षय्यमगमत् ।।१५०।।२१०।।

पुनः श्रमणोपासिकाज्ञातेन भावनाधर्ममेवोत्कर्षयन्नाह -

मत्ताहियाउ नूणं, मत्ताहीणो पराभवं लहइ ।
पिच्छह कणगवईए, भावेण भवो पराहूओ ।।२११।।

नूनं निश्चितमस्मिन् जगति **मात्राधिकादसाधारणगुणोपचितान्मात्राहीनो** जघन्यगुणः **पराभवं लभते** । कथमिति चेत् तदाह - हे प्रेक्षावन्तो ! **विलोकयत** यूयम् । **कनकवत्या** वसुदेववल्लभाया

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावेन मनःशुद्धिप्रकर्षेण **भवः** संसारः **पराभूतः** पुनरनावृत्त्या तिरस्कृतः । यतो भावशब्दान्मात्रया आकारलक्षणया भवशब्दो हीन इति । **कनकवती**दृष्टान्तं कथानकेन स्पष्टयति ।। श्रीः ।।

।। भावधर्मविषये कनकवतीकथानकम् ।।

भरहे इहेव नयरं पेढालं अत्थि पोढरिद्धिल्लं । निऊणं निरूवियं जं नु दिव्वनयरं ति पडिहाइ ।।१।।
जंमि मणिकुट्टिमेसुं संकन्ता जामिणीसु उडुनिवहा । छिप्पंति दंततालंकसंकिरीहिं कुमारीहिं ।।२।।
सिरिनमिजिणिंदओसरण-लच्छिविच्छड्डसंगमदिणाओ ।
लच्छिरमणं ति गिज्जइ अज्ज वि परिसरवणं जस्स ।।३।।
वरवम्मधारिणो वि हु मग्गणगणसंगया वि अणवरयं । तहवि परलोयभीया अव्वो जव्वासिणो लोया ।।४।।
निवनीइलयाकंदो उब्भडभडवायचायसच्छंदो । जणमणकुमुयाणंदो राया तत्थासि हरियंदो ।।५।।
रणपव्वेसु अउव्वु व्व असिविडप्पो पसप्पिरो जस्स । सुबहूण सूररायाण कवलणं कुणइ जुगवं पि ।।६।।
आयड्ढाओ दंडाहिवेहिं दूराउ दूयपडिमेहिं । सुभगं व कामिणीओ लच्छीओ जमभिसप्पंति ।।७।।
रइरमणस्सेव रई पुरूरवस्सेव उव्वसी आसि । लच्छि व्व लच्छिवइणो लच्छिवई नाम से देवी ।।८।।
पियवयणविणयलज्जा-सइत्तदक्खत्तमाइसुगुणेहिं । संदाणियं व पइणो मणं न जत्तो अवक्कमेव(मइ) ।।९।।
निव्वासियारिवारो अमच्चविणिहित्तरज्जपब्भारो । सह तीइ तियसनाहु व्व विलसए एस सच्छंदं ।।१०।।
इय वच्चंते काले बालेयरचंदसुंदरमुहिं सा । सिरिलच्छिवई देवी पसवइ वरकन्नगं एगं ।।११।।
तीसे य जम्मसमए विणिम्मिया पुव्वजम्मसरणेणं । वेसमणेणं तुट्ठेण कणयवुट्ठी अरिट्ठघरे ।।१२।।
तो बारसम्मि दिवसे निवेण नियसयणबंधुसहिएण । कणगवइ त्ति विइन्नं नामं से तयणुसारेण ।।१३।।
परिवड्ढइ सा बाला वलक्खपक्खम्मि चंदलेहव्व । जणमणनयणाणन्दं दिंती कंताइ मुत्तीए ।।१४।।
खलियललियाइं पयविब्भमाइं तह जल्लमम्मणुल्लावे । सिक्खिज्जंती धाईहिं सहइ सा दुद्धमुद्धमुही ।।१५।।
रइयसिहंडा सीसे सवणेसु लसंतरयणताडंका । मणिकंदुयाइएहिं विविहं सा कीलए बाला ।।१६।।
उम्मीलियबुद्धिगुणा कलागुरूणं कमेण उवणीया । अट्ठारस वि लिवीओ गिन्हइ लीलाइ लहु एसा ।।१७।।
मेहाविणि त्ति पिउणा सकोउगेणं कमेण कारविया । वागरणछंदलंकार-कव्वनाडयकहब्भासं ।।१८।।
तक्के अचुक्कवक्का छसु भासासुं कवित्तपत्तट्ठा । पन्हुत्तरछलियपहेलियासु कुसला कलासुं च ।।१९।।
सुरगुरुमइ व्व अह भारइ व्व थीरूवपरिणया भुवणे । तन्नत्थि जन्न जाणइ पावायरणं विणा एसा ।।२०।।
अवियड्ढं पि वियड्ढं पयइविरूवं पि जं सुरूवं व । कुणइ जणं तेणेसा विभूसिया जुव्वणेण तओ ।।२१।।
रूवेण निरुवम ञ्चिय पुरा वि सा जुव्वणेण पुण तइया । सरएण चंदमुत्ति व्व लंभिया लवणिमुल्लासं ।।२२।।
किं तिनयणेण मयणो सहस्सनयणं पि नणु वसे कुणउ । जस्स करे कणगवई अमोहभल्ली परिप्फुरइ ।।२३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा कावि कला तीए अबलाइ वि लहु कयं पयं जीए । सीसेसु च रूववईण भूवईणं पि हियएसु ।।२४।।
दट्ठूण तहारूवं नियधूयं पमुइओ मणे राया । उचिओ सयंवरु च्चिय इमीइ इय तं उवक्कमइ ।।२५।।
अह अन्नया कुमारी कणगवई जाव नियपासाए । वीणाविणोयलीणा चिट्ठइ ता झत्ति गयणाओ ।।२६।।
करचरणनयणचंचूरागेण मणोगयं व अणुरागं । कुमरीइ पयासिंतो रसंतमणिकिंकिणिसणाहो ।।२७।।
रायमरालो एगो गोखीरतुसारहारधवलंगो । अवयरिऊण समीवे तीए चंकमिउमारद्धो ।।२८।।
विम्हयविप्फुल्लेहिं विलोयणेहिं पलोइरी तं सा । पभणइ कस्सइ धन्नस्स एस हंसो विणोयपयं ।।२९।।
न हु सामिविरहियाणं खगाण मणिभूसणाइयं घडइ । तम्हा अहं पि संपइ इमेण अप्पं विणोइस्सं ।।३०।।
इय भणिउं सणियपयं परिसक्कंतीइ तीइ सो हंसो । करलाघवेण गहिओ नेहेण निहिओ नियअंके ।।३१।।
नवणीयकोमलेणं करेण अंगं परामुसंती से । वाहरइ सहिं आणसु चामीयरपंजरं तुरियं ।।३२।।
जह तम्मि ठवेमि इमं विहगा एगत्थ ठाइणो न जओ । इय भणिए जाव गया खगालयं गिन्हिउं आली ।।३३।।
ता पूरिंतो विम्हयरसेण कुमरिं स माणुसगिराए । जंपइ हंसो सुंदरि ! न सुंदरो तुह समारंभो ।।३४।।
सामन्नो वि हु अतिही अरिहइ रोहं न पंजराईसु । तुह चेव य पियकामो विसेसओ मारिसो सुयणु ! ।।३५।।
ता मुंच ममं ससिमुहि ! अहं पि तुह किंपि नणु पियं काहं । मह रोहे अपसिद्धी न य सिद्धी तुज्झ कज्जस्स ।।३६।।
तत्तो ससंभमाए कणगवईए कराउ सो मुक्को । ठाउं गयणे मुंचइ उच्छंगे तीइ चित्तपडं ।।३७।।
दट्ठुं अब्भुयभूयं नररूवं तत्थ सहरिसा एसा । निप्फंदनयणनलिणा एगमणा तम्मय व्व ठिया ।।३८।।
भाविज्जंती भावेहिं कंपरोमंचसेयपमुहेहिं । चित्तब्बुएण भणिया पुणो वि सा तेण हंसेण ।।३९।।
नारीसु निरुवमा तं सुयणु ! जहा तह इमो वि हु नरेसुं । उचिउ च्चिय अणुराओ सरिसे सरिसस्स ता काउं ।।४०।।
तो तं नरिंदतणया ससिणेहं सोवरोहमिय भणइ । पसिऊण कहसु सुंदर ! को सि तुमं को य पडलिहिओ ।।४१।।
चरिएहिं दिव्वरूवो तुमं ति जइ वि हु निवेइयं चेव । तहवि विसेसं नाउं सकोउगं नणु मणो मज्झ ।।४२।।
इय तीइ पत्थिओ सो पत्थावन्नू पयासिउं सहसा । दिव्वं नियसरूवं एवं भणिउं समारद्धो ।।४३।।
चंदायवनामो हं सुंदरि ! विज्जाहरो पडगयस्स । एयस्स भिच्चकप्पो अवियप्पो सप्पसाओ य ।।४४।।
जो य इमो जम्मि कुले उप्पन्नो जारिसो य चरिएहिं । तं सव्वं अणुकूले विहिम्मि तुह पायडं होही ।।४५।।
जह दंसिओ इमो तुह इमस्स तह तं पि दंसिया सि मए । इन्हिं पि तुज्झ कज्जेण चेव एसो जणो गमिही ।।४६।।
ता जइ तुह पडिहासइ ससिमुहि ! मह सामिओ इमो हियए ।
तह तुह सयंवरमहे विहिवसओ एइ जइ कहवि ।।४७।।
तालेसमित्तमेयं पडलिहियं तस्स दिव्वरूवस्स । अणुमिणिऊण किसोयरि ! जाणिज्ज वियक्खणा सि जओ ।।४८।।
बीयं पुण चिन्हमिणं सयंवराहंमि दूयवित्तीए । जो एइ तुह समीवे तं एयं चेव जाणिज्ज ।।४९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह भणइ भूवइसुया वयंसअवयंस ! सुयणसिररयण ! । को अन्नो अणुवकओ उवयारी तुह समो भुवणे ।।५०।।
जं दुक्करं तइ ञ्झिय तं विहियं दंसिया अहं जं से । तह कहवि जयसु संपइ जह मम सो होइ सपसाओ ।।५१।।
न य एरिसोवयारिस्स तुह मए किं पि तीरए काउं । किं तु तुह गुणगणाणं आजम्मं गायणा होहं ।।५२।।
एवं होउ त्ति पयंपिऊण खयरो खमग्गमल्लीणो । चित्तगयं चित्तगयं झायइ कुमरी वि तं चेव ।।५३।।
तइया पुण वसुदेवो विन्हिसुओ देसदंसणसयन्हो । कवडेण विणिक्खंतो गिहाउ भमिरो समीरु व्व ।।५४।।
परिणंतो नरखेयरनरिंदधूयाउ दिव्वरूवाओ । कोसलवइणो धूयं सुकोसलं नाम परिणेउं ।।५५।।
विलसंतो जा चिट्ठइ तीइ समं तत्थ कोसलपुरंमि । चंदायवेण गंतुं निवेइयं ताव तं चित्तं ।।५६।।
भणियं च नाह ! कुमरी कणगवई विन्नवेइ इय सामिं । जाणामि जहा जुग्गा न कोइला रायहंसस्स ।।५७।।
तहवि मह जीविएणं जइ कज्जं ता सयंवरं इज्ज । अन्नह नियहत्थेणं जीवेस ! जलंजलिं दिज्ज ।।५८।।
इय तीइ पीइगब्भं वयणं आयन्निऊण वसुदेवो । आमंतिऊण कोसलनाहं पेढालमणुपत्तो ।।५९।।
हरियंदो वि हु राया उज्जाणे लच्छिरमणनाममम्मि । मुणिऊण आगयं तं ससंभमो कुणइ पडिवत्तिं ।।६०।।
वणजिणहरपडिमाणं पूयाई जाव जायवो कुणइ । ता गयणाउ एगं दिव्वविमाणं समोइन्नं ।।६१।।
परिवरिओ सुरेहिं सहस्ससंखेहिं तस्स मज्झम्मि । दिट्ठो वसुदेवेणं सुरिंदपडिमो विमाणपहू ।।६२।।
नणु को इमु त्ति पुट्ठो तेण सुरो को वि भणइ भो भद्द ! । सक्कस्स देवरन्नो उत्तरदिसिपालगो एस ।।६३।।
धणओ जक्खाहिवई कणगवईए नरिंदकन्नाए । दट्ठुं सयंवरमहं नेहेण सयं समोइन्नो ।।६४।।
तो चिंतइ वसुदेवो कणगवई ञ्झिय नारीसु नणु धन्ना । देवा वि जीइ दंसणकोउगमेवं वहंति मणे ।।६५।।
निहिनाहो वि हु काउं जिणिंदपडिमाण ताण पूयाई । विणियत्तंतो पिच्छइ वसुदेवं दिव्वरूवधरं ।।६६।।
नाणेण मुणंतो वि हु तत्थागमणंमि कारणं तस्स । सत्तपरिक्खाहेऊ जक्खवई तं समाइसइ ।।६७।।
भद्द ! अणन्नसमो तं अणन्नसज्जं च अत्थि मे कज्जं । तं तुह साहिज्जेणं सिज्झउ अज्जेव नणु मज्झ ।।६८।।
अत्थित्थ निवइधूया कणगवई नाम निरुवमसरूवा । गंतुं तत्थ तुमं तं मह वयणेणं इमं भणसु ।।६९।।
पत्थेइ पाणिगहणं उत्तरदिसिनायगो सुयणु तुज्झ । अणुहवसु देवभावं इहेव नियसुकयसंघडियं ।।७०।।
पाएण मणुस्सेसुं मणुओ विस्संभभायणं होइ । तेण तुमं पेसिज्जसि संतेसु वि तियससत्थेसु ।।७१।।
अक्खलियं च गमिस्ससि मज्झ पभावा तयंतियंमि तुमं । ता तूरसु मह कज्जे अज्ज अणंगो जओऽणज्जो ।।७२।।
न मइ कालक्खेवं पंचसरो वि हु सहस्सविसिहु व्व । ता मा पत्थणभंगं करिज्जसु कुलप्पसूओ सि ।।७३।।
इय धणएणं भणिओ उवरोहमहोअही इमो तइया । पडिवन्नदूयभावो भूवइभवणंमि संचलिओ ।।७४।।
केण वि अदिस्समाणो अंजणसिद्ध व्व तयणु वसुदेवो । कक्खंतराणि लंघइ रक्खगलक्खेहिं गुत्ताणि ।।७५।।
लीलोववणगयंमी पासाए तत्थ पिक्खए कुमरिं । चंदायवोवणीए पडरूवे निमियनयणजुयं ।।७६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो पुव्वदिट्ठरूवाणुसारओ तहय निरुवमत्तणओ । एस ञ्चिय कणगवई त्ति निच्छिउं जा पुरो ठाइ ।।७७।।
ता दिट्ठो सो तीए तिहुयणसोहग्गसारघडिउ व्व । अह चिंतइ पडरूवं सचेयणं किं इमं जायं ।।७८।।
तो खेयरसंकेयं पुव्वकयं सुमरिऊण संतुट्ठा । अब्भुट्ठिउं ससंभममिय तं विन्नविउमारद्धा ।।७९।।
अज्ज दिणं मे सुदिणं अज्जं चिय लोयणा य मे सहला । अवयारो वि कयत्थो अज्ज तए सुभग ! दिट्ठम्मि ।।८०।।
अह जंपइ वसुदेवो एयारिससंभमस्स न हु जोग्गो । परपेसो एस जणो ता पेसत्तं कुणसु सहलं ।।८१।।
रूववियिणञ्जियमयणो समग्गनिहिनिवहसामिओ धणओ ।
पत्थइ परिणयणत्थं ससिमुहि ! तं मज्झ वयणेण ।।८२।।
ता जं अगोयरं इह मणसो वि हु मणुयजाइजायाणं । अकिलेसेणोवणयं पसयच्छि ! पडिच्छसु तमेयं ।।८३।।
तवजवपूयाईहिं कहं पि मणुयाण जे पसीयंति । ते वि हु तुह प्पसायं महंति तियसा अहो चुज्जं ।।८४।।
अह ईसि विहसिऊणं हरियंदसुया त्रियक्खणा भणइ । पिच्छह केलिकिलत्तं सुरुत्तमाणं पि मणुएसुं ।।८५।।
जइ कहवि कोउगेणं एयं पि हु तेण मह समाइट्ठं । ता कीस दूयभावो सुभग तए अणुचिओ विहिओ ।।८६।।
जो खेयरेण सिट्ठो दिट्ठो य पडम्मि एगचित्ताए । सुमिणेसु य अणुभूयो सु ञ्चिय तं नाह ! न हु अन्नो ।।८७।।
ता दूयत्ताणुगयं वयणं पि न जंपियव्वमित्ताहे । लज्जाकरं खु एयं उत्तमपुरिसाण तुम्हाणं ।।८८।।
एयं च मह गिराए विन्नवियव्वो तए कुबेरो वि । कह नाह ! सव्वह ञ्चिय अणुचियमिणमो समाइट्ठं ।।८९।।
जेसिं पडिमाओ वि हु छुयंति असुईभएण न हु मणुया । तेसि सुराणं किमवरमुचियं पूओवयाराओ ।।९०।।
ता तं पडिमारूवं पूइस्समहं महंतपूयाए । होऊण पसन्नेणं दायव्वो मह वरो उचिओ ।।९१।।
तुमए वि नाह ! करुणा कायव्वा इह जणम्मि साहीणे । अज्ज ! सयंवरमंडवमलंकरंतेण सयराहं ।।९२।।
इय तीइ वियड्ढाए विसज्जिओ जायवो गओ तत्थ । निच्छम्मदूयधम्मं मणुस्सधम्मा वि तं मुणिउं ।।९३।।
पञ्चक्खं सव्वेसिं सुराण सुइरं पसंसए एयं । सव्वंगीणाहरणं नियय दिव्वं च से देइ ।।९४।।
अह सह वसुदेवेणं आरूढो पुप्फए विमाणंमि । कणगवईइ सयंवरमंडवमुत्तरवई पत्तो ।।९५।।
उब्भियसुवन्नथंभं विचित्तवररयणतोरणसणाहं । देवंगकउल्लोयं मुत्ताहलविरइओऊलं ।।९६।।
दिसिदिसिउज्झंतागुरुपरिमलवासियनहंगणाभोगं ।कणयमणिमंचसंचय-कयदिव्वविमाणमणसंकं ।।९७।।
विशेषकम् ।।

तत्तो हरियंदेणं निवेण हट्ठेण संचिए मंचे । उवविट्ठो गयणगए मणिमयसीहासणे धणओ ।।९८।।
तस्स य पुरो निविट्ठो कुमरो नलकूबरु व्व वसुदेवो । अन्ने वि सुरसमूहा जहारिहं उचियठाणेसु ।।९९।।
तत्तो कुबेरदत्ता नामेणं नाममुद्दिया नियया । वसुदेवकरे तइया सिओयरेणं सयं ठविया ।।१००।।
अंगुलिगयाइ तीए तुल्लो धणयस्स जाव सो जाओ । ताव पयंपइ लोओ पुत्रमहो निवइकन्नाए ।।१०१।।
एईइ दंसणामयपाणे एगेण जं सरीरेण । अपहुप्पंतो काउं देहदुगं आगओ धणओ ।।१०२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थंतरम्मि डिंडीरपिंडपंडुरनियत्थवत्थजुया । परिहियमुत्ताहरणा घणसारविहत्तपत्तलया ।।१०३।।
मालइकुसुमपसाहिय-सिरोरुहा चंदकंतताडंका । खीरजलरासिदेवि व्व देहिरी मोहिरी भुवणं ।।१०४।।
आरूहिय नरविमाणं ललियवियड्ढाहिं सहयरीहिं समं । धाईकरग्गधारिय-दुव्वंकमहूयवरमाला ।।१०५।।
वज्जंतपुरस्सरपंचसद्द-रवमुहरसयलदिसिवलया । संपत्ता कणगवई सयंवरा मंडवं अणहं ।।१०६।।

कलापकम् ।।

अह ककुहाण चउन्ह वि पहूसु मंचग्गभागलीणेसु । संतेसु बंदिकलयल - कलमंगलतूरघोसेसु ।।१०७।।
नीसेसदेसभासाविसेसकुसला पगब्भतरवाणी । उद्दिसिय पुव्वनाहं पडिहारी भणिउमारद्धा ।।१०८।।
शशिमुखि ! निमेषविमुखां दृशं विधाय क्षणं निरीक्षस्व । पूर्वस्याः पतिमेनं मीनध्वजविजयिनं वपुषा ।।१०९।।
तेजस्वितेजोवधदुर्द्धरस्य प्रकाममस्य स्फुरति प्रतापे ।
शङ्के विवस्वान् शरणेच्छयेव देवः स्वयं विष्णुपदं जगाम ।।११०।। किञ्च -
मन्थारम्भविलोलदुग्धजलधिव्यासर्प्पिवीचिच्छटा,
वैशद्यच्छिदुरेण चास्य यशसा व्याप्ते त्रिलोकीतले ।
देहार्द्धं शिथिलीचकार न भयभ्रान्तेव शम्भोरुमा,
कस्तूरीतिलकं विधोरपि दधे तद्वल्लभाङ्कच्छलात् ।।१११।। तथा -
अस्य दानसमयप्रवर्त्तित-स्फीतवारिभरनिर्झरैः समम् ।
संवदन्ति समरक्षताहितस्त्रैणनेत्रजलकेलिनिम्नगाः ।।११२।।
शुभ्राण्यपि शरदभ्रात् कदलीगर्भाणि सुभ्रु ! परिधाय ।
अभ्यर्णमभ्रसरितो भज भामिनि ! शरदि सममनुना ।।११३।।
नलिनीमिवोडुनाथे श्लथादरां पार्थिवेऽत्र तां वीक्ष्य । अभिदक्षिणक्षितीशं विचक्षणा वेत्रवत्यनयत् ।।११४।।
अवदञ्च वदननिर्जितसितरुचिबिम्बामिमां प्रतीहारी । दक्षे ! दक्षिणककुभः प्रभुमेनं नय नयनविषयम् ।।११५।।
अस्य प्रतापेन दवाग्निनेव दन्दह्यमानेन विपक्षकक्षम् ।
भवन्ति चित्रं रिपुमन्दिराणि समुल्लसत्प्रौढतृणाङ्कुराणि ।।११६।। तथा -
दिग्दन्तावलदर्प्पकेलिदलन-प्रोत्तालकौतूहलाम्, दृष्ट्वा चास्य ककुब्जये गजघटां नीरेशतीरस्थिताम् ।
एकैरावणदानवञ्चनरुषा शङ्के निधावम्भसाम्; वज्रं वज्रधरः ससर्ज वडवावैश्वानरव्याजतः ।।११७।। किञ्च -
तातोद्भवा चेद् भगिनी यदि स्याद्, आत्मप्रसूता तदियं तनूजा ।
इत्थं विचार्यैष विचारचञ्चुः, पात्रेषु लक्ष्मीं प्रणयीकरोति ।।११८।।
एलालवङ्गकक्कोल-परिमलाढ्यैः प्रमोदिता पवनैः । कावेरीतीरवने रमस्व रमणं विधायामुम् ।।११९।।
अनुनयमिव मानवती वचनं तस्या न सा प्रतीयेष । पटदृष्टरूपलोभात् ससर्ज नयने परं विष्वक् ।।१२०।।
उद्दिश्य पश्चिमापतिमपश्चिमा वाग्मिनामथ द्वास्था । कान्तिकटाक्षितकनकां कनकवतीमित्यभाषिष्ट ।।१२१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपरस्यां दिशि शशिमुखि ! मुञ्चन्ति महस्विनो महांस्यपरे । तस्यामेवास्य पुनः प्रसरत्यधिकाधिकं तेजः ।।१२२।।
धारारसज्ञाद्वितयं दधाना प्राणानिलं पीतवती परेषाम् ।
अस्यासिलेखा भुजगी मुमोच शुभ्रं यशः कञ्चुकमुन्मदिष्णुः ।।१२३।। किञ्च -
यद्वाहव्रजवल्गुवल्गनभवैः प्रेङ्खोलधूलीभरै - र्व्योमप्राङ्गणचुम्बिभिर्व्यवहिते भासामधीशे स्फुटम् ।
कोकस्त्रीद्विषदङ्गनेव विधुरा कोका इव द्वेषिणो,
भेजुर्भूरिभयाकुला कुलधियो दिक्काननानि क्षणात् ।।१२४।। किञ्च -
दिग्वर्गेऽस्य यशःपटेन पिहिते देवेन दिग्वाससा, शङ्के स्वव्रतभङ्गभीरुमनसा नक्तन्दिनं स्थीयते ।
किञ्चान्यत् पुनरुक्तकुङ्कुमरजनीरागैरपि श्वेतताम्, बिभ्राणैः सिचयैरमुष्य यशसा पीताम्बरः खिद्यते ।।१२५।।
आस्तीर्णाजिनरत्ने मृद्वीकामण्डपे युताऽनेन । उपभुङ्क्ष्व सिन्धुतटनीजलशीकरवर्षिणः पवनान् ।।१२६।।
दानमिवाधमपात्रे वेत्रवती विफलमाकलय्य वचः । मुक्त्वा तदुत्तराशामथोत्तराशापतिं भेजे ।।१२७।।
कृत्वा तां तदभिमुखीं लक्ष्मीमिव नयवतः प्रतीहारी । ऊचे विचारचतुरे ! कुबेरककुभः पतिः सोऽयम् ।।१२८।।
धाराधरः सङ्गरमेदिनीषु तथाऽस्य कीलालभरं ववर्ष ।
यथा ममौ विष्टपमण्डपेऽपि कीर्त्तिर्लता न स्फुरदिन्दुपुष्पा ।।१२९।। तथा -
प्रेङ्खत्प्रतापानलदाहशङ्का-समाकुलेव द्विषतां जयश्रीः ।
रणे भुजच्छायमपायवर्जं शिश्राय चास्य क्षितिनायकस्य ।।१३०।। किञ्च -
दृष्ट्वा वेगजितारुणानुजजवं काम्बोजवाजिव्रजम्, सैन्येऽमुष्य रहस्यमात्मन इवोदीच्या दिशा देशितम् ।
सप्तैवावनियानमन्थरपदान् स्वस्मिंश्च रथ्यान् रथे, पश्यंस्तीक्ष्णकरः क्षणोति नियतं तल्लिप्सयेवोत्तराम् ।।१३१।।
घुसृणाङ्गरागसुभगा कोमलरोमाङ्कपटकृतावरणा । रजनीषु हैमनीषु प्रविश भुजाभ्यन्तरममुष्य ।।१३२।।
इति चतुरोऽपि दिगीशान् प्रदर्शयामास वेत्रवत्यस्याः । हृदये त्वन्यनिरुद्धे नैकोऽपि पदं दधे तस्याः ।।१३३।।
अह चिंतइ कणगवई हंत ! किमेयं न तं अहं सुहयं । पिच्छामि इमेसु नरेसरेसु रिक्खेसु व मयंकं ।।१३४।।
ता किं मज्झ अहन्नाइ पत्थणा तेण निप्फला विहिया । अह तेण खेयरेणं वेलविया एवमेवाहं ।।१३५।।
जइ वा न विसंवाओ नहयरवयणस्स जं [1]किलऽज्जेव । सद्धविओ स मइ ञ्चिय संपत्तो धणयदूयत्ते ।।१३६।।
इन्नाइ वियप्पंती संतप्पंती मणंमि सा बाला । दीणाणणा पलोयइ जा किर मंचं कुबेरस्स ।।१३७।।
रूवदुगेणं पिच्छइ तो तं परिसंकिया तओ चित्ते । होऊणं तयभिमुही सप्पणयं भणिउमारद्धा ।।१३८।।
हे देव ! कुणसु एगं सहलमिणं पत्थणं पणयसार ! । पसिऊण लहु पयाससु तं मह मणवंछियं दइयं ।।१३९।।
पुव्वभवाणुगएणं पमायलेसेण एस किर कोइ । जो विहिओ मणमोहो पज्जत्तं इत्तिएणिमिणा ।।१४०।।

गाथा-२११ 1. किल वेज्जेव पाठान्तरः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पणइजणवच्छलो तं पणई य इमो जणो सया तुज्झ । तुह दंसणं अमोहं इत्तियमित्तेण मह होउ ।।१४१।।
इय भणिए परितुट्ठो निहिनाहो तयणु भणइ वसुदेवं । मज्झ समप्पसु एयं कुबेरनामंकियं मुद्दं ।।१४२।।
तह विहिए सहस च्चिय जायं पयडं इमस्स नियरूवं । ओहासिंतं रूवाणि सयलनरनाहनिवहाणं ।।१४३।।
अह पुलयसेयसज्झससरभंगपकंपपमुहभावेहिं । वम्महरहस्सभूमिं पए पए पाउणिज्जंती ।।१४४।।
मालइकुसुमाणुगभसल-सेणिललिएहिं तंसवलिरेहिं । पिक्खंती तिक्खेहिं कडक्खलक्खेहिं वसुदेवं ।।१४५।।
कणगवई गहिऊणं धाइकरग्गाउ झत्ति वरमालं । भुयजुयलयं च कंठे ठवेइ लहु विन्हितणयस्स ।।१४६।।
विशेषकम् ।।

अह संतुट्ठमणेणं वेसमणेणं वहूवराणुवरिं । सह रयणकणयवुट्ठीइ पुप्फवुट्ठी विणिम्मविया ।।१४७।।
भणियं च सजलजलहर- गंभीररवेण तेण सप्पणयं । भो भो सयंवरागय-नरनाहा ! सुणह मह वयणं ।।१४८।।
हरिकुलगयणमयंक-विन्हिनरिंदस्स नंदणो दसमो । अणुओ समुद्दविजयस्स राइणो एस वसुदेवो ।।१४९।।
एसा पुण कणगवई सिरिहरियंदस्स निवइणो धूया । पुव्वभवेसु बहूसुं मह मणपणयप्पयं दइया ।।१५०।।
तेणं चिय नेहेणं सयंवरे अहमिमीइ संपत्तो । ता इत्थ उचियजोगे न विसाओ को वि कायव्वो ।।१५१।।
इय धणयवयणससहर-समुब्भवं वयणममयरसवरिसं । पाऊणं कणगवई हरियंदो सेसभूवा य ।।१५२।।
नियनियभावाणुगयं अमंदमाणंदपयरिसं पत्ता । कस्स न जायइ तोसो जाए जुग्गाण जोगम्मि ।।१५३।।
अह तेहिं जन्नजत्ता-मिलिएहि सहरिसेहिं निवईहिं । सहिओ हरियंदनिवो नवमंगलतूरतूरविओ ।।१५४।।
पत्तो वहूवरेहिं सह गयणगएण तहय धणएणं । पगुणियसमग्गवीवाह-जुग्गसामग्गिमावासं ।।१५५।।
युग्मम् ।।

तत्थत्थनाहपेरिय - वरच्छरागीयमंगलोलूलं । गुज्झगगणघणताडिय-सुरदुंदुहिमुहरनहविवरं ।।१५६।।
अभिणीयमाणनट्टं सुहिबंधुसिणेहकणयकसवट्टं । दिज्जंततुरयथट्टं पढंतसुरखयरनरभट्टं ।।१५७।।
सरिससमागमपमुइय-वरवहुमणभवणमहमहियमयणं । वित्तं विच्छड्डेणं पाणिग्गहणं निवसुयाए ।।१५८।।
विशेषकम् ।।

अह कणगवईपिउणा पूयापुव्वं विसज्जिओ धणओ । अन्ने वि महीनाहा पसाइउं पेसिया सव्वे ।।१५९।।
वसुदेवो वि हु सहिओ कणगवईरोहिणीपमुक्खाहिं । पत्तो पज्जाएणं समुद्दविजयस्स पयमूले ।।१६०।।
कालक्कमेण हरिहलहरेसु जाएसु पडुपभावेसु । निहयंमि जरासंधे सबंधवे अद्धचक्किम्मि ।।१६१।।
भरहद्धस्स य रज्जे एगच्छत्तंमि करगए जाए । उप्पन्नेसु य पज्जुन्न-संबपमुहेसु कुमरेसु ।।१६२।।
पच्छिमसमुद्दतीरे बारवइपुरीइ तियसरइयाए । हरिकुलपियामहो सो वसुदेवो विलसइ जहिच्छं ।।१६३।।
देवी वि हु कणगवई लोउत्तरपइपसायदुल्ललिया । विविहविणोयासत्ता विवित्तचित्ता सुहं वसइ ।।१६४।।
एवं च ताण चिरचित्र-पुन्नपब्भारपमुइयमणाणं । उत्तमचरियरयाणं सुबहू कालो अइक्कंतो ।।१६५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कइयाइ जायवपुरी-परिसरपरिसंठियंमि उज्जाणे । सिरिरेवयंमि भयवं समोसढो नेमिजिणनाहो ।।१६६।।
मुणियसरूवा पत्ता केसवरामा पयंतिए पहुणो । वसुदेवो वि हु राया सह कणगवईइ तत्थ गओ ।।१६७।।
विहिया य तिजयपहुणा कारुन्नमहन्नवेण धम्मकहा । विरसावसाणया तह पयासिया भवनिवासस्स ।।१६८।।
वेरग्गभावणाओ भुवणपईवेण पयडियाउ तया । संबुद्धा य अणेगे भव्वा भवसिद्धिणो तत्थ ।।१६९।।
कणगवई वि हु बाढं विरत्तचित्ता वि गेहवासाओ । नाणुन्नाया रन्ना वयाय पडिबंधबद्धेणं ।।१७०।।
तत्तो तिहुयणसामिं नमंसिऊणं गया सगेहम्मि । सुहभावभावियमणा एवं चिंतेउमारद्धा ।।१७१।।
वेरग्गभावणाओ अव्वो सव्वन्नुणा पणीयाओ । भाविज्जंताउ मणे तहत्ति सव्वाउ भासन्ति ।।१७२।। तहाहि -
अच्छउ ता अयरेहिं पलिएहिं पुव्वसयसहस्सेहिं । अन्तरियाणं भावाणं भंगुरत्तं जमिह भुवणे ।।१७३।।
जं किर गोसे दीसइ मज्झन्ने होइ तं सुमरणिज्जं । जं मज्झन्हे दिट्ठं वंझा संझाइ तस्स कहा ।।१७४।।
जइ किर चक्कहराण वि रिद्धीओ हवंति दिट्ठनट्ठाओ । ता सामन्नधणाणं धणेसु को नाम पडिबंधो ।।१७५।।
कीरउ ममत्तबुद्धी रिद्धीइ किलेसलक्खलद्धाए । जइ किंपि पणयमेसा वि दावए न उण तं जम्हा ।।१७६।।
एइ न इंतं जम्मंतराउ अणुजाइ नेव गच्छंतं । मरणभयाउ न तायइ सुसंचिया नेइ न हु सुगइं ।।१७७।।
नवरं जणयइ मोहं पाडइ कुगईइ पाणिसंदोहं । चिरपरिचिए वि विहडइ दुज्जणमित्ति व्व धी लच्छी ।।१७८।।
तह जुव्वणं पि विगुणं खणरमणीयं च सुरवइधणुं व । मयभिंभलव्व तह वि हु भमंति तयहिट्ठिया मणुया ।।१७९।।
न गणंति पुन्नपावं कुणंति अमर व्व तह अकिच्चाइं । जररक्खसीकडक्खियमिणसु त्ति मुणंति न हु मूढा ।।१८०।।
जो चेव कामिणीहिं पत्थिज्जइ सुरतरु व्व तारुन्ने । विसपायवु व्व सु ज्झिय जराहओ दूहवो होइ ।।१८१।।
किं वा परेहिं जं किर लालिज्जइ लालणासहस्सेहिं । देहस्स तस्स पिच्छह खणे खणे विसरिसं रूवं ।।१८२।।
मुद्धमहुरं सिसुत्ते तारुन्ने घणवियारविप्फारं । कंपिरखलिरं जरढत्तणम्मि इक्कं चिय सरीरं ।।१८३।।
धिद्धी कुसत्थमूढा मणिमंतरसायणेहिं देहं पि । नवणीयस्स वि पिंडं थिरयरमिच्छंति जं काउं ।।१८४।।
जइ वज्जदलमयाणि वि उत्तमपुरिसाण ताण देहाणि । काले वियलंति तओ असारदेहेसु को मोहो ।।१८५।।
तह आउयं पि एयं समयसमत्तीइ विहडिरं केण । फलिहवलयं व सक्कं संधेउं बुद्धिमइणा वि ।।१८६।।
जइ नाम तित्थनाहा न समत्थाऽणंतसत्तिजुत्ता वि । संधाउं नियमाउं ता को अन्नो खमो होही ।।१८७।।
एवं अणिच्चयाए धणजुव्वणदेहजीवियाईयं । कवलिज्जंतं पि जणो न समत्थो रक्खिउमसरणो ।।१८८।।

अनित्यभावना ।।१।।

अहह असरणं भुवणं ठिइक्खए उवणयंमि सयलं पि । केणावि [2]अकयताणं ही हीरइ हयकयंतेण ।।१८९।।
न गणइ निवं न रंकं विउसं मुक्खं कुलीणमकुलीणं । रूवस्सिणं विरूवं सबलं अबलं च जं मच्चू ।।१९०।।

2. अकृतत्राणं - बहुव्रीहिसमासोऽयम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इयरविहुरेसु सरणं भवंति जे भुयबलेण भुवणस्स । मरणभयम्मि असरणा छुहंति ते अंगुलीउ मुहे ।।१९१।।
ओवाइयाउ कीवा कुणंति देवाण मरणभयभीया । जइ ते रक्खंति जणं जमाउ ता किन्न अप्पाणं ।।१९२।।
सुहिसयणदेवगुरुयण-हरिकरिसुहडाणपिच्छिराणपुरो । हीरइ जणो असरणो कयंतसीहेण हरिणुव्व ।।१९३।।
एवं जणे असरणे सरणं धम्मो परं जिणवरुत्तो । जो सेविओ निरुंभइ मूलाउ जरमरणजालं ।।१९४।।

अशरणभावना ।।२।।

तस्स य सेवा सम्मं संभवइ भवे विरत्तचित्ताणं । वेरग्गस्स य जुग्गो भवो अवस्सं इमम्मि जओ ।।१९५।।
देवो वि होइ कीडो मणुओ वि हु तिरियजाइमणुसरइ । राया वि होइ रंको चाउव्वेओ वि चंडालो ।।१९६।।
जणओ वि होइ तणओ जणणी वि हु पणइणित्तणमुवेइ । नवनवभवपरिवत्ते काका न विडंबणा अहवा ।।१९७।।
[3]जं चउरासीलक्खा संखा जोणीण सव्वजीवाणं । पुढवाईणं चउन्हं पत्तेयं सत्त सत्तेव ।।१९८।।
दस पत्तेयतरूणं चउदसलक्खा हवंति इयरेसु । विगलिंदियाण दो दो चउरो पंचिंदितिरियाणं ।।१९९।।
चउरो चउरो नारयसुरेसु मणुयाण चउदस हवंति । संपिंडिया उ सव्वे चुलसी लक्खाओ जोणीणं ।।२००।।

एवं च -

तन्नत्थि इत्थ लोए खित्तं केसग्गभागमित्तं पि । जत्थ न जाओ न मओ अणंतखुत्तो इमो जीवो ।।२०१।।
कित्तिमसंबंधेहि भवम्मि इय नाडयाभिणयतुले । कह जुत्तो पडिबंधो इक्कसरूवस्स जीवस्स ।।२०२।।

भवभावना ।।३।।

इक्कु ञ्चिय उप्पज्जइ इक्को य विवज्जए इमो जीवो । इक्को बंधइ कम्मं भुंजइ इक्को फलं तस्स ।।२०३।।
जह तेण विढत्ताणं वित्ताण हवंति हंत भुत्तारो । तह जइ पावाणं पि हु ता ते नणु बंधवा चेव ।।२०४।।
किं तु इमो दुव्विसहं विसहइ भवचारए दुहं एगो । दंसणलग्गणया इव दूरि ञ्चिय ठंति ते सयणा ।।२०५।।
इय जइ सुहदुक्खाणं इक्कु ञ्चिय भायणं भवइ जीवो । ता परलोगहिए वि हु इक्कु ञ्चिय किन्न उज्जमइ ।।२०६।।

एकत्वभावना ।।४।।

अन्नन्नदेसजाया अन्नन्ननियाणवड्ढिया सयणा । अन्नन्नरूववेसा जुत्तं जीवा उ जं अन्ने ।।२०७।।
समगं चिय जं जायं समगं चिय वड्ढियं ठियं समयं । तं देहं पि हु जीवाउ नूणमन्नं चिय तहाहि ।।२०८।।
जीवो अणाइनिहणो नाणी तह दंसणी अरूवी य । देहं पुणो अणिच्चं जडं च मुत्तं च कह नन्नं ।।२०९।।
तम्हा विसरिसरूवेसु सयणधणदेहमाइवत्थूसु । मुंचसु रे ! पडिबंधं संसारनिबंधणं जीव ! ।।२१०।।

अन्यत्वभावना ।।५।।

तह जीव ! सुइत्तगयं सया वि गव्वं समुव्वहसि हियए । वससि य असुइसरूवे देहंमि कहं न मूढो सि ।।२११।।

---

3. तुला - श्लोक-१९८-१९९-२०० । जीवविचारप्रकरणे ।। - गा. ४५-४६-४७ दृश्यतां ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न य असुइत्तं देहस्स निम्मिमित्तं तहाहि किर एयं । सुक्काओ सोणियाओ उप्पज्जइ असुइरूवाओ ।।२१२।।
तह परिवड्ढइ जणणीआहाररसेहिं असुइरूवेहिं । होइ अउ च्चिय असुई कज्जं नणु कारणाणुगुणं ।।२१३।।
जइ पुण न होइ असुई देहो ता कह सुईण वत्थूणं । संपक्कमित्तउ च्चिय असुइत्तं जणयइ तहाहि ।।२१४।।
अवरअसणपाणतंबोल - जक्खकद्दमपसूणवत्थाइ । खणमित्तसंगमेण वि इमस्स मलरूवयमुविंति ।।२१५।।
एवं ठिए वि मणनयणमोहणं जं इमं सरागाणं । तत्थ अनिव्वेउ च्चिय उवाहिघडणेसु नणु हेऊ ।।२१६।।
जं पुण उवाहिजोगेण कीरए किर इमस्स वि सुइत्तं । तं वञ्झोहरअहिवासणं व नणु हासकरमेव ।।२१७।।
ता असुइणा वि इमिणा अज्जेयव्वो सुई सया धम्मो । जेणज्जिएण जीवो जुज्जइ न पुणो सरीरेणं ।।२१८।।

अशुचिभावना ।।६।।

अज्जिज्जइ पुण धम्मो आसवदाराण रोहओ सम्मं । रुद्धेसु य जोगेसुं आसवरोहो धुवो होइ ।।२१९।।
मणवयणकायजोगा अनिरुद्धा कम्ममसुहमज्जंति । असुहेण य कम्मेणं भमइ भवे भीसणे जीवो ।।२२०।।

आश्रवभावना ।।७।।

जोगाणं च निरोहो होइ भवत्थाण इत्तिएणेव । जं अट्टरुद्दचाएण धम्मसुक्केसु विणिओगो ।।२२१।।
रुज्झंति अट्टरुद्दा नियमेणं संवरेण विहिएण । सो पुण विवक्खघडणेण भावसत्तूण संघडइ ।।२२२।। तहाहि -
खंतीइ कोहजोहं निहणसु तह मद्दवेण माणं च । मायं च अज्जवेणं लोभं संतोससुहडेण ।।२२३।।
संजमबलेण विसए गुत्तीहिं दलिज्ज दुट्ठजोगे य । सज्झाउज्जोगेण य पमायपसरं निरुंभेसु ।।२२४।।
विरईइ अविरइं पुण मिच्छत्तं दंसणेण विमलेण । इय कयसंवरजोगो न बंधसे अहिणवं कम्मं ।।२२५।।

संवरभावना ।।८।।

नवकम्मपुग्गलाणं अग्गहणे संवरट्ठिओ जीवो । निज्जरइ चिरचियाइं कम्माइं तवेण तिव्वेणं ।।२२६।।
जह विउलम्मि तडागे रुद्धेसुं सयलजलपवेसेसुं । पुव्वपविट्ठं सलिलं सोसिज्जइ तवणतावेणं ।।२२७।।
तह जीवसरवरम्मी आसवदारेसु संनिरुद्धेसु । सोसिज्जइ कम्मजलं पुव्वपविट्ठं गुरुतवेणं ।।२२८।।
जह मलिणं पि हु कणयं दहणपओगेण निम्मलं होइ । तह पावपडलमलिणो जीवो वि तवेण तिव्वेणं ।।२२९।।
मलिणीकयं पि गयणं घणेहिं पवणे जहा पहासेइ । एमेव य जीवं पि हु अनियाणकडं तवोकम्मं ।।२३०।।
जह पंकिलं महीयलममलं सारयदिवायरो कुणइ । दुज्झाणपंककलुसं जीवं एमेव य तवो वि ।।२३१।।
एवं च सकामाए विणिज्जराए विलीणकम्ममले । जीवे सहावविमलं केवलतेयं समुल्लसइ ।।२३२।।

निर्जराभावना ।।९।।

दुव्वारजीववीरिय-मुसुमूरणपञ्चलाणकम्माणं ।निम्महणम्मि उवाओ जिणधम्मि च्चिय तवोऽभिहिओ।।२३३।।
सुट्ठु इमो धम्मु च्चिय अक्खाओ अहव जिणवरिंदेहिं । सव्वविरयाण दसहा बारसहा देसविरयाणं ।।२३४।।
तहाहि -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[4]खंती य मद्दवज्जव-मुत्तीतवसंजमे य बोधव्वे । सच्चं सोयं आकिंचणं च बंभं च जइधम्मो ।।२३५।।

[5]पंच य अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं च हुंति तिन्नेव । सिक्खावयाणि चउरो इय गिहिधम्मो दुवालसहा ।।२३६।।

जइ किर इमो न हुंतो ता को मिच्छत्तपिच्छले भुवणे । भव्वाण भवावडनिवडिराण आलंबणं दिंतो ।।२३७।।

जणउ व्व अवज्झाणं ताणं धम्मो दुहत्तसत्ताणं । भाणु व्व पयत्थाणं पयासओ एस तत्ताणं ।।२३८।।

दीवु व्व तमंधाणं अन्नाणंधाण लोयणं धम्मो । विज्जु व्व आउराणं एस गई भावरोगीणं ।।२३९।।

कम्मरिणियाण धम्मो रयणनिहाणु व्व पायडो भुवणे । वणदवतवियाण सरोवरं व सरणं कसाईणं ।।२४०।।

बंधु व्व अबंधूणं तह य अनाहाण एस किर नाहो । उक्कंठियाण पियदंसणं व निव्वुइकरो धम्मो ।।२४१।।

जेहिं पुरा जम्मजरा-मरणजलो रोगसोगतिमिमगरो । उत्तिन्नो भवजलही तेहिं धुवं धम्मपोएण ।।२४२।।

इन्हिं पि तरंति तहा भविस्ससमए वि तह तरिस्संति । ता सुट्ठु इमो धम्मो अक्खाओ खीणमोहेहिं ।।२४३।।

धर्म्मस्वाख्यातता ।।१०।।

धम्मेण विणा जीवा सकम्मपरिणामलहरिहीरंता । असमंजसमिहलोए विविहायारे परियडंति ।।२४४।।

तहाहि -

कइया वि अहोमुहगुरु-सरावसंठाणसंठियम्मि इमे । जायंति अहोलोए सत्तविहे विविहरूवधरा ।।२४५।।

कइया वि तहेव विसाल-थालरूवम्मि तिरियलोयम्मि ।
विविहायारंमि भमन्ति कम्मनिम्महियमहिमाणो ।।२४६।।

कइया वि पुणो मल्लग-समुत्सयाभंमि उड्ढलोगम्मि । सामन्नेणं पनरसरूवंमि वि संकमंति इमे ।।२४७।।

तिरियपसारियचरणो कडियडविन्नत्थहत्थजुयलो य । जारिसओ किर पुरिसो लोओ वि हु तारिसो एसो ।।२४८।।

पंचत्थिकायमइओ चउदसरज्जुप्पमाणओ उड्ढं । निम्मविओ न हु केण वि नो वा केणावि उद्धरिओ ।।२४९।।

किं तु सयंसिद्ध च्चिय सासयरूवो पइट्ठिओ गयणे । परिवेढिओ अलोगेण एस लोगो जिणुद्दिट्ठो ।।२५०।।

एयंमि रूविदव्वा जे केई ते समग्गजीवाणं । आहाराइसरूवेण परिणयाणंतसो सव्वे ।।२५१।।

ता इत्तियमित्तेहि वि न गया जे पुग्गलेहिं किल तित्तिं । एगभविएहिं ते परिमिएहिं तिप्पंतु कह सत्ता ।।२५२।।

लोकभावना ।।११।।

ता मुत्तूण ममत्तं होउं सव्वत्थ जीव ! समचित्तो । गिन्ह फलं दुलहाए कहंपि लद्धाइ बोहीए ।।२५३।।

जेण अणंताणंतं कालं निवसंति ता निगोएसु । जीवा पसुत्तमत्त व्व मोहिया मोहमइराए ।।२५४।।

कम्मं खविऊण अकाम-निज्जराए य किञ्चिरं पि तओ । संववहाररूवरासिं जीवा पविसंति तत्थ वि य ।।२५५।।

---

4. तुला - नवतत्त्व प्रकरणे । - गा. २९ दृश्यतां ।।

5. तुला - सम्मत्तमूलमणुवयपणगं तिन्नि उ गुणव्वयाइं च । सिक्खावयाइं चउरो बारसहा होइ गिहिधम्मो ।।१।।
- दर्शन शु. प्र. गा. ६२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुढवीजलानिलानल-पत्तेयाणंततरुसु विगलेसु । ठाउं पणिंदियत्तं लहंति कहकहवि तुडिवसओ ।।२५६।।
तत्थ वि तिरिनरयाइसु भवेसु भमिराण हंत सत्ताणं । सिवमंदिरनिस्सेणी दुल्लहा इक्कारसंगीयं ।।२५७।।
माणुस्सखित्तजाई-कुलरूवारुग्गमाउयं बुद्धी । सम[व]णुग्गहसद्धा संजमो य इय समयपन्नत्ता ।।२५८।।

बोधिभावना ।।१२।।

एमाय उत्तरुत्तरदुलहा वि हु पुव्वपुन्नजोगेणं । संघडिया किंतूणा मह ताव तहाहि माणुस्सं ।।२५९।।
खित्तं च आरियमिणं जाइकुला मह मयंककरविमला । अप्पडिहयपंचिंदिय-पडिपुन्नं रूवमवि ताव ।।२६०।।
आरुग्गं पि समग्गं आउगुणो वि हु जुगाणुमाणेण । मग्गाणुगामिणी मह बुद्धी वि हु अत्थि पाएणं ।।२६१।।
अरिहा अरिट्ठनेमी भयवं धम्मोवएसओ सुगुरु । सद्धा वि बंधुरा मह तेण पणीएसु भावेसु ।।२६२।।
तप्पायपउममूले पडिवन्ना तह य देसविरई वि । सव्वविरई उ रन्नो अणणुन्नाए न संपन्ना ।।२६३।।
धन्नाउ ताउ हरिकुलतिलयस्स इमस्स चेव पत्तीउ । पयमूले जयगुरुणो जाउ पवन्नाउ सामन्नं ।।२६४।।
तह मह सुन्हाओ वि हु रुप्पिणिपमुहाउ सलहणिज्जाओ । उभयं पि जाण जायं इंदियसुक्खं च मुक्खं च ।।२६५।।
जइ मं न निबिडपडिबंधबंधुरो धारए धरानाहो । ता इत्तियदियहेहिं अहं पि नणु हुज्ज कयकिच्चा ।।२६६।।
पडिबंधु च्चिय जीवाण कारणं गुरुभवुब्भवदुहाणं । इत्तु च्चिय सप्पुरिसा पढमं पि पडंति न इमम्मि ।।२६७।।
धिद्धी पडिबद्धाए तुच्छेसु मए इमेसु कामेसु । सासयसुहिक्कहेऊ अवगणिओ संजमुज्जोगो ।।२६८।।
अवि भारसंकलाओ तोडिज्जंती तडत्ति बलिएहिं । अणुमित्तमणपसत्तो न उणो नेहस्स तंतू वि ।।२६९।।
अहवा इमं पि कीवाण चेव जीवाण दुक्करं मन्ने । रायमईइ अमूढो मह धम्मगुरु इहाहरणं ।।२७०।।
ता कीवसमुचियमिणं मुंचसु रे जीव ! तं पि हु ममत्तं । उत्तमपुरिसाइन्नं संगच्छायं समल्लियसु ।।२७१।।
परिचत्तम्मि य संगे चत्ताणि भवुब्भवाणि दुक्खाणि । संजोगमूलिया जं दुहदंदोलीह जीवाणं ।।२७२।।
तित्ती य दिव्वसुहेसुं जा न हु सा माणुसेसु कह होही । माणससरम्मि तिसिओ कह तिप्पउ छिल्लरम्मि नरो ।।२७३।।
ता पज्जत्तं इत्तो धणपरियणसयणपिययमाईहिं । सरणं मह नेमिजिणो निस्संगसिरोमणी भयवं ।।२७४।।

कस्स वि न अप्पणा हं ममावि न हु को वि अप्पणो भुवणे ।
मुत्तूण नाणदंसण-चरणाणि विमुत्तिमग्गाणि ।।२७५।।

इय सा विसुद्धिपयरिसमारोहंती कमेण झाणस्स । काउं अपुव्वकरणं आरूढा खवगसेढीए ।।२७६।।
अह पढमं भेयदुगं सुक्कज्झाणस्स लंघिउं झत्ति । घाइयघाइचउक्का कणगवई केवलं पत्ता ।।२७७।।
तो देवदुंदुहीणं गयणम्मि वियंभिओ महानाओ । जाओ जयजयसद्दो समगं सुरकुसुमवुट्ठीए ।।२७८।।
तत्तो विइन्नवेसा सुरेहिं जिणपायपउममुवणीया । तिपयाहिणिऊण जिणं 'तित्थस्स नमु' त्ति जंपेइ ।।२७९।।
नाउं च सेसमाउं सुसच्छे थंडिले निहियदेहा मासियभत्तेण इमा सिवमयलमणुत्तरं पत्ता ।।२८०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति कनकवतीयं प्राप्य भर्त्तुः प्रसादादनुपमसुखलक्ष्मीमैहिकीमेकरूपाम् ।
व्रतनियमसमुत्थां क्लेशचर्यां विनैव, प्रसरदमलभावा ज्ञानमाप्ता शिवं च ।।२८१।। एवं च -

दानं यन्निर्निदानं यदपि शशिकरश्रेणिलीलं च शीलम्,
यद्दुर्वारान्तरारिव्रजविजयविधौ बद्धकक्षं तपश्च ।
यच्चान्यत्रित्यनैमित्तिकविषयविभागार्प्पितं कृत्यजातम् ।
निर्व्याजं सेव्यमानं भजति सफलतां भावनाभावितं तत् ।।२८२।। किञ्च -

वित्तायत्तो दानधर्म्मोऽथ शीलं चित्तायत्तं क्लेशसाध्यं तपश्च ।
आयासायत्तं च नित्यादिकृत्यं स्वायत्तोऽयं भावधर्म्मस्तु रम्यः ।।२८३।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीमद**भयदेव**सूरिपट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र**-सूरिशिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**सूरिविरचिते **हितो**-**पदेशामृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीये मूलद्वारे चतुर्थं **भावना**-प्रतिद्वारं समाप्तमिति भद्रम् ।।२११।। श्रीः ।।

साम्प्रतं पूर्वव्याख्यातं दानादिद्वारचतुष्टयमेव निगमयन्नाह -

एसो चउप्पयारो धम्मो दाणाइओ भुवणसारो ।
आराहिओ निरुंभइ, दाराणि चउन्ह वि गईण ।।२१२।।

एष पूर्वोदितस्वरूपो **दानादिधर्म्मश्चतुष्प्रकारो**ऽपि सम्यग्**आराधितश्चतसृणामपि गतीनां द्वाराणि निरुणद्धि** । **'भवोच्छित्तिनिमित्तत्वाद् दानादिधर्माराधनस्य'**, अत एवायं **भुवनसार** इति ।।२१२।।

एवं दानादिद्वाराणि निगमय्योत्तरं विनयद्वारं प्रस्तावयन्नाह -

कह पुण इमो मुणिज्जइ ? गुरूवएसेण, ते कहं दिंति ? ।
विणएण, सेवणिज्जो, तम्हा एयत्थिणा विणओ ।।२१३।।

असौ तु दानादिधर्म्मः **कथं ज्ञायत** ? इत्याह - **'गुरूवएसेणं'** गुरूणां धर्माचार्याणामुपदेशेन । अथ **कथं** ते गुरवस्तदुपदेशं **ददति ?** तदाह - **विनयेन** वक्ष्यमाणलक्षणेन सम्यगाराधिताः । एवं च सति **एतदर्थिना** धर्माभिकाङ्क्षिणा नियतं **विनयः सेवनीयो** भजनीय इति ।।२१३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनयस्यैव निरुक्तमाह -

जम्हा विणयइ कम्मं अट्ठविहं चाउरंतमुक्खाय ।
तम्हा उ वयंति विऊ विणउ त्ति विलीणसंसारा ।।२१४।।

[1]**यस्मादष्टविधं** ज्ञानावरणादिरूपं **कर्म विशेषेण नयति** प्रापयत्यन्तमिति शेषः । तथा **चतुरन्तः** संसारस्तन्मोक्षाय च घटत इति गम्यम् । **तस्मा**देनं **विनय इति विदः** सर्वविदो **वदन्ति** । किम्भूताः ? **विलीनसंसाराः** समुच्छिन्नभवास्तस्मादेव विनयसेवनाद् यतो युक्तियुक्तं विनयस्य प्रागुक्तं निरुक्तम् ।।२१४।।

विनयस्यैव भेदप्रभेदान् दर्शयति -

लोइयलोउत्तरभेयओ दुहा तत्थ लोइओ विणओ ।
लोओवयारभयअत्थकामरूवेहिं चउभेओ ।।२१५।।

स चायं विनयः सामान्येन **लौकिकलोकोत्तरभेदाद् द्विधा । तत्रापि लौकिको विनयो लोकोपचार-भय-अर्थ-कामरूपैश्चतुर्भिर्भेदै**र्भवति ।।२१५।। लोकोपचारादीनेव लौकिक-विनयभेदान् प्रतिपदं व्याचष्टे -

तदुचियअब्भुट्ठाणं अंजलिबंधो य आसणपयाणं ।
देवातिहीण पूया इय एसो लोइओ विणओ ।।२१६।।

इत्येष लौकिकविनयो लोकोपचारलक्षणः प्रथमो भेदः । यत् किम्? यत् **तदुचितानां** विनयार्हाणां गुर्वादीनां दूरादपि दर्शनेऽभ्युत्थानम् सम्मुखमुत्थानम् । मिथो दृष्टिमिलने **चाञ्जलि-बन्धः** करकमलकुड्मलीकरणं शिरसि निधानं च । समीपोपगमने **चासनप्रदानं** स्वयं तदुचित-सनढौकनम् । उपलक्षणं चैतत् सम्मुखगमनभक्तिवन्दनपर्युपासनानुगमादीनाम् । उक्तं च -

[1]**अभ्युत्थानं तदालोकेऽभियानं च तदागमे ।**
शिरस्यञ्जलिसंश्लेषः स्वयमासनढौकनम् ।।१।।

गाथा-२१४ 1. **विनीयते** - क्षिप्यते अष्टप्रकारं कर्मानेनेति विनयः । - प्रव. सा. गा. २७१ वृत्तौ, धर्म सं. गा. १२५ वृत्तौ ।। विनीयते तेन तस्मिन् वा विनयः । तत्त्वा. स्वो. भा. ९/२३ ।।

विनयशब्दनिर्भेदप्रदर्शनायाह - विनीयते-क्षिप्यतेऽनेनाष्टप्रकारं कर्मेति विनयः । पचाद्यचि करणसाधनम् । विनीयते चास्मिन् सति ज्ञानावरणादिरजोराशिरिति विनयः । अधिकरणसाधने च । - तत्त्वा. सिद्ध. टीका ९/२३ ।।

गाथा-२१६ 1. अभ्युत्थानं ससम्भ्रममासनत्यागः तदालोके गुरूणामालोकने सति, अभियानमभिमुखं गमनं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आसनाभिग्रहो भक्त्या वन्दना पर्युपासनम् ।
तद्याने ऽनुगमश्चेति प्रतिपत्तिरियं गुरोः ।।२।। [योगशास्त्र प्र. ३ श्लो. १२५-१२६]

तथा **देवानां** समुचितेष्टादीनां **अतिथीनां** च प्रागुक्तनिरुक्तानां **पूजा** समुचितः पूजोपचार इत्येष **लोकोपचारविनयः ।।२१६।।**

द्वितीयं भयविनयमाह -

चोराभिमराईसुं अंजलिबंधाइओ उ भयविणओ ।

अयं तु भयविनयः, **यच्चोराभिमरादिषु** तस्करघातकादिषु समुपस्थितेषु तद्भयेन धनप्राणादि-रक्षार्थं वाञ्जलिबन्धप्रणामकरणशरणप्रवेशादिकं विधीयते । अर्थविनयमाह -

अत्थविणओ य पत्थिवपभिइसु पडिवत्तिकरणं जं ।।२१७।।

अर्थविनयश्च पार्थिवोत्तमर्णप्रभृतिषु अलब्धलाभाय लब्धस्य च परिपालनाय **यत् प्रतिपत्तिकरणं** गौरवख्यापनम् ।।२१७।।

कामविनयमाह -

कामविणओ य कामिणिजणम्मि कामीण चाडुपभिईओ ।
एसो लोइयविणओ चउप्पयारो समक्खाओ ।।२१८।।

कामविनयश्च अनङ्गक्रीडारससुखनिर्वाहार्थं **कामिनीजने** ललनालोके **कामिनां** कामुकानां **चाटुप्रभृतिकः,** प्रकृतिसुकुमारत्वात् स्मरव्यापारस्य । यदाहुः कामुकाः -

नूमंति जे पहुत्तं कुवियं दास व्व जे पसायंति ।
ति च्चिय पिया पियाणं सेसा सामि च्चिय वराया ।।१।। [ ]

इत्येष **चतुष्प्रकारो लौकिकविनयः समाख्यातः** । लौकिकत्वं चास्य लोके व्याप्रियमाण-

---

तदागमे गुर्वागमने, शिरसि मस्तके गुरुदर्शनसमकालमञ्जलि-संश्लेषः करकोरककरणं 'नमो खमासमणाणं' ति वचनोच्चारपूर्वकम्, स्वयमित्यात्मना न तु परप्रेषणेन आसनढौकनमासनसन्निधापनम् ।।

आसनाभिग्रहः आसन उपविष्टेषु गुरुषु स्वयमासितव्यमित्यभिग्रहः आसनाभिग्रहः, भक्त्या भक्तिपूर्वकं वन्दना पञ्चविंशत्यावश्यकविशुद्धं वन्दनकम्, स्थानस्थितानां च गमनादिव्याकुलत्वाभावे पर्य्युपासनं सेवा, तेषां गुरूणां याने गमने ऽनुगमनं पृष्ठतः कतिपयपदान्यनुसरणम् । इयं प्रतिपत्तिरूपाचारविनयरूपा गुरोर्धर्माचार्यस्य ।।

- योग. शा. प्र. ३ श्लो. १२५-१२६ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वादेव ।।२१८।।

साम्प्रतं लोकोत्तरविनयमाह -

लोउत्तरविणओ पुण पंचविगप्पो समासओ ताव ।
नाणंमि दंसणमि चरणंमि तवम्मि उवयारे ।।२१९।।

लोकोत्तरविनयः पुनः समासतः सङ्क्षेपतस्तावत् **पञ्चविकल्पः** पञ्चप्रकारः । विस्तरतस्तु

गाथा-२१९ 1. **तुला** - 'विणए त्ति विनीयते - क्षिप्यते अष्टप्रकारं कर्मानेनेति विनयः, स च ज्ञान-दर्शनादिभेदात् सप्तधा, यदाहुः -

"[1]नाणे-दंसणेचरणे-मण-वय-काओवयारिओ विणओ । नाणे पंचवयारो मइनाणाईण सद्दहणं ।।१।।

[2]भत्ती तह बहुमाणो तद्दिट्ठत्थाण सम्मभावणया । विहिगहणब्भासोऽवि य एसो विणओ जिणाभिहिओ ।।२।।"

शुश्रूषणादिकश्च दर्शनविनयः, यदाहुः -

"[3]सुस्सूसणा अणासायणा य विणओ उ दंसणे दुविहो । दंसणगुणाहिएसुं किज्जइ सुस्सूसणाविणओ ।।१।। सक्कारब्भुट्ठाणं संमाणासणअभिग्गहो तह य । आसणअणुप्पयाणं किइकम्मं अंजलिग्गहो य ।।२।। इंतस्सऽणुगच्छणया ठिअस्स तह पज्जुवासणा भणिया । गच्छंताणुव्वयणं एसो सुस्सूसणाविणओ ।।३।।"

सत्कारः-स्तवनवन्दनादि, अभ्युत्थानं-विनयार्हस्य दर्शनादेवासनत्यजनम्, सन्मानो-वस्त्रपात्रादिभिः पूजनम्, आसनाभिग्रहः पुनस्तिष्ठत एव गुरोरादरेणा-सनानयनपूर्वकमत्रोपविशतेति भणनम्, आसनानुप्रदानं - स्थानात्स्थानान्तरे आसनस्य सञ्चारणम्, कृतिकर्म-वन्दनकम्, अञ्जलिग्रहः-अञ्जलिकरणम्, शेषं प्रकटम्,

अनाशातनाविनयः पुनः पञ्चदशविधः, तस्य चेदं स्वरूपम् -

"[4]तित्थयर-धम्म-आयरिअ-वायगे थेर-कुल-गणे-संघे । संभोइअ-किरियाए मइनाणाईण य तहेव" ।।१।।

साम्भोगिकाः - एकसामाचारिकाः । क्रिया-आस्तिकता ।

"[5]कायव्वा पुण भत्ती बहुमाणो तह य वन्नवाओ य । अरहंतमाइयाणं केवलनाणावसाणाणं ।।१।।

भक्तिः - बाह्या प्रतिपत्तिः, बहुमानः - आन्तरः प्रीतिविशेषः, वर्णवादो-गुणग्रहणम्, चारित्रविनयः पुनः -

"[6]सामाइयाइचरणस्स सद्दहाणं तहेव कायेणं । संफासणं परूवणमह पुरओ सव्वसत्ताणं ।।१।।" तथा -

---

१ - छाया - ज्ञाने दर्शने चारित्रे मनसि वाचि काये औपचारिको विनयः । ज्ञाने पञ्चप्रकारो मतिज्ञानादीनां श्रद्धानम् ।।१।।

२ - छाया - भक्तिस्तथा बहुमानः तदृष्टार्थानां सम्यक्त्वभावना । विधिग्रहणमभ्यासोऽपि चैष विनयो जिनाभिहितः ।।२।।

३ - छाया - शुश्रूषणा अनाशातना च विनयस्तु दर्शने द्विविधः । दर्शनगुणाधिकेषु क्रियते शुश्रूषणाविनयः ।।१।।
सत्कारोऽभ्युत्थानं सन्मानमासनाभिग्रहश्च तथा । आसनानुप्रदानं कृतिकर्माञ्जलिग्रहश्च ।।२।।
आयातोऽनुगमनं स्थितस्य तथा पर्युपासनं भणितम् । व्रजतोऽनुव्रजनमेष शुश्रूषणाविनयः ।।३।।

४ - छाया - तीर्थंकरे धर्मे आचार्ये वाचके स्थविरे कुले गणे सङ्घे । साम्भोगिके क्रियावति मतिज्ञानादीनां च तथैव ।।१।।

५ - छाया - कर्त्तव्या पुनर्भक्तिर्बहुमानस्तथा वर्णवादश्च । अर्हदादीनां केवलज्ञानावसानानाम् ।।१।।

६ - छाया - सामायिकादिचारित्राणां श्रद्धानं तथैव कायेन । संस्पर्शनं अथ च सर्वसत्त्वानां पुरतः प्ररूपणम् ।।१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थान्तरेषु बहुधाभिधानात् । पञ्चधात्वमेव व्यनक्ति **नाणंमि** ज्ञानविषये, **दंसणम्मि** दर्शनविषये, **चरणम्मि** चारित्रे, **तवम्मि** तपोविषये, **उवयारे** उपचारेगोचरो विनय इति ।।२१९।।

"[७]मण-वय-काइयविणओ आयरियाईण सव्वकालम्मि । अकुसलमणाइरोहो कुसलाणमुदीरणं तह य ।।२।।"

तथा उपचारेण - सुखकारिक्रियाविशेषेण निर्वृत्त औपचारिकः स चासौ विनयश्च औपचारिकविनयः, स च सप्तधा-

"[८]अब्भासऽच्छणं छंदाणुवत्तणं कयपडिकिई तह य । कारिअनिमित्तकरणं दुक्खत्तगवेसणं तह य ।।१।।

[९]तह देसकालजाणण सव्वत्थेसु तह य अणुमई भणिया । उवयारिओ उ विणओ एसो भणिओ समासेणं ।।२।।"

तत्र 'अब्भासऽच्छणं'ति सूत्राद्यर्थिना नित्यमेवाचार्यस्याभ्यासे - प्रत्यासन्ने स्थातव्यम्, तथा छन्दः - अभिप्रायो गुरूणामनुवर्तनीयः, तथा कृतप्रतिकृतिः - कृते भक्तादिना उपचारे प्रसन्ना गुरवः प्रतिकृतिं-प्रत्युपकारं सूत्रार्थादिदानतो मे करिष्यन्ति, न नामेकैव निर्जरेति भक्तादिदाने गुरोर्यतितव्यम्, तथा कार्यनिमित्तकारणम्, कार्यं-श्रुतप्रापणादिकम्, निमित्तं-हेतुं कृत्वा श्रुतं प्रापितोऽहमनेनेति हेतोरित्यर्थः, विशेषेण तस्य विनये वर्तितव्यम्, तदनुष्ठानं च कर्तव्यम्, यद्वाकारितेन-सम्यक्सूत्रार्थमध्यापितेन पुनस्तन्निमित्तं करणं-विनयस्य विधानं कारितनिमित्तकारणम्, गुरुणा सम्यक् सूत्रादिकं पाठितेन विनेयेन विशेषतो विनये वर्तितव्यं तदुक्तार्थानुष्ठानं च कर्त्तव्यमिति भावः, तथा दुःखार्त्तस्य दुःखपीडितस्य गवेषणम् - औषधादिना प्रतिजागरणं दुःखार्त्तगवेषणम्, पीडितस्योपकारकरणमित्यर्थः, तथा देशकालज्ञानमवसरज्ञतेत्यर्थः, तथा सर्वार्थेषु गुरुविषयेष्वनुमतिः - आनुकूल्यम् ।।

- प्रव. सा. गा. २७१ टीकायाम् ।। धर्म सं. तृतीयाधिकारे गा. १२५ वृत्तौ ।।

अथवा द्विपञ्चाशद्विधो विनयो यथा -

"तित्थयर १ सिद्ध २ कुल ३ गण ४ संघ ५ किरिअ ६ धम्म ७ नाण ८ नाणीणं ९ ।
आयरिअ १० थेरु ११ वज्झाय १२ गणीणं १३ तेरस पयाइं ।।१।।
अणासायणा य १ भत्ती २ बहुमाणो ३ वण्णवायसंजलणा ४ ।
तित्थयराइ तेरस, चउग्गुणा हुंति बावन्ना ।।२।।" [दश वै. नि. ३२५-६, प्रवचनसारोद्धार-५४९-५५०] ।

- धर्म सं. तृतीयाधिकारे गा. १२५ वृत्तौ ।।

व्यवहारभाष्ये तु ज्ञान-दर्शन-चारित्र-प्रतिरूपभेदाच्चतुर्धोक्तस्तथा च तद्ग्रन्थः -

"पडिरूवग्गहणेणं विणओ खलु सुचिओ चउविगप्पो नाणे दंसणे चरणे पडिरूवचउत्थओ होइ" त्ति । तत्र कालेऽध्ययनादिरष्टविधो ज्ञानविनयः, निशङ्कितादिरष्टविधो दर्शनविनयः, समितिगुप्तिभेदादष्टविधश्चारित्रविनयः, कायिको वाचिको मानसिक औपचारिकश्चेति प्रतिरूपविनयश्चतुर्विधः । आह च -

"पडिरूवो खलु विणओ कायवइमणे तहेव उवयारे । अट्ठ चउविह दुविहो सत्तविह परूवणा तस्स" ।।१।। त्ति ।

कायिकोऽष्टधा यथा -

"अब्भुट्ठाणं अंजली आसयदाणं अभिग्गह किईअ सुस्सूसणा य अभिगच्छणा य संसाहणा चेव ।"

---

७ - छाया - मनोवाक्कायविनय आचार्यादीनां सर्वकाले । अकुशलमनआदिरोधः कुशलानां तथोदीरणं च ।।२।।

८ - छाया - अभ्यासस्थानं छन्दोऽनुवर्त्तनं कृतप्रतिकृतिस्तथा च । कारितनिमित्तकरणं दुःखार्त्तगवेषणं च तथा ।।१।।

९ - छाया - तथा देशकालज्ञानं तथा सर्वार्थेष्वनुमतिर्भणिता । औपचारिकस्तु विनय एष भणितः समासेन ।।२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानादिविनयानेव प्रतिपदं व्याचष्टे -

सो होइ नाणविणओ जं सम्मं नाणपुव्विया किरिया ।

स भवति ज्ञानविनयः, यत् सम्यक्ज्ञानपूर्विका क्रिया । ज्ञानस्य च सम्यक्त्वं सङ्क्षेपाद् विस्तरतो वा जिनोक्ततत्त्वानां यथावदवबोधैः, तत्पूर्विका च क्रिया दशविधचक्रवालसामाचारी-रूपा, सैव च सम्यगासेविता ज्ञानविनयः ।

दर्शनविनयमाह -

दंसणविणओ पुण जिणवरुत्ततत्ताण सद्दहणं ।।२२०।।

तेषामेव जिनवरोक्तानां सर्वज्ञोपज्ञानां जीवादिपदार्थानां यत् रुचिरूपं श्रद्धानं तथेति प्रत्ययः स दर्शनविनयः ।।२२०।।

चारित्रतपोविनयावाह -

चरणे तवम्मि य इमो विणओ तेसिं जहुत्तकरणं जं ।

चारित्रे महाव्रतसमितिगुप्तिक्षान्त्यादिरूपे वक्ष्यमाणलक्षणे । **तपसि** बाह्याभ्यन्तरभेदभिन्ने पूर्वोपवर्णितस्वरूपे । **अयमेव विनयः - तयो**रुभयोरपि **जिनोदितेन** पूर्वाचार्यप्रकाशितेन च विधिना **करणमनु**ष्ठानम् । औपचारिकं विनयं ब्रूते -

उवयारिओ उ विणओ आयरियाईसु इय नेओ ।।२२१।।

अभिग्रहो गुरुनियोगकरणाभिसम्बन्धः । संसाधना गच्छतोऽनुव्रजनम् ।

वाग्विनयश्चतुर्विधो यथा - "हिअमिअफरुसभासी अणुवाईभासि वाइओ विणओ" 'अणुवाई' त्ति अनुविचिन्त्यभाषी । मानसिको द्विविधो यथा - "अकुसलमणोनिरोहो कुसलमणउदीरणं चेव" त्ति ।

औपचारिकः सप्तविधस्तूक्त एवेति । धर्मसं. तृतीयाधिकारे गा. १२५ वृत्तौ ।

विनयस्य चातुर्विध्यम् -

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ।। - तत्त्वा. ९/२३ ।।

विनयश्चतुर्भेदः । तद्यथा - ज्ञानविनयः, दर्शनविनयः, चारित्रविनयः, उपचारविनयः इति । तत्र ज्ञानविनयः पञ्चविधो मतिज्ञानादिः । दर्शनविनयस्त्वेकविध एव सम्यग्दर्शनविनयः । चारित्रविनयः पञ्चविधः - सामायिकविनयादिः । औपचारिकविनयोऽनेकविधः - सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणाधिकेषु अभ्युत्थानासनप्रदानवन्दनानुगमनादिः ।।

- तत्त्वा. स्वो. भा. ९/२३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपचारेण वक्ष्यमाणेन निर्वृत्त **औपचारिकः** । स चासौ **विनयश्च** स **चाचार्यादिषु** दशसु पूर्वोदितेष्विति वक्ष्यमाणप्रकारेण **ज्ञेयो** ज्ञातव्यः ।।२२१।। तमेव दर्शयति -

मणवयणकायजोगे सुपसत्थे तेसु धरइ निच्चं पि ।
आसायणं च सम्मं, वज्जंतो वहइ बहुमाणं ।।२२२।।

तेष्वाचार्यादिषु **नित्यं** सदैव **मनोवाक्काययोगान् सुप्रशस्तान**द्विष्टान् **धारयति** । किमुक्तं भवति ? मनसा तेषां प्रतिकूलं न चिन्तयति, वचसा न वक्ति, कायेन च न करोतीत्यर्थः । तथा **सम्यक्** त्रिकरणशुद्ध्या **आशातनां** ज्ञानाद्यायशातनरूपां [1]त्रयस्त्रिंशद्भेदभिन्नां **वर्जयन्** परिहरन् बहुमानमान्तरप्रीतिप्रकर्षं **प्रकटयति** । न तु मायास्थानेन ।।२२२।।

लोकोत्तरविनयमेव निगमयन्नाह -

इय लोउत्तरविणओ भणिओ भे पंचहा समयसारो ।
एयंमि चेव सासयसिवसुहकंखीणमहिगारो ।।२२३।।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण **भे** भवतामयं **लोकोत्तरविनयः पञ्चधा** पञ्चप्रकारो **भणितः** । लोकोत्तरत्वं चास्य लोकोत्तरैस्तीर्थकृद्गणधरैरुपदिष्टत्वादुत्तमनराचीर्णत्वाच्च । किम्भूतः ? **समयसारः** सिद्धान्तोपनिषद्भूतः । **अत्रैव च** लोकोत्तरविनये **शाश्वतशिवसुखाभिलाषिणा मधिकारः** कर्तव्यः । अस्यैव मोक्षाङ्गत्वात् ।।२२३।।

गाथा-२२२ 1. पुरओ[1] पक्खा[2] ऽऽसन्ने[3] गमणं ३ ठाण ३ निसीअण ३ ति नव । सेहे पुव्वं आयमइ १० आलवइ ११ य तह य आलोए १२ ।।१।।

असणाइअमालोएइ १३ पडिदंसइ १४ देइ १५ उवनिमंतेइ १६ । सेहस्स तहाहाराइलुद्धो निद्धाइ गुरुपुरओ १७ ।।२।।

राओ गुरुस्स वयओ, तुसिणी सुणिरो वि १८ सेसकाले वि १९ । तत्थगओ वा पडिसुणइ २० बेइ किंति व २१ तुमंति गुरू २२ ।।३।।

तज्जाए पडिहणइ २३, बेइ बहुं २४ तह कहंतरे वयइ । एवमिमंति अ २५ न सरसि २६, नो सुमणे २७ भिंदई परिसं २८ ।।४।।

छिंदइ कहं २९ तहाणुट्ठिआइ परिसाइ कहइ सविसेसं ३० । गुरुपुरओ वि निसीअइ, ठाइ समुज्जासणे सेहो ३१ ।।५।।

संघट्टइ पाएणं, सिज्जासंथारयं गुरुस्स तहा ३२ । तत्थेव ठाइ निसीअइ, सुअइ व सेहो त्ति ३३ तेत्तीसं ।।६।।' धर्म सं. द्वितीयाधिकारे गा. ६२ वृत्तौ ।। 'आसायण तेत्तीस' त्ति द्वारं, प्रव. सारोद्धारे गा. १२९-१४९ अवलोकनीया ।। 'योगशास्त्रे तृतीयप्रकाशे श्लो. १२९ वृत्तौ त्रयस्त्रिंशदाशातनास्वरूपं विस्तरेण वर्णितम् दृश्यते ।। आवश्यकसूत्रस्य प्रतिक्रमणाध्ययनस्य हारिभद्र्यां वृत्तौ [पृ. ७२५-७२७] आवश्यकचूर्णौ दशाश्रुतस्कन्धादौ चापि विस्तरेण वर्णितं दृश्यते ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथा चायं मोक्षाय प्रवर्त्तते तथा दर्शयति -

पडिवक्खविउडणेणं घडिज्ज मुक्खाय विणयपडिवत्ती ।
ता माणमलणपुव्वं वट्टह विणए जओ भणियं ।।२२४।।

इयं च लोकोत्तरा **विनयप्रतिपत्तिर्मोक्षाय** महोदयाय नियतं **घटेत** साधकतमकारणत्वेन सम्पद्येत । कथमित्याह - **प्रतिपक्षवियोजनेन** विनयविपक्षदूरोत्सारणेन । ततः किं विधेयम् ? इत्याह - **तत्** तस्मान्**मानमलनपूर्वम**हङ्कृतिनिकृन्तनपुरस्सरं **विनये** प्रोक्तस्वरूपे **वर्त्तध्वम्** । **'सति हि समुत्ताने माने कौतुस्कुती विनयप्रवृत्तिः'** । न चेदं स्वबुद्ध्यध्यवसितमित्याह - **'जओ भणियं'** यत् यस्माद् भणितमाप्तोक्तौ ।।२२४।।

मूलं संसारस्स उ हुंति कसाया अणंतपत्तस्स ।
विणओ ठाणपउत्तो दुक्खविमुक्खस्स मुक्खस्स ।।२२५।।

कषायाः क्रोधादयः षोडशापि **संसारस्य मूलं** हेतुः । किम्भूतस्य ? **अनन्तत्वप्राप्तस्य** अनादिनिधनस्य । कषायाणां हि मुख्यतया कर्मबन्धहेतुत्वात् । कर्मणां च भवहेतुत्वादिति समीचीनमिदम् । विनयस्य कषायेभ्यो व्यतिरेकमाह-**विनयस्तु स्थानप्रयुक्तः** स्थानेषु श्रीमदाचार्यादिषु यथार्हं प्रयुक्तो **मोक्षस्य**ापुनर्भवस्य मूलं कारणम् । किम्भूतस्य? **दुःखविमोक्षस्य** आत्यन्तिकदुःखविमोक्षलक्षणस्य । प्रयुक्तो हि विधिवद् विनयः शनैः शनैर्धुनोति कर्मबन्धनिबन्धनान् सम्परायान् । कर्मक्षये चाक्षेपलभ्यो मोक्ष इति ।।२२५।।

पुनर्विनयमेव प्रस्तौति -

पयडिज्जइ कुलममलं कलाकलावो वि पयरिसं लहइ ।
वित्थरइ साहुवाओ विणयगुणे विप्फुरंतम्मि ।।२२६।।

अस्मिन् **विनयगुणे विस्फुरति** पुंसामेतदेतद् भवति । तदाह - **अमलं** निर्मलं **कुलमन्वयः प्रकटीभवति । 'नैसर्गिकी हि प्रायोऽभिजातानां विनयवृत्तिः'** । तथा **कलाकलापः प्रकर्षं** परभागं **लभते । 'सति हि विनयगुणे गौरवभाजः कलाः'** । **विस्तरति** सर्वत्र **साधु** विनीतोऽयमिति शिष्टजने **वादः** ।।२२६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा -

हुंति गुरू सुपसन्ना, विन्नाणमणुत्तरं उवइसंति ।
दुद्दंता वि हु पहुणो, कुणंति वयणं विणीयस्स ।।२२७।।

विनीतस्य पुंसो **गुरवः** पितृमातृकलाधर्माचार्यप्रभृतयः सुष्ठ्वतिशयेन **प्रसन्नाः** प्रसादभाजो **भवन्ति** । तथाविधाश्च किं कुर्वन्तीत्याह - **विज्ञानं** विशिष्टज्ञानमुपदिशन्ति । किम्भूत**मनुत्तरं,** न विद्यतेऽन्यदुत्तरं यस्मात्तदनुत्तरं सर्वोत्कृष्टमित्यर्थः । न खलु विनयादपरापि परपुरप्रवेशविद्या, तेन च सौमनस्यभाजो व्यञ्जयन्त्येव सर्वमन्तस्तत्त्वं गुर्वादयः । तथा आसतां तावत् कान्तैर्गुणैरभिगम्याः । यावत् **दुर्दान्ता** अपि भीमैर्गुणैरधृष्या अपि **प्रभवः** स्वामिनो **विनीतस्य वचनमनुमन्यते** । क्रमादनुकूलमनसश्च कल्पतरव इव कैः फलैर्न फलन्तीति न किञ्चिदसाध्यं विनयस्य ।।२२७।। किञ्च -

निद्धे वि बंधवे उव्वियंति, नयणाइं दुव्विणीयम्मि ।
सुविणीए उण दिट्ठे, परे वि परमं पमयमिंति ।।२२८।।

स्निग्धे स्नेहनिबन्धने **बन्धौ** प्रियापत्यप्रायेऽपि **दुर्विनीते** विनयव्यपेते दृष्टिसाक्षात्कृते पितृप्रभृतीनामपि **नयनान्युद्विजन्ति** । किमर्थमसौ दृश्यत इत्यरतिभाजो भवन्ति ? **सुविनीते तु** विनयगुणान्विते **परेऽपरिचिते** उदासीनेऽपि **दृष्टे** तान्येव प्रेक्षकाक्षीणि **परमं** प्रकृष्टं **प्रमद**मान्तरं प्रीतिप्रकर्षमुत्**कर्षयन्ति** । तस्मादकारणं ज्ञातिसम्बन्धः प्रीत्यप्रीत्योर्विनयस्यैव प्रायस्तन्निबन्धनत्वात् ।।२२८।।

एवं च -

चिंतामणी मणीण व, अमरतरूणं च पारियाउ व्व ।
मेरु व्व पव्वयाणं, गुणाण सारो परं विणओ ।।२२९।।

स्पष्टा ।। नवर**ममरतरवः** सन्तानकाद्यास्तेषु पारिजातस्य प्रकृष्टतमत्वम् ।।२२९।।

एवं विनयगुणमुपस्तुत्य तद्वन्तमेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति -

विणएण पुच्छणिज्जो, जायइ विसंभभायणं च नरो ।
जह सेणियस्स रन्नो, पए पए पियसुओ अभओ ।।२३०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनयगुणेन नरः सर्वत्र विषमकार्यगहनेषु सर्वेषां **प्रष्टव्यः** समुपजीव्यो **भवति** । तथा **विश्रम्भभाजनं** विश्वासस्थानं च **जायते** । यथेति दृष्टान्तोपन्यासे । **यथा श्रेणिकस्य** मगधपतेः **पदे पदे प्रियसुतो अभयकुमार** इति । सुबहवश्चाभयकुमारप्रतिबद्धाः प्रबन्धास्ते च ग्रन्थान्तरेभ्योऽवसेयाः । इह च स्थानाशून्यतार्थं दिग्मात्रमभिधीयते -

।। विनयगुणविषये अभयकुमारकथानकम् ।।

अत्थि मगहेसु नगरं रायगिहं सव्वमंगलाणुगयं । वरभूइभासियं नीलकंठललियं हरतणुं व ।।१।।
कोडिज्झयाणि मणिकुट्टिमेसु पडिबिंबियाइं सोहंति । जत्थंतरलीणनिहाण - कलसरक्खाभुयंग व्व ।।२।।
जत्थापरि नियजिणभवण - कणयकलसेसु बिंबिओ भाणू । पुररिद्धिदंसणत्थं कयबहुरूवु व्व पडिहाइ ।।३।।
वित्थिन्नअत्थवित्थर - सुत्थियपोरम्मि जम्मि वरनयरे । दायार ञ्जिय विमणा मग्गणविरहेण दीसंति ।।४।।
तत्थ भुवदंडचंडिम - भुसुमूरियवेरिदप्पमाहप्पो । समसमयनमिरनरवर - सिरसेणी सेणिओ राया ।।५।।
जस्साहवेसु खग्गो पाउं मायंगकुंभकीलालं । सुद्धिं च अप्पणो कुणइ दंतदलणुत्थजलणेण ।।६।।
नयचायसमुब्भूओ तह जसजलही इमस्स उल्लसिओ । परकित्तिनईओ जहा तत्थ समग्गाउ मग्गाओ ।।७।।
मिच्छत्तकायरत्तेहिं वज्जिए जस्स हिययपासाए । सिरिवीरो वीररसो य विलसए लसिरवरतेओ ।।८।।
तस्स सुनंदादेवी - उयरसरोवरमरालपडिबिंबो । निज्जियभवभमणभओ अभयकुमारु त्ति वरतणओ ।।९।।
सुविणीओ सविवेओ चाई य कयन्नुओ किवालू य । नयविक्कमधम्माणं समवाओ मुत्तिमंतु व्व ।।१०।।
सामाइणो उवाया चउरो वि हु दंडनीइमूलंगा । उप्पत्तियाइरूवेण परिणया जस्स बुद्धीए ।।११।।
निउणं निरूवियं पि हु विहडइ कइया वि दिव्वजोएणं । छाउमत्थियनाणं न उणो से बुद्धिवित्राणं ।।१२।।
सोहामित्तं रत्रो दंडाउहदंडदुग्गपभिईया । दुस्सज्झसाहणे बुद्धि ञ्जिय पञ्चला तस्स ।।१३।।
निक्खित्तरज्जचिंता-पब्भारो तम्मि सेणिओ राया । सह चिल्लणाइदेवीहिं विलसए विविहभंगीहिं ।।१४।।
अह अन्नया पयट्टो हेमंतो सूहवत्तमुवणिंतो । नवरंगवसणघुसिणंगरागकामिणिहसंतीणं ।।१५।।
तइया य तत्थ भयवं चरमो तित्थंकरो महावीरो । गुणसिलए उज्जाणे समोसढो सुरकओसरणे ।।१६।।
सुरअसुरसामिएहिं सेणियपमुहेहिं पत्थिवेहिं तओ । सेविज्जंतो बोहइ भव्वंबुरुहे भुवणभाणू ।।१७।।
अह अन्नयाऽवरन्हे मगहवई चिल्लणाइ परियरिओ । नमिउं सुरासुरगुरुं जाव नियत्तो पुराभिमुहं ।।१८।।
तापिक्खइ मुणिमेगं निरुत्तरीयं ठिअं स उस्सग्गे । तडिणीतडम्मि अइसिसिर-समिरधुयधरणिरुहसिहरे ।।१९।।
दुस्सहपरीसहसहं महरिसिमेयं तओ महीनाहो । ओयरिऊणं जाणाउ पणमए चिल्लणाइ समं ।।२०।।
तो पज्जुवासिऊणं खणमेगं तं मुणिं महासत्तं । जायापइणो पत्ता तग्गुणरत्ता नियावासं ।।२१।।
अह कयपओसकिच्चो अल्लीणो वासमंदिरं राया । दज्झंतागुरुकप्पूर - बहलधूमंधयारिल्लं ।।२२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलावहासपरितोसियाइ देवीइ चिल्लणाइ तओ । अविउत्तो पल्लंके निवई निद्दासुहं पत्तो ।।२३।।
परिरंभभेइणीए निद्दाइ भरेण पयइसुकुमालो । उत्तरपडाउ बाहिं हत्थो देवीइ नीहरिओ ।।२४।।
अलिकंटएण व तओ भित्रो सीएण जाव से हत्थो । ता सहस त्ति विबुद्धा विबुद्धवरसररुहमुही सा ।।२५।।
तत्तो तव्विहअइदुसह - सीयसीयंतहत्थकमलाए । संभरिओ तीइ तया सलिलाकूलट्ठिओ साहू ।।२६।।
तयणु नरनाहहियए अप्पाणं पिव करं निवेसंती । एयारिसंमि सीए सो कह होहि त्ति जंपन्ती ।।२७।।
आवरिऊण पडेणं अप्पाणं नरवरं च अइनिहुयं । सुत्ता एसा सुलहा निद्दा हि अखुद्दचित्ताणं ।।२८।।
करकिसलयफासाओ उत्तमपयइत्तणेण राया वि । झत्ति विबुद्धो निसुणइ वयणं तं तीइ तक्कालं ।।२९।।
सोऊण य परिकुविओ चिंतइ धी बंधई धुवं एसा । कयसंकेयं कं पि हु सुमरंती इय पयंपेइ ।।३०।।
इय कोवमिसमिसंतो जग्गंतो सो गमेइ निसि सेसं । पियपिययमाण अहवा ईसालुत्तं पयइसिद्धं ।।३१।।
उदिए य दिवसनाहे अवरोहे चिल्लणं विसज्जेउं । पभणइ अभयं रे रे जाओ सुद्धंतविद्धंसो ।।३२।।
ता बंधिउं दुवारे पज्जालसु सव्वओमुहं जलणं । मा माइनेहमोहिय - हियओ लंघिज्ज मह आणं ।।३३।।
इय आइसिउं अभयं आरुहिउं पवणवेगमह तुरगं । चलिओ सपरीवारो राया जिणरायपयमूले ।।३४।।
अभओ वि सभयहियओ चिंतइ हद्धी किमेयमावडियं । तह जणणीउ सईणं ललामभूयाउ सव्वाउ ।।३५।।
मइ रक्खगे य को वा जीवियकामो मणे विचिंतिज्जा । फणिरायफणमणीण व एयाण विलोवममरो वि ।।३६।।
संभावियं च एयं असंभवंतं पि तायपाएहिं । कुवियप्पाउ कुओ वि हु पिसुणाउ व छलपविट्ठाउ ।।३७।।
एगत्तो जणणिजणो अन्नत्तो जणयसासणममोहं । मह चेव अउन्नेहिं मत्रे एयं समावडियं ।।३८।।
तायस्स पढमकोवो गिरिसरिपूरु व्व ताव दुव्वारो । सिद्धाएसो य इमो मणसा वि न लंघिउं सक्को ।।३९।।
लोगदुगे वि विरुद्धं कज्जं एयं च आयरिज्जंतं । तो को इत्थ उवाओ हं नायं एयमिह उचियं ।।४०।।
वित्तं उप्पाइस्सं सच्चं व मणंमि ताव तायस्स । असुहस्स कालहरणं करिस्समेयस्स इय इन्हिं ।।४१।।
पत्थावे य पसंते कोवे तायं नियं पसाइस्सं । गुरुवयणं पि हु गज्झं उत्तं ति न किं तु जं जुत्तं ।।४२।।
इय निच्छिऊण हियए अवरोहसमीवगासु जिन्नासु । मोयावइ सो दहणं नरहत्था हत्थिसालासुं ।।४३।।
उग्घोसंतो य सयं पलित्तमंतेउरं ति सव्वत्थ । जिणरायपायमूले चलिओ सेणियसुओ तयणु ।।४४।।
इत्तो य समोसरणे धम्मकहाअंतरं मुणेऊणं । विन्नत्तो सव्वन्नू पत्थावे पत्थिवेणेवं ।।४५।।
भयवं ! किमेगपत्ती अणेगपत्ती च चिल्लणादेवी । पसिऊण कहसु साहइ अह संसयतमरवी वीरो ।।४६।।
चेडगनरिंदधूया सीलालंकारधारिणी एसा । मणसा वि हु कुवियप्पं न इत्थ पत्थिव ! अओ कुणसु ।।४७।।
तं सोउं संतत्तो पच्छायावानलेण सो तत्तो । नमिऊण जिणं चलिओ तुरियपयं पुरवराभिमुहं ।।४८।।
गच्छंतस्स य मिलिओ अभओ सवडंमुहो तओ तस्स । पुट्ठो य किं पलित्तं तुमए अंतेउरं नो वा ।।४९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरविरइयंजलिउडो सभओ अभओ वि विन्नवइ एवं । को देव ! जीवियत्थी भुवणे लंघेइ तुह आणं ।।५०।।
पविपडिहउव्व तत्तो भणइ निवो पाव ! नियजणणिवग्गं । पज्जालिऊण जलणे तुमं पि किं दुट्ठ ! न पविट्ठो ।।५१।।
अभओ अभओ वि तओ जंपइ मह ताय ! तुज्झ तणयस्स । सुयजिणवयणस्स कहं पयंगमरणं खमं एवं ।।५२।।
जइ आइट्ठं हुंतं तइया एवं पि तायपाएहिं । ता तं पि कयं हुंतं संपइसमए वयं काहं ।।५३।।
भणइ निवो किं मज्झ वि आएसेणं अकिच्चमायरियं । हा हा इमं ति मुच्छानिमीलियच्छो गओ वसुहं ।।५४।।
सित्तो य संदचंदणरसेहिं अभएण अह विणीएणं । परिवीइओ य वत्थंचलेण पत्तो य चेयन्नं ।।५५।।
चलणेसु निवडिऊणं भणिओ अभएण देव ! न हु दहणो ।
पहवइ मह जणणीणं निव्वविओ सीलसलिलेणं ।।५६।।
तुह सेयचिंतिरीणं सेयं चिय होइ देव ! नणु ताणं । सुरतरुसमस्सियाणं लयाण कह असणिविणिवाओ ।।५७।।
असुहमुहुत्तवसेणं ताएणं जइ वि तह समाइट्ठं । तहवि न हु तुज्झ तणओ अभओ अवियारियं कुणइ ।।५८।।
अवरद्धं जुन्नाओ जं करिसालाउ किल पलित्ताउ । इय सुणिय सेणियनिवो सरभसमालिंगए अभयं ।।५९।।
भणइ य हरिसचलेणं परामुसंतो करेण तस्संगं । वच्छ ! सुकएण जेणं पणामियं मज्झ रज्जमिणं ।।६०।।
तेणं चिय तणओ वि हु तुमं समं चेव नूणमुवणीओ । सो चेव सुकयरासी अह तुह रूवेण परिणविओ ।।६१।।
जइ पगुणियं न हुंतं पुत्त ! तये नियबुद्धिबोहित्थं । ता पडिउ ञ्चिय हुंतो अयससमुद्दे इमम्मि अहं ।।६२।।
हणिऊण निरवराहं अवरोहं विमलसीलपरिकलियं । केण सुकएण अहयं पावाउ इमाउ मुञ्चंतो ।।६३।।
असमीक्खियकारीणं जह पढमो निम्मिओ अहं विहिणा । एवं चेव समिक्खियकारीणं तं चिय जयम्मि ।।६४।।
खित्तो वि कज्जगहणे मुहरायं नेव भिंदसि कयावि । कयविप्पिओ न रूससि अहो ! विणीयत्तणं तुज्झ ।।६५।।
जइ भत्ती न हु सत्ती अह सत्ती होइ कह वि न हु भत्ती । को सत्तिभत्तिजुत्तो सचिवो अन्नो तुमाहिंतो ।।६६।।
ता किं तुज्झ इयाणिं दाऊणं तुट्ठिदाणमहमणहं । मज्जायाइ ठविस्सं पमोयमयरहरमुव्वेलं ।।६७।।
तत्तो अभयकुमारो पियरं विन्नवइ गुरुविणयसारो । नियसुयवच्छल्लेणं ताओ आइसउ जं किंचि ।।६८।।
तुम्हाणुभावउ ञ्चिय बुद्धी मह एरिसी समुब्भवइ । रयणंकुराणि मुंचइ विदूरभूमी घणरवेणं ।।६९।।
पत्ते तुह पुत्तत्ते सुसावगत्ते य सामिणो लद्धे । किं मज्झ ऊणमवरं जं ताओ दाउमहिलसइ ।।७०।।
अह तहवि न तुह तुट्ठी ता एयं होउ तुट्ठिदाणं मे । जं समए सामन्नं पडिवज्जंतोऽणुमंतव्वो ।।७१।।
तो तं तहत्ति पडिवज्जिऊण उक्कंठिओ दढं चित्ते । देवीइ चिल्लणाए भवणे सेणियनिवो पत्तो ।।७२।।
अभओ वि भवणबंधवपयपउमपणामपम्हुसियपावो । गंतुं नियया वासे पुव्वं पिव ललइ लीलाए ।।७३।।
अह सेणिओ विचिंतइ पुरा वि मह चिल्लणा हिययदइया । इन्हिं पुण सविसेसं वत्तियसीला भुवणगुरुणा ।।७४।।
ता इयरपियाहिंतो जाव विसेसो न को वि से विहिओ । ता साहारणविहिणा न होइ मणनिव्वुई मज्झ ।।७५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय चिंतियसयलमणोगयत्थ - वित्थारकप्पतरुतुल्लं । सेवावसरावडियं उवंसु अभयं भणइ एवं ।।७६।।
वच्छ ! तुमं मह जइ वि हु लोइयनीईइ नंदणो होसि । कज्जाविक्खाइ तहावि वहसि विविहाइं रूवाइं ।।७७।।
मंतावसरे मंती धम्माहम्माण वियडणे य गुरू । हिययरहस्सपयासण - खणंमि मित्तो वि तं चेव ।।७८।।
ता जाणसि ञ्चिय जया पियासु साहारणस्स सयलासु । अप्पडिमो पडिबंधो मह चेडगनंदणाउवरिं ।।७९।।
ता मह पसायसूयगमेगत्थंभं पहाणपासायं । कारेसु इमीइ कए जह तत्थ गया सुहं वसइ ।।८०।।
अह भणइ विणयपणओ अभओ मह चेव देव ! कज्जमिणं । जं पुण इय आइट्ठं तत्थ पसाओ परं हेऊ ।।८१।।
अविलंबं कज्जमिणं निप्फन्नं चेव ता मुणउ देवो । तुज्झ पयावस्स जए पुन्नस्स व किं न साहीणं ।।८२।।
गंतूण य आवासे सिक्खं दाऊण वड्ढई एगो । वणगमणत्थं लहु विस्सकम्मपडिमो समाइट्ठो ।।८३।।
गंतुं सपरीवारो अभयाएसेण सो वि वणसंडं । सयलं पि हु अवगाहइ गंथरहस्सं व मेहावी ।।८४।।
पिक्खंतेण य तेणं सुइसद्दलभूयलंमि सद्धविओ । पायालसलिलसंकंत - तिरियपसरंतघणमूलो ।।८५।।
अज्झुसिरसुसिणिद्धमहप्पमाण-सुसिलिट्ठलट्ठथिरथंभो [खंधो] ।
दिसिचक्कमक्कमिंतो विसालसाहासहस्सेहिं ।।८६।।
मरगयमणिनीलदलो दिसि दिसि पसरंतसुमणगणगंधो । सुमहल्लपल्लविल्लो अइपेसलफलभरो साही ।।८७।।
विशेषकम् ।।
दट्ठूण य सो चिंतइ उचिय ञ्चिय एस पत्थुयत्थस्स । किं पुण सपाडिहेरा भवंति एयारिसा तरुणो ।।८८।।
तेणं चिय अभएणं मह पहुणा दोहदंसिणा भणियं । जं किर पूयापणिहाणपुव्वयं गिन्हसु तरुं ति ।।८९।।
तत्तो कओववासो सुइभूओ सो पओससमयम्मि । वरगंधपुप्फनेवेज्जमाइयं सज्जिउं सव्वं ।।९०।।
परिपूइऊण य दुमं कयंजली इय करेइ पणिहाणं । छिंदिस्समहं गोसे रायाएसेण तरुमेयं ।।९१।।
ता इत्थ कयावासो जो कोइ रक्खसो अहव जक्खो । गंधव्वो व गणो वा सो अणुजाणेउ पसिऊणं ।।९२।।
इय काउं कारुनरे सुत्ते वंतरसुरो तरुनिवासी । चिंतइ अहो विवेगो अभयकुमारस्स विणओ य ।।९३।।
तस्साएसेण इमो न करिंतो जइ ममेवमुवयारं । ता मह कोवपईवे अवस्स सलहत्तणमुविंतो ।।९४।।
किंतु न उत्तमपुरिसा असमिक्खियकारिणो खलु भवंति । तम्हा बहु मंतव्वो कज्जंमि इमम्मि मह अभओ ।।९५।।
इय चिंतिऊण गंतुं निसीहसमयंमि सो भणइ अभयं । वरधम्मनीइसंदण ! सेणियनंदण ! निसामेसु ।।९६।।
जत्थ तए किर पहिओ वणंमि वणछिंदओ अहं तस्स । वणसंडस्साहिवई सुंदर ! वंतरसुरो पवरो ।।९७।।
तुट्ठ म्हि तप्पउत्तेण तेण विणओपयारकम्मेणं । ता तुरियं विणिवत्तसु तरुवरछेयाउ कारुनरे ।।९८।।
अहमेव निम्मविस्सं एगत्थंभं पहाणपासायं । सव्वोउयफलफुल्लेण संगयं सुंदरवणेणं ।।९९।।

गाथा-२३० 1. कारु - कारीगर, शिल्पी इति भाषायाम् । - प्रा. सूक्तरत्नमाला ।।८०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं तह पवज्जिऊणं अभएणं वड्ढई समाहूओ । जह भणिओ पासाओ तियसवरेण वि विणिम्मविओ ।।१००।।
अभयकुमारेण तओ विन्नत्तो सेणिओ नरवरिंदो । पिक्खइ अणब्भवुट्ठिं व दिव्वपासायमप्पडिमं ।।१०१।।
परिवेढियं च सव्वोउएण गयणग्गलग्गसालेणं । दिव्वेण उववणेणं मेरुं पिव भद्दसालेणं ।।१०२।।
दट्ठूण तं अमाणवनिम्माणमकालखेवसंघडियं । विम्हयविप्फुल्लमुहेण पुच्छिओ सेणियनिवेणं ।।१०३।।
साहइ जहट्ठियं से वुत्तंतं विणयनयसिरो अभओ । तो धूणंतो सीसं मगहवई भणिउमारद्धो ।।१०४।।
अच्छउ दूरे नीई कायव्वा जं न सुयपसंस त्ति । एयारिसस्स हि गुणा बला वि कुव्वंति मुहरत्तं ।।१०५।।
अत्थव्वओ वि न कओ भूया भिच्चा य नो उवट्ठविया । पडिकूलिओ न देवो कारविओ किंकरत्तं च ।।१०६।।
न कओ कालक्खेवो जायं कज्जं व चिंतियब्भहियं । इय केण गुणेण तुमं पुत्त पसंसं न पावेसि ।।१०७।।
विणयाइणो गुणा तुह पयं न कुव्वंतु कह मणे अम्हे । जेहिं सुरा वि हु नणु नत्थिय व्व वसहा वसे हुंति ।।१०८।।
इय तं पसंसिऊणं भणइ तओ चिल्लणं महादेविं । देवि ! तुह नंदणेणं तुज्झ कए कारिओ एसो ।।१०९।।
अहिलसिए पासाए एगत्थंभे वणं पि संजायं । पत्थिज्जंते जह अविहवत्तणे सूहवत्तं पि ।।११०।।
ता इत्थ ठिया सुंदरि सच्छंदं खेयरि व्व विलसंती । कुणसु कयत्थं नियय जम्मं धम्मत्थकामेहिं ।।१११।।
इय रन्नाणुन्नाया चेडगनिवनंदणी सपरिवारा । एगत्थंभंमि ठिया विविहविणोएहिं विलसेइ ।।११२।।
उज्झिणिएहिं सयं चिय दिव्वोववणस्स तस्स कुसुमेहिं । बहुभंगिगुंफिएहिं घरजिणपडिमाउ पूएइ ।।११३।।
सेसेहिं विसेसन्नू तेहिं चिय सुमणसेहिं नियपइणो । कुसुमाहरणं विरयइ रयणाहरणाउ सविसेसं ।।११४।।
तत्तो उव्वरिएहिं च अप्पणो तयणु तीइ नरनाहो । वणलच्छीइ वसंतु व्व सोहए सन्निहिठियाए ।।११५।।
इय से धम्मफलेणं कामफलेणं च ताणि कुसुमाणि । कुणइ सहलाइं देवी अच्छरियं उज्झियाणिं पि ।।११६।।
अभओ वि बारसविहे नरिंदचक्कम्मि सावहाणो वि । पालेइ जहागहियं गिहिधम्मं बारसविहं पि ।।११७।।
पत्थावे पत्थावे पसायसुमुहेण सेणियनिवेणं । दिज्जंतं पि हु रज्जं संतोसपरो न गिन्हेइ ।।११८।।
निब्बंधं कुणमाणे अज्जत्थं पत्थिवे य रज्जत्थं । आणाभंगभएणं पिउणो एवं विचिंतेइ ।।११९।।
जइ चरमो रायरिसी होमि अहं आयरेमि ता रज्जं । एयं च भुवणगुरुणो पुच्छाए निच्छियं होइ ।।१२०।।
इत्थंतरंमि सामी पच्छिमदेसाउ वीयभयनाहं । उद्दायणं नरिंदं पव्वावेउं तहिं पत्तो ।।१२१।।
विहियं च समोसरणं चउविहेहिं पि देवनिवहेहिं । तत्थ ठिओ भुवणपहू पयासए परमपयमग्गं ।।१२२।।
सुणिऊण जिणागमणं मोरु व्व तओ घणाघणागमणं । गुरुहरिसनिब्भरंगो मगहवई तत्थ संपत्तो ।।१२३।।
अभयकुमारो वि तया तायारं भवदुहाउ भव्वाणं । पत्तो सामिं नमिउं समिउं तह संसयं नियय ।।१२४।।
मुणिऊण य पत्थावं पत्थिवतणएण तेण भुवणगुरू । पुट्ठो भयवं भरहे को होही चरमरायरिसी ।।१२५।।
उद्दायणरायरिसिं दंसंतो तयणु भणइ सव्वन्नू । एसो रायरिसीणं अपच्छिमो अभय इह भरहे ।।१२६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न हु एयाओ अहिया न एयतुल्ला य पत्थिवा इत्तो । पडिवज्जिस्संति वयं कुमार ! दुसमाणुभावेण ।।१२७।।
सोऊण य जगगुरुणो अमोहवयणस्स तारिसं वयणं । रज्जंमि निप्पिवासो अभओ सभओ यभवभमणे ।।१२८।।
चलणेसु निवडिऊणं नियपियरं सेणियं नरवरिंदं । विन्नवइ ताय ! जाओ चिराय मह पत्थणावसरो ।।१२९।।
चरमं रायरिसित्तं इत्तियदिवसाणि अहिलसंतेण । विहिओ वयगहणत्थं न मए तुह ताय ! निब्बंधो ।।१३०।।
तहभव्वत्तवसेणं तं पुण मह ताव नेव संघडियं । ता जइ रज्जं गिन्हामि हुज्ज ता न खलु पव्वज्जा ।।१३१।।
ता पसिऊण विसज्जसु संजमजोगुज्जमाय मं ताय ! । मोएसु भवदुहाओ जइ सज्झं तुह पिओ अहयं ।।१३२।।
लद्धूण तुमं पियरं धम्मायरियं च सिरिमहावीरं । जइ न चइस्सामि भवं ता को कीवो ममाहिंतो ।।१३३।।
अह मन्नुसन्नकंठो भणइ निवो ठाविउं कहवि वयणं । जुत्तं तुज्झ विरत्तं चित्तं पुत्तय ! भवदुहाओ ।।१३४।।
सज्जंति पंकपडिमे संसारे सूयरोवमा जीवा । न रमंति इमंमि पुणो सप्पुरिसा रायहंस व्व ।।१३५।।
कुव्वंति अकज्जं पि हु जस्स कए निवइनंदणा अहमा । दिज्जंतं पि हु रज्जं तं गिन्हसि उत्तमो न तुमं ।।१३६।।
इयरा वि न तुह विहिया पुत्त ! मए पत्थणा कह वि विहला । ता कह उत्तमकम्मे इमम्मि तुह होमि विग्घो हं ।।१३७।।
न य वच्छ ! नेय जाणामि जं तइ ञ्चिय समं पउत्थं मे । सयलं पि हु रज्जसुहं तहावि तुह होउ निव्विग्घं ।।१३८।।
इय भणिरेणं सेणियनिवेण नरनाहनिक्खमणजुग्गा ।
सयला वि हु सामग्गी नियपियतणयस्स तस्स कया ।।१३९।।
धाराधरु व्व तत्तो वरिसंतो भूरिकणयधाराहिं । बंधु व्व चारयाओ दुहत्तसत्ते विमोइंतो ।।१४०।।
अणुगिन्हंतो नायरजणं च महुरेहिं दिट्ठिवाएहिं । सिरिवीरचरणमूले अभयकुमारो समणुपत्तो ।।१४१।।
सुविसुज्झमाणलेसो खणे खणे तयणु सो महासत्तो । परिचत्तसयलसंगो जिणपयमूले विणिक्खंतो ।।१४२।।
नंदा वि हु पव्वइया समगं चिय तेण विहुणियममत्ता । सव्वत्थ उदयलच्छी पुरस्सर ञ्चिय जओ रविणो ।।१४३।।
उत्तमबुद्धित्तणओ [2]सामायारी दसप्पयारावि । अचिरेण वि अब्भत्था अभयकुमाराणगारेण ।।१४४।।
पयइविणीओ विणयं गुरुथेरबहुस्सुयाण पयडंतो । सयलं पि समयसारं तरंगियं कुणइ हिययम्मि ।।१४५।।
सुमरंतो खरकम्मं पउत्तपुव्वं च निवनिओगेणं । अज्झंतखरतरं चिय तवइ तवं ताविउं कम्मं ।।१४६।।
सामाइएहिं विहिया बाहिररिउणो जहा वसे पुव्वं । एवं समाइएहिं अंतररिउणो कया तेण ।।१४७।।
लोइयनीईइ पुरा अक्खलियं जह पयट्टिओ लोओ । लोउत्तरनीईए तेण वयत्थेण वि तहेव ।।१४८।।
जह बुद्धिगुणेण जणे पत्तो कित्तिं गिहित्तणंमि इमो । विणयाइगुणगणेहिं तहेव अणगारभावे वि ।।१४९।।

---

2. दशधा सामाचारी इयं - इच्छा - मिच्छा - तहक्कारो आवस्सिया य णिसीहिया । आपुच्छणा य पडिपुच्छा, छंदणा य णिमंतणा ।। उवसंपया य काले, सामायारी भवे दसविहा उ । एएसिं तु पयाणं, पत्तेयपरूवणा एसा ।।
- पञ्चा. १२/२-३ गा. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह पावियं पइट्ठं भूवट्ठे तेण पेइयं रज्जं । तह नियय पि हु संजमरज्जं निरवज्जजोगेणं ।।१५०।।

समयमथ विदित्वा भावतः शोधयित्वा, तनुमनशनचर्यामुज्ज्वलां चाकलय्य ।

नयविनयविवेकच्छेकधीः स्वायुषान्ते, मुनिरभयकुमारः प्राप सर्वार्थसिद्धम् ।।१५१।। एवं च -

प्रसूते विश्वासं शमयति च तापं मनसिजम् । सृजत्यन्तः प्रीतिं विपदमुदितां मन्थरयति ।।

शरज्ज्योत्स्नापाण्डुं प्रकटयति कीर्त्तिं त्रिभुवने । प्रयुक्तः पूज्येषु प्रथयति नृणां किं न विनयः ।।१५२।। ततश्च -

सौभाग्यदैवतगणस्मरणश्रमैः किं, किं वा वशीकरणकार्म्मणयोगचूर्णैः ।
अभ्यस्यतां विनय एव विनैव खेदं, यस्माज्जगन्त्यपि भवन्ति वशंवदानि ।।१५३।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र-सूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दा**चार्यसोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीये मूलद्वारे पञ्चमं **विनय**प्रतिद्वारं समाप्तमिति ।। श्रीः ।।२३०।।

उक्तं विनयद्वारम्, साम्प्रतं परोपकारद्वारं व्याजिहीर्षुराह -

जणमणनयणाणंदं जणेइ एमेव ताव सुविणीओ ।
जइ पुण परोवयारी वि हुज्ज ता किंन्न पज्जत्तं ।।२३१।।

सुविनीतः स्वभ्यस्तविनयः पुमान्**एवमेव** परोपकारादिविरहितोऽपि तावत् **जनमनोनयनानन्दं जनयति । यदि पुन**स्तथाविधशुभसम्भारवशाद् विनीतत्वे सति **परोपकारित्वमपि स्यात् तदा किं न पर्याप्तम् ?** केन गुणेनाऽसौ न्यून इति ।।२३१।।

एवं च सति किं विधेयमित्याह -

तम्हा सइ सामत्थे जइज्ज पुरिसो परोवयारम्मि ।
पसरइ कित्ती जत्तो मयंककरकोमला भुवणे ।।२३२।।

तस्मात् सति सामर्थ्ये पुरुषः पुरुषार्थसार्थसाधनपटुः पुमान् **परोपकारे** वक्ष्यमाणलक्षणे **यतेत** यत्नं विदध्यात् । किम्? इत्याह - **यतो** यस्मात् परोपकाराद् **भुवने** जगति **कीर्त्तिः प्रसरति** प्रसिद्धिः प्रोल्लसति । किम्भूता? **मृगाङ्ककरकोमला** हरिणलाञ्छनज्योत्स्नाच्छविः ।।२३२।।

अपरोपकारिणां तु जगति जघन्यतामुद्भावयति -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के के जम्मणजरमरणसलिलपडलाउले भवसमुद्दे ।
जलबुब्बुय व्व नियकम्मपवणपहया नरा न गया ।।२३३।।
नियजढरपिढरभरणिक्क - मित्तजत्ताण ताण नामं पि ।
को नाम मुणइ मणुयाहमाण अपरोवयारीणं ।।२३४।।

यतोऽस्मिन् भवसमुद्रे संसारसरस्वति **जलबुद्बुदप्रायाः के के नराः** पुरा **नातिचक्रमुः** । किम्भूते? **जन्मजरामरणसलिलपटलाकुले** उत्पादविश्रसाव्ययवारिपूर्णे । नराः किम्भूताः ? **निजकर्म्मपवनप्रहताः** कर्म्मपारतन्त्र्येण हि प्राणिनामेहिरेयाहिराः क्रियाः सम्पद्येरन् । समुचितश्च प्रभञ्जनाविद्धे पयसि बुद्बुदविलयः । अतस्तथाविधानां मनुष्याधमानां नामापि, नामेति प्रसिद्धमेतत् को वेत्ति? अपि तु न कोऽपि । किंविशिष्टानां? **निजजठरपिठरभरणैकमात्रमेव यात्रा येषां** ते तथा । यदि वा स्वोदरपिठरपरिपूरणैकमात्रयत्नानां । ते हि सम्पूर्णे स्वोदरे त्रिभुवनमपि परिपूर्णमाकलयन्ति । अत एव मनुष्याधमत्वं तेषामपरोपकारिणां सर्वथैव परोपकृतिमन्थरमनसाम् ।।२३३।।२३४।।

साम्प्रतं परोपकारिषु व्यतिरेकमाह -

जे उण परोवयारं करिंसु इह केइ पुरिससद्दूला ।
दिसिवलएसु विसप्पइ तेसिं जसपडहनिग्घोसो ।।२३५।।

ये पुनरिहास्मिन् जगति **केऽपि** जगद्विलक्षणस्वरूपास्तेनैव **पुरुषशार्दूलशब्दसंशब्दनीयाः** । **परोपकारं** द्विभेदमपि वक्ष्यमाणलक्षण**मकार्षुः** । **तेषां दिग्वलयेषु** सम्प्रत्यपि **यशःपटहनिर्घोषः प्रसर्प्पति** । कोटीकोटिसागरप्रमितकालान्तरिता अपि विद्यमाना इव ते सर्वत्रापि सादरं गीयन्त इत्यहो परोपकृतेः पुण्यतमत्वमिति ।।२३५।।

पुनरनुपकारिण एव तिरस्कुर्वन्नाह -

जेसिं परोवयरणे न फुरइ बुद्धी वि कीवपयईणं ।
उव्वियइ उव्वहंती तेसिं भारं धुवं धरणी ।।२३६।।

येषां तु **क्लीबप्रकृतीनां** सत्त्वशून्यचेतसां **परोपकरणे,** आसातां वाग्वपुषी, **बुद्धिरपि न स्फुरति, तेषामन्तर्गडुप्रायाणां** पुसां **भारमुद्वहन्ती ध्रुवं** निश्चितं सर्वंसहापि **धरणी** किममी दुरात्मानो

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मयि स्वभारमारोपयन्तीत्युद्वेगमुद्वहति । उक्तं च -

याचमानजनमानसवृत्तेः पूरणाय बत जन्म न यस्य ।
तेन भूमिरतिभारवतीयं न द्रुमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः ।।१।। इति [ ]।।२३६।।

अपरोपकारित्वं तु प्रायः कार्पण्यसमुद्भवमतः पर्यायेण मितम्पचान् निन्दति -

पायालानलजालापलित्तगत्ताणि किविणदविणाणि ।
खणमूससंति पावंति जइ करं परुवयारीणं ।।२३७।।

अनादिभवाभ्यस्तदुस्तरलोभसङ्क्षोभितमनसो हि पुमांसः प्रायः स्वस्वसम्पत्त्यनुमानेन **नन्दादिनरेन्द्रवन्मेदिनीसात्कुर्व्वन्त्येव** स्ववित्तानि । विशेषतस्तु मितम्पचाः, तथा च सति **तद्धनधनानि** त्यागभोगशून्यानि केवलं **पातालानलज्वालाप्रदीप्तगात्राणि** सुतरां दुःखमावसन्ति । अतस्तानि हि वराकाणि **क्षणमुच्छ्वसन्ति** रसातलानलकीलक्लमवेदनोच्छेदं मनागनुभवन्ति । **यदि परोपकारिणामुदारचरितानां करं प्राप्नुवन्ति** । **'उदारहस्तन्यस्तानि हि वित्तान्यपरापरपात्रोपभोगेन मुच्यन्त एव पूर्वयातनातः'** इति ।।२३७।।

कियद् वा स्वल्पसेवधिगतवित्तमात्रवितरणमुदारचरितानां, यतः -

नवनिहिणो वि निहीणा सुवन्नपुरिसो वि नूण काउरिसो ।
कणयगिरी वि अणू विव उवयारिमणोरहस्स पुरो ।।२३८।।

उपकारिणां दानमनोरथस्य पुरस्तादिति पदत्रयेऽपि सम्बध्यते । **नवनिधयोऽपि** नवसङ्ख्याः शाश्वतस्वरूपा नैसर्प्याद्या नवयोजनविस्ताराः द्वादशयोजनायामाः असङ्ख्यमणिमौक्तिकस्वर्णादिपरिपूर्णाः सन्ततव्ययेऽप्यपरिक्षीणाः । एवंविधा अपि सेवधयो **निहीनाः** नितरामतिशयेन हीनास्तनुस्वरूपाः । तथा **सुवर्णपुरुषः** काञ्चनमयः सिद्धपुत्रकः । यस्य शिरोविरहितानि शेषाङ्गानि प्रयोजनवशाल्लूत्वा दत्तोपभुक्तान्यपि पुनर्नवीभवन्ति, सोऽपि **नूनमुदारचरिते** तद्दातरि किमहमस्यैवं ददानस्य शक्ष्यामि चामीकरं पूरयितुं नवेत्यतः **कापुरुष** इव समुपस्थिते समिति वेपते । तथा **कनकगिरिर्लक्षयोजनप्रमाणश्चामीकराचलोऽप्यणुरिव** प्रतिभाति । न चैतदुपरिवर्त्ति जगति किञ्चिदधिकमपि द्युम्नस्थानमस्ति । **उपकारिणां** तु दान**मनोरथस्य पुरो** निधिप्रभृतयोऽपि पूर्वोपवर्णितस्वरूपा एव । मनोरथेति साऽभिप्रायम् । यतो निध्यादिदानं मनोरथगोचरमेव न पुनः साक्षात् । चक्रवर्त्त्यादिव्यतिरेकेणान्यस्य निधिप्रभृतीनामस्वाधीनत्वात् । यदि च दैवयोगान्निधि-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर्णपुरुषस्वर्णाचलप्रभृतयोऽप्युपकारिकरगोचरमवतरन्ति । तदा न दाता तानपि नियतं ददात्येवेति ।।२३८।। किञ्च -

उवयारखणे समुवट्ठियम्मि उवयारिणो तणुधणस्स ।
जं होइ मणे दुक्खं मुणइ परं पारगो जइ तं ।।२३९।।

उपकारिणः स्थूललक्षस्य कुतोऽप्यन्तरायादिदोषात् **तनुधनस्य** क्षीणविभवस्य **उपकारक्षणे** अवश्यविधेये **समुपस्थिते** सति तनुवित्तत्वेन स्वमनोरथानुरूपं दानं दातुमसमर्थस्य ।

जीवति स जीवलोके यस्य गृहाद् यान्ति नार्थिनो विमुखाः ।
भृतकवदितरजनोऽसौ दिवसान् पूरयति दैवस्य ।।१।। तथा -

परपत्थणापवन्नं मा जणणि ! जणेसु एरिसं पुत्तं ।
उयरे वि मा धरिज्जसु पत्थणभंगो कओ जेण ।।२।। [ ]

इत्यादि सखेदं चिन्तयतो **मनसि यद्दुःखं** प्रादुर्भवति **तद् यदि पारगत** एव भवाकूपारपरतटप्राप्तः सर्वविदेव **जानीते**, नान्य इति ।।२३९।। तथा -

विहवाईहिं परेसि जं उवयरणं परोवयारो सो ।
अनिउणवयणमिणं नणु एसो अत्तोवयारो जं ।।२४०।।

किलेदं परोपकारशब्दस्य निरुक्तम् - **यत् विभवादिभिर्धनधान्यादिप्रदानविपदुद्धरणप्रभृतिभिः परेषामुपकरणं स परोपकारः** । इदं तु तत्त्वरूपमप्यनिपुणवचनमिव प्रतिभाति । **यतो** न खल्वयं परोपकारः, किन्तु परमार्थबुद्ध्या **आत्मोपकार** एवायम् । उक्तं च -

दानपात्रमधमर्णमिहैकग्राहि कोटिगुणितं दिवि दायि ।
साधुरेति सुकृतैर्यदि कर्तुः पारलौकिककुसीदमसीदन् ।।१।। [ ]

अतः कथं नायमात्मोपकार इति ।।२४०।।

साम्प्रतं परोपकारस्य पूर्वोद्दिष्टं भेदद्वयं दर्शयति -

उवयारो पुण दुविहो दव्वे भावे य दिव्वनाणीहिं ।
सयमेव समायरिओ तह अन्नेसिं पि उवइट्ठो ।।२४१।।

अयं तु **उपकारो दिव्यज्ञानिभिर्विमलकेवललोकभास्करैर्भगवद्भिरर्हद्भिर्द्रव्यरूपो भावरूप-**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्चावस्थौचित्येन **स्वयमात्मना समाचीर्णस्तथाऽन्येषामपि** मुक्त्यर्थिनां कर्त्तव्यतयोपदिष्ट इति ।।२४१।। तत्र तावदादौ तेषां द्रव्योपकारमाह -

मुणिऊण विरइसमयं जगप्पईवाण जिणवरिंदाणं ।
भत्तिभरभरियहियओ सोहम्मवई सुरवरिंदो ।।२४२।।

जिंभगदेवेहिंतो समंतओ नट्ठकेउसेऊहिं ।
भूगोलनिलीणेहिं असामिएहिं निहाणेहिं ।।२४३।।

पूरइ कोसागारे जिणाण जगबंधवाणमणवरयं ।
संवच्छरियं करुणाइ तो पयट्टंति ते दाणं ।।२४४।। विशेषकम् ।।

इदं तु गाथात्रयमपि निगदसिद्धमेव । केवलं प्रथमगाथायां **विरतिसमय**मिति सर्वविरतिप्रतिपत्तिप्रस्तावमित्यर्थः ।।२४२।।

द्वितीयगाथायां तु निधानै**र्नष्टकेतुसेतुभिरि**ति - तत्र केतवः सेवधिवसुधयोरन्तराले निक्षिप्तानि सुघटितवृत्तत्र्यस्रचतुरस्ररूपाणि नानावर्णानि पाषाणशकलादीनि चिह्नानि । सेतवस्तु गगनदिग्विभागभूगोलावगाहादयः ।।२४३।।

तृतीयगाथायां तु करुणयेति - **करुणया** सर्वसत्त्वसाधारण्या कृपयैव । न तु प्रत्युपकृतिप्रसिद्धिभोगादिवाञ्छया । अत एव जगद्बान्धवानामिति भगवद्विशेषणम् ।।२४४।।

तच्च सांवत्सरिकं दानं कथं दीयत ? इत्याह -

अकलियपत्तापत्तं अविभावियसगुणनिग्गुणविभागं ।
अगणियमित्तामित्तं दिज्जइ जं मग्गियं दाणं ।।२४५।।

स्पष्टा ।। नवरं **'जं मग्गियं ति'** [1]वरवरिकाघोषणपुरस्सरं यो यन्मृगयते तस्मै तद्दीयत इति यन्मार्गितम् ।।२४५।।

गाथा-२४५ 1. **तुला** - "सिंघाडगतियं चउक्कचच्चरचउमुहमहापहपहेसु दारेसु पुरवराणं रच्छामुहमज्झयारेसु - वरवरिया घोसिज्जइ किमिच्छियं दिज्जए बहुविहीअं सुरासुरदेवदाणवनरिंदमहियाण निक्खमणे त्ति ।।

- आव. निर्यु. २१९ ।।

---

१. **छाया** - शृङ्गाटकत्रिकचतुष्कचत्वरश्चतुर्मुखमहापथपथेषु द्वारेषु पुरवराणां रथ्यामुखमध्येषु वरवरिका घोष्यते किमीप्सितं दीयते सुरासुरदेवदानवनरेन्द्रमहितानां निष्क्रमणे ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं जिणा घणा इव विउलदया भूरिकणयधाराहिं ।
निव्वाविंति सुदुस्सहदोग्गच्चदवद्दियं लोयं ।।२४६।।

एवं यन्मार्गितदानेन संवत्सरं यावज्जिनास्तीर्थकृतः **सुदुस्सहदौर्गत्यदवार्दितं** रौद्रदारिद्र्यदावानलग्रसितं **लोकं** भुवनजनं **निर्वापयन्ति** । काभिः? **भूरिकनकधाराभिः** प्रचुरस्वर्णच्छटाभिः । उपलक्षणं चैतत् करितुरगकोशदेशादीनाम् । किम्भूता **भगवन्तः? विपुलदया** निरवधिकरुणारससरस्वन्तः । के इव? **घना इव** । यथा घनाः पयोदाः प्रचुरवारिधाराभिः सुदुस्सहदवार्दितं लोकं निर्वापयन्ति । तेऽपि विपुलदकाः प्रभूताम्भःसम्भारसम्भृता भवन्ति ।।२४६।।

एवं जिनदानस्वरूपमभिधाय प्रकृते योजयन्नाह -

ता जइ निबद्धतित्थयर-नामगोया अवस्ससिवगामी ।
एवं दव्वुवयारं करिंसु किर भुवणगुरुणो वि ।।२४७।।
सइ सामग्गिविसेसे तम्हा सेसेहिं तत्थ सविसेसं ।
सव्वायरेणं संदिद्धसिद्धिगमणेहिं जइयव्वं ।।२४८।।

तद् यदि भुवनगुरवः श्रीमदर्हन्तोऽप्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण **द्रव्योपकारमकार्षुः** । किम्भूताः? **निबद्धतीर्थकरनामगोत्राः,** निकाचितसर्वोत्तमतीर्थकृत्सम्पदः । अत एवा**वश्यशिवगामिनस्तस्मात् सति सामग्रीविशेषे शेषैस्तदितरैस्तत्र** द्रव्योपकारे **सविशेषं सर्वादरेण यत्नः कार्यः** । किम्? इत्याह **सन्दिग्धसिद्धिगमनैः** । किमुक्तं भवति ? किल सकलान्यपि सच्चेष्टितानि तावदुत्तमपुम्भिरपुनर्भवायाद्रियन्ते, तत्प्राप्तिकृतनिश्चयाश्च तीर्थकृतोऽपि यदि द्रव्योपकारमकार्षुस्तत् कथं संशयितशिवपदप्राप्तिभिस्तदितरैस्तत्र निरुद्यमैर्भूयत इति ।।२४७।।२४८।।

इदानीं जिनानां द्रव्योपकारं निगमयन् भावोपकारं चोपक्षिपन्नाह -

एसो दव्वुवयारो जिणाण संखेवओ समक्खाओ ।
इन्हिं भावुवयारं पि किंपि लेसेण साहेमि ।।२४९।।

सुगमा ।।२४९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावोपकारमेव दर्शयति -

पडिवज्जिऊण तिविहं तिविहेण जिणुत्तमा विरइमग्गं ।
तिव्वतवतवियतणुणो दुग्गुवसग्गे अहिसहित्ता ।।२५०।।

तीर्थनाथा वसुधां विहरन्तीत्युत्तरगाथायां सम्बन्धः । किं कृत्वा ? **विरतिमार्गं** सर्वसंवराध्वानं **प्रतिपद्य** । कथं? **त्रिविधं त्रिविधेन** मनोवाक्कायैः करणकारणानुमतिभिश्च सर्वसावद्यपरिहारपुरःसरं यथा भवति । किम्भूताः? **तीव्रतपस्तापिततनवश्चतुर्थादिना** वत्सरपर्यन्तेन तीव्रेण तदितरनरदुष्करेण तपसा ग्लपितकार्मणतनवः । पुनः किं कृत्वा? **दुर्ग्गान्** क्लीबजनदुर्विषहान् सुरनरतिर्यग्जनिता**नुपसर्गान्** यातनाविशेषा**नधिसह्य** ।।२५०।। तथा -

सुक्कज्झाणानलसंपलित्त-घणघाइकम्मवणगहणा ।
अप्पडिहयमप्पडिमं केवलनाणं समणुपत्ता ।।२५१।।

शुक्लध्यानानलसम्प्रदीप्तघनघातिकर्म्मवनगहनाः । अत एव **केवलज्ञानं समनुप्राप्ताः** । किम्भूतम्? **अप्रतिहतं** द्रव्यक्षेत्रकालभावैरव्यवहितम् । अत **एवाप्रतिमम्** अवधिज्ञानादिभिरनुपमेयम् ।।२५१।। तथा -

सुररइयकणयमयकमल-कन्निकयासन्निवेसियपयग्गा ।
सिरधरियधवलछत्त-त्तयपयडियतिहुयणपहुत्ता ।।२५२।।

किल [1]केवलोत्पत्तेस्तीर्थकरास्त्रिदशविहितचामीकरसरसिजेष्वेव चरणन्यासं विदधति, न भूमौ । तेनेदमुक्तं - **सुरविरचितकनकमयकमलकर्णिकासन्निवेशितपदाग्राः** । तथा **शिरोविधृतोद्दण्डवैडूर्यदण्डमण्डितधवलछत्रत्रयप्रकटितत्रिभुवनप्रभुत्वाः** । किल यो हि यावतां भुवनानामधिपतिस्तस्य तावन्त्यातपत्राणि ध्रियन्ते, भगवन्तस्तु भुवनत्रयाधिपतय इति तदुपरि छत्रत्रयम् ।।२५२।। तथा -

सुरवइकरकमलपणुल्ल-ससिकरायारचामरुप्पीला ।
दिप्पंतपुरस्सरधम्म-चक्कसप्पंतइंदझया ।।२५३।।

गाथा-२५२ 1. **तुला -** यत्र पादौ पदं धत्तस्तव तत्र सुरासुराः । किरन्ति पङ्कजव्याजाच्छ्रियं पङ्कजवासिनीम् ।।
- वीत. स्तो. ४/३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]**सुरपतिकरकमलप्रेरितशशिकराकारचामरोत्पीलाः** । निर्भरभक्तिप्राग्भारभूषितमनसो हि सुरपतयस्तीर्थकृतां स्वयमन्दोलयन्ति विमलचामरनिकरान् । [2]तथा **दीप्यमानपुरस्सरधर्मचक्राः प्रसर्प्पदिन्द्रध्वजाश्च** विहारक्षणे हि भगवतामर्हतां धर्मचक्रमहेन्द्रध्वजौ प्रसर्प्पत पुरः इति ह्यैतिह्यम् ।।२५३।। तथा -

नियतेयतिणीकयचंडभाणु-भामंडलाणुगयदेहा ।
रयणमयपायवीढोववेय-सीहासणसमेया ।।२५४।।

[1]किल ब्रह्मज्ञानोत्पत्तेः प्रभृति भगवतामर्हतामङ्गानुलग्नं निजतेजस्तिरस्कृततरणिमण्डलं [भामण्डलं] प्रादुर्भवति । तदर्थमुक्तं - **निजतेजस्तृणीकृतचण्डभानुभामण्डलानुगतदेहाः** । [2]तथा विहारक्षणे ह्यर्हतां शिरसि श्वेतातपत्रत्रयमिव गगनगतं पृष्ठतः सपादपीठं मणिमयं मृगेन्द्रासनमुपैति । तेनैवमुक्तं **रत्नमयपादपीठोपपेतसिंहासनसमेताः** ।।२५४।। तथा -

संभमचलिरचउव्विह-देवनिकाएहिं कोडिसंखेहिं ।
सेविज्जंता ठाणे ठाणे निम्मियसमोसरणा ।।२५५।।

[1]किल विमलकेवलोत्पत्तेरनन्तरं लोकोत्तरार्हन्त्यमाहात्म्याद् भगवन्तोऽर्हन्तो नक्तन्दिनं बोधिनिमित्तं संशयशतापनोदाय च गमनागमनपरैर्जघन्यतोऽपि कोटिसङ्ख्यैर्नाकिनिकरैरमुक्तसन्निधयो भवन्तीत्यतः प्रोक्तम्-**सम्भ्रमचलद्भिश्चतुर्विधैरपि देवनिकायैः** कोटि**सङ्ख्यैः सेव्यमानाः** । तथा **स्थाने स्थाने** भव्यजनप्रबोधार्हे तैरेव त्रिदशसमूहैर्भगवत्प्रभावप्रेरितैर्धर्मदेशनाप्रवृत्तिनिमित्तं **निर्मित**मणिस्वर्णरजतमयचतुर्गोपुरोपशोभितगगनगतदिव्य**समवसरणाः** ।।२५५।। तथा -

---

गाथा-२५३ 1. **तुला** - तवेन्दुधामधवला चकास्ति चमरावली । हंसालिरिव वक्त्राब्जपरिचर्यापरायणा ।।
- वीत. स्तो. ५/४ ।।

2. **तुला** - मिथ्यादृशां युगान्तार्कः सुदृशाममृताञ्जनम् । तिलकं तीर्थकृल्लक्ष्म्याः पुरश्चक्रं तवैधते ।।
एकोऽयमेव जगति स्वामीत्याख्यातुमुच्छ्रिता । उच्चैरिन्द्रध्वजव्याजात्तर्जनी जम्भविद्विषा ।।
- वीत. स्तो. ४/१-२ ।।

गाथा-२५४ 1. **तुला** - यन्मूर्ध्नः पश्चिमे भागे जितमार्त्तण्डमण्डलम् ।
मा भूद्वपुर्दुरालोकमितीवोत्पिण्डितं महः ।। - वीत. स्तो. ३/११ ।।

2. **तुला** - मृगेन्द्रासनमारूढे त्वयि तन्वति देशनाम् ।
श्रोतुं मृगास्समायान्ति मृगेन्द्रमिव सेवितुम् ।। - वीत. स्तो. ५/५ ।।

गाथा-२५५ 1. **तुला** - जघन्यतः कोटिसङ्ख्यास्त्वां सेवन्ते सुरासुराः ।
भाग्यसम्भारलभ्येऽर्थे न मन्दाअप्युदासते ।। - वीत. स्तो. ४/१४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठुप्पयारवरपाडिहेर - पूओच्छवं पडिच्छंता ।
विहरंति तित्थनाहा नगरागरमंडियं वसुहं ।।२५६।।

अष्टप्रकारमशोकवृक्षादिकं **वरप्रातिहार्य**लक्षणं विशिष्टं सुरकृतं **पूजोत्सवं प्रतीच्छन्तः** सकलार्य**नगराकरमण्डितं मेदिनीमण्डलं** स्वप्रचारेण पवित्रयन्ति ।।२५६।।

साम्प्रतं तेषां भावोपकारं भावयन्नाह -

पणतीसवयणगुणसंगयाइ साहारणाइ सत्ताणं ।
जोयणपसप्पिणीए वाणीइ कुणंति धम्मकहं ।।२५७।।

एवंविधया **वाण्या** गिरा **धर्म्मकथां कुर्वन्ति** । किम्भूतया? संस्कारवत्त्व १ औदात्त्य २ उपकारपरीतत्व ३ मेघगम्भीरघोषत्व ४ प्रतिनादविधायित्व ५ दक्षिणत्व ६ उपनीतरागत्व ७ महार्थत्व ८ अव्याहतत्व ९ शिष्टत्व १० संशयोच्छेदित्व ११ निराकृतान्योत्तरत्व १२ हृदयङ्गमत्व १३ मिथः साकाङ्क्षत्व १४ प्रस्तावौचित्य १५ तत्त्वनिष्ठत्व १६ अप्रकीर्णप्रसृतत्व १७ अस्व-श्लाघान्यनिन्दित्व १८ अभिजात्य १९ अतिस्निग्धमधुरत्व २० प्रशस्यत्व २१ अमर्म्मवेधित्व २२ औदार्य २३ धर्म्मार्थप्रतिबद्धत्व २४ कारककाललिङ्गाद्यविपर्यासित्व २५ विभ्रमादिवियुक्तत्त्व २६ चित्रकृत्व २७ अद्भुतत्व २८ अनतिविलम्बित्व २९ अनेकजातिवैचित्र्य ३० आरोपितविशेषत्व ३१ सर्व्वप्रधानत्व ३२ वर्णपदवाक्यविविक्तत्व ३३ अव्युच्छित्ति ३४ अखेदित्व ३५ लक्षण**पञ्चत्रिंशद्व-चनगुणसङ्गतया** । तथा **सत्त्वानां** सुरनरतिर्यग्रूपाणामर्थावबोध**साधारणया** । पुनः किम्भू-तया ? **योजनप्रसर्प्पिण्या** योजनपरिमण्डलक्षेत्रावगाहक्षमया । एवम्प्रकारया गिरा धर्म्मदेशनां कुर्वन्ति ।।२५७।।

तथा च धर्ममुपदिशन्तः किं विदधति तदाह -

बोहिंति भव्वसत्ते मिच्छत्ततमंधयारमवणिंति ।
जणयंति भवविरागं निव्वाणपहं पयासंति ।।२५८।।

संसारचारयगयं भवियजणं उद्धरंति करुणाए ।
एसो भावुवयारो भुवणंमि जिणिंदचंदाणं ।।२५९।।

भव्यसत्त्वान् मुक्तिगमनयोग्यानङ्गिनो जीवाजीवादिषु पदार्थेषु **बोधयुक्तान् कुर्वन्ति** । तथा च

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सति तेषामेव **मिथ्यात्वतमोऽन्धकारमपनयन्ति** । उदिते हि जीवाजीवादिज्ञानभानुमति विलीयत एव मिथ्यात्वतमः । तथा **भवे** दुरन्तदुःखलक्षाक्षीणखनौ संसारे **विरागमुद्वेगं** भव्याङ्गिनामेव **जनयन्ति** । तथा तेषामेव **निर्वाणमार्गं** ज्ञानदर्शनचारित्रलक्षणं **प्रकाशयन्ति** । एवं च कुर्वाणाः कर्मऋणवशात् **संसारचारकगतं** सकलमपि समासन्नशिवपदं **भव्यजनं करुणया** निष्कृत्रिमया कृपया **समुद्धरन्ति** । स एव **जिनेन्द्रचन्द्राणां** भगवतामस्मिन् **भुवने भावोपकार** इति ।।२५८।।२५९।।

एवं दुविहो वि इमो उवयारो जइ जिणेहिं सयमेव ।
आइन्नो कहमन्ने इमम्मि सज्जंति न सयन्ना ।।२६०।।

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण **द्विविधोऽपि** द्रव्यभावभेदभिन्नोऽयं **परोपकारो यदि जिनैरर्हद्भिः स्वयमेवाचीर्णस्तदा** तन्मार्गानुवर्त्तिनः **सकर्णाः** प्रेक्षावन्तः **कथमस्मिन् न संसज्यन्ते ?** समुचितैव सहृदयानां तत्रासक्तिरित्यर्थः ।।२६०।। यतः -

रूवं चवणसरूवं दुजीहजीहाचलं जए जीयं ।
तडितरलमत्थजायं उवयारु च्चिय थिरो एगो ।।२६१।।

यस्माज्**जगति** यानि किल प्रतिबन्धहेतूनि तेषां तावदियं गतिः तथाहि - **रूपम**द्भुतस्वरूपमपि तथाविधाशुभसम्भारवशादकस्मादातङ्ककारिभिरुपनतै रोगादिभिः सनत्कुमारादेरिव **च्यवनस्वरूपम्** । तथा मानुष्यकादिसमग्रसामग्रीसफलीकारमूलबीजं **जीवितव्यमपि** विविधैरध्यवसानादिभिर्निमित्तै**र्द्विजिह्वजिह्वाचलं** द्विरसनरसनाग्रचञ्चलम् । तथा समस्तपुरुषार्थसार्थघटनसमर्थ**मर्थजातमपि तडित्तरलं** क्षणप्रभाप्रभोद्भेदभङ्गुरम्, तस्मात् तत्त्ववृत्त्या विचार्यमाणो द्रव्यभावरूपः **परोपकार एव** प्रायः **स्थिर**स्वरूपतामाकलयति । तथाहि - अवसर्प्पिणीप्रारम्भसमयसमुद्भूतैः प्रथमतीर्थनाथप्रभृतिभिः पुरुषप्रकाण्डैः कोटीकोटीसागरोपमप्रमितकालात् परतोऽपि ये धर्म्मप्रवृत्तिप्रभृतयः परोपकाराः किल क्रियन्ते, तेऽद्य यावदद्यापि तैरुपकारैर्विद्यमाना इव जगत्युपस्तूयन्त इति ।।२६१।।

एतदेव निगमयति -

कइवयदिणपाहुणएण हंत देहेण देहिणो कहवि ।
उवयारधणं जइ अज्जिणंति नणु सासया हुंति ।।२६२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हन्तेति सोपचारामन्त्रणे । अमी **देहिनः कथमपि यद्युपकारधनमर्जयन्ति,** तदा निश्चितम**विनश्वरा भवन्ति** । केन? **देहेन** । किम्भूतेन? **कतिपयदिनप्राघूर्णकेन** परिमितवासरातिथिना । उत्पत्तिमतां देहादीनामवश्यविनाशधर्मित्वात् । किमुक्तं भवन्ति? आयुःक्षयेण क्षणक्षयिणि क्षीणेऽपि भौतिके पिण्डे स्वशक्त्यनुमानेन सर्वत्र प्रवर्तितपरोपकारा यशःशरीरेणाचन्द्रार्कं स्थायिनस्ते ।।२६२।।

एवं सत्यपि केचिद्दुर्विदग्धा कदाचिदेवमप्युदीरयेयुर्यत् कृतोपकारेष्वेवोपकर्त्तव्यं, **'कृते प्रतिकृतं कुर्याद्'** इति वचनादतस्तान् साक्षेपमाक्षिपन्नाह -

कह तेसि चेयणत्तं उवयरिया उवयरंति जे अन्नं ।
ते च्चिय सचेयणा जे अणुवकया उवयरंति परं ।।२६३।।

आस्तां तावत्तेषां जगति प्रकृतिपुरुषत्वं यावदेकेन्द्रियादिसाधारणम् **चेतनत्व**मात्रमपि **कथं तेषां** जाघटीति? । **ये** पूर्वं **कृतोपकाराः परमुपकुर्वन्ति** । उपकृते ह्युपकरणं स्वस्य ऋणमोचनमेव, न पुनः सत्पुरुषता । केषां तर्हि सचेतनत्वम्? इत्याह - **त एवात्र सचेतना ये अनुपकृताः परमुपकुर्वन्ति** ।।२६३।।

न चायमनुपकृतोपकारः सकर्णविज्ञानामेव धर्म्मः, किन्तु विशिष्टचैतन्यशून्यैः पयोदप्रभृतिभिरप्यादृत इवायमीक्ष्यते । तथाहि -

समए समुन्नइं पाविऊण जलपडलममलमुज्झंतो ।
उवयरइ घणो लोयं किमुवकयं तस्स लोएण ।।२६४।।

किल न खलूपकृतिनिबन्धनैव घनादीनां प्रवृत्तिः, किन्तु तथाविश्रसापरिणामवशात् स्वभाव एवायममीषां । तथापि किल परोपकृतिबद्धबुद्धयस्ते तथा प्रवर्त्तन्त इति वितर्कगोचरमवतरति । तदेव दर्शयति - **समये** तपात्ययलक्षणे **समुन्नतिं** सकललोकलोचनानन्ददायिनीमुच्चैः स्थितिं **प्राप्य जलपटलं** सलिलप्राग्भार**ममलं** मौक्तिकक्षोदसोदरं **समुज्झन्** समविषमपात्रापात्रनिःस्वेश्वरादिविषयविभागमवगणय्य समदृष्ट्या **घनाघनः** प्रवर्षन्नु**पकरोत्येव** तावत् सस्यादिसम्पत्त्या सकलमपि **लोकम्** । **लोकेन** च कालत्रयेऽपि यदि **किमप्यस्योपकृतं** तदा स एव साक्षी ।।२६४।। तथा -

तुंगगिरिसिहरनिवडण - वियडोवलखलणनीयगामित्तं ।
अणुवकयाउ नईओ सहंति लोओवयारत्थं ।।२६५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नद्यः सरितोऽप्य**नुपकृता** अप्येतदेतद् **विषहन्ते** । किं तद्? इत्याह-**तुङ्गगिरिशिखरनिपतनम्** । उच्चैस्तरशिखरिशिखरप्राग्भारनिपतनकष्टम् । तथा **विकटोपलस्खलनं** स्थूलगण्डोपलप्रतिहतिक्लेशम् । तथा **नीचगामित्वं** निम्नसञ्चारयातनां च । किमर्थम्? किल स्नानपानावगाहनादिभि**र्लोकोपकारार्थमिति** ।।२६५।। तथा -

रविकरतावं पक्खीण चंचुनहपहरपयभरक्कमणं ।
विसहंति मग्गतरुणो पहियाणमपरिचियाण कए ।।२६६।।

रविकरतापं चण्डकरप्रचण्डतापसम्पातम् । तथा **पक्षिणां** विहगानां **चञ्चुनखप्रहारपदभराक्रमणम्** । अन्यदपि शीतवातवृष्ट्यादिकं कष्ट**मपरिचितानामपि पथिकानाम**ध्वन्यानां निजछायादलफलप्रसूनादिभिरुपकर्तुमिव **मार्गतरवो विषहन्ते** ।।२६६।। तथा -

भूमी वि वहइ भारं जलणो वि हु ओसहीगणं पयइ ।
आसासइ पवणो वि हु लोयं केणुवकयं तेसिं ।।२६७।।

भूमिर्वसुन्धरा**ऽपि** सर्वेषां सचेतनाचेतनानां **भारं** शुभाशुभांश्च स्पर्शान् किल चराचरस्य जगतोऽप्युपकृतये अवगणितस्वखेदा**वहति** । तेनैव सर्वंसहेत्यभिधीयते । तथा **ज्वलनो**ऽपि वह्निरप्य**ौषधीगणं** तन्दुलमुद्गमाषादिसस्यसमूहं क्षुधार्त्तस्य जन्तुजातस्योपकृतये किल **पचति** । तथा **पवनः** समीरणो**ऽपि** श्रमवशविवशं **जनमाश्वासयति** । अतः किं **तेषां** भूम्यादीनां किमपि **केनाप्युपकृतमपि** तु न किञ्चिदिति ।।२६७।। उपक्रान्तमेव निगमयन्नाह -

इय जइ अणुवकया वि हु विसिट्ठचेयन्नसुन्नया वि इमे ।
किर उवयरंति ता जयह दव्वभावोवयारेसु ।।२६८।।

इति पूर्वोदितप्रकारे**णामी** पयोदप्रभृतयो **विशिष्टचैतन्यशून्या अपि** स्पष्टपञ्चेन्द्रियत्वगुरुजनोपास्तिशास्त्राऽध्ययनजनसंव्यवहारादिविरहिताः । केनाप्य**नुपकृता अपि यदि** किलैवमु**पकुर्वन्ति, तदा** हे सचेतनास्तद्विलक्षणा ! यूयं **द्रव्यभावोपकारयोः** सविशेषं **यतध्वम्** ।।२६८।।

एतदेव दृष्टानोपष्टम्भयन्नाह -

जह ते मुणिंदनरनाहनंदणा भावदव्वउवयारं ।
काउं परुप्परं भवदुहाण विवरंमुहा जाया ।।२६९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथेति दृष्टान्तोपन्यासे । **यथा तौ मुनीन्द्रनरनाथनन्दनौ** कथायां वक्ष्यमाणस्वरूपौ **परस्पर-मन्योन्यं** प्रति **भावोपकारं द्रव्योपकारं** च विधाय क्रमेण **भवदुःखानां** संसृतिसमुत्थक्लेशजलानां **पराङ्मुखा**वभाजनं **जाताविति** ।।२६९।।

सम्प्रदायगम्यौ च मुनीन्द्रनरेन्द्रनन्दनौ । स चायम् -

।। परोपकारविषये पुष्पचूल-पुष्पचूलाकथानकम् ।।

जम्बूद्वीपेऽत्र भरते भ्राजितं भूरिभूतिभिः । पुरं श्रीपुरमित्यासीत् पौरलोकप्रियाकरम् ।।१।।
यदिन्द्रनीलवप्रोस्रै - रूर्ध्वमाबद्धमण्डलैः । पुरप्रष्ठतया रेजे धृतनीलातपत्रवत् ।।२।।
अभ्रंलिहगृहश्रेणिसङ्गिनीनमृगीदृशाम् । यत्र वक्त्रेन्दुभिश्चक्रे शतचन्द्रं नभस्तलम् ।।३।। विशेषकम् ।।
यस्मिन् जिनेन्द्रबिम्बानां मुखचन्द्रमरीचिभिः । निरस्तं निस्थितिं लेभे सबाह्याभ्यन्तरं तमः ।।४।।
तत्रासीद् विमलयशाश्चरितार्थाभिधो नृपः । न्यायधर्म्मौ विना यस्य नान्यत् प्रियमजायत ।।५।।
नृपस्य मान्यो द्वेष्योऽयं दुर्बलोऽयमयं बली । नाभूत् पौरेषु शब्दोऽयं यस्मिन् शासति मेदिनीम् ।।६।।
विलसत्कुन्तला काञ्चीमध्यदेशमनोहरा । अचलेवापरा तस्य प्रियाऽजनि सुमङ्गला ।।७।।
भुञ्जानस्य तया सार्द्धं तस्य वैषयिकं सुखम् । सुस्वप्नसूचितः काले पुष्पचूलः सुतोऽभवत् ।।८।।
कमला कौस्तुभस्येव सुधेव च सुधानिधेः । वत्सला पुष्पचूलेति स्वसा तस्याभवत् क्रमात् ।।९।।
अधीयाय तया सार्द्धं स कलाः स्वकुलोचिताः । स्मरसञ्जीवनं प्राप्य क्रमाद् यौवनमप्यसौ ।।१०।।
सुमेधाः सत्यसन्धश्च परानाक्रम्यविक्रमः । उदारः सत्त्वसारश्च स चचार यथासुखम् ।।११।।
विनयं नीयमानोऽपि स दुर्ललितचेष्टितः । केलीकिलतया किञ्चित् पौरलोकानुपाद्रवत् ।।१२।।
जात्यैव मसृणत्वेन भूमिभर्त्तुर्भयेन च । आगांसि सेहिरे पौरास्तस्येति धृतबुद्धयः ।।१३।।
यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता । एकैकमप्यनर्थाय किमुतास्य चतुष्टयम् ।।१४।।
मिथो निभृतमूचुस्ते तेनात्यन्तं कदर्थिताः । वक्रचूलोऽप्यसौ पुष्पचूलः किमभिधीयते ।।१५।।
तच्च तच्चरितं चारनरेभ्योऽवेदि भुभुजा । द्व्यक्षा अपि सहस्राक्षाश्चाराक्षैर्हि क्षितीश्वराः ।।१६।।
महाजनमथाहूय पुष्पचूलस्य पश्यतः । सामन्तादीन् समुद्दिश्य जगादेति महीपतिः ।।१७।।
हंहो ! शृणुत सर्वेऽपि पूर्वजैः पार्थिवैर्मम । न्यायधर्मपरैः स्वस्य प्रजेवापाल्यत प्रजा ।।१८।।
जटावल्कलभश्माक्षसूत्रादीनां परिग्रहः । न धर्म्मो भूभुजां किन्तु प्रजापालनमेव हि ।।१९।।
प्रजापीडनसम्भूतो विरागपवनो नृपम् । समूलमुन्मूलयति नदीरय इव द्रुमम् ।।२०।।

गाथा-२६९ 1. वप्रस्य उस्रैः किरणैः वप्रोस्रैः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्फुटमेव च शास्ते यद् दशवेश्यासमो नृपः । किन्तु निस्तरति न्यायमनपायं प्रवर्त्तयन् ।।२१।।
अतोऽहमपि पूर्वेषां नीतिक्रममनुस्मरन् । सर्वात्मनापि प्रयते प्रजाभ्युदयकाम्यया ।।२२।।
तस्मात् सचिवसामन्तमण्डलेशादिभिः किमु । पुत्रेणापि न मे कार्यं यो न पालयति प्रजाः ।।२३।।
इत्युक्ते भूभुजा ज्ञातपरमार्थैस्तदाऽखिलैः । पश्यद्भिः पुष्पचूलास्यं नृपाज्ञा प्रत्यपद्यत ।।२४।।
श्रुत्वा तत् पुष्पचूलोऽपि चिन्तयामास चेतसि । मामुद्दिश्य ध्रुवं सर्वं तातेनेदमुदीरितम् ।।२५।।
तत् पित्रा ज्ञातदोषस्य लोकेऽप्यक्षिगतस्य मे । विगर्हितमवस्थानं नगरेऽस्मिन्नतः परम् ।।२६।।
निश्चित्येति निशीथिन्या - मभिमानधनोऽथ सः । हस्ते निशातं निस्तृं[त्रिं]शं हद्युत्साहमिवोद्वहन् ।।२७।।
निर्गत्य नगराद् भिल्लपल्लीमेकामलीयत । अस्वामिकैश्च शवरैः स्वामित्वे प्रत्यपद्यत ।।२८।।
पुष्पचूलापि विज्ञाततदुदन्ता धृतारतिः । तमेवाशिश्रियद् गाढसौभ्रात्रस्नेहमोहिता ।।२९।।
प्रकृत्या सदयोऽप्येष पुलिन्दैर्निर्दयैर्युतः । तत्तुल्योऽभूद् दहत्येव जलं ज्वलनयोगतः ।।३०।।
ब्राह्मणश्रवणाद्यैः स समगंस्त न जातुचित् । प्रेरयन्ति किलैते मां सद्बोधैर्धर्म्मकर्म्मणि ।।३१।।
निरङ्कुशतया कामं रौद्रो रस इवाङ्गवान् । स बाह्याभ्यन्तरान् प्राणान् प्राणिनामघृणोऽहरत् ।।३२।।
नगरग्रामसार्थादि समुल्लुण्टन् असम्भवैः । विभवैः स क्रमेणाभूत् पुष्टकोशपरिच्छदः ।।३३।।
दुरवस्थामथान्येद्युः सरसां सरितामपि । बाढं सोढुमिवाशक्तः प्रावर्त्तत तपात्ययः ।।३४।।
चलन्तीभिर्बलाकाभिर्यथा कादम्बिनी बभौ । कुटजानां स्फुटन्तीभिः कलिकाभिस्तथा वनी ।।३५।।
जलदच्छत्रमज्योत्स्नं वीक्ष्य चन्द्रं प्रवासिनः । सस्मरुः प्रेयसीवक्त्रमहासं लुलितालकम् ।।३६।।
प्रस्थितान् पथिकान् वीक्ष्य त्वरया प्रेयसीरनु । दिदेश दयया विद्युन्मार्गान् मेघान्धकारितान् ।।३७।।
काननं केकिकेकाभिर्गगनं घनगर्जितैः । सरः शालूरसितैर्वाचालितमजायत ।।३८।।
घनान्धकारिते व्योम्नि राजहंसाः प्रतस्थिरे । एके मानसमुद्दिश्य राजधानीमथापरे [मे] ।।३९।।
तदा चातकजीवातौ जीमूते जलमुज्झति । कदम्बवनवीथीव पृथिवी समुदश्वसत् ।।४०।।
इति प्रियवतीप्रीतिप्रदेऽस्मिन् जलदागमे । सूरयः केऽपि तां पल्लीं समाजग्मुः पथश्च्युताः ।।४१।।
दृष्ट्वा दयाप्रधानोऽथ हरिताङ्कुरदन्तुरान् । पयःप्लवप्लुतान् मार्गान् विहारेऽनधिकारिणः ।।४२।।
अतिवाहयितुं वर्षास्तत्रैव मुनिपुङ्गवः । वसत्यै प्राहिणोत् पल्ल्यां सन्निवेशधिया मुनीन् ।।४३।। युग्मम् ।।
अनार्यास्तैरथार्यैस्ते वसतिं याचितास्तदा । साधु खेलनमायातमेवं मुमुदिरे हृदि ।।४४।।
प्रत्यूचुः सोपहासं च भगवन्नस्ति नः प्रभुः । वक्रचूलोऽत्र स श्राद्धो भवत्सवत्यन्तवत्सलः ।।४५।।
वसतिं भक्तपानादिसमेतां वः स दास्यति । इत्युक्तास्ते महात्मानस्तैस्तमेवोपतस्थिरे ।।४६।।
पृष्टाश्च कारणं तेन यथावस्थितमूचिरे । सोऽचिन्तयच्च धिग् धूर्त्तैस्तैरेते विप्रतारिताः ।।४७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किञ्चिदार्द्रमनाश्चाथ प्रत्यूचे तान् महर्षयः । ईदृग् निस्तृं[त्रिं]शचेष्टस्य कुतः श्राद्धत्वमस्ति मे ।।४८।।
ददामि किन्तु वसतिमेकया वो व्यवस्थया । धर्म्मोपदेशमात्मीयं यदि यूयं न दत्त मे ।।४९।।
तथेति प्रतिपद्याथ सूरयस्तेऽवतस्थिरे । पुष्पचूलेन दत्तायां वसतौ वशिनां वराः ।।५०।।
असंयमैकजिष्णूनां रागद्वेषद्वयद्विषाम् । जितदण्डत्रयाणां च सम्परायोदयद्रुहाम् ।।५१।।
पञ्चव्रतजुषां षट्सु कायेषु यतनाभृताम् । भयसप्तकमुक्तानां मदस्थानस्थितिच्छिदाम् ।।५२।।
नवभिर्गुप्तिभिर्गुप्तमजिह्मं ब्रह्म चिन्वताम् । तत्रातिचक्रमुर्वर्षास्तेषां क्षान्त्यादिशालिनाम् ।।५३।। विशेषकम् ।।
अथ प्राप्ते परीणामं तृणवल्लीलतागणे । जलश्रोतसु शान्तेषु निर्जीवे जगतीतले ।।५४।।
शकटोक्षद्विपाश्वोष्ट्रैः स्वैरं क्षुण्णेषु वर्त्मसु । विहारसमयं ज्ञात्वा सूरिः प्रोवाच पल्लिपम् ।।५५।।
भवत्साहाय्यतो भद्र ! भद्रेणैवातिवाहितः । अस्माभिर्दुस्तरोऽप्येष घनर्तुरकुतोभयैः ।।५६।।
इच्छामस्त्वदनुज्ञाता विहर्तुं साम्प्रतं वयम् । शय्यातरोऽसि तदितो धर्म्मलाभोऽस्तु भोस्तव ।।५७।।
इत्युक्ते सूरिभिः सोऽन्तर्भूरिभिस्तद्गुणैर्भृशम् । भावितः प्रत्युवाचैवं प्रणम्य रचिताञ्जलिः ।।५८।।
भगवन् ! किमु नात्रैव भवद्भिः स्थीयते सदा ? । शिरसाऽपि धृता यूयं यतो मे न व्यथाप्रदाः ।।५९।।
मुनिनाथोऽप्यथोवाच पार्थिवात्मज ! युज्यते । मुनीनां मधुपानां च व्रजानामथ पक्षिणाम् ।।६०।।
नैकत्रावस्थितिर्जातु गुणसङ्ग्रहणैषिणाम् । अस्माकं तु विशेषेण निस्सङ्गाध्वनि धावताम् ।।६१।। युग्मम् ।।
इत्युक्तः सोऽपि तच्चित्तं वीतरागं विदन्नथ । तान् नेतुं निजसीमानं चचाल सपरिच्छदः ।।६२।।
क्रमेण प्राप्य तत्पल्लि - सीमानं मुनिपुङ्गवः । ऊचे नृपाङ्गजन्मानमिति प्रकृतिवत्सलः ।।६३।।
राजपुत्र ! प्रतिज्ञा नः पूर्णा पूर्वप्रतिश्रुता । अतस्त्वां प्रति वक्ष्यामः किञ्चिद् धर्म्मानुगं वचः ।।६४।।
उपकारः परे कार्योऽनुपकारपरेऽपि हि । किं पुनस्त्वादृशे साक्षाद् दर्शितोपकृतिक्रमे ।।६५।।
शाययत्येव निःशेषं समसुप्तिर्जनं यतः । परोपकार एवैकः किन्तु जागर्त्यतन्द्रितः ।।६६।।
स पुनर्भवति द्वेधा द्रव्यतो भावतोऽपि च । आद्यस्तत्र कृतोऽस्माकं त्वया वसतिदानतः ।।६७।।
वयं विधातुमिच्छामो द्वितीयं भवतः पुनः । आदत्स्व वत्स ! सम्यक्त्वं मूलं मोक्षतरोरतः ।।६८।।
अणुव्रतानि पञ्चापि गुणशिक्षाव्रतानि च । भावतः प्रतिपद्यस्व शक्तश्चेत्र मुनिव्रतम् ।।६९।।
जजल्प पुष्पचूलोऽपि मन्दाक्षविनमन्मुखः । अहो ! भगवतां पापे कृपा मय्यपि कीदृशी ? ।।७०।।
सत्यात्मन् ! सत्य एवायं धर्म्मः पूज्यैः प्रदर्शितः । किन्तु धारयितुं नैनमधमोऽहं क्षमो यतः ।।७१।।
आर्त्तरौद्रार्दिते चित्ते शुभात्मध्यानसम्भवम् । सम्यक्त्वं स्थिरतामेति स्थले कमलवत् कथम् ।।७२।।
निर्दयं निघ्नतः सत्त्वान् वदतोऽनृतमेव हि । परवित्तैकजीवातोः परस्त्रीसक्तचेतसः ।।७३।।
अतुच्छमूर्च्छन्मूर्च्छस्य निशि मांसादिभोजिनः । खरकर्म्मैकनिष्ठस्य कथं विरतिरस्तु मे ।।७४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहो ! जघन्यता मे यदकारणकृपालवः । धर्म्मोपदेशदा यूयमेवं वचोनियन्त्रिताः ।।७५।।
इत्यादि जल्पतस्तस्य योग्यतामुपयोगतः । विदित्वा प्रत्युवाचैवं वाचं वाचंयमाग्रणीः ।।७६।।
नृपात्मज ! तवाभाति यद्येतदतिदुष्करम् । तदायतिहितं सुष्ठु सुकरं च वचः शृणु ।।७७।।
येषां फलानां त्वन्नाम स्वतो वा परतोऽपि वा । न जानासि न भक्ष्याणि भवता तानि जातुचित् ।।७८।।
यत्र वेच्छसि जीवे त्वं प्रहर्त्तुमतिनिर्दयः । द्वित्राणि तत्र व्यावृत्त्य पदानि प्रहरेः सदा ।।७९।।
राज्ञो रिरंसमानाऽपि रन्तव्या न प्रिया त्वया । काकमांसं न भोक्तव्यं सुमहत्यपि सङ्कटे ।।८०।।
चतुष्टयमिदं वत्स ! नियमानामनाहतम् । पालयन्नचलश्चित्ते विपुलां प्राप्स्यसि श्रियम् ।।८१।।
तथेति प्रतिपद्याथ प्रणम्य च मुनीश्वरम् । व्यावर्त्तत् स्वसीमान्ताद् धन्यंमन्यो नृपात्मजः ।।८२।।
गुरूनिव गुरूक्तानि वचनानि वहन् हृदि । स भूयोऽप्यभजद् वृत्तिं कल्पितां कर्म्मभिर्निजैः ।।८३।।
अन्येद्युर्देशितं चारनरैः सार्थं पृथुं प्रति । प्रतस्थे मितपाथेयः सह स्वैः पार्थिवात्मजः ।।८४।।
दैवादन्येन मार्गेण सार्थे स्वस्थानमीयुषि । फालच्युत इव द्वीपी विषण्णः सन्न्यवर्त्तत ।।८५।।
ततस्त्रुटितपाथेयैः पथि तैः पारिपन्थिकैः । फलानि पुष्पचूलाय क्षुधार्त्तायोपनिन्यिरे ।।८६।।
वीक्ष्य तान्यतिहृद्यानि स्वादूनि सुरभीणि च । अपृच्छत् पुष्पचूलस्तान् कान्यमूनि फलानि भोः ।।८७।।
जगुस्ते देव ! जानीमो नामीषामभिधां वयम् । किन्तु दिव्यफलानीति दृश्यमानानि भान्ति नः ।।८८।।
स्मरन् गुरुवचः सोऽथ सत्यव्रतमहाधनः । जगाद नाहमश्नामि फलान्यविदितानि भोः ।।८९।।
सोपहासमथोचुस्ते स्वामिन् ! धूर्त्तैः प्रतारितः । पीयूषपेशलान्येतान्यश्नासि न फलानि किम् ।।९०।।
प्रत्यूचे सोऽपि धिग् मूर्खाः किमकारणवत्सलाः । वञ्चयन्ति कदाचित् ते जनं संयमिनां वराः ।।९१।।
प्रतिपन्नं च मुञ्चामि न कदाचिदहं वचः । नरस्य वाग्विहीनस्य शवस्य च किमन्तरम् ।।९२।।
एवं कृतप्रतिज्ञेऽथ तस्मिंस्तदनुजीविनः । फलानि तानि जक्षुस्ते बुभुक्षाक्षामकुक्षयः ।।९३।।
क्रमात् फलरसे तस्मिन् परिणाममुपेयुषि । सहैव निद्रया दीर्घनिद्रां ते प्रतिपेदिरे ।।९४।।
प्रोवाच पुष्पचूलस्तान् प्रयाणावसरे यदा । नैकोऽपि तेषु सुप्तेषु प्रतिवाचमदात् तदा ।।९५।।
किमेतदिति सम्भ्रान्तः स यावदुपसर्प्पति । तावदुत्क्रान्तचैतन्यानपश्यत्तांस्तपस्विनः ।।९६।।
सविषादमथो दध्यौ ध्रुवं विषफलैरमी । भक्षितैस्तैर्दशामेतामविचाराः प्रपेदिरे ।।९७।।
प्रदत्तो गुरुभिर्न स्याद् यदि मेऽभिग्रहस्तदा । अभविष्यदसावेव ममापि हि दशा तदा ।।९८।।
अहो ! तेषां कृपालुत्वमहो ! मैत्र्यमकृत्रिमम् । अहो ! परोपकारित्वमहो ! विज्ञानशालिता ।।९९।।
इत्यादि विमृशंस्तेषां कृत्वा शस्त्राणि भूमिसात् । दिवेन्दुरिव विच्छायो विगतोडुपरिच्छदः ।।१००।।
कथमेकः स्वलोकस्य दर्शयिष्ये निजाननम् । इति त्रपावशान्नक्तं सोऽथ पल्लीमलीयत ।।१०१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निशीथसमये यावन्निजावासं प्रविश्य सः । द्वारदेशमुपेयाय निभृतं वासवेश्मनः ।।१०२।।
तावत् पुंसा सहैकेन प्रसुप्तां वल्लभां निजाम् । दीपालोकेनालुलोके प्रकोपाटोपपाटलः ।।१०३।।
ततः करिघटाकुम्भस्थलीदलनलालसम् । चकर्ष कोशात् कौक्षेयं बिलादिव महोरगम् ।।१०४।।
निहन्मि युग्ममप्येतदनार्यमिति राजसूः । झटित्युपाटयन् खड्गं तां सस्मार गुरोर्गिरम् ।।१०५।।
युयुत्सुरिव मेषोऽथ यावत् पश्चादपासरत् । झणज्झणिति चक्रेऽसिस्तावदास्फलितस्तुलाम् ।।१०६।।
मरालपक्षवत् कर्णे तेन शब्देन सर्य्यता । पुंवेषा पुष्पचूला सा झगिति प्रत्यबुध्यत ।।१०७।।
जीवतान्नन्दतालोके पुष्पचूलो ममाग्रजः । सम्भ्रमादिति जल्पन्ती तल्पमुज्झाञ्चकार सा ।।१०८।।
स्वस्वसारमिमां ज्ञात्वा हर्षशोकसमाकुलः । ननाम पुष्पचूलस्तां किमेतदिति चाब्रवीत् ।।१०९।।
साऽप्येनमवदद् भ्रातर्विजयाय गते त्वयि । नटाः केचिदिहागत्यावसरं मां ययाचिरे ।।११०।।
जने यास्यति मद्भ्रातुरवस्कन्दकथा प्रथाम् । इति त्वद्वेषधारिण्या ते मयैव हि नर्त्तिताः ।।१११।।
ततश्च विह्वलीभूता प्रेक्षान्ते निद्रया भृशम् । समं निजप्रजावत्या प्रसुप्तास्म्येवमेव हि ।।११२।।
पुष्पचूलस्तदाकर्ण्य धुन्वन् मूर्द्धानमुच्चकैः । प्रशशंस मुहुः सूरीन् स्वस्याभिग्रहदायिनः ।।११३।।
दध्यौ चैवमहो ! साधुसम्पर्कः सर्वकामदः । अपवादाच्च पापाच्च मुक्तोऽहं यत्प्रभावतः ।।११४।।
त्रातो मृत्युमुखात् पूर्वमधुना नरकाननात् । अनृणोऽहं भविष्यामि कथं तेषां महात्मनाम् ।।११५।।
इत्यादि भावयन् भावशुद्ध्या सोऽभिग्रहान् निजान् । पालयामास सञ्जातप्रत्ययः सत्त्वसारधीः ।।११६।।
विमुक्तः किन्तु वृन्देनावस्कन्दादावनीश्वरः । स वृत्तिं कल्पयामास सन्धिदानादिसाहसैः ।।११७।।
अवन्तीं नगरीं सोऽगादन्येद्युरदवीयसीम् । विचारधवलाह्वेन क्षोणिपालेन पालिताम् ।।११८।।
तत्र वेश्मद्वयं तेन बहिर्लक्ष्मीमनोहरम् । कल्पितं सन्धिदानाय सम्भाव्यगुरुवैभवम् ।।११९।।
अथ निसञ्चरे राजसञ्चरे विरते रवे । यामिनीयौवनोद्भेदे शूचीभेद्ये तमस्यपि ।।१२०।।
गाढनिद्रावगाढेषु पौरेषु प्रविवेश सः । एकस्मिन् मन्दिरे राजतनयो दिनदृष्टयोः ।।१२१।। युग्मम् ।।
अलक्ष्यपदसञ्चारः कक्षान्तरगतोऽथ सः । दिनायव्ययसंवादं पितुः पुत्रस्य चाशृणोत् ।।१२२।।
अस्मरन्तं च तत्रैकां काकिणीं तनयं निजम् । बभाण भ्रकुटीभङ्गभीषणास्याः पिता तदा ।।१२३।।
रे दुराचार ! गमयत्रैकैकां काकिणीमिति । करिष्यस्यचिरात् त्वं मां कुलपांसन ! निर्द्धनम् ।।१२४।।
निस्सर त्वरितं तस्मादलक्ष्मीकन्द ! मन्दिरात् । न स्थितिर्मद्गृहेऽस्तीदृगयुक्तव्ययकारिणाम् ।।१२५।।
अचिन्तयत्तदाकर्ण्य चित्ते नृपतिनन्दनः । मितम्पचत्वमस्याहो ! सत्यं वाचामगोचरः ।।१२६।।
गृहभारक्षमं दक्षं क्षमिणं व्यवसायिनम् । काकिणीकारणात् पुत्रं निर्वासयति यो गृहात् ।।१२७।।
सर्व्वस्वे मुषिते तस्य परुषेण मयाऽधुना । स्फुटिते हृदि निर्यान्तमात्मानं को निरोत्स्यति ।।१२८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलं तदस्य वित्तेन प्राणव्यापत्तिहेतुना । इति निश्चित्य सत्त्वैकगेहं तद्गेहतो ययौ ।।१२९।।
अथ द्वितीयं सदनं दिनदृष्टं विवेश सः । रजतस्वर्णसोपानं विचित्रमणिकुट्टिमम् ।।१३०।।
अहो समृद्धिर्गेहस्य बहिरप्यतिशायिनी । अस्याः सहस्रगुणिता ध्रुवमन्तर्भविष्यति ।।१३१।।
इत्यादि विमृशन् भूमीर्लङ्घयन्नुत्तरोत्तराः । अन्तस्तरङ्गितानन्दश्चन्द्रशालामसौ ययौ ।।१३२।।
तत्र माणिक्यवेद्यन्तर्मणिपल्यङ्कसङ्गताम् । देवदूष्यावृताद्धाङ्गीमनर्घ्यमणिभूषणाम् ।।१३३।।
देवदत्ताऽभिधां वेश्यां स्मरसञ्जीवनौषधीम् । ददर्श गाढमालिङ्ग्य सुप्तां कुष्ठिनमेककम् ।।१३४।। युग्मम् ।।
तस्यास्तच्चेष्टितं दृष्ट्वा लोभसङ्क्षोभसम्भवम् । विषादमाससादासौ मेदुरं मेदिनीन्द्रसूः ।।१३५।।
अचिन्तयच्च यस्यार्थे भूयांस्यंहांसि देहिनः । आदृत्यापि सुखश्रेणीं घटयन्ति निरन्तरम् ।।१३६।।
तत्रापि हि निजे पापा निरपेक्षा वपुष्यसौ । यैवमर्जयति द्रव्यमव्याहतमनोरथा ।।१३७।।
अप्यन्तरात्मनो देहात्मनोऽपि ह्यतिवल्लभम् । वसु तस्याः समादाय जीवेनानुद्गतं हृतम् ।।१३८।।
वक्ष्ये किं पौरुषोष्माणं भोक्ष्ये कां वा सुखश्रियम् । कस्मै पात्राय दास्यामि यास्यामि कतमां गतिम् ।।१३९।।
पुरन्ध्रीणां धनं तावदन्यासामापि मानिनाम् । नादातुमुचितं हन्त ! किं पुनः पणयोषिताम् ।।१४०।।
धिगिमामधमां तस्माद् धिगस्यां निन्दितं धनम् । तल्लिप्सया समायातं धिङ्मामपि नराधमम् ।।१४१।।
इत्यालोच्य स्वचित्तेऽथ वित्ते तस्याः स निस्पृहः । पथा यथागतेनैव चतुष्पथमुपाययौ ।।१४२।।
दध्यौ तत्रोर्ध्व एवायमप्रमेयपराक्रमः । क्लेशार्जितधनैरेभिर्मुषितैः किं पुरीजनैः ।।१४३।।
अक्लेशेनात्तममितं [2]स्वापतेयं महीपतेः । कोशादाकृष्य गृह्णामि किं नात्मीयमिवाधुना ।।१४४।।
एवं कृते जीवतो मे भवति श्रीरखण्डिता । क्षत्रवृत्त्या मृतस्याथ जने कीर्त्तिरनिन्दिता ।।१४५।।
निश्चित्येति विनिक्षिप्य गुप्तवातायनं प्रति । रश्मिसंयमितां गोधां तदाधारमवाप्य च ।।१४६।।
गवाक्षमन्तरिक्षस्थं लीलयैवारुरोह सः । निभृतं मध्यमध्यास्त नृपसौधस्य च क्रमात् ।।१४७।। युग्मम् ।।
विचारधवलस्याथ नृपस्य महिषी तदा । पतिप्रणयकोपेन दैवात्तत्र समागमत् ।।१४८।।
नीरन्ध्रे चान्धकारेऽस्य करस्पर्शेन चिन्वतः । सारवस्तूच्चयं पञ्चशाखस्तामस्पृशत् तदा ।।१४९।।
स्पर्शानुमानतस्तस्य पुमानिति सविस्मया । सद्यः सपुलकस्वेदा साऽभूत् प्रकृतिपुंश्चली ।।१५०।।
हस्तानुसारतस्तूर्णमभिसृत्य स्मितानना । वृषस्यन्ती वृषस्कन्धमभ्यधत्त तमित्यसौ ।।१५१।।
अपि योगिधियामस्मिन्नगाधे सौधसङ्कटे । कथं प्रविष्टः को वा त्वं साहसैकमहानिधिः ।।१५२।।
पुष्पचूलोऽवदद्धीरं साहसैकधनं विना । प्रविशेत् कः परावासं विशेषान्नृपमन्दिरम् ।।१५३।।

---

2. **स्वापतेय** - (नपुं.) धन-दोलत इति भाषायाम्, स्वपतौ साधु स्वापतेयम् "पथ्यातिथि" - ७/१/१६ ।। इत्येयण् ।। - अभि. चि. ना. श्लो. १९१ स्वो. टीकायाम् ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकामा साऽभ्यधाद् भ्रान्तिश्चौर रे ! तव का ननु । स्पृष्टमात्रेण मे येनापहृतं हृदयं बलात् ।।१५४।।
अहो ! भाग्यानि ते यस्य सर्प्यार्थं क्षिपतः करम् । बिलान्तः स्वर्णमाणिक्यकङ्कणः पतितः करे ।।१५५।।
तन्मां सुभग ! भाग्यैकलभ्यामभ्यागतां स्वयम् । भजनीयामुपेत्यापि भज सार्द्धं समृद्धिभिः ।।१५६।।
इतरोऽप्यब्रवीत् काऽसि शुभे ! त्वं कस्य वा प्रिया । अज्ञातकुलशीलं मां किमर्थं भजसेऽथ वा ।।१५७।।
साऽप्युवाच सकोपेव त्वं मामपि न वेत्सि किम् । विचारधवलक्षोणिपालस्य प्राणवल्लभाम् ।।१५८।।
तदाकर्ण्य वचस्तस्यास्तत्क्षणं क्षोणिपात्मजः । सस्माराभिग्रहं स्वस्य पश्यन्निव गुरुं पुरः ।।१५९।।
सद्यस्ततो निराकृत्य विकृतिं चेतसोऽपि हि । प्रणिपत्य पदौ तस्याः कृताञ्जलिरदोऽवदत् ।।१६०।।
यदि त्वं भूपतेः पत्नी जनन्यसि तदा मम । निगृहाण दुरक्षाणां मातः कातरतामिमाम् ।।१६१।।
अवरुह्य गजेन्द्रात् कः खरमारोढुमिच्छति । कः परित्यज्य माणिक्यं शिक्यं स्वीकुरुते सुधीः ।।१६२।।
विश्वम्भरमनादृत्य विचारधवलं नृपम् । को मां प्रार्थयते हन्त ! स्वोदरस्याप्यपूरकम् ।।१६३।।
दिव्यरूपा हि राजानोऽवतरन्ति महीतले । अतस्तदाश्रितं वस्तु वन्द्यमादरतः परम् ।।१६४।।
इतरस्यापि भोक्तव्या परस्य स्त्रीर्न धीमताम् । पालनात् पितृकल्पस्य किं पुनः पृथिवीशितुः ।।१६५।।
लोकद्वयविरुद्धं तद् गर्हितं धर्म्मचारिणाम् । अपस्मारमिदं मुञ्च मातः ! पातनिबन्धनम् ।।१६६।।
वचसा तेन सा तस्य प्रतिकूलेन पीडिता । वैलक्ष्यहसितोत्क्षेपा साक्षेपमिदमब्रवीत् ।।१६७।।
धूर्त्ततोऽसि ध्रुवं धूर्त्तैर्मुग्धमुर्द्धन्य कैरपि । शङ्कया परलोकस्य सङ्कोचयसि यन्मनः ।।१६८।।
अदृष्टस्य सुखस्यार्थे यः सुखं दृष्टमुज्झति । उन्नतं जलदं वीक्ष्य जलकुम्भं भिनत्त्यसौ ।।१६९।।
दृष्टः केन परो लोकः ? को वा तस्मादुपागतः । धूर्त्ताः प्रतारयन्त्येव द्विषन्तः सुखिनं जनम् ।।१७०।।
सम्भोगाय प्रकृप्तेऽस्मिन् पुंस्त्रीरूपे जगज्जने । नारीणां च नराणां च केयं स्वपरकल्पना ।।१७१।।
विकल्पकल्पनां मुक्त्वा सुखस्य प्रतिपन्थिनीम् । प्रत्यक्षां सम्पदं तन्मामनुकूलय बालिशः ।।१७२।।
पुष्पचूलोऽवदत्र त्वं सम्पदेवं प्रलापिनी । मम च स्वस्य चाध्यक्षा विपदेवासि केवलम् ।।१७३।।
अदृष्टचरमेतन्मे यदीच्छसि बलादपि । सिंहीव जम्बुकं राजपत्न्यपि प्राकृतं जनम् ।।१७४।।
अहो तव कुहेवाकः कोऽपि वेणेरिवेक्ष्यते । शिरसा ध्रियमाणापि निम्नमेवानुधावसि ।।१७५।।
समुत्पन्नासि यत्र त्वं पाणिर्यत्र च पीडितः । तस्य वंशद्वयस्यापि दवज्वालेव जङ्गमा ।।१७६।।
अनेन दुश्चरित्रेण त्वदङ्गीकारकारिणः । विचारधवलस्याख्यां कुरुषे किं निरन्वयाम् ।।१७७।।
इत्यालापपयः पीत्वा कुटिला सर्प्पिणीव सा । पुनर्वाग्गरलोद्गारमुद्गगारेति निस्त्रपा ।।१७८।।
रे दुर्विदग्ध ! स्वाधीनां सुधां पिबसि चेन्न हि । तत्प्रत्युतैनामन्यान्यदूषणैर्दूषयस्यलम् ।।१७९।।
पार्थिवैः प्रार्थनीयाहं प्रार्थये जगतीह कम् । स्वयंवरां श्रियं तन्मां विमानयसि मूढ ! किम् ।।१८०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयेन भूपतेर्नूनं गृह्णास्यनुनयं न मे । चौरत्वेऽपि समानं तद् विरुद्धायां मयीह ते ।।१८१।।
असद्ग्रहमतो मुक्त्वा भुक्त्वा मां भज निर्वृतिम् । दर्शयिष्येऽन्यथा सद्यः स्वापमानतरोः फलम् ।।१८२।।
स्मित्वोचे पुष्पचूलोऽथ हन्त केयं बिभीषिका । न त्वत्तो न च भूभर्त्तुर्नान्तकादपि मे भयम् ।।१८३।।
केवलं प्रतिपन्नस्य गुरुमूले मया स्वयम् । अभिग्रहस्य भङ्गेन दुर्गतेरेव मे भयम् ।।१८४।।
प्रागेव प्रतिषिद्धासि मातरं भणता मया । अतस्त्वया न वक्तव्यमसङ्गतमतः परम् ।।१८५।।
इति सत्त्ववता तेन सर्वथाऽसौ निराकृता । चौरश्चौरोऽयमित्युच्चैश्चक्रे कोलाहलं कुधीः ।।१८६।।
अयं चान्योन्यसंवादः सकलोऽपि तयोस्तदा । प्रियाप्रसादनप्राप्तेनाश्रावि जगतीभुजा ।।१८७।।
अपसृत्य ततः किञ्चिद् यामिकानन्वशान्नृपः । विना प्रहारमेनं रे ! चौरं गृह्णीत यत्नतः ।।१८८।।
ड्डौकिरे भटास्तेऽथ कृतान्तसुभटा इव । ऊचुश्च मुञ्च भोः शस्त्रम् अभयं ते पुरो भव ।।१८९।।
प्राणैः समं विमुञ्चामि शस्त्रं न पुनरन्यथा । इत्यालपन्तमावृत्य तस्थुस्ते सर्वतोऽपि तम् ।।१९०।।
अत्रान्तरे जगत्कर्म्मसाक्षी सत्कर्म्मसाक्षिताम् । पुष्पचूलस्य विश्वेऽपि साक्षात्कर्त्तुमिवोद्ययौ ।।१९१।।
विधाय नित्यकृत्यानि द्रष्टुमुत्कोऽथ भूपतिः । सहैव तेन वृन्देन पुष्पचूलमनाययत् ।।१९२।।
नृपभ्रूसंज्ञया द्वास्थेनाथ निर्म्माक्षिके कृते । एनं सर्व्वाङ्गमालोक्य दध्याविति धराधिपः ।।१९३।।
अहो रूपमहो देहाभोगः कोऽप्यस्य दुर्द्धरः । अहो सल्लक्षणान्यस्य स्थाने तद्वृत्तमस्य तत् ।।१९४।।
विचिन्त्येति कृताकारगुप्तिर्भूमिपतिस्ततः । कोऽसि भद्र ! भवानेवमूचे सोऽपि व्यजिज्ञपत् ।।१९५।।
कथितः कर्म्मणैवाहं देव ! किं जल्पितैः परैः । करस्थे कङ्कणे कस्य दर्प्पणाय स्पृहा ननु ।।१९६।।
बभाषे भूपतिः कर्म्म नाकारसदृशं तव । केयं मनोरमा मूर्त्तिः क्व वृत्तिः परिपन्थिनाम् ।।१९७।।
अलमेतेन वा रात्रिवृत्तं तावन्निवेदय । इति भूपेन साकूतमुक्ते सोऽपि व्यचिन्तयत् ।।१९८।।
विदितं भूपतेः सर्वं नियतं रात्रिचेष्टितम् । प्रवृत्तिः सुकुमारेयं तस्करे क्वान्यथा मयि ।।१९९।।
भविष्यति वराकी सा नृपकोपानलाहुतिः । को वा त्रातुमलं जीवान् स्वकर्म्मगलहस्तितान् ।।२००।।
अनुग्रहः कृतो न स्याद् यदि मे तैर्महात्मभिः । गतिरेषैव किं न स्यादहो ! धर्म्मः परं जयी ।।२०१।।
इत्यादि विमृशन्नेष तूष्णीं यावदवास्थित । तावत् ज्वलितकोपाग्निरारक्षमादिशन्नृपः ।।२०२।।
मत्प्रियाऽग्रेसरां रे ! रे ! वध्यनेपथ्यवाहिनीम् । भ्रामयित्वा पुरे तूर्णं निगृहाण दुरात्मिकाम् ।।२०३।।
पुष्पचूलस्तदाकर्ण्य भूपतेः पदपद्मयोः । मूर्द्धानं प्रणिधायाशु व्यजिज्ञपदिदं तदा ।।२०४।।
देव ! देवस्य चित्ते चेत् क्वचिद् गुणकोणोऽस्ति मे । प्रमाणीकुरु तन्नाथ ! प्रथमप्रार्थनां मम ।।२०५।।
मातेति सा मया प्रोक्ता ततः प्राणप्रदानतः । अनुगृह्णातु देवस्तां मां च प्रणयपूरणात् ।।२०६।।
जगाद मेदिनीन्द्रोऽथ हर्षगद्गदया गिरा । वत्स ! धन्यस्य कस्यापि कुले त्वं समवातरः ।।२०७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वादृशैर्नरमाणिक्यैर्निर्मलव्रतधारिभिः । मही मृत्पिण्डरूपापि रत्नगर्भेति गीयते ।।२०८।।
विविक्ते भूपतेः पत्न्यां प्रार्थयन्त्यां चटूक्तिभिः । कस्य वा न चलेच्चित्तं विना हि त्वादृशं ननु ।।२०९।।
अधमा सा यथा स्त्रीषु नरेषु त्वं तथोत्तमः । अधमोत्तमसीमार्थं निर्मितिर्युवयोर्ध्रुवम् ।।२१०।।
न सुन्दरमिदं किन्तु भवता तात ! याचितम् । शिष्टपालनवद् धर्म्मो दुष्टनिग्रहणं हि नः ।।२११।।
किन्त्वनुल्लङ्घ्यवाक्योऽसीत्यभिधाय महीभुजा । देशान्निर्वास्य जीवन्ती मुमुचे सा तपस्विनी ।।२१२।।
कुमारोऽपि हि निर्बन्धात् पृष्टः पृथ्वीभुजाऽनिशम् । व्याजहार कथां मूलादारभ्य रचिताञ्जलिः ।।२१३।।
सविशेषं ततः प्रीतश्चित्ते वसुमतीपतिः । निर्विशेषं स्वपुत्रस्य तस्मै जीवनकं व्यधात् ।।२१४।।
ददौ हस्त्यश्वदेशांश्च तस्य भूयस्तरान् नृपः । निबन्धनानि सर्वाणि तदायत्तानि चाकरोत् ।।२१५।।
पुष्पचूलादिकं स्वीयं परीवारं नृपात्मजः । तत्रैवानाययत् प्रीतिः कुतो वाप्तं जनं विना ।।२१६।।
निबद्धवसतेस्तस्य तत्र मैत्र्यमजायत । जिनदासाभिधानेन सुश्राद्धेन सहाञ्जसा ।।२१७।।
संसर्गवशतस्तस्य सुव्रताचार्यसन्निधौ । सम्यक्त्वमूलान्यादत्त द्वादशापि व्रतानि सः ।।२१८।।
उपलब्धप्रभावेन परिणाममुपेयुषा । सप्तापि धातवस्तस्य जिनधर्म्मेण वासिताः ।।२१९।।
सुवर्णकलशश्रेणिमणितोरणराजितान् । मनःप्रसादान् प्रासादान् स जैनेन्द्रानचीकरत् ।।२२०।।
सल्लक्षणानि हृद्यानि तेषु बिम्बानि च न्यधात् । शुश्राव शुद्धसिद्धान्तान् गुरुभ्यश्च स्वलेखितान् ।।२२१।।
चतुरन्तभवोच्छित्तिनिमित्तममितैर्धनैः । यथार्हमर्च्चयामास सङ्घमेष चतुर्विधम् ।।२२२।।
विदधे चार्थसामर्थ्यैरुपष्टम्भं सधर्म्मणाम् । दौर्गत्यजलधेर्दीननाननाथानुदधार च ।।२२३।।
रथयात्रादिभिः प्रत्यनीकनिर्दलनैरपि । उन्नतिं विदधे जैनशासने शुद्धवासनः ।।२२४।।
धर्म्मकर्म्मसु निर्म्मायः प्रावर्त्तत तथा क्रमात् । उपमानपदं जज्ञे यथाऽसौ धर्म्मचारिषु ।।२२५।।
त्रिवर्गसुभगं सौख्यं भवोद्भवमखण्डितम् । भुञ्जानस्यास्य भूयांसि वर्षाणि व्यतिचक्रमुः ।।२२६।।
कामरूपाधिपं जेतुमन्येद्युः सपरिच्छदः । विचारधवलक्षोणिपालेन प्रेरितो ययौ ।।२२७।।
अनम्रान्नमयन् नम्राननुगृह्णन् पदे पदे । शत्रुमित्रभयप्रीतिप्रदः स प्राप तद्भुवम् ।।२२८।।
अमन्यमानं सामादिप्रयोगत्रयमुद्धतम् । दृढदण्डः स तं दण्डसाध्यमेव ह्यमन्यत ।।२२९।।
त्रुट्यत्कुलाचलक्षोणिसन्धिबन्धान्यथोच्चकैः । रणतूर्याण्यवाद्यन्त सैन्ययोरुभयोरपि ।।२३०।।
तुरङ्गमत्तमातङ्गशताङ्गसुभटास्तयोः । अनुरूपैः परैः सार्द्धमयुद्ध्यन्त मदोद्धुराः ।।२३१।।
ववर्ष शतधाराभिर्व्योम धूलीमलीमसम् । प्रावर्त्तन्त पुनश्चित्रं क्षितौ क्षितजसिन्धवः ।।२३२।।
विपक्षे सम्मुखे गाढप्रहारत्रुटितायुधाः । अभ्यस्तं बह्वमन्यन्त नियुद्धमपि सैनिकाः ।।२३३।।
भौतिकान् भूतले वीराः कायानुत्सृज्य नश्वरान् । दिव्यैस्तेजोमयैरङ्गै-रालिलिङ्गुः सुराङ्गनाः ।।२३४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुष्पचूलेन दुर्वारवीरव्रतभृता तदा । कामरूपपतिर्निन्ये निधनं दुर्द्धरः स्वयम् ।।२३५।।
तेनापि स प्रवीरेण प्रहारविधुरीकृतः । आददे तस्य सप्ताङ्गं श्रियं प्रगुणितामिव ।।२३६।।
भिषग्भिः प्रत्यलैरासैर्व्रणकर्म्मास्य निर्म्ममे । क्रमात् प्राप्ता च संरोहं बहिरस्य व्रणावली ।।२३७।।
सम्प्राप्ते तत्र चावन्त्यां विचारधवलो नृपः । अमन्दानन्दसन्दोहं महोत्सवमचीकरत् ।।२३८।।
उपनिन्ये श्रियं शत्रोस्तस्मै सर्वां स निस्पृहः । लुभ्यन्ति कीर्त्तिषु प्रायो न भूतिषु महाशयाः ।।२३९।।
अकालजलदेऽन्येद्युरूर्जितं गर्जितोन्मुखे । एधोरुरिव वर्षासु विदद्रेऽस्य व्रणावली ।।२४०।।
प्रयुक्ताः क्षितिपेनाप्तास्तस्य वैद्या विशारदाः । चिकित्सां बहिरन्तश्च सावधाना वितेनिरे ।।२४१।।
तथाऽप्यस्य व्रणद्वाराण्यभिद्यन्त पुनः पुनः । न्यस्तानीव रहस्यानि हृदये क्षुद्रयोषिताम् ।।२४२।।
तद्वशाद् वपुरेतस्य कार्श्यमापद् दिने दिने । वलक्षेतरपक्षान्तः सितांशोरिव मण्डलम् ।।२४३।।
विषसाद परं भूभृदुपालब्ध्य चिकित्सकान् । विमुक्तराज्यकार्योऽस्थात् तस्यावासे दिवानिशम् ।।२४४।।
अथायुर्वेदिनो दीनमुखाः क्ष्मापं व्यजिज्ञपन् । देवास्माभिः प्रयुक्तोऽस्मिन्निखिलोऽप्यौषधव्रजः ।।२४५।।
उपलब्धो विशेषस्तु नाद्ययावन्मनागपि । काकमांसमिहास्त्येकममोघास्त्रमतः परम् ।।२४६।।
ततः सप्रणयं भूपः पुष्पचूलं समादिशत् । वत्स ! धर्म्मार्थकामानां शरीरं मूलकारणम् ।।२४७।।
अतोऽनुचितमप्येतद् भज देहार्थमौषधम् । भूयः श्रेयांसि भूयांसि सत्येतस्मिंस्तवानघ ।।२४८।।
मुनयोऽपि निषेवन्ते देहयात्रार्थमौषधम् । प्रायश्चित्तेन चीर्णेन मुच्यन्ते च तदंहसः ।।२४९।।
कुमारोऽप्यवदद् देव ! यथा मान्यं वचस्तव । इहलोकगुरोरेवं परलोकगुरोर्न किम् ।।२५०।।
विशेषोऽप्यस्ति यद् यूयं प्रत्यक्षा रोषिता अपि । पुनस्तोषयितुं शक्यास्ते तु दूरस्थिताः कथम् ।।२५१।।
अनुल्लङ्घ्यमतस्तेषां वचनं नियमानुगम् । अप्रसादमिहार्थे तत्र तातः कर्तुमर्हति ।।२५२।।
नृपोऽप्यचिन्तयद् वाक्याज्जिनदासस्य चेदसौ । कथञ्चित् प्रतिपद्येत भाणयामि ततोऽप्यमुम् ।।२५३।।
आनाययदथ ग्रामान्नृपस्तं निजपुरुषैः । आगच्छन् स वनेऽपश्यद् प्ररुदद् देवतायुगाम् ।।२५४।।
रुदिते कारणं ताभ्यां पृष्टाभ्यां तस्य शंसितम् । आवां सौधर्म्मकल्पस्य देव्यौ प्रच्युतभर्तृके ।।२५५।।
न खण्डयति भूपालसूनुश्चेन्नियमं निजम् । भवद्वचनतस्तत्स्यादावयोः प्राणवल्लभः ।।२५६।।
अस्मिन्नर्थे प्रयत्नं तद् विदध्याः करुणानिधे ! । तथेति प्रतिपद्याथ सोऽपि प्राप तदन्तिकम् ।।२५७।।
दृष्ट्वाऽथ जिनदासं तं मुमुदे नृपनन्दनः । तथाविधे हि वैधुर्ये सुहृद्दर्शनमौषधम् ।।२५८।।
नृपोपरोधतस्तेन विविक्ते कर्तुमौषधम् । भणितः पुष्पचूलोऽथ सोपालम्भमदोऽवदत् ।।२५९।।
ब्रवीषि किमिदं मित्र ! त्वं प्राकृतजनोचितम् । प्राणात्ययेऽपि मुञ्चामि नियमं नाहमात्मनः ।।२६०।।
सुलभा एव यत् प्राणाः प्राणभाजां भवे भवे । दुर्लभस्तु गुरूद्दिष्टविशिष्टनियमक्रमः ।।२६१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यत्प्रसादान् मयोत्तीर्णाः काः का न विपदापगाः । विलुप्ते वचने तेषां मत्तः कः स्यात् परोऽधमः ।।२६२।।
को हि नाम विदन्नेवं वपुः सत्वरगत्वरम् । तस्यार्थे पापमाधाय त्यजेद् धर्म्मं सनातनम् ।।२६३।।
व्रतप्राणेषु जीवत्सु जीवन्त्येव मृता अपि । मृतेषु तेषु जीवास्तु जीवन्तोऽपि मृता इव ।।२६४।।
उत्तमेऽभूत् कुले जन्म धर्म्मः प्राप्तो जिनोदितः । पालितश्च यथाशक्ति मृतिर्धृतिहरा न मे ।।२६५।।
भणनीयस्तदत्रार्थे मित्र ! नाहमतः परम् । यतस्व मे परत्रार्थे सत्यमेवासि चेत् सुहृत् ।।२६६।।
निश्चलं निश्चयं तस्य ज्ञात्वा क्षत्रकुलोचितम् । जिनदासोऽपि राजानमवदत् [3]प्रीतिकातरम् ।।२६७।।
देव ! मुञ्चति मर्यादां जलधिश्चलति क्षितिः । पुष्पचूलस्तु न त्वेष लुम्पति व्रतमात्मनः ।।२६८।।
निपतच्छस्त्रसङ्घाते भीषणेऽस्य यथा रणे । मरणेऽपि तथा नैव भयं समयसङ्गते ।।२६९।।
श्लथीकृत्य ममत्वं तत् परलोकोपयोगिषु । अस्य कृत्येषु देवेन यतनीयमतः परम् ।।२७०।।
कथञ्चित् प्रतिपन्नेऽथ तस्मिन्नर्थे महीभुजा । उचितं तस्य कालस्य पुष्पचूलः प्रचक्रमे ।।२७१।।
जिनालयेषु सर्वेषु पूजोत्सवमचीकरत् । सङ्घं च पूजयामास चारकस्थानमोचयत् ।।२७२।।
दानं प्रवर्त्तयामास दीनादिष्वनिवारितम् । अभयं घोषयाञ्चक्रे जलस्थलखचारिणाम् ।।२७३।।
पापस्थानानि सर्वाणि व्युत्सृज्य त्रिविधेन च । क्षमयित्वा च सत्त्वौघं प्रपेदेऽनशनं ततः ।।२७४।।
सुहृदा जिनदासेन दीयमानानुशासनः । मुक्ताशंसानिदानोऽथ ममत्वपरिवर्जितः ।।२७५।।
स्मृतपञ्चनमस्कारश्चतुःशरणमाश्रितः । धर्म्मध्यानेन मृत्वासावच्युते त्रिदशोऽभवत् ।।२७६।। युग्मम् ।।
गच्छता जिनदासेन दृष्टे देव्यौ तथैव ते । पृष्टे च कारणं भूयः कथयामासतुर्यथा ।।२७७।।
भद्र ! भाग्यविपर्यासादावयोर्मन्दभाग्ययोः । परिणामविशुद्ध्याऽगात् स कल्पे क्वचिदुत्तरे ।।२७८।।
अहो ! जैनेन्द्रधर्म्मस्य प्रभावः कोऽप्यभङ्गुरः । इति ध्यायन्नभूद् धर्म्मे जिनदासोऽपि सुस्थितः ।।२७९।।
कृत्वैवं द्रव्यभावोपकृतिमनुपमां पुष्पचूलो मुनीन्द्र-श्चान्योन्यं पुण्यपण्यप्रचयपरिचितौ प्रापतुः स्वेष्टसिद्धिम् ।
मत्वैतत् सर्वसत्त्वव्यसननिरसनैर्दर्शितं तीर्थनाथै-रानन्दाद्वैतबीजं भजत कृतधियो द्रव्यभावोपकारम् ।।२८०।।
यतः परोपकार्येव बिभर्त्त्यनिन्द्यताम्, परोपकारी समुपैति वन्द्यताम् ।
परोपकारात् प्रभवन्ति भूतयः, परोपकारात् प्रसरन्ति कीर्त्तयः ।।२८१।। किञ्च -
कूटाभिमानेन मुधावमृष्टाः, [4]स्मयात् द्वयं हन्त वहन्तु धृष्टाः ।
परोपकाराय य एव सृष्टाः, कवीन्द्रवक्त्रेषु त एव दृष्टाः ।।२८२।।

3. प्रीतिकारकम् पाठान्तरः ।। 4. 'स्मयाद्वयं' इति पाठो समीचीनो भाति । - सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र-सूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीये मूलद्वारे षष्ठं **परोपकार**प्रतिद्वारं समाप्तमिति भद्रम् ।।२६९।।श्रीः।।

एवं परोपकारद्वारं व्याख्याय साम्प्रतं तस्य निगमनायोचिताचरणद्वारस्य चोपक्षेपायाह -

उवयारपरो वि नरो जो न मुणइ सम्ममुचियमायरिउं ।
सलहिज्जइ सो न जणे ता मुणिऊणं कुणह उचियं ।।२७०।।

नरः पूर्वोदिते **परोपकारे कृतप्रवृत्तिरपि यः सम्यक्** प्रोच्यमानस्वरूप**मुचितमाचरितुं न जानाति । स जने** लोके **न श्लाघ्यते । तस्मात् परिज्ञाय** तत्प्रकार**मुचितं कुरुतेति** ।।२७०।।

अथ किं स्यादुचिताचरणेनेति चेत्, तदाह -

सामन्ने मणुयत्ते जं केई पाउणंति इह किर्त्तिं ।
तं मुणह निव्वियप्पं उचियाचरणस्स माहप्पं ।।२७१।।

इहस्मिन् जगति **यत् केचन** नरोत्तमाः **सामान्ये** सर्वसाधारणे **मनुष्यत्वे कीर्त्तिं प्राप्नुवन्ति** प्रसिद्धिमध्यासते । **तन्निर्विकल्पं** निःसंशय**मुचिताचरणस्य माहात्म्यं जानीत** । किमुक्तं भवति ? किल दानादयो हि गुणाः पुंसां प्रसिद्धिहेतवस्ते चौचित्यसहचरिता एव तत्त्वतो गुणत्वं भजन्ते । यदाह -

औचित्यमेकमेकत्र गुणानां राशिरेकतः ।
विषायते गुणग्राम औचित्यपरिवर्जितः ।।१।। [ ]

तस्मादौचित्याचरणमेव गुणवतामपि प्रसिद्धिनिबन्धनमिति ।।२७१।।

साम्प्रतं येषूचिताचरणमाधेयं तान् नामतोऽभिदधाति -

[1]तं पुण पिइमाइसहोयरेसु पणइणिअवच्चसयणेसु ।
गुरुजणनायरपरतित्थिएसु पुरिसेण कायव्वं ।।२७२।।

गाथा-२७२ 1. **तुला** - नवधा औचित्यस्य स्वरूपम् धर्मसङ्ग्रहे - अधि. २ मध्ये गा. ६३ वृत्तौ हितोपदेशमालागाथाभिः दर्शितम् तद्भेदम् - तथोचितस्योचितकार्यस्याचरणं करणम् उचिताचरणम्, तच्च पित्रादिविषयं नवविधम्, इहापि स्नेहवृद्धिकीर्त्त्यादिहेतुर्हितोपदेशमालागाथाभिः प्रदर्श्यते -

'**सामन्ने मणुअत्ते, जं केई पाउणंति इह किर्त्तिं । तं मुणह निव्विअप्पं, उचिआचरणस्स माहप्पं ।।१।।**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तच्चौचित्याचरणं पुरुषार्थसार्थसमर्थनपटुना **पुरुषेण** [१]**पितृ-**[२]**मातृ-**[३]**सहोदर-**[४]**प्रणयिनी-**[५]**अपत्य-**[६]**स्वजन-**[७]**गुरुजन-**[८]**नागर-**[९]**परतीर्थिक**लक्षणेषु नवसु स्थानेषु वक्ष्यमाणप्रकारेण **कर्त्तव्य**मिति ।।२७२।।

तत्रादौ पितृविषयमौचित्यमुपदर्शयन्नाह -

पिउणो तणुसुस्सूसं विणएणं किंकरु व्व कुणइ सयं ।
वयणं पि से पडिच्छइ वयणाओ अपडियं चेव ।।२७३।।

त्रिविधं हि किलौचित्यम् । कायविषयं वाग्विषयं मनोविषयं च । तत्रादौ कायिकमाह - **पितु**र्जनकस्य **तनुशुश्रूषां** चरणक्षालनाङ्गसंवाहनोत्थापननिवेशनादिरूपां देशकालसात्म्यौचित्येन

तं पुण पिइ[१]-माइ[२]-सहोअरेसु[३]-पणइणि[४]-अवच्च[५]-सयणेसुं[६] । गुरुजण[७]-नायर[८]-परितित्थिएसु[९]-पुरिसेण कायव्वं ।।२।।'

तत्र पितृविषयं कायवाग्मनांसि प्रतीत्य त्रिविधमौचित्यं क्रमेणाह -

'पिउणो तणुसुस्सूसं, विणएणं किंकरु व्व कुणइ सयं । वयणं पि से पडिच्छइ, वयणाओ अपडिअं चेव ।।३।।'

तनुशुश्रूषां चरणक्षालन-संवाहनोत्थापन-निवेशनादिरूपाम्, देश-काल-सात्म्यौचित्येन भोजन-शयनीय-वसनाऽङ्गरागादिसम्पादनरूपां च, विनयेन न तु परोपरोधावज्ञादिभिः, स्वयं करोति न तु [१]भृत्यादिभ्यः(भिः) कारयति । यतः -

"गुरोः पुरो निषण्णस्य, या शोभा जायते सुनोः । उच्चैः सिंहासनस्थस्य, शतांशेनापि सा कुतः? ।।१।।"

अपडिअं ति वदनादपतितमुच्चार्यमाणमेवादेशः प्रमाणमेष करोमीति सादरं प्रतीच्छति, न पुनरनाकर्णितशिरोधूननकालक्षेपार्द्धविधानादिभिरवजानाति ।

"चित्तं पि हु अणुअत्तइ, सव्वपयत्तेण सव्वकज्जेसुं । उवजीवइ बुद्धिगुणे, निअसब्भावं पयासेइ ।।४।।"

स्वबुद्धिविचारितमवश्यविधेयमपि कार्यं तदेवारभते यत्पितुर्मनोऽनुकूलमितिभावः । बुद्धिगुणान् शुश्रूषादीन् सकलव्यवहारगोचरांश्चोपजीवति अभ्यस्यति, बहुदृश्वानो पितृप्रभृतयः सम्यगाराधिताः प्रकाशयन्त्येव कार्यरहस्यानि, निजसद्भावं चित्ताभिप्रायं प्रकाशयति -

"आपुच्छिउं पयट्टइ, करणिज्जेसु निसेहिओ ठाइ । खलिए खरंपि भणिओ, विणीअयं नहु विलंघेइ ।।५।।
सविसेसं परिपूरइ, धम्माणुगए मणोरहे तस्स । एमाइ उचिअकरणं, पिउणो जणणीइ वि तहेव ।।६।।"

तस्य पितुरितरानपि मनोरथान् पूरयति, श्रेणिकचिलणादेरभयकुमारवत् । धर्मानुगतान् सुदेवपूजा-गुरुपर्युपास्ति-धर्मश्रवण-विरतिप्रतिपत्त्यावश्यकप्रवृत्ति-सप्तक्षेत्रीवित्तव्यय-तीर्थयात्रा-दीनानाथोद्धरणादीन्मनोरथान् सविशेषं बह्वादरेणेत्यर्थः । कर्त्तव्यमेव चैतत् सदपत्यानामिह लोकगुरुषु पितृषु । न चार्हद्धर्मसंयोजनमन्तरेणात्यन्तं दुष्प्रतिकारेषु तेषु अन्योऽस्ति प्रत्युपकारप्रकारः, तथा च स्थानाङ्गसूत्रम् -

"तिण्हं दुप्पडिआरं समणाउसो ! तं जहा-अम्मापिउणो १, भट्टिस्स २, धम्मायरिअस्स ३ ।" (३-१-१३५) इत्यादिः समग्रोऽप्यालापको वाच्यः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोजनशयनीयवसनाङ्गरागादिसम्पादनरूपां च **किङ्कर इव स्वयं** सुजातस्तनयः **करोति** । कथं? **विनयेनान्तरप्रीतिप्रकर्षेण**, न तु परोपरोधावज्ञादिभिः कर्म्मकरादिभ्यो वा कारयतीति ।

[उक्तं] पितुस्तनुगोचरमौचित्यं, वाग्विषयमाह-**'से'** तस्य पितु**र्वचन**मादेश**मपि वदनादपतितमु**च्चार्यमाण**मेव** आदेशः प्रमाणम्, 'एष करोमि' इति सादरं **प्रतीच्छति** । न पुनरनाकर्णितकशिरोधूननकालक्षेपाऽर्द्धविधानादिभिरवजानाति ।।२७३।।

मनोविषयमाह -

चित्तं पि हु अणुयत्तइ सव्वपयत्तेण सव्वकज्जेसु ।
उवजीवइ बुद्धिगुणे नियसब्भावं पयासेइ ।।२७४।।

तस्य पितुर्न केवलं वाग्वपुषी, **चित्तं** मनोऽप्यनुवर्त्तयत्यनुकूलयति । कथं? **सर्वप्रयत्नेन** सर्वादरेण । केषु? **सर्वेषु कार्येषु** समग्रकरणीयेषु, किमुक्तं भवति? स्वबुद्धिविचारितमप्यवश्यविधेयमप्यण्वपि कार्यं यदेवास्य मनोऽनुकूलं तदेव समारभत इत्यर्थः ।

उक्तं च -

इहलोयगुरू पियरो ताणं सुस्सूसणं कुणइ ।
आहारवत्थसयणाइएसु उज्जमइ इच्छियतरेसु ।
भावे य ताणमणुकूल - मणुसरे दाणमाइसु ।। त्ति ।। [ ] तथा -

'उवजीवइ बुद्धिगुणे' ।

तस्मात् पितु**र्बुद्धिगुणान्** शुश्रूषादीन् सकललौकिकलोकोत्तरव्यवहारगोचरां**श्चोपजीवत्य**भ्यसति । बहुदृश्वानो हि पितृप्रभृतयः सम्यगाराधिताः प्रकाशयन्त्येव कार्यरहस्यानि । तथा -

'नियसब्भावं पयासेइ' ।।

तस्य **निजं सद्भावं** चित्ताभिप्रायं **प्रकाशयति** । तथा कृते हि यथौचित्येन कृत्येष्वेष विधिनिषेधावाचरति ।।२७४।। तथा -

आपुच्छिउं पयट्टइ करणिज्जेसुं निसेहिओ ठाइ ।
खलिए खरं पि भणिओ विणीययं न हु विलंघेइ ।।२७५।।

गृहधर्मस्वजनपौरादि**कृत्येषु** पितरमा**पृच्छयैव प्रवर्त्तते** । तस्यैव गुणागुणविभागविज्ञत्वात् । तेन

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च **निषिद्धः** सन्नुपक्रान्तेऽपि कार्ये तथैवा**वतिष्ठते** । न पुनरुल्लुण्ठतया करोत्येव । तथा **स्खलितेऽपराधे खरं** कर्कशम**पि भणितो विनीततामा**शैशवादभ्यस्तां **न विलङ्घयति** केवलं तात ! प्रमादादिदमाचरितं मया, न पुनरेवं विधास्यामीति सानुनयममुं प्रसादयत्येव ।।२७५।। तथा -

सविसेसं परिपूरइ धम्माणुगए मणोरहे तस्स ।
एमाइ उचियकरणं पिउणो जणणीइ वि तहेव ।।२७६।।

तस्य जनयितुरितरमपि **मनोरथ**सार्थं न तावदफलतां नयति । **धर्म्मानुगतां**स्तु देवपूजा-सद्गुरुपर्युपास्ति-धर्म्मश्रवण-विरतिप्रतिपत्ति-आवश्यकप्रवृत्ति-सप्तक्षेत्रीवित्तव्यय-तीर्थयात्रा-दीनानाथोद्धरणादीन् मनोरथान् **सविशेषं** सादरं **परिपूरयति** । कर्त्तव्यमेव **चैतत्** सदपत्यानामिहलोकगुरुषु पितृषु । न चार्हद्धर्म्मसंयोजनमन्तरेणात्यन्तदुःप्रतिकारेषु तेष्वन्योऽपि उपकृतिप्रकारः । तथा च स्थानाङ्गसूत्रम् -

तिन्हं दुप्पडिआरं समणाउसो ! तं जहा - [1]अम्मापिऊणं, भट्टस्स, धम्मायरियस्स । संपाए विय णं केइ पुरिसे अम्मापियरं सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगित्ता, सुरहिणा गंधवट्टएणं उवट्टित्ता, तिहि उदएहिं मज्जावित्ता, मणुत्तं थालीपागपमुहं अट्ठारसवंजणाउलं भोयणं भोआवित्ता जावज्जीवं पिट्ठिवडिंसयाए परिवहिज्जा । तेणामेव तस्स दुप्पडियरियं भवइ । अहे णं से केवलिपन्नत्ते धम्मे आघवइत्ता पन्नवइत्ता परूवइत्ता भवइ, तेणामेव तस्स सुपडियरियं भवइ त्ति ।। [ठाणांगसूत्र ३ अ./सू. १४३]

भर्त्तृधर्म्माचार्यालापकौ त्वत्राप्रस्तुतत्वान्न लिखितौ । तेनेदमुक्तं धर्म्मानुगतान् मनोरथान् सविशेषं पितुः पुत्रः पूरयतीति । तदेवं पूर्वोक्तमादिशब्दात् शास्त्रान्तरप्रणीतं शिष्टजनाचीर्णं वान्यदपि पितुरु**चितकरणं** विज्ञेयम् । **यथैव** च **जनकस्य** तनुशुश्रूषादिकं धर्म्मानुगतमनोरथपरिपूरणपर्यन्तमुचितमभिहितमेवमौचित्येन **जनन्या अपि तथैव** सर्वमवगन्तव्यम् ।।२७६।।

यच्च विशेषकृत्यं तदुपदर्शयन्नाह -

[1]नवरं से सविसेसं पयडइ भावाणुवित्तिमप्पडिमं ।
इत्थीसहावसुलहं पराभवं वहइ न हु जेण ।।२७७।।

गाथा-२७६ 1. अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स इति पाठो स्थानाङ्गसूत्रमुद्रिते जैनागमग्रंथमालायाम् ।।

गाथा-२७७ 1. **तुला** - अथ मातृविषयौचित्ये विशेषमाह -

"नवरं से सविसेसं, पयडइ भावाणुवित्तिमप्पडिमं । इत्थीसहावसुलहं, पराभवं वहइ नहु जेणं ।।७।।"

सविसेसं ति जनकान्मातुः पूज्यत्वाद्, अपि यन्मनुः -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवरं केवलं **'से' तस्याः** सवित्र्याः **सविशेषं** पितुरपि सकाशादप्रतिमां **भावानुवृत्तिं** चित्तानुकूलतां **प्रकटयति** । अत्र कारणमाह-सा जननी **येन पराभवमपमानं स्त्रीस्वभावसुलभं न वहति** । समुपनतेऽपि कुतोऽप्यवज्ञास्थाने स्वभावगम्भीरतया पुमांसस्तद्भावं न व्यञ्जयन्ति यथा प्रकृतिकोमलमनसः सीमन्तिन्यस्तस्मादनागतमेव तासु तदपास्यमिति ।।२७७।।

एवं पित्रोरुचिताचरणमभिधाय सहोदरं प्रति तत्प्रवृत्तिं प्रकटयन्नाह -

[1]उचियं एयं तु सहोयरंमि जं नियइ अप्पसममेयं ।
जिट्ठं व कणिट्ठं पि हु बहुमन्नइ सव्वकज्जेसु ।।२७८।।

सहोदरे समानौदर्ये भ्रातरि **पुनरेतदुचितम् । यदेनमात्मसमानमात्मतुल्यं** पश्यति । न पुनर्वणिक्पुत्र-भृत्यादिवदवगणयति । तथा **समग्रेष्वपि** गृहस्वजनादि**कार्येषु कनिष्ठमप्यमुं**

"उपाध्यायाद्दशाचार्य, आचार्याणां शतं पिता । सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते ।।१।। [मनुस्मृतौ २-१४५]

गाथा-२७८ 1. **"उचिअं एअं पि सहोअरंमि जं निअइ अप्पसममेअं । जिट्ठं व कणिट्ठं पि हु, बहुमन्नइ सव्वकज्जेसुं ।।८।।"**

निअइ त्ति पश्यति जिट्ठं वत्ति ज्येष्ठो भ्राता पितृतुल्यस्तमिव, तथा -

"दंसइ न पुढोभावं, सब्भावं कहइ पुच्छइ अ तस्स । ववहारंमि पयट्टइ, न निगूहइ थेवमवि दविणं ।।९।।"

पयट्टइ त्ति व्यवहारे प्रवर्त्तते न त्वव्यवहारे, निगूहइत्ति द्रोहबुद्ध्या नापह्नुते, सङ्कटे निर्वाहार्थं तु धनं निधिं करोत्येव ।

कुसंसर्गादिना बन्धावविनीते किं कृत्यमित्याह -

"अविणीअं अणुअत्तइ, मित्तेहिंतो रहो उवालभइ । सयणजणाओ सिक्खं, दावइ अत्रावएसेणं ।।१०।।
हिअए ससिणेहो वि हु, पयडइ कुविअं व तस्स अप्पाणं । पडिवन्नविणयमग्गं, आलवइ अछम्मपिम्मपरो ।।११।।"

अछम्मि त्ति निश्चयप्रेमवान्, एवमप्यगृहीतविनयं तु प्रकृतिरियमस्येति जानन् सन्नुदास्त एव,

"तप्पणइणिपुत्ताइसुं, समदिट्ठी होइ दाणसम्माणे । सावक्कंमि उ इत्तो, सविसेसं कुणइ सव्वं पि ।।१२।।"

समदिट्ठि त्ति स्वपत्न्यपत्यादिष्विव समदृष्टिः, सावक्कंमित्ति सापत्नेऽपरमातृके भ्रातरि, तत्र हि स्तोकेऽप्यन्तरे व्यक्तीकृते तस्य वैचित्यं जनापवादश्च स्यात् । एवं पितृ-मातृ-भ्रातृतुल्येष्वपि यथार्हमौचित्यं [2]चिन्त्यम् । यतः -

"जनकश्चोपकर्त्ता च, यस्तु विद्याप्रयच्छकः । अन्नदः प्राणदश्चैव, पञ्चैते पितरः स्मृताः ।।१।।
राज्ञः पत्नी गुरोः पत्नी, पत्नीमाता तथैव च । स्वमाता चोपमाता च, पञ्चैता मातरः स्मृताः ।।२।।
सहोदरः सहाध्यायी, मित्रं वा रोगपालकः । मार्गे वाक्यसखा यस्तु, पञ्चैते भ्रातरः स्मृताः ।।३।।

भ्रातृभिश्च मिथो धर्मकार्यविषये स्मारणादि सम्यक्कार्यं, यतः -

"भवगिहमज्झंमि पमायजलणजलिअंमि मोहनिद्दाए । उट्ठवइ जो सुअंतं, सो तस्स जणो परमबंधु ।।१।।"

भ्रातृवन्मित्रेऽप्येवमनुसर्त्तव्यम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्येष्ठमिव बहुमन्यते, तत्पुरस्कारेण सञ्चरते । किमुक्तं भवति ? - कनिष्ठबान्धवैर्हि ज्येष्ठः सदैव विरचिताञ्जलिभिः प्रणतिपरैः पितेव तावद् बहुमन्तव्य एव । तेन तु तान् प्रतीदमुक्तस्वरूपमुचितमाचरणीयमिति ।।२७८।। पुनस्तदेव दर्शयति -

दंसइ न पुढोभावं सब्भावं कहइ पुच्छइ य तस्स ।
ववहारंमि पयट्टइ न निगूहइ थेवमवि दविणं ।।२७९।।

तेन समं क्वापि विषये स **पृथग्भाव**मात्मनो व्यतिरिक्तत्वं **न दर्शयति** । तथा तस्य पुरः स्वं **सद्भाव**मान्तरवितर्कमृजुतया **व्यञ्जयति** । **तस्यापि च** हृदयाभिप्रायं **पृच्छति** । एवमुभय-संवित्त्या हि विधीयमानानि कार्याण्यायतिसुन्दराणि सम्पद्यन्ते । तथा **व्यवहारे** क्रयविक्रयादावेवं **प्रवर्त्तयति,** यथाऽसौ तत्र निष्णातो न धूर्तादिवञ्चनगोचरमवतरति । तथा तस्मै **स्तोकमपि द्रविणं** द्रोहबुद्ध्या **नापह्नुते** । क्वचिच्छङ्कटे निर्वाहार्थं तु धनं निधीकरोत्येवेति ।।२७९।।

इदं तावत् सुविनीतभ्रातृगोचरमौचित्यमथ स कदाचित् कुशीलषिङ्गादिसंसर्गादविनीतोऽपि स्यादतस्तस्मिन् किं विधेयमित्याह -

अविणीयं अणुयत्तइ मित्तेहिंतो रहो उवालभइ ।
सयणजणाओ सिक्खं दावइ अन्नावएसेण ।।२८०।।

तथाविधदुरुपाधिवशा**दतिक्रान्तविनयवृत्तिं** भ्रातरमसंविदान इव तत्प्रतिकूलता**मनुवर्त्तनेन** खरकर्कशैर्वचोभिरभितर्जयति । तथा विहिते हि स कदाचिदुन्मर्यादोऽपि स्यात् । कथं तर्हि विनीततां ग्राहयेद्? इत्याह-तस्यैव **मित्रेभ्यो** हृदयङ्गमेभ्यः सुहृद्भ्यो **रहसि** विविध**मुपालभेत** । तथा **स्वजनजनेभ्यः** पितृव्यमातुलश्वसुरतत्पुत्रादिभ्यस्तच्छीलस्या**न्यस्य व्यपदेशेन शिक्षां** वैनयिकीं **दापयति** ।।२८०।। तथा -

हियए ससिणेहो वि हु पयडइ कुवियं व तस्स अप्पाणं ।
पडिवन्नविणयमग्गं आलवइ अछम्मपिम्मपरो ।।२८१।।

हृदि सस्नेहोऽप्यविमुक्तसौभ्रात्रसमुचितप्रेमप्रवृत्तिरपि **तस्या**विनीततां मुकुलयितुं **कुपितमिवात्मानं प्रकटयति** । इत्यादिभिरुपायैः क्रमात् **प्रतिपन्नविनयमार्ग**मेनं **निश्छद्मप्रेमा** सौमनस्यवान् पुरे**वालापादिभिरभिनन्दति** । पूर्वोक्तयुक्त्याप्यगृहीतविनयं तु प्रकृतिरियमस्येति ज्ञाततत्त्वः सन्नुदास्त एवेति ।।२८१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा -

तप्पणइणिपुत्ताइसु समदिट्ठी होइ दाणसम्माणे ।
सावक्कम्मि उ इत्तो सविसेसं कुणइ सव्वं पि ।।२८२।।

तस्य कलत्रपुत्रप्रभृतिषु वस्त्राभरणादीनां **दाने** वाचिके च **सम्माने समदृष्टिर्भवति** । स्वकलत्रापत्यादिष्विव तेष्वपि दानसम्मानादि प्रवर्त्तयतीत्यर्थः । अथेदं सहोदरभ्रातृगोचरमौचित्यं, सापत्न्ये तु किं विधेयम्? इत्याह - **सापत्न्ये**ऽपरमात्रे भ्रातरि **पुन**रिदं समानोदर्यात् **सर्वमपि सविशेषं विधत्ते** । स्तोकेऽपि ह्यन्तरे व्यक्तीकृते तस्य वैचित्त्यं जनापवादश्च प्रादुर्भवतीति ।।२८२।।

साम्प्रतं भ्रातृगतमौचित्यं निगमयन् प्रणयिनीगोचरं चोपक्षिपन्नाह -

इय भाइगयं उचियं पणइणिविसयं पि किंपि जंपेमो ।
सप्पणयवयणसम्माणणेण तं अभिमुहं कुणइ ।।२८३।।

इति पूर्वोदितप्रकारेण **भ्रातृगतमुचितम**भिहितम् । इदानीं प्रणयिनी**गोचरमपि लेशेनौ**चित्यं **भणामः** । तदेवाह - **तां** प्रणयिनीम**भिमुखीं** प्रशस्यसौमनस्यवर्ती **करोति** । कथं? **सप्रणयवच-**

गाथा-२८३ । तुला - "इअ भाइगयं उचिअं, पणइणिविसंयपि किंपि जंपेमो ।
सप्पणयवयणसम्माणणेण तं अभिमुहं कुणइ ।।१३।।
सुस्सूसाइ पयट्टइ, वत्थाभरणाइ सभुचिअं देइ । नाडयपिच्छणयाइसु, जणसंमद्देसु वारेइ ।।१४।।
रुंभइ रयणिपयारं, कुसीलपासंडिसंगमवणेइ । गिहकज्जेसु निओअइ, न विओअइ अप्पणा सद्धिं ।।१५।।"

रजन्यां प्रचारं राजमार्गवेश्मगमनादिकं निरुणद्धि, धर्मावश्यकादिप्रवृत्तिनिमित्तं च जननीभगिन्यादिसुशील-ललितावृन्दमध्यगतामनुमन्यत एव, न विओअइ त्ति न वियोजयति, यतो दर्शनसाराणि प्रायः प्रेमाणि, यथोक्तम् -

"अवलोअणेण आलावणेण गुणकित्तणेण दाणेणं । छंदेण वट्टमाणस्स, निब्भरं जायए पिम्मं ।।१।।
अद्दंसणेण अइदंसणेणं दिट्ठं अणालवंतेण । माणेणऽपमाणेण य, पंचविहं झिज्जए पम्मं ।।२।।
अवमाणं न पयंसइ, खलिए सिक्खेइ कुविअमणुणेइ । धणहाणिवुड्ढिघरमतवइअरं पयडइ न तीसे ।।१६।।"

अपमानं निर्हेतुकं नास्यै प्रदर्शयति, स्खलिते किञ्चिदपराधे निभृतं शिक्षयति, कुपितां चानुनयति, अन्यथा सहसाकारितया कूपपातादप्यनर्थं कुर्यात्, पयडइत्ति धनहानिव्यतिकरं न प्रकटयति, प्रकटिते तु धनहानिव्यतिकरे तुच्छतया सर्वत्र तद्वृत्तान्तं व्यञ्जयति, धनवृद्धिव्यतिकरे च व्यक्तीकृते निरर्गल व्यये प्रवर्त्तते, तत एव गृहे स्त्रियाः प्राधान्य न कार्यं,

'सुकुलुग्गयाहिं परिणयवयाहिं निच्छम्मधम्मनिरयाहिं । सयणरमणीहिं पीइं, पाउणइ समाणधम्माहिं ।।१७।।'

पाउणइ त्ति प्रापयति ।

"रोगाइसु नोविक्खइ, सुसहाओ होइ धम्मकज्जेसु । एमाइ पणइणिगयं, उचिअं पाएण पुरिसस्स ।।१८।।"

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नसम्माननेन सस्नेहालापपुरस्कारेण । प्रियप्रणयवचनं हि सञ्जीवनं समग्रापरापरप्रेमप्रकाराणां प्रस्तावे च प्रयुक्तं दानादिभ्योऽपि गौरवमारोपयत्यतस्तेन तामभिमुखयेत् ।।२८३।। तथा -

सुस्सूसाइ पयट्टइ वत्थाभरणाइ समुचियं देइ ।
नाडयपिच्छणयाइसु जणसम्मद्देसु वारेइ ।।२८४।।

शुश्रूषायां स्वस्य स्नानदेहसंवाहनादिरूपायामेनां **प्रवर्त्तयति** । तथा विहिता ह्यसौ शनैः शनैर्विश्रम्भं भजते, विश्रब्धा च निरुपाधिमधुरं प्रेम दधाति । प्रेमवती च न कदाचिदप्रियमाचरतीति । तथा देशकालकुटुम्बविभवादीनां **समुचितमस्यै वस्त्राभरणादि ददाति** । अलङ्कृताविभूषिता हि गृहिण्यो गृहमेधिनां श्रियमेधन्ते । तथा पुरचत्वरादिप्रवृत्तेषु **नाटकाभिनयप्रेक्षाक्षणादिषु जनसम्मर्देषु** पृथग्जनमेलकेष्वेनां **निवारयति** । तत्र ह्यशिष्टजनचेष्टिताश्लीलालापचापलप्रवृत्तिविलोकनान्निसर्गनिर्म्मलमपि जलदवाताहतमुकुरतलमिव मनः प्रायो विकारमाविष्करोति ।।२८४।। तथा -

रुंभइ रयणिपयारं कुशीलपासंडिसंगमवणेइ ।
गिहकिच्चेसु निओयइ न विओयइ अप्पणा सद्धिं ।।२८५।।

रजन्यां प्रचारं नरपतिपथपरवेश्मगमनादिकमस्याः प्रयत्नेन **निरुणद्धि** । **'मुनीनामिव कुलवनितानामपि महते दोषाय दोषाप्रचारः'** । धर्म्मावश्यकादिप्रवृत्तिनिमित्तं च जननीभगिन्यादिसुशील ललनावृन्दमध्यगतामनुमन्यत एव । तथा **कुशीला** नटविटवेश्यापतिप्रभृतयः **पाखण्डिनः** कौलाद्यास्तेषां **सङ्गं** दूरादपनयति । तत्संसर्गे हि कौतस्कुती कुलाचारधर्म्माचारयो प्रवृत्तिः । लब्धप्रसरा हि कुशीलकौलादयो विविधशास्त्रपरिमलितमनसं पुमांसमपि सत्पथात् प्रच्यावयन्ति । किं पुनः प्रकृतिचपलचेतसः स्त्रिय इति । तथा **गृहकृत्येषु** दानस्वजनसम्मानरसवतीप्रयोगादिषु नियमादेनां **नियुङ्क्ते**। अनियुक्ता ह्यसौ सर्वथोदास्ते । उदासीनायां च गृहिण्यां सीदन्त्येव गृहकृत्यानि । तथा **आत्मना सार्द्धं** कदाचिदपि पृथक् देशावस्थापनादिना **न वियोजयति** । तथा कृते हि दर्शनसाराणि हि प्रायः प्रेमाणि ततोऽत्यन्तप्रवासवैमनस्यादनुचितमपि कदाचिदाचरेत् ।।२८५।। तथा -

अवमाणं न पयंसइ खलिए सिक्खेइ कुवियमणुणेइ ।
धणहाणिवुड्ढिघरमंत - वइयरं पयडइ न तीसे ।।२८६।।

अपमानं निर्हेतुकमेव सपत्नीसंयोजनादिकं **नास्यै प्रदर्शयति** । तथा **स्खलिते** प्रमादादापतिते

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्वचिदपराधविशेषे निभृतमेनां तथा **शिक्षयति** यथा न पुनस्तत्र प्रवर्त्तते । तथा **कुपितां** कुतोऽपि प्रणयभङ्गादिनिमित्ताद् विरागमापन्नां पुनस्तन्मनोरथापूरणे**नानुनयति** । तथा **धनहानिधनवृद्धि-गृहमन्त्रव्यतिकरं** च **न** कदाचि**दस्याः प्रकटयति** । व्यक्तीभूते हि धनहानिव्यतिकरे तुच्छप्रकृतितया सर्वत्र तद् वृत्तं व्यञ्जयन्ती चिरार्जितायाः सम्भावनातोऽपि पुमांसं भ्रंशयति । धनवृद्धिव्यतिकरे चाविष्कृते निरर्गलं व्यये प्रवर्त्तमाना क्रमात्तनुधनं गृहमेधिनं विधत्ते । स्फुटीकृतगृहमन्त्रप्रचारा च प्रकृतिकोमलहृदयतया मन्त्रोष्माणं धारयितुमसमर्था स्वविश्रम्भथानेषु प्रकाश्याऽऽयति-चिन्तितानि कार्याणि विफलयति । कदाचित् राजद्विष्टमपि सङ्घटयतीत्येतत् त्रितयमपि स्त्रीगोचरं न कार्यम् ।।२८६।। तथा -

सुकुलुग्गयाहिं परिणयवयाहिं निच्छम्मधम्मनिरयाहिं ।
सयणरमणीहिं पीइं पाउणइ समाणधम्माहिं ।।२८७।।

एवंविधाभि**र्बन्धुसधर्म्मिणीभिः** सहैनां **प्रीतिं प्रापयति** । किम्भूताभिः? **सुकुलोद्गताभि-र्विमलकुलोत्पन्नाभिः** । '**अकुलीनसंसर्गो हि कुलवनितानां मूलबीजमपवादपादपस्य**' । तथा कुलजा अपि कदाचिदुदीर्णतारुण्यवशादसाम्प्रतकारिण्यः स्युरत आह-**समानधर्म्माभि**रेकगुरूपदिष्ट-विशिष्टशुद्धसामाचारीनिरताभिः । एवंरूपाभिस्ताभिः सख्यं ग्राहिता ह्यसौ प्रायः कुलधर्म्माचारौ न मुञ्चति ।।२८७।। तथा -

रोगाइसु नोविक्खइ सुसहाओ होइ धम्मकज्जेसु ।
एमाइ पणइणिगयं उचियं पाएण पुरिसस्स ।।२८८।।

रोगादिषु रोगोन्मादपारवश्यादिषूपनतेषु **नोपेक्षते** । यथाशक्ति प्रतीकारादिषु प्रयतत एव । तथा **धर्म्मकार्येषु** तपश्चरणोद्यापनदानदेवपूजातीर्थयात्रादिषु **सुसहायः सम्पद्यते** । न पुनरन्तरायः । तत्पुण्यविभागस्य तस्याप्यंशहरत्वात् । एवमुक्तस्वरूपमन्यद**प्येतत्प्रकारं पुरुषस्य प्रायः प्रणयिनीगतमुचितम**वगन्तव्यमिति ।।२८८।।

साम्प्रतं पुत्रोचितमभिधित्सुराह -

पुत्तं पइ पुण उचियं पिउणो लालेइ बालभावम्मि ।
उम्मीलियबुद्धिगुणं कलासु कुसलं कुणइ कमसो ।।२८९।।

गाथा-२८९ 1. तुला - पुत्तं पइ पुण उचिअं, पिउणो लालेइ बालभावंमि ।
उम्मीलिअबुद्धिगुणं, कलासु कुसलं कुणइ कमसो ।।१९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पितुः पुत्रमात्मजं प्रति पुनरिदमुचितं, यदेनं **बालभावे** वृष्याहारस्वेच्छाविहारविविधक्रीडनकादिभि**र्लालयति** । तदा सङ्कोचितो ह्यसौ न कदाचिदङ्गोपचयमाकलयेत् । **क्रमादुन्मीलितबुद्धिगुणं** स्फुटीभूतशुश्रूषाद्यष्टविधमेधागुणं च स्वकुलोचितासु सकलास्वपि **कलासु कुशलं** निपुण**माधत्ते** । स हि सकलः कलानिधिरिवेश्वरशिरोऽलङ्कारतां भजते, देवतेव च सर्वत्र पूज्यो भवति ।।२८९।। तथा -

गुरुदेवधम्मसुहिसयणपरिचयं कारवेइ निच्चं पि ।
उत्तमलोएहि समं मित्तीभावं रयावेइ ।।२९०।।

गुरवो धर्म्माचार्याः । **देवश्चेष्टदृष्टोऽर्हदादिः** । **धर्म्मस्तु** दुर्गदुर्गतिनिपतत्प्राणिगणधारणक्षमो अहिंसादिः । **सुहृदः** प्रियहितोपदेशदेशनपटवो वयस्याः । **स्वजनाः** पितृव्यमातुलादयः । एतैः समं **नित्यमनवरतमेनं परिचयं कारयति** । तथा कृते हि बाल्यात् प्रभृत्येवासौ - अमी मे गुरवः, अयं देवः, अयं मे कुलक्रमागतो धर्म्मः, अमी मे सुहृदः, एते स्वजनसम्बन्धिबान्धवा इति सद्वासवासित एव भवति । तथा कुलजातिवृत्तादिभि**रुत्तमैर्लोकैः सम[म]स्य मैत्रीभावमारचयति** । यद्यपि दैवादुत्तममैत्री नार्थं सम्पादयेत् तथाप्यनर्थपरिहाराय जायत एवेति ।।२९०।। तथा -

गिन्हावेइ य पाणिं समाणकुलजम्मरूवकन्नाणं ।
गिहभारम्मि निजुंजइ पहुत्तणं वियरइ कमेण ।।२९१।।

कुलेनान्वयेन जन्मना वयसा **रूपेण** चोत्तमसंस्थानस्थितसर्वावयवलक्षणेन **समानानां** गुणानां **कन्यानामन्यगोत्रोत्पन्नानामेनं पाणिं ग्राहयति** अननुगुणयोगे हि परस्परमपरक्तचित्तयोर्दम्पत्योर्विडम्बनैव गृहवासः गृहिण्यां च विरागवान्पणाङ्गनादिप्रसङ्गवानपि स्यादतः समुचितयोरेव योगो योग्यः । तथा **गृहभारे** क्रयविक्रयायव्ययविनियोगलक्षणे चैनं योग्यमवगम्य **नियुङ्क्ते** । तथा ह्यसौ

गुरुदेवधम्मसुहिसयणपरिचयं कारवेइ निच्चंपि । उत्तमलोएहिं समं, मित्तीभावं रयावेइ ।।२०।।
गिह्नावेइ अ पाणिं, समाणकुलजम्मरूवकन्नाणं । गिहभारंमि निजुंजइ, पहुत्तणं विअरइ कमेणं ।।२१।।
पञ्चक्ख न पसंसइ, वसणोवहयाण कहइ दुरवत्थं । आयं वयमवसेसं च, सोहए सयमिमाहिंतो ।।२२।।"

'प्रत्यक्षे गुरवः स्तुत्याः, परोक्षे मित्रबान्धवाः । कर्मान्ते दासभृत्याश्च, पुत्रा नैव मृताः स्त्रियः ।।१।।'

इति वचनात्पुत्रप्रशंसा न युक्ता, अन्यथा निर्वाहादर्शनादिहेतुना चेत्कुर्यात् तदापि न प्रत्यक्षम्, गुणवृद्ध्यभावाभिमानादिदोषापत्तेः । द्यूतादिव्यसनिनां निर्द्धनत्वन्यत्कारतर्जनताडनादिदुरवस्थाश्रवणे तेऽपि नैव व्यसने प्रवर्त्तन्ते । आयं व्ययं व्ययादुत्कलितं शेषं च पुत्रेभ्यः शोधयति, एवं स्वस्याप्रभुत्वं पुत्राणां स्वच्छन्दत्वमपास्तम्,

"दंसेइ नरिंदसभं, देसंतरभावपयडणं कुणइ । इच्छाइ अवज्झगयं, उचिअं पिउणो मुणेअव्वं ।।२३।।"

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरन्तरं तच्चिन्ताचान्तचित्ततया स्वाच्छन्द्योन्मादयोरपदमेव भवति । बहुक्लेशायासलभ्यानि च धनानि जानन्नानुचिते व्यये धियं धत्ते । तथा **क्रमात्** परिमलितमनसे न्यक्कृताहङ्काराय वास्मै **प्रभुत्वं** तदायत्तत्वनिसृष्टार्थत्वलक्षणं **वितरति** यथाऽसौ स्वसमानमानवेभ्यः पराभवं न लभते ।।२९१।।

पञ्चक्खं न पसंसइ वसणोवहयाण कहइ दुरवत्थं ।
आयं वयमवसेसं च सोहए सयमिमाहिंतो ।।२९२।।

तथाविधसुकृतसंयोगादात्मनो गुणानुगुणमधिकगुणं वा जातमप्य**ात्मजं समक्षमेव न श्लाघते** । तथाकृते हि सुविनीतोऽपि स कदाचि दात्मन्यसमानं बहुमानमावहन् पूज्येषु पूजाव्यतिक्रमं विदध्यात् । तेन च श्रेयःप्रतिबन्धहेतुना शनैः शनैः सम्पद्भिर्वियुज्यते । तथा साधुवादात् सद्गतिमार्गाच्च । व्यसनशीलै**र्व्यसनै**र्दुरोदरपापर्द्धिपणाङ्गना**सङ्ग**मादिभि**रुपहतानामु**पप्लुतानां निर्द्धनत्वन्यक्कारतर्ज्जनताडनोपहासादिकां **दुरवस्था**मस्मै साकूतं **कथयति** । किलैवंविपाकान्यमूनि व्यसनान्यतः सुदूरमपास्यान्येवेति । तथा न्यायोपार्जितस्य वित्तस्यागति**रायः** । तस्यैव देवधर्म्मभर्त्तव्यभरणप्रभृतिषु नियोजनं **व्ययः** । व्ययादुत्कलित**मवशेषमेतच्च** पदत्रयमप्य**स्मात् । स्वयं शोधयति** । तथा कृते हि स्वस्याप्रभुत्वं तस्य स्वच्छन्दत्वमपास्तं भवति ।।२९२।। तथा -

दंसेइ नरिंदसभं देसंतरभावपयडणं कुणइ ।
इच्छाइ अवज्झगयं उचियं पिउणो मुणेयव्वं ।।२९३।।

नरेन्द्रसभामस्मै **दर्शयति** अपरिचितराजसभो हि दैवादतर्किते **समापतिते** व्यसने कान्दिशीक एव स्यात्, तथाविधश्च निष्कारणद्वेषिभिः परसम्पदसहिष्णुभिः **खलजनैरु**पहन्यते । तथा **देशान्तर**गतानां **भावाना**माचारव्यवहारादीनां तत्पुरः **प्रकटनं करोति** । तदनभिज्ञो हि प्रयोजनवशाद्देशान्तरगतस्तत्रत्यैर्वैदेशिक इति सुखं व्यसनादौ विनिपात्यते । तदेवं पूर्वोपवर्णित**मादि**शब्दादन्यदप्येवंप्रकारम**पत्यगतमुचितं विज्ञेय**मिति ।।२९३।।

स्वजनौचित्यं भणामः -

[1]सयणाण समुचियमिणं जं ते नियगेहवुड्ढिकज्जेसु ।
सम्माणिज्ज सया वि हु करिज्ज हाणीसु वि समीवे ।।२९४।।

गाथा-२९४ 1. तुला - सयणेसु समुचिअमिणं, जं ते निअगेहवुड्ढिकज्जेसुं ।
सम्माणिज्ज सया वि हु, करिज्ज हाणीसु वि समीवे ।।२४।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पितृमातृपत्नीपक्षोद्भवाः पुंसां स्वजनाः । अत**स्तेषामिदं समुचितम्** यत्रात्रिजगृहवृद्धिकार्येषु पुत्रजन्मनामभद्राकरणोद्वाहादिषु **सदैव** भोजनवस्त्रताम्बूलादिभिः सगौरवमामन्त्र्य **सम्मानयेत्** । तथा दैवादुपनतासु **हानिष्वपि** तान् **समीपवर्त्तिनः कुर्यात्** ।।२९४।। तथा -

सयमवि तेसिं वसणूसवेसु होयव्वमंतियंमि सया ।
खीणविहवाण रोगाउराण कायव्वमुद्धरणं ।।२९५।।

स्वयमात्मनापि स्वजनानां दैवराजादिजनितेषु **व्यसनेषु सदैव** समीपवर्त्तिभिर्भाव्यम् । **'राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धव'** इति वचनात् । एवं तत्पुत्रजन्माद्युत्सवेष्वपि । तथा निर्व्यसनानां सदाचारवतामपि कदाचिद् दुरन्तान्तरायदोषात् **प्रक्षीणविभवानां** वेदनीयोदयादुदीर्ण**रोगातङ्कानां** च तेषां स्वशक्त्यनुमानेनो**द्धरणं विधेयम्** । तदुद्धरणं च तत्त्वतः किलात्मोद्धरणमेव । यतोऽरघट्टघटीनामिव प्राणिनां प्रायो नैकान्तिकी रिक्तता पूर्णता च । ततः कदाचिद् दुर्दैवादात्मनोऽप्युपस्थितायां दुःरवस्थायामुपकृतचरेभ्यस्तेभ्य एवोद्धृतिः स्यादतः समयं प्राप्य स्वजनोद्धारविधिर्विधेय एवेति ।।२९५।। तथा -

खाइज्ज पिट्ठिमंसं न तेसि कुज्जा न सुक्ककलहं च ।
तदमित्तेहिं मित्तिं न करिज्ज करिज्ज मित्तेहिं ।।२९६।।

तेषां स्वजनानां **पृष्ठमांसादनं** परोक्षे दोषोत्कीर्त्तनं **न कुर्यात्** पिशुनधर्म्मत्वात् परदोषोद्घोषणस्य । तथा तैः समं **शुष्ककलहं** हास्येनापि वाग्वादं **न विदध्यात्** । चिरप्ररूढप्रीतिलतालवित्ररूपत्वात् तस्य । तथा **तेषाममित्रैर**सुहृद्भिः सह **मैत्रीं** सुहृद्भावं **नादधीत** । तथा कृते हि यद्यपि तदमित्रास्तेषु पूर्वप्रवृद्धमत्सरवशादपकुर्युस्तथापि तन्मनस्येवं स्याद् यदेभिरेतदित्थं कारितमिति । तस्मात्त**न्मित्रै**रेव **मैत्रीमासूत्रयेत्** ।।२९६।। किञ्च -

---

पितृमातृपत्नीपक्षोद्भवाः पुंसां स्वजनाः, वृद्धिकार्याणि पुत्रजन्मादीनि ।

"सयमवि तेसिं वसणूसवेसु होअव्वमंतिअंमि सया । खीणविहवाण रोगाउराण कायव्वमुद्धरणं ।।२५।।
खाइज्ज पिट्ठिमंसं, न तेसि कुज्जा न सुक्ककलहं च । तदमित्तेहिं मित्तिं, न करिज्ज करिज्ज मित्तेहिं ।।२६।।"

शुष्ककलहो हास्यादिना,

"तयभावे तग्गेहे, न वइज्ज चइज्ज अत्थसंबंधं । गुरुदेवधम्मकज्जेसु, एगचित्तेहिं होअव्वं ।।२७।।"

न वइज्ज त्ति न व्रजेत् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तयभावे तग्गेहे न वइज्ज चइज्ज अत्थसम्बंधं ।
गुरुदेवधम्मकज्जेसु एगचित्तेहिं होयव्वं ।।२९७।।

तेषां स्वजनाना**मभावे तद्गेहे न व्रजेत्** । केवलोषितयोषित्सु प्रोषितपुरुषेषु च तदालयेषु निर्निमित्तमेकाकी न प्रविशेदित्यर्थः तथा कृते ह्यैहिकाश्चौर्यपारदार्यापवादनृपनिग्रहादयः पारलौकिकाश्च धर्म्मभ्रंशदुर्गतिपातादयः स्फुटा एव दोषाः । तथा च श्रावकवक्तव्यतायां शीलवत्त्वस्य तृतीयमङ्गम् -

'तइयं उस्सग्गेणं परघरगमणं विवज्जए एसो ।
सुत्तेगित्थीसहियं विसेसओ दोससब्भावा ।।१।।' [ ]

तथा तैः स्वजनैः **सहार्थसम्बन्धं** द्रव्यव्यवहारं **त्यजेद् वर्जयेत्** । स हि प्रथमारम्भे किञ्चित् प्रपञ्चयन्नपि प्रणयं, पर्यन्ते प्रथयत्येव प्रतिपन्थिताम् तथा चोक्तम् -

यदीच्छेद् विपुलां प्रीतिं त्रीणि तत्र न कारयेत् ।
वाग्वादमर्थसम्बन्धं परोक्षे दारदर्शनम् ।।१।। [ ] **इति ।**

तथा स्वजनसम्बन्धे बान्धवादिभिरैहिकार्थसमर्थनायापि तावद**ेकचित्ततै**वायतिहिता । **गुरुदेव-धर्म्मकार्येषु** पुनः सविशेष**मेकचित्तै**रेव **भाव्यम्** । बह्वधीनत्वात् तेषां कार्याणाम् । तथैव च विधीयमानानि तान्युत्तरोत्तराण्यतः सम्भूय सर्वसम्मतेनैव सञ्चारणीयानि, यथा धर्म्मस्योपहसनीयता न स्यादिति ।।२९७।।

अथ स्वजनौचित्यं निगमयन् धर्म्माचार्यौचित्यं च प्रस्तावयन्नाह -

एमाई सयणोचियमह धम्मायरियसमुचियं भणिमो ।
भत्तिबहुमाणपुव्वं तेसिं तिसंझं पि पणिवाओ ।।२९८।।

गाथा-२९८ 1. तुला - "एमाई सयणोचिअमह धम्मायरिअसमुचिअं भणिमो ।
भत्तिबहुमाणपुव्वं, तेसिं तिसंझं पि पणिवाओ ।।२८।।
तहंसिअनीईए, आवस्सयपमुहकिच्चकरणं च । धम्मोवएससवणं तदंतिए सुद्धसद्धाए ।।२९।।
आएसं बहुमन्नइ, इमेसि मणसावि कुणइ नावन्नं । रुंभइ अवन्नवायं, थुइवायं पयडइ सयावि ।।३०।।
न हवइ छिद्दप्पेही, सुहि व्व अणुअत्तए सुहदुहेसुं । पडिणीअपच्चवायं, सव्वपयत्तेण वारेइ ।।३१।।
सुहि व्व त्ति सुहृदिवानुवर्तते ।
"खलिअंमि चोइओ गुरुजणेण मन्नइ तहत्ति सव्वं पि । चोएइ गुरुजणं पि हु, पमायखलिएसु एगंते ।।३२।।"
चोएइ त्ति भगवन् ! किमिदमुचितं सच्चरित्रवतां तत्रभवतां भवतामित्यादिना ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पूर्वोक्तमादिशब्दादन्यदप्येवम्प्रायं **स्वजनौचित्यमभ्यूह्यम्** । अथानन्तरं **धर्म्माचार्याणां** धर्म्मोपदेशसम्यक्त्वादिदायकानां गुरूणां **समुचितं** किमपि लेशेन **दर्शयामः** । तदेवाह - इदं तावत् प्रथमकृत्यं **तेषां** यत् **त्रिसन्ध्यं** सायंप्रातर्मध्याह्नलक्षणासु तिसृष्वपि सन्ध्यासु **प्रणिपातः** पञ्चाङ्गनमनादिर्विधेयः । कथं - **भक्तिबहुमानपूर्वम्** । तत्र भक्तिरान्तरा प्रीतिः । बहुमानस्तु वाचिकः कायिकश्च । तत्पूर्वं तत्पुरस्सरं ।।२९८।। तथा -

तद्दंसियनीईए आवस्सयपमुहकिच्चकरणं च ।
धम्मोवएससवणं तदंतिए सुद्धसद्धाए ।।२९९।।

तद्दर्शितया नीत्या सामाचार्या **आवश्यकप्रमुखाणां** सामायिक-चतुर्विंशतिस्तव-वन्दनक-प्रतिक्रमण-कायोत्सर्ग-प्रत्याख्यानप्रभृतीनां **कृत्यानां करणं** विधानं, न तु स्वाच्छन्द्यादगीतार्थोपदेशाद् वा । तथा **तेषामेवान्तिके** समीपे **शुद्धश्रद्धया** क्षणे क्षणे विशुद्ध्यमानाभिर्लेश्याभिर्भव-विरागोपबृंहकानामर्हत्सिद्धान्तसम्बद्धानां **धर्मोपदेशानां श्रवणमा**कर्णनं करोति । **'सवणं सुतित्थे'** इति वचनात् ।।२९९।। किञ्च -

आएसं बहुमन्नइ इमेसि मणसा वि कुणइ नावन्नं ।
रुंभइ अवन्नवायं थुइवायं पयडइ सया वि ।।३००।।

निसर्गनिस्पृहाणामप्यमीषां किञ्चिद् धर्म्यप्रयोजनानुगतमुपनतमनवद्य**मादेश**महो ! धन्योऽहं यमेवं मामनुगृह्णन्ति गुरवोऽपीति **बहुमन्यते** सादरमुररीकरोति । तथा आस्तां तावद् वचसा वपुषा च, **मनसाऽपि नामीषामवज्ञां न करोति,** पुण्यप्रतिबन्धहेतुत्वात् तदवज्ञायाः । तथा भवाभिनन्दिभिरधार्म्मिकैर्विधीयमानमेतेषा**मवर्णवादम**श्लाघारूपं सति सामर्थ्ये नियमेन रुणद्धि । नोपेक्षते । **'न केवलं यो महतां विभाषते, शृणोति तस्मादपि यः स पापभाग्'** इति श्रुतेः । **स्तुतिवादं** चार्थवादं तेषां **सदैव** समक्षमसमक्षं वा **प्रकटयति** अगण्यपुण्यानुबन्धित्वात् तदर्थवादस्येति ।।३००।। तथा -

न हवइ छिद्दप्पेही सुहि व्व अणुयत्तए सुहदुहेसु ।
पडणीयपच्चवायं सव्वपयत्तेण वारेइ ।।३०१।।

"कुणइ विणओवयारं, भत्तीए समयसमुचिअं सव्वं । गाढं गुणाणुरायं, निम्मायं वहइ हिअयंमि ।।३३।।"
सव्वं ति सम्मुखागमना-ऽभ्युत्थाना-ऽऽसनदान-संवाहनादि, शुद्धवस्त्र-पात्रा-ऽऽहारादिप्रदानादिकं च ।
"भावोवयारमेसिं, देसंतरिओवि सुमरइ सयावि । इअ एवमाइ गुरुजणसमुचिअमुचिअं मुणेअव्वं ।।३४।।"
भावोपकारः सम्यक्त्वदानादिः ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमीषां मुद्गलखलादिवच्**छलान्वेषी न भवति** । तथा **सुखावस्थायां दुःखावस्थायां** वाऽमून् **सुहृदिवानुवर्तते** । तत्सुखेन सुखी तद्दुःखेन दुःखी भवतीत्यर्थः । ननु किमप्रमत्तेषु निर्ममत्वेषु च गुरुषु छिद्रान्वेषिसुहृत्त्वादयो भावाः श्रावकाणां सम्भवन्ति ? सत्यमीदृशा एव महात्मानो गुरवः । केवलं भिन्नभिन्नस्वभावानुस्यूतचेतसामुपासकानाम् तेष्वपि समुन्मीलन्त्येव स्वप्रकृतिस-मुचिता विस्रोतसिकाः । तथा च स्थानाङ्गसूत्रं - **'गोयमा ! चउव्विहा सावया पन्नत्ता, तं जहामाया-पियरसमाणे भायसमाणे, मित्तसमाणे, सवक्तिसमाणे य** [अध्य. ४, उद्देशो-३, सूत्र-३२१] । तहाहि -

चिंत जइकज्जाइं न दिट्ठखलिओ वि होइ निव्वेहो ।
एगंतवच्छलो जइजणस्स जणणीसमो सड्ढो ।।१।।

सुत्थावत्थे न नमइ मुणीण मंदायरो विणयकम्मे ।
भायसमाणो साहूण परिभवे होइ सुसहाओ ।।२।।

मित्तसमाणो माणा ईसिं रूसइ अपुच्छिओ कज्जे ।
मन्नइ जो अप्पाणं मुणीण सयणाउ अब्भहियं ।।३।।

थद्धो छिद्दप्पेही पमायखलियाणि निच्चमुच्चरइ ।
सड्ढो सउक्तिकप्पो साहुजणं तिणसमं गणइ ।।४।। [ ]

तस्मात् मातृपितृभ्रातृसमानैरेव गुरुजने श्रावकैर्भाव्यं, न सपत्नीसमानैरिति । तथा **प्रत्यनीकानां** प्रतिकूलचेष्टितानामनार्याणां **प्रत्यवायं** तज्जनितमुपप्लवं गुरुषु **सर्वप्रयत्नेन वारयति** । उक्तं च -

साहूण चेइयाण य पडणीयं तह अवन्नवायं च ।
जिणपवयणस्स अहियं सव्वत्थामेण वारेइ ।।१।। त्ति [ ]।।३०१।। किञ्च -

खलियंमि चोइओ गुरुजणेण मन्नइ तहत्ति सव्वं पि ।
चोएइ गुरुजणं पि हु पमायखलिएसु एगंते ।।३०२।।

स्खलिते क्वाप्यागसि **गुरुजनेन प्रेरितः**, 'आः किमर्थमिदमेवं त्वया विहितमिति' साक्षेपं प्रोक्तः । **सर्वं** स्वापराधं कृतं प्रमादान्मयेदं न पुनः करिष्यामीति **मन्यते** । न पुनरभिनिवेशान्निज-कृतिमेव पुरस्करोति । तथा **गुरुजनमपि** कदापि **प्रमादस्खलितेषु** भगवन् ! किमिदमुचितं

गाथा-३०१ 1. **तुला -** चउव्विहा समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा-अम्मापिइसमाणे, भाइसमाणे, मित्तसमाणे, सवत्तिसमाणे, अहवा चउव्विहा समणोवासगा पण्णत्ता, तं जहा - आयंससमाणे, पडागसमाणे, खाणुसमाणे, खरंट(खरकंटय)समाणे । - स्था. अध्य. ४, उद्देशो-३, सूत्र-३२१

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सच्चरित्रवतां तत्रभवतां भवतामिति **प्रेरयति** । कथ**मेकान्ते** विविक्ते । यथा न भवत्यपभ्राजना भगवत्प्रवचनस्येति ।।३०२।। तथा -

कुणइ विणओवयारं भत्तीए समयसमुचियं सव्वं ।
गाढं गुणाणुरायं निम्माइं वहइ हिययम्मि ।।३०३।।

तेषां धर्म्माचार्याणां **समयसमुचितं** प्रस्तावसदृश**मशेषमपि** सम्मुखाभ्युत्थानासनप्रदानकर-चरणदेहसंवाहनादिकं **विनयोपचारं भक्त्या** निर्व्याजया मानसप्रीत्या **करोति,** न तु निकृतिपरतया । तथा **हृदि गाढमनपायिनं गुणानुरागं** ज्ञानदर्शनचारित्रानुगतं प्रशस्तमनुरागं **निर्म्मायम**कृत्रिमं **वहति** ।।३०३।। अपरं च -

भावोवयारमेसिं देसंतरिओ वि सुमरइ सया वि ।
इय एवमाइगुरुजणसमुचियमुचियं मुणेयव्वं ।।३०४।।

अमीषां सम्यक्त्वदानादिकं **भावोपकारं देशान्तरितेऽपि** गुरुविरहितेऽपि देशे निवस**न्निरन्त-रमनुस्मरति । इति प्रोक्तस्व**रूपमादिशब्दादन्यदपि सर्वाचार्यप्रणीतं **गुरुजनसमुचितमुचितं विज्ञेयं** विधेयं चेति ।।३०४।।

अथ नागरौचित्यं प्रस्तावयिष्यंस्तन्निरुक्तमेव दर्शयति -

[1]जत्थ सयं निवसिज्जइ नयरे तत्थेव जे किर वसंति ।
ससमाणवित्तिणो ते नायरया नाम वुच्चंति ।।३०५।।

गाथा-३०५ 1. तुला - **"जत्थ सयं निवसिज्जइ, नयरे तत्थेव जे किर वसंति ।**
ससमाणवित्तिणो ते नायरया नाम वुच्चंति ।।३५।।"

स्वसमानवृत्तयो वणिग्वृत्तिजीविनः ।

"समुचिअमिणमो तेसिं, जमेगचित्तेहिं समसुहदुहेहिं । वसणूसवतुल्लगमागमेहिं निच्चं पि होअव्वं ।।३६।।
कायव्वं कज्जे वि हु, न इक्कमिक्केण दंसणं पहुणो । कज्जो न मंतभेओ, पेसुन्नं परिहरेअव्वं ।।३७।।
खमुवट्ठिए विवाए, तुलासमाणेहिं चेव होयव्वं । कारणसाविक्खेहिं, विहुणेअव्वो न नयमग्गो ।।३८।।"

कारण त्ति स्वजनसम्बन्धिज्ञातेयलज्ञोपकारादिसापेक्षैर्नयमार्गो न विधूनयितव्यः,

"बहिएहिं दुब्बलजणो, सुंककराईहिं नाभिभवेअव्वो । थेवावराहदोसे वि, दंडभूमिं न नेअव्वो ।।३९।।"

शुल्ककराधिक्यनृपदण्डादिभिः पीड्यमाना जना मिथो विरक्ताः संहतिमुज्झन्ति, परं न सा त्यक्तव्या, संहतिरेव श्रेयस्करीतिभावः ।

"कारणिएहिं च समं, कायव्वो ता न असत्थसंबंधो । किं पुण पहुणा सद्धिं, अप्पहिअं अहिलसंतेहिं ।।४०।।"

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पष्टा । केवलं **स्वसमानवृत्तयो** वणिग्वृत्तिजीविन इत्यर्थः ।।३०५।।

तदौचित्यमेवाह -

समुचियमिणमो तेसिं जमेगचित्तेहिं समसुहदुहेहिं ।
वसणूसवतुल्लसमागमेहिं निच्चंपि होयव्वं ।।३०६।।

तेषामिदं समुचितं यत् तैः सहैकचित्तैरभिन्नाभिप्रायैः । **समसुखदुःखैस्त**त्सुखसुखितैस्तदुःखदुःखितैश्च । तथा **व्यसनोत्सवतुल्यसमागमैः** तद्व्यसनागमे स्वयमपि व्यसनावलीढैरिव, तदुत्सवे च समुच्छलदतुच्छोत्सवोत्साहैरिव **भाव्यम्** । एकचित्ततादिव्यतिरेके तु परस्परोदासीना नृपतिनियोगिमृगयूनामामिषमेव पौरलोकाः ।।३०६।। तथा -

कायव्वं कज्जे वि हु न इक्कमिक्केण दंसणं पहुणो ।
कज्जो न मंतभेओ पेसुन्नं परिहरेयव्वं ।।३०७।।

महति पार्थिवोपस्थानीयेऽपि **कार्ये** पृथक् पृथक् प्रभुत्वाभिलाषे**णैकैकशः स्वामिनो दर्शनं न विधेयम्** । तथा कृते हि तदितरेषां तद्विषयो महानप्रत्ययः स्यात्, तदुत्थाश्चोपेक्षादयो भूयांसो दोषाः । बहुस्वामिकं च वृन्दमवसीदत्येव । उक्तं च -

सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे पण्डितमानिनः ।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद् वृन्दमवसीदति ।।१।। [ ]

तस्मात् समुदितैरेव नृपदर्शनविज्ञापनादि विधेयम् । तथा किञ्चिदायतिकार्यं कार्यमवधार्य निभृतं सम्भृतस्य **मन्त्रस्य भेदो** राजगोचरीकरणं **न विधेयम्** । स्फुटीभूते हि मन्त्रे चिन्तितार्थव्यर्थत्वपार्थिवप्रकोपादयो दोषाः प्रादुःषन्त्येव । तस्मात् संवृतमन्त्रैर्भाव्यम् । तथा **पैशुन्यं** राज्ञस्तदुपजीविनां वा पुरः संहर्षवशात् परस्परदूषणोद्घोषणं **परिहर्त्तव्यम्** । तथाकुर्वाणा हि ते तेषामकल्पनीया भवेयुर्लब्धमध्याश्च तूलपूलादपि लघुत्वान्न कार्यकारिणः । असाराणामपि बहूनां समुदय एव यतो जयवान् ।। उक्तं च -

बहूनामप्यसाराणां समुदायो जयावहः ।
तृणैरावेष्टिता रज्जुर्यया नागोऽपि बध्यते ।।१।। [ ]

तस्मान्न प्रकटनीया स्वमुष्टिरिति ।।३०७।। अन्यच्च -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समुवट्ठिए विवाए तुलासमाणेहिं चेव ठायव्वं ।
कारणसाविक्खेहिं वि विहुणेयव्वो न नयमग्गो ।।३०८।।

विवादे धन-धान्य-वास्तु-वसुधादिविषये पक्षद्वयस्य विसंवादे **समुपस्थिते** महाजनप्रधानै-**स्तुलासमानैर्म**ध्यस्थतया खरतरन्यायदर्शिभिरे**वावस्थेयम्** । स्वजनसम्बन्धिबान्धवज्ञातेयलज्ञोप-चारादि**कारणसापेक्षैस्तु नयमार्गो न विधूनयितव्यः** । विवादे हि कृतपक्षतायां सपक्षा अपि ते क्षितिपतिप्रकोपभाजनतां भजन्ते ।।३०८।। तथा -

बलिएहिं दुब्बलजणो सुंककराईहिं नाभिभवियव्वो ।
थेवावराहदोसे वि दंडभूमिं न नेयव्वो ।।३०९।।

वित्तनृपतिप्रसादादिभि**र्बलवत्तरै**र्दुर्बलस्तद्द्वयविनाकृतो **जनः शुल्का**धिक्येनोद्भूतिक**करा**-क्रान्त्या च **नाभिभवनीयः** । तथा **स्तोकापराधदोषे** स्वल्पेऽप्यागसि **दण्डभूमिं** नृपनिग्रहणीय-तावस्थां **न प्रापयितव्यः** । शुल्काधिक्य-करोपचय-नृपनिग्रहादिभिरभिहन्यमानास्ते तेष्वचिराद् विरागं भजन्ते । विरक्ताश्च शनैः शनैः संहतिमुज्झन्ति । तत्संहतिविनाकृताश्च बलवत्तरा अपि वनसंहतिविरहिताः सिंहा इवाभिभूयन्ते एव । तस्मात् परस्परसंहतिरेव श्रेयस्करी । उक्तं च -

संहतिः श्रेयसी पुसां स्वपक्षे तु विशेषतः ।
तुषैरपि परिभ्रष्टा न प्ररोहन्ति तन्दुलाः ।।१।। [ ] इति ।।३०९।।

किञ्च -

कारणिएहिं पि समं कायव्वो ता न अत्थसंबंधो ।
किं पुण पहुणा सद्धिं, अप्पहियं अहिलसंतेहि ।।३१०।।

आत्महितं स्वस्योत्तरोत्तरां श्रेयःसंहतिमभिलषद्भिः पुम्भिस्तावत् **कारणिकैरपि** श्रीव्ययराज-देवधर्म्मोपपदकरणनियुक्तैस्तदुपजीविभिश्चान्यैरपि **सममर्थसम्बन्धो** द्रव्यव्यवहारः कदाऽपि **न कर्त्तव्यः** । ते हि धनदानावसर एव प्रायः प्रसन्नमुखरागाः प्रकटितकृत्रिमालापसम्भाषणासन-ताम्बूलप्रदानादिबाह्याडम्बराः सौमनस्यमाविर्भावयन्ति, प्रस्तावे च स्वदत्तमपि वित्तं याचिता-स्तिलतुषमात्रमपि स्वोपकारं प्रकटमुद्वहन्तस्तदेव दाक्षिण्यमुन्मुञ्चन्ति । स च स्वभाव एव तेषाम् । यतः -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्विजन्मनः क्षमा मातुर्द्वेषः प्रीतिः पणस्त्रियः ।
नियोगिनश्च दाक्षिण्यमरिष्टानां चतुष्टयम् ।।१।। [ ] इति ।

पूर्वोपात्तवित्तनिर्नामनाशाय च कृत्रिमानपि दोषानुत्पाद्य प्रत्युतैतान् नृपनिग्राह्यान् विदधति । **'उत्पाद्य कृत्रिमान् दोषान् धनी सर्वत्र बाध्यते'** इति श्रुतेः । अतः कारणिकैरपि सममर्थसम्बन्धः क्रियमाणः किलैवं दुर्विपाकः । **प्रभुणा** स्वामिना **सार्द्धं** धनव्यवहारमनिधनकामः क इव कुर्यात् यतः सामान्योऽपि क्षत्रियो वित्तार्थमभियुक्तः खड्गं दर्शयति, **किं पुनः** प्रकृत्यमर्षणाः क्षोणिभुजस्तस्मा**दात्मनः कुशलमभिलषता** राज्ञा राजवर्गेण च सममर्थसम्बन्धः सर्वथा त्याज्य एवेति ।।३१०।।

साम्प्रतं नागरौचित्यं निगमयन् परतीर्थिकौचित्यं चोपक्षिपन्नाह -

एयं परुप्परं नायराण पाएण समुचियाचरणं ।
परतित्थियाण समुचियमह किंपि भणामि लेसेण ।।३११।।

एतदुक्तप्रकारं **परस्पर**मन्योन्यं **नागराणां** पौराणां **प्रायो** बाहुल्येन **समुचिताचरण**मवसेयम् । अथानन्तरं **परतीर्थिकानां समुचितमपि किमपि लेशेन भणामि** ।।३११।।

ननु षण्णामपि दर्शनिनां परशब्दस्य साधारणत्वाद् यो यदा वक्ता भवति स तदात्मव्यतिरिक्तानेव परशब्देनाभिधत्ते । अतोऽत्र परतीर्थिकशब्देन के **नाम** वक्तुमभीष्टा इत्याशङ्क्याह -

कविभावो किर कव्वं कवी य जिणदंसणी इहं ताव ।
तदविक्खाए तेणं एए परतित्थिणो नेया ।।३१२।।

इदं हि **तावत् काव्यं कविभाव**रूपं । कवेर्भावः काव्यमिति व्युत्पत्तेः । **इह च कविर्जैनदर्शनी** श्वेताम्बरः । अत**स्तदपेक्षया**ऽत्र ता**वदेते** वक्ष्यमाणाः **परतीर्थिनो विज्ञेयाः** ।।३१२।। तानेवाह -

सुगयभयवंतसइवा पत्तेयं ताव चउचउभेया ।
मीमंसगो दुभेओ कविलकोला य दंसणिणो ।।३१३।।

एते **दर्शनिनो**ऽत्र परतीर्थिकशब्दवाच्याः । के? इत्याह - **सुगताः, भगवन्तः, शैवाः, मीमांसकः, कापिलः, कौलश्चे**ति । तत्र **सुगता** वैभाषिक-सौत्रान्तिक-योगाचार-माध्यमिकभेदा**श्चतुष्प्रकाराः** । **भगवन्तोऽपि** कुरीचर-बहूदक-हंस-परमहंसभेदा**त्तावन्तः** । **शैवा** अपि शैव-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाशुपत-महाव्रत-कालामुखभेदैश्चतुप्रकाराः एव । **मीमांसकस्तु** कर्म्ममीमांसकब्रह्ममीमांसकभेदाद् **द्विधा** । तत्र कर्म्ममीमांसका द्विजन्मानो, ब्रह्ममीमांसकाश्च भगवन्त एव । **कापिलाश्च** सांख्यास्तेषां च न किञ्चिन्मुद्रानैयत्यम् ।

पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे रतः ।
जटी मुण्डी शिखी वाऽपि मुच्यते नाऽत्र संशयः ।।१।। [ ] इति

तद्दर्शनव्यवस्थितेः । **कौलाश्च** नास्तिका योगिदर्शनदृश्या इति **दर्शिनः** ।।३१३।। यञ्चामीषां विधेयं तदाह -

एएसि तित्थियाणं भिक्खट्ठमुवट्ठियाण नियगेहे ।
कायव्वमुचियकिच्चं विसेसओ रायमहियाणं ।।३१४।।

एतेषां पूर्वोदितानां **तीर्थिकानां** दर्शिनां **भिक्षार्थं** भक्तादिनिमित्तं **निजगेहे समुपस्थितानामुचितकृत्यमागतस्वागतवाञ्छितार्थविश्राणनादिकं** सामान्येनैव **विधेयम्** । **राजमहितानां** नरपत्यमात्यादिपूजितानां पुनस्तदेव **सविशेषमिति** ।।३१४।।

अथ किमर्थममीषामसंयतानामेवं विधीयत इति चेत्, तदाह -

जईवि न मणंमि भत्ती न पक्खवाओ तग्गयगुणेसु ।
उचियं गिहागएसुं ति तहवि धम्मो गिहीण इमो ।।३१५।।

गाथा-३१४ 1. तुला - "एएसि तित्थिआणं, भिक्खट्ठमुवट्ठिआण निअगेहे ।
कायव्वमुचिअकिच्चं, विसेसओ रायमहिआणं ।।४२।।"

उचितकृत्यं यथार्हदानादि ।

"जइवि मणंमि न भत्ती, न पक्खवाओ अ तग्गयगुणेसुं । उचिअं गिहागएसुं, तहवि हु धम्मो गिहीण इमो ।।४३।।"

पक्षपातोऽनुमोदना, धर्म आचारः ।

"गेहागयाणमुचिअं, वसणावडिआण तह समुद्धरणं । दुहिआण दया एसो, सव्वेसिं सम्मओ धम्मो ।।४४।।"

पुरुषमपेक्ष्य मधुरालपनाऽऽसननिमन्त्रणाकार्यानुयोगतन्निर्माणादिकमुचितमाचरणीयं निपुणैः । अन्यत्राप्यूचे -

"सव्वत्थ उचिअकरणं, गुणाणुराओ रई अ जिणवयणे । अगुणेसु अ मज्झत्थं, सम्मद्दिट्ठिस्स लिंगाइं ।।१।।
मुंचंति न मज्जायं, जलनिहिणो नाचलावि हु चलंति । न कयावि उत्तमनरा, उचिआचरणं विलङ्घन्ति ।।४५।।
तेणं चिअ जगगुरुणो, तित्थयरावि हु गिहत्थवासंमि । अब्भुट्ठाणाइं कुव्वंति ।।४६।।"

इत्थं नवधौचित्यम् । - धर्म सं. अधि. २ गा. ६३ वृत्तौ ।।

नवधा औचितस्य स्वरूपम् श्राद्धविधिप्रकरणेऽपि हितोपदेशमालागाथाभिः दर्शितम् ।

दृश्यतां श्राद्ध वि. प्र. प्र. प्रकाश पत्राङ्क-२३१-२४७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किल सत्पात्राण्यमून्यवश्यं विश्राणितदानानि निस्तारयिष्यन्त्येव संसृतेर्मामित्येवंरूपा **मनसि यद्यपि** तद्विषया **भक्तिर्नास्ति** । **न** च **तद्गतगुणेषु** सम्यग्ज्ञानशून्येषु कायक्लेशादिषु **पक्षपातोऽ**नुमोदनालक्षणः । **तथापि गृहाश्रमिणामयं धर्म्मः** । धर्म्मशब्दोऽत्राचारवचनः । अतो गृहाश्रमाचारप्रतिपालनायामीषामिदमुचिताचरणमाचरणीयम्, न पुनर्भक्त्यादिभिरिति ।।३१५।।

न चायमेकदर्शनानुगत एव व्यवहारः किन्तु सर्वसम्मत इति प्रदर्शयितुमाह –

गेहागयाणमुचियं वसणावडियाण तह समुद्धरणं ।
दुहियाण दया एसो सव्वेसिं सम्मओ धम्मो ।।३१६।।

एष धर्म्मः सर्वेषामपि धर्म्मास्तिक्यवतां **सम्मतः** । कः ? इत्याह **गेहागतानां** पुरुषमपेक्ष्य मधुरालपनासननिमन्त्रणकार्यानुयोगतन्निर्माणादिकम**ुचिताचरणम्** । **तथा व्यसनपतितानामा**पदापगापतितनिमग्नानां यथाशक्ति **समुद्धरणम्** । तथा **दुःखितानां** दीनानाथान्धबधिरव्याधितादीनां **दया** तद्दुःखदुःखितत्वं यथाशक्ति प्रतीकारश्चेत्ययं **सर्वेषां** निर्विवादः **सम्मतश्च धर्म्म** इति ।।३१६।।

साम्प्रतमुचिताचरणस्य फलं व्यनक्ति –

पिइमाईण समुचियं पउंजमाणा जहुत्तजुत्तीए ।
पुरिसा पसंतवसणा जिणधम्माहिगारिणो हुंति ।।३१७।।

पितृप्रभृतीनां पूर्वोदितानां नवानामन्येषामप्येवम्प्रकाराणां **यथोक्तयुक्त्या समुचितं प्रयुञ्जानाः पुरुषाः प्रशान्तव्यसनाः** पित्रादिसमुचिताचरणप्रभावादेवापास्तसमस्तप्रत्यूहव्यूहाः । **जिनधर्म्म**स्यार्हद्धर्मस्य सम्यक्त्वदेशसर्वविरत्यादिरूपस्या**धिकारिणो** योग्या **भवन्ति** । किमुक्तं भवति ? ये किल लौकिकेऽप्युचिताचरणमात्रे कर्म्मणि न कर्म्मठास्ते कथं लोकोत्तरे लोकोत्तरनरसूक्ष्ममतिग्राह्ये जैनधर्म्मे प्रवीणाः स्युस्तस्मादवश्यं धर्म्मार्थिभिरादावुचिताचरणनिपुणैर्भाव्यमिति ।।३१७।।

नैसर्गिकी चोत्तमनराणामुचिताचरणप्रवृत्तिरित्युपमानपूर्वं प्रदर्शयन्नाह –

मुंचंति न मज्जायं जलनिहिणो नाचला वि हु चलंति ।
न कयावि उत्तमनरा उचियाचरणं विलंघंति ।।३१८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जलनिधयः समुद्रा **मर्यादाम**वधिं न **मुञ्चन्ति** । विपुलकल्लोलमालावलीढनभस्तला अपि वेलां नातिवर्त्तन्ते । **अचलाः** क्षोणिभृतोऽपि विततवात्यादिप्रकम्पिता **अपि न चलन्ति** । एवमे**वोत्तमनराः** प्रधानपुमांसः **कदाचिदप्युचिताचरणं** पूर्वोदितं न **लङ्घयन्तीति** ।।३१८।।

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति –

तेणं चिय जयगुरुणो तित्थयरा वि हु गिहत्थभावंमि ।
अम्मापिऊणमुचियं अब्भुट्ठाणाइ कुव्वंति ।।३१९।।

तेनैव लोकोत्तमत्वगुणेन **जगद्गुरवस्तीर्थकरा अपि** भोग्यफलकर्मवशाद् **गृहस्थभावे** वर्त्तमाना **मातापित्रोरुचितमभ्युत्थानादिकं** विनयकर्म्म **कुर्वते** । अतो यदि लोकोत्तरां तीर्थकृत्पदवीमासेदिवांसस्त एव जगतामपि गुरवो जिनाः समये समुचिताचरणं चरितवन्तस्ततः कथमितरैस्तत्र न प्रयतितव्यमित्यर्थः ।।३१९।। यतः –

विद्याः सन्तु चतुर्दशाऽपि सकलाः खेलन्तु तास्ताः कलाः ।
कामं कामितकामकामसुरभिः श्रीः सेवतां मन्दिरम् ।
दोर्दण्डद्वयडम्बरेण ततुतामेकातपत्रां महीम् ।
न स्यात् कीर्त्तिपदं तथापि हि पुमानौचित्यचञ्चुर्न चेत् ।।१।। अपि च -
आदेयत्वमसंस्तुतेऽपि हि जने विस्तारयत्यञ्जसा ।
दुर्वृत्तानपि सान्त्वयत्यवनिभृत्प्रायानपायोद्यतान् ।
तत् संवर्गयति त्रिवर्गमिह चामुत्रापि यस्माच्छुभम् ।
किं वा तत्र तनोति यत् सुकृतिनामौचित्यचिन्तामणिः ।।२।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र-सूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**धरमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीये मूलद्वारे सप्तम**मुचिताचरण-**प्रतिद्वारं समाप्तमिति ।।३१९।। श्रीः ।।

व्याख्यातमुचितद्वारम् । साम्प्रतं देशादिविरुद्धपरिहारद्वारमाचिख्यासुराह –

उचियाचरणेण नरो लद्धपसिद्धी वि नंदए न चिरं ।
देसाईविरुद्धाइं अचयंतो ते तओ चयसु ।।३२०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरः पुमानुचिताचरणेन पूर्वोपवर्णितेन **लब्धप्रसिद्धिरपि चिरं न नन्दति** स्थिरश्रीभाजनं न भवति । किं तु कुर्व्वन् ? **देशादिविरुद्धानि** वक्ष्यमाणानि **पञ्चामुञ्चन्** । अतो हे शिष्य ! **तानि त्यज** ।।३२०।। तान्येवाह –

देसस्स य कालस्स य निवस्स लोगस्स तह य धम्मस्स ।
वज्जंतो पडिकूलं धम्मं सम्मं च लहइ नरो ।।३२१।।

[1]**देशस्य कालस्य नृपस्य लोकस्य धर्म्मस्य च प्रतिकूलं** विरुद्धं वक्ष्यमाणस्वरूपं **वर्जयन्नरो धर्म्मं** त्रिवर्ग्गसारं **शर्म च** सर्वेन्द्रियाह्लादकं **लभते** । **'धर्म्माविनाभूतत्वाच्छर्म्मणः'** ।।३२१।।

तत्रादौ देशलक्षणमाह –

एगस्स भूमिवइणो नयरस्स व जो हविज्ज पडिबद्धो ।
भूभागो सो देसो तस्स विरुद्धं तु पडिकूलं ।।३२२।।

एकस्य भूमिपतेर्नगरस्य वा यो भूभागः प्रतिबद्धः स देशस्तस्य च विरुद्धं प्रतिकूलं । यथा लाटानां सुरासन्धानम्, सौवीराणां कृषिकर्म्म, इत्याद्यन्यदपि यद् यत्र देशे शिष्टजनैरनाचीर्णं तद् विरुद्धम् ।।३२२।।

तस्य च किं विधेयमित्याह –

तं पुण नरेण जत्तेण बुद्धिमंतेण नेव कायव्वं ।
गिहमित्तस्स वि कीरइ न विरुद्धं किमुय देसस्स ।।३२३।।

तत् पुनर्देशविरुद्धं **बुद्धिमता नरेणा**यतिहितार्थिना **नैव कर्त्तव्यम्** । किमित्याह - यतो **गृहमात्रस्यापि विरुद्धं न विधीयते किमुत देशस्य,** तस्य सुतरां परिहरणीयत्वात् ।।३२३।।

न य अन्नदेसियाणं पुरओ तद्देसखिंसणं कुणइ ।
सव्वेसिं पक्खवायाण देसपक्खो जओ गरुओ ।।३२४।।

गाथा-३२१ 1. तुला - तथा देशादिविरुद्धपरिहारो देश-काल-नृप-लोक-धर्मविरुद्धवर्जनम्, यदुक्तं हितोपदेश-मालायाम् - **"देसस्स य कालस्स य, निवस्स लोगस्स तह य धम्मस्स । वज्जंतो पडिकूलं, धम्मं सम्मं च लहइ नरो ।।१।।** तत्र यद्यत्र देशे शिष्टजनैरनाचीर्णं तत्तत्र देशविरुद्धम्, यथा सौवीरेषु कृषिकर्मेत्यादि । अथवा जातिकुलाद्यपेक्षया देशविरुद्धम्, यथा ब्राह्मणस्य सुरापानमित्यादि १ । - धर्म सं॰ अधि॰ २ - गा. ६३ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न केवलं देशविरुद्धमेव परिहरति, यावद**न्यदेशिकानां पुरतस्तद्देशतिरस्कारं न कुरुते** । यतः **सर्वपक्षपातेभ्यो** हि स्वदेशपक्षपातस्य **गुरुत्वात्तस्मिंश्च** तिरस्क्रियमाणे तैः सह कदाचित् केशाकेशि-दण्डादण्डि-शस्त्राशस्त्रिप्रभृतयोऽपि सम्भवेयुरतः किं तेनानर्थदण्डेन ।।३२४।।

एवं देसविरुद्धं कालविरुद्धं तु इह इमं नेयं ।
पत्थाणमपत्थावे तं कीरइ किर नरेणेवं ।।३२५।।

एवमुक्तस्वरूपं **देशविरुद्धम् । [1]कालविरुद्धं त्विहास्मिन्** विरुद्धाधिकारे इदं ज्ञेयम् । यत् **किल**यत्यपर्यालोचिना **नरेणैवं** वक्ष्यमाणेऽ**प्रस्तावे**ऽसमये **प्रस्थानं विधीयते** ।।३२५।।

अप्रस्तावमेव व्यनक्ति –

हेमंते हिमगिरिपरिसरेसु गिम्हे मरुत्थलपहेसु ।
वासासु अवरदक्खिणसमुद्दपेरंतभागेसु ।।३२६।।
अइदुब्भिक्खे नरनाहविग्गहे मग्गरोहकंतारे ।
असहायस्स पओसे पत्थाणमणत्थपत्थारी ।।३२७।।

एतेषु प्रस्तावेषु यदत्यन्तलोभाविष्टैतुभिः प्रस्थानं क्रियते, तत् केवलमात्मनोऽनर्थप्रस्तरणमेव । केषु ? इत्याह –

असहायस्येति प्रत्येकमभिसम्बध्यते । **हेमन्ते** शीततौ **हिमगिरिपरिसरेषु** तुषारभूधरसन्निधानाध्वसु यत् प्रस्थानम् । ग्रीष्म एव तत्र प्रायः सञ्चारयोग्यत्वात् । तथा **ग्रीष्मे** तपतौ **मरुस्थलमार्गेष्वत्यन्तजाङ्गलेषु** । वर्षादावेव प्रायस्तेषु चङ्क्रमणोपपत्तेः । तथा **वर्षास्वपरदक्षिणसमुद्रपर्यन्तभागेषु** । तदा हि तेषामत्यन्तपिच्छिलपङ्काकुलत्वेन दुर्विगाह्यत्वात् । तथा **अतिदुर्भिक्षे** सार्वत्रिकेऽवमे । **नरनाथविग्रहे** क्षितिभुजां मिथः सम्प्रहारोपक्रमे । **मार्गरोधे** नृपतिजनित एवाध्वसंरोधे । **कान्तारे** निर्मानुषभीषणारण्ये । **प्रदोषे** यामिनीमुखे । अन्यत्राप्येवम्प्रकारे प्रस्तावे **असहायस्य** स्वशरीरमात्रद्वितीयस्य पुंसः **प्रस्थानं** धनप्राणोभयव्ययहेतुत्वा**दनर्थायैव** । जनसमुदाये तु कदाचिदुत्तीर्यन्त एव दुर्गाणि ।।३२६।।३२७।।

गाथा-३२५ 1. **तुला** - कालविरुद्धं त्वेवं शीततौ हिमालयपरिसरे, ग्रीष्मतौ मरौ, वर्षासु अपरदक्षिणसमुद्रपर्यन्तभागेषु, महारण्ये यामिनीमुखवेलायां वा प्रस्थानम् । तथा फाल्गुनमासाद्यनन्तरं तिलपीलनम्, तद्व्यवसायादि, वर्षासु वा पत्रशाकाग्रहणादि ज्ञेयम् २ । - धर्म सं. अधि. २ - गा. ६३ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशकालविरुद्धद्वारे निगमयन्नाह –

पुरिसो देसविरुद्धं कालविरुद्धं च मुणिय मुंचंतो ।
होइ पुरिसत्थभागी अणत्थसत्थे य नित्थरइ ।।३२८।।

देशविरुद्धं कालविरुद्धं च पूर्वोपवर्णितं सम्यक् **परिज्ञाय मुञ्चन् पुमान् धर्म्मार्थकामानां भाजनं भवति** । इहपरलोकप्रतिबद्धान**नर्थसार्थांश्च निस्तरति** । अतस्त्याज्यं एव देशकालप्रतिकूले ।।३२८।।

साम्प्रतं नृपतिविरुद्धं हेयतयोपदर्शयन्नाह –

निवइविरुद्धं पुण निउणबुद्धिणा नियमसो न कायव्वं ।
सामन्नजणविलक्खण - तेयसिरिभासुरा जं ते ।।३२९।।

[1]**नृपतिविरुद्धं** राजद्विष्टं **पुनर्निपुणमतिना** चतुरचेतसा **नियमेन न विधेयम्** । किमित्याह - **यतस्ते** क्षितिपतयः **सामान्यजनविलक्षणतेजो लक्ष्मीललिततनवः** स्युः ।।३२९।।

तथा च सति किमभूदिति चेत्, तदाह –

इयरो वि नरो न सहइ अप्पंमि विरुद्धमायरिज्जंतं ।
किं पुण लोउत्तरविरिय - दुद्धरा धरणिधायारो ।।३३०।।

इतरः स्वोदरम्भरि**रपि पुमानात्मविरुद्धं विधीयमानं** प्रतिकर्तुमसमर्थो **न विषहते** । निर्विषोऽपि भुजङ्गम इव दण्डादिघट्टितः फटाटोपमुपकल्पयति । **धरणिभृतः पुनर्लोकोत्तरवीर्य-दुर्द्धर्षाः किमित्यात्मनः** प्रतिकूलमुपकल्प्यमानं विषहिष्यन्ते । अनाविष्कृतशक्तयस्तरस्विनोऽपि नियतमभिभवनीया भवेयुः । उक्तं च –

अप्रकटीकृतशक्तिः शक्तोऽपि जनस्तिरस्क्रियां लभते ।
निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घ्यो वह्निर्न तु ज्वलितः ।।१।। [ ] इति ।।३३०।।

गाथा-३२९ 1. **तुला** - राजविरुद्धं च राज्ञः सम्मतानामसम्माननम्, राज्ञोऽसम्मतानो सङ्गतिः, वैरिस्थानेषु लोभाद्गतिर्वैरिस्थानागतैः सह व्यवहारादि, राजदेयभागशुल्कादिखण्डनमित्यादि ३ ।

- धर्म सं. अधि. २ - गा. ६३ वृत्तौ ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः प्रस्तुतमेवाह -

संते वि निवइदोसे न पयासइ कहवि कस्सवि समक्खं ।
अप्पे वि गुणे गुरुगोरवेण सव्वत्थ पयडेइ ।।३३१।।

सतोऽपि नृपतिदोषान् कुतोऽपि हेतोस्तद्विरागवानपि **कथमपि कस्यापि समक्षं न प्रकाशयति** । दुरुदर्कत्वात्तद्दोषाविष्कारस्य । **तद्गुणांस्तु स्वल्पानपि गुरुतरगौरवेण सर्वत्र** सपक्षे विपक्षे वा **प्रकटयति** । तथा कृते हि नियतं प्रसीदन्ति तन्मनांसि । प्रसन्नाश्च नृदेवा देवा इव किं नाभीष्टं सङ्घटयेयुः ।।३३१।। किञ्च -

नरनाहसम्मयाणं सम्माणं कुणइ सुबहु बहुमाणं ।
तप्पडिकूलेहिं समं समंतओ चयइ संगं पि ।।३३२।।

नरनाथसम्मतानाममात्यपुरोधश्चमूपतिप्रतीहारप्रभृतीनां सुबहुबहुमानपुरस्सरं **सम्मानं करोति** । तत्सम्मानं हि नृपतिसम्मानमिव फलत्येवावसरेषु । तथा **तत्प्रतिकूलैः** प्रभुप्रतिपन्थिभिः **सम्मा**स्तामादानदानव्यवहृतिं यावत् **सङ्गं** सम्पर्कमात्रमपि सर्वात्मना **त्यजति** । तस्यापि दुरुदर्कत्वात् ।।३३२।। तथा -

न य तयरिजणवएसुं बहुलाभेसु वि गमागमं कुणइ ।
संघडइ न पडिभंडं तद्देसोवणयवणियाणं ।।३३३।।

न च तस्य स्वस्वामिनोऽरिजनपदेषु वैरिदेशेषु **बहुलाभेष्वपि** सम्भाव्यप्रचुरद्रव्यायेष्वपि **गमागमं** यातायतं **करोति** । तथा **तद्देशोपनतानां** वैरिजनपदादुपनतानां **वणिजां** निगमानां **प्रतिभाण्डं** तदानीतपण्यप्रतिपण्यं **न सङ्घटयति** । उभयस्याप्येतस्य राजापथ्यभूतत्वेन परिणामदारुणत्वात् ।।३३३।। किञ्च -

लद्धुं पहुबहुमाणं अप्पाणं चिय न मन्नइ पहुं ति ।
निवतेयतरलिओ नायराण नायरइ पडिकूलं ।।३३४।।

कदाचित् सुकृतसन्ततिसम्मुखीकृतात् **प्रभोर्बहुमानं** प्रसादं **प्राप्याप्यात्मानमेव प्रभुमिति मन्यमानस्तद्विधेयेषु** विधिनिषेधादिषु स्वच्छन्दतया **न** प्रवर्त्तते । तथा **नृपतेजसा** राजवर्चसा **तरलितस्तन्मयतामापन्नो नागराणां** पौराणां **प्रतिकूलं** विरुद्धं **नाचरति** । प्रतिकूलाचरणेन

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरक्तमहाजनः क्षितिपतिरपि न चिरं नन्दति । किं पुनस्तदनुजीविन इति ।।३३४।। अन्यच्च -

सत्तुप्पउत्तगूढाभिमरचरेहिं बहुं पि वेलविओ ।
चिंतइ दिन्नदुहोहं मणसा वि न सामिणो दोहं ।।३३५।।

किल नृपतीनामन्तरङ्गमासन्नचरं नरमुपश्रुत्य तदरातयः प्रचुरद्रव्यादिप्रलोभनपुरःसरं तद्द्वारेण चिकीर्षति तीक्ष्णादिप्रयोगमतस्तन्निषेधायाह-**शत्रुप्रयुक्तैर्गूढैरभिमरैश्चरैश्च बह्वपि** विविधप्रकारमुपदादिभि**र्विप्रलब्धो**ऽप्यास्तां वचःकायाभ्यां याव**न्मनसापी**हामुत्र च **दत्तासुखसन्दोहं न चिन्तयति [स्वामिनः** प्रभोः **द्रोहम**शुभमिति] ।।३३५।।

कुत इति चेदित्याह –

कह हीरइ तस्स जीयं जीवंते जम्मि जियइ जियलोओ ।
जं चउसु आसमेसुं गुरुं ति मन्नंति दंसणिणो ।।३३६।।

कथं नाम महताऽपि कोशदेशादिलोभेन **तस्य** जगतीपतेर्जीवितं **ह्रियते । यस्मिन् जीवति** सकलोऽपि तदाश्रितो **जीवलोको जीवति** । शतसहस्रलक्षम्भरित्वाद् भूभुजाम् । अतस्तत्प्राणप्रहाणे तेषां सर्वेषामयत्नसिद्धमेव विशसनम् । तथा **यं** राजानमासतां प्रकृतिपौरादयो **दर्शनिनः** पाखण्डिनोऽपि ब्रह्मचारिगृहिवानप्रस्थयतिलक्षणेषु **चतुर्ष्वाश्रमेषु** विहितस्थितयो **गुरुमिति मन्यन्ते** । इदं तस्मै भूयाद् योऽस्मान् गोपायतीति ब्रुवाणा नीवारादिषष्ठांशेन स्वतपःषष्ठांशेन च संविभजन्ति च ।।३३६।।

ननु ते ते सग्रन्थतया निजाश्रमादिरक्षार्थं पार्थिवाभ्युदयाय प्रयतन्ते । निर्ग्रन्थमुनीनां तु किं तेनेति चेत्, तदाह –

निग्गंथा वि हु मुणिणो छत्तच्छायाइ जस्स निवसंता ।
उवसंतचित्ततावा पावाण कुणंति निग्गहणं ।।३३७।।

आसतामन्ये **निर्ग्रन्था** जैन**मुनयो**ऽपि **यस्य** भूपतेश्**छत्र**च्छायायां **निवसन्तः**श्चिरचितानां **पाप्मनां** यमनियमादिभि**र्निग्रहणं** निरसनं **कुर्वन्ति** । किम्भूताः ? **उपशान्तचित्ततापाः** । असति हि धर्मविजयिनि राजनि सर्वत्रोपप्लुतेषु संयमयोग्यक्षेत्रेषु कुतस्तेषां चित्तस्वास्थ्यं, तदभावे चासुकरः कल्मषक्षय इति ।।३३७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च सति यद् विधेयं तदाह –

तम्हा रायविरुद्धं विद्धंसियधम्मकम्मसम्बन्धं ।
न कयाइ कुसलबुद्धी बुद्धीइ वि संपहारिंति ।।३३८।।

तस्मादेवं सति **राजविरुद्धं** नृपतिप्रतिकूलं **कुशलबुद्धयः** कल्याणमतयः आस्तां कर्त्तव्यतया यावद् **बुद्ध्याऽपि न सम्प्रधारयन्ति** मनसाऽपि न व्यवस्यन्ति । किम्भूतं ? **विध्वस्तधर्म्म-कर्म्मसम्बन्धम्** । राजविरुद्धकारिणां हि कुतः परत्र हितेन धर्मेण इहलोकोपयोगिभिश्च द्रव्यादिभिः सह सम्बन्ध इति ।।३३८।।

एवं राजविरुद्धपरिहारमभिधाय लोकविरुद्धमपि त्याज्यत्वेन बिभणिषुरादौ लोकस्वरूपमाह -

लोओ जणु त्ति वुच्चइ पवाहरूवेण सासयसरूवो ।
तस्सायारविरुद्धं लोयविरुद्धं ति वित्रेयं ।।३३९।।

लोकशब्दस्तिर्यङ्नरनारकामरसाधारणोऽप्यत्र मर्त्यवाची । स एव च **जनशब्दाभिधेयः** । स

गाथा-३३९ 1. **तुला -** लोकविरुद्धं तु लोकस्य निन्दा विशिष्यस्य च गुणसमृद्धस्येयम्, आत्मोत्कर्षश्च, यतः-
"परपरिभवपरिवादादात्मोत्कर्षाच्च, बध्यते कर्म । नीचैर्गोत्रं प्रतिभवमनेकभवकोटिदुर्मोचम् ।।१।।
- प्रशमरतौ-१०० ।।

तथा ऋजूनामुपहासः । गुणवत्सु मत्सरः, कृतघ्नत्वं च बहुजनविरुद्धैः सह सङ्गतिः, जनमान्यानामवज्ञा, धर्मिणां स्वजनानां वा व्यसने तोषः, शक्तौ तदप्रतिकारो, देशाद्युचिताचारलङ्घनम्, वित्ताद्यननुसारेणात्युद्भटाति-मलिनवेषादिकरणम्, एवमादिलोकविरुद्धमिहाप्यपकीर्त्यादिकृत् । यदाह वाचकमुख्यः -
"लोकः खल्वाधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् । तस्माल्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यम् ।।१।।
- प्रशमरतौ-१३१ ।।

तत्त्यागे च जनानुरागस्वधर्मनिर्वाहरूपो गुणः । आह च –
"एआई परिहरंतो, सव्वस्स जणस्स वल्लहो होइ । जणवल्लहत्तणं पुण, नरस्स सम्मत्ततरुबीयं ।।१।। इति । हितो० ३४९ ।।
- धर्म सं० अधि० २ गा. ६३ वृत्तौ ।।

लोकविरुद्धानि कार्याणि दृश्यतां पञ्चा० २ - गा० ८-९-१० अभ० वृत्तौ ।।
'इहलोकविरुद्धं' परनिन्दादि, यदुक्तम् -
"सव्वस्स चेव निंदा, विसेसओ तह य गुणसमिद्धाणं । उज्जुधम्मकरणहसणं, रीढा जणपूयणिज्जाणं ।।१।।
बहुजणविरुद्धसंगो, देसाइआचारलंघणं तह य । उव्वणभोगो य तहा, दाणाइ वि पयडमन्नेसिं ।।२।।
साहुवसणम्मि तोसो, सइ सामत्थम्मि अपडियारो य । एमाइयाइं इत्थं, लोगविरुद्धाइं नेयाणि ।।३।।" इति
- पञ्चा० २/गा. ८-९-१०

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च पिण्डरूपेण विनश्वरोऽपि पितृपुत्रपौत्रादि**प्रवाहरूपेण शाश्वतस्वरूपः । तस्य चाचारः** पुरुषार्थप्रतिबद्धः शिष्टजनाचीर्णश्च व्यवहारः । तस्य **विरुद्धं** विलोमं **लोकविरुद्धमिति वि ज्ञेयम्** ।।३३९।। तत्र कर्त्तव्यतामाह –

वज्जेइ तं पि कुसलो असिलोगकरं सया सयायारो ।
सारो इमो वि धम्मस्स जेण जिणसासणे भणिओ ।।३४०।।

देशकालराजविरुद्धवत् **तदपि** लोकविरुद्धं **कुशलः** कलावान् **सदाचारश्च सदा** सर्वकालं **वर्जयेत् ।** किम् ? इत्यत आह - **अश्लोककरमकीर्तिनिबन्धनम् ।** हेत्वन्तरमप्याह - **येन जिनशासने** अहिंसासूनृतादिव**दयमपि** लोकविरुद्धपरिहारो **धर्म्मस्य सारतया** तत्त्वरूपतया **भणितस्तस्मादुपादेय एव** ।।३४०।। यतः -

लोयायारविरुद्धं कुणमाणो लहु लहुत्तणं लहइ ।
लहुयत्तणं च पत्तो तिणं व न नरो वि कज्जकरो ।।३४१।।

लोकाचारविरुद्धं कुर्वन्नरः पुमान् **लघु** शीघ्रं करणसमनन्तरमेव किमनेन जनसंव्यवहार-बाह्येनेति सर्वत्र **लघुत्वमवज्ञास्पदत्वं प्राप्नोति । लघुभूतश्च तृणवदकिञ्चित्कर एव भवति** ।।३४१।। किञ्च –

कह लहउ न बहुमाणं लोओ लोउत्तरा नरा जत्तो ।
होऊण तिहुयणं पि हु दुहजलनिलयाओ तारिंसु ।।३४२।।

कथं वासौ **लोको** जगति **बहुमानं** गौरवं **न लभताम् । यतो** यस्माल्लोकात् केचन **लोकोत्तरा**स्तीर्थकृद्गणधरप्रायाः **पुरुषप्रवरा भूत्वा** समुत्पद्य **त्रिभुवनमपि** त्रिजगतीगतं योग्यजन्तुजातं भवोद्भवद**ुःखाम्बुराशेस्तारयामासुः** ।।३४२।। अन्यच्च –

तिन्नि वि सया तिसट्ठा पासंडीणं सठाणपरितुट्ठा ।
जं उवजीवंति सया कहं स लोओ लहू होउ ।।३४३।।

स लोकः कथं नाम **लघुर्भवतु ।** यं अशीत्यधिकं शतं क्रियावादिनाम् । चतुरशीतिरक्रिया-वादिनाम् । सप्तषष्टिरज्ञानिनाम् । द्वात्रिंशद् वैनयिकानाम् । एवम्प्रकाराण्यमूनि **त्रिषष्ट्यधिकानि त्रीण्यपि शतानि पाखण्डिनाम् ।** उक्तं च –

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]असियसयं किरियाणं अकिरियवाईण होइ चुलसीइ ।
अन्नाणि सत्तसट्ठी वेणइयाणं तु बत्तीसं ।।१।। [स्थानाङ्ग सू० ४/४/३४५]

एतानि च लोकं भक्तपानवस्त्रोपाश्रयादिभि**रुपजीवन्ति** । किंविशिष्टानि ? **स्वस्थानपरितुष्टानि** स्वस्वधर्म्माचरणेन कृतार्थम्मन्यानि । अतः कथं स लोको लघुः ? कथं वा तद्विरुद्धमाचरितुमुचितम् ? यदवाचि **वाचकमुख्येन** –

लोकः खल्वाधारः सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ।
तस्माल्लोकविरुद्धं धर्म्मविरुद्धं च सन्त्याज्यम् [प्रशमरति-गा० १३१] ।।१।। इति ।।३४३।।

किञ्च –

का वा परेसि गणना मुणिणो परिचत्तसव्वसंगा वि ।
देहस्स संजमस्स य रक्खट्ठा जमणुवत्तंति ।।३४४।।

का वा परेषां किञ्चिदङ्गीकृतसङ्गानां पाखण्डिनां **गणना** । यावन्**मुनयः** सर्वज्ञपुत्रत्वेन परिज्ञातविज्ञेयवस्तुतत्त्वास्तत एव **परित्यक्तसर्वसङ्गाः** । केवलं कुक्षिशम्बलास्तेऽपि **देहस्य** संयमाधारस्य **संयमस्य च** सप्तदशभेदभिन्नस्य **रक्षार्थं** पालनार्थं **यं** लोकं मधुकरवृत्त्याऽ**नुवर्तन्ते** । यदुवाच **वाचकप्रवर** एव –

देहो नासाधनको लोकाधीनानि साधनान्यस्य ।
सद्धर्म्मानुपरोधात् तस्माल्लोकोऽभिगमनीय ।।१।। [प्रशमरति-गा.१३२] इति ।।३४४।।

एवं च सति कर्त्तव्यतामाह –

तम्हा बहुमंतव्वो लोओ कुसलेहिं नावमंतव्वो ।
तस्स य विरुद्धमेयं पुव्वायरिएहिं निद्दिट्ठं ।।३४५।।

तस्मादशेषधर्म्मचारिणामाधारभूतोऽयं लोकः कुशलैर्बहुमानास्पदत्वमेव विधेयो, **न** पुनरवज्ञास्पदत्वम् । **तस्य च विरुद्धं** प्रतिकूल**मेतद्** वक्ष्यमाणं **पूर्वाचार्यैर्निर्दिष्टम्** ।।३४५।। तदेवाह –

गाथा-३४३ 1. **तुला** - अयं साक्षीपाठः भगवतीसूत्र ३०/१ । स्थानाङ्ग सू० ४/४/३४५, तत्त्वार्थसूत्र - सर्वार्थसिद्धिवृत्तिः ८/१, आचाराङ्गशीलाङ्काचार्यवृत्तितः १/१/३ । गोम्मटसारकर्मकाण्डः गा. ८७६ ।।
- प्रव० सा० गा. ११८८ मध्य दृश्यतां ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]**सव्वस्स चेव निंदा विसेसओ तह य गुणसमिद्धाणं ।**
उजुधम्मकरणहसणं रीढा जणपूयणिज्जाणं ।।३४६।। [पञ्चाशक-२/८]

सर्वस्योत्तममध्यमाधमरूपस्य जनसमुदयस्य **निन्दा** सदसद्दूषणोद्घोषणरूपा । सा च महल्लोकविरुद्धम् । यतः-सर्वसत्त्वसाधारणा मैत्री चेत् कर्त्तुं न पार्यते तत् किं प्रत्युत तन्निन्दा विधेया । **तथा गुणैर्ज्ञा**नादिभिः **समृद्धानां** परभागमापन्नानां पुंसां **विशेषतो** निन्दा हेया । गुणिषु प्रमोदमिति वचनात् तथा प्रकृतिकोमलप्रज्ञत्वेन तथाविधचातुर्यवर्जितानामत एव **ऋजुधर्म्म-करणप्रवणानां** प्राणिनां हसनं तदपि विरुद्धम् । ते हि शनैः शनैः धर्मनैपुणमारोपणीया न तूपहसनीयाः । तथा विशिष्टगुणसङ्ग्रहेण **जने पूज्यत्वं प्राप्ता**नामिहपरलोकगुरुप्रभृतीनां **रीढा**ऽवज्ञा ।।३४६।। तथा -

बहुजणविरुद्धसंगो देसादायारलंघणं चेव ।
उब्भणभोओ य तहा दाणाइ वि पयडमन्ने उ ।।३४७।। [पञ्चाशक-२/९]

बहवो मौलामात्यपौरप्रभृतयस्ते च ते **जनाश्च** बहुजनास्तैः **सह** केनापि प्रकृतिसमुत्थेन दूषणेन यो **विरुद्धः** सम्भृतमत्सरस्तेन सह **सङ्गो** बाह्याभ्यन्तरः परिचयस्तदपि लोकविरुद्धम् । तथा **देशादा(द्या ?)चारलङ्घनम्** । यो यत्र देशे विशिष्टजनाचीर्णो व्यवहारः, स देशाचारस्तस्य लङ्घन-मन्यथाकरणं विरुद्धम् । **तथा** देशकालवयोविभूतिप्रभृतीनामनुचितस्तत **एवोल्बण** उद्भटो **यो भोग**स्तदपि जनविरुद्धम् । तथा **प्रकटन्नरपतिसभादावुपश्लोकनीयं यद् दानादि तदप्यन्ये** सूरयो लोकविरुद्धमाचक्षते । तथा चोक्तम् केनचित् स्वपुत्रशिक्षाऽवसरे -

सम्पदो विषयक्रीडा दानं च छन्नमेव नः ।
अलं भवति शोभायै शरीरमिव योषिताम् ।।१।। [त्रिषष्टि पर्व-१/२/३६] इति ।।३४७।।

किञ्च -

साहुवसणंमि तोसो सइ सामत्थंमि अपडियारो य ।
एमाइयाइं इत्थ लोगविरुद्धाइं णेयाइं ।।३४८।। [पञ्चाशक-२-१०]

साधूनां गुरुदेवधर्म्मपरलोकास्तिक्यसदाचरणवतां कुतोऽपि कुकर्म्मप्रातिकूल्याद् **व्यसनोप-**

गाथा-३४६ 1. **तुला** - मूलगाथायाः प्रतमध्ये सव्वस्स० गाथा-३४६ क्रमाङ्केन, तदनन्तरः साहूवसणंमि० गाथा-३४७ क्रमाङ्केन तदनन्तरः बहुजण० गाथा-३४८, क्रमाङ्केन दर्शिताः सन्ति ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निपाते **तोष**धारणमपि विरुद्धम् । यतस्तत्र यथाशक्ति प्रतीकाराय यतनीयं न पुनस्तदेवानुमोदनीयम् । अतः **सति सामर्थ्ये** तदप्रतीकारोऽपि **लोकविरुद्धम् । इत्थममुना** प्रकारेणेत्यादीन्यन्यान्यपि एवम्प्रकाराणि **लोकविरुद्धानि ज्ञेयानि** हेयानि चेति ।।३४८।।

एतत्परिहारेण यद् भवति, तदाह -

एयाइं परिहरंतो सव्वस्स जणस्स वल्लहो होइ ।
जणवल्लहत्तणं पुण नरस्स सम्मत्ततरुबीयं ।।३४९।।

एतानि पूर्वाचार्यनिर्दर्शितानि लोकविरुद्धानि **परिहरन्** पुमान् **सर्व्वस्य जनस्य वल्लभो भवति । जनवाल्लभ्यं तु सम्यक्त्वतरोर्मूलबीजम्** । सम्यक्त्वं तु मोक्षवृक्षस्येति ।।३४९।।

धर्म्मविरुद्धपरिहारं प्रस्तावयन्नाह -

देसविरुद्धाईणि उ इमाइं मुञ्चंति धम्मरक्खट्ठा ।
तम्हा धम्मविरुद्धं परेण जत्तेण मुत्तव्वं ।।३५०।।

देशादिविरुद्धान्यमूनि तु चत्वार्यपि **धर्मरक्षार्थमेव मुच्यन्ते । तस्माद् धर्म्मस्यैव यद् विरुद्धं** तत् **परेण यत्नेन** मतिमतां **मोक्तव्यमिति** ।।३५०।।

धर्म्मस्य निरुक्तमाह -

धरइ पडंतं जो दुग्गईइ दुक्खत्तसत्तसंघायं ।
सो इह वुच्चइ धम्मो तस्स विरुद्धं तु पुण इणमो ।।३५१।।

इहास्मिन् जगति **दुःखार्त्तं सत्त्वसङ्घातं** तिर्यङ्नारकादिरूपायां **दुर्गतौ** कुकर्म्मप्रेरणा**त्रिपतन्तं यः** किल **धारयति** । सुगतौ च स्थापयति **स** एव **धर्म्म इति प्रोच्यते** । अन्ये तु धर्म्माभासा एव । **तस्य पुनर्विरुद्धमिदं** वक्ष्यमाणम् ।।३५१।।

तदेवाह -

आसवदारपवित्ती अणायरो धम्मकम्मनिम्माणे ।
मुणिजणविद्देसित्तं चेइयदव्वस्स परिभोगो ।।३५२।।

गाथा-३५१ 1. **तुला -** दुर्गतिप्रसृतान् जीवान् यस्माद्धारयते ततः ।
धत्ते चैतान् शुभे स्थाने, तस्माद्धर्म इति स्मृतः ।।१।। - श्राव. ध. प्र. गा. ३ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]**आश्रवद्वारेषु** प्राणातिपातादिषु निर्दयं या **प्रवृत्ति**स्तद् धर्म्मविरुद्धम्, पापोपायरूपत्वादाश्रवप्रवृत्तेः । तथा **धर्म्मकर्म्मणामा**वश्यकादीनां नित्यकृत्यानां **कर्त्तव्येऽनादरः** । तथा भक्तिबहुमानार्हेष्वनुपकृतपरोपकृतिपरेषु **मुनिजनेषु विद्वेषभावः** । तथा **चैत्यानाम**र्हदालयानां **द्रव्यस्य परिभोगो**ऽपि महद् धर्म्मविरुद्धम् । दीर्घभवभ्रमणहेतुत्वाच्चैत्यवित्तोपभोगस्य ।। उक्तं च -

जिणपवयणवुड्ढिकरं पभावगं नाणदंसणगुणाणं ।
भक्खंतो जिणदव्वं अणंतसंसारिओ होइ ।।१।। [श्राद्धदिनकृत्य गा. १४२] त्ति ।।३५२।। तथा -

जिणसासणोवहासो लिंगिणिजणसंगसाहसिक्कं च ।
कोलायरियपरूविय - धम्मरई विरइवज्झासो ।।३५३।।

दुरन्तसंसृतिसमुद्भवदुःखलक्षविमोक्षक्षमस्य सर्वविन्मूलत्वेनेतरकुशासनैर्दुर्द्धर्षस्य महामहिम्नः **श्रीजिनशासनस्योपहासो** महद् धर्म्मविरुद्धम् । तथा **लिङ्गिन्यः** पाखण्डिन्यः **ताभिः सह सङ्गः** पतिपत्नीभावस्तदवशिष्टजनमनःप्रकम्पजनकत्वेन **साहसिक्यमिव** साहसिक्यं तदपि प्रस्तुतविरुद्धम् । तथा **कौलाचार्या**श्चार्वाकास्तैः **प्ररूपितो** योऽसौ **धर्म्ममार्गः** -

मंतो न तंतो न य किंपि जाणं झाणं च नो किंपि गुरुप्पसादा ।
मज्जं पिवामो महिलं रमामो सग्गं च जामो कुलमग्गलग्गा ।।१।।

इत्यादिरूपस्तत्र **रति**रासक्तिः । तथा **विरते**र्देशसर्वरूपायाः सम्यगननुपालनलक्षणो **व्यत्यासस्त**दपि धर्म्मविरुद्धम् ।।३५३।। तथा -

गुरुसामिधम्मिसुहिसयण - जुवइवीसत्थवंचणारंभो ।
पररिद्धिमच्छरित्तं अज्झुब्भडलोभसंखोभो ।।३५४।।

गाथा-३५२ 1. **तुला** - अथ धर्मविरुद्धं चैवं - मिथ्यात्वकृत्यम्, निर्दयं गवादेस्ताडनबन्धनादि, निराधारं यूकादेरातपे च मत्कुणादेः क्षेपः, शीर्षे महाकङ्कतक्षेपः, लिक्षास्फोटनादि, उष्णकाले त्रिः शेषकाले च द्विर्दृढबृहद्वस्त्रनकेन सङ्गरादिसत्यापनादियुक्त्या जलगालने धान्येन्धन-शाक-ताम्बूल-फलादिशोधनादौ च सम्यग् अप्रवृत्तिः । अक्षत-पूग-खारिक-वालु-ओलि-फलकादेर्मुखे क्षेपः । नालकेन धारया वा जलादिपानम्, रन्धन-खण्डन-पेषण-घर्षण-मलमूत्रश्लेष्मगण्डूषादिजल-ताम्बूलत्यागादौ सम्यग् अयतना । धर्मकर्मण्यनादरो, देव-गुरु-साधर्मिकेषु विद्वेषश्चेत्यादि । तथा देव-गुरु-साधारणद्रव्यपरिभोगो, निर्द्धर्मसंसर्गो, धार्मिकोपहासः कषायबाहुल्यम्, बहुदोषः क्रयविक्रयः, खरकर्मसु पापमयाधिकारादौ च प्रवृत्तिरेवमादि धर्मविरुद्धम् । देशादिविरुद्धानामपि धर्मवत आचरणे धर्मनिन्दोपपत्तेर्धर्मविरुद्धतैव ।५। तदेवं पञ्चविधं विरुद्धं श्राद्धेन परिहार्यमिति देशादिविरुद्धत्यागः ।

- धर्म सं. अधि. २-गा. ६३ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुर्धर्म्माचार्यः, **स्वामी** वृत्तिदः, **धार्म्मिकाः** कामार्थयोर्गुणीभावेन केवलधर्म्मनिर्मितिरतयः, **सुहृदो** मित्राणि, **स्वजनाः** पितृमातृपक्षीयाः, **युवत्यो**ऽबलाः, **विश्वस्ताः** सर्वात्मनाप्यात्मनि धृताप्तत्वबुद्धयः । एतेषां **वञ्चने**ऽतिसन्धाने यः किं**लारम्भस्त**दौपयिकचिन्तनमेतदपि लोकद्वय-गर्हितत्वेन धर्म्मविरुद्धम् । तथा स्वस्मादन्ये **परास्ते**षां **ऋद्धिः** सत्कर्म्मानुकूल्येनोपनतासम्पत् तत्र **मत्सरित्व**मसहनत्वम् । तथा **अत्युद्भटः** कृत्याकृत्यविचारशून्यो यो **लोभ**श्चतुर्थसम्परायस्तञ्ज नितः **क्षोभ**श्चेतसोऽस्वास्थ्यं, तदपि प्रस्तुतविरुद्धम् । **'लोभमूलानि पापानि'** इति वचनात् ।।३५४।। तथा -

कयविक्कयाणि निच्चं कुलजणवयअणुचियाण वत्थूणं ।
मणसो य निद्दयत्तं खरकम्मे वावडत्तं च ।।३५५।।

कुलदेशाचारानुचितानां वस्तूनां क्रयविक्रयावपि धर्म्मविरुद्धम्, तदाचरणेन धर्म्मनिन्दो-पपत्तेः । तथा **मनस**श्चेतसो **निर्दयत्वम**नार्द्रत्वम् । धर्म्माधिष्ठितमनसो हि प्रायः कृपाकोमलमतय एव भवन्ति । तथा **खरकर्म्म**स्वारक्षपदादिषु **व्यापृतत्व**मपि प्रस्तुतविरुद्धम् । निरन्तरमार्त्तरौद्र-ध्यानानुबन्धित्वात् तेषां व्यापाराणामिति ।।३५५।। अत्र विधेयतामभिधत्ते –

एयाइं धम्मतरुमूल - जलिरजालावलीसमाणाइं ।
मुत्तव्वाइं नरेहिं सासयसिवसुक्खकंखीहिं ।।३५६।।

एतानि पूर्वोदितानि विरुद्धानि **शाश्वतशिवसुखकाङ्क्षिभिः पुम्भिः** सुदूरं **मोक्तव्यानि** । किम् ? इत्यत आह - यतो धर्म्म एव **तरुर्धर्मतरुस्तस्य मूलं** सम्यक्त्वादि । तत्रैतानि **ज्वलज्ज्वालावलीसमानानि** । किमुक्तं भवति ? यथा हि तरुर्मूलदेशे ज्वलज्ज्वलनज्वालावलीढः प्रौढोऽप्यचिरेण विनश्यति, एवं धर्म्मद्रुमोऽप्यमीभिर्विरुद्धाचरणैरिति ।।३५६।।

अथ किमर्थमयमियानभियोगो धर्म्मविरुद्धत्यागायेति चेत्, तदाह -

कुलरूवरिद्धिसामित्तणाइ पुरिसस्स जेणमुवणीयं ।
धम्मस्स तस्स जुज्जइ कह नाम विरुद्धमाचरिउं ।।३५७।।

तस्यैवंविधस्य **धर्म्मस्य** कृतज्ञानां **कथं विरुद्धमाचरितुं युज्यते** । येन किम् ? **येन पुरुषस्यै-**तदेत**दुपनीतम्** । किं तद् ? इत्याह - **कुल**मुग्रभोगादिकम् । **रूपं** समचतुरस्रसंस्थानादि । **ऋद्धयः**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषार्थोपबृंहणपटवः सम्पदः । **स्वामित्व**मस्खलिताज्ञैश्वर्यं प्रभुत्वम् । **आदि**शब्दाद् बलविद्यासदपत्यादिकं च सम्यगाराधिताद् धर्म्मादेव नियतं सुकुलोत्पत्तिप्रभृतयः प्रभवन्ति । उक्तं च -

येनानीतः कुलममलिनं लम्भितश्चारुरूपम् ।
श्लाघ्यं जन्म श्रियमुदयिनीं बुद्धिमाचारशुद्धिम् ।।
पुण्यान् पुत्रानतिशयवतीं प्रेत्य च स्वःसमृद्धिम् ।
धर्म्मं नो चेत् तमुपकुरुते यः कुतोऽसौ कृतज्ञः ।।१।। [ ]

अतः कथं तस्यैवमुपकारिणो धर्म्मस्य विरुद्धाचरणमुचितमिति ।।३५७।।

पुनर्धर्मस्यैव महिमानमुदीरयति -

जेहिं पुरा जम्मजरामरणजलो रोगसोगतिमिमगरो ।
उत्तिन्नो भवजलही तेहिं धुवं धम्मपोएण ।।३५८।।
इन्हिं पि तरंति तह भविस्ससमए वि तह तरिस्संति ।
तम्हा धम्मविरुद्धं न कयाइ कुणंति बुद्धिधणा ।।३५९।।

तस्मादेवमुच्यमानं **धर्म्मस्य** माहात्म्यमवगम्य **तद्विरुद्धं बुद्धिधनाः कदाचिदपि न कुर्वन्ति** । किं तद् ? इत्याह - भव एव जलधि**र्भवजलधिः** । किम्भूतो ? **जन्मजरामरणान्येव जलं** यत्र स तथा । **रोगशोकादय** एव **तिमिमकरा** यत्र स तथा । एवंविधः संसृतिसरित्पतिः पुरा यैः सुकृतिभि**रुत्तीर्णस्तैर्ध्रुवं धर्म**लक्षणेनैव **पोतेन** वहित्रेण । तथा - **इदानीमपि** वर्तमानेऽनेहसि ते **तथैव तरन्ति भविष्यत्य**नागतेऽपि **समये तथैव** च **तरिष्यन्ति** । न खलु धर्म्मपोतमन्तरेणान्योऽपि भवाम्भःपतेः समुत्तरणोपायः । अतो यत्प्रभावादेवं भवप्रभवदुःखेभ्यो भव्याङ्गिनः प्रोन्मुच्यन्ते परिहार्यमेव तद्विरुद्धमिति ।।३५८।।३५९।।

साम्प्रतं देशादिविरुद्धपरिहारद्वारमुपसंहरन्नाह -

देसाइविरुद्धाणं इक्को वि सुहावहो विमुञ्चंतो ।
किं पुण सव्वे सव्वं कुसलकलापं उवणमंतो ।।३६०।।

देशादिविरुद्धानां पूर्वोदितानां पञ्चाना**मेकोऽपि विमुच्यमानः सुखावहः** शुभावहश्च भवति । **किं पुनः सर्वे** । किं कुर्वन्तः ? **सर्व**मिहपरलोकानुगतं **कुशलकलापं** कल्याणसमुदय**मुपन-**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मयन्तः, तस्माद् विमोक्तव्यान्येवामूनि विरुद्धानीति । यतः देशस्य कालस्य तथा नृपस्य लोकस्य धर्म्मस्य विरुद्धमेवं गुरूपदेशात् सुधियस्त्यजन्तस्त्यजन्ति सर्वव्यसनानि दूरम् ।। किञ्च -

प्रबलबलखलोक्तिध्वंसने चेन्मनीषा,
मुखरयितुमशेषं चार्थवादैः सपक्षम् ।
कथमपि च पुमर्थानर्थयुक्तान् विधातुम्;
परिहरत विरुद्धं तद् बुधाः पञ्चधाऽपि ।।१।। [ ]

इति श्रीनवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देव-भद्रसूरि**शिष्यावतंस-**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीये मूलद्वारे अष्टमं **देशादि-**विरुद्धपरिहारप्रतिद्वारं समाप्तमिति ।। भद्रम् ।।३६०।। श्रीः ।

उक्तं देशादिविरुद्धपरिहारद्वारं, साम्प्रतमात्मोत्कर्षत्यागद्वारं प्रस्तावयन्नाह -

दाणाईण गुणे कहकहिव हु पुन्नपुंजसंघडिए ।
अत्तुकरिसेण नरो हारेइ खणेण नणु तम्हा ।।३६१।।
विणयवणधूमकेउं वसणगणागमणविउलतरसेउं ।
दुग्गइपहपाहेयं अत्तुकरिसं चयह एयं ।।३६२।।

तस्मादेवमवबुद्ध्यैतमात्मोत्कर्षं त्यजत । यस्मादनेन **नरः कथमप्य**गण्यपुण्यपुञ्जसङ्घटि-तानपि पूर्वोदितान् **दानादिगुणांस्त्वरितं हारयति** । सतोऽप्यसत्प्रायान् विधत्ते । किंविशिष्टम् आत्मोत्कर्षम् ? **विनयः** पूर्वोदितस्वरूपः । स एव ज्ञानादिपादपपेशलत्वेन वनमिव **वनं** । तस्य **धूमकेतुमिव** ज्वलनमिव, यथा हि धूमध्वजः प्राप्तप्रसरः क्षणेन महदपि वनं विनाशयत्येव-मात्मोत्कर्षोऽपि विनयम् । कूटाभिमानरूपत्वादात्मोत्कर्षस्य । विनयस्य च मार्दवरूपत्वात् । पुनः किम्भूतम् ? । व्यसनान्यहङ्कारसमुत्थानि वक्ष्यमाणानि, तेषां गणः समूहस्तदागमने **विपुल-तरसेतुम्** । यथा हि विस्तीर्णे सेतौ सुखमध्वन्यगणः सञ्चरते, एवमहङ्कारस्फारे नरे व्यसनसमूह इति । तथा दुर्गतिः तिर्यङ्नारकादिलक्षणा तस्यां गमने पाथेयमिव **पाथेयम्** । तथाहि - प्रचुरपाथेयसुस्थितः पान्थः पृथुतरमपि पन्थानमुल्लङ्घ्य **समीहितपदं** प्राप्नोत्येवमात्मोत्कर्षवानपि दुर्गतिमिति ।।३६१।।३६२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु क्लेशशतार्जितानां शरदिन्दुसुन्दराणां गुणानामाविर्भावायात्मोत्कर्षः क्रियते, न पुनरात्मबहुमानितयेति चेत्, तदाह -

जइ संति गुणा नणु अभणियावि काहिंति अत्तउक्करिसं ।
अह ते वि न संति मुहा अत्तुक्करिसेण किं तेण ।।३६३।।

गुणा हि किल ज्ञानादयस्ते च स्वावरणक्षयोपशमाद् **यदि सन्ति,** तदोच्चैर्धृतकन्धर**मभणिता अपि** स्वाधारभूत**स्यात्मनः समुत्कर्षं करिष्यन्त्येव** । कियत् किल तिष्ठति तिरोहितः स्तनयित्नुभिस्तरणिः । **अथ ते** गुणा **एव न सन्ति** तदा केवलं लघुत्वहेतुना **किं तेनात्मोत्कर्षेण** । गुणशून्यस्य हि गर्जितं शरद्गर्जितमिव **मुधै**वेति ।।३६३।। किञ्च -

मित्ता हसंति निंदंति बंधवा गुरुजणा उविक्खंति ।
पियरो वि न बहुमन्नंति अप्पबहुमाणिणं पुरिसं ।।३६४।।

आत्मनि धृत**बहुमानं पुरुषं मित्राणि** सुहृदः समक्षमसमक्षं वा **हसन्ति** । तथा **बान्धवा** अपि मानोत्तानमेनं न किञ्चिदनेनेति **निन्दन्ति** । **गुरुजनाः** कौलाचार्यधर्माचार्यप्रभृतयस्तेऽप्यविनीतं नातः परमस्य भविष्यति गुणसङ्क्रमः इत्यु**पेक्षन्ते** । किञ्चापरैः, **पितरोऽपि** जननीजनकाः पुरस्कृताहङ्कृतिमेनं **न बहुमन्यन्त** इत्यहो जघन्यत्वमात्मोत्कर्षस्य ।।३६४।।

साम्प्रतमस्यैवोत्तरोत्तरकारणभूतामनुस्यूतां दोषश्रेणीं गाथापञ्चकेनोदीरयति -

अत्तुक्करिसपहाणे नरंमि न विणीयया समल्लियइ ।
थड्ढस्स य चावस्स व न होइ गुणसंकमो कहवि ।।३६५।।

आत्मोत्कर्षप्रधाने हि **नरि** तावदादावेव **विनीतता न लीयते** । विनयाभिमानयोस्तेज-स्तिमिरयोरिवैकत्रानवस्थानात् । नतिविरहितस्य **च स्तब्धस्य** पुंसः शिक्षासंयोग **इव चापस्य गुणानां** ज्ञानादीनां **सङ्क्रमः कथमपि न भवति** । **'सति ह्यहङ्कारे दूरस्थैव प्रायः प्राणिनां गुणश्रेणिः'** उक्तं च -

अहङ्कारे स्फुरत्येवं, वदत्येषा गुणावली ।
अहंकारे ! भविष्यामि समायाता तवान्तिकम् ।।१।। [ ] इति ।।३६५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणैरेव किं विधेयमिति चेत्, तदाह -

गुणपरिमलपरिहीणो कुसुमं व नरो जणं न रंजेइ ।
जणरंजणाविहीणे न हुंति कमलाउ विउलाओ ।।३६६।।

गुणपरिमलपरिहीनो ज्ञानादिसौरभ्यसुभगत्वशून्यो **नरः** परिमलविकलं **प्रसूनमिव न जनरञ्जनायाऽलम्** । लोकोत्तराऽभिरामगुणग्राममन्तरेण नाभिमुखयितुं शक्यो भिन्नभिन्नरुचिर्जनः । जनरञ्जनमेव क्वोपयुज्यत इति चेत् ? तदाह - **जनरञ्जनाविहीने** पुंसि **विपुलाः** स्वपरयोर्मनोरथसार्थप्रथनप्रवणाः **कमलाः** सम्पदो **न सम्पनीपद्यन्ते 'जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः'** इति श्रुतेः ।।३६६।।

श्रियमन्तरेण च यत् स्यात् तदाह -

कमलाविलासरहिओ पए पए पाउणेइ अवमाणं ।
अवमाणपयं पत्तो पुरिसक्कारं परिच्चयइ ।।३६७।।

कमलाविलासरहितः समृद्धिसमुदयशून्यः **पदे पदे** स्थाने स्थानेऽ**पमानं** मानभ्रंशरूपं **प्राप्नोति** । **'दारिद्दसमो य परिभवो नत्थि'** इति श्रुतेः । **अपमानपदं** च **प्राप्तः** सर्वथा न किञ्चिन्मयेति नैसर्गिकं **पौरुषोष्माणमुज्झति** ।।३६७।।

पुरुषकारमन्तरेण च यद् भवति, तदाह -

परिचत्तपुरिसयारो विहुणिज्जइ आवयाहिं विविहाहिं ।
आवयपडिओ सोयइ सोएण य होइ सुन्नमणो ।।३६८।।

परित्यक्तपुरुषकारश्च विविधाभिः स्वपक्षपरपक्षोपक्षिप्ताभिर्दुर्दैवसङ्घटिताभि**रापद्भिर्विहन्यते** । अपरित्यक्तपौरुषे तु पुंसि प्रायो दैवमपि न निःशङ्कमुपढौकते । **'दिव्वो वि ताण संकइ, जाणं तेओ परिप्फुरइ'** त्ति श्रुतेः । तेजोहीनश्च**ापत्पतितः** सर्वोपायपरिक्षीणः । केवलमिदमिदं च मया न कृतमि**त्यनुशोचति । शोकेन चाऽऽचान्त**चैतन्यः शनैः शनैः **शून्यमनाः सम्पद्यते** ।।३६८।।

तद्विधश्च किमाप्नोतीत्याह -

सुन्नमणो वियलत्तं पाउणइ कमेण लहइ निहणं पि ।
अत्तुक्करिसाओ वि हु ता को अन्नो वि इह सत्तू ।।३६९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शून्यमना मुकुलितचित्तचैतन्यो **वैकल्यमुक्ता**[1]नुश्लीलाश्लीलदत्तादत्तकृतशुच्यशुचिविभागविरहितं **प्राप्नोति** । किं वा बहुभिरभिहितैर्यावत् **क्रमेण निधनं** विनाश**मपि लभते** । अतस्तत्त्ववृत्त्या विचार्यमाणः किं**लात्मोत्कर्षादपरोऽपि** देहिनां **क इह शत्रुः** । न खलु मरणादधिकं किमपि शत्रुरपि कर्त्तुमलम् । तस्मादेवमुत्तरोत्तरदोषाश्लेषकलुषः कषणीय एव विदुषामात्मोत्कर्ष इति ।।३६९।। किञ्च -

केणापि अकयपुव्वं असुयमदिट्ठं अचिंतणिज्जं च ।
जह किंपि कीरइ जए अत्तुक्करिसो वि ता होउ ।।३७०।।

अस्मिन् **जगति** यदि **किमप्येवं** वक्ष्यमाणस्वरूपं कर्तुं पार्यते । किंविशिष्टम् ? **केनाप्य**मानवशक्तियुक्तेनाप्य**कृतपूर्वम्** । कस्मादपि देशकालविप्रकृष्टादपि **अश्रुतचरम्** । कस्यापि चिरजीविनोऽप्य**दृष्टपूर्वम्** । कथमपि ध्यानैकतानतयाप्य**चिन्तनीयम्** । यावत् कायावाङ्मनसामप्यगोचरः । **तदा** विधातुमनुचितोऽपि सुधियां, विधीयतां नामायमप्या**त्मोत्कर्ष** इति ।।३७०।।

तथाहि - तथाहीत्यादिना पूर्वोक्तमेवार्थं समर्थयति -

अमयमयकंततणुणो आणंदियसयलजीवलोगस्स ।
चंदस्स जइ कलंको अवणिज्जइ होउ ता गव्वो ।।३७१।।

अमृतमयीव पीयूषदलप्रकृतेव **कान्ता तनुर्यस्य** स तथा । तत एवा**नन्दितसकलजीवलोकस्य** सम्प्रीणिताशेषचराचरजगज्जन्तुजातस्य एवंविधस्य **चन्द्रस्य** सुधादीधितेः **कलङ्को** लाञ्छनं स्वाभाविकेनौपाधिकेन वा महिम्ना **यदि** कथमप्य**पनीतो भवति तदा भवतु नाम गर्वः** । एतच्च मनसोऽप्यगोचरम् । शाश्वतस्वरूपत्वाच्छशलाञ्छनलाञ्छनस्य ।।३७१।। तथा -

भूओवमद्दरहिएहिं नीइघडिएहिं नियय्यविहवेहिं ।
मोइज्जइ भुवणजणो रिणाउ जइ होउ ता गव्वो ।।३७२।।

भूतोपमर्दैः पराभिसन्धानादिस्तद्विरहितैरत एव **नीतिघटितै**र्न्यायोपार्जितै**र्निजकैः** स्वकीयैर्न पुनर्मलिम्लुचवृत्त्या हठाऽपहृतैरेवम्भूतै**र्विभवैर्भुवनजनो यदि** कथञ्चिद्**ऋणान्मोच्यते तदा भवत्वहङ्कारो**ऽपि एतच्च दुष्करतरम् । जनपदमात्रेऽपि तथा कर्तुमशक्तेः, किं पुनर्विश्वस्मिन् विश्व इति ।।३७२।। तथा –

गाथा-३६९ 1. ०नुक्ताश्लीलाश्लीलदत्तादत्तकृताकृतशुच्यशुचिं इति पाठो समीचीनो भाति । - सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गेहेसु गहिरसत्थत्थसत्थकुसलाण जइ य विउसाणं ।
आचंदं हुज्ज सिरी थिरीकया होउ ता गव्वो ।।३७३।।

यदि च गम्भीरशास्त्रार्थसार्थकुशलानां **विदुषां गेहेषु श्रीर्लक्ष्मीराचन्द्रं स्थिरीकृता भवेत्** कुम्भदासीत्वमापादिता स्यात्तदा **भवतु** नाम स्वस्मिन्नभिमानोऽपि । **'पण्डिते निर्धनत्वम्'** इत्यादि श्रुतेः चैतदपि दुर्घटमेवेति ।।३७३।। किञ्च -

तिहुयणजणमणविलसिर - मणोरहायंडखंडणुड्डमरो ।
खलिओ अकालमच्चू जणस्स जइ होउ ता गव्वो ।।३७४।।

त्रयाणां भुवनानां समाहार**स्त्रिभुवनम्** । तस्य **जनास्त्रि**भुवनजनास्तेषां **मनांसि** चेतांसि, तेषु **विलसन्तः**, स्वैरं विस्तरन्तो ये **मनोरथाः** । इदं कृतमिदं विधास्ये, इदमद्येदं श्वरिदं मासान्ते, इदं वत्सरान्ते, इत्यादिरूपास्तेषा**मकाण्डे**ऽप्रस्तावे यत् **खण्डनं** शकलीकरणं, तत्रो**ड्डामरो** भयानको योऽ**सावकालमृत्युः** । यद्भयात् किल विदुषामप्येवमालापाः श्रूयन्ते ।। यदुत -

अद्येदं स्वरिदं तथा परुदिदं कृत्यं परारि त्विदम् ।
चेतश्चिन्तयसीत्थमेव सततं निर्व्याकुलं रे ! स्फुटम् ।।
तत्कालं विलसन्मनोरथलताकान्तारदावानले ।
यस्मिन् दण्डधरः स्मरिष्यति सखे ! सोऽप्यस्ति कोऽपि क्षणः ।।१।। [ ]

इत्यादयः एवंविधश्चाकालमृत्युर्यदि केनापि बलेन **स्खलयितुं शक्यस्तदा भवतु** नाम **गर्व** इति । एतच्चातुलबलानां तीर्थकृतामप्यसाध्यं, किं पुनः सामान्यमानवानामिति ।।३७४।। तथा-

दक्खा दक्खिन्नपरा परोवयारी पियंवया सरला ।
अजरामरा य सुयणा जइ विहिया होउ ता गव्वो ।।३७५।।

दक्षाः सहजनिजप्रज्ञाऽवज्ञातवाचस्पतिमतिविभवाः । **दाक्षिण्यपराः** परोपरोधबन्धुरधियः । **परोपकारिणो**ऽनुपकृता अपि प्रकृतिपरोपकृतिवत्सलमनसः । **प्रियंवदाः** कृतविप्रियेऽपि परे क्षीरमध्वाश्रविणः । **सरला** मायामिथ्यानिदानशल्यरहिताः । एवं गुणगणप्राग्गरिमाणः **स्वजनाः** केनापि सिद्धरसायनादिप्रयोगेण **यद्यजरामराः** कल्पान्ताऽवस्थायिनः **कृता** भवेयु**स्तदा भवतु** गुणसर्वस्वसर्वङ्कषः किलायं **गर्वो**ऽपि । न चैतत् कस्याप्यनुभवसिद्धमतः किंमूलोऽयमलीको-ऽहङ्कार इति ।।३७५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतदेव निगमयन्नाह -

इच्छाई किंपि असरिसमपयासिय नियचरियमच्छरियं ।
जो तिणमिव नियइ जणं को अन्नो तिणसमो तत्तो ।।३७६।।

इत्यादि पूर्वोदितमन्यदप्येवम्प्रकारं **किमप्य**निर्वचनीयम**सदृशमनन्य**सामान्यमत एवाश्चर्यहेतुत्वात् । त**दाश्चर्यमे**वंविध**मात्मनश्चरित्रमप्रकाश्य यः** किल कूटाभिमानेन नटितः सकलमपि **जनं तृणाय मन्यते । कोऽन्योऽपि तृणसमस्ततः**, स एव तृणतुल्य इति भावः ।।३७६।। किञ्च -

किरिया कायकिलेसो सुयं च सीलं तवो जवो सयलं ।
विहलं इक्कपइच्चिय अत्तुक्करिसं वहंतस्स ।।३७७।।

क्रिया प्रत्युपेक्षणाप्रमार्जनाऽऽवश्यकविधानादिका । **कायक्लेशः** केशोल्लुञ्चनावीरासनातापनादिः । **श्रुतमङ्गा**नङ्गरूपम् । **शीलमिन्द्रिय**निग्रहः सदाचारश्च । **तपो** द्वादशभेदमनशनादि । **जपः** पञ्चविधस्वाध्यायरूपः । तदेतदा**त्मोत्कर्षमावहतः सकलमेकपदे विफलम**वमफलं चेति ।।३७७।।

अन्यच्च किल यः कश्चिदात्मगुणोत्कर्षवानन्यापदेशेनापि स्वस्तुतिं विस्तारयति, तेनावश्यं परनिन्दकेन भाव्यमिति व्यञ्जयन्नाह -

लोयाववायभीरू निउणो निंदेउ मा परं सक्खा ।
जइ पयडइ अप्पथुइं ता सो परनिंदओ नूणं ।।३७८।।

अहो ! परगुणासहिष्णुरतुच्छमत्सराच्छादितोऽयमित्यादि**लोकापवादभीरुर्निपुणः साक्षात् मा स्म परविगर्हां करोतु** । तथापि **यदि** युक्त्यैवात्मस्तुतिं **प्रकटयति तदा ध्रुवं स परनिन्दक** एव । **'स्वश्लाघापरनिन्दयोर्जनिमृत्योरिव परस्परानुगतत्वात्'** ।।३७८।।

ननु स्वरूपाख्यानमात्रमपि रन्ध्रमधिगम्य यदि परनिन्देयमवतरति तदाऽवतरतु केयमेतद्विषया बिभीषिकेति चेत्, तदाह -

परनिंदा पुण भणिया जिणेहिं जियरागदोसमोहेहिं ।
कुगइगममूलबीयं सपरेसि कसायहेउ त्ति ।।३७९।।

परनिन्दा पुनर्जितरागद्वेषमोहैर्भगवद्भि**र्जिनैः कुगतिगमनमूलबीजत्वेन भणिता** । कुत

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्याह - **स्वपरयोः कषायहेतुरिति** । इयमत्र भावना-किल स्वगुणाभिमानेन नियतमात्मस्तुतिमसुमन्तः प्रकटयन्तीति स्फुटमस्ति मानोदयः । तां च व्याजेन व्यञ्जयतामुपनतैव निकृतिः । तद्व्यपदेशेन च यस्य निन्दामुदीरयति, तस्य ध्रुवं क्रोधादय इति स्वपरयोः सम्परायहेतुत्वेन कुगतिगममूलबीजमेवेयं परनिन्दा । मिथः कषायोदीरणं च निषिद्धमेव पूर्वर्षिभिस्तथा चाहुः -

तं वत्थुं मुत्तव्वं जं पइ उप्पज्जई कसायग्गी ।
तं वत्थुं घेतव्वं जत्थोवसमो कसायाणाम् ।।१।। [ ]

इति सर्वथाऽपास्यैव परनिन्दा ।।३७९।।

एवमात्मोत्कर्षकलुषितान्तःकरणानां दोषमुद्भाव्य तन्निवृत्तिपरानुपस्तौति -

धन्ना विन्नायजहुत्ततत्त - परिचत्तअत्तउक्करिसा ।
पसमामयरससित्ता हवंति सुहिणो भवदुगे वि ।।३८०।।

धन्याः केचन किल जात्यादिमदस्थानानुगतोऽयमात्मोत्कर्षः स च विवेकविकलैर्विधीयमानः प्रतिभवं प्रातिलोम्येन पर्यवस्यतीत्येवंरूप**विज्ञातयथोक्ततत्त्वेन परित्यक्तात्मोत्कर्षास्त** एव **प्रशमामृतसेकान्निर्वाणकषायाग्नित्वेन** शीतीभूतस्वान्तःवृत्तयो **भवद्वयेऽपि** भगवान् बाहुबलिरिव शाश्वत**सुख**सर्वस्व**भाजनं भवन्ती**ति परित्याज्य एवात्मोत्कर्षः । यतः -

अनयेनेव राज्यश्रीः कुसङ्गेन कुलाङ्गना ।
चित्रशालेव धूमेन प्रमादेनावधारणा ।।१।।
निसङ्गतेव लोभेन भावशुद्धिर्मनोभुवा ।
निर्मलापि गुणश्रेणिरात्मोत्कर्षेण दूष्यते ।।२।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्रसूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशामृत**विवरणान्तर्वर्तिनी **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीये मूलद्वारे नवम**मात्मोत्कर्षपरिहारप्रतिद्वारं** समाप्तमिति ।। भद्रम् ।।३८०।। श्रीः ।।

व्याख्यातमात्मोत्कर्षपरित्यागद्वारमधुना कृतघ्नत्वमुन्मोचियितुमुच्यते -

निरहंकारो वि नरो न रोवए ताव गुणिसु अप्पाणं ।
जाव समुन्नइहेउं कयन्नुयत्तं न पयडेइ ।।३८१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किल पूर्वोदितात्मोत्कर्षदोषानुपश्रुत्य **निरहङ्कारोऽपि** गलितगर्वोऽपि **नरः** पुमांस्तावदात्मानं **गुणिषु** गुणवत्सु **न रोपयति** । गुणिगणगणनारम्भे ससम्भ्रमगणनीयो न भवति । यावत् किं ? **यावत् ! कृतज्ञतां न प्रकटयति** किम्भूतां ? **समुन्नतिहेतुं** भुवनाद्भुताभ्युदयकारणम् ।।३८१।। यतः-

लब्भइ न सहस्सेसु वि उवयारकरो वि इह नरो ताव ।
जो मन्नइ उवयरियं सो लक्खेसुं पि दुल्लक्खो ।।३८२।।

इहास्मिन् जगति यः किलानुपकृतोऽप्युत्तमप्रकृतित्वेन परोपकाराय प्रवर्त्तते । सोऽपि **सहस्रसङ्ख्येष्वपि** पुरुषेषु निपुणमपि निरूप्यमाण**स्तावत् न लभ्यते । यस्तु परोपकृतं** कृतज्ञतया **मन्यते स** प्रायो **लक्षेष्वपि दुर्लक्ष** एव । उक्तं च -

पञ्चषाः सन्ति ते केचिदुपकर्तुं स्फुरन्ति ये ।
ये स्मरन्त्युपकारस्य तैस्तु वन्ध्या वसुन्धरा ।।१।। [ ] इति ।।३८२।।

किल कदाचिद् उत्तमाधमपरिच्छेदाय विमर्शपरान् विशारदान् विभाव्य कविराह -

उत्तमअहमवियारे वीमंसह किं मुहा बुहा तुब्भे ।
अहमो न कयग्घाओ कयन्नुणो उत्तमो नत्रो ।।३८३।।

हे **बुधा ! उत्तमाधमविचारे** सदसन्मीमांसायां तत्त्वं विदन्तोऽपि **किं मुधा यूयं विमृशत** । यतः शतशः परिच्छिन्नमेवैतत् यत् **कृतघ्नादन्यो** जगति **न जघन्यः । कृतज्ञाच्च नापरोऽप्युत्तम** इति ।।३८३।।

अथ किमर्थमेकस्या एव वसुमत्या रत्नगर्भेति मेदिनीति च परस्परविसदृशमभिधानद्वयमिति वितर्के समाधत्ते -

नणु तेण रयणगब्भा धरइ धरा जं कयन्नुणो पुरिसे ।
जं पुण वहइ कयग्घे तेण चिय मेइणी वि इमा ।।३८४।।

नन्विति सुप्रसिद्धमेवैतत् **यद्** यस्मादसौ **धरा कृतज्ञपुरुषरत्नानि धारयति** । तेन रत्नानि

गाथा-३८२ 1. **'कृतज्ञ'** - परेण कृतमुपकारमविस्मृत्या जानातीति कृतज्ञः ।
बहु मन्नइ धम्मगुरुं, परमुवयारि त्ति तस्सबुद्धीए । तन्नो गुणो णु वुड्ढो, गुणारिहो तेणिह कयन्नू ।। - धर्मरत्न प्र० गा. २६ ।
गाथा-३८४ 1. **रत्नगर्भा** - रत्नानि गर्भेऽस्या रत्नगर्भा, रत्नवतीति भागुरिः पृथ्वीत्यर्थः ।।
- अभि. स्वो. ना. श्लो. ९३७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भेऽस्या इति व्युत्पत्त्या रत्नगर्भेत्यभिधीयते । चेत् पुनः सर्वंसहात्वेन **कृतघ्नानपि** नृजघन्यानुद्वहति तेनैव तदुपस्पर्शमालिन्येन **मेदिन्यप्यसाविति** ।।३८४।।

पुनः कृतघ्नस्यैव जघन्यत्वमाह -

अच्छउ पञ्चुवयारो उवयारकरम्मि ता कयग्घस्स ।
एयं पि भणइ धिट्ठो उवयरइ भएण मम एसो ।।३८५।।

आस्तां तावन्नरावकरस्य **कृतघ्नस्योपकारपरे** नरमणौ **प्रत्युपकारो** यावदिदमपि **धृष्टः** स्फुटं सर्वत्र **व्याहरति । यदेष** न खलु स्वाजन्येन **मह्यमु**पस्निह्यति । किन्तु मत्पराक्रमाक्रान्तः प्रति**भयेनै**वोपकरोतीति ।।३८५।।

इदानीं कविः कृतघ्नत्वादत्यन्तभीरुरदृष्टं सत्कर्म्म प्रार्थयन्नाह -

हुज्ज वरमणुवयारी पञ्चुवयारम्मि मंथरो वा वि ।
जइ मग्गियं पि लब्भइ ता मा हुज्जा कयग्घो हं ।।३८६।।

हे भगवन्नदृष्ट ! **वरमहमनुपकारी** तृणमात्रेणापि कस्याप्यकृतोपकारो भूयासम् । यदि **वा प्रत्युपकारे** उपकृतप्रत्युपकृतिलक्षणे **मन्थरो** मन्दोत्साहः **स्याम् ।** न च स्वकृतकर्मणोऽधिकं काणवराटिकामात्रमपि प्रार्थनाशतैरपि प्राप्यते । किन्तु **यदि** कथमपि **प्रार्थितमपि लभ्यते तदा** कदाचिदप्यहं **मा** स्म **कृतघ्नो भवेयम्** । इदमत्र हृदयम् - किल प्रकृत्यनुपकारी कृतप्रत्युपकृतिमन्थरश्च द्वावप्येतौ जगति जघन्यौ । कृतघ्नस्त्वनयोरपि सकाशादत्यन्ताधम इति ।।३८६।।

कृतघ्नशब्दार्थमेव विवेचयति -

हणइ किर परकयं जं तेण कयग्घो इमु त्ति भणइ जणो ।
अप्पकयं चिय सुकयं निहणइ एसु त्ति मह बुद्धी ।।३८७।।

[1]**किल कृतं हन्ती**ति कृतघ्न इति शाब्दिकव्युत्पत्तिस्तावदवितथैव । केवलमत्र **जनः** प्राकृतलोकोऽ**यमेवमभिदधाति । यदसौ परैरुत्तमप्रकृतिभिः कृतमु**पकारादि **नीचप्रकृतित्वेनामन्यमानो हन्ती**ति **कृतघ्नः । मम** पुनरेवं **बुद्धिर्यत्** तेषां महात्मनामनुपकृतपरोप**कृतिप्रत्य**लाना-

गाथा-३८७ 1. **'कृतघ्न'** - कृतं हन्ति । कृतोपकारस्यापकारके । कृतं वस्त्राभरणपात्रादि प्रदत्तं घ्नन्ति सर्वथा नाशयन्तीत्येवंशीलाः कृतघ्नाः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुपकारे त्रिजगत्यपि साक्षात्साक्षिणी, अतः कथं तदुपकृतमनेन **तपस्विना** हन्यते । केवलमुपायान्तरैस्तपोदानादिभिः प्रतिभवं यदनेनार्जितं **तदात्मन** एव **सुकृतमसौ हन्तीति कृतघ्नः** ।।३८७।।

ननु यदि पुनरत्यन्तदुर्निर्वाह्यं कृतज्ञत्वमतोऽस्य तत्र कातरं चित्तमिति चेत्, तदाह –

सामग्गीसाविक्खो परोवयारो भविज्ज व न व त्ति ।
उवयरियं मन्नंताण हुज्ज का नाम धणहाणी ।।३८८।।

परोपकारो हि पुरुषस्य कर्हिचित् **भवति** कदाचिच्च **न भवति** । यतोऽसौ पुष्कलद्रव्यादि-**सामग्रीसापेक्षः** । सा च प्रचुरपचेलिमपुण्यप्रचयप्राप्या । **उपकृतं** पुनः केवलं वाङ्मनोमात्रायाससाध्यं **मन्यमानानां का नाम धनहानिः** कायक्लेशो वा **भवेत्,** तस्मादहो ! तन्मात्रेऽपि तन्द्रावतां तेषामधन्यतेति ।।३८८।।

कृतज्ञकृतघ्नयोरेवं महदन्तरमुदीरयति -

अवणीयं सीसाओ तिणमुवयारं ति मन्नइ कयन्नू ।
पिच्छह पुरिसविसेसं इयरो कोडिं पि पम्हुसइ ।।३८९।।

समानेऽपि मानुषत्वे तुल्येऽपि च **पुरुषस्य पुरुषान्तरात् पश्यत** कियदन्तरं यदेकः **कृतज्ञः शीर्षान्मस्तकात् तृणमप्यपनीतं** कोटिदानतुल्यमुपकारं **मन्यते । इतरस्तु** कृतघ्नः प्रस्तावे **कोटिमपि** वितीर्णां तृणायापि **न मन्यते** । तेनैवोक्तम् -

वाजिवारणलोहानां काष्ठपाषाणवाससाम् ।
नारीपुरुषतोयानामन्तरं महदन्तरम् ।।१।। [ ] इति ।।३८९।। किञ्च -

उवयारिणं निगूहइ नीयजणो रिद्धिपयरिसं पत्तो ।
उत्तमजणो पुण तया विसेसओ तं पयासेइ ।।३९०।।

नीचः कृतघ्नः कुतोऽपि महाशयाद् **ऋद्धिप्रकर्षं प्राप्तः** स्वाधमत्वेन तमेवोप**कारिमणमपह्नुते। उत्तमस्तु तदा** समृद्धिसमुदयावसरे **तं** प्राक् कृतोपकारमुच्चैः सर्वसमक्षमेतस्मादहमेवंविधोऽभूवमिति **प्रकाशयति** ।।३९०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथोत्तरार्द्धोक्तमेवार्थं दृष्टान्तेन स्पष्टयति -

अन्नह कहमरिहंता, तित्थयरसिरिं अणुत्तरं पत्ता ।
उवयारिस्स कयन्नू तित्थस्स नमु त्ति जंपंति ।।३९१।।

अन्यथा लोकोत्तमत्वमन्तरेण भगवन्तोऽर्हन्तस्तीर्थस्य चतुर्वर्णश्रमणसङ्घरूपस्य **कथं नमः** शब्दमुदीरयन्ति । किम्भूताः ? **तीर्थकरश्रियं** परमार्हन्त्यपदवीं **प्राप्ता** अपि । किंविशिष्टामनुत्तराम्, न विद्यते अन्या उत्तरा यस्याः सा तथा । कल्पपतिसम्पदामपि तदपेक्षयाऽत्यन्ताल्पत्वात् । अथ तथा परमैश्वर्यशालिनस्ते किमर्थं तीर्थस्य प्रणिपाते प्रवर्तन्त इति चेत्, तदाह - **उपकारिणः** । यतस्तीर्थोपास्तिपरैस्तैरप्यर्हदादिस्थानासेवनेनार्हन्त्यमर्जितम् । अत एव **कृतज्ञ**शिरोमणयस्ते तथा विदधति ।।३९१।।

ननु कृतज्ञा अपि लोकोत्तरमेवोपकारं मनस्यविस्मृतं धारयन्तो बहुमन्यन्ते न पुनरल्पतरमिति चेत्, तदाह -

थेवं पि हु उवयारं, मन्नंति कयन्नुणो अइमहग्घं ।
जहऽरन्नदिन्नखीरामलस्स सबरस्स नरनाहो ।।३९२।।

स्तोकमप्युपकारं कृतज्ञाः सुष्ठु **महार्घं मन्यन्ते** । यथेति दृष्टान्तोपन्यासे । **यथाऽरण्य-वितीर्णक्षीरामलकस्य [शबरस्य] नरनाथ इति** । सम्प्रदायगम्यौ च शबरनरनाथौ । स चायम् -

।। कृतज्ञताविषयोपरि शबर-नरनाथकथानकम् ।।

पुक्खरिणिपवापासाय-विउलवणसंडमंडिउद्देसे । नयरंमि वसंतउरे नरनाहो आसि जियसत्तू ।।१।।
समरवियारियपडिकुंभि-कुंभकीलालपाडलच्छाओ । कुवियकयंतकडक्खु व्व जस्स खग्गो करे सहइ ।।२।।
कुंजरवरु व्व पसरंतभूरिदाणो वि मयविमुक्को जो । समपयई वि सूरो परोवयारी कयन्नू य ।।३।।
सो अन्नया नरिंदो सहाइ सामंतसयसणाहाए । सक्क व्व सुहम्माए उवविट्ठो दारवालेण ।।४।।
अट्ठंगसिलिट्ठमहीयलेण सिररइयअंजलिउडेण । कक्खानिक्खित्तफुरंत-कणयदंडेण विन्नत्तो ।।५।।
देव ! दुवारे चिट्ठइ सुदूरदेसंतराउ संपत्तो । कणयमयकवियहत्थो तुरंगहेडावई एगो ।।६।।
इच्छइ य देवपायाण दंसणं को णु इत्थ आएसो । तो रन्नाणुन्नाओ स तेण तक्खणमुवट्ठविओ ।।७।।
पयपउमजुयं नमिऊण निवइणो ढोइऊण य खलीणं । उचियासणे तत्तो विणीयवित्ती समुवविट्ठो ।।८।।
खीरोयलहरिलडहाई तयणु दिट्ठीइ अमयवुट्ठीए । अवलोइऊण भणिओ सपसायं सो महीवइणा ।।९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्दमुह ! कहसु के के तुरंगमा केसि केसि देसाणं । उवणीया इह तुमए कइसंखा किंसरूवा य ।।१०।।
सो भणइ सुणउ देवो कक्का सिरिवच्छिणो य खुंगाहा । सेराहा य कियाहा हरिया तह चेव वुल्लाहा ।।११।।
उक्कणाहा उराहा य संति कुलाहा य केइ य हलहा । नीला कविला सोणा पंगुल तह अट्ठमंगलया ।।१२।।
तह केई पंचभद्दा वुक्खारा किंच केवि तुक्खारा । कंबोयसिंधुपारसवल्हीयवणाउदेसुत्था ।।१३।।
इक्किक्कसजाईए सयं सयं देव ! अत्थि तुरगाणं । सव्वे वि सव्वलक्खण-अलंकिया गहियसिक्खा य ।।१४।।
किं वा मह वयणेणं देवो पसिऊण तत्थ सयमेव । आगंतूण पलोयउ विसारओ तुरयजाईए ।।१५।।
तं सोउं नरनाहो समूसुओ ताण दंसणनिमित्तं । सामंतमंतिमंडलिय-परिवुडो लहु गओ तत्थ ।।१६।।
अह तुरयनायगेणं दंसिज्जंते कमेण ते तत्थ । गंधव्वगुणविहन्नू पिच्छइ राया पसंसइ य ।।१७।।
तो ताण मज्झयारे तणुमज्झं पीणपच्छिमपएसं । निम्मंसलमुहभागं अइवियडोरत्थलाभोगं ।।१८।।
मणहरभंगुरगीवं लहुकन्नं निद्धमुद्धतणुरोमं । सुसिलिट्ठपिट्ठभागं मणपवणजवं हयं एगं ।।१९।।
दट्ठूण कोउगेणं आरूढो भूमिपरिविढो स सयं । पज्जाणेणं सममुग्गउ व्व सुदिढासणत्तेण ।।२०।।
तत्तो धारियवग्गिय - उप्पयणुत्तेइयाइ तुरियाए । उत्तेरियाइ तह पंचमीइ धारइ अणुकमसो ।।२१।।
वाहंतो तं वाहं स वाहवाहोचियाइ वसुहाए । रेवंतु व्व विरायइ नररूवधरो धरानाहो ।।२२।।
तुरयगइविब्भमेणं जह जह लोलंति कुंडला रन्नो । गुरुविम्हएण तह तह सामंताईण सीसाणि ।।२३।।
सविसेसवेगविन्नासणत्थ - मह पत्थिवेण सो तुरओ । कन्नंतरालदेसे कसाइ निवडं तया पहओ ।।२४।।
तो चउहिं वि पाएहिं उप्पयमाणो मणं व पवणु व्व । गरुडु व्व गयणमग्गे खणं खणं खोणिवट्ठंमि ।।२५।।
इत्थ ठिओ इह दिट्ठो एस गओ अहह जाइ जाइ त्ति । इय भणिरे निवलोए झडत्ति अद्दंसणं पत्तो ।।२६।।
तो वेगनिग्गहत्थं वग्गं सेसं गहेइ जाव निवो । ता सविसेसं सो चोइउ व्व पयडेइ पडुवेगं ।।२७।।
इक्किक्केण कमेणं मुंचंतो धणुसयाइं संपत्तो । जामेण दुवालसजोयणाणि सो तिक्खतुक्खारो ।।२८।।
अह सुढियकरंगुलिणा निवेण वग्गा झडत्ति से मुक्का । तेहिं चिय पाएहिं ठिओ तओ थंभिउ व्व इमो ।।२९।।
विवरीयसिक्खियं तं मुत्तूणं तयणु मेइणीनाहो । सव्वत्तो जा पिच्छइ ता रन्नगयं नियं नियइ ।।३०।।
अज्जंतजवणगमणेण तेण तुरएण खेइओ सुइरं । पयईए सोमालो सव्वंगगलंतसेयजलो ।।३१।।
मज्झन्हदिणयरेणं तस्स पयावेण पीडिएण पुरा । छत्तरहिउ त्ति लद्धूणमवसरं संतविज्जंतो ।।३२।।
सिसिरघणसारपारी - परिगयतंबोलसुन्नवयणु त्ति । सुक्कंततालुदेसो बाढं तन्हाइ अभिभूओ ।।३३।।
सलिलासयममुणंतो मिच्छद्दिट्ठि व्व जिणमयरहस्सं । सम्मग्गाउ भट्ठो चेइयदव्वोवओगि व्व ।।३४।।
कत्थ वि अपावमाणो मणुस्स गंधं पि सग्गवासि व्व । किंकायव्वविमूढो चिंतेउमिमं समारद्धो ।।३५।।
पिच्छह मुहमहुरेणं परिणइअइदारुणेण दिव्वेणं । विसओवभोगतुल्लेण पिल्लिउं पाडिओ कत्थ ।।३६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उप्पाइऊण रंगं तुरंगदंसणमिसेण खणमेगं । एगंतनिहएणं जं छूढो भीसणंमि वणे ।।३७।।
बुद्धी परक्कमो वा संकमइ न कज्जसंकडे इत्थ । मंतो वा तंतो वा जह डंके कालदिट्ठम्मि ।।३८।।
तन्हाइ ञ्चिय मत्रे पत्तप्पसराइ पाविओ निहणं । अकयसुकओ गमिस्सं कुगइं संसारिजीवु व्व ।।३९।।
कत्थ घरं कत्थ पुरं पुत्तकलत्ताइणो य ते कत्थ । कत्थ य सा रज्जसिरी विहुरंमि न कोइ नणु सरणं ।।४०।।
धम्मु ञ्चिय जीवाणं सरणं ताणं पहू य बंधू य । इहपरलोयसुहयरो ता सु ञ्चिय होउ सरणं मे ।।४१।।
इय अल्लीणो सरणं सरणागयवच्छलेण धम्मेण । आसासिओ जहा सो नरनाहो तह निसामेह ।।४२।।
तम्मि पएसम्मि तथा तोरविओ तस्स चेव सुकएहिं । सबरजुवाणो एगो पत्तो कोदंडकंडकरो ।।४३।।
दट्ठुं दुराउ ञ्चिय अब्भुयभूयं निवस्स सो रूवं । विम्हयथिमियच्छिजुओ जोइ व्व तहेव जाव ठिओ ।।४४।।
रत्ना वि ताव एसो एगंतविमुक्कजीवियासेण । सञ्झविओ सव्वायरचलंतनित्तुप्पलदलेण ।।४५।।
खीणसरेण य भणिओ भो भद्द ! पुलिंदाविंदसद्दूल ! । निम्माणुसे अरन्ने विहिवसओ निवडिएण मए ।।४६।।
पढमं चियं तं दिट्ठो पढमं चिय पत्थिओ सि पत्थावा । आणेसु जलं जालं मह हंसस्सुड्डमणस्स ।।४७।।
तं सोउं सबरो वि हु सविहं उवसप्पिऊण नरवइणो । पणमिय पभणइ मा कुणसु पत्थणं पुरिसपुंडरीय ! ।।४८।।
एयाइ आगिईए भुवणस्स वि जेण पत्थणिज्जो सि । का पत्थणा य सलिलस्स मइ पुलिंदे नरपसुम्मि ।।४९।।
आणेमि जाव सलिलं तुम्ह कए देव ! पउमिणिपुडेण । गिन्हेह ताव एयं सरसं खीरामलगमेगं ।।५०।।
आसाइएण इमिणा वि होइ आसासणा जओ परमा । तुह चरियं पिव सलिलं सुनिम्मलं जाव किर एइ ।।५१।।
इय भणिऊण समप्पिय खीरामलगं गओ स सलिलत्थं । आसायंतो तं पत्थिवो वि परिचिंतए एवं ।।५२।।
उयह कह सव्वह ञ्चिय निंदिज्जइ का वि किर जए जाई । जं सबरो वि हु एसो एवं उवयारतल्लिच्छो ।।५३।।
पञ्चुवयारसयन्हो उवयारं कुणइ को वि कस्सावि । मुणियसरूवस्स परं न उणो एवं अमुणियस्स ।।५४।।
आजम्मं सेवाए फलंति कस्स वि कया वि किर पहुणो । सुमरियमित्तो इक्को धम्मु ञ्चिय सुप्पहू फलइ ।।५५।।
कह मह इमा अवत्था कह वा सबरस्स इत्थ आगमणं । नियभिच्चनिव्विसेसं ममाइ कह चिट्ठियमिमस्स ।।५६।।
गयगवयसहयरेणं वियडसंसग्गविप्पमुक्केणं । कह सिक्खियमेएणं नायरचरियं वणयरेणं ।।५७।।
किं काऊणं किच्चं किं वा दाऊण देयमेयस्स । अरिणो होहं एवं कओवयारस्स सबरस्स ।।५८।।
इच्चाइ तग्गयं चिय परिचिंतंतस्स पुहविनाहस्स । पत्तो घित्तुं सलिलं पुलिंदओ पउमिणिपुडेण ।।५९।।
करचरणवयणसोयं कारविउं तेण मेइणीनाहो । सुइसच्छसीयलेणं जलेण आसासिओ तयणु ।।६०।।
हरिसभरग्गब्भयाए गिराइ सवरं नरसरो जाव । किर किंपि जंपिही ता कयहलबोलाइं सव्वत्तो ।।६१।।
निट्ठुरतुरंगखुरखणियखोणिवट्टाइं निवइसिन्नाइं । रायारूढतुरंगमपयाणुसारेण पत्ताइं ।।६२।।
ता सबरेण परक्कमधणेण परचक्कसंकिरेण तया । आरोविओ वियारियहरिकरिनियरो सरो चावे ।।६३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह हसिऊणं भणिओ भूमीनाहेण वणयरजुवाणो । अलमित्थ संभमेणं मह चेव इमाइं सिन्नाइं ।।६४।।
हयपयपयवीलग्गाइं इत्थ पत्ताइं इय पयंपंतो । सामंताईहि निवो महियलल्लुलिरेहिं पणिवइओ ।।६५।।
दट्ठुं अक्खयदेहं नियनाहं हरिसियाइ सिन्नाइं । सकडक्खपिक्खिराइं ससरसरासणकरं सबरं ।।६६।।
भणियाइं भूमिनाहेण हंत ! तुब्भे सुणंतु सव्वे वि । एसो सबरो भाया मह ताया पाणदाणेण ।।६७।।
कह पहु ! इमं ति पुट्ठेण तेहिं सयलो वि पुव्ववुत्तंतो । सामंताईण पुरो कयन्नुणा साहिओ रन्ना ।।६८।।
तत्तो देवंगदुगूल-हारकेऊरकुंडलकिरीडा । सबरस्स पुरो तेहिं पक्खित्ता तुट्ठिदाणेण ।।६९।।
भणियो य भद्द ! बंधू धुवं तुमं चेव सामिणो अम्ह । एयारिसंमि विहुरे उवयारो जेण इय विहिओ ।।७०।।
पिक्खंताण वि सव्वाण वित्तिचोराण तुरयरूवेण । दिव्वेण दुद्दसमिणं अम्हाणं पाविओ सामी ।।७१।।
जइ एवं न करिंतो उवयारमकारणोवयारी तं । अलमलममंगलेणं ता को अम्हं गई हुंतो ।।७२।।
भणियं पुणो वि रन्ना दिंतस्स इमेण अवसरे तम्मि । खीरामलस्स तुल्लं न हु मे रज्जं पि सत्तंगं ।।७३।।
तहवि उवयारलेसो कीरउ एयस्स नयरपत्तस्स । इय भणिरेणं सबरो अणिच्छमाणो वि नरवइणा ।।७४।।
आरोविउं पहाणे तुरंगमे धरियधवलवरछत्तो । नीओ निवलीलाए नयरे नियर्यमि सममेव ।।७५।।
तत्थ य पञ्चलपुरिसा इमस्स नहदंतकेसपरिकम्मं । अकरिंसु निवाएसेण सव्वहा तयणभिन्नस्स ? ।।७६।।
अब्भंगिओ य तिल्लेहिं एस सयसहसलक्खपागेहिं । उव्वट्टिओ य वरगंधवट्टिभंगीहिं विविहाहिं ।।७७।।
मज्जाविओ य सुविसुद्धगंधपुप्फोदएहिं सुहएहिं । विहियविविहंगरागो नियंसिओ देवदूसाइं ।।७८।।
निवभूसणोचिएहिं विभूसिओ मणिविभूसणेहिं च । किं बहुणा स पुलिंदो विहिओ नरवरपडिच्छंदो ।।७९।।
नियपासायसमाणे पासाए दाविओ स विउलम्मि । सुस्सूसाइनिमित्तं आणत्तो परियणो य पुढो ।।८०।।
गयतुरयरहा जोहा य विलहिया विउलकोसदेसा य । अप्पसमाणो सबरो विहिओ स कयन्नुणा रन्ना ।।८१।।
इय तम्मि रज्जलच्छिं उत्तमपुरिसोवयारसंघडियं । भुंजंते वोलीणो कालो किर किञ्चिरो जाव ।।८२।।
ताव सरिसेलकाणण - वणलयनवजवसजुव्वणुब्भेओ । अविउत्तमिहुणसुहओ संजाओ पाउसारंभो ।।८३।।
कासार सरिसरोवर - महिमहिहरगामगुट्ठखित्ताइं । पिच्छंतो स पुलिंदो पाउसट्ठ लच्छीइ सच्छायं ।।८४।।
भवियव्वयावसेणं पुव्वं पिव सेलकाणणाईसु । सेच्छाविहारसंभरण - भिंभलो जायरणरणओ ।।८५।।
सुन्नमणो वुन्नमुहो दिट्ठो पुहईसरेण पुट्ठो य । संकंतो कह कहवि हु साहइ नियहिययउक्कंठं ।।८६।।
ईसि हसिऊण तत्तो संलत्तो सो निवेण भो मित्त ! । कह महसि सग्गचाएण दुग्गइं पुणरवि तमेव ।।८७।।
एयं कत्थ पहुत्तं ढलंतचमरं फुरंतसियछत्तं । मयससयनिव्विसेसा वणयरवित्ती य सा कत्थ ।।८८।।
पुरिसत्थाणं संपाडणेण निव्वडइ इत्थ पुरिसत्तं ! पसुसहचरियठिईणं पसुत्तणं चेव पुण तत्थ ।।८९।।
पिच्छंतो य भवंतं उवयारं पिव फुरंतमञ्जंतं । पावेमि निव्वुइमहं मणसो वि अगोयरं भाया ।।९०।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता जं तुह अभिरुइयं संपाइस्सं इहेव तं सव्वं । एगंतेण अजुग्गं वणगमणासग्गहं मुंच ।।९१।।
इय पुणरुत्तं भणिओ वि वणयरो सो कयन्नुणा रन्ना । पाउणइ तत्थ न रइं झसु व्व जलविरहिओ जाव ।।९२।।
ताव य सिणेहगब्भं भणिओ भूमीसरेण भो मित्त ! । तुह सुक्खकंखिरो हं वणे विसज्जामि न भवंतं ।।९३।।
जइ पुण तुह पडिकूलं एयं ता कीस किर अहं काहं । किं तु समागच्छ समं ताव मए इय भणेऊण ।।९४।।
मयरहियाणं सदयाण सुयसमुद्दाण पयपउममूले । सुव्वयसूरीण निवो संपत्तो सह पुलिंदेण ।।९५।।
नमिऊण विणयसारं सूरिं विन्नवइ नाह मह एसो । पुव्विं कओवयारो पुलिंदपुरिसो महाभागो ।।९६।।
इहलोयहिओ विहिओ पच्चुवयारो मए ससत्तीए । परलोइयं तु तुब्भे पसिऊणं कुणह एयस्स ।।९७।।
उवओगेणं मुणिपुंगवो वि आभोगिऊण तं जुग्गं । सम्मत्तग्गहणंमी करुणाए भणइ भो भद्दा ! ।।९८।।
सुलहाओ समिद्धीओ बंधुरबंधूहिं संगमो सुलहो । इहपरभवेसु सुहओ जिणधम्मो केवलं दुलहो ।।९९।।
जं तियसवई तियसालयंमि विलसइ लसंतमाहप्पो । जं पायाले पायालसामिओ कामिउं लहइ ।।१००।।
जं सत्तंगसुसज्जं रज्जं भुंजंति केइ इह चेव । चिरसुचरियस्स जाणसु तं जिणधम्मस्स माहप्पं ।।१०१।।
तावच्छ ! सच्छहियओ निच्छयसारो य सुणसु करणिज्जं । जेण कएण जयंमी सुकयं तं नत्थि जं न कयं ।।१०२।।
धुयसव्वदोसपासं अप्पडिहयनाणदंसणपयासं । पडिवज्जसु जिणनाहं देवं सिवपंथसत्थाहं ।।१०३।।
जियरागदोसमोहेण तेण जीवाइयाइं तत्ताइं । जाइं पन्नत्ताइं ताइं सद्दहसु थिरचित्ते ।।१०४।।
दुव्वहपंचमहव्वय-पव्वयवहणुज्जए जियकसाए । तस्साणायरणरए सुसाहुणो सरसु सुगुरु त्ति ।।१०५।।
एयं तं रयणतियं तिलोयसारं तिकालविक्खायं । तिहुयणसिरिवसियरणं सरणं तुह होउ तिविहेणं ।।१०६।।
एसो वि हट्ठतुट्ठो आणंदजलोहविमलियकवोलो । जलहरधारासंपायपुलइओ नीवकुसुमं व ।।१०७।।
उल्लसियजीवविरिओ अपुव्वकरणक्कमेण य खणेण । काऊण गंठिभेयं सम्मत्तमणुत्तरं फुसइ ।।१०८।।
रंजियरसु व्व वाई साहियविज्जु व्व खेयरकुमारो । लाभेण तस्स मन्नइ अणन्नसामन्नमप्पाणं ।।१०९।।
इय सिवपहपाहेए सम्मत्ते तेण तत्थ पडिवन्ने । लोउत्तरोवयारेण तस्स तुट्ठो दढं राया ।।११०।।
नमिऊण पणयजणवच्छलस्स मुणिपुंगवस्स चरणजुयं । सबरेण समं पत्तो नियपासाए पुहविनाहो ।।१११।।
तत्तो वाहरिऊणं वड्ढइणो विस्सकम्मनिम्माए । नियसामग्गिसमेओ गओ पुलिंदस्स जस्स भुवं ।।११२।।
तत्थ य नयरनिवेसं गोउरपायारमंदिरसणाहं । सुहलक्खणाइ खोणीइ खोणिनाहो रयावेइ ।।११३।।
उत्तुंगतोरणेसुं पासाएसुं जिणिंदचंदाणं । कंचणमणिपडिमाओ सपाडिहेराओ ठावेइ ।।११४।।
सीहासणंमि तत्तो निवेसिउं तं वणेयरजुवाणं । अभिसिंचइ सयमेव हि महया रायाभिसेएणं ।।११५।।
सबरपुरं पुरमेयं एसो पुण इत्थ सवरराउ त्ति । उग्घोसावइ एवं सव्वत्थ वि तत्थ नरनाहो ।।११६।।
वणयरलोयं सव्वं निवेसए तेसु तेसु गेहेसु । आरियलोयं पि हु किच्चिरं पि ठावेइ तत्थ निवो ।।११७।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करितुरयाई सव्वं पुव्ववियन्नं समप्पए तस्स । इय कयकिच्चो होउं पत्तो राया पुरं नियय ।।११८।।

अप्पडिहयप्पयावो जाओ कालेण सबररओ वि । को वन्नउ माहप्पं उत्तमपुरिसोवयाराणं ।।११९।।

इत्थं नरेन्द्रः शबरस्य तस्य, तमल्पमप्याप्य किलोपकारम् ।
कृतज्ञचूडामणिरात्मतुल्य-मेनं विधायाजनि कीर्तिपात्रम् ।।१२०।।

विद्वांसः शतशः स्फुरन्ति भुवने सन्त्येव च श्रीभृतो,
वृत्तिं वैनयिकीं च बिभ्रति कति प्रीणन्ति वाग्भिः परे ।
दृश्यन्ते सुकृतक्रियासु कुशला दाताऽपि कोऽपि क्वचित्;
कल्पोर्वीरुहवद् वने न सुलभः प्रायः कृतज्ञो जने ।।१२१।। किञ्च -

प्रमाणवेदीव विशारदेषु रसायिनीवाथ चिकित्सकेषु ।
ब्रह्मव्रतीव व्रतवत्सु लोके प्रकाशते हन्त कृतज्ञ एव ।।१२२।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र-सूरि**शिष्टावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणान्तर्वर्त्तिनि **उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्ये** द्वितीये मूलद्वारे दशमं **कृतघ्नत्वपरिहार-प्रतिद्वारं** समाप्तमिति ।।श्रीः।।

उद्दिष्टं सदृष्टान्तं कृतघ्नत्वपरित्यागद्वारम्, अधुनाऽभिनिवेशनिरसनद्वारमभिधीयते -

सम्मत्ताइगुणोहो अणभिणिविट्ठस्स माणसे वसइ ।
तम्हा कुगइपवेसो निरुंभियव्वो अभिणिवेसो ।।३९३।।

प्रकरणेऽस्मिन्नादितः प्रभृति यः **सम्यक्त्वादिर्गुणौघः** प्रज्ञप्तः स प्रायः **अनभिनिविष्टस्य** कदभिनिवेशविरहितस्यैव **मानसे निवसति** । **तस्मात्** सम्यक्त्वादिगुणगणगृहयालुना नरेण मूलादे-**वाभिनिवेशो निरोद्धव्यः** । किम्भूतः? **कुगतिप्रवेशः** । दुर्गतिपुरीगोपुरप्रतिमः ।।३९३।। यतः-

जह अज्जिन्नाउ जरं, जहंधयारं च तरणिविरहाओ ।
तह मुणह निसंसाओ, मिच्छत्तं अहिणिवेसाओ ।।३९४।।

यथा अजीर्णात् रसापरीणामलक्षणात् **ज्वरः** समुत्पद्यते । **यथा च तरणिविरहात्** भास्करतिरोधानादन्धकारमवतमसं **तथैवाभिनिवेशाद**सद्ग्रहरूपात् **मिथ्यात्वं जानीत** । किम्भूतात् ? **नृशंसात्** नृशंसत्वहेतुत्वादभिनिवेशोऽपि नृशंसस्तस्मात् ।।३९४।। किञ्च -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसरइ गाढावेगो जस्स मणे अभिणिवेसविसवेगो ।
तम्मि पउत्तो वि गुरू-वएसमंतो न संकमइ ।।३९५।।

यस्य दीर्घसंसृतेः सत्त्वस्य **मनस्यभिनिवेश** एव सद्विचारचैतन्यमुकुलनक्षमत्वेन **विषवेग** इव **प्रसरति** । किम्भूतो **गाढावेगः ?** प्रगाढतरः । **तस्मिन् गुरूपदेशमन्त्रः प्रयुक्तोऽपि न सङ्क्रामति** । एतदुक्तं भवति - यथा गाढावेगे विषे सुप्रयुक्तोऽपि मन्त्रस्तद्विकारतिरस्काराय नालम्, एवमभिनिविष्टे मनसि सद्गुरूपदेश इति ।।३०५।। तथा -

इक्को वि अभिणिवेसो सदप्पसप्पु व्व सप्पिरो पुरओ ।
रुंभइ वियंभमाणं नरिंदसिन्नं व गुणनिवहं ।।३९६।।

एकोप्यात्मोत्कर्षकृतघ्नत्वादिसहायविरहितोऽप्यभिनिवेशः पुरः प्रसर्प्यन्नखिलमपि नयविनयादि**गुणौघं विजृम्भमाणं** प्रकर्षोन्मुखं **रुणद्धि** । कदभिनिवेशविसंस्थुले हि मनसि कुतः सरलाशयत्वविनीतत्वादिसाध्यो गुणगणः, क इव ? **सदर्प्यसर्प्प इव** । यथा हि फटाटोपविकटः फणी पुरः प्रसर्प्यन् विजृम्भमाणमितस्ततः प्रसरणपरं **नरेन्द्रसैन्यम**प्येकोऽपि रुणद्धि । दर्शनमपि पन्नगस्याशकुनम्, किं पुनः पुरः प्रसर्प्पणमिति ।।३९६।। अन्यच्च -

जस्स मणभवणमणहं तिव्वाभिणिवेससंतमसछन्नं ।
वित्थरइ तत्थ न धुवं पयत्थपयडणपरा दिट्ठी ।।३९७।।

यस्य गुरुकर्म्मणः प्राणिनो **मनोभवनं** चेतोगृहं प्रागवस्थाया**मनवद्यं** निर्दोषं, प्रबलमिथ्यात्वोदयात्**तीव्राभिनिवेश** एव शिवपथप्रच्छादनपरत्वेन **सन्तमसमिव** तेन **छन्नं** व्याप्तम् । **तत्र ध्रुवं** निश्चितं **पदार्थानां** जीवाजीवादीनां **प्रकटनपरा दृष्टि**र्दर्शनं श्रद्धानरूपं **न विस्तरति** । अभिनिवेशो हि मिथ्यात्वप्रकारस्तद्वतां च कुतस्तत्त्वार्थश्रद्धानं । अथ चोक्तिः - **'यत् किल भवनं सन्तमसछन्नं भवति, तत्र घटपटादिपदार्थप्रकटनपरा दृष्टिः कथं प्रसरति'** इति ।।३९७।।

किञ्च, न केवलमियदेवाभिनिवेशवैशसं यावदन्यदपीत्याह -

कट्ठमणुट्ठाणमणुट्ठियं पि तवियं तवं पि अइतिव्वं ।
परिसीलियममलसुयं ही हीरइ अभिणिवेसेण ।।३९८।।

कष्टहेतुत्वात् **कष्टं**, तच्च तद**नुष्ठानं** नक्तन्दिनविभागव्यवस्थापितं क्रियाकलापरूपं **अनुष्ठितम-**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लुप्तवीर्याचारेण विहितमपि । तथा तीव्रसत्त्वविकलासुमतां **दुष्करं तपो** द्वादशभेदं **तप्तमपि** । तथा **श्रुतमङ्गानङ्गरूपं** कालविनयाद्यष्टप्रकारज्ञानाचारपुरःसरं **परिशीलितं** स्वभ्यस्तमलंस्फुरद्रूपम् तदेतदखिलमप्य**भिनिवेशेना**सद्ग्रहेण **ह्रियते** । कार्याकरत्वेन सदप्यसदिव विधीयते । **ही** इति खेदे । अयुक्त्या हि गता काकिण्यपि दुनोति, किं पुनः सर्वस्वमत एव खेद इति ।।३९८।। अपरं च -

अहह भवन्नवपारं, चरित्तपोएण केवि पत्तावि ।
तम्मज्झमिंति पुण अहिणिवेसपडिकूलपवणहया ।।३९९।।

अहहेत्यभिनिविष्टजनानुशोचने । **भव** ए**वार्णवो** भवार्णवस्तस्य **पारं** द्वित्रादिभवनिर्वृतिप्राप्ति-लक्षणं । त**च्चरित्रपोतेन** चारित्रवहित्रेण **केचिद**नासन्ननिःश्रेयसश्रियः प्राणिनः **प्राप्ता अपि पुनः** पुनरपि **तस्य** भवजलनिधे**र्मध्यं** प्रति । किम्भूताः ? **अभिनिवेश** एव **प्रतिकूलः** सम्मुखापाती **पवनस्तेन हताः** पश्चान्मुखं विक्षिप्ताः । यथा केचिदसुकृतिनः सांयात्रिकाः पोतेन पारावारपारं प्राप्ता अपि प्रतिकूलपवनप्रेरिताः पुनः पयोधिमध्यमध्यासते । तद्वदेतेऽपि ।।३९९।। तथा -

मुत्तूण मुक्खमग्गं निग्गंथं पवयणं हहा ! मूढा ।
मिच्छाभिणिवेसहया भमंति संसारकंतारे ।।४००।।

मुक्त्वा विमुच्य **मोक्षमार्गं** शिवाध्वानं **निर्ग्रंथप्रवचनम**र्हच्छासनं । **हहे**ति तदधन्यतायां । **मूढा** मोहोपहतमतयस्तत एव **मिथ्याभिनिवेशेना**सद्ग्रहेण **हताः** संयमप्राणेभ्यः प्रच्यावितः सन्तः **संसार** एव दुष्करणहरिणराजप्रचारदुःसञ्चरत्वेन कषायतस्करगणाकीर्णत्वेन च कान्तारमिव **कान्तारं तत्र** । **भ्राम्यन्ति** स्वैरं विचरन्ति । तदुत्थानि च दुःखलक्षाण्यनुभवन्ति ।।४००।। यतः -

कह ताव जणो सुक्खी उदग्गकुग्गहदवग्गितवियंगो ।
जाव न जिणवयणामयदहंमि निव्ववइ अप्पाणं ।।४०१।।

कथं तावदयं संसारोदरविवरवर्ती **जनः** स्फुरदुग्रकुग्रहदवाग्नितप्ताङ्गः सन् **सुखी** सुख-भाजनं भवतु । **यावत्** किम्? याव**ज्जिनवचन**मेव दुरभिनिवेशहुताशनप्रशमनप्रवणत्वे**नामृत-ह्रदस्तस्मिन्नात्मानं न निर्वापयति** । विना हि जिनवचनामृतपानं कुतः कदभिनिवेशोपशमः । समुचितं च दावाग्निसन्तप्ताङ्गस्य सुधाद्रहे देहनिर्वापणमिति ।।४०१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च परतीर्थिगतमभिनिवेशवैशसमभिधाय साम्प्रतं स्वतीर्थिगोचरमभिधित्सुराह -

जिणमयरहस्ससुन्नो, मिच्छाभिणिवेसमुव्वहउ अन्नो ।
सियवायखायबुद्धी वि कुग्गहं जंति ही मोहो ।।४०२।।

जिनमतमर्हत्प्रवचनं, तस्य **रहस्यं** जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानं, तेन **शून्य**स्तत्त्वज्ञानविकलो- **ऽन्यो** जैनादितरः कुतीर्थी **मिथ्याभिनिवेश**मसद्ग्रहरूप**मुद्वहतां** नाम । न तत्र चित्रमतात्त्वि-कत्वादेव । यत्तु **स्याद्वादः** स्याच्छब्दलाञ्छितोऽनन्तगमपर्यायनयहेतुभङ्गिसङ्गतो जिनागमस्तत्र **ख्यातबुद्धयः** प्रवीणमतयोऽपि **कुग्रहं यान्ति, तत्** सकलकर्ममूर्द्धाभिषिक्तस्य महामहिम्नो **मोहस्यैव विलसितमिति** ।।४०२।। तथाहि -

जिणपन्नत्तस्स सुयस्स, भगवओ भाववित्तिममुणंता ।
वियलियनाणालोया, निरइसया संपइयपुरिसा ।।४०३।।

एवंविधा **ऐदंयुगीनाः पुरुषा** यत् कुग्रहं प्रकटयन्ति तदभिनिवेशस्य माहात्म्यमिति कलापकान्त्यगाथया सम्बन्धः । किंविशिष्टाः ? **जिनप्रज्ञप्तस्य** सर्वज्ञोपज्ञस्य **भगवतः** सर्वाति-शयकोशस्य **श्रुतस्य** समयस्य **भाववृत्तिम**न्तस्तत्त्व**मजानन्तः** । अज्ञाने हेतुमाह - **विगलितज्ञा-नालोका**स्तत एव **निरतिशयाः** । दुःषमानुभावेन विशिष्टज्ञानातिशयादेर्व्यवच्छेदात् ।।४०३।।

दव्वं खित्तं कालं भावं तह नाणकिरियनयजोगं ।
उस्सग्गं अववायं ववहारं निच्छयनयं च ।।४०४।।

तदेतद् द्रव्यादिकमोघेन सामान्येन श्रुत्वेत्युत्तरगाथया सम्बन्धः । किं तदित्याह - **द्रव्यं** सचित्ताचित्तमिश्रकमुभयरूपं च । कल्प्यमकल्प्यं । ग्लानादेर्योग्यमयोग्यं चेति । तथा **क्षेत्रम**ध्वा जनपदपुरग्रामादि । **कालं** सुभिक्षदुर्भिक्षादि । **भावं** हृष्टग्लानादि । गाढकल्पमगाढकल्पं चेति । **तथा ज्ञाननयं क्रियानयं** च । सामान्यरूप**मुत्सर्गं** विशेषरू**पमपवादं** च । तथा प्रवृत्तिरूपं **व्यवहार**नयं भावरूपं **निश्चयनयं** च ।।४०४।।

ओहेण सुणिय सम्मं, विसयविभागं अयाणिय इमेसिं ।
जं किंचि सुत्तमित्तं, जुत्तिसहं संगहेऊण ।।४०५।।

तदिदं द्रव्यादिक**मोघेन** सामान्यव्याख्यानेन **श्रुत्वा** समाकर्ण्य **अमीषां** च **सम्यक्** यथावस्थितं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयविभागं सचित्तादिकं किं द्रव्यं कस्मै कस्मिन्नवसरे कथं केन वा देयम् । तथा यस्मिन् क्षेत्रे येन यादृशपरीवारेण यावत्कालमवस्थेयम् । यथा च देशनादि विधेयम् । काले च सुभिक्षदुर्भिक्षादौ यद् यथा समुपादेयं यच्च हेयम् । कश्च ग्लानादिः कस्मिन्नौदयिकादिके भावे वर्त्तते । तथा ज्ञाननयमेवैकमोघतः श्रुत्वा, यथा -

नाणाहिओ वरतरं हीणो वि हु पवयणं पभावंतो ।
न य दुक्करं करंतो सुट्ठु वि अप्पागमो पुरिसो ।।१।। तथा -

नाणाहियस्स नाणं पुज्जइ नाणा पवत्तए चरणं ।
जस्स पुण दुन्ह इक्कं पि नत्थि तस्स पूइज्जए काइं ।।२।। [उपदेशमाला गा. ४२३-४२४]

यदि वा सामान्येन क्रियानयमेवैकमाकर्ण्य - यथा -

सुबहुं पि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पहीणस्स ।
अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडी वि ।।३।। [आवश्यकनिर्युक्ति गा. ९८]

अप्पं पि सुयमहीयं पगासयं होइ चरणजुत्तस्स ।
इक्को वि जह पईवो सचक्खुयस्सा पगासेइ ।।४।। [आवश्यकनिर्युक्ति गा. ९९]

एवं च श्रुत्वा ज्ञाननयमेवैकमेकान्ततः सङ्गृहीति क्रियानयं वा । न पुनरनयोर्विषयविभाग-मुभयसंयोगलक्षणं जानीते । यथा -

जह छेयलद्धनिज्जामओ वि वाणियगमइच्छियं भूमिं ।
वाएण विणा पोओ न चएइ महन्नवं तरिउं ।।१।। [आवश्यकनिर्युक्ति गा. ९५]

तह नाणलद्धनिज्जामओ वि सिद्धिवसहिं न पाउणइ ।
निउणो वि जीवपोओ तवसंजममारुयविहूणो ।।२।। [आवश्यकनिर्युक्ति गा. ९६] किञ्च -

हयं नाणं कियाहीणं हया अन्नाणओ किया ।
पासंतो पंगुलो दड्ढो धावमाणो य अंधओ ।।३।। [आवश्यकनिर्युक्ति गा. १०१]

संजोयसिद्धिइ फलं वयंति न हु एगचक्केण रहो पयाइ ।
अंधो य पंगू य वणे समिच्चा ते संपउत्ता नगरं पविट्ठा ।।४।। एवं च -

नाणं पयासयं सोहओ तवो संजमो य गुत्तिकरो ।
तिन्हं पि समाजोगे मुक्खो जिणसासणे भणिओ ।।५।। [आवश्यकनिर्युक्ति गा. १०२/१०३]

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा उत्सर्गमप्योघतः समाकर्ण्य । यथा -

पिंडं असोहयंतो अचरित्ती इत्थ संसओ नत्थि ।
चारित्तम्मि असंते निरत्थया तस्स पव्वज्जा ।।६।। [यतिदिनचर्या गा. २१०]

एवं सिज्झं वत्थं पत्तं वेत्यपि योज्यम् । इत्याद्याकर्ण्य उत्सर्गजडतया तमेव च बहुमन्यते । यदि वा

यावज्जीवं गुरुणो सुद्धमसुद्धेण होइ कायव्वं ।
वसहे बारस वासा अट्ठारस भिक्खुणो मासा ।।१।। [ ] तथा -
न हु किंचि अणुन्नायं पडिसिद्धं वा वि जिणवरिंदेहिं ।
मुत्तुं मेहुणभावं न तं विणा रागदोसेहिं ।।२।। [प्रवचनसारो. गा. ५५२ वृत्तौ]

इत्याद्यपवादाश्रयं च श्रुत्वा तत्रैव चेतो बध्नाति । न तु द्रव्यक्षेत्रकालाद्यपेक्षमुत्सर्गस्यापवादस्य च प्रयोगे विषयविभागं विभजते । यथा -

संथरणंमि असुद्धं दुन्ह वि गिन्हंतदिंतयाणऽहियं ।
आउरदिट्ठंतेणं तं चेव हियं असंथरणे ।।१।। [यतिदिनचर्या गा. २३५] **इत्यादि ।**

तथा निश्चयनयमपि सामान्येन श्रुत्वा - यथा

पासत्थो ओसन्नो होइ कुसीलो तहेव संसत्तो ।
अहछंदो वि य एए अवंदणिज्जा जिणमयंमि ।।१।। [प्रवचनसारो. गा. १०३ वृत्तौ] तथा -
परमरहस्समिसीणं समग्गगणिपिडगझरियसाराणं ।
परिणामियं पमाणं निच्छयमवलंबमाणाणं ।।२।। [ओघनिर्युक्तौ गा. ७६१]

इत्याद्येव तत्त्वरूपं मन्यते । यथा -

हीणस्स वि सुद्धपरूवगस्स नाणाहियस्स कायव्वं ।
जणचित्तग्गहणत्थं करिंति लिंगावसेसे वि ।।१।। [उपदेशमाला गा. ३४८]

इत्यादि व्यवहारनयगोचरमाकर्ण्य तदेव बहुमन्यते न पुनरेवं विषयविभागमवगृह्णाति । यत् तावन्निश्चयनयः प्रमाणमेव, का तत्र मीमांसा । किन्तु -

निच्छयओ दुन्नेयं को भावे कम्मि वट्टए समणो ।
ववहारओ उ कीरइ जो पुव्वठिओ चरित्तम्मि ।।१।। [ ] यतः -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ववहारो वि हु बलवं जं वंदइ केवली वि छउमत्थं ।
आहाकम्मं भुंजइ सुयववहारं पमाणंतो ।।२।। [पुष्पमाला गा. २२९]

तदैवं द्रव्यादीनां विषयविभागम**विज्ञाय** कुग्रहं प्रकटयन्ति । तथा **'जं किंचि सुत्तमित्तं जुत्तिसहं संगहेऊण ।' यत् किमप्यङ्गानङ्गगतं युक्तिसहं** व्याख्यानद्वयावतारक्षमं **सूत्रमात्रं** पूर्वापराविचारेण **संगृह्य** ।।४०५।।

ततः किं कुर्वन्तीत्याह –

पुव्वायरियकमागयतत्थमवहत्थिऊण मयवसओ ।
जं पयडंति कुमग्गं तमभिणिवेसस्स माहप्पं ।।४०६।।

तस्य व्याख्यानद्वयावतारक्षमस्य सूत्रस्य **पूर्वाचार्यक्रमागतार्थं** पूर्वगणधरोपज्ञमर्थं व्याख्यानमवगणय्य **अप्रमाणीकृत्य** । कस्मात् ? **मदवशतः** स्वविद्याभिमानेन । **यदे**वमुदग्रकुग्रहग्रहिलधियः केऽपि **कुमार्गं** कुमतं **प्रकटयन्ति तत्** केवलमनर्गलस्या**भिनिवेशस्यैव माहात्म्यमि**त्यहो ! तस्य वैशसम् ।।४०६।।

यदि वा –

को वा दुसमसमुत्थे मोहहए इह जणे उवालंभो ।
मिच्छाभिणिवेसहया जमासि जिणनाहसमए वि ।।४०७।।

वा अथवा **अस्मिन्त्रै**दंयुगीने **जने** कुमतादिप्रकटनपरे **क उपालम्भः** । किम्भूते ? **दुःषमासमुत्थे** पञ्चमारकसमुत्पन्ने, अत एव **मोहहते** अज्ञानग्रसिते । **यद्** यस्मा**ज्जिननाथसमयेऽपि** विद्यमानेष्वपि केवललोकभास्करेषु भगवत्सु जिनेषु **मिथ्याभिनिवेशहताः** स्फुरदसद्ग्रहनिहतमतयः केचना**ऽभूवन्** ।।४०७।।

एतदेव स्पष्टयति –

उयह हयमोहमहिमं, जं जिणजिणपवयणेसु संतेसु ।
पयडिंसु केइ कुपहं, दिट्ठंतो निन्हवा इत्थ ।।४०८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उयह पश्यत, **हतस्यास्य मोहस्य महिमानम्** स्फूर्त्तिमत् । **जिने** मोहविजयिनि सुगृहीतनामनि भगवति श्रीवर्द्धमाने, **तत्प्रवचने** चाचाराङ्गादिद्वादशाङ्गरूपे **सत्यपि केऽपि** दीर्घसंसृतयः **कुमतानि प्रकटयामासुः** । किमत्र प्रमाणमिति चेत् **अत्र निह्नवा** एव **दृष्टान्तः** तथाहि -

---

गाथा-४०८ 1. निन्हवकारिणां नामान्याह –

एएसि णं पवयणणिन्हगाणं सत्त धम्मायरिया होत्था - जमाली, तिस्सगुत्ते, आसाढे, आसमित्ते, गंगे, छलुए, गोट्ठामाहिले । - स्था. ७ठा. । नि. चू. ।।

अथ येभ्यो ये निह्नवाः समुत्पन्नास्तदेतदाह –

बहुरय जमालिपभवा, जीवपएसा य तीसगुत्ताओ । अव्वत्ताऽऽसाढाओ, सामुच्छेयाऽऽसमित्ताओ ।।२३०१।।

गंगाओ दोकिरिया, छलुगा तेरासियाण उप्पत्ती । थेरा य गोट्ठमाहिल, पुट्ठमबद्धं परूवेंति ।।२३०२।।

बहुरता जमालिप्रभवाः, जमालेराचार्यात्प्रभव उत्पत्तिर्येषां ते बहुरता जमालिप्रभवाः १ । जीवप्रदेशाः पुनस्तिष्यगुप्तादुत्पन्ना २ । अव्यक्ता आषाढात् ३ । सामुच्छेदा अश्वमित्रादिति ४ । गङ्गाद् द्वैक्रियाः ५ । षडुलूकात् त्रैराशिकानामुत्पत्तिः ६ । स्थविराश्च गोष्ठामाहिलाः स्पृष्टमबद्धं प्ररूपयन्ति ७ । 'कर्म' इति गम्यते "परूविंसु वा" इति पाठान्तरं वा । ततो गोष्ठामाहिलादबद्धिका जाता इति सामर्थ्याद् गम्यते इति ।।२३०१-२३०२ विशे. भा. टीका।।

येषु स्थानेष्वेते समुत्पन्नास्तानि क्रमेणाऽऽह - एएसि णं सत्तण्हं पवयणनिण्हगाणं सत्त उप्पत्तिनगरे होत्था । स्था. ७ठा. तद् यथा –

सावत्थी उसभपुरं, सेयविआ मिहिल उल्लगातीरं । पुरमंतरंजि दसउर, रहवीरपुरं च नयराइं ।।२३०३।।

श्रावस्ती, ऋषभपुरं, श्वेतविका, मिथिला, उल्लुकातीरं, पुरमन्तररञ्जिका, दशपुरं, रथवीरपुरं चेति । एतान्यष्टौ नगराणि निह्नवानां यथायोगमुत्पत्तिस्थानानि बोद्धव्यानि । अष्टमं नगरं द्रव्यलिङ्गमात्रेणापि भिन्नानां सर्वापलापिनां महामिथ्यादृशां वक्ष्यमाणानां बोटिकनिह्नवानां लाघवार्थमुत्पत्तिस्थानमुक्तमिति ।। २३०३ विशे. भा. टीका ।

अथ भगवतः समुत्पन्नकेवलज्ञानस्य परिनिर्वृत्तस्य च कः कियता कालेन निह्नवः समुत्पन्नः ? इत्येतत्प्रतिपादयन्नाह -

चोद्दस सोलस वासा, चोद्दा वीसुत्तरा य दोन्नि सया । अट्ठावीसा य दुवे, पंचेव सया य चोयाला ।।२३०४।।

पंचसया चुलसीओ, छच्चेव सया नवुत्तरा होंति । नाणुप्पत्तीए दुवे, उप्पन्ना निव्वुए सेसा ।।२३०५।।

चतुर्दश वर्षाणि । तथा षोडश वर्षाणि । तथा - 'चोद्दा वीसुत्तरा य दोन्नि सय त्ति' चतुर्दशाधिके द्वे शते, विंशत्युत्तरे च द्वे शते, वर्षाणामिति गम्यते । तथा - अष्टाविंशत्यधिके च द्वे शते, तथा पञ्चैव शतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि, पञ्च शतानि चतुरशीत्यधिकानि, षट् चैव शतानि नवोत्तराणि भवन्ति । एतावता व्यवधानकालेन ज्ञानोत्पत्तेरारभ्याऽऽद्यौ द्वौ निह्नवौ समुत्पन्नौ । शेषास्तु षड् भवन्ति । श्रीमन्महावीरे निवृत्ते निर्वाणकालादारभ्य उक्तशेषेण यथोक्तेन व्यवधानकालेनोत्पन्नाः । इदमुक्तं भवति - श्रीमन् महावीरस्य केवलोत्पत्तेश्चतुर्दशभिर्वर्षैरतिक्रान्तैर्बहुरताः समुत्पन्नाः । षोडशभिर्वर्षैर्व्यतिक्रान्तैः जीवप्रदेशाः समुत्पन्नाः । भगवत एव निर्वाणकालाच्छेषेण चतुर्दशाधिकवर्षशतद्वयाऽऽदिना कालेनातिक्रान्तेन शेषा अव्यक्ताऽऽदयो निह्नवाः समुत्पन्ना इति ।।

- २३०४-२३०५ विशे. भा. टीका ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुरय१ पएस२ अवत्त३ समुच्छ४ दुग५ तिगद६ अबद्धिया७ चेव ।
सत्तेए निन्हगा खलु तित्थम्मि उ वद्धमाणस्स ।।१।। [आव. नि. गा. ७७८]

बहुरय जमालिपभवा जीवपएसा उ तीसगुत्ताउ ।
अव्वत्ताऽऽसाढाओ सामुच्छेयाऽऽसमित्ताओ ।।२।। [आव. नि. गा. ७७९]

गंगाओ दोकिरिया छलुगा तेरासियाण उप्पत्ती ।
थेरा य गोट्ठमाहिल पुट्ठमबद्धं परूविंति ।।३।। [आव. नि. गा. ७८०]

चउदस वासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्स ।
तो बहुरयाण दिट्ठी सावत्थीए समुप्पन्ना ।।१।। [आव. मू. भा. गा. १२५]

सोलस वासाणि तया जिणेण उप्पाडियस्स नाणस्स ।
जीवपएसियदिट्ठी उसभपुरम्मी समुप्पन्ना ।।२।। [आव. मू. भा. गा. १२७]

चउदस दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
अव्वत्तगाण दिट्ठी सेवइयाए समुप्पन्ना ।।३।। [आव. मू. भा. गा. १२९]

वीसा दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
सामुच्छेइयदिट्ठी महिलपुरीए समुप्पन्ना ।।४।। [आव. मू. भा. गा. १३१]

अट्ठावीसा दो वाससया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
दो किरियाणं दिट्ठी उल्लुगतीरे समुप्पन्ना ।।५।। [आव. मू. भा. गा. १३३]

पंचसया चोयाला तइया सिद्धं गयस्स वीरस्स ।
पुरिमंतरंजियाए तेरासियदिट्ठी समुप्पन्ना ।।६।। [आव. मू. भा. गा. १३५]

पंचसया चुलसीया तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
अबद्धियाण दिट्ठी दसपुरनयरे समुप्पन्ना ।।७।। [आव. मू. भा. गा. १४१]

एवं एए कहिया ओसप्पिणिए उ निह्नगा सत्त ।
वीरवरस्स पवयणे सेसाणं पवयणे नत्थि ।।८।। [आव. नि. गा. ७८४]

एवमसद्ग्रहादमी सप्तापि निह्नवाः कुमतप्रकटने स्पष्ट एव दृष्टान्तः । अमीषां चेतिवृत्तानि आवश्यकादिग्रन्थेभ्योऽवसेयानि । इह तु ग्रन्थगौरवभीरुभिर्नोदाहृतानि । एवं च –

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सच्चारित्रसुपर्वपर्वतशिरःप्राग्भारमारुह्य ये,
मन्यन्ते स्म जगत्पतीनपि जिनान् मूढाः स्वतुल्यानिव ।
तस्मिंस्तेऽभिनिवेशलेशकुलिशच्छिन्ने जघन्याः पुनः;
नीचामेव गतिं गताः कृतधिया स्युः शोचनीयाः सदा ।।१।। अपि च -

क्वचिदपि कलयन्ति नाप्तबुद्धिम्,
विदधति पूज्यजनेऽवधीरणां च ।।
जगदपि जनयन्ति पापरक्तं;
दुरभिनिवेशवशंवदाः पुमांसः ।।२।। एवं च -

अत्युत्तमान् गुणगणानिति दानमुख्यान्,
द्वारेऽत्र दर्शितवतः परिशीलयन्तः ।
तत्सङ्गमेन सुभगे हृदि तद्विपक्षान्;
दोषानलब्धनिलयान् गलहस्तयन्तः ।।३।।

उदाराः शीलाढ्याः सुदृढतपसः शुद्धहृदया,
विनीताः सर्वत्रोपकृतिकरणौचित्यचतुराः ।
विरुद्धं मुञ्चन्तः प्रकृतिनिरहङ्कारमनसः,
कृतज्ञाः प्रज्ञाप्याः स्युरिह महनीयाः सुकृतिनः ।।४।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीमद**भयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र-सूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचित-**हितोपदेशा-मृत**विवरणे उत्तमगुणसङ्ग्रहाख्यं **द्वितीयं मूलद्वारं** समाप्तमिति ।।४०८।। श्रीः ।।

卐 卐 卐

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। देशविरत्याख्यं तृतीयं मूलद्वारम् ।।

साम्प्रतं पूर्वद्वारं निगमयन्नुत्तरद्वारं चोपक्षिपन्नाह -

इय एसो भे ! कहिओ उत्तमगुणसंगहो समासेण ।
इन्हिं विरइसरूवं सुयाणुसारिण पयडेमि ।।४०९।।

इति दानाद्येकादशसोदाहरणप्रतिद्वारप्रकटनेना**यमुत्तमगुणसङ्ग्रहो** द्वितीयं मूलद्वारं **भे** भवतां **कथितः** । कथं ? **समासेन** संक्षेपेण पूर्वाचार्यप्रणीतोत्तमगुणगणेभ्यः कतिपयान् गुणानुद्धृत्येत्यर्थः । विस्तरस्तु विस्तार्यमाणेषु तेषु महद् ग्रन्थगौरवं स्यात् । तथाचास्मदाराध्यप्रणीता गुणसङ्ग्रहगाथाः -

ता लोयस(ज)त्ताविवरंमुहेहिं समुज्झियासेसकदग्गहेहिं ।
इमे गुणा लोगदुगे वि रम्मा सयंमि देहम्मि निवेसियव्वा ।।१।। तथाहि -

अपुव्वपुव्वागमनाणवंछा गुरूसु सुस्सूसणलंपडत्तं ।
परोवयारप्पउणासयत्तं विमूढसंसग्गिविवज्जणं च ।।२।।

पगिट्ठधम्मपडिबद्धलोए सुबंधुबुद्धी विमलासयत्तं ।
सया वि अत्तुक्करिस्सचागो अजुत्तनेवत्थअणिच्छणं च ।।३।।

अहासभासित्तमदीणवित्ती अणुत्तणत्तं सुयसीलया य ।
गुणाहिएसुं परमो पमोओ संसारकिच्छेसु परा विरत्ती ।।४।।

सव्वेसु कज्जेसु अणूसुगत्तं अखुद्दभावो य अनिद्दयत्तं ।
सज्झायसज्झाणतवोवहाण-आवस्सयाईसु समुज्जमित्तं ।।५।।

लोगस्स धम्मस्स य जं विरुद्धं तव्वज्जणंमी परमोऽणुबंधो ।
पइक्खणं दुक्कडनिंदणंमी रागो सुभट्ठाण पसंसणे य ।।६।।

कामप्पिवासाइसमुत्थदोस-दुरन्तयालोयणलालसत्तं ।
पमायवायाहयजीवलोय-जायंतदुक्खोहविभावणं च ।।७।।

संतोससारत्तमलज्जिरत्तं विसिट्ठचिट्ठासु विणीयया य ।
पियंवयत्तं नयसुंदरत्तं आगामिकालस्स पलोयणं च ।।८।।

कयं मए किं करणिज्जजायं किं नो कयं किं व कयं न सम्मं ।
किं वा पमत्तो न सरामि इन्हिं इच्चाइ किच्चाण विभावणं च ।।९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यादि । अतः समासेनेत्युक्तम् । **इदानीं** क्रमप्राप्तं **विरतिद्वारस्य स्वरूपं श्रुतानुसारेण** समयनीत्या **प्रकटयामीति** ।।४०९।। तत्रादौ विरतिशब्दार्थमेवाह -

विरई इह पन्नत्ता जिणेहिं दुक्कम्ममम्ममहणेहिं ।
आसवदारनिरोहो सो पुण देसे य सव्वे य ।।४१०।।

[1]**इहास्मिन्** शासने **विरतिः प्रज्ञप्ता** । कैर्जिनैरर्हद्भिः । किंविशिष्टैर्**दुष्कर्म्ममर्ममथनैः** । किंस्वरूपेत्याह - **आश्रवद्वारनिरोधः** । [2]आश्रवद्वाराणां प्राणातिपातादीनां निरोधः संवरः । [3]**स च देशतः सर्वतश्चेति** ।।४१०।।

तत्रादौ देशविरतिस्वरूपमाह -

पाणिवहाईयाणं पावट्ठाणाण देसपडिसेहो ।
देसविरइ त्ति समणोवासगधम्मु त्ति सा होइ ।।४११।।

प्राणिवधादीनां वक्ष्यमाणानां **पापस्थानानां** यः किल **देशतः प्रतिषेधः** सा देशविरतिः । **श्रमणोपासकधर्मश्च सैव भवतीति** ।।४११।।

[1]तस्यैव भेदसङ्ख्यामाह -

पंच य अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं तु हुंति तिन्नेव ।
सिक्खावयाणि चउरो इय गिहिधम्मो इमे ते य ।।४१२।।

गाथा-४१० 1. **तुला** - हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।। - तत्त्वा. सू. ७/१
विरमणं विरतिः ।। - तत्त्वा. सि. टीका अ. ७ सू. १ ।।

2. **तुला** - आस्रवनिरोधः संवरः ।। तत्त्वा. सू. ९-१ ।। आसूयते समादीयते यैः कर्माष्टविधमास्रवास्ते कर्मणां प्रवेशवीथयः शुभाशुभलक्षणाः कायादयस्त्रय इन्द्रिय-कषाया-ऽव्रत-क्रियाश्च पञ्च-चतुः पञ्च-पञ्चविंशतिसङ्ख्यास्तेषां निरोधो-निवारणं स्थगनं संवरः ।। तत्त्वा. सि. टीका ९-१ ।। यथोक्तस्य काययोगादेर्द्विचत्वारिंशद्विधस्यास्रवस्य निरोधः संवरः ।। - तत्त्वा. भा. ९/१ ।।

3. तुला - देशसर्वतोऽणुमहती ।। तत्त्वा. सू. ७/२ ।। देशतो विरतिरणुव्रतं, सर्वतो विरतिर्महाव्रतम् ।
- तत्त्वा. सि. टीका ७/२ ।।
एभ्यो हिंसादिभ्य एकदेशविरतिरणुव्रतं, सर्वतो विरतिर्महाव्रतमिति ।। - तत्त्वा. भा. ७/२ ।।

गाथा-४१२ 1. **तुला** - पंचण्हमणुवयाणं, गुणव्वयाणं च तिण्हमइयारे । सिक्खाणं च चउण्हं ।।
- श्राद्ध प्र. वृत्तौ पत्रा. ५६ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्च देशतः प्राणिवधविरमणादीन्**यणुव्रतानि** । सर्वविरतिस्वीकृतमहाव्रतापेक्षया च देशविरतव्रतानामणुत्वम् । **त्रीणि** दिग्विरतिप्रतिपत्तिप्रभृतीनि **गुणव्रतानि, चत्वारि** सामायिकादीनि प्रतिदिनाऽभ्यसनीयानि **शिक्षाव्रतानि** । अत एव गुणव्रतेभ्योऽमीषां भेदः । गुणव्रतानि हि प्रायो यावत्कथिकानि भवन्ति । इत्यणुव्रतगुणव्रतशिक्षाव्रतभेदाद् द्वादशधा गृहमेधिधर्म्मोऽयम् । तानि चाणुव्रतादीन्यमूनि ।।४१२।।

तान्येव नामतः प्राह -

[१]पाणिवह-[२]मुसावाए-[३]अदत्त-[४]मेहुण-[५]परिग्गहे चेव ।
[६]दिसि-[७]भोग-[८]दंड-[९]समइय-[१०]देसे तह [११]पोसह-[१२]विभागे ।।४१३।।

साध्याहारत्वादमीषां पदानां **प्राणिवध-मृषावाद-अदत्त-मैथुना**ख्यपदचतुष्टये विरतिशब्दोऽध्याहार्यः । तथा **परिग्रह - दिशि-भोगा**ख्ये पदत्रये परिमाणशब्दः । तथा भीमो भीमसेन इति न्यायादेकदेशे समुदायोपचाराद् **दण्ड**शब्देनानर्थदण्डव्रतमभिधीयते । एवं **समइय**शब्देन सामायिकम् । **देश**शब्देन देशावकासिकम् । **पोषधं** तु स्वरूपत एव । **विभाग**पदेन चातिथिसंविभागव्रतमित्येतानि द्वादशापि गृहव्रतानि ।।४१३।।

साम्प्रतमुद्देशक्रमेणामीषां प्रत्येकं प्रतिपत्तिस्वरूपमभिधित्सुरादौ प्राणातिपातस्वरूपमाह -

जावज्जीवं जीवं थूलं संकप्पियं निरवराहं ।
तिव्वकसाओ मणवयतणूहिं न हणे न य हणावे ।।४१४।।

[1]इह हि प्रतिपन्नप्राणातिपातविरतिर्देशयति**र्यावज्जीवमा**मरणान्तं **जीवं** प्राणिनं स्वयं **न हन्ति, न चान्येन घातयति** । किंविशिष्टः सन्? **तीव्रकषायः** प्रगाढक्रोधावेगः । काभिः?

पंच उ अणुव्वयाइं, थूलगपाणवहविरमणाईणि । उत्तरगुणा व अण्णे, दिसिव्वयाइं इमेसिं तु ।।
- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ७२ ।।

गाथा-४१४ 1. **तुला -** थूलगपाणवहस्स, विरई दुविहो य सो वहो होइ ।
संकप्पारंभेहिं, वज्जइ संकप्पओ विहिणा ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ७८।।

'स्थूलकप्राणवधस्य विरतिः' स्थूरा एव स्थूरकाः द्वीन्द्रियादयः तेषां प्राणाः शरीरेन्द्रियोच्छ्वासायुर्लक्षणाः तेषां वधं जिघांसनं तस्य विरतिः निवृत्तिरित्यर्थः । द्विविधासौ वधो भवति । कथम् । संकल्पारम्भाभ्यां तत्र व्यापादनाऽभिसन्धिः सङ्कल्पः, कृष्यादिकस्त्वारम्भः । तत्र 'वर्जयति सङ्कल्पतः' परिहरत्यसौ श्रावकः प्राणवधं सङ्कल्पेन न त्वारम्भतोऽपि, तत्र नियमेन प्रवृत्तेः । 'विधिना' प्रवचनोक्तेन वर्जयति, न तु यथाकथञ्चित् ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ७८ ।। वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोवाक्तनुभिः । मनसा वधसङ्कल्पं न धारयति । वचसा वधोपदेशं न ददाति । कायेन वधं न विधत्ते । वधानुमतेस्तु न नियमः । पुत्रादिपरिग्रहवतो हि तस्य स्वयमकर्तुरन्येनाकारयितुरपि पुत्रादिप्रवर्तितवधपापांशभाजनता भवेदेव । तद्विधेयत्वात् पुत्रादीनाम् । अत एव द्विविधत्रिवेधेनैव प्रायः सर्वेऽपि गृहमेधिनियमाः । किंविशिष्टं जीवं ? **स्थूलं** स्थूलै - लौकिकमुनिभिरपि जीवत्वेन प्रतिपन्नत्वादेकेन्द्रियापेक्षया वा स्थूलं द्वीन्द्रियादि । किमर्थं स्थूलग्रहणमिति चेदुच्यते षड्विधजीवनिकायोपमर्दप्रसक्तत्वादसुकरैवास्यैकेन्द्रियवधविरतिरतः स्थूलग्रहणम् । ननु द्वीन्द्रियादिवधनिवृत्तिरस्य सर्वात्मना समीचीनैव । नेत्याह - **सङ्कल्पितम्** । अनेन द्वीन्द्रियादिना निहतेन ममैतदेतच्च भवत्विति सङ्कल्पपूर्वं तद्वधं न विधत्ते । आरम्भप्रवृत्तस्य सदयहृदयस्य यतनापरस्यापि पञ्चेन्द्रियपर्यवसानानामपि प्राणिनां वधसम्भवादतः सङ्कल्पितमित्युक्तम् । तर्हि सङ्कल्पपूर्वके प्राणिवधे विरतिरस्य निर्विवादा । नेत्याह - **निरपराधम्** निरागसमेव जन्तुजातं गृही न हन्ति, न च घातयति । प्रतिपन्नवधविरतीनामपि तेषामाततायिषु वधप्रवृत्त्युपलब्धेरिति निरपराधमित्युक्तम् सोऽयं प्राणातिपातविरतिप्रकारः श्रमणोपासकानां समयसम्मतः पूर्वाचार्यसन्दिष्टश्चेति ।।४१४।।

एतानि च गृहिव्रतानि प्रत्येकं पञ्चातिचारपरिशुद्धानि प्रतिपाल्यमानानि यथोक्तफलदान्यतस्तेऽपि ज्ञेया हेयाश्च । तत्र प्रथमं [1]प्रथमाणुव्रतातिचारानाह -

वह[2]-बंध[2]-छविच्छेयं[3] अइभारं[4] भत्तपाणवुच्छेयं[5] ।
पाणिवहाओ विरओ, वज्जिज्ज इमे अईयारे ।।४१५।।

गाथा-४१५ तुला - तानेवाह - **बंधवहछविच्छेयं, अइभारं भत्तपाणवोच्छेयं ।**
कोहाइदूसियमणो, गोमणुयाईण नो कुज्जा ।। - श्रा. ध. प्र. गा. ८० ।।

(बन्धवधच्छविच्छेदानतिभारं भक्तपानव्यवच्छेदम् । क्रोधादिदूषितमना, गोमनुष्यादीनां न कुर्यात् ।।)

"बंधवह" गाहा व्याख्या - बन्धवधच्छविच्छेदान् अतिभारं भक्तपानव्यवच्छेदं क्रोधादिदूषितमना गोमनुष्यादीनां न कुर्यात् । तत्र बन्धनं बन्धः - संयमनं रज्जुदामकादिभिः १ । हननं-वधस्ताडनं कषादिभिः २ । छविः-शरीरं तस्य च्छेदः - पाटनं करपत्रादिभिः ३ । भरणं भारः अतीव भरणमतिभारः प्रभूतस्य पूगफलादेः स्कन्धपृष्ठ्यादिष्वारोपणमित्यर्थः ४ । भक्तं-अशनमोदनकादि, पानं-पेयमुदकादि, तस्य व्यवच्छेदः-निरोधोऽदानमित्यर्थः ५ । एतान् समाचरन् अतिचरति प्रथमाणुव्रतान् । एतान् क्रोधादिदूषितमना न कुर्यादिति । अनेनाऽपवादमाहअन्यथाकरणाप्रतिषेधावगमात् । तत्र चायं पूर्वाचार्योक्तो विधिः - "बंधो दुपयाणं चउप्पयाणं च अट्ठाए अणट्ठाए अ । अणट्ठाए न वट्टइ बंधिउं । अट्ठाए दुविहो सावेक्खो निरवेक्खो य । णिरवेक्खो निच्चलं धणियं जं बंधइ । सावेक्खो दामगंठिणा, जं च सक्कइ पलीवणाइसुं मुंचिउं छिंदिउं वा, ण संसरपासएण बंधिअव्वं । एवं ताव चउप्पयाणं । दुपयाणं पि दासो

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र पूर्वगाथातस्तीव्रकषाय इत्यनुवर्त्तते । अतस्तीव्रकषायः सन् प्रतिपन्नप्राणिवधविरतिर्गृहमेधी द्विपदचतुष्पदादीनामेतानि न करोति । कानीत्याह-**वधं** यष्टिमुष्ट्यादिभिस्ताडनं क्रोधान्न करोति । पुत्रादीनां गोमहिष्यादीनां शिक्षानिमित्तं भयग्राहणाय वाऽद्विष्टहृदयः करोत्येव । व्यतिरेके तु प्रथमोऽतिचारः । **बन्धं** रज्ज्वादिभिस्तमपि कषायाविष्टो न विधत्ते । विनयग्राहणाय तु करोत्येव । अन्यथा द्वितीयोऽतिचारः । **छविः** शरीरं त्वग् वा, तस्याः **छेदो** द्वैधीकरणम् । तदपि कषायोदयान्न करोति । पादवल्मीकाद्युपशमनिमित्तं तु प्रियापत्यादेरपि स विधीयत एव । इतरथा तु तृतीयोऽतिचारः । **अधिकस्योद्वोढुमशक्यस्य भारस्यारोपणं** द्विपदचतुष्पदादेः स्कन्धे पृष्ठे शिरसि वा, तदपि लोभकषायाविष्टः कुर्व्वन्नतिचरत्येव प्रथमाणुव्रतमिति चतुर्थोऽतिचारः । **भक्तपानव्यवच्छेदमपि** सम्परायोदयात् तेषां स न विधत्ते । रसज्वराद्युपशमनिमित्तं त्वन्नपानादिरोधः पुत्रादेरपि विधीयत एव । मत्सराच्च विदधानस्य पञ्चमोऽतिचारः । अत **एतान्** पञ्चाप्यतीचारान् व्रतमालिन्यहेतून् **प्राणिवधाद् विरतः** श्रमणोपासकः **परिवर्जयेदिति** ।।४१५।।

द्वितीयमणुव्रतमाह -

अलियं पंचविगप्पं कन्ना[१]-गो[२]-भूमि[३]-नासहरणेसु[४] ।
कूडगसक्खिजुंमि[५] य इह अइयारे इमे चयसु ।।४१६।।

दासी वा चोरो वा पुत्तो वाऽणपढंतगाइ जइ बज्झंति तो सविक्कमाणि बंधिअव्वाणि रक्खिअव्वाणि य, जहा अग्गिभयाइसु न विणस्संति । ताणि किर दुपयचउप्पयाणि सावगेण गिण्हिअव्वाण जाणि अबद्धाणि चेव अच्छंति । वहो वि तह चेव । वधो नाम साडणा अणट्ठाए निरवेक्खो निद्दयं तालेइ । सावेक्खो पुण पुव्वामेव भीअपरिसेण होअव्वं । जइ न करेज्जा तो मम्मं मोत्तूण ताहे लयाए दोरेण वा एक्कं वा दोण्णि वा वारे । छविच्छेओ अणट्ठाए तहेव । निरवेक्खो हत्थपायकण्णनक्काइ निद्दओ छिंदइ । सावेक्खो गंडं वा अरसं वा छिंदेज्जा वा डहेज्ज वा । अइभारो न आरोएअव्वो । पुव्विं चेव जा वाहणाए जीविआ सा मोत्तव्वा । न होज्जा अण्णा जीविआ ताहे दुपयं जं सयं उक्खिवइ ओआरेइ वा भारं एवं वहाविज्जइ । बइल्लाणं जहासाभाविआओ वि भाराओ ऊणओ कीरइ, हलसगडेसु वि वेलाए चेव मुअइ । आसहत्थीसु वि एसेव विही । भत्तपाणवोच्छेओ न कस्स वि कायव्वो, तिक्खछुहो मा मरेज्जा । तहेव अणट्ठाए दोसा परिहरेज्जा । सावेक्खो पुण रोगनिमित्तं वा वायाए वा भणेज्जा, अज्ज ते न देमि त्ति । संतिनिमित्तं वा उववासं कारवेज्जा । सव्वत्थ वि जयणा, जहा थूलगपाणाइवायस्स अइयारो न हवइ तहा पयइअव्वं । इति गाथार्थः ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८० वृत्तौ ।।

बन्ध-वधछविच्छेदाऽतिभारारोपणाऽन्नपाननिरोधाः तत्त्वा. सू. ७/२० ।। धर्म वि. अ. ३ सू. २३ ।। वह१ बंध२ छविच्छेए३ अइभारे४ भत्तपाणवुच्छेए५ । पढमवयस्सऽइआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।। - श्रा. प्र. वृ. गा. १० ।।

गाथा-४१६ I. **तुला** - उक्तं सातिचारं प्रथमाणुव्रतम्, सांप्रतं द्वितीयमुच्यते -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलीकं स्थूलासत्यरूपं **पञ्चविकल्पम्** । पञ्चभेदं तानेवाह - **कन्याविषयम**लीकं कन्यालीकम् । भिन्नकन्यामभिन्नां विनिमयं वा वदतो भवति । इदं च सर्वस्य द्विपदविषयालीकस्योपलक्षणम् । **गवालीकम**ल्पक्षीरां बहुक्षीरां विपर्ययं वा जल्पतः स्यात् । इदमपि सर्वचतुष्पदविषयालीकस्योपलक्षणम् । **भूम्यलीकं** परसत्कामात्मादिसत्कां विपर्ययं वा वदतः । इदं चाशेषपादपाद्यपदद्रव्यगोचरालीकोपलक्षणम् । अथ द्विपदादिग्रहणमेव साक्षात् कस्मान्न कृतमिति चेत्, उच्यते । कन्याद्यलीकानां लोकेऽतिगर्हिततमत्वेन प्रसिद्धत्वादिति । तथा न्यस्यते रक्षणार्थमन्यस्मै समर्प्यत इति **न्यासः** सुवर्णादिस्तस्य**अपहरणम**पह्नवस्तद्वचनमपि स्थूलालीकम् । **कूटसाक्ष्यं च** विवादे प्रमाणीकृतस्य लञ्चामत्सरादिना कूटं वदतः, यथाऽहमत्र साक्षीति । एतानि च पञ्चापि क्लिष्टाशयसमुद्भूतत्वेन स्थूलासत्यान्यतस्त्याज्यानि । **अत्र** च द्वितीयाणुव्रते **अमूनतीचारांस्त्यज** ।।४१६।।

[1]तानेवाह -

सहसा अब्भक्खाणं, रहसा य सदारमंतभेयं च ।
मोसोवएसणं कूडलेहकरणं च निच्चं पि ।।४१७।।

थूलमूसावायस्स य, विरई सो पंचहा समासेण कण्णागोभूमालियनासहरणकूडसक्खिज्जे ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८१ ।।

(स्थूलमृषावादस्य च, विरतिः स पञ्चधा समासेन । कन्यागौभूम्यलीकन्यासहरणकूटसाक्षित्वे ।।)

"थूल" गाहा व्याख्या - स्थूलमृषावादस्य च, विरतिर्द्वितीयमणुव्रतं भवतीति गम्यते । तत्र द्विविधो मृषावादः - स्थूलः सूक्ष्मश्च । तत्र परिस्थूरवस्तुविषयोऽतिदुष्टविवक्षासमुद्भवः स्थूलः, विपरीतस्त्वितरः, न च तेनेह प्रयोजनम्, श्रावकधर्माधिकारात् स्थूलस्य प्रक्रान्तत्वात् । तथा चाह - 'स पञ्चधा मृषावादः पञ्चधा - पञ्चप्रकारः, 'समासेन' संक्षेपेण, शेषभेदानां कुमारानृतादीनां सजातीयत्वेनात्रैवान्तर्भाव इति हृदयम् । पञ्चविधत्वमाह 'कन्यागौभूम्यलीकन्यासहरणकूटसाक्षित्वे' इति, अलीकशब्दः प्रत्येकं कन्यादिपदेषु योजनीयः, तद्यथा - कन्यालीकमित्यादि, "इत् पानीयादिषु" इत्यलीकशब्द-ईत इदादेशः । तत्र कन्याविषयमलीकमभिन्नकन्यामितरां वक्ति विपर्ययं वा १ । एवं गवालीकमपि, अल्पक्षीरां बहुक्षीरां विपर्ययं वा वक्ति २ । भूम्यलीकं तु परसत्कामेवात्मसत्कां वक्ति । व्यवहारे वा नियुक्तोऽनाभवद्व्यवहारेणैव कस्यचिदेकस्य रागाद्यभिभूतो वक्ति, अस्यैवेदमाभवतीति ३ । न्यस्यत इति न्यासः - रूपकाद्यर्पणं तस्य हरणं, येन वचनेन न्यासमपलपति स मृषावादः, तद्ग्रहणं त्वदत्तादानमेवेति भावः ४ । कूटसाक्षित्वं तूत्कोचामत्सराद्यभिभूतः प्रमाणीकृतः सन् कूटं वक्ति, यथाऽस्म्यहमत्र साक्षी ५ । २ ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८१ वृत्तौ ।।

गाथा-४१७ 1. **तुला** - अतिचारानाह -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहसा अनालोच्याभ्याख्यानमसद्दोषारोपणम् । यथा चौरोऽयं पारदारिको वेत्यादि प्रथमोऽतिचारः । तथा रह एकान्तस्तत्र भवं रहस्यम् । रहस्येनाभ्याख्यानमभिशंसनमसदध्यारोपणं **रहस्याभ्याख्यानम्** । यथा यदि जरति स्त्री ततस्तां प्रति ब्रूते - तवायं पतिस्तरुण्यामन्यस्यामतिप्रसक्तोऽस्ति । अथ युवती योषित् ततस्तामाह - यथाऽयं ते रमणः प्रौढचेष्टितायां मध्यमवयसि योषिति स्थिरानुराग इत्यादि हास्यक्रीडादिना वदतः स्यात् । अभिनिवेशाच्च जल्पतो व्रतभङ्ग एव । यदाह -

सहसब्भक्खाणाई जाणंतो जइ करिज्ज तो भंगो ।
जइ पुणऽणाभोगाईहिंतो तो होइ अइयारु त्ति ।।१।। [ ]

द्वितीयोऽतिचारः । तथा **स्वदाराः** प्रणयिनी, उपलक्षणं चैतत् विश्वस्तमित्रादीनां, तेषां **मन्त्रो**ऽषडक्षीणं मन्त्रणं **तस्य भेदः** प्रकटनम् । नन्वनुवादरूपत्वात् कथमस्यासत्यतेति चेत्, उच्यते, यद्यप्येवं, तथाप्युपांशुमन्त्रितार्थप्रकाशनसमुद्भूतत्रपादिना कलत्रमित्रादेर्मरणादिसम्भावनया तत्त्वतो मृषारूपत्वात्, कथञ्चिद् भङ्गरूपत्वेन तृतीयोऽतिचारः । तथा **मृषोपदेशोऽ**सदुपदेशः । प्रतिपन्नसत्यव्रतस्य हि परपीडोपपादकं वचनमसत्यमेव । प्रमादादिना च तथा वदतोऽ**तीचारः** । यथा वाह्यन्तां खरोष्ट्रादयो, हन्यन्तां दस्यव इति । यदि वा सन्देहापन्नेन केनचित् पृष्टस्य हास्यादिना वितथमुपदिशतो मृषोपदेशः । तथा विवादादौ परातिसन्धानाद्युपदिशतोऽपि तथा स्यादिति चतुर्थोऽतिचारः । तथा कूटमसद्भूतं तस्य लेखनं **कूटलेखः** । अन्यसरूपाक्षरमुद्रादिविधानम् ।

इह सहसब्भक्खाणं, रहसा य सदारमंतभेयं च । मोसोवएसयं कूडलेहकरणं च वज्जेज्जा ।।

- श्रा. ध. वि. गा. ८२ ।।

(इह सहसाभ्याख्यानं, रहस्येन च स्वदारमन्त्रभेदे च । मृषोपदेश-कूटलेखकरणं च वर्जयेत् ।।)

"इह" गाहा व्याख्या - 'इह' मृषावादविरतो सहसा अनालोच्याऽभ्याख्यानं 'सहसाभ्याख्यानं' असदध्यारोपणम् । तद्यथा - "चौरस्त्वं पारदारिको वा" इत्यादि १ । रहः - एकान्तः तत्र भवं रहस्यं, तेन तस्मिन् वाऽभ्याख्यानं रहस्याभ्याख्यानम्, एतदुक्तं भवति - एकान्ते मन्त्रयमाणानभिधत्ते, एते हीदं चेदं च राजविरुद्धादिकं मन्त्रयन्त इति २ । 'स्वदारमन्त्रभेदं च' स्वकलत्रविश्रब्धभाषिताऽन्यकथनं चेत्यर्थः ३ । 'मृषोपदेशं' असत्योपदेशम्, इदमेवं चैवं च ब्रूहीत्यादिलक्षणम् ४ । 'कूटलेखकरणं च' अन्यनाममुद्राक्षरबिम्बस्वरूपलेखकरणं च वर्जयेत् ५ । यत एतानि समाचरन्नतिचरति द्वितीयाणुव्रतम् ।। - श्रा. ध. वि. गा. ८२ वृत्तौ ।।

मिथ्योपदेश - रहस्याभ्याख्यान - कूटलेखक्रिया - न्यासापहार - साकारमन्त्रभेदाः ।। - तत्त्वा. सू. ७/२१ ।।

मिथ्योपदेश-रहस्याभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-स्वदारमन्त्रभेदाः धर्म बि. अ. ३/२४ ।। सहस्सा रहस्स दारे, मोसुवएसे अ कूडलेहे अ । बीयं वयस्सइआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।। - श्रा. प्र. वृ. गा. १२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ननु कायेनासत्यां वाचं न वदामीति प्रतिपन्नव्रतस्य कूटलेखकरणे भङ्ग एव, कथमतीचारः । सत्यं । सहसाकाराऽनाभोगादिना तथा कुर्वतोऽतिचारः । यदि वा असत्यभणनमेव मया प्रत्याख्यातमिदं पुनर्लिखनमिति व्रतसापेक्षतयाऽतिचार इति पञ्चमः ।।४१७।।

[1]तृतीयाणुव्रतं ब्रूते -

दुविहमदत्तादाणं थूलं सुहुमं च तत्थ सुहुममिणं ।
तरुछायाठाणाई थूलं निवनिग्गहाइकरं ।।४१८।।

अदत्तस्य तत्स्वामिनाऽननुज्ञातस्य वस्तुनः समादान**मदत्तादानम्** । तच्च **स्थूलसूक्ष्मभेदाद् द्विविधम् । तत्र वृक्षाद्यधिपतिमननुज्ञाप्य तच्छायाद्यवस्थानमपि सूक्ष्ममदत्तम्** । एतच्च प्रायः सर्वविरतविषयम् । **स्थूलं** तु सन्धिदानाद्यन्यद् वा यतश्चौरङ्कार**नृपनिग्रहादयः** प्रवर्तन्त इति ।।४१८।।

[1]अस्यातिचारानाह –

चोरोवणीयगहणं[1] तक्करजोगं[2] विरुद्धरज्जगमं[3] ।
कूडतुलकूडमाणं[4] तप्पडिरूवं [5]च अइयारा ।।४१९।।

गाथा-४१८ 1. **तुला** - उक्तं सातिचारं द्वितीयमणुव्रतम्, अधुना तृतीयमाह -

थूलादत्तादाणे, विरई तं दुविह मो उ निद्दिट्ठं । सच्चित्ताचित्तेसुं, लवणहिरण्णाइवत्थुगयं ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८३ ।।

(स्थूलादत्तादाने, विरतिस्तत्तु द्विविधं निर्दिष्टम् । सचित्ताचित्तेषु, लवणहिरण्यादिवस्तुगतम् ।।)

"थूलादत्तादाणे" गाहा व्याख्या-इहादत्तादानं द्विविधं, स्थूलं सूक्ष्मं च । तत्र परिस्थूलवस्तुविषयं चौर्याऽऽरोपण-हेतुत्वेन प्रतीतं स्थूलम्, तद्विपरीतं तु सूक्ष्मम् । तत्र 'स्थूलादत्तादाने' तद्विषया 'विरतिः' निवृत्तिस्तृतीयमणुव्रतमिति प्रक्रमः । तत्तु 'द्विविधं' द्विप्रकारम्, 'मो' इति निपातः पादपूरणे, 'तुः' पुनरर्थे भिन्नक्रमश्च, तत्त्विति योजित एव । 'निर्दिष्टं' कथितमागम इति गम्यते । तदेव द्वैविध्यमाह-'सचित्ताचित्तेषु' सच्चित्तविषयमचित्तविषयं चेत्यर्थः । तदेवाह-लवणहिरण्यादिवस्तुगतम् इति, जीवाऽजीवरूपत्वात् तस्य, आदिशब्दादश्ववस्त्रादिपरिग्रहः । मिश्रादत्तादानं त्वनयो-रेवान्तर्भूतत्वान्न पृथग्विवक्षितम्, संक्षेपस्यैव प्रस्तुतत्वात् ३ । इति गाथार्थः ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८३ वृत्तौ ।।

गाथा-४१९ 1. **तुला** - इहातिचारानाह -

वज्जइ इह तेनाहड, तक्करजोगं विरुद्धरज्जं च । कूडतुलकूडमाणं, तप्पडिरूवं च ववहारं ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८४ ।।

(वर्जयतीह स्तेनाहृतं, तस्करयोगं विरुद्धराज्यं च । कूटतुलाकूटमानं तत्प्रतिरूपं, च व्यवहारम् ।।)

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौरास्तस्करास्तैरुपनीतस्य वस्त्रस्वर्णचतुष्पदादेर्मूल्येन मुधिकया वा **ग्रहणमा**दानम् । नन्वेवं काणक्रयेण प्रच्छन्नं गृह्णंश्चौर एवायं, तथा च व्रतभङ्गः । सत्यम् । वणिज्यमेवाहमेवं विदधामि, न चौर्यमिति व्रतसापेक्षतया भङ्गाभङ्गरूपः प्रथमोऽतिचारः । तथा तस्करास्तेनास्तेषां चौर्योपकरणैः कुशिकाकर्त्तरिकाघर्घरिकादिभिर्योजनं योगस्तम् । यदि वा किमधुना यूयं निर्व्यापाराः, यदि वा शम्बलादिकं नास्ति तदहं पूरयामि, भवदानीतं च वस्त्वहं विक्रेष्य इत्यादिवचनैस्तस्कराणां युञ्जनं प्रेरणं **तस्करयोगः** । अत्रापि साक्षाच्चौर्यं परिहरतः स्वकल्पनयाऽतिचारतेति द्वितीयः । तथा विरुद्धः स्वस्वामिना सह विहितविरोधो यः प्रतिपक्षक्षितिपादिस्तस्य राज्यं राजधानीशिबिरादि । तत्राधिकलाभादिलोभेन गमनं **विरुद्धराज्यगमः** । अत्र च यद्यपि **"सामीजीवादत्त"**मिति भणितेः स्वाम्यदत्तानुज्ञस्य वैरिशिबिरादौ व्रजतो दण्डार्हस्य चौर्यमेव, तथापि वणिज्यमेव मया विहितं न पुनः कस्याप्यदत्तमात्तमिति व्रतसापेक्षतया, लोके चौरोऽयमिति व्यपदेशाभावाच्चातिचारतेति तृतीयः । **कूटे** न्यूनाधिके **तुला** सूत्रादिमानयन्त्रम् । **मानं कुडवादि** । ताभ्यां व्यवहरति । न्यूनाभ्यां ददाति, अधिकाभ्यां च गृह्णाति एवं कुर्वतश्चतुर्थोऽतिचारः । तथा **तत्प्रतिरूपं** । तेषां व्रीहिघृत-हिङ्गुतैलजात्यस्वर्णादीनां यथाक्रमं प्रतिरूपाणि पलञ्जि-वसा-खदिर-वेष्ट-मूत्र[फल]युक्ति-सुवर्णादीनि । अतः सदृशं सदृशेनैकीकृत्य व्रीह्यादिमूल्येन विक्रीणीते । यदि वा चौरोपनीतगृहीत-गवादीनां परिणतकलिङ्गफलस्वेदादिना शृङ्गाद्यन्यथात्वमाधाय सुखेन धारणविक्रयादि विदधाति । एवं कुर्वतोऽतिचारः पञ्चमः । मानान्यत्वं प्रतिरूपक्रिया च परधनग्रहणपरव्यसनादिनाऽस्तेय-

---

"वज्जइ" गाहा व्याख्या - 'वर्जयति' परिहरते 'इह' अदत्तादानविरतौ 'स्तेनाहृतम्' तत्र स्तेनाः - चौरास्तैराहृतम् - आनीतं किञ्चित् कुङ्कुमादि देशान्तरात् तत् समर्घमिति लोभान्न गृह्णीयात् १ । तथा 'तस्करयोगं' तस्कराः - चौरास्तेषां योगः - हरणक्रियायां प्रेरणम् - अभ्यनुज्ञा "हरत यूयम्" इति तस्करप्रयोगस्तं च वर्जयेत् २ । 'विरुद्धराज्यं' इति च सूचनात् सूत्रमिति विरुद्धराज्यातिक्रमं च वर्जयेत्, विरुद्धनृपयो राज्यं तत्रातिक्रमः, न हि ताभ्यां तत्र तदागमनमनुज्ञातमिति ३ । तथा 'कूटतुलाकूटमानं' तुला-प्रतीता, मानं कुडवादि, कूटत्वंन्यूनाधिकत्वं, न्यूनया ददाति अधिकया गृह्णाति ४ । तथा 'तत्प्रतिरूपं च व्यवहारम्' तेन-अधिकृतेन प्रतिरूपंसदृशं तत्प्रतिरूपं तेन व्यवहारम्, यद् यत्र घटते व्रीह्यादिघृतादिषु पलञ्ज्यादिवसादि तस्य तत्र प्रक्षेपेण विक्रयस्तं वर्जयेत् ५ । यत एतानि समाचरन्नतिचरति तृतीयाणुव्रतम् । इति गाथार्थः ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८४ वृत्तौ ।।

स्तेनप्रयोग - तदाहृतादान - विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपकव्यवहाराः ।।

- तत्त्वा. सू. ७/२२ ।। ध. बिं. अ. ३/२५ ।।

तेनाहडप्पओगे तप्पडिरूवे य विरुद्धगमणे अ । कूडतुलकूडमाणे पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।। - श्रा. प्र. वृ. गा. १४ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रतभङ्गरूपैव । केवलं सन्धिदानादिकमेव चौर्यत्वेन रूढं, इदं तु वणिज्यकलाकौशलमेवेति व्रतसापेक्षस्यातिचारता यदि वा चौरोपनीतग्रहणादयः पञ्चापि स्फुटचौर्यरूपा एव । केवलं सहसाकाराऽतिक्रमव्यतिक्रमादिना विधीयमानाऽतिचारतया व्यपदिश्यन्ते ।।४१९।।

[1]चतुर्थाणुव्रतमभिधत्ते -

मेहुन्नं पि हु दुविहं, थूलं सुहुमं च सुहुममियमित्थ ।
इंदियविगारमित्तं थूलं सव्वंगसंभोगो ।।४२०।।

पुंस्त्रीरूपं मिथुनं । मिथुनस्य भावः कर्म्म वा **मैथुनम्** । तदपि **द्विविधं स्थूलं सूक्ष्मं च** । **तत्र** भेदद्वये **इदं सूक्ष्मं** । यदुत - **इन्द्रियाणां** चक्षुरादीनां **मनोविकार**जनितं किञ्चिद् विकृत**मात्रमा**विर्भवति, न पुनर्वाक्कायिकी कुप्रवृत्तिः इदं च प्रायः सर्वथाऽब्रह्मवर्जकविषयं । **स्थूलं** तु दम्पत्योः परस्परं **सर्वाङ्गसम्भोगः** ।।४२०।।

अत्र देशविरतविभागमाह -

दुविहं तिविहेण दिव्वं एगविहं तिविहं तिरियमेहुन्नं ।
माणुस्से परदारं वज्जिज्ज रमिज्ज व सदारे ।।४२१।।

द्विविधं हि मैथुनम् । दिव्यमौदारिकं च । औदारिकमपि द्विविधम् । तैरश्चं मानुषं च । तत्र **दिव्यं** चतुर्विधदेवनिकायोद्भवम् । तस्माद् **द्विविधं त्रिविधेन** विरतिं विधत्ते । यथा मनसा न

गाथा-४२० 1. **तुला** - उक्तं सातिचारं तृतीयाणुव्रतम् । साम्प्रतं चतुर्थमाह -

परदारस्स य विरई, ओरालविउव्वभेयओ दुविहं । एयमिह मुणेयव्वं, सदारसंतोस मो इत्थ ।।
- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८५।।

(परदाराणां च विरतिः, औदारिकवैक्रियभेदतो द्विविधम् । एतदिह ज्ञातव्यं स्वदारसंतोषोऽत्र ।।)

"परदारा" गाहा व्याख्या - परे - आत्मव्यतिरिक्तास्तेषां दाराः - कलत्राणि परदारास्तेभ्यस्तेषां वेति, प्राग्वत् षष्ठी । एकवचनान्तता तु प्राकृतत्वात् । परकलत्रस्यैव विरतिः, न वेश्याया अपीत्यर्थः । चतुर्थमणुव्रतमिति प्रक्रमः । चशब्दः समुच्चये । स्वदारसंतोषश्चेत्यत्र द्रष्टव्यः । 'औदारिकवैक्रियभेदतो द्विविधमेतद् ज्ञातव्यं' इति, एतदिति प्राकृतत्वेन नपुंसकनिर्देशः, 'एते' परदारा इति द्रष्टव्यम्, औदारिकवैक्रियभेदत 'द्विविधाः' द्विप्रकाराः तत्रौदारिका नार्यः तिरश्च्यश्च । वैक्रिया विद्याधर्यो देव्यश्च । स्वस्य दाराः स्वदाराः - स्वकलत्रं तैः संतोषः स्वदारसंतोषः, मैथुनाऽसेवनं प्रति वेश्यादेरपि वर्जनमिति हृदयम् । स्वदारसंतोषश्चतुर्थाऽणुव्रतमिति योजितमेव । अत्र चतुर्थाऽणुव्रते वर्जयतीत्युत्तरेण योगः । इति गाथार्थः ।।८५।।
- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८५ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करोति, न कारयति । वचसा न करोति, न कारयति । कायेन न करोति, न कारयति । अनुमते-स्तु सर्वत्र सम्भवान्न निषेधः । **तैरश्चं** तु **मैथुनमेकविधत्रिविधेन** वर्जयति । यथा - मनसा वचसा कायेन स्वयं न करोति । योनिपोषणादिप्रवृत्तस्य कारणे न नियमः । अनुमतिस्त्वप्रतिहतैव । **मानुषे** च मैथुने द्विविधा विरतिः । **स्वदारसन्तोषरूपा परदारनिवृत्तिरूपा** च । तत्र स्वदार-सन्तुष्टस्य स्वकलत्रमन्तरेण सर्वत्र नियमः । परदारवर्जकस्य तु स्वस्त्रियं पण्यस्त्रियं च विनाऽन्यत्र नियमः ।।४२१।।

[1]अस्यातिचारानाह -

वज्जइ इत्तिरि[2]-अपरिग्गहियागमणं[2] अणंगकीडं[3] च ।
परवीवाहक्करणं[4] कामे तिव्वाभिलासमिह[5] ।।४२२।।

इहास्मिन् ब्रह्मव्रते अमूनतिचारान् **वर्जयति** । तत्र स्वदारसन्तुष्टस्य **इत्वरीं** प्रतिपुरुषमयन-शीलां वेश्यां भाटीप्रदानादित्वरकालं स्वकलत्रीकृत्य सेवमानस्यातिचारः नन्वेवं भङ्ग एव कथं न स्यात् ? उच्यते - किलेयं द्रव्यादिदानेन मया स्वीकृता, अतो मे स्वकलत्रमेवेदमिति कल्पनया व्रतसापेक्षस्यातिचारतेति प्रथमः । परदारवर्जिनस्**त्वन्यपरिगृहीतां** वेश्यां तथा स्वैरिणीं प्रोषितपतिकामनाथकुलाङ्गनां च । किल यद्यपि कतिचिद्दिनानि गृहीतान्यभाटी तथापि वेश्या वेश्यैव । मम तु परकलत्रस्यैव नियम इति बुद्ध्या वेश्यां, तथा स्वैरिणी प्रोषितभर्तृका विनाथकुलाङ्गनाश्च न कस्यापि परिग्रहे । मम तु परपरिगृहीतास्वेव नियम इति कल्पनया

गाथा-४२२ 1. **तुला** - उक्तं सातिचारं तृतीयाणुव्रतम् । साम्प्रतं चतुर्थमाह -

परदारस्स य विरई, ओरालविउव्वभेयओ दुविहं । एयमिह मुणेयव्वं, सदारसंतोस मो इत्थ ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८५।।

(परदाराणां च विरतिः, औदारिकवैक्रियभेदतो द्विविधम् । एतदिह ज्ञातव्यं स्वदारसंतोषोऽत्र ।।)

"परदारा" गाहा व्याख्या - परे - आत्मव्यतिरिक्तास्तेषां दाराः - कलत्राणि परदारास्तेभ्यस्तेषां वेति, प्राग्वत् षष्ठी । एकवचनान्तता तु प्राकृतत्वात् । परकलत्रस्यैव विरतिः, न वेश्याया अपीत्यर्थः । चतुर्थमणुव्रतमिति प्रक्रमः । चशब्दः समुच्चये । स्वदारसंतोषश्चेत्यत्र द्रष्टव्यः । 'औदारिकवैक्रियभेदतो द्विविधमेतद् ज्ञातव्यं' इति, एतदिति प्राकृतत्वेन नपुंसकनिर्देशः, 'एते' परदारा इति द्रष्टव्यम्, औदारिकवैक्रियभेदत 'द्विविधाः' द्विप्रकाराः तत्रौदारिका नार्यः तिरश्च्यश्च । वैक्रिया विद्याधर्यो देव्यश्च । स्वस्य दाराः स्वदाराः - स्वकलत्रं तैः संतोषः स्वदारसंतोषः, मैथुनाऽसेवनं प्रति वेश्यादेरपि वर्जनमिति हृदयम् । स्वदारसंतोषश्चतुर्थाऽणुव्रतमिति योजितमेव । अत्र चतुर्थाऽणुव्रते वर्जयतीत्युत्तरेण योगः । इति गाथार्थः ।।८५।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८५ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवमानस्य व्रतसापेक्षत्वेन तत्त्वतस्तु तासां परस्त्रीत्वेन भङ्गाभङ्गरूपो द्वितीयोऽतिचारः । तथा अङ्गं देहावयवो मैथुनापेक्षया योनिर्मेहनं च । तद्व्यतिरिक्तान्यनङ्गानि कुचकक्षोरुवदनादीनि, तेषु क्रीडा **अनङ्गक्रीडा** । तृतीयोऽतिचारः । **तथा परेषां** स्वस्वापत्यव्यतिरिक्तानां विवाहनं **विवाहकरणम्** । कन्याफललिप्सया स्नेहसम्बन्धादिना वा परिणयनविधानम् । इदं च स्वदारसन्तोषवता स्वकलत्रात् परदारवर्जकेन च कलत्रवेश्याभ्यामन्यत्र मनोवाक्कायैर्मैथुनं न कार्यम्, न च कारणीयमिति यदा प्रतिपन्नं व्रतं भवति, तदा अन्यविवाहकरणं मैथुनकारणमर्थतः प्रतिषिद्धमेव । तद्व्रती तु मन्यते विवाह एवायं मया विधीयते, न मैथुनं कार्यत इति व्रतसापेक्षत्वादतिचारश्चतुर्थः। **तथा कामे** स्मरव्यापारे परित्यक्तान्यसकलकृत्यजातस्य नक्तन्दिनं **तीव्रस्तीव्रमोहोदयजनितोऽभिलाषस्त**द्वशाच्च सञ्जातबलक्षयस्य किलानेनौषधप्रयोगेण गजप्रसेकी तुरगावमर्दी च पुरुषो भवतीति बुद्ध्या वाजीकरणान्यासेवमानस्य पञ्चमोऽतिचारः । **इह** च श्रावकोऽत्यन्तपापभीरुर्ब्रह्मचर्यं चिकीर्षुरपि वेदोदयाऽसहिष्णुतया तद् विधातुमशक्तो यापनार्थं स्वदारसन्तोषादि प्रतिपद्यते । मैथुनमात्रेण च सम्भवन्त्यां यापनायामनङ्गक्रीडाकामतीव्राभिलाषावर्थतः प्रतिषिद्धौ । तत्सेवनेन हि छिदाराजयक्ष्मादयो रोगा एव भवन्तीत्यर्थतः प्रतिषिद्धाचरणाद् भङ्गो नियमाबाधनाच्चाभङ्ग इत्यतिचारावेतौ ।।४२२।।

[1]पञ्चमाणुव्रतमाह -

दुविहो परिग्गहो वि हु, थूलो सुहुमो य तत्थ परदव्वे ।
मुच्छामित्तं सुहुमो थूलो उ धणाइनवभेओ ।।४२३।।

गाथा-४२३ 1. **तुला** - उक्तं सातिचारं चतुर्थमणुव्रतम् । सांप्रतं पञ्चममुच्यते -

इच्छापरिमाणं खलु, असयारंभविणिवित्तिसंजणयं । खित्ताइवत्थुविसयं, चित्तादविरोहओ चित्तं ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८७।।

(इच्छापरिमाणं खलु, असदारम्भविनिवृत्तिसंजनकम् । क्षेत्रादिवस्तुविषयं, चित्ताद्यविरोधाच्चित्रं ।।)

"इच्छा" गाहा व्याख्या - इच्छाया इच्छया वा परिमाणं इच्छापरिमाणं पञ्चममणुव्रतमिति प्रक्रमगम्यम् । तच्चेच्छापरिमाणं किंफलम् ? इत्याह - 'असदा-रम्भविनिवृत्तिसंजनकं' असुन्दरारम्भप्रत्याख्याननिबन्धनम् । तच्च 'क्षेत्रादिवस्तुविषयं' क्षेत्रादीनि वस्तूनि विषयोऽस्येति समासः । तदुक्तम् - "धणं धण्णं खेत्तं वत्थुं रुप्पं सुवण्णं कुविअं दुपयं चउप्पयं च" [ ] इत्यादि । अत्र चादिशब्दः प्रकारवचनः । क्षेत्रादयः क्षेत्रप्रकारा धनादय इत्यर्थः । 'चित्ताद्यविरोधात्' चित्तवित्तदेशवंशाद्याश्रयेण 'चित्रम्' अनेकाकारम् ५ । इति गाथार्थः ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गाथा-८७ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रहः परिग्रहप्रमाणव्रतमपि **स्थूलसूक्ष्मभेदाद् द्विविधम् । तत्र परद्रव्ये** यन्मनोमूर्च्छामात्रं तत् **सूक्ष्मं स्थूलं तु धनादिनवभेदम् ।** धन-धान्य-क्षेत्र-वास्तु-रूप्य-स्वर्ण-चतुष्पद-द्विपद-कुप्यादिभेदान्नवधा । तत्र धनं गणिम-धडिम-मेयपरीक्ष्यलक्षणम् । यदाह -

गणिमं जाईफलपुप्फलाइ धडिमं च कुंकुमगुडाई ।
मिज्जं चुप्पडलोणाइ रयणवत्थाइ परिछिज्जं ।।१।। तथा [संबोध प्रक. श्रा. व्रताधि. गा. ५३]

धान्यं व्रीह्यादिसप्तदशविधम् । क्षेत्रं सस्योत्पत्तिभूमिः । तत् सेतु-केतु-तदुभयभेदात् त्रिविधम् । तत्र अरघट्टजलनिष्पाद्यसस्यं सेतुक्षेत्रम् । आकाशोदकान्निष्पाद्यसस्यं केतुक्षेत्रम् । उभयजल-निष्पाद्यसस्यमुभयम् । वास्तु गृहग्रामनगरादि । रूप्यं रजतम् । स्वर्णं कनकम् । चतुष्पदं गोमहिष्यादि । द्विपदं दासकर्म्मकरादि । कुप्यं रूप्यसुवर्णव्यतिरिक्तं कांस्यलोहताम्रादिभाण्डम् । अयं नवविधोऽपि स्थूलः परिग्रहः । अस्य च मूर्च्छाविच्छेदेन इत्वरं यावत्कथिकं वा परिमाणकरणं पञ्चमाणुव्रतम् ।।४२३।। [1]अस्यातिचारानाह -

खित्ताई[१]-हिरन्नाई[२]-धणाइ[३]-दुपयाइ[४]-कुप्पमाणकमे[५] ।
जोयण[१]-पयाण[२]-बंधण[३]-कारण[४]-भावेहिं[५] नो कुणइ ।।४२४।।

गाथा-४२४ 1. **तुला** - अत्राऽतिचारानाह -

खेत्ताइहिरण्णाईधणाइदुपयाइकुप्पमाणकमे । जोयणपयाणबंधणकारणभावेहिं नो कुणइ ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८८।।

(क्षेत्रादिहिरण्यादिधनादिद्विपदादिकुप्यमानक्रमान् । योजनप्रदानबन्धनकारणभावैर्न करोति ।।)

"खेत्ताइ" गाहा व्याख्या - 'क्षेत्रादिहिरण्यादिधनादिद्विपदादिकुप्यमानक्रमान्' क्षेत्रादिगृहीतपरिमाणातिक्रमानित्यर्थः । 'योजनप्रदानबन्धनकारणभावैः' एभिर्योजनादिभिर्यथासंख्यं 'न करोति' न विधत्ते इति समुदायार्थः । तत्र क्षेत्रवास्तूनां योजनेन द्वित्रादीनां गृहीतपरिमाणभङ्गभयाद् वृत्त्याद्यपनयनादिनैकत्वाद्यापादनेनेत्यर्थः १ । एवं हिरण्यसुवर्णयोः प्रदानेन गृहीतपरिमाणावधिकालात्परत उद्ग्राहणीययोर्वृद्धिप्रयुक्ता २ । धनधान्ययोर्बन्धनेन - सत्यङ्कारादिना नियन्त्रणेन ३ । द्विपदचतुष्पदयोः कारणेन - गर्भाधानप्रयोजनेन ४ । कुप्यस्य च भावेन - अध्यवसायेन तदर्थित्वरूपेण ४ । एतत्तु सर्वमपि प्रदानादि परिमाणावधीकृतचतुर्मासकादिकालादर्वागेवं करोति, किल ममैतदवधीकृतकालात्परत एव परिग्रहविषयी-भविष्यतीत्यध्यवसायेन । अत्र चादिशब्दाद् आगमपाठप्रसिद्धवास्त्वादिग्राहकाः । तथा चागमः - "धणधण्णप्पमाणा-इक्कमे खेत्तवत्थुपमाणातिक्कमे हिरण्णसुवण्णप्पमाणाइक्कमे दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे कुविअपमाणाइक्कमे ।"[ ] पञ्चसंख्याविषयत्वं च सजातीयत्वेन शेषभेदानामत्रैवाऽन्तर्भावाच्छिष्यहितत्वेन च प्रायः सर्वत्र मध्यमगतेर्विवक्षितत्वात् पञ्चकसंख्ययैवातिचारपरिगणनम्, अतश्चतुष्षडादिसंख्ययाऽतिचाराणामऽगणनमुपपन्नम् । इति गाथार्थः ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गाथा-८८ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इह परिग्रहसङ्ख्यातिक्रमभीरोरेतदेतत् कुर्वाणस्य गृहिणः पञ्चातिचाराः सम्भवति । तद्यथा - अत्र **क्षेत्रादि-हिरण्यादि-धनादि-द्विपदादि-कुप्यादि** पञ्चपदानि **योजन-प्रदान-बन्धन-कारणभावलक्षणैः** पञ्चभिरुत्तरपदैर्योज्यानि । तत्र क्षेत्रवास्तुप्रभृतीनां सङ्ख्यातिक्रमभीरोः सन्निहितक्षेत्रगृहादिव गृहीत्वा एकीकुर्वतां प्रथमोऽतिचारः । हिरण्यादि च सङ्ख्याधिकं स्वकलत्रपुत्रीप्रभृतीनां चातुर्मासादिनियमावधिपरिसमाप्तौ तदन्यविक्रये वा पुनरादानबुद्ध्या प्रददतो द्वितीयोऽतिचारः । धनधान्यादि च प्रमाणाधिकमवबुध्य व्रतसापेक्षतया नियमावधिं तदन्यविक्रयं वा यावदन्यवेश्मादौ धारयतस्तृतीयोऽतिचारः । द्विपदचतुष्पदपरिग्रहे च कारणतः, तत्र कारणं पितृमात्रादि, कार्यमपत्यादि । अतो द्विपदचतुष्पदादीनि नियमिताधिकानि व्रतभङ्गभीरुर्न गृह्णाति । तज्ज्ञातानि वत्सरूपाणि संख्याधिकान्यपि किल नामूनि मया नियमग्रहणानन्तरं गृहीतानीति बुद्ध्या कारणं गणयतः कार्यं चागणयतः चतुर्थोऽतिचारः । तथा कुप्यं कांस्यताम्रादिभाजनानि । तानि च परिमाणकरणानन्तरं विभवादिसमुदये प्रचुराणि चिकीर्षतो व्रतभङ्गभीरुतया चाकुर्वतः पूर्वपरिमितानि गणनया अवर्द्धयतोऽपि तौल्यप्रमाणाभ्यां वर्द्धयतः पञ्चमोऽतिचारः ।।४२४।।

व्याख्यातानि साऽतिचाराणि पञ्चाणुव्रतानि । अथ अतो गुणव्रतानि व्याचिख्यासुः, प्रथमं गुणव्रतमाह -

उड्ढाहोतिरियदिसिं, चाउम्मासाइकालमाणेण ।
गमणपरिमाणकरणं गुणव्वयं होइ पढममिह ।।४२५।।

क्षेत्रवास्तु - हिरण्यसुवर्ण - धनधान्य - दासीदास - कुप्य-प्रमाणातिक्रमाः ।।

- तत्त्वा. सू. ७/२४ ।। ध. बि. ।। अ. ३/२७ ।।

धणधन्नखित्तवत्थू, रुप्पसुवन्ने अ कुविअपरिमाणे । दुपए चउप्पयंमि, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।।

- श्रा. प्र. वृ. गा. १८।।

गाथा-४२५ 1. **तुला -** उक्तान्यणुव्रतानि, सांप्रतं गुणव्रतान्याह - तत्रापि प्रथमं दिग्व्रतम्, तदाह - **उड्ढाहोतिरियदिसिं, चाउम्मासाइकालमाणेणं । गमणपरिमाणकरणं, गुणव्वयं होइ विण्णेयं ।।**

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ८९ ।।

(ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्दिशम् चातुर्मास्यादिकालमानेन । गमनपरिमाणकरणं गुणव्रतं, भवति विज्ञेयम् ।।)

"उड्ढाहो" गाहा व्याख्या - 'ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्दिशम्' इति ऊर्ध्वपर्वतारोहणादौ, अधः-कूपप्रवेशादौ, तिर्यग्-पूर्वाद्यासु दिक्षु, दिक् शब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते; ऊर्ध्वादिदिशमङ्गीकृत्य 'चातुर्मास्यादिकालमानेन' चतुरो मासान्, अष्टौ वा यावत् इत्यादि । 'गमनपरिमाणकरणम्' अभिप्रेतक्षेत्रात् परतो गमननिवृत्तिरित्यर्थः । 'गुणव्रतम्' अणुव्रतानामेव

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्लक्षणासु दिक्षु दशस्वपि **यज्जातुर्म्मासादिकालमानेन गमनपरिमाणकरणं तदिह प्रथमं गुणव्रतमभिधीयते** ।।४२५।।

[1]अस्यातिचारानाह -

वज्जइ इच्छाइक्कममुड्ढाहोतिरियदिसिपमाणगयं[१-२-३] ।
तह चेव खित्तवुड्ढिं[४] कहिंचि सइअंतरद्धं[५] च ।।४२६।।

अत्रास्मिन् व्रते **ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्**रूपाणां **दिशां** यदा**त्त**प्रमाणं तद् गत**मतिक्रमं** सहसाकाराति-

---

गुणकरमित्यर्थः, भवति विज्ञेयं प्रथममिति गम्यते । इति गाथार्थः ।। - श्रा. ध. वि. गा. ८९ वृत्तौ ।।

गाथा-४२६ 1. तुला - अत्रातिचारानाह -

वज्जइ उड्ढाइक्कममाणयणप्पेसणोभयविसुद्धं । तह चेव खेत्तवुड्ढिं, कहिंचि सइअंतरद्धं च ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९० ।।

(वर्जयति ऊर्ध्वादिक्रममानयनप्रेषणोभयविशुद्धम् । तथैव क्षेत्रवृद्धिं, कथञ्चित्स्मृत्यन्तर्धानं च ।।

"वज्जइ" गाहा व्याख्या - 'वर्जयति' परिहरते 'ऊर्ध्वादिक्रमम्' इति, ऊर्ध्वादिषु दिक्षु क्रमः - क्रमणं विवक्षितक्षेत्रात्परत इति गम्यते, अतिक्रमो वा क्रमोऽभिप्रेतः तम् ३ । अनेन त्रयोऽतिचाराः प्रतिपादिताः । तद्यथा - "उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे १, अहोदिसिपमाणाइक्कमे २, तिरिअदिसिपमाणाइक्कमे ३ ।" एवं चोर्ध्वादिदिगतिक्रमं द्विविधं त्रिविधेन ग्रहणे 'आनयनप्रेषणोभयविशुद्धं' वर्जयति, तत्र आनयनं - परेण विवक्षितक्षेत्रात्परतः स्थितस्य, प्रेषणं ततः परेण नयनम्, उभयम्-उक्तद्वयमप्येकदैव तैः विशुद्धं-निर्दोषम् ४ । 'तथैव' तेनैव प्रकारेण 'क्षेत्रवृद्धिं' पूर्वादिदिक्-परिमाणस्य दक्षिणादिदिशि प्रक्षेपलक्षणां वर्जयतीत्यनुवर्तते । 'कथञ्चित्' केन प्रकारेण 'स्मृत्यन्तर्धानं च स्मृतेः - गमनपरिमाणयोजनादिसङ्ख्योपयोगस्यान्तर्धानं - तिरोधानं भ्रंशनमित्यर्थः ५ । स्मृतिमूलं हि नियमानुष्ठानम्, तद्भ्रंशे हि नियमत एव तद्भ्रंश इत्यतिचारता । इति गाथार्थः ।

तत्र वृद्धसंप्रदायः - उड्ढं जं पमाणं गहिअं तस्स उवरिं पव्वयसिहरे रुक्खे वा मक्कडो पक्खी वा सावयस्स वत्थं आभरणं वा गिण्हिउं पमाणाइरेगं भूमिं वज्जेज्जा तत्थ से न कप्पइ गंतुं, जाहे तं पडिअं अण्णेण वा आणिअ ताहे कप्पइ, एअं पुण अद्धावयउज्जेंताइसु हवेज्जा । एवं अहे कूविआइसु विभासा । तिरिअं जं पमाणं गहिअं तं तिविहेण वि करणेण नाइक्कमिअव्वं । खेत्तवुड्ढी न कायव्वा, कहं ? सो पुव्वेणं भंडं गहाय गओ जाव तं परिमाणं, तओ परेणं भंडं अग्घइ त्ति काउं अवरेण जाणि जोअणाणि ताणि पुव्वदिसाए न छुभेज्जा । सिअ वोलीणो होज्जा निअत्तिअव्वं ति, जाणिए वा ण गंतव्वं । अण्णो न विसज्जिअव्वो । अणाणाए कोई गओ होज्जा जं विसुमरिअखेत्तगएण लद्धं अणाणा ति गएण वा तं न गेण्हेज्ज" [ ] त्ति ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९० वृत्तौ ।।

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तर्धानानि ।। तत्त्वा. सू. ७/२५ ।। - धर्म. बि. अ. ३/२८ ।।

गमणस्स य परिमाणे, दिसासु उड्ढं अहे अ तिरिअं च । वुड्ढि सइ अंतरद्धा, पढमंमि गुणव्वए निंदे ।।

- श्रा. प्र. वृ. गा. १९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रमादिभिर्विदधतोऽतिचारत्रयम् । यत्सूत्रम् "**उड्ढदिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरियदिसिपमाणाइक्कमि**" [ ] त्ति **तथा क्षेत्रवृद्धिः** पूर्वादिदिक्ष्वन्यतरस्यां प्रयोजनवशात् कृतप्रमाणाधिकं जिगमिषोर्द्वितीयस्या दिशः प्रमाणं न्यूनीकृत्य गन्तुमिष्टायां सञ्चारयतश्चतुर्थोऽतिचारः। तथा **कथमपि** व्याकुलत्व - प्रमादित्व - मत्यपाटवादिभि**स्स्मृते**र्योजनशतादिरूपदिक्-परिमाणविषयाया **अन्तर्धाने** । किं मया शतं प्रमाणीकृतमुत पञ्चाशदिति शङ्कायां पञ्चाशतमतिक्रामतोऽतिचारः पञ्चमः ।।४२६।।

[1]द्वितीयं गुणव्रतं ब्रूते -

भोगोवभोगपरिमाणकरणमित्तो गुणव्वयं बीयं ।
तं भोयणओ तह कम्मओ य दुविहं मुणेयव्वं ।।४२७।।

गाथा-४२७ 1. **तुला** - उक्तं सातिचारं प्रथमं गुणव्रतम्, अधुना द्वितीयमाह -

वज्जणमणंतगुंबरिअङ्गंगाणं च भोगओ माणं । कम्माओ खरकम्माइयाण अवरं इमं भणियं ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९१।।

(वर्जनमनन्तकोदुम्बराऽत्यङ्गानां च भोगतो मानम् । कर्मतः खरकर्मादीनामपरमिदं भणितम् ।)

"वज्जण' गाहा व्याख्या - 'वर्जनं' परिहारः 'अणंतगुंबरि' त्ति अनन्तकायस्स-आर्द्रकादेरागमप्रसिद्धस्य, यदुक्तं - "चक्कागं भंजमाणस्स, गंठी चुण्णघणो भवे । पुढविसरिसेण भेएण, अणंतजीवं वियाणाहि ।।१।। गूढसिरागं पत्तं, सच्छीरं जं च होइ निच्छीरं । जं पि अ पणट्ठसंधि, अणंतजीवं वियाणाहि ।।२।। सव्वा वि कंदजाई, सूरणकंदो अ वज्जकंदो अ । अल्लहरिद्दा य तहा, अल्लं तह अल्लकच्चूरो ।।३।। सत्तावरी बिराली, थुहरि गिलोई च होइ नायव्वो। गज्जर लोणा लोढा, विरुहं तह लालवंतं च ।।४।। [ ] इत्यादि । एवं प्रसिद्धस्यानन्तकस्य वर्जनमिति योगः । तथा उदुम्बरीति-सिद्धान्तप्रसिद्धानां वटपिप्पलोदुम्बरप्लक्षकदुम्बरफलानामत्यङ्गानाम्-अतिभोगाङ्गानां मद्यमधुमांसादीनाम्, चस्य तृत्तरत्र योगः, 'भोगतः' भोगमाश्रित्य 'मानं च' - परिमाणं च । इदं हि किल द्वितीयं गुणव्रतं उपभोगपरिभोगगुणव्रताभिधानं द्विधा भवति भोजनतः कर्मतश्च । तत्रोपभुज्यत इत्युपभोगः-अशनादिः, सकृदर्थत्वादुपशब्दस्य, अन्तरर्थत्वादन्तर्भोगो वा । परिभुज्यत इति परिभोगः वस्त्रादेः, आवृत्त्यर्थत्वात् परिशब्दस्य, बहिरर्थत्वाद्वा बहिर्भोगः । एष चात्मक्रियारूपोऽपि विषयविषयिणोरभेदाद्विषय एवोपचरितः, अत एव तन्निबन्धनकर्मण्यप्ययमत्रोपचर्यत इत्याह - 'कर्मतः' कर्माश्रित्य 'खरकर्मादीनां' कोट्टपालकर्मादीनां वर्जनमिति प्रकृतम् । 'अपरम्' अन्यद् द्वितीयं गुणव्रतमिदं 'भणितं' प्रतिपादितं पूर्वाचार्यैरिति गम्यते ।।

तथा च वृद्धसंप्रदायः - "भोअणओ सावगो उस्सग्गेण फासुअं एसणीअं आहारं आहारेज्जा । तस्सासइ अणेसणीयमवि सञ्चित्तवज्जं । तस्सासइ अणंतकायबहुबीयगाणि परिहरेज्जा । असणे अल्लयमूलगमंसादि, पाणे मंसरसमज्जाई, खाइमे पंचुंबराई, साइमे महुमाई । एवं परिभोगे वि वत्थादौ थुल्लधवलप्पमुल्लाणि परिमिआणि परिभुंजेज्जा । सासणगोरवत्थमुवरि विभासा, जाव देवदूसाइपरिभोगे वि परिमाणं करेज्जा । कम्मओ वि अकम्मा

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतः प्रथमगुणव्रतानन्तरम् **भोगोपभोगपरिमाणकरणाख्यं द्वितीयं गुणव्रतम् । तच्च भोजनतः कर्म्मतश्चेति द्विविधं विज्ञेयम् ।।४२७।।**

तत्र -

भोयणओ पडिवन्ने, इमंमि वज्जिज्जणंतकायाई ।
पंचुंबरि महुं मेरयं च रयणीइ भत्तं च ।।४२८।।

अस्मिन् भोगोपभोगव्रते **भोजनतः प्रतिपन्ने एतदेतद् वर्जयेत्** । किं तदित्याह - [1]शूरणकन्द-

---

न तरइ जीविउं ताहे अञ्चंतसावज्जाणि परिहरेज्जा । एत्थं पि एक्कंसिं चेव जं कीरइ कम्मं पहरववहरणाइ विवक्खाए तमुवभोगो, पुणो पुणो य जं तं पुण परिभोगो त्ति । अण्णे पुण कम्मपक्खे उवभोगपरिभोगजोयणं न करेंति । उवन्नासो अ एअस्सुवभोगपरिभोगकारणभावेणं ।" [ ] इति ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९१ वृत्तौ ।।

गाथा-४२८ 1. अधुना अनन्तकायिकान्याह –

सव्वा हु कंदजाई [1]सूरणकंदो य [2]वज्जकंदो य । [3]अल्लहलिद्दा य तहा [4]अद्दं तह [5]अल्लकच्चूरो ।।२३६।।
[6]सत्तावरी [7]विराली [8]कुमारि तह [9]थोहरी [10]गलोई य । [11]ल्हसणं [12]वंसगरिल्ला [13]गाजर तह [14]लोणओ [15]लोढो ।।२३७।।
[16]गिरिकन्नि [17]किसलपत्ता [18]खरिंसुया [19]थेग [20]अल्लमुत्था य । तह [21]लोणरुक्खछल्ली [22]खेल्लुडो [23]अमयवल्ली य ।।२३८।।
[24]मूला तह [25]भूमिरुहा [26]विरूह तह [27]ढक्कवत्थुलो पढमो । [28]सूयरवल्लो य तहा [29]पलंको [30]कोमलंबिलिया ।।२३९।।
[31]आलू तह [32]पिंडालू हवंति एए अणंतनामेहिं । अण्णभणंतं नेयं लक्खणजुत्तीइ समयाओ ।।२४०।।
घोसाडकरीरंकुरतिंदुयअइकोमलंबगाईणि । वरुणवडनिंबगाईण अंकुराइं अणंताइं ।।२४१।।
गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुगं च छिन्नरुहं । साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ।।२४२।।
चक्कं च भज्जमाणस्स जस्स गंठी हवेज्ज चुन्नघणो । तं पुढविसरिसभेयं अणंतजीवं वियाणाहि ।।२४३।।
गूढसिरागं पत्तं सच्छीरं जं च होइ निच्छीरं । जंपि य पयावसंधिं अणंतजीवं वियाणाहि ।।२४४।।

'सव्वा हु' इत्यादिगाथापञ्चकम्, हुशब्दोऽवधारणे ततः सर्वैव कन्दजातिरनन्तकायिका इति सम्बन्धः, कन्दो नाम भूमध्यगो वृक्षावयवः, ते चात्र कन्दा अशुष्का एव ग्राह्याः, शुष्काणां तु निर्जीवत्वादनन्तकायिकत्वं न सम्भवति, तानेव कांश्चित्कन्दान् व्याप्रियमाणत्वान्नामत आह - सूरणकन्दः अर्शोघ्नः कन्दविशेषः १ वज्रकन्दोऽपि कन्दविशेष एव २ आर्द्रा-अशुष्का हरिद्रा प्रतीतैव ३ आर्द्रकं-शृङ्गबेरं ४ आर्द्रकच्चूरकः - तिक्तद्रव्यविशेषः प्रतीत एव ५ ।।२३६।।

सतावरी विरालिके वल्लीभेदौ ६-७ कुमारी-मांसलप्रणालाकारपत्रा प्रतीतैव ८ थोहरी-स्नुहीतरुः ९ गडूची - वल्लीविशेषः प्रतीत एव १० ल्हसूनं-कन्दविशेषः ११ वंसकरिल्लानि-कोमलाभिनववंशावयवविशेषाः प्रसिद्धा एव १२ गर्जरकाणि सर्वजनविदितान्येव १३ लवणको - वनस्पतिविशेषः येन दग्धेन सर्जिका निष्पद्यते १४ लोढकः पद्मिनीकन्दः १५ ।।२३७।।

गिरिकर्णिका-वल्लीविशेषः १६ किसलयरूपाणि पत्राणि - प्रौढपत्रादर्वाक् बीजस्योच्छूनावस्थालक्षणानि सर्वाण्यप्य-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्रकन्दाद्यनन्तकायान् । तथा **उदुम्बर-वट-प्लक्ष-काकोदुम्बर-पिप्पलानां** कृमिकुलाकुलानि फलानि । तथा माक्षिक - कौन्तिक - भ्रामरभेदात् त्रिविधं **मधु** । काष्ठ-पिष्टोद्भवं **मैरेयम्** ।

नन्तकायिकानि न तु कानिचिदेव १७ खरिंसुकाः - कन्दभेदाः १८ थेगोऽपि कन्दविशेष एव १९ आर्द्रा मुस्ता प्रतीता २० लवणनाम्नो वृक्षस्य छल्लिः - त्वक्, त्वगेव न त्वन्येऽवयवाः २१ खल्लूडकाः कन्दभेदाः २२ अमृतवल्ली-वल्लीविशेषः २३ ।।२३८।।

मूलको - लोकप्रतीतः २४ भूमिरुहाणि - छत्राकाराणि वर्षाकालभावीनि भूमिस्फोटकानीतिलोकप्रसिद्धानि २५ विरूढानि-अङ्कुरितानि द्विदलधान्यानि २६ ढक्कवास्तुलः-शाकविशेषः स च प्रथमः - प्रथमोद्गत एवानन्तकायिको भवति न पुनश्छिन्नप्ररूढः २७ शूकसञ्झितो वल्लः शूकरवल्लः स एवानन्तकायिको न तु धान्यवल्लः २८ पल्यङ्कः शाकभेदः २९ कोमलाऽऽम्लिका-अबद्धास्थिका चिञ्चिणिका ।।२३९।।

आलुक ३१ पिण्डालुकौ ३२ कन्दभेदौ, एते पूर्वोक्ताः पदार्था द्वात्रिंशत्सङ्ख्या अनन्तनामभिः अनन्तकायिकसञ्झिता आर्यदेशप्रसिद्धा भवन्तीत्यर्थः । न चैतान्येवानन्तकायिकानि, किन्तु अन्यान्यपि, तथा चेह अन्यदपि पूर्वोक्तातिरिक्तमनन्तं - अनन्तकायिकं ज्ञेयं लक्षणयुक्त्यावक्ष्यमाणतद्गतलक्षणविचारणया 'समयात्' सिद्धान्तात् ।।२४०।।

तान्येव कानिचिदाह - घोसाडे'त्यादि घोषातकीकरीरयोरङ्कुराः तथा अतिकोमलानि - अबद्धास्थिकानि तिन्दुकाम्रफलादीनि तथा वरुणवटनिम्बादीनां तरूणामङ्कुरा अनन्तकायिकाः ।।२४१।।

अनन्तकायपरिज्ञानार्थं लक्षणयुक्तिमाह - 'गूढसिरे'त्यादि गूढानि-प्रकटवृत्त्या अज्ञायमानानि सिराः - सन्धयः पर्वाणि च यस्य पत्रकाण्डनालशाखादेस्तत्तथा, तथा यस्य भज्यमानस्य शाखादेस्त्रोट्यमानस्य पत्रादेः समः - अदन्तुरो भङ्गः-छेदो भवति तत्समभङ्गं, तथा छिद्यमानस्यैव न विद्यन्ते हीरकाः - तन्तुलक्षणा मध्ये यस्य तदहीरकं, तथा छित्त्वा गुहादावानीतं शुष्कताद्यवस्थाप्राप्तमपि जलादिसामग्रीं प्राप्य गडूच्यादिवत् पुनरपि यत्प्ररोहति तच्छिन्नरुहं, तदेतैर्लक्षणैः साधारणं शरीरं ज्ञेयं, अनन्तकायिकमित्यर्थः । एतल्लक्षणव्यतिरिक्तं च प्रत्येकशरीरमिति ।।२४२।।

पुनरनन्तकायिकस्य लक्षणान्तरमाह - 'चक्कं वे'त्यादि चक्रमिव-अदन्तुरतया कुम्भकारचक्राकारमेकान्तेन समं भङ्गस्थानं यस्य भज्यमानस्य मूलस्कन्धत्वक्शाखापत्रपुष्पादेः भवति तं मूलादिकमनन्तजीवं विजानीहीति सम्बन्धः तथा ग्रन्थिः-पर्व सामान्यतो भङ्गस्थानं वा स यस्य चूर्णघनो भवति, कोऽर्थः ? यस्य - भज्यमानस्य ग्रन्थेः शुभ्रो घनश्चूर्णो उड्डीयमानो दृश्यते स वनस्पतिरनन्तजीवानां साधारणमेकं शरीरमित्यर्थः, कथं पुनरसौ समं भज्यत इत्यत्र दृष्टान्तमाह - पृथ्वीसदृशभेदं, अत्र पृथ्वी - केदाराद्युपरिवर्त्तिनी शुष्ककोष्पटिका श्लक्ष्णखटिकानिर्मितवर्तिका वा गृह्यते, यथा तस्या भज्यमानायाः समः - अदन्तुरो भेदो भवति एवं वनस्पतिरपि चक्राकारं समं यो भज्यत इति भावः ।।२४३।।

पुनर्लक्षणान्तरमनन्तकायिकस्याह - 'गूढसिरे'त्यादि, यत्पत्रं सक्षीरं निःक्षीरं वा गूढसिराकं अलक्ष्यमाणसिराविशेषं भवति, यदपि च 'प्रतापसन्धि-प्रकृष्टस्तापः - उष्मा येषु एवंविधाः सन्धयो यस्य तत्प्रतापसन्धि, 'पणट्ठसंधि' त्ति पाठे तु प्रणष्टसन्धि सर्वथाऽनुपलक्ष्यमाणपत्रार्धद्वयसन्धि यत् अनन्तजीवं तद्विजानीहीति ।।२४४।।

- प्रव. सा. गा. २३६-२४४ सवृत्तिः।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलक्षणं चैतन्मांसस्य । ततः स्थल-जल-खचरादिजन्तूनां त्रिविधं मांसम् । तथा **रजनीभक्त-**मन्यदप्येवम्प्रकारं प्रत्यक्षदृष्टदोषं केवलिदृष्टदोषं च वर्जनीयवस्तुजातं वर्जयेत् । तथा च तत्सङ्ग्रहगाथा –

[2]पंचुंबरि[१०] चउविगई[११] हिम[१२]-विस[१३]-करगे[१४] य सव्वमट्टी[१५] य ।
राईभोयणगं[१६] चिय बहुबीय[१७]-अणंत[१८]-संधाणा[१९] ।।१।।
घोलवडा[२०] वाइंगण[२१] अमुणियनामाइं पुप्फफलयाइं[२२] ।
तुच्छफलं[२३]-चलियरसं[२४] वज्जह वज्जाणि बावीसं ।।२।। [ ] इति

तथा अशन-खाद्य-स्वाद्य-पान-वस्त्र-आभरण-कुसुमाङ्गराग-शयन-आसन-सञ्चित्त-द्रव्य-विकृतिप्रभृतीनां प्रतिदिनोपभोग्यानामाहोरात्रिकीं प्रमितिमत्र व्रते विधत्ते ।।४२८।।

---

2. अभक्षस्य संग्रहगाथा तद्भेदम् –

पंचुंबरि चउविगई हिम-विस-करगे य सव्वमट्टी य । रयणीभोयणगं चिय बहुबीय-अणंत-संधाणं ।।२४५।।

घोलवडा वायंगण अमुणियनामाणि फुल्ल-फलयाणि । तुच्छफलचलियरसं वज्जह वज्जाणि बावीसं ।।२४६।।

'पंचुंबरी'त्यादि पञ्चानामुदुम्बराणां समाहारः पञ्चोदुम्बरी-वट-पिप्पलोदुम्बर-प्लक्ष-काकोदुम्बरीफलरूपा समयप्रसिद्धा, सा मशकाकारसूक्ष्मबहुजीवभृतत्वा-द्वर्जनीया, तथा चतस्रो विकृतयो मद्य-मांस-मधु-नवनीतरूपा वर्ज्याः, सद्य एव तत्र तद्वर्णानेकजीव-सम्मूर्च्छनात्, तथा हिमं शुद्धासङ्ख्याप्कायरूपत्वात्, तथा विषं मन्त्रोपहतवीर्य-मपि उदरान्तर्वर्तिगण्डोलकादिजीवविघातहेतुत्वात्, मरणसमये महामोहोत्पादकत्वाच्च, तथा करका अप्यसङ्ख्याप्का-यिकत्वात् तथा सर्वापि मृत्तिका दर्दुरादिपञ्चेन्द्रियप्राण्युत्पत्तिनिमित्तत्वात्, सर्वग्रहणं खटिकादि तद्भेदपरिग्रहार्थम्, तद् भक्षणस्यापि आमाश्रयादिदोषजनकत्वात्, तथा रजनीभोजनं बहुविधजीवसम्पातसम्भवेन ऐहलौकिकपारलौकिक-दोषदुष्टत्वात्, तथा बहुबीजं-पम्पोटकादि प्रतिबीजं जीवोपमर्दसम्भवात्, तथा अनन्तानिअनन्तकायिकानि अनन्त-जन्तुसन्ताननिर्घातननिमित्तत्वात्, तथा सन्धानम्-अस्त्यानकं बिल्वकादीनां जीवसंसक्तिहेतुत्वात् ।।२४५।।

तथा 'घोलवडे'त्यादि, घोलवटकानि उपलक्षणत्वादामगोरससम्पृक्तद्विदलानि च केवलिगम्यसूक्ष्मजीवसंसक्ति-सम्भवात्, तथा वृन्ताकानि निद्राबाहुल्यमदनो-द्दीपनादिदोषदुष्टत्वात्, तथा स्वयं परेण वा येषां नाम न ज्ञायते तान्यज्ञातनामानि पुष्पाणि फलानि, अज्ञानतो निषिद्धफलप्रवृत्तौ व्रतभङ्गसम्भवात् विषफले तु प्रवृत्तौ जीवितविनाशात्, तथा तुच्छम्-असारं फलं-मधूकबिल्वादेः उपलक्षणत्वाच्च पुष्पमरणि-शिगु-मधुकादेः, पत्रं प्रावृषि तण्डुलीयकादेः बहुजीवसम्मिश्रत्वात्, यद्वा तुच्छफलम्-अर्धनिष्पन्नकोमलचवलकशिम्बादिकम्, तद्भक्षणे हि तथाविधा तृप्तिरपि नोपजायते, दोषाश्च बहवः सम्भवन्ति, तथा चलितरसंकुथितान्नम्, उपलक्षणत्वात् पुष्पितौदनादि, दिनद्वयातीतं च दधि वर्जनीयम्, जीवसंसक्त्या प्राणातिपातादिलक्षणदोषसम्भवात्, एतानि द्वाविंशतिसङ्ख्यानि वर्जनीयानि वस्तूनि कृपापरीतचेतसः सन्तो हे भव्यजना ! वर्जयत-परिहरतेति ।।२४६।।

- प्रव. सा. गा. २४५-२४६ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]अस्यातिचारानाह –

सच्चित्तं[१] पडिबद्धं[२] अपउल[३]-दुप्पउल[४]-तुच्छभक्खणयं[५] ।
भोयणओ अइयारा, वज्जेयव्वा इमे पंच ।।४२९।।

गाथा-४२९ 1. **तुला** - उभयरूपेऽप्यत्रातिचारानाह -

सचित्तं पडिबद्धं, अपउलदुप्पउलतुच्छभक्खणयं । वज्जइ कम्मयओ वि हु, एत्थं इंगालकम्माई ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९२ ।।

(सचित्तं प्रतिबद्धमपक्वदुष्पक्वतुच्छभक्षणम् । वर्जयति कर्मतोऽपि चात्राङ्गारकर्मादि ।।)

"सच्चित्तं" गाहा व्याख्या - श्रावकेण हि भोजनतः किल उत्सर्गतो निरवद्याहारभोजिना भाव्यम्; कर्मतश्च प्रायो निरवद्यकर्मानुष्ठानेन भवितव्यम् । अतस्तदपेक्षया यथासंभवममी अतिचारा दृश्याः, तत्र च भोजनतस्तावदाह- 'सच्चित्तम्' इत्यादि । 'सच्चित्तं' कन्दादि, इह च सर्वत्र निवृत्तिविषयीकृतप्रवृत्तावप्यतिचाराभिधानं व्रतसापेक्षप्रवृत्ता-नाभोगादिनिबन्धप्रवृत्त्या दृश्यम्, अन्यथा भङ्ग एव स्यात् । तथा तन्निवृत्तिविषयीकृतं सचित्तं वर्जयतीति योगः १ । प्रतिबद्धमिति सचित्तप्रतिबद्धं - वृक्षस्थगोन्दादि पक्वफलादि वा २ । 'अपउलिअ (अपउल)' इति 'अपक्वं' कणिकादि संभवत्सचित्तावयम् ३ । 'दुप्पउलिअ (दुप्पउल)' इति 'दुष्पक्वं' अर्धस्विन्नप्रायं 'यवावपूलकादि ४ । तुच्छं-यत्र बहुनाऽपि भक्षितेन न किञ्चित् तथाविधमाहारकार्यम्, संभवदवद्यं वाऽनिष्पन्नमुद्गफलादि ५ । भक्षण-शब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते, सचित्तभक्षणमित्यादि । 'वर्जयति' परिहरते 'कर्मतोऽपि च' कर्माश्रित्य पुनः 'अत्र' द्वितीयगुणव्रतेऽङ्गारकर्मादि वर्जयतीति योगः । कर्मतो हि द्वितीयगुणव्रते पञ्चदशातिचारा भवन्ति । तदुक्तम् - "इंगाली १ वण २ साडी ३ भाडी ४ फोडीसु ५ वज्जए कम्मं । वाणिज्जं चेव य दंत १ लक्ख २ रस ३ केस ४ विसविसयं ५ ।।१।। एवं खु जंतपीलणकम्मं १ निल्लंछणं २ च दवदाणं ३ सरदहतलायसोसं ४ असईपोसं च वज्जेज्जा" ।।२।। - [श्राद्धप्रति. गा. २१-२२]

भावार्थस्तु वृद्धसंप्रदायादवसेयः, स चायम् -

"इंगालकम्मं ति इंगाले डहिउं विक्किणइ, तत्थ छण्हं कायाण वहो, तं न कप्पइ । वणकम्मं जो वणं किणइ, पच्छा रुक्खे छिंदिउं मोल्लेण जीवइ, एवं पत्तगाइ पडिसिद्धा होंति । सागडिकम्मं सागडिअत्तणेण जीवइ, तत्थ बंधवहाइ दोसा । भाडीकम्मं सएणं भंडोवक्खरेणं भाडएणं वहइ, परायगं न कप्पइ, अण्णेस्सिं वा सगडं बलद्दे अ देइ, एवमाइ काउं न कप्पइ । फोडीकम्मं उडत्तणं हलेण वा भूमीए फोडणं । दंतवाणिज्जं पुव्विं चेव पुलिंदाणं मुल्लं देइ, दंते देज्जाह त्ति, पच्छा पुलिंदा हत्थिं घाएंति, अचिरा सो वाणिअओ एइ त्ति काउं, एवं कम्मगराणं संखमुल्लं देइ, पुव्वाणिअं किणइ । लक्खवाणिज्जं लक्ख-वाणिज्जे वि एए चेव दोसा, तत्थ किमिआ होंति । रसवाणिज्जं कल्लवालत्तणं, तत्थ सुराइ अणेगे दोसा मारणआक्कोसवहाइ जम्हा तम्हा न कप्पइ । केसवाणिज्जं दासीओ गहाय अण्णत्थ विक्किणइ जत्थ अग्घंति, एत्थ वि अणेगे दोसा परवसत्तादओ । विसवाणिज्जं विसविक्कओ सो न कप्पइ, तेण बहूण जीवाण विराहणा । जंतपीलणकम्मं तेल्लिअजंतं उच्छुजंतं च, तक्कमाई य न कप्पइ । निल्लंछणकम्मं

---

1. **यवावपूलकादि** - यव-जव, अवपूलक-तुच्छधान्य इति भाषायाम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अस्मिन् भोगोपभोगव्रते **भोजनतः** प्रतिपन्ने **अमी पञ्चातिचारा वर्जनीयाः** । तद्यथा - **सच्चित्तं** फलादिः पृथिवीकायादिर्वा सच्चित्तवर्जकस्य सहसाकारादिना भुञ्जानस्य प्रथमोऽतिचारः । **प्रतिबद्धं** प्रस्तावात् सच्चित्तेन खर्जूरफलादि । तदपि किल बीजमेवास्य सच्चित्तमहं पुनः कटाहमेव भक्षयामीति बुद्ध्या प्रतिबद्धमेवाऽभ्यवहरतो द्वितीयोऽतिचारः । **अपक्वं** काङ्कटुकादि । तदपि सच्चित्तवर्जकस्य सहसाकारादिनाऽभ्यवहरतस्तृतीयः । **दुष्पक्वं** पृथुकादि तदप्यजीवाहारस्य सम्भवच्चेतनावयवत्वेन पक्वमितिबुद्ध्या भुञ्जानस्य चतुर्थः । तथा **तुच्छम**बद्धबीजं शिम्बादि, तदपि सहसाकारानाभोगादिभिर्**भक्षयतः** पञ्चम इति ।।४२९।।

भणितं भोजनतो भोगोपभोगव्रतं, साम्प्रतं तदेव कर्म्मतः प्राह -

कम्मयओ पुण इत्थं, पडिवन्ने सव्वमेव खरकम्मं ।
वज्जेयव्वं निच्चं, किं पुण इंगालकम्माई ।।४३०।।

अस्मिन् द्वितीयगुणव्रते **कर्म्मतः प्रतिपन्ने सकलमपि** नृपनियोगलक्षणं **खरकर्म्म नित्यं** सदैव दुर्ध्याननिबन्धनत्वेन **वर्जनीयम् । अङ्गारकर्म्मादीनां तु** पञ्चदशानां कर्म्मादानानामभिनवाभिनवकर्म्मादानहेतूनां **किमु**च्यते । तानि सुतरां वर्जनीयानीति भावः ।।४३०।।

वद्धेउं गोणाइ न कप्पइ । दवग्गिदावणयाकम्मं वणदवं देइ खेत्तरक्खणनिमित्तं जहा उत्तरावहे, पच्छा दड्ढे तरुणगं तणं उट्ठेइ, तत्थ सत्ताणं सयसहस्साण वहो । सरदहतलागपरिसोसणया सरदहतलागाईणि सोसेइ, पच्छा वाविज्जइ, एवं न कप्पइ । असईपोस त्ति जहा गोल्लविसए जोणीपोसणगा दासीण तणिअं भाडिं गेण्हंति ।" [ ] प्रदर्शनं चैतद् बहुसावद्यानां कर्मणामेवंजातीयानाम्, न पुनः परिगणनमिति । इह चैवं विंशतिसंख्यातिचाराभिधानमन्यत्रापि पञ्चातिचारसंख्यया तज्जातीयानां व्रतपरिणामकालुष्यनिबन्धनविधीनामपरेषां संग्रहो द्रष्टव्य इति ज्ञापनार्थम्, तेन स्मृत्यन्तर्धानादयो यथासंभवं सर्वव्रतेष्वतिचारा दृश्याः । कृतं प्रसङ्गेन । इति गाथार्थः ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९२ वृत्तौ ।।

सचित्त-संबद्ध-संमिश्रा-ऽभिषव-दुष्पक्वाहाराः ।। धर्म. बि. अ. ३/२९ ।। तत्त्वा. सू. ७/३० ।।

मज्जंमि य मंसंमि अ, पुप्फे अ फले अ गंधमल्ले अ । उवभोगे परिभोगे, बीयंमि गुणव्वए निंदे ।
सच्चित्ते पडिबद्धे, अपोलदुप्पोलिअं च आहारे । तुच्छोसहिभक्खणया पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।।

- श्रा. प्र. वृ. गा. २०-२१ ।।

गाथा-४३० १. **तुला -** अत्र च व्रते भोगोपभोगोत्पादकानि बहुसावद्यानि । कर्मतोऽङ्गारकादीनि पञ्चदश कर्मादानानि, श्रावकेण ज्ञेयानि, न तु समाचरणीयानि अतस्तेषु यदनाभोगादिनाऽऽचरितं तत्प्रतिक्रमणायाह -

इंगाली वणसाडी, भाडी फोडीसु वज्जए कम्मं । वाणिज्जं चेव य दंतलक्खरसकेसविसविसयं ।।
एवं खुजंतपीलणकम्मं निल्लंछणं च दवदाणं । सरदहतलायसोसं, असईपोसं च वज्जिज्जा ।।- श्रा. प्र. वृ. गा. २२-२३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तान्येव नामतः प्राह –

इंगालीवण[2]-साडी[3]-भाडी[4]-फोडीसु[5]वज्जए कम्मं ।
वाणिज्जं चेव य दंत[6]-लक्ख[7]-रस[8]-केस[9]-विस[10]-विसयं ।।४३१।।
एवं खु जंतपीलणकम्मं[11] निल्लंछणं[12] च दवदाणं[13] ।
सरदहतलायसोसं[14] असईपोसं[15] च वज्जिज्जा ।।४३२।।

एतानि पञ्चदशापि सुश्रमणोपासकः **परिवर्जयेत्** । कानीत्याह - **कर्म्म**शब्दोऽत्र वृत्तिवाची । वृत्तिश्च जीविका । अतो **अङ्गारवृत्तिं वनवृत्तिं शकटवृत्तिं भाटकवृत्तिं स्फोटवृत्तिं च** वर्जयेत् । तथा **दन्त-लाक्षा-रस-केश-विषविषयं वाणिज्यं** परिहरेत् । **एवं** पूर्वोक्तन्यायेनैव तिलेक्षुसर्षपादि**पीलनयन्त्रनिर्लाञ्छनकर्म्म दवदानं सरोहदतडागादिशोषं असतीपोषं च वर्जयेदिति ।** अमीषां च प्रतिपदव्याख्यानं ग्रन्थातरेष्वपि सुप्रसिद्धमिति नात्र प्रपञ्चितम् ।।४३१।।४३२।।

तृतीयं गुणव्रतमाह –

गाथा-४३१ १. **तुला** - श्रा. प्र. गा. २८७-२८८।।

गाथा-४३२ १. तुला - उक्तं सातिचारं द्वितीयं गुणव्रतम् । इदानीं तृतीयमाह -

तहऽणत्थदंडविरई, अन्नं स चउव्विहो अवज्झाणे । पमयायरिए हिंसप्पयाण पावोवएसे य ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९३ ।।

(तथाऽनर्थदण्डविरतिरन्यत् स चतुर्विधोऽपध्याने । प्रमादाचरिते हिंसाप्रदाने पापोपदेशे च ।।)

"तह" गाहा व्याख्या - 'तथा' तेनैव प्रकारेण "गुरुमूले" इत्यादिना निर्दिष्टेन 'अनर्थदण्डविरतिः' इति अर्थः - प्रयोजनम्, न विद्यतेऽर्थो यस्मिन् सोऽनर्थः, दण्ड्यते आत्माऽनेनेति दण्डः-निग्रहः, अनर्थश्चासौ दण्डश्चानर्थदण्डः-इहलोकप्रयोजनमप्यङ्गीकृत्य निष्प्रयोजनभूतोपमर्देनाऽत्मनो निग्रह इत्यर्थः, तस्य विरतिः-उपरमः 'अन्यत्' अपरं तृतीयं गुणव्रतमिति हृदयम् । स चानर्थदण्डः 'चतुर्विधः' चतुष्प्रकारः । तदाह - "अपध्याने" निष्प्रयोजनदुष्टध्यानविषय इत्यर्थः । तदुक्तम् - "कइया वच्चइ सत्थो ?, किं भंडं ? कत्थ केत्तीआ भूमी ? । को कयविक्कयकालो ?, निव्विसई किं कहिं केण ? ।।१।।" [ ] इत्यादि । प्रमादाचरिते' इति मद्यादिः प्रमादः तदाचरितविषयः । अनर्थदण्डत्वं चास्योक्तशब्दार्थद्वारेण स्वबुद्ध्या दृश्यम् । हिंसेति - हिंसाहेतुत्वादायुधानलविषादयो हिंसेत्युच्यन्ते, कारणे कार्योपचारात्; तेषां प्रदाने-अन्यस्मै तत्समर्पणे पापोपदेशे च' सूचनात्सूत्रमिति 'पापकर्मोपदेशे' कृष्याद्युपदिशने । तदुक्तम् - खेत्ते खडेह गोणे, दमेह एमाइ सावयजणस्स । उवदिसिउं णो कप्पइ, जाणिअजिणवयणसारस्स ।।१।।" [ ] 'च' समुच्चये । एवं चतुर्विधोऽनर्थदण्डः । इति गाथार्थः ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९३ वृत्तौ ।।

हिंस्रप्रदानप्रमादाचरिते तु बहुसावद्यत्वात्साक्षात्सूत्रकृदेव द्विसूत्र्याऽऽह -

सत्थग्गिमुसलजंतगतणकट्ठे मंतमूलभेसज्जे । दिन्ने दवाविए वा पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।।

ण्हाणुव्वट्टणवण्णग - विलेवणे सद्दरूवरसगंधे । वत्थासणआभरणे पडिक्कमे देसिअं सव्वं ।। - श्रा.प्र.वृ.गा. २४-२५ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवज्झाण[१]-पमायायरिय[२]-हिंसदाणे[३] य पावउवएसे[४] ।
चउहा अणत्थदंडो, तत्थऽइयारा इमे पंच ।।४३३।।

अनर्थदण्डः । अनर्थदण्डाख्यं तृतीयं गुणव्रत**मपध्यान-प्रमादाचरित-हिंस्रदान-पापोपदेश**भेदात् **चतुर्द्धा** । तत्र खेचरत्वं नरेन्द्रत्वं वा मम जायतामित्यार्त्तानुगतम् । तथा 'हन्यन्तां वैरिणो दह्यन्तामरिपुराणी'त्यादिरौद्रानुगतमपध्यानम् । तथा गीतनृत्तनाटकादिषु कुतूहलवशादत्यन्तासक्तिः प्रमादाचरितम् । दाक्षिण्याविषयेऽपि शस्त्राग्निप्रभृतीनां दानं हिंस्रदानम् । स्वजनादिद्वसम्बन्धमन्तरेणापि कृषिकरण - वृषभदमनादिपापव्यापारेषु प्रेरणं पापोपदेशः । एभिरपध्यानादिभिरनर्थकं मुधैवात्मा दण्ड्यत इत्यनर्थदण्डस्तद्विरतिरूपं व्रतमनर्थदण्डव्रतम् । **तत्रामी** वक्ष्यमाणाः **पञ्चातिचाराः** ।।४३३।। तानेवाह –

कंदप्पं[१] कुक्कुइयं[२], मोहरियं[३] संजुयाहिगरणं[४] च ।
उवभोगपरीभोगाइरेगयं[५] चेव वज्जिज्जा ।।४३४।।

गाथा-४३४ 1. **तुला -** अत्रातिचारानाह –

कंदप्पं कुक्कुइयं, मोहरियं संजुयाहिगरणं च । उवभोगपरीभोगाइरेगयं चेत्थ वज्जेइ ।। श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९४ ।।

(कन्दर्पं कौकुच्यं मौखर्यं संयुताधिकरणं च । उपभोगपरिभोगातिरेकतां चात्र वर्जयति ।।)

"कंदप्पं" गाहा व्याख्या - कन्दर्पं कौकुच्यं मौखर्यं संयुताधिकरणं चोपभोगपरिभोगातिरेकतां चात्र वर्जयतीति पदघटना । कन्दर्पः - कामः तद्धेतुर्विशिष्टो वाक्प्रयोगोऽपि कन्दर्प उच्यते, मोहोद्दीपकं वा नर्मेति भावः १ । इह च सामाचारी-"सावगस्स अट्टट्टहासो न वट्टइ । जइ नाम हसिअव्वं तो ईसिं चेव विहसिअव्वं" [ ] इति । कौकुच्यं - कुत्सितसंकोचनादिक्रियायुक्तः कुकुचः, तद्भावः कौकुच्यम्; अनेकप्रकारा मुखनयनौष्ठकरचरणभ्रूविकारपूर्विका परिहासादिजनिता भाण्डानामिव विडम्बनक्रियेत्यर्थः २ । एत्थ सामायारी - "तारिसाणि भणिउं न कप्पंति जारिसेहिं लोगस्स हासो उप्पज्जइ । एवं गईए ठाणेण वा ठाइउं" [ ] इति । मोखर्यं - धार्ष्ट्यप्रायमसंबद्धप्रलापित्वमुच्यते ३ । "मुहेण वा अरिमाणेइ, जहा कुमारामज्झेण सो चारभडो विसज्जिओ, रण्णो निवेइयं, ताए जीवियाए वित्ती दिण्णा, अण्णया रुट्ठेण मारिओ कुमारामज्झे ।" [ ] 'संजुत्ताहिगरणं' अधिक्रियते नरकादिष्वनेनेत्यधिकरणं वास्युदूखलशिलापुत्रगोधूमयन्त्रकादि, संयुक्तं - अर्थक्रियाकरणयोग्यम्, संयुक्तं च तदधिकरणं चेति समासः ४ । तत्थ सामायारी - "सावगेण न संजुत्ताणि चेव सगडाईणि धरेअव्वाणि, एवं वासीपरसुमाईविभासा ।" [ ] 'उवभोगपरिभोगाइरेगयं' ति उपभोगपरिभोगशब्दार्थो निरूपित एव, तदतिरेकतातदाधिक्यम् ५, एत्थ वि सामायारी - "उवभोगाइरित्तं जइ तेल्लामलए बहु गिण्हइ तो बहुगा ण्हायगा वज्झंति, तस्स लोलिआए अण्णे वि ण्हायगा वज्झंति, पच्छा पूतरआउक्कायवहो । एवं पुप्फतंबोलमाइविभासा । एवं न ? वट्टइ । का विही सावगस्स उवभोगे ण्हाणे ? घरे ण्हाइयव्वं, नत्थि ताहे तेल्लामलएहिं सीसं घंसित्ता सव्वे साडिऊणं तलागादीणं तडे निविट्ठो अंजलिहिं ण्हाइ । एवं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कन्दर्प्पः कामस्तद्धेतुस्तत्प्रधानो वा वाक्प्रयोगः कन्दर्प्पः । श्रावकेण तन्न वक्तव्यं, येन स्वस्य परस्य वा मोहोद्रेको भवति । प्रमादाच्च वदतः प्रथमोऽतिचारः । **कौत्कुच्यम्** भ्रूनयनौष्ठनासादिविकारैरनेकप्रकारा भण्डचेष्टा येन च परो हसति । यस्माच्चात्मनो लाघवं भवति, तच्चातु शिष्टैर्न चेष्टितव्यम् । प्रमादाच्च तथा विधानेऽतिचारः । मुखरोऽनालोचितभाषी तस्य भावो **मौखर्यम्** । धार्ष्ट्यम् प्रायमसभ्यासम्बद्धबहुप्रलापित्वम् । तच्च कोरण्टककपालभिक्षोरिव लोकद्वयेऽप्यहितत्वेन त्याज्यमेव । प्रमादाच्च कुर्व्वतोऽतिचारः । तथा अधिकरणान्युदूखलादीनि तेषां मुशलादिभिः संयुक्तत्वं **संयुक्ताधिकरणत्वम्** । उदूखलेन मुशलस्य, हलेन फालस्य, शकटेन युगस्य, धनुषा शराणां योजने तदर्थिनो निषेद्धुमशक्यत्वात् प्रवृत्तिरूपं पापं मुधैव स्यादतो वियुक्तान्येवामूनि धार्याणि । प्रमादाच्च योजयतोऽतिचारः । तथा **उपभोगपरिभोगाङ्गानां** तैलामलकादीना**मतिरेकः** स्वभोग्येभ्योऽधिकत्वमप्यनर्थदण्ड एव । तदाधिक्यसद्भावे तटस्थानामपि स्नानादिप्रवृत्तिप्रसङ्गे जलादिजन्तूपमर्दस्य स एव निमित्ततामापद्यते, ततः परिमितमेव परिभोगाङ्गमङ्गीकार्यम् । प्रमादात् तदाधिक्ये च पञ्चमोऽतिचारः ।।४३४।।

एवमवसितातिचाराणि गुणव्रतानि । साम्प्रतं शिक्षाव्रतानामवसरः । तेष्वपि प्रथममाह -

सावज्जेयरजोगाण, वज्जणासेवणोभयसरूवं ।
सिक्खावयाण पढमं, भन्नइ सामाइयं एयं ।।४३५।।

तलागादीणं तडे निविट्ठो अंजलिहिं ण्हाइ । एवं जेसु अ पुप्फेसु कुंथुमाइ ताणि य परिहरति" ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९४ वृत्तौ ।।

कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्या-ऽसमीक्ष्याधिकरणोपभोगाधिकत्वानि ।। तत्त्वा. सू. ७/२७ ।। - धर्म बिं. अ. ३/३० ।।

कंदप्पे कुक्कुइए, मोहरि अहिगरण भोगअइरित्ते । दंडंमि अणट्ठाए तइअंमि गुणव्वए निंदे ।। - श्रा. प्र. वृ. गा. २६ ।।

गाथा-४३५ 1. **तुला** - उक्तं सातिचारं तृतीयं गुणव्रतम् । तदुक्तौ चोक्तानि गुणव्रतानि । अधुना शिक्षाव्रतान्युच्यन्ते, तत्र शिक्षा-अभ्यासस्तत्प्रधानानि व्रतानि शिक्षाव्रतानि पुनः पुनरासेवनार्हाणीत्यर्थः । तानि च सामायिकादीनि चत्वारि, तत्र तावत् सामायिकमाह -

सिक्खवयं तु एत्थं, सामाइय मो तयं तु विण्णेयं । सावज्जेयरजोगाण, वज्जणासेवणारूवं ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९५ ।।

(शिक्षाव्रतं त्वत्र, सामायिकं तत्तु विज्ञेयम् । सावद्येतरयोगानां, वर्जनासेवनारूपम् ।)

"सिक्खा" गाहा व्याख्या - शिक्षा-परमपदप्रापिका क्रिया, तत्प्रधानं व्रतं शिक्षाव्रतं 'अत्र' श्रावकधर्मे 'सामायिकम्' इति समः-रागद्वेषवियुक्तः, आयः - लाभः, समस्यायः समायः, समो हि प्रतिक्षणमपूर्वैर्ज्ञानदर्शनचारित्रपर्यायैर्निरुपमसुखहेतुभिरधःकृतचिन्तामणिकल्पद्रुमैर्युज्यते, स एव समायः प्रयोजनमस्य क्रियानुष्ठानस्येति प्रयोजन

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतदेवंस्वरूपं **शिक्षाव्रतानां प्रथममग्रिमं सामायिकाख्यं व्रतं भण्यते** भगवद्भिर्जिनैरिति । किंस्वरूपमित्याह - **सावद्यानां** सपापानामितरेषां च निरवद्यानां **योगानां** व्यापाराणां यथासङ्ख्येन **वर्जनासेवनरूपं** सावद्ययोगवर्जनरूपमनवद्ययोगासेवनरूपमित्यर्थः ।।४३५।।

[1]अस्यातिचारानाह –

मणवयणकायदुप्पणिहाणं इह जत्तओ विवज्जेइ ।
सइअकरणं च अणवट्ठियस्स तह करणयं च गिही ।।४३६।।

इति, किम् ? सामायिकम्, प्राकृतत्वात्सुप्लुका निर्देशः 'मो' निपातः पादपूरणे । 'तत्तु' सामायिकं पुनः 'सावद्येतरयोगानां' सपापधर्मव्यापाराणां यथासंख्यं वर्जनासेवनास्वरूपं कालावधिनेति गम्यते । तस्मिन् गृहीते आरम्भादिपरिहारः स्वाध्यायादिविधिश्च विधेयः । इह सावद्ययोगवर्जनवद् अवद्ययोगाऽऽसेवनमप्यहर्निशं कर्तव्यमिति ज्ञापनार्थमुभयोपादानम् । एत्थ पुण सामायारी - "सामाइयं सावएण कहिं कायव्वं ति ?, इह सावगो दुविहो, इड्ढिपत्तो अ अणिड्ढिपत्तो अ । जो सो अणिड्ढिपत्तो सो चेइयघरे साहुसमीवे करेइ, घरे वा पोसहसालाए वा। जत्थ वा वीसमइ अच्छइ वा निव्वावारो सव्वत्थ करेइ । सव्वं चउसु व ठाणेसु नियमा कायव्वंचेइयघरे साहुसमीवे पोसहसालाए घरे आवासगं करेंति त्ति । तत्थ जइ साहुसगासे करेइ तत्थ का विहि ? जइ परंपरभयं नत्थि, जइ वि अ केणइ समं विवाओ नत्थि, जइ कस्सइ न धरेइ, भा तेण अंछवियंछी कज्झिहि, जइ धारणगं दट्ठूणं न गिण्हइ मा भज्झिहि, जइ य वावारं न करेइ ताहे घरे चेव सामाइयं काऊणं वच्चइ । पंचसमिओ तिगुत्तो इरियादुवउत्तो, जहा साहू, भासाए सावज्जं परिहरेंतो, एसणाए कट्ठं वा लेट्ठगं वा पडिलेहिउं पमज्जिउं, एवं आयाणे निक्खेवे ए खेलसिंघाणए न विगिंचइ, विगिंचतो वा पडिलेहेइ पमज्जइ य, जत्थ चिट्ठति तत्थ वि गुत्तिनिरोहं करेइ । एयाए विहीए गंता तिविहेणं नमिऊण साहुणो पच्छा सामाइयं करेइ, करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव साहू पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं ति काउं, पच्छा इरियावहियाए पडिक्कमइ । पच्छा आलोएत्ता वंदइ आयरिआइ जहारायणियाए, पुणो वि गुरुं वंदित्ता पडिलेहित्ता निविट्ठो पुच्छइ पढइ वा, एवं चेइएसु वि । जया सगिहे पोसहसालाए वा तत्थ नवरि गमणं नत्थि । जो इड्ढिपत्तो सो सव्विड्ढीए एइ, तेण जणस्स अत्था होइ, आढिआ साहुणो सुपुरिसपरिग्गहेणं । जइ सो कयसामाइओ एइ ताहे आसहत्थिमाई जणेण अहिगरणं न वट्टइ ताहे न करेइ, कयसामाइएण य पाएहिं आगंतव्वं तेण न करेइ । जइ सो सावओ तो न कोइ उट्ठेइ । अह अहाभद्दओ पूआ कया होउ त्ति भणंति ताहे पुव्वरइयं आसणं कीरइ, आयरिया य उट्ठिआ अच्छंति, तत्थ उट्ठेंत-अणुट्ठेंते दोसा विभासियव्वा । पच्छा सो इड्ढिपत्तो सामाइयं करेइ अणेण विहिणा करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि दुविहं तिविहेणं जाव नियमं पज्जुवासामि, इति । एवं सामाइयं काउं पडिक्कंतो वंदित्ता पुच्छइ । सो अ किर सामाइयं करेंतो मउडं अवणेइ, कुंडलाइं नाममुद्दं पुप्फं तंबोलं पावारगमाई वोसिरइ । एसो विही सामाइयस्स" [ ] ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९५ वृत्तौ ।।

गाथा-४३६ 1. **तुला** - अस्यैवातिचारानाह -

मणवयणकायदुप्पणिहाणं इह जत्तओ विवज्जेइ । सइअकरणयं अणवट्ठियस्स तह करणयं चेव ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९६ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहास्मिन् सामायिके प्रतिपन्नव्रतो **गृही** एतानतिचारान् **यत्नतो वर्जयति** । तद्यथा - **मनोदुष्प्रणिधानं वचनदुष्प्रणिधानं कायदुष्प्रणिधानमिति** त्रयः । **तथा** कृतस्य सामायिकस्य **स्मृतेर्भ्रंशश्चतुर्थः** । तस्यैवानवस्थितकरणं पञ्चमः । यदाहुः –

सामाइयं तु काउं [1]घरचिंतं जो य चिंतए सड्ढो ।
अट्टवसट्टोवगओ निरत्थयं तस्स सामाइयं ।।१।।

कडसामाइओ पुव्विं बुद्धीए पेहिऊण भासिज्जा ।
सइ[2] निरवज्जं वयणं अन्नह सामाइयं न[3] हवे ।।२।।

अनिरिक्खियापमज्जियथंडिले ठाणमाइ सेवंतो ।
हिंसाभावे वि न सो कडसामइओ पमायाओ ।।३।।

न सरइ पमायजुत्तो जं सामइयं [4]कयाइ कायव्वं ।
कयमकयं वा तस्स उ कयं पि विहलं तयं नेयं ।।४।।

काऊण तक्खणं चिय पारेइ करेइ वा जहिच्छाए ।
अणवट्ठियसामइयं अणायराओ न तं सुद्धं ।।५।। [श्रावकप्रज्ञ. प्रक. गा. ३१३-३१७]

इति ।।४३६।।

(मन-वचन-कायदुष्प्रणिध्यानमिह यत्नतो विवर्जयति । स्मृत्यकरणनवस्थितस्य तथाऽकरणं चैव ।)

"मण" गाहा व्याख्या - 'मनोवचनकायदुष्प्रणिधानं' मनःप्रभृतीनां सावद्यानां प्रवर्तनमित्यर्थः, 'इह' सामायिके 'यत्नतः' आदरेण 'विवर्जयति' परिहरते । त्रयोऽमी अतिचाराः - 'स्मृत्यकरणं' स्मृतेः - सामायिकविषयाया अनासेवनम्, एतदुक्तं भवति - प्रबलप्रमादान्नैवं स्मरति, अस्यां वेलायां सामायिकं कर्तव्यं कृतं न कृतमिति वा, स्मृतिमूलं हि मोक्षानुष्ठानम् ४ । अनवस्थितकरणं - करणानन्तरमेव त्यजति, यथाकथञ्चिद्वाऽनवस्थितं करोतीत्यनवस्थितकरणं वर्जयतीति ५ । 'चः' समुच्चयार्थः । 'एवः' अवधारणे । अयमत्र भावार्थः - "सामाइयं ति काउं, घरचिंतं जो उ चिंतए सड्ढो । अट्टवसट्टोवगओ, निरत्थयं तस्स सामइयं ।।१।। कयसामइओ पुव्विं, बुद्धिए पेहिऊण भासिज्जा । सइ निरवज्जं वयणं, अण्णह सामाइयं भवे ।।२।। अनिरिक्खियापमज्जिअथंडिले ठाणमाइ सेवेंतो । हिंसाऽभावे वि न सो, कडसामइओ पमायाओ ।।३।। न सरइ पमायजुत्तो, जो सामइयं कया हु कायव्वं । कयमकयं वा तस्स हु, कयं पि विफलं तयं नेयं ।।४।। काऊण तक्खणं चिअ, पारेइ करेइ वा जहिच्छाए । अणवट्ठिअसामइयं, अणायराओ न तं सुद्धं" ।।५।। [ ] ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९६ वृत्तौ ।।

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थापनानि ।। तत्त्वा. सू. ७/२८ ।। धर्म बि. अ. ३/३१९ तिविहे दुप्पणिहाणे, अणवट्ठाणे तहा सइविहूणे । सामाइअ (ए) वितहकए पढमे सिक्खावए निंदे ।। - श्रा. प्र. वृ. गा. २७ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]द्वितीयं शिक्षाव्रतमाह -

दिसिवयगहियस्स दिसापरिमाणस्सेह पइदिणं जं तु ।
गमणपरिमाणकरणं बीयं सिक्खावयं एयं ।।४३७।।

दिग्व्रते प्रथमगुणव्रते चातुर्मासादिकालमानेन यावज्जीवं वा **गृहीतस्य दिशां परिमाणस्य** संक्षेपणार्थं **प्रतिदिनं** यद् **गमनपरिमाणकरणं तद्** देशावकाशिकाख्यं **द्वितीयं शिक्षाव्रतमिति** ।।४३७।।

[1]अस्यातिचारानाह -

वज्जइ इह आणयणप्पओग[1]-पेसप्पओगयं[2] चेव ।
सद्दाणुवाय[3]-रूवाणुवाय[4]-बहिपुग्गलक्खेवं[5] ।।४३८।।

गाथा-४३७ 1. **तुला -** उक्तं सातिचारं प्रथमं शिक्षाव्रतम् । साम्प्रतं द्वितीयमाह -

दिसिवयगहियस्स दिसापरिमाणस्सेह पइदिणं जं तु । परिमाणकरणमेयं, अवरं खलु होइ विन्नेयं ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९९ ।।

(दिग्व्रतगृहीतस्य दिक्परिमाणस्येह प्रतिदिनं यत्तु । परिमाणकरणमेतदपरं खलु भवति विज्ञेयम् ।।)

"दिसिवय" गाहा व्याख्या - दिग्व्रतमुक्तस्वरूपम्, तत्र गृहीतस्य दिक्परिमाणस्य दीर्घकालिकस्येति गम्यते, 'इह' श्रावकधर्मे 'प्रतिदिनं' अनुदिवसम्, एतच्चोपलक्षणं प्रतिप्रहरादेः, 'यत्तु' यत्पुनः 'परिमाणकरणं', संक्षिप्ततरदिक्प्रमाणग्रहणमित्यर्थः, 'एतत्' एवंविधं परिमाणकरणं 'अपरं' अन्यद्-द्वितीयं शिक्षाव्रतं देशावकाशिकं देशे - दिग्व्रतगृहीतपरिमाणविभागेऽवकाशो देशावकाशः, तेन निर्वृत्तं देशावकाशिकं भवति विज्ञेयम् । इति गाथार्थः ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९७ वृत्तौ ।।

गाथा-४३८ 1. **तुला -** अत्राऽतिचारानाह -

वज्जइ इह आणयणप्पओगपेसप्पओगयं चेव । सद्दाणुरूववायं, तह बहियापोग्गलक्खेवं ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९८ ।।

(वर्जयतीह आनयनप्रयोगप्रेष्यप्रयोगतां चैव । शब्दानुरूपपातं, तथा बहिःपुद्गलप्रक्षेपम् ।।)

"वज्जइ" गाहा व्याख्या - वर्जयति 'इह' द्वितीयशिक्षाव्रते आनयनप्रयोगप्रेष्यप्रयोगतां चैव शब्दानुपातं रूपानुपातं तथा बहिः पुद्गलप्रक्षेपम् इति सूत्रानुवृत्तेः प्राकृतत्वाच्च पदघटना । भावार्थस्तु - इह विशिष्टावधिके भूदेशाभिग्रहे परतः स्वयं गमनाऽयोगाद् यदन्यः सचित्तादिद्रव्यानयने प्रयुज्यते संदेशकप्रदानादिना त्वयेदमानेयम् इत्ययमानयनप्रयोगः १ । यथा प्रेष्यप्रयोगः तथा - अभिगृहीतप्रविचारदेशव्यतिक्रमभयादवश्यमेव गत्वा त्वया मम गवाद्यानेयम्, इदं वा तत्र कर्तव्यम् इत्येवंभूतः २ । तथा शब्दानुपातः - स्वगृहवृतिप्राकारादिव्यवच्छिन्नभूदेशाऽभिग्रहे बहिः प्रयोजनोत्पत्तौ तत्र स्वयं गमनाऽयोगात् वृतिप्राकारप्रत्यासन्नवर्तिनो बुद्धिपूर्वकं क्षुत्काशिकादिशब्दकरणेन

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहास्मिन् शिक्षाव्रते एतदतिचारपञ्चकं **वर्जयति** । किं तदित्याह-स्वयं नियमितस्य क्षेत्रस्य बहिःस्थितानां सचेतनादिद्रव्याणां किल स्वयं गमने व्रतभङ्गो भविष्यतीतिबुद्ध्या अन्येन भृत्यादिना स्वसमीपे **आनयनप्रयोगे** प्रथमोऽतिचारः । तथा एवमेव परिमितक्षेत्राद् बहिः प्रयोजनार्थं मा भून्मे स्वयं गमने व्रतभङ्ग इति धिया **प्रेष्यस्य प्रेरणप्रयोगे** द्वितीयः । किल जन्तूपमर्दप्रतिषेधार्थं देशावकाशिकं क्रियते । प्रेष्यादिप्रयोगे च स सुतरां स्यादतस्तत्र विधेयम् । प्रमादाच्च विधानेऽतिचारः । एवमेव च गृहप्राकाराद्यवधीकृत्य कृतदेशावकाशिकस्य कस्मिंश्चित् प्रयोजनार्थिनि तदन्तिकमागते तददर्शनाच्च प्रतिनिवर्त्तमाने आत्मानं ज्ञापयितुमुच्चैर्भाषणेन तत्कर्णे **शब्दानुपातं** विदधतस्तृतीयोऽतिचारः । तथैव चोपरिभूमिकादावारुह्य तद् दृष्टौ **स्वरूपानुपातं** कुर्वतश्चतुर्थः । एवमेव चात्मानं तस्मै बोधयितुं कर्करकादि**पुद्गलक्षेपं** कुर्वाणस्य पञ्चमः । सर्वत्रापि चाऽत्र व्रतसापेक्षतायां प्रमादादेवंविधानेऽतिचारतेति ।।४३८।। तृतीयं शिक्षाव्रतमभिधत्ते –

आहारदेहसक्कारबंभवावारचागनिप्फन्नं ।
इह पोसहं ति वुच्चइ तइयं सिक्खाववयं पवरं ।।४३९।।

समवसितकान् बोधयतः शब्दानुपातः - शब्दस्यानुपातनं - उच्चारणं शब्दानुपातः तादृग् येन परकीयश्रवणविवरमनुपतत्यसाविति ३ । तथा रूपानुपातः - अभिगृहीतदेशाद् बहिः प्रयोजनभावे शब्दमनुच्चारयत एव परेषां समीपानयनार्थं स्वशरीररूपप्रदर्शनं रूपानुपातः ४ । तथा बहिः पुद्गलप्रक्षेपः - अभिगृहीतदेशाद्बहिः प्रयोजनभावे परेषां प्रबोधनाय लेष्ट्वादिक्षेपः पुद्गलप्रक्षेपः इति भावना ५ । देशावकाशिकमेतदर्थमभिगृह्यते - मा भूद्बहिर्गमनाऽऽगमनादिव्यापारजनितः प्राण्युपमर्द इति, स च स्वयंकृतोऽन्येन वा कारित इति न कश्चित् फले विशेषः, प्रत्युत गुणः स्वयं गमने, ईर्यापथविशुद्धेः, परस्य पुनरनिपुणत्वात् तदशुद्धिः । इति गाथार्थः ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९८ वृत्तौ ।।

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ।। - तत्त्वा. सू. ७/२६ ।। धर्म बि. अ. ३/३२ ।।

आणवणे पेसवणे, सद्दे रूवे अ पुग्गलक्खेवे । देसावगासिअंमी बीए सिक्खावए निंदे ।। - श्रा. प्र. वृ. गा. २८ ।।

गाथा-४३९ 1. **तुला** - उक्तं सातिचारं द्वितीयं शिक्षाव्रतम् । साम्प्रतं तृतीयमुच्यते -

आहारदेहसक्कारबंभवावारपोसहो अन्नं । देसे सव्वे य इमं, चरमे सामाइयं नियमा ।। - श्रा. ध. वि. गा. ९९ ।।

(आहारदेहसत्कारब्रह्माऽव्यापारपौषधोऽन्यत् । देशे सर्वस्मिंश्चेदं, चरमे सामायिकं नियमा ।।९९।।)

"आहार" गाहा व्याख्या – 'आहार-देहसत्कार-ब्रह्म-अव्यापारपौषधः' इति इह पौषधशब्दो रूढ्या पर्वसु वर्तते, पर्वाणि चाष्टम्यादितिथयः, पूरणात्पर्व धर्मोपचयहेतुत्वादित्यर्थः । पौषधशब्दश्चायं प्रत्येकमभिसंबध्यते, आहारपौषध इत्यादि । 'अन्यत्' अपरं तृतीयं पौषधोपवासशिक्षाव्रतमित्यर्थः । 'देशे' देशविषयं 'सर्वस्मिन्' सर्वविषयम्, 'चः' समुच्चये, 'इदं' पौषधोपवासशिक्षाव्रतं 'चरमे' सर्वतोऽव्यापारपौषधेऽङ्गीकृते 'सामायिकं' उक्तस्वरूपं करणीयमिति गम्यते, 'नियमात्' अवश्यंतया, अन्यथा सामायिकगुणाऽभाव इति पदघटना । तत्राहारः - प्रतीतः, तद्विषयस्तन्निमित्तो

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहास्मिन् व्रतावसरे **पौषधाभिधानं तृतीयं प्रवरं शिक्षाव्रतमुच्यते** । किंभूतमित्याह - **आहारस्याशनपानखादिमस्वादिमरूपस्य** देशतः सर्वतो वा [**देहसत्कारस्य**] **अब्रह्मणः कुव्यापारस्य** च सर्वतस्त्यागेन परिहारेण **निष्पन्नं** चातुष्प्राहरिकमाहोरात्रिकं वा पौषधमिति ।।४३९।।

एतदेव भेदतोऽभिधत्ते –

दुविहं च इमं नेयं देसे सव्वे य तत्थ सव्वंमि ।
सामाइयं पवज्जइ नियमा साहु व्व उवउत्तो ।।४४०।।

इदं च पौषधं **द्विविधं ज्ञेयम् । देशतः सर्वतश्च । तत्र** देशतः पर्वतिथ्यादिव्यतिरेकेणापि गृहगतानामपि विवेकवतां गृहिणां पूर्वोदिताहारादिचतुष्टयपरिहारेण भवत्येव । **सर्वतस्तु** पौषधं प्रतिपत्तुकामः **साधुरिव** नियमे**नोपयोगपरः** श्रमणोपासकः **सामायिकं प्रतिपद्यते** । तदन्तरेण सर्वतः पौषधस्यासंभवादिति ।।४४०।। अस्यातिचारानाह –

अप्पडिदुप्पडिलेहप्पमज्जसिज्जाइ वज्जई इत्थं ।
सम्मं च अणणुपालणमाहाराईसु सव्वेसु ।।४४१।।

वा पौषध आहारपौषधः, आहारादिनिवृत्तिनिमित्तं धर्मपूरणं पर्वेति भावना । एवं शरीरसत्कारपौषधः । ब्रह्मचर्यपौषधः, अत्र चरणीयं चर्यम्, "अचो यत्" इत्यस्मादधिकारात्, "गदमदचरयमश्चानुपसर्गे" (पा. ३-१-१००) इति यत् । ब्रह्म कुशलानुष्ठानम् । यथोक्तम् - "ब्रह्म देवो, ब्रह्म तपो, ब्रह्म ज्ञानं च शाश्वतम् ।" [ ] ब्रह्म च तच्चर्यं चेति समासः, शेषं पूर्ववत् । तथाऽव्यापारपौषध इति, एत्थ भावत्थो पुण इमो - आहारपोसहो दुविहो, देसे सव्वे य । देसे अमुगा विगई आयंबिलं वा एक्कसिं वा दो वा । सव्वे चउव्विहो आहारो अहोरत्तं पच्चक्खाओ । सरीरपोसहो ण्हाणुव्वट्टणवण्णगविलेवणपुप्फगंधतंबोलाणं वत्थाभरणपरिच्चागो य, सो वि देसे सव्वे य । देसे अमुगं सरीरसक्कारं न करेमि सव्वे सव्वं न करेमि त्ति । बंभचेरपोसहो वि देसे सव्वे अ । देसे दिवा रत्तिं वा एक्कसिं वा दो वा वारे त्ति । सव्वे अहोरत्तं बंभयारी हवइ । अव्वावारपोसहो वि देसे सव्वे य । देसे अमुगं वावारं न करेमि । सव्वे सव्वं वा वावारं चेव हलसगडघरपरिकम्माईयं न करेमि । एत्थ जो देसे पोसहं करेइ सामाइयं करेइ वा न वा । जो सव्वपोसहं करेइ सो नियमा कयसामइओ । जइ न करेइ ता नियमा वंचिज्जइ । तं कहिं करेइ ? चेइयघरे वा साहुमूले वा घरे वा पोसहसालाए वा उम्मुक्कमणिसुवण्णो पढंतो पोत्थयं वा वायंतो धम्मज्झाणं झायइ । जहा एए साहुगुणे अहं न समत्थो मंदभग्गो धारेउं विभासा" ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. ९९ वृत्तौ ।।

गाथा-४४१ 1. तुला - अत्रातिचारानाह -
अप्पडिदुप्पडिलेहियपमज्जसेज्जाइ वज्जई इत्थं । संमं च अणणुपालणमाहाराईसु सव्वेसु ।।
- श्रा. ध. वि. प्र. गा. १०० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहास्मिन् पौषधव्रते एतदतीचारपञ्चकं **वर्जयति** । तद्यथा - गृहीतपौषधो गृही **अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखिते** स्थण्डिले **शय्यासंस्तारादि** न करोति, प्रमादाच्च कुर्वतोऽतिचारः प्रथमः । एवम**प्रमार्जितदुष्प्रमार्जितेऽ**पि तथा कुर्वतो द्वितीयः । तथा पौषधी अप्रतिलेखितदुष्प्रतिलेखिते स्थण्डिले उच्चारप्रश्रवणादि न करोति, प्रमादाच्च कुर्वतस्तृतीयः । एवमप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितेऽपि तथा कुर्वतश्चतुर्थः । अत्र च प्रतिलेखनं दृष्टिकृतम्, प्रमार्जनं मुखपोतादिजनितम् । दुष्प्रतिलेखित-दुष्प्रमार्जितत्वं च कृताकृतरूपम् । यत्सूत्रम् -

"अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासंथारए । अप्पमज्जियदुप्पमज्जियसिज्जासंथारए । अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहियउच्चारपासवणभूमी । अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवणभूमी ।। [उपा. सू. अध्य. १, सूत्र-६] तथा पौषधग्रहणकालनियमितस्या**हारादिचतुष्टस्य** तद्व्रतिना **सम्यग**नुपालनं विधेयम्,

---

(अप्रतिदुष्प्रतिलेखितप्रमार्जितशय्यादि वर्जयत्यत्र । सम्यग् चाऽननुपालनमाहारादिषु सर्वेषु ।।)

"अप्पडि" गाहा व्याख्या - "अप्पडिदुप्पडिलेहिअपमज्जसेज्जा" इति, सूचनात् सूत्रमिति न्यायात् प्राकृतानुरोधा-च्चायमर्थः-अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशय्या-संस्तारकौ तथाऽप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशय्यासंस्तारकौ वर्जयतीतियोगः । इह च शय्या प्रतीता, संस्तीर्यत इति संस्तारकः-पौषधव्रत उपयोगी दर्भकुशकम्बली-वस्त्रादिः, तयोश्चाप्रत्युपेक्षणं-गोचरापन्नयोश्चक्षुषाऽनिरीक्षणं दुष्टं-उद्भ्रान्तचेतसः प्रत्युपेक्षणम्, ततश्चाप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितौ च तौ शय्यासंस्तारकौ चेति समासः, शय्यैव वा संस्तारक इति । एवमन्यत्राप्यक्षरगमनिका कार्येति । उपलक्षणं च शय्यासंस्तारकौ उपयोगिनः पीठकादेरपि । एत्थ पुण सामाचारी - "कडपोसहिओ नो अप्पडिलेहिअ सेज्जं दुरूहइ, संथारगं वा दुरूहइ, पोसहसालं वा सेवइ, दब्भवत्थं वा सुद्धवत्थं वा भूमीए संथरइ, काइयभूमीओ वा आगओ पुणरवि पडिलेहेइ, अण्णहा अइयारो । एवं पीढगाइसु वि विभासा ।।" तथा प्रमार्जनं-शय्यादेर्वस्त्रोपान्तादिना तदकरणमप्रमार्जनम्, 'सम्यग् चाऽननुपालनम्' यथावदविधानं 'आहारादिषु सर्वेषु' प्रागुद्दिष्टेषु । इति गाथार्थः ।।

एत्थ भावणा - कयपोसहो अधिरचित्तो आहारे ताव सव्वं देसं वा पत्थेइ, बीयदिवसे पारणगस्स वा अप्पणो अट्ठाए, आढत्तिं करेइ कारवेइ वा, इमं इमं व त्ति करेह न वट्टइ । सरीरसक्कारे सरीरं उव्वट्टेइ, दाढिआओ केसे वा रोमाई वा सिंगाराहिप्पाएणं संठवेइ, दाहे वा सरीरं सिंचइ, एवं सव्वाणि सरीरभूसाकारणाणि परिहरइ । बंभचेरे इहलोइए पारलोइए वा भोगे पत्थेइ संवाहेइ वा, अहवा सद्दफरिसरसरूवगंधा अभिलसइ, बंभचेरपोसहो कया पूरिही, चइयामो बंभचेरेणं ति । अव्वावारे सावज्जाणि वावारेइ, कयमकयं वा चिंतेइ, एवं पंचइयारसुद्धो अणुपालिअव्वो इति ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. १०० वृत्तौ ।।

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादाननिक्षेपसंस्तारोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थापनानि ।। - तत्त्वा. सू. ७/२९ ।। अप्रत्युपेक्षिता० धर्म बि. अ. ३/३३ ।। संथारुच्चारविही पमाय तह चेव भोयणाभोए । पोसहविहिविवरीए तइए सिक्खावए निंदे ।। - श्रा. प्र. वृ. गा. २९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमादाज्ञाविदधतः पञ्चमोऽतिचार इति ।।४४१।। अतिथिसंविभागव्रतमाह -

अन्नाईणं सुद्धाण, कप्पणिज्जाण देसकालजुयं ।
दाणं जईणमुचियं, चउत्थसिक्खावयं बिंति ।।४४२।।

एवंविधमतिथिसंविभागाख्यं **चतुर्थं शिक्षाव्रतं** पूर्वसूरयो **वदन्ति** । यत् किम् ? यद् **यतिभ्यो-**ऽतिथिभ्योऽन्नपानवस्त्रपात्रशय्यासंस्तारकम्बलौषधादीनां **दानं** वितरणम् । किम्भूतानां ? **शुद्धानां** प्रासुकानां, तथा **कल्पनीयानामेषणीयानाम्** । किंविशिष्टं दानम् ? **देशकालयुतं**

गाथा-४४२ 1. **तुला** - उक्तं सातिचारं तृतीयं शिक्षाव्रतम्, अधुना चतुर्थमुच्यते -

अण्णाईणं सुद्धाण, कप्पणिज्जाण देसकालजुअं । दाणं जईणमुचियं, गिहीण सिक्खावयं भणियं ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. १०१ ।।

(अन्नादीनां शुद्धानां, कल्पनीयानां देशकालयुतम् । दानं यतिभ्य उचितं, गृहिणां शिक्षाव्रतं भणितम् ।।)

"अण्णाईणं" गाहा व्याख्या - 'अन्नादीनां' भोजनादीनाम्, आदिशब्दात्पानवस्त्रौषधादिपरिग्रहः, अनेन च हिरण्यादिव्यवच्छेदमाह । 'शुद्धानां' न्यायागतानाम्, न्यायश्च द्विजक्षत्रियवैश्यशूद्राणां स्ववृत्त्यनुष्ठानम्; अनेनाप्य-न्यायाऽऽगतानां निषेधमाह । 'कल्पनीयानाम्' उद्गमादिदोषवर्जितानाम्, अनेन त्वकल्पनीयानां प्रतिषेधमाह । 'देशकालयुतं' प्रस्तावोचितं 'दानं' वितरणं 'यतिभ्यः' मुनिभ्यः 'उचितं' संगतं गृहिणां शिक्षाव्रतं 'भणितं' उक्तम-तिथिसंविभागव्रतमित्यर्थः । इह भोजनार्थं भोजनकालोपस्थायी अतिथिरुच्यते, तत्रात्मार्थनिष्पादिताहारस्य गृहिणः साधुरेवातिथिः । तदुक्तम् - तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे, त्यक्ता येन महात्मना । अतिथिं तं विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः ।।१।।" तस्यातिथेः संविभागोऽतिथिसंविभागः, संविभागग्रहणात्पश्चात्कर्मादिपरिहारमाह । इति गाथार्थः ।।

'एत्थ सामायारी - सावगेण पोसहं पारेंतेण नियमा साहूण दाउं पारेअव्वं, अण्णदा पुण अणियमो - दाउं वा पारेइ पारिए वा देइ त्ति । तम्हा पुव्वं साहूणं दाउं पच्छा पारेअव्वं, कहं ? जाहे देसकालो ताहे अप्पणो सरीरस्स विभूसं काउं साहुपडिस्सयं गंतुं निमंतेइ भिक्खं गेण्हह त्ति । साहूणं का पडिवत्ती ? ताहे अण्णो पडलं अण्णो मुहणंतयं अण्णो भायणं पडिलेहेइ, मा अंतराइयदोसा ठवणादोसा भविस्संति, सो जइ पढमाए पोरसीए निमंतेइ अत्थि अ नमोक्कारसहिअइत्तगो गेज्झइ, अह नत्थि न गेज्झइ, तं वहिअव्वं होइ, जइ घणं लगेज्जा ताहे गेज्झइ संचिक्खाविज्जइ । जो वा उग्घाडाए पोरसीए पारेइ पारणइत्तो अण्णो वा तस्स दिज्जइ, पच्छा तेण सावगेण समगं संघाडगो वज्जइ, एगो न वट्टइ पेसिउं, साहू पुरओ सावगो मग्गओ घरं नेऊणं आसणेण उवनिमंतइ, जइ निविट्ठा लट्ठयं, अह न निविसंति तहावि विणओ पउत्तो होइ त्ति, ताहे भत्तपाणं सयं चेव देइ त्ति, अहवा भाणं धरेइ भज्जा देइ, अहवा ठितओ अच्छइ जाव दिण्णं, साहू वि सावसेसयं दव्वं गेण्हंति पच्छाकम्मपरिहरणट्ठा, दाऊण वंदिउं विसज्जेइ, विसज्जेत्ता अणुगच्छइ, पच्छा सयं भुंजइ । जं च किर साहूण न दिण्णं तं सावगेण न भोत्तव्वं । जइ पुण साहू नत्थि ताहे देसकालवेलाए दिसालोओ कायव्वो, विसुद्धभावेण चिंतेअव्वं जइ साहूणो होंता तो म्हि नित्थारिओ होंतो त्ति विभासा ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. १०१ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशोचितं कालोचितं चेति भावः । तदिदमतिथिसंविभागव्रतम् ।।४४२।।

[1]अस्यातिचारानाह –

सचित्तनिक्खिवणयं[१], वज्जइ सचित्तपिहिणयं[२] चेव ।
कालाइक्कम[३]-परववएसं[४] -मच्छरियं[५] चेह ।।४४३।।

इहास्मिन्नतिथिसंविभागव्रते एतदतीचारपञ्चकं **परिहरति** । तथाहि-कश्चिन्मन्दमतिर्यतिभ्यो

गाथा-४४३ 1. **तुला** - अत्रातिचारानाह -

सच्चित्तनिक्खिवणयं, वज्जइ सच्चित्तपिहणयं चेव । कालाइक्कमपरववएसं मच्छरिययं चेव ।।

- श्रा. ध. वि. प्र. गा. १०२ ।।

(सचित्तनिक्षेपणं, वर्जयेत् सचित्तपिधानं चैव । कालातिक्रमपरव्यपदेशं मात्सर्यं चैव ।।)

"सच्चित्त" गाहा व्याख्या - सच्चित्तनिक्षेपणं वर्जयेत् सचित्तपिधानं चैव कालातिक्रमपरव्यपदेशं मात्सर्यं चैव वर्जयेदिति पदघटना । तत्र 'सच्चित्तनिक्षेपणं' सच्चित्तेषु-व्रीह्यादिषु निक्षेपणमन्नादेरदानबुद्ध्या मातृस्थानत एव १। 'सच्चित्तपिधानं' सच्चित्तेन-फलादिना पिधानं-स्थगनमिति समासः, भावना प्राग्वत् २ । 'कालातिक्रमः' इति कालस्यातिक्रमः कालातिक्रमः - इत्युचितो यो भिक्षाकालः साधूनां तमतिक्रम्य-अतिलङ्घ्यनागतं वा भुङ्क्ते, तदा च किं तेन लब्धेनापि ? कालातिक्रान्तत्वात् ३ । तदुक्तम् - "काले दिण्णस्स पहेणयस्स अग्घो न तीरए काउं । तस्सेव अथक्कपणामिअस्स गिण्हंतया नत्थि ।। [ ] 'परव्यपदेशः' इति आत्मव्यतिरिक्तः परः तस्य व्यपदेशः परव्यपदेश इति समासः । साधोः पौषधोपवासपारणकाले भिक्षायै समुपस्थितस्य प्रकटमन्नादि पश्यतः श्रावकोऽभिधत्ते परकीयमिदमिति नास्माकीनमतो न ददामि किञ्चित्; याचितो वाऽभिधत्ते विद्यमान एवामुकस्येदमस्ति तत्र गत्वा मार्गत यूयमिति ४ । मात्सर्यमितियाचितः कुप्यति, परोन्नतिवैमनस्यं वा मात्सर्यमिति तेन तावद् द्रमकेण याचितेन दत्तं किमहं ततोऽपि न्यून इति मात्सर्याद्ददाति, कषायकलुषितेन वा चित्तेन ददतो मात्सर्यम् ५ । इति गाथार्थः ।। - श्रा. ध. वि. प्र. गा. १०२ वृत्तौ ।।

सचित्तनिक्षेपपिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ।। - तत्त्वा. सू. ७/३१ ।। ध. बि. अ. ३/३४ ।।

सच्चित्ते निक्खिवणे, पिहिणे ववएस मच्छरे चेव । कालाइक्कमदाणे, चउत्थे सिक्खावए निंदे ।। - श्रा. प्र. वृ. गा. ३० ।।

योगशास्त्रस्य द्वितीयप्रकाशे पञ्चाणुव्रतस्वरूपं सविस्तरं प्रासङ्गिककथासहितं वर्णितम्, तृतीयप्रकाशे त्रयाणां गुणव्रतानां चतुर्णां शिक्षाव्रतानां च प्रासङ्गिककथाभिः सह स्वरूपम् दर्शितम्, गुणव्रतेषु भोगोपभोगविरमणव्रते भक्ष्याभक्ष्यादिस्वरूपं सयुक्तिकं प्रदर्शितम् । द्वादशानां व्रतानामतिचाराः विस्तरेण वर्णिताः, भोगोपभोगव्रतातिचार-प्रसङ्गे पञ्चदश कर्मादानानि प्रदर्शितानि ।।

धर्मबिन्दौ द्वादशव्रतस्य, व्रतस्यातिचाराणि च दृश्यतां - अ. ३, सू. १६-३४ ।।

श्रावकप्रज्ञप्तौ द्वादशव्रतस्य तथा व्रतस्यातिचाराणां स्वरूपं गा. २५८तः आरभ्य ३२८पर्यन्तं सविस्तरेण प्रदर्शितम् ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देयस्य वस्तुजातस्य **सञ्चित्ते** पृथिवीजलकुम्भोपचुल्लीधान्यादौ **क्षेपणं** करोति । इति चास्य कुमतेर्मतिर्यदहं दानोपक्रममपि करिष्ये सञ्चित्तस्थं च न ग्रहीष्यन्ति साधव इति लाभोऽयं ममेति प्रथमोऽतिचारः । तथा देयस्यैव वस्तुनः **सञ्चित्तेन** पुष्पफलादिना पूर्वबुद्ध्यैव **पिधानं** विदधतो द्वितीयः । तथा **कालः** साधूनां यः समुचितो भिक्षाकालस्**तस्य** तयैव बुद्ध्याऽ**तिक्रमं** करोति, तमतिवाह्य भुङ्क्ते अनागतं वा भुङ्क्ते इति तृतीयः । तथा भिक्षार्थमुपस्थितेषु यतिषु खण्डगुडादिकं तदुपयोगि वस्तुजातं पुरः पश्यन् शाठ्येन उच्चैर्व्याहरति । यथा हे ! साध्विदं देयं वस्तु, उपस्थिताश्चामी महात्मानः, परं किं क्रियते, परकीयमिदं, यद्यात्मीयमभविष्यत्, तदैतद् वितरणेन महत् पुण्यमुपात्तमभविष्यदिति **परव्यपदेशाच्**चतुर्थः । तथा 'अनेन द्रमकेण मुनिभिर्मार्गितेनैतद् दत्तम् किमहमितोऽपि हीन' इति **मात्सर्याद्** ददतः पञ्चमः । अमी त्वनाभोगादिनैव विधीयमानाः पञ्चाप्यतीचाराः सम्भवन्ति । अन्यथा तु भङ्गा एवेति ।।४४३।।

एवं द्वादशापि व्रतानि सातिचाराण्यभिधाय तानि निगमयन्नाह -

इय दंसणमूलाइं, बारस वि वयाइं सुगुरुपयमूले ।
गिन्हिय परिपालंता, नियमा सुस्सावगा हुंति ।।४४४।।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण **दर्शनमूलानि द्वादशापि** प्राणातिपातविरमणमुख्यान्यतिथिसंविभाग-पर्यवसानानि गृहि**व्रतानि गीतार्थगुरुचरणोपान्ते** मिथ्यात्वपरिहारपुरस्सरं विधिवत् **प्रतिपद्य परि**सामस्त्येन निरतिचाराणि **पालयन्तो नियमात् सुश्रावका भवन्ति** । किल परमेष्ठिपदमात्रानुसारिणोऽपि [1]श्रावकशब्दवाच्याः । पूर्वोक्तव्रतप्रतिपत्तिपरास्तु सुश्रावकाः, इति विशेषः ।।४४४।।

गाथा-४४४ 1. परलोयहियं सम्मं जो जिणवयणं सुणेइ उवउत्तो । अइतिव्वकम्मविगमा, सुक्कोसो सावगो एत्थ ।। पञ्चा. १/२ ।। स्रवंति यस्य पापानि पूर्वबद्धान्यनेकशः । आवृतश्च व्रतैर्नित्यं श्रावकः सोऽभिधीयते ।।१।। सम्पत्तदंसणाइ पइदिअहं जइजणा सुणेई अ । सामायारिं परमं, जो खलु तं सावगं बिन्ति ।।२।। श्रद्धालुतां श्राति पदार्थचिन्ताद्धनानि पात्रेषु वपत्यनारतम् । किरत्यपुण्यानि सुसाधुसेवनादत्तोऽपि तं श्रावकमाहुरुत्तमाः ।।३।। यद्वा श्रद्धालुतां श्राति श्रृणोति शासनं दानं वपत्याशु वृणोति दर्शनम् । कृन्तत्यपुण्यानि करोति संयमं तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः ।।४।। तथा - श्रद्धा सम्यग् धर्मेऽस्यास्तीति 'प्रज्ञाश्रद्धार्यावृत्तेर्णः (सि. है. ७-२-३३) इति णप्रत्यये श्राद्ध इति, श्राद्धशब्दान्वर्थोऽपि भावश्राद्धत्वापेक्ष एवत्यत्रोक्तं भावश्राद्धेनात्राधिकार इति । - श्राद्ध वि. गा. ४ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्र च दृष्टान्तमाह –

एयाण निरइयाराण, सुदिढसम्मत्तमूलपेढाणं ।
परिपालणम्मि दिट्ठो दिट्ठंतो चेडगनरिंदो ।।४४५।।

अमीषां गृहिव्रतानां **निरतिचाराणां सुदृढसम्यक्त्वमूलपीठानां परिपालने** न खलु स्वल्पारम्भाः स्वोदरैकभृतिकार्यकदर्या एव क्षमाः । यावदेतन्निर्वाहे महा**नरेन्द्राश्चेटक**प्रभृतयो गणराजानोऽप्युदाहरणमिति । सम्प्रदायगम्यं चेटकनरेन्द्रवृत्तम् । तच्चेदम् -

।। व्रतस्य सुदृढपरिपालने चेटकनरेन्द्रकथानकम् ।।

इत्थेव भरहवासे वासवनयरि व्व दिव्वरिद्धीहिं । अत्थि सुविसालसाला वेसाली नाम वरनयरी ।।१।।
चामीयरसेलेणं जंबुद्दीवस्स मज्झवसुह व्व । जा सहइ महरिहेणं सिरिसुव्वयसामिथूभेण ।।२।।
तत्थ भुयदंडचंडिमचमक्कियासेसविक्कमिक्कधणो । चेडीकयपडिवक्खो नरनाहो चेडओ नाम ।।३।।
जो निसियखग्गखंडिअ - अरिकरिकुंभुच्छलन्तमुत्ताहिं । दावइ दिणेवि ताराउ सविहनिहणाण सत्तूणं ।।४।।
अत्थीण संमुहो जो परम्मुहो सव्वहा परित्थीणं । पडिवक्खाण अभीरू भीरू पावाण निच्चं पि ।।५।।
नियमेरावट्ठियइंदियत्थपुरिसत्थपोरसत्थस्स । वच्चइ सुहेण कालो अमलियमाणस्स तस्स तहिं ।।६।।
अह अन्नया जिणिंदो वरकेवलतेयसा दिणिंदु व्व । निव्वासिंतो सव्वत्थ पसरियं मोहतिमिरोहं ।।७।।
पुरओ पसप्पिरेणं इंदझएणं सधम्मचक्केण । भामंडलेण पच्छा छत्तेण व संचरंतेणं ।।८।।
गयणे पहोलिरेणं चमरजुएणं संदुदुहिरवेणं । सुरविरइयचामीयरकमलेसु निहित्तकमकमलो ।।९।।
देवेहिं चउविहेहिं सेविज्जंतो य कोडिसंखेहिं । गोयमपमुहचउद्दससमणसहस्सेहिं परियरिओ ।।१०।।
भव्वारविंदविंदं बोहिंतो नियवयणकिरणोहिं । नयरीइ तीइ भयवं समोसढो सिरिमहावीरो ।।११।। कुलकम् ।।
विप्फुरियपाडिहेरं सुरेहि अह निम्मियं समोसरणं । मणिकणयरयणमयतुंग-पवरपायारतियकलियं ।।१२।।
आसीणो तं च जिणो घणाघणो रयणसाणुसिहरं व । उवएसामयवरिसं विउलदओ काउमारद्धो ।।१३।।
अह मुणियजिणागमणो मणोरहाणं पि अविसयं हरिसं । पुलयपडलच्छलेणं पयडंतो चेडयनरिंदो ।।१४।।
हयगयरहजोहमणोरहाइ निरवज्जरज्जरिद्धीए । परिकलिओ संचलिओ वियलियमोहं जिणं नमिउं ।।१५।।
ओसरणसविहवसुहं संपत्तो झत्ति रायककुहोहं । मुत्तुं पसंतचित्तो विणयवित्ती पविट्ठो सो ।।१६।।
तिपयाहिणिऊण जिणं तिकरणसुद्धीइ नमिय तिक्खुत्तो । उवएसामयपाणं एगमणो काउमारद्धो ।।१७।।
गुरुदेवधम्मतत्ते पन्नत्ते तयणु जिणवरिंदेण । तह मिच्छत्तविवागे दुरंतभवभमणपेरंते ।।१८।।
विरइदुगस्स सरूवे सिवपुरपहजाणजाणतुल्लंमि । उल्लसियजीवविरिओ वियलियअइतिव्वमोहुदओ ।।१९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरिचेडगनरनाहो तिहुयणनाहस्स पणमिउं पाए । विन्नवइ सामिय ! मए सिरिकेसिगणेसपयमूले ।।२०।।
संमत्ताइ दुवालस पडिवन्नाइं वयाइं पुव्विं पि । तुह संपइ सव्वन्नुस्स हुंतु पुण ताइं पयडाइं ।।२१।।
थूलगपाणिवहाओ विरमंतेणं व तेण परिचत्तो । समरे वि सत्थमुक्खो इक्कं बाणं विमुत्तूणं ।।२२।।
थूलाऽलियवयणाओ विरओ थूलाउ तह अदत्ताओ । जावज्जीवं च इमो जाओ सकलत्तसंतुट्ठो ।।२३।।
मेहुणवयाइयारं परवीवाहं च परिहरंतेण । नियया वज्जाणं पि हु तेण निसिद्धो विवाहविही ।।२४।।
विरओ परिग्गहाओ असरालाओ य कुगइमूलाओ । उत्तरगुणाणि सत्त वि पडिवन्नो निरइयाराणि ।।२५।।
इय दंसणमूलाइं बारस वि वयाइं सामिपयमूले । पडिवज्जिऊण जाओ कयकिच्चो चेडगनरिंदो ।।२६।।
समरे वि इक्कसरपहरनियमगहणेण तयणु तुट्ठेहिं । सुरअसुरनायगेहिं वेसालीसामिओ भणिओ ।।२७।।
जो किर रणम्मि बाणो इक्कु च्चिय मुक्कलो तए विहिओ । सो होउ तुह अमोहो अम्ह पभावेण नरनाह ! ।।२८।।
इय दिन्नवरा सुरअसुरसामिणो नियनियं पयं पत्ता । जिणनाहो वि हु समयम्मि विहरिओ अन्नदेसेसु ।।२९।।
चेडगनरनाहो वि हु वयाणि अंगीकयाणि नियया णि । सम्मं परिपालंतो थिरचित्तो भुंजइ रज्जं ।।३०।।
इत्तो य सेणियनिवे निहणं पत्तंमि कोणिओ राया । पिइसोएणं चंपं निवेसिउं रायहाणित्ते ।।३१।।
कालाइकुमारेहिं सावक्केहिं सहोयरेहिं च । हल्लविहल्लेहिं समं भुंजइ विउलं महारज्जं ।।३२।।
हल्लविहल्लाणं पुण दिव्वो हारो य सेयणयहत्थी । सेणियनिवेण दिन्नो पुरा वि तह अभयजणणीए ।।३३।।
नंदाइ खोमजुयलं कुंडलजुयलं च पव्वयंतीए । अह दो वि सोयरा ते परुप्परं पीइपडिबद्धा ।।३४।।
निवसियदिव्वदुगूला सवणंतललंतकुंडलजुगा य । हारपसाहियवच्छा सेयणयगइंदमारूढा ।।३५।।
कीलंति जहिच्छाए देवा दोगुंदग व्व अणवरयं । अह ते तह पेक्खंती कोणियरन्नो महादेवी ।।३६।।
पउमावई विचिंतइ जं सारं इत्थ अम्ह रज्जंमि । तं एयाणायत्तं किं मह पइणो पहुत्तेण ।।३७।।
इय मच्छरेण रयणाण ताण पज्जप्पणाय अणवरयं । सा पभणइ रायाणं सो वि हु तं जंपए देवि ! ।।३८।।
एए सहोयरा मह रयणाणि इमेसि तायपाएहिं । पुव्वं पि विइन्नाइं ता कह जुज्जंति घित्तुं जे ।।३९।।
इत्थीसहावसुलहेण सा वि असदग्गहेण तह लग्गा । कन्ने निवस्स जह सो वि मग्गए ताणि तेहिंतो ।।४०।।
अज्झवसाओ एसो इमस्स न हु सुंदरु त्ति तो ते वि । रयणीइ ताणि रयणाणि तह य नियगं परीवारं ।।४१।।
घित्तूणं वेसालिं पत्ता मायामहस्स लहु नयरिं । अह सो वि सबहुमाणं ठावेइ ते नियगतणय व्व ।।४२।।
तं मुणिय कूणिओ वि हु इत्थीमंतेण दूमिओ वि दढं । अभिमाणधणत्तणओ दूएणं चेडगं भणइ ।।४३।।
हरिऊणं रयणाइं हल्लविहल्ला समागया इत्थ । तो बोहिउं विसज्जसु जइ वा दावेसु मह रयणे ।।४४।।
चेडगनिवो वि दूयं जंपइ सरणागयं न अन्नं पि । अप्पेमि अहं कि पुण मह चेव सुयासुए एए ।।४५।।
रयणाणि वि एएसिं लब्भंति इमेहिं चेव दिन्नाणि । दाणारिहाण गहणं करेमि एयाण कह णु अहं ।।४६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पडिभणइ पुणो दूओ आवयभूया इमे धुवं तुज्झ । ता एयाण निमित्तं रज्जब्भंसं भयसि कीस ।।४७।।
सामरिसो वेसालीसामी वि हु भणइ दूय ! किं बहुणा । अप्पेमि न कस्सावि हु हल्लविहल्ले हढेणाहं ।।४८।।
मुणिऊण निच्छयं से दूओ चंपाहिवस्स साहेइ । अह दंडघट्टिओ विसहरु व्व विप्फुरियकोवभरो ।।४९।।
दावेइ तक्खणं चिय पयाणढक्कं स चेडगस्सुवरिं । कालाइणो कुमारा सन्नद्धा दस वि तेण समं ।।५०।।
हयगयरहाण सहसा पत्तेयं तिन्नि तिन्नि सव्वेसिं । कोडीओ तिन्नि पुढो पत्तीणिक्कारसन्हं पि ।।५१।।
इय इत्तियमित्तेहिं सिन्नेहि तदुक्खएहिं य रएहिं । धरणिं तरणिं च तया छाएंतो कूणिओ चलिओ ।।५२।।
पणिहिमुहेणं मुणिऊण चेडगो वि हु समावडंतं तं । अट्ठारसहिं समेओ गणराईहिं तओ चलिओ ।।५३।।
हयगयरहजोहाणं संखा इक्कारसन्ह जा वुत्ता । पत्तेयं पत्तेयं स च्चिय अट्ठारसन्हं पि ।।५४।।
तावइएहिं समेओ वेसालीसामिओ वि सिन्नेहिं । सागरवूहं काउं ठिओ सदेसस्स सीमाए ।।५५।।
अक्खंडपयाणेहिं चंपानाहो वि निययसीमाए । आवासिओ बलेहिं गरुडवूहं रयावेउं ।।५६।।
कालकुमारो ठविओ चंपानाहेण सिन्नसामि त्ति । दोसु वि बलेसु जाया कमसो संगामसामग्गी ।।५७।।
बंभंडखंडमंडवविहंडणुड्डमरघोरघोसाइं । रणतूराइं पहयाइं सुहडरोमुग्गमकराइं ।।५८।।
पाइक्का पाइक्केहिं अस्सवारा य अस्सवारेहिं । रहिया रहिएहिं तया गयाहिरूढा गयगएहिं ।।५९।।
अब्भिट्ठा भट्टेहिं उग्घट्टियकुलबलेहिं तोरविया । नियसामिकज्जसंसाहणिक्करसिया रणे सुहडा ।।६०।।
कुडिलधणुपेरिएहिं तिक्खमुहेहिं व मम्ममहणेहिं । दुज्जणवयणेहि व मग्गणेहि को सल्लिओ न तहिं ।।६१।।
सुहडेहिं कंकडा जे धरिया हिययम्मि निद्धबंधु व्व । निच्चिंसेहिं ते अहह ! भेइया बद्धमुट्ठीहिं ।।६२।।
असिहत्थेण विलूणे कुंतकरेणं च कीलिए सीसे । तो दोवि निहणिऊणं तप्पुव्वहओ गओ निहणं ।।६३।।
उग्गीरिअखग्गि च्चिय कस्स वि वामेयरे करे लूणे । असिधेणूइ हणंतो वामकरो दक्खिणो जाओ ।।६४।।
जोहकरमुक्कगुरुसव्वलोहवणविवरगलिररुहिरोहा । दीसंति सगेरुयनिज्झर व्व गिरिणो रणे करिणो ।।६५।।
कीलालकूलिणीहिं करिगिरिदेहुब्भवाहिं संरुद्धा । न मिलंति केवि दढरूढगाढरागा वि सुहडोहा ।।६६।।
एवंविहंमि समरे सागरवूहं विगाहिय सयलं । पोउ व्व कालकुमरो तडं व चेडयनिवं पत्तो ।।६७।।
कुलिसं पिव अक्खलियं तमन्नपहरणगणेहिं मुणिऊण । तप्पाणमग्गणं दिव्वमग्गणं चेडगो मुयइ ।।६८।।
सह कूणियविजयमणोरहेण बाणेण तेण तक्कालं । कालं कालस्स मुहे छुहेइ वेसालिपुरिनाहो ।।६९।।
सह कालकुमारेणं अत्थमिए दिणवइम्मि तिमिरेण । सोएण व चंपाहिवसिन्नं छन्नं जयं सयलं ।।७०।।
सोयपमोयपराणं रयणी चंपेसचेडयबलाणं । जग्गंताण विलीणा गोसम्मि तओ महाकालो ।।७१।।
विहिओ सेणानाहो चंपानाहेण सो वि जुज्झंतो । वेसालिसामिणा लहु निहओ दिव्वेण बाणेण ।।७२।।
इय दस दसहि दिणेहिं सेणियनिवनंदणा महाबलिणो । चेडगनरनाहेणं अमोहविसिहेण निट्ठविया ।।७३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्खुहियमणो तत्तो चंपानाहो विचिंतए एवं । दिव्वपभावेण धुवं निहणइ मायामहो मज्झ ।।७४।।
अमुणियमाहप्पेणं इमस्स एए मए हयासेण । अप्पसमाणा निहणं हद्धी नियबंधुणो नीया ।।७५।।
अवसरिउं पि न जुत्तं मह माणधणस्स संपयं इत्तो । आराहिस्सं देवे अहं पि ता पाडिहेरकरे ।।७६।।
इय निच्छिऊण काऊण अट्ठमं संठिओ स पणिहाणे । पुव्वभवपरिचएणं तवप्पभावेण य तओ से ।।७७।।
सक्को चमरो य पुरो पयडीहोऊण भणइ नरनाहं । किं तुज्झ पियं कीरेइ वज्जरसु मणवंछियं नियय ।।७८।।
सो भणइ जइ पसन्ना तुब्भे ता हणह चेडयनरिंदं । सोहम्मवई जंपइ नरवर ! अवरं वरं वरसु ।।७९।।
साहंमिओ खु मज्झं चेडयराया न तं विणासेमि । किं तु तुह देहरक्खं काहं तप्पहरणेहिंतो ।।८०।।
चमरो वि सिलकंटयरहमुसले तस्स देइ दो जुद्धे । पढमंमि कक्करो वि हु सिलासमो पडइ सत्तुबले ।।८१।।
तह कंटओ वि पहरणकज्जं निवडंतओ कुणइ तत्थ । बीयम्मि य रहमुसला भमंति सयमेव रिउसिन्ने ।।८२।।
इय दाऊण वराइं अंतरिएसुं सुरासुरपहूसु । पमुइयमणो पयट्टो पुणो वि कोणियनिवो समरे ।।८३।।
सुरअसुरसामिएहिं कयसन्निज्झेण तेण पारद्धं । पडिवक्खपक्खविक्खेवबद्धकक्खं महासंखं ।।८४।।
इत्तो चेडयरन्ना नागस्स रहिस्स नत्तुओ वरुणो । विहिओ सेणानाहो सुसावगो बारसवयड्ढो ।।८५।।
निज्झं पि छट्ठभोई उवरिं छट्ठस्स अट्ठमं काउं । रायाभिओगवसओ तंमि पविट्ठो रणे भीमे ।।८६।।
हक्कंतो जंबुयपेडयं व परचक्कमिक्कहेलाए । चंपेसचमूवइणो सीहो इव सम्मुहो जाओ ।।८७।।
तेणावि जंपिओ सो पहरसु पढमं ति भणइ अह वरुणो । गहियव्वउ म्हि पुव्विं अकयपहारे न पहरेमि ।।८८।।
अह साहु साहु भणिरेण मगहनाहस्स सो चमूवइणा । बाणेण दढं पहओ कोवकडक्खेण व जमस्स ।।८९।।
उप्पन्नअमरिसेणं वरुणेण वि रोसअरुणनयणेणं । इक्केण कंकपत्तेण सो कयंतातिही विहिओ ।।९०।।
सयमपहारविहुरो रणरंगाओ विणिग्गओ झत्ति । काऊण दब्भसंथरमिय चिंतेउं समारद्धो ।।९१।।
सव्वप्पणा वि विहियं देहेण इमेण सामिणो कज्जं । काउं नियकज्जं पि उ संजाओ अवसरो इन्हिं ।।९२।।
तो सिद्धाण समक्खं आलोयइ सयलपावट्ठाणाणि । उच्चारेइ वयाइं खामेइ य सव्वसत्ताणि ।।९३।।
पडिवज्जिऊण तत्तो चउव्विहाहारमणसणं धीरो । धम्मज्झाणनिलीणो सुमरियपरमिट्ठिपंचपओ ।।९४।।
पच्चक्खं पिव पुरओ पिक्खंतो पणमिरो य पुणरुत्तं । धम्मायरियं नियय चरमजिणं सिरिमहावीरं ।।९५।।
सुहलेसो मरिऊणं चउपलियाऊ सुरो स सोहम्मे । अरुणाभंमि विमाणे संजाओ दिव्वरूवधरो ।।९६।।
अह तस्स समरमहियम्मि तम्मि देहम्मि तियसनियरेहिं । साहु अहो ! आराहियमिमेण इय जंपिरेहिं तया ।।९७।।
मुक्को कुसुमुक्केरो तयाइ जाओ जणप्पवाओ जं । धारातित्थम्मि हया एवं सग्गंमि वज्जंति ।।९८।।
तत्तो चुओ विदेहे स सिज्झिही तयणु से तया मित्तो । एगो पहारविहुरो मिच्छदिट्ठी वि लहुकम्मो ।।९९।।
वरुणस्स जहादिट्ठं सयलं पि हु चिट्ठियं अणुट्ठंतो । मरिउं मणुओ जाओ महाविदेहम्मि सिज्झिहिही ।।१००।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अह निम्महिए वरुणे सविसेसं पोरिसं पयडिराणं । चेडयचंपेसबलाण जायमाओहणं घोरं ।।१०१।। कहं वि य -
पवडंतगयं विहडंतहयं पसरंतसरं निवडंतनरं । पुलयंतभडं निवडंतधडं विदलंतरहं अवहंतपहं ।।१०२।।
अवि य -
हिसंतआसघट्टयं पढंतभूरिभट्टयं, दुक्कंतमत्तवारणं भडाण तुट्टिकारणं ।
रसंततारतूरयं जोइज्जमाणसूरयं, समुल्लसंतजोहयं घडंतसंदणोहयं ।।१०३।।
ढलंतचारुचामरं पडंतछत्तडामरं, वज्जंतजुद्धढक्कयं अन्नुन्नमुक्कहक्कयं ।
फुरंततिक्खखग्गयं बलाण ताण लग्गयं, पयंडकोवकारणं परुप्परं महारणं ।।१०४।।
चेडयबलेण तत्तो कवलिज्जंतं नियं बलं दट्ठुं । कोलु व्व विगाहेउं सागरवूहं समग्गं पि ।।१०५।।
संपत्तो चंपेसो वेसालीनाहसन्निहाणम्मि । तेणावि दिव्वबाणो पुव्वपओगेण पम्मुक्को ।।१०६।।
सक्केण वज्जकवओ विउव्विओ कोणियस्स अह पुरओ । कालायससन्नाहो चमरेण वि पिट्ठओ विहिओ ।।१०७।।
अह कुलिसकक्कसो वि हु खलिओ विसिहो स तम्मि कवयम्मि ।
चेडगबलेण तइया मुणिओ पुन्नक्खओ पहुणो ।।१०८।।
मुंचइ न सज्झसंधो बीयं बाणं स तम्मि चेव दिणे । ओहट्टिउं ठियाइं बलाइं तो दो वि रयणीए ।।१०९।।
बीयदिणे वि हु जाओ मोहसरो चेडओ महीनाहो । एवं जायइ तेसिं दिणे दिणे जुद्धमइघोरं ।।११०।।
दोसु वि बलेसु तइया असीइलक्खाहिया सुहडकोडी । जा किर रणे विवन्ना सा तिरिनरएसु उववन्ना ।।१११।।
गणरायबलेसु तओ पलायमाणेसु चेडगो राया । वेसालीइ पविट्ठो रुद्धा सा कूणिएण तओ ।।११२।।
सेयणयगयारूढा हल्लविहल्ला निसासु सत्तुबलं । आलोडिऊण सयलं कुसलेण पुरीइ पविसंति ।।११३।।
धरणे व मारणे वा न खमा ते तस्स हत्थिमल्लस्स । दीसइ खणं न दीसइ जं सो मायामयंगु व्व ।।११४।।
बाढमुवताविएणं सचिवा चंपाहिवेणुवालद्धा । अइगंभीरं खायं कारिंति गयागमणमग्गे ।।११५।।
खाइरअंगारेहिं पूरित्ता तं च उवरि छायंति । अह निसि हल्लविहल्ला सेयणयगया गया तत्थ ।।११६।।
मुणिऊण विभंगेणं खायं अवगणियअंकुसो हत्थी । न चलइ पयं पि जा ता कुमरेहि तच्छि[ज्जि]ओ एवं ।।११७।।
अंगीकओ वि एसो नियबंधू वि हु अबंधवो विहिओ । तह अज्ज चेडगो वि हु वसणसमुद्दंमि पक्खित्तो ।।११८।।
रे पसुय ! तुज्झ कज्जे संपइ संगामकायरो होउं । अवगणसि अम्ह कज्जं अणज्ज ! अवगणियमज्जाय ! ।।११९।।
अविउत्तसामिभत्ती साणो वि हु सुंदरो तुमाहिंतो । अरिसंकडंमि एवं पडिकूलो कीव ! न उण तुमं ।।१२०।।
निब्भच्छिओ वि एवं अज्जंतं सामिभत्तिजुत्तो सो । ओयारिऊण कुमरे बला वि नियपिट्ठभागाओ ।।१२१।।
पडिओ झंपं दाउं खायंमि स तंमि जममुहसमाणे । मरिऊण य उववन्नो नेरइओ पढमपुढवीए ।।१२२।।
दट्ठुं तं तह कुमरा अइदुस्सहसोगपावगपलित्ता । इय सोइउं पवत्ता सेयणयगइंदमुद्दिसिउं ।।१२३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाईइ पसू एसो अम्हे कम्मेण पुण धुवं पसुणो । माइंदजालमेयं रिऊण फुरिउं[यं] मणे जस्स ।।१२४।।
एगंतसामिभत्तो वि सत्तुबलदलणपञ्चलबलो वि । हद्धी अबुद्धिएहिं अम्हेहिं घंसिओ एसो ।।१२५।।
परितज्जिओ वि सुइरं सेयणओ सेयमेव वंछंतो । उत्तारिऊण अम्हे सयं कयंतातिही जाओ ।।१२६।।
एयस्स चेव कज्जेण अज्ज चेडगबलं समग्गंपि । लग्गणएहिं व गमियं निहणं अम्हेहिं पावेहिं ।।१२७।।
मुक्का इमेण पाणा संपइ निब्भच्छिएण अम्हेहिं । तम्हा खणमवि न खमं अओ वरं जीविउं अम्हं ।।१२८।।
जीवामो जइ कह वि हु होऊणं तिहुयणिक्कसरणस्स । सीसो सिरिवीरजिणेसरस्स न हु अन्नहा नियमा ।।१२९।।
इय भावसमणभावे पडिवन्ने तेहिं धीरचरिएहिं । सासणसुरीइ नीया ते पव्वइया जिणसगासे ।।१३०।।
एवं पव्वइएसु हल्लविहल्लेसु वेरमूलेसु । मुंचइ अभिमाणधणो चंपानाहो न वेसालिं ।।१३१।।
विहिया य इय पइन्ना इमेण खरजुत्तनंगलेण इमं । जइ न खणामि पुरिं ता नूणं पाणे विमुंचामि ।।१३२।।
इय विहियपइन्नो वि हु गिण्हेउं तं पुरिं अचायंतो । चिंताउरो निसीहे इय असरीरिं सुणइ वाणिं ।।१३३।।
"शमने जइ कूलवालए मागहियं गनियं लगिस्सदि । लाथा य असोगचंदए वेसालिं नगलिं गहिस्सदि ।।१३४।।"
उप्पायवयणमेयं सच्चं चिय इय मणे विचिंतंतो । नियमंतिगणं गोसे जंपइ चंपाहिवो एवं ।।१३५।।
को एस कूलवालयसमणो गणिया य का व मागहिया । इय मुणिय कहह सम्मं बहुदिट्ठबहुस्सुया तुब्भे ।।१३६।।
पभणंति ते वि सामिय ! मागहिया ताव तुम्ह नयरीए । चंपाइ अत्थि गणिया समणं तु न जाणिमो सम्मं ।।१३७।।
अह अद्धेण बलेणं तहेव परिवेढिऊण वेसालिं । सेसबलेण समेओ चंपाइ सयं गओ राया ।।१३८।।
वाहरिऊण य गणिया भणिया सम्माणपुव्वयं रन्ना । उवजीविया खु तुमए सुंदरि ! बहुपुरिसबुद्धीओ ।।१३९।।
सम्मं च वेसियं छव्विहं पि जाणेसि अम्ह ता कज्जे । सहलेसु तं रमिउं पइभावे कूलवालमुणिं ।।१४०।।
इय भणिऊणं आभरणवत्थपभिईहिं भूसिया एसा । अंगीकरेइ सव्वं तं समणगरमणवुत्तंतं ।।१४१।।
अह तिहुयणगयमायापरमाणुदलेण निम्मिय व्व इमा । कवडेण लहुं जाया सुसाविया समणिसेवाए ।।१४२।।
पूएइ देवगुरुणो कुणइ य साहम्मियाण वच्छल्लं । सुणइ य धम्मपयाइं तयंतिए छम्मधम्मरया ।।१४३।।
पत्थावे परिपुच्छइ सच्छमणं कं पि मुणिवरं एसा । को एस कूलवालगसमणो भयवं ! वसइ कत्थ ? ।।१४४।।
भणियं च तेण भद्दे ! एसो मुणिपुंगवस्स एगस्स । सीसो पयइदुरप्पा गुरुपडिकूलो य पयईए ।।१४५।।
सारणवारणचोयणपमुहं पि न गिन्हए तओ चेव । सह तेण अह गया ते कयाइ उज्जंतवरतित्थं ।।१४६।।
अभिवंदिऊण देवे गिरिमग्गेणं निवत्तमाणाणं । गंडोवलो विमुक्को तेण वहत्थं नियगुरूणं ।।१४७।।
सुणिऊण खडखडारवमिमेहिं जंघे पसारिए झत्ति । गंडोवलो विगलिओ तयंतरे तयणु स गुरूहिं ।।१४८।।
"तवलद्धिसंजुएहिं सत्तो रे पाव ! पाविहसि नूणं । इत्थीइ सयासाओ वयभंगं भग्गमज्जाय !' ।।१४९।।

1. तपोलब्धिसंयुतैः शप्तः इत्यर्थः । - सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो भणइ तुज्झ वयणं अलिअं काउं तहिं अहं गमिहं । जत्थ न इत्थीवयणं पि पिच्छिहं इय भणेऊण ।।१५०।।
गिरिकाणणम्मि एगम्मि संठिओ तवइ सो तवं घोरं । पहियाइसयासाओ कयाइ से पारणं होइ ।।१५१।।
गिरिणइकूलं वलियं तवप्पभावेण तस्स वासासु । तप्पभिइं सो भिन्नइ समणो किल कूलवालु त्ति ।।१५२।।
अमुगत्थ अत्थि संपइ इय भणिए पमुइया इमा हियए । काऊण तित्थदंसणकवडं कमसो गया तत्थ ।।१५३।।
अह वंदिउं मुणिं तं तित्थे वंदाविऊण य पसत्थे । अब्भत्थइ भिक्खत्थं सा कवडोवासिया एवं ।।१५४।।
भयवं ! संबलसेसं अत्थि मह किंपि फासुएसणियं । तं पसिऊणं गिन्हसु अणुगिन्हसु मं महाभाग ! ।।१५५।।
इय तीइ भत्तिबहुमाणपेरिओ सो गओ तयावासं । पडिलाभिओ य सुमणुन्नमोयगे जोगसंजुत्ते ।।१५६।।
अह ताण [1]मोयगाणं अप्पडिहयविरियजोगमाहप्पा । जाओ से अइसारो दुव्वारो तक्खणा चेव ।।१५७।।
तह तेण खेइओ सो जह न खमो अंगुवंगचलणे वि । अह मागहियाइ इमो भणिओ विणएण आगंतुं ।।१५८।।
भयवं ! मज्झ निमित्तेण तुम्ह खेओ इमो समुप्पन्नो । ता सुस्सूसाइ इमं पावं परिहरिउमिच्छामि ।।१५९।।
असहेण अणुन्नाया मुणिणा सा न्हाणमद्दणाईहिं । सव्वंगं संफासं इमस्स अणुवेलमायरइ ।।१६०।।
सवियारं च पलोयइ आलवइ हसेइ दंसए पणयं । किं बहुणा हियहियओ विहिओ सो तीए अचिरेण ।।१६१।।
सो चत्तलोयजत्तो वि तिव्वतवसुसियसयलगत्तो वि । गुरुवयणमंतहीणो छलिओ वेसापिसाईए ।।१६२।।
अह पयडियपइभावो नीओ सो तीइ निवइपयमूले । भणियं च एस पणमइ मज्झ पई कूलवालो भे ।।१६३।।
ता सप्पणयं भणिओ सो चंपेसेण भद्द ! तह कुणसु । जह कालखेवरहियं अहं विलुंपामि वेसालिं ।।१६४।।
सो वि हु तहत्ति पडिवज्जिऊण काउं तिदंडिणो वेसं । गुंमियजणअक्खलिओ वेसालीए लहु पविट्ठो ।।१६५।।
तत्थ य चिंतइ एसो पहीणबलसामिया वि नणु एसा । किं न विलुप्पइ नयरी दप्पिट्ठेण वि परबलेण ।।१६६।।
अह भमिरेणं दिट्ठो सिरिसुव्वयसामिणो थिरपइट्ठो । गरुयारंभो थूभो सप्पडिमो चुन्नमप्पडिमो ।।१६७।।
मुणइ य इमस्स नूणं सुमुहुत्तपइट्ठियस्स थूभस्स । माहप्पेणं एसा न विलुप्पइ परबलेहिं पुरी ।।१६८।।
दिट्ठो य इमो नयरीसंरोहकयत्थिएहिं पोरेहिं । पुट्ठो य भयंत ! कया मुच्चिस्सइ परबलेहि पुरी ।।१६९।।
वज्जरइ सो अणज्जो किं इत्तियमित्तिएण निव्विन्ना । इह जाव इमो थूभो अखंडरूवो परिप्फुरइ ।।१७०।।
ताव न वाससएण वि मुच्चिस्सइ रोहओ पुरी एसा । अवणीए उ इमम्मी मुच्चइ नणु संपयं चेव ।।१७१।।
एसो य पच्चओ इह इमस्स सिहरेऽवणिज्जमाणम्मि । परचक्कमवक्कमिही कमेण गमिही समग्गंपि ।।१७२।।
इय धुत्तेणं तेणं पयारिया निवइणा निसिद्धा वि । तब्भंगंमि विलग्गा लोगा होऊण एगग्गा ।।१७३।।
इत्तो कयसंकेओ समणेणं कूणिओ अवक्कंतो । जाओ य चमक्कारो जणाण तो तस्स वयणम्मि ।।१७४।।
अह जायपच्चएहिं आकुम्मनिवेसओ तओ तेहिं । उम्मूलिओ स थूभो नयरीए जीवबीयं व ।।१७५।।
वलिऊण कूणिएणं सालो मुसुमूरिओ पुरीइ तओ । थूभस्स चेव महिमा जं सो भग्गो किर न पुव्वं ।।१७६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इय बारसवरिसेहिं गहिया नयरी निवेण सा तेण । अवसप्पिणीइ जायं इमीइ न हु एरिसं जुद्धं ।।१७७।।
तत्तो दूयमुहेणं असोयचंदेण चेडओ भणिओ । पुज्जो सि अज्ज ! चेडग ! किं ते कीरउ पियं इत्तो ।।१७८।।
पडिभणिओ य स तेणं जइवि हु विजओ सुओ सि तं वच्छ ! ।
तहवि करिज्ज पवेसं नयरीइ विलंबिऊण खणं ।।१७९।।
इत्तो चेडगतणयाइ नंदणो सङ्घई सुजिट्ठाए । सुपसिद्धसिद्धविज्जो गयणंमि समागओ तइया ।।१८०।।
मह मायामहलोयं एसो किर लुंपिही अणज्जु त्ति । उक्खित्ता गयणयले सा तेण पुरी समग्गा वि ।।१८१।।
नेऊण नीलवंते गिरिंमि मुक्का य लहु निराबाहं । चेडगनिवेण य तया जं विहियं तं निसामेह ।।१८२।।
काऊण अणसणं बंधिऊण कंठंमि लोहपंचालिं । अत्थाहम्मि जलम्मी मुक्को धीरेण तेणप्पा ।।१८३।।
निवडंतो य स दिट्ठो धरणेणं नागराइणा तइया । साहम्मिउ त्ति तुरियं पडिच्छिओ नियय हत्थेहि ।।१८४।।
नीओ य रसायलसंठियंमि भवणंमि मणिमए नियए । सव्वत्थ वि कल्लाणं कल्लाणपराण पुरिसाणं ।।१८५।।
तत्थ य सिरिअरहंते अट्ठविहं पाडिहेरमरहंते । सिद्धाणंतचउक्के सिद्धे जरमरणपंमुक्के ।।१८६।।
सीलंगुव्वहणखमे साहू पूयावमाणणासु समे । केवलिपणीयधम्मं निहलियासेसदुक्कम्मं ।।१८७।।
एए काउं सरणं चउरो चउरंतभवभयविमुक्के । अट्ठारस आलोयइ पावट्ठाणाणि अणुकमसो ।।१८८।।
खामिंतो सत्तगणं परमिट्ठिपयाइं सुट्ठु सुमरंतो । धम्मज्झाणेण मओ पत्तो चेडगनिवो तिदिवं ।।१८९।।
वेसालीए वसुहं खरजुत्तेणं हलेण खेडिंतो । तिन्नपइन्नो पत्तो चंपानाहो वि नियनयरिं ।।१९०।।
गृहिव्रतानीति गतातिचाराण्याराध्य युद्धाद्यतिसङ्कटेऽपि ।
श्रीचेटकक्ष्माप इव श्रयन्ते भव्याङ्गिन स्वःकमलाविलासम् ।।१९१।।

किञ्च, न केवलमियं देशविरतिर्मर्त्यामर्त्यसम्पत्सम्पादनफलैव यावदविकलसेवया निर्वृतिपथोपलम्भफलापीति गाथाकुलकेन दर्शयन्नाह -

मिच्छद्दिट्ठिसुरासुरनरवइपमुहेहिं पाणहरणे वि ।
खोभेउं न समत्था, निग्गंथाओ पवयणाओ ।।४४६।।

किल गृहिणोऽपि गृहाश्रमजुषोऽपि एवमुच्यमानप्रकारेण ये वर्त्तन्ते तेषां निर्वृतिपथो न दुर्लभ इति कुलकप्रान्तगाथया सम्बन्धः । किम्भूताः? **मिथ्यादृष्टिभिर्वितथदर्शनैः सुरासुरनरपतिप्रमुखैः प्राणात्ययेऽपि निर्ग्रन्थात् प्रवचनादर्हच्छासनाच्चुलनीपितृकामदेवादिवत् क्षोभयितुं** धर्म्मतो मनश्चलयितुं **न शक्याः** ।।४४६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा -

[1]पज्जुसणे चउम्मासे, पव्वदिणट्ठाहियासु सविसेसं ।
जिणपूयाइ पयट्टा, विसिट्ठतवबंभचेरट्ठा ।।४४७।।

[2]पर्युषणे सांवच्छरिके **चातुर्म्मासिकेषु** कार्त्तिकफाल्गुनाषाढपरिसमाप्तिवासरेषु । तथा **पर्वदिनेऽष्टमी**-चतुर्दशी - पूर्णिमामावास्यासु । **अष्टाह्निकास्वश्वयुक्-चैत्रशाश्वतनन्दीश्वरादि**-यात्रादिनेषु च **सविशेषं जिनेन्द्रपूजादिषु** पुण्यकृत्येषु **प्रवृत्ताः** । किल जिनपूजादिकृत्यानि नित्यकृत्यान्येव केवलमुक्तपर्वसु विशेषात् तत्र यतनीयमिति सविशेषमित्युक्तम् । तथा एतेष्वेव पर्युषणादिषु **विशिष्टतपसा ब्रह्मचर्येण चाढ्याः** ।।४४७।।

किञ्च -

चेइयजइसाहम्मियकज्जेसु य जुज्जइ य जंमित्तं ।
तंमित्तं चिय अत्थं सेसमणत्थं ति मन्नंता ।।४४८।।

चैत्यान्यर्हद्बिम्बानि तत्प्रासादाश्च, **यतयो** जैनमुनयः, **साधर्म्मिकाश्चैकगुरुसामाचारीप्रवृत्ताः** श्रमणोपासकाः । अत **एतेषां कार्येषु यावन्मात्रं** द्रव्याद्युपयुज्यते, **तावन्मात्रमेवार्थवच्छेषं** त्वनर्थानुबन्धित्वेनानर्थमिति **मन्यमानाः** ।।४४८।। तथा -

सइ सामत्थे सम्मं, रक्खंता चेइयाण दव्वाई ।
साहारणदविणेणं, सत्त वि खित्ताइं पीणंता[1] ।।४४९।।

सति विद्यमाने **सामर्थ्ये** लक्ष्मीपरिस्यन्दनृपप्रसादादिसमुत्थे **सम्यक्** स्वकार्यनिरपेक्षतया

गाथा-४४७ 1. **तुला** - "संवच्छरचाउम्मासिएसु, अट्ठाहिआसु अ तिहीसु ।
सव्वायरेण लग्गइ, जिणवरपूआतवगुणेसु ।।१।। - श्राद्ध वि. गा. ११ वृत्तौ ।।

2. **यदाहुः** - "दो सासयजत्ताओ, तत्थेगा होइचित्तमासंमि । अट्ठाहिआइमहिमा, बीआ पुण अस्सिणे मासे ।।१।।
एआउ दोवि सासय, जत्ताउ करंति सव्वदेवा वि । नंदीसरंमि खयरा, नरा य नियएसु ठाणेसु ।।२।।"
तह चउमासिअतिगं, पज्जोसवणा य तह य इअ छक्कं । जिणजम्मदिक्खकेवलनिव्वाणाइसु असासइआ ।।३।।
- श्राद्ध वि. गा. ११ वृत्तौ ।।

गाथा-४४९ 1. **तुला** - एवं व्रतस्थितो भक्त्या सप्तक्षेत्र्यां धनं वपन् ।
दयया चातिदीनेषु महाश्रावक उच्यते ।। - यो. शा. ३/११९ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैत्यद्रव्यमादिशब्दात्तदायादानादीनि **रक्षन्तः** पालयन्तः । उपलक्षणं चैतदनुपेक्षणस्य । तथा **साधारणं** सर्वधर्म्मपात्रोपयोगि यद् **द्रविणं तेन** [2]**सप्तापि** पूर्वोपवर्णितस्वरूपाणि **क्षेत्राणि प्रीणयन्तः** ।।४४९।। तथा -

[1]रहजत्ततित्थजत्तापमुहेहिं पवयणं पभाविंता ।
इय जे वट्टंति गिही न तेसि निव्वुइपहो दुलहो ।।४५०।।

रथानां मणिस्वर्णदन्तकाष्ठादिमयानां जङ्गमार्हन्मन्दिराणां यथावसरं विधिवद् [2]**यात्राभिः** । तथा [3]**तीर्थान्यर्हतां** जन्म-निष्क्रमण-ज्ञान-निर्वाणादिस्थानानि तेषु चतुर्विधसङ्घसमुदयेनाद्भुत-प्रभावनापुरस्सरं च **यात्राभिः** । एतत्**प्रमुखै**रपरैरप्यर्हच्छासनोन्नतिहेतुभिः प्रभावनाङ्गैः **प्रवचनं प्रभावयन्तः** । **इति** भणितन्यायेन **गृहमेधिनो** गीतार्थगुर्वाज्ञापुरस्सरमाजन्माऽपि **प्रवर्त्तन्ते तेषामा**सतां स्वर्गादिसुखानि यावन्निर्वृतिपथः **शिवमार्गो**ऽपि **न दुर्लभः** । भवाष्टकाभ्यन्तरं प्राप्य इत्यर्थः ।।४५०।। अतः -

दुरन्तं मिथ्यात्वं विदलयति मालिन्यविकलम्,
विधत्ते सम्यक्त्वं सफलयति नृत्वादिदशकम् ।
अकृत्यं कृत्यं चोपदिशति च भक्ष्यं तदितरम्,
समाम्नाता सम्यक् प्रथयति न किं देशविरतिः ।।१।। किञ्च -

अबुधसंसदि भाति यथा बुधो वनचरेषु यथा किल नागरः ।
तनुधनेषु यथाद्भुतभूतिभागविरतेषु तथा विरतो गृही ।।२।।

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीम**दभयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्री**देवभद्र-सूरि**शिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्यपण्डित-श्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणे देशविरत्याख्यं **तृतीयं मूलद्वारं** समाप्तम् ।।श्रीः।।

---

2. दृश्यतां गाथा-११८तः १७०पर्यन्तं सप्तक्षेत्राणां स्वरूपम् ।

गाथा-४५० 1. यात्रा च त्रिधा । यदुक्तं, - "अष्टाह्निकाभिधामेकां, रथयात्रामथापराम् । तृतीयां तीर्थयात्रां चेत्याहुर्यात्रां त्रिधा बुधाः ।। - श्राद्धविधिप्रकाश-५ मध्ये गा. १२-टीकायां दृश्यतां यात्रात्रिकस्वरूपम् ।।

2. जत्ता महूसवो खलु, उद्दिस्स जिणे स कीरई जो उ । सो जिणजत्ता भण्णइ, तीइ विहाणं तु दाणाइ ।।१।।

3. यथा - दाणं तवोवहाणं, सरीरसक्कारमो जहासत्ति । उचिअं च गीअ-वाइअ-थुइ-थोत्ता पेच्छणाइआ ।।२।।
- यात्रापञ्चाशक गा. ४-५ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। सर्वविरताख्यं चतुर्थं मूलद्वारम् ।।

दर्शितं सोदाहरणं देशविरत्याख्यं तृतीयं मूलद्वारम् । साम्प्रतं सर्वविरत्याख्यं चतुर्थं प्रस्तावयन्नादौ तत्स्वरूपमाह -

जं पुण पाणिवहाईण तिविहं तिविहेण सव्वसंवरणं ।
सा होइ सव्वविरई विरई भवभमणदुक्खाणं ।।४५१।।

पुनः शब्दो देशसंवरणापेक्षया । अतो **यत् प्राणिवधादीनां** पञ्चानां पापस्थानानां **त्रिविधं त्रिविधेन** मनोवाक्कायैः करणकारणानुमतिभिश्च **सर्वसंवरणमैकान्तिकः** परिहारः, सा यतिधर्मापरपर्याया **सर्वविरतिर्भवति** । किम्भूता ? **भवभ्रमणदुःखानां** संसृतिसरणसमुत्थाशर्मणां विरतिहेतुत्वाद् [1]**विरतिः** । सम्यगासेवितसर्वविरतयो हि विमुच्यन्त एव भवोद्भवदुःखेभ्य इति ।।४५१।।

यतिधर्म्मस्यैव समुदायार्थमाह -

पंच य महव्वयाइं, समिईओ पंच तिन्नि गुत्तीओ ।
खंतिप्पमुहा य गुणा, इय जइधम्मो समासेण ।।४५२।।

इत्युच्यमानस्वरूपेणायं यतिधर्म्मः समासतो भवति । कथमित्याह - [1]**पञ्च महाव्रतानि** वक्ष्यमाणानि । [2]**समितयोऽपि पञ्च** पुरो वर्ण्यमानाः । **तिस्रो गुप्तयश्च** वक्ष्यमाणा एव । [3]तथा **क्षान्त्यादयः** क्रोधादिनिग्रहप्रकाराः प्रस्ताव्यमाना एवेति सङ्क्षेपतो यतिधर्मः ।।४५२।। महाव्रतादीन्येव यथोद्देशं प्रत्येकं व्याचिख्यासुरादौ प्रथमं महाव्रतमाह –

गाथा-४५१ 1. विरमणं विरतिः ।। - अभि. ना. श्लो. १५२२ स्वो. टी. ।।

गाथा-४५२ 1. सर्वं सावद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमिष्यते । कीर्तितं तदहिंसादिव्रतभेदेन पञ्चधा ।।
अहिंसासूनृतोऽस्तेय-ब्रह्मचर्योऽपरिग्रहाः । पञ्चभिः पञ्चभिर्युक्ता भावनाभिर्विमुक्तये ।। - यो. शा. १/१८-१९ ।।

2. ईर्या-भाषैषणा-ऽऽदान-निक्षेपोत्सर्गसंज्ञकाः । पञ्चाहुः समितीस्तिस्रो गुप्तीस्त्रियोगनिग्रहात् ।। - यो. शा. १/३५ ।।

3. "खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे अ बोद्धव्वे । सच्चं सोयं आकिंचणं च बंभं च जइधम्मो ।।"
- आव. सङ्ग्रहणी गा. ३ ।।

खंती मुत्ती अज्जव, मद्दव तह लाघवे तवे चेव । संजम चाओ ऽकिंचन, बोद्धव्वे बंभचेरे य ।।
- प्रव. सारो. गा. ५५४ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]**छव्विहजीवनिकायं, जावज्जीवं पि तिविहं तिविहेणं ।**
मणवयतणूहिं रक्खइ जं तमिह महव्वयं पढमं ।।४५३।।

षड्विधमपि जीवनिकायं पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसरूपं **यावज्जीवमङ्गीकारात् प्रभृत्या-मरणान्तं त्रिविधं त्रिविधेन मनोवाक्-तनुभिर्यतिर्यत् पालयति** । तद् यथा - मनसा षड्विध-जीवनिकायं स्वयं न हन्ति, न चान्येन घातयति, न चान्यं घ्नन्तमनुमन्यते । वचसा पृथिव्यादीन् न हन्ति, न च घातयति, नानुमन्यते । कायेन न हन्ति, न घातयति, नानुमन्यते । इति नवकोटिविशुद्धा प्राणातिपातविरतिर्यत् प्रतिपाल्यते, **तदिह प्रथमं महाव्रतमिति** ।।४५३।। द्वितीयं महाव्रतमाह -

[1]**महुरमगव्वियमणलियमवाहयं कज्जसारमणवज्जं ।**
जं जंपिज्जइ वयणं, तं बिंति महव्वयं बीयं ।।४५४।।

गाथा-४५३ 1. **तुला** - सुहुमाईजीवाणं, सव्वेसिं सव्वहा सुपणिहाणं । पाणाइवायविमणमिह पढमो होइ मूलगुणो ।। - पञ्च व. ६५१।।

एकैकस्वरूपमाह - सूक्ष्मादीनां जीवानामिति, आदिशब्दाद्बादरादिपरिग्रहः, यथोक्तं - "से सुहुमं वा बायरं वे" त्यादि, सर्वेषामिति न तु केषाञ्चिदेव, 'सर्वथा' सर्वैः प्रकारैः कृतकारितादिभिः 'सुप्रणिधानं' दृढसमाधानेन, प्राणातिपातविरमणमिति, विरमणं-निवृत्तिः, 'इहे' ति मनुष्यलोक एव प्रवचने वा प्रथमो भवति मूलगुणः, शेषाधारत्वात् सूत्रक्रमप्रामाण्याच्च प्रथम इति गाथार्थः ।। - पञ्चव. ६५१ वृत्तौ ।।

प्रथमं मूलगुणमाह - न यत् प्रमादयोगेन जीवितव्यपरोपणम् । त्रसानां स्थावराणां च तदहिंसाव्रतं मतम् ।। - यो. शा. १/२० ।।

प्रमादोऽज्ञान-संशय-विपर्यय-राग-द्वेष-स्मृतिभ्रंश-योगदुष्प्रणिधान-धर्मादरभेदादष्टविधः । तद्योगात् त्रसानां स्थावराणां च जीवानां प्राणव्यपरोपणं हिंसा । तन्निषेधादहिंसा प्रथमं व्रतम् ।। - यो. शा. १/२० वृत्तौ ।।

गाथा-४५४ 1. **तुला** - कोहाइपगारेहिं, एवं चिअ मोसविरमणं बीओ । - पञ्चव. गा. ६५२।।

क्रोधादिभिः प्रकारैरिति, आदिशब्दाल्लोभादिपरिग्रहः, यथोक्तं - 'से कोहा वा लोभा वे'त्यादि, एवमेव-सर्वस्य सर्वथा सुप्रणिधानं मृषाविरमणं द्वितीयो मूलगुणः, सूत्रक्रमप्रामाण्यादेव, पञ्च व. गा. ६५२ वृत्तौ ।

द्वितीयमाह - प्रियं पथ्यं वचस्तथ्यं सूनृतव्रतमुच्यते । तत् तथ्यमपि नो तथ्यमप्रियं चाऽहितं च यत् ।। - यो. शा. १/२१ ।।

तथ्यं वचोऽमृषारूपमुच्यमानं सूनृतव्रतमुच्यते । किं विशिष्टं तथ्यम् ? प्रियं पथ्यं च, तत्र प्रियं यत् श्रुतमात्रं प्रीणयति, पथ्यं यदायतौ हितम् । ननु तथ्यमेवैकं विशेषणमस्तु सत्यव्रताधिकारात्, प्रिय-पथ्ययोस्तु कोऽधिकारः ? अत आह - तत् तथ्यमपीति, व्यवहारापेक्षया तथ्यमपि यदप्रियं यथा चौरं प्रति 'चौरस्त्वम्' कुष्ठिनं प्रति 'कुष्ठी

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मधुरं श्रुतिसुखदं । **अगर्व्वितम**नहङ्कारं । **अनलीकं** यथावस्थितं । सत्यमपि मृगयुप्रश्नादौ दृष्टमृगयूथादिकथनवद् बाधकं स्यादित्याह - **अबाधकं** इह परत्र वा बाधाविवर्जितम् । एवंविधमपि कदापि प्रलापप्रायं स्यादत आह - **कार्यसारम**र्थवत् । यत एव पूर्वोदितशेषविशेषणयुक्तमत एवा**नवद्यं** निर्दोषम् । एवंविधं **वचनं** मुनिपुङ्गवै**र्यज्जल्प्यते तद् द्वितीयं** .मृषावादव्युदासरूपं **महाव्रतम्** तीर्थकृद्गणधरादयो **वदन्ती**ति ।।४५४।।

तृतीयं महाव्रतमाह –

[1]अवि दंतमित्तसोहणमदिन्नमत्तस्स जं न गिण्हंति ।
समतिणमणिणो मुणिणो तं हवइ महव्वयं तइयं ।।४५५।।

आस्तां तावद् धनधान्यहिरण्यादिकम् । **दन्तशोधना**य तृणशलाकादि**मात्र**मप्य**न्यस्य** परस्य सम्बन्धि वस्तुजात**मदत्तं** तत्स्वामिनाऽननुज्ञातं **यन्मुनयो न गृह्णन्ति** । अग्रहणे हेतुमाह - किम्भूता **मुनयः ? समतृणमणयः** । तृणे मणौ, स्वर्णेऽश्मनि, शत्रौ मित्रे चारक्तद्विष्टचेतसस्तेनैव च लोभसंक्षोभमुक्तास्त**दिह तृतीय**मदत्तपरिहारलक्षणं **महाव्रतं भवति** ।।४५५।। चतुर्थं महाव्रतं ब्रूते -

[1]सुरनरतिरिनारीसुं, मणसा वि वियारवज्जणं जमिह ।
बंभाणस्स वि भययं, भणंति बंभव्वयं तं तु ।।४५६।।

त्वम्' इति तदप्रियत्वान्न तथ्यम् । तथ्यमप्यहितं यथा मृगयुभिः पृष्टस्यारण्ये मृगान् दृष्टवतो 'मया मृगा दृष्टाः' इति, तज्जन्तुघातहेतुत्वान्न तथ्यम् ।। - यो. शा. १/२१ वृत्तौ ।।

गाथा-४५५ 1. **तुला** - एवं चिअ गामाइसु, अप्पबहुविवज्जणं तइओ ।। - पञ्चव. गा. ६५२ ।।

एवमेव - यथोक्तं ग्रामादिष्विति, आदिशब्दान्नगरादिपरिग्रहः, तथा चोक्तं - "से गामे वा नगरे वा" इत्यादि, अल्पबहुविवर्जनं तृतीयो मूलगुणः सूत्रोपन्यासक्रमादिति गाथार्थः ।। - पञ्चव. गा. ६५२ वृत्तौ ।।

तृतीयमाह - अनादानमदत्तस्यास्तेयव्रतमुदीरितम् । बाह्याः प्राणा नृणामर्थो हरता तं हता हि ते ।। - यो. शा. १/२२ ।।

वित्तस्वामिना अदत्तस्य वित्तस्य यदनादानं तदस्तेयव्रतम् । तच्च स्वामि-जीव-तीर्थकर-गुर्व्वदत्तभेदेन चतुर्विधम् । तत्र स्वाम्यदत्तं तृणोपलकाष्ठादिकं तत्स्वामिना यददत्तम् । जीवादत्तं यत् स्वामिना दत्तमपि जीवेनादत्तम्, यथा प्रव्रज्यापरिणामविकलो माता-पितृभ्यां पुत्रादिर्गुरुभ्यो दीयते । तीर्थकरादत्तं यत् तीर्थकरैः प्रतिषिद्धमाधाकर्मिकादि गृह्यते । गुर्व्वदत्तं नाम स्वामिना दत्तमाधाकर्म्मिकादिदोषरहितं गुरूननुज्ञाप्य यद् गृह्यते । नन्वहिंसापरिकरत्वं सर्व्वव्रतानाम्, अदत्तादाने तु केव हिंसा येनाहिंसापरिकरत्वं स्यात् ? इत्युक्तम्-बाह्याः प्राणा इत्यादि । यदि स्तेयस्य प्राणहरणं स्वरूपं मृग्यते तदा तदस्त्येव ।। - यो. शा. १/२२ वृत्तौ ।।

गाथा-४५६ 1. **तुला** - दिव्वाइमेहुणस्स य, विवज्जणं सव्वहा चउत्थो उ ।
पंचमगो गामाइसु, अप्पबहुविवज्जणं चेव ।। - पञ्चव. गा. ६५३ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुराणां नराणां तिरश्चां च सम्बन्धिन्यो याः किल **नार्यः** प्रमदास्तासु आस्तां वाक्कायाभ्यामितरस्मरव्यापारप्रवर्त्तनं यावन्**मनसा** चेतसाऽपि **विकारस्य** सूक्ष्माक्षसङ्क्षोभलक्षणस्य **यदिह वर्जनं** परिहारः, स च नवब्रह्मगुप्तिगुप्तानां यतीनामेव भवति । कास्ता [2]ब्रह्मगुप्तय इति चेदाह -

---

दिव्यादिमैथुनस्य चेति, आदिशब्दान्मनुष्यादिपरिग्रहः, तथा चोक्तं - 'से दिव्वं वा माणुसं वे'त्यादि, विवर्जनं सर्वेषां चतुर्थस्तु मूलगुणः ।

चतुर्थमाह - दिव्यौदारिककामाणां कृता-ऽनुमत-कारितैः ।

मनोवाक्कायतस्त्यागो ब्रह्माष्टादशधा मतम् ।। - यो. शा. १/२३ ।।

दिवि भवा दिव्याः, ते च वैक्रियशरीरसम्भवाः, औदारिकाश्च औदारिकतिर्यग्मनुष्यदेहप्रभवाः, ते च ते काम्यन्त इति कामाश्च, तेषां त्यागोऽब्रह्मनिषेधात्मकं ब्रह्मचर्यव्रतम् । तच्चाष्टादशधा - मनसा अब्रह्म न करोमि, न कारयामि, कुर्वन्तमपि परं नानुमन्ये, एवं वचसा कायेन चेति दिव्ये ब्रह्मणि नव भेदाः । एवमौदारिकेऽपीत्यष्टादश । यदाह -

"दिव्यात् कामरतिसुखात् त्रिविधं त्रिविधेन विरतिरिति नवकम् ।

औदारिकादपि तथा, यद् ब्रह्माष्टादशविकल्पम् ।।" - (प्रशम० १७७) इति ।

कृता-ऽनुमत-कारितैरिति मनोवाक्कायत इति च मध्ये कृतत्वात् पूर्वोत्तरेष्वपि महाव्रतेषु सम्बन्धनीयम् ।।

- यो. शा. १/२३ वृत्तौ ।।

2. **अथ ब्रह्मगुप्तीराह** - 'वसही'त्यादि, ब्रह्मचारिणा स्त्री-पशु-पण्डकविवर्जिता वसतिरासेवनीया, तत्र स्त्रियो देव-मानुषभेदात् द्विविधाः, एताश्च सचित्ताः, अचित्तास्तु पुस्तक-लेप्य-चित्रकर्मादिनिर्मिताः, पशवः-तिर्यग्योनिजाः, तत्र गो-महिषी-वडवा-वालेयादयः सम्भाव्यमानमैथुनाः, पण्डकाः-तृतीयवेदोदयवर्तिनो महामोहकर्माणः स्त्री-पुंसेवनाभिरताः, तत्संसक्तौ हि तत्कृतविकारदर्शनान्मनोविकारसद्भावेन ब्रह्मचर्यबाधासम्भवात् १ । तथा स्त्रीणां केवलानामेकाकिना कथा-धर्मदेशनादिलक्षणवाक्यप्रबन्धरूपा न कथनीया, यदि वा स्त्रीणां सम्बन्धिनी कथा, यथा - 'कर्णाटी सुरतोपचारचतुरा, लाटी विदग्धप्रिया' इत्यादिरूपा न कर्तव्या, रागानुबन्धिनी हि देश-जाति-कुल-नेपथ्य-भाषा-गति-विभ्रम-गीत-हास्य-लीला-कटाक्ष-प्रणय-कलह-शृङ्गाररसानुविद्धा कामिनीनां कथा अवश्यमिह मुनीनामपि मनो विक्रियां नयतीति २ । तथा निषद्या-आसनम्, कोऽर्थः ? - स्त्रीभिः सहैकासने नोपविशेत्, उत्थितास्वपि तासु मुहूर्तं तत्र नोपविशेत्, तदुपभुक्तासनस्य चित्तविकारकारणत्वात्, यदाह -

"इत्थीए मलियसयणासणंमि तप्फासदोसओ जइणो । दूसेइ मणं मयणो कुट्ठं जह फासदोसेणं ।।१।।३। तथा अविवेकिजनापेक्षया स्पृहणीयानि स्त्रीणामिन्द्रियाणि-नयन-नासिका-मुख-कर्ण-देहादीनि उपलक्षणत्वादङ्गानि च स्तन-जघनादीनि अपूर्वविस्मयरसनिर्भरतया विस्फारितलोचनो न विलोकयेत्, न च विलोकनानन्तरमहो सलवणत्वं लोचनयोः, सरलत्वं नाशावंशस्य, स्पृहणीयत्वं पयोधरयोरित्यादि तदेकाग्रचित्तश्चिन्तयेत्, तदवलोक-नतच्चिन्तनयोर्मोहोदयहेतुत्वात् ४ । तथा कुड्यान्तरं यत्रान्तरस्थेऽपि कुड्यादौ दम्पत्योः सुरतादिशब्दः श्रूयते ब्रह्मचर्यभङ्गभयाच्च तत्परित्यागः ४ । तथा पूर्व-गृहस्थावस्थायां क्रीडितं-स्त्रीसम्भोगानुभवलक्षणं द्यूतादिरमणलक्षणं वा नानुस्मरेत्, तत्स्मरणेन्धनक्षेपात्स्मराग्निः संधुक्ष्यते ६ । तथा प्रणीतम् - अतिस्निग्धमधुरादिरसं भक्तं न भुञ्जीत, निरन्तरं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वसहिकहनिसिज्झिंदिय कुड्डंतरपुव्वकीलिए पणीए ।
अइमायाहारविभूसणा य नव बंभगुत्तीओ ।।१।। [प्रवचनसारोद्धार गाथा-५५७]

तत्र वसतिः स्त्रीपशुपण्डकाकीर्णां सम्भाव्यमानमनोभवविकारोद्भवां परिहरतः प्रथमा गुप्तिः । तथा रागानुबन्धिनीं देशजातिकुलनेपथ्यभाषागतिविभ्रमेङ्गितहास्यलीलाकटाक्षप्रणयकलहशृङ्गार-सानुविद्धां कथां स्त्रीसम्बन्धिनीं स्त्रीभिर्वा सह परिहरतो द्वितीया । तथा निषद्या स्त्रीभिः परिभुक्तमा-सनशयनादिकमपि स्मरविकारोद्दीपनं त्यजतस्तृतीया । तथा इन्द्रियाणि स्त्रीणामविवेकिजनापेक्षया स्पृहणीयानि मुखनयनस्तनजघनादीनि तेषामपूर्वविस्मयनिर्भरतया विस्फारिताक्षमीक्षणं परिहरत-श्चतुर्थी । तथा कुड्यान्तरं यत्रान्तरस्थेऽपि दम्पत्योर्मोहनादिशब्दः श्रूयते, तदपि मन्मथोद्रेकजन-कत्वान्मुञ्चतः पञ्चमी । तथा पूर्वं गृहस्थावस्थायां स्त्रीभिः सह यत् क्रीडितं तस्य स्मरणमपि स्मराग्निसन्धुक्षणं वर्जयतः षष्ठी । प्रणीतो वृष्यः स्निग्धमधुरादिरसस्तदासेवनं प्रधानधातुपरि-पोषणवेदोदयनिमित्तं परित्यजतः सप्तमी । अतिमात्राहारश्चाकण्ठमुदरपूरणं तदपि मदनोन्मादजन-कत्वेन मुञ्चतोऽष्टमी । विभूषां स्वाङ्गस्यैव स्नानाङ्गरागधूपपटवासकेशनखदन्तादिसमारचना । तामपि परिहरतो नवमी । **'नाकामी मण्डनप्रियः'** [ ] इति श्रुतेः एवममूर्नवापि ब्रह्मगुप्तीः सम्यगासेवमानानां महात्मनां मुनीनामेव मनसोऽपि स्मरविकारपरिहारः सुकरः । अत एव किम्भूतं ब्रह्मव्रतं ? **ब्रह्मणः** पितामहस्य, लोके परमे ब्रह्मण्यवस्थिष्ठमानत्वात् परमेष्ठिशब्द-वाच्यस्यापि समर्थोऽहमजिह्मब्रह्मव्रतनिर्वाहे नवेत्यन्त**र्भयप्रदम्** । पशु-पशुपतिसाधारणत्वात् पुष्पायुधायुधव्यापारस्य । **तदेव**मेवंस्वरूपं ब्रह्मोपनिषन्निषन्नास्तीर्थकृदादयो **ब्रह्मव्रताख्यं** चतुर्थं महाव्रतं **भणन्ति** ।।४५६।।

वृष्य-स्निग्धरसप्रीणितो हि प्रधानधातुपरिपोषेण वेदोदयादब्रह्मापि सेवते ७ । तथा रूक्षभैक्ष्यस्याप्यतिमात्र-माहारम्-आकण्ठमुदरपूरणं वर्जयेत्, ब्रह्मक्षतिकारित्वात् शरीरपीडाकारित्वाच्च ८ । तथा विभूषणा - स्नान-विलेपन-धूपन-नख-दन्त-केशसंमार्जनादिः स्वशरीरस्य संस्कारस्तां न कुर्यात्, अशुचिशरीरसंस्कारमूढो हि तत्तदुत्कलिकामयैर्विकल्पैर्वृथा-ऽऽत्मानमायासयतीति ९ । एता ब्रह्मचर्यस्य-मैथुनव्रतस्य गुप्तयः-परिरक्षणोपाया ब्रह्मचर्यगुप्तयो नव भवन्ति ।।

- प्रव. सा. गा. ५५७ वृत्तौ ।।

इह तुलनायाम् आचाराङ्गस्य द्वितीयश्रुतस्कन्धस्य तृतीयाचूलिकामध्ये भावनाध्ययनस्य चतुर्थमहाव्रतस्य भावनाः दृश्यतां । उत्तराध्ययनस्य बंभचेरसमाहिठाणा षोडशमध्ययनम् दृश्यतां । योगशास्त्रप्रथमप्रकाशस्य श्लोक-३०-३१ मध्ये चतुर्थव्रतभावना दृश्यतां ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चमं महाव्रतमभिधत्ते –

धणधन्नहिरन्नाइसु, सावयउवगरणवसहिपभिईसु ।
मुच्छाविच्छेयपरं, अपरिग्गहमिहं वयंति विऊ ।।४५७।।

धनधान्यहिरण्यादिषु नवसु परिग्रहाङ्गेषु । तथा **श्रावकोपकरणवसतिप्रभृतिषु** । द्विपदापदवास्तुपरिग्रहग्रहणेन श्रावकोपकरणवसतीनामुपात्तानामप्यगीतार्थमुनिमनोमूर्च्छालम्बनहेतुत्वेन पुनरुपादानम् । अत एतेषु ममत्वालम्बनेषु **मूर्च्छाविच्छेदपरमपरिग्रहाख्यं** पञ्चमं महाव्रतं **विदस्तत्त्वज्ञा वदन्ति** । ननूपकरणादिपरिहार एवापरिग्रहव्रतमित्यस्तु, किं मूर्च्छाविच्छेदेन, तदभावे निरवकाशैव मूर्च्छेति नैवम्, न खलु धर्मोपकरणपरिहारमात्रेण मुनीनामपरिग्रहता किन्तु तेषु मूर्च्छाविच्छेदेन सा स्यात् । यदाहुः -

जं पि वत्थं व पायं वा कंबलं पायपुंछणं ।
तं पि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहरंति य ।।१।।
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इई वुत्तं महेसिणं ।।२।। त्ति [दशवै. अ. ६, गा. २०-२१]

ततो मूर्च्छाविच्छेद एवापरिग्रह इति ।।४५७।। तथा -

गाथा-४५७ 1. **तुला -** पंचमभंगो गामाइसु, अप्पबहुविवज्जणं चेव ।। - पञ्चव. गा. ६५३ ।।
पञ्चमो मूलगुणः ग्रामादिषु, आदिशब्दान्नगरादिपरिग्रह एव, यथोक्तं -
"से गामे वा नगरे वे'त्यादि, अल्पबहुविवर्जनमेव सर्वथैवेति गाथार्थः ।। - पञ्चव. गा. ६५३ वृत्तौ ।।
पञ्चममाह - सर्वभावेषु मूर्च्छायास्त्यागः स्यादपरिग्रहः ।
यदसत्स्वपि जायेत मूर्च्छया चित्तविप्लवः ।। - यो. शा. १/२४ ।।

सर्वभावेषु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूपेषु यो मूर्च्छाया गर्द्धस्य त्यागो न तु द्रव्यादित्यागमात्रं सोऽपरिग्रहव्रतम् । ननु परिग्रहत्यागोऽपरिग्रहव्रतं स्यात्, किं मूर्च्छात्यागलक्षणेन तल्लक्षणेन ? अत आह-यदसत्स्वपीति । यस्मादसत्स्वप्यविद्यमानेष्वपि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावेषु मूर्च्छया चित्तविप्लवः स्यात् । चित्तविप्लवः प्रशम-सौख्यविपर्यासः । असत्यपि धने धनगर्द्धवतो राजगृहनगरद्रमकस्येव चित्तसंक्लेशो दुर्गतिपातनिबन्धनं भवति । सत्यपि वा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावलक्षणे सामग्रीविशेषे तृष्णाकृष्णाहिनिरुपद्रवमनसां प्रशमसुखप्राप्त्या चित्तविप्लवाभावः । अत एव धर्म्मोपकरणधारिणां यतीनां शरीरे उपकरणे च निर्ममत्वानामपरिग्रहत्वम् । यदाह -

"यद्वत्तुरगः सत्स्वप्याभरणविभूषणेष्वनभिषक्तः । तद्वदुपग्रहवानपि न सङ्गमुपयाति निर्ग्रन्थः ।।" [प्रशम० १४१]

यथा च धर्मोपकरणवतामपि मूर्च्छारहितानां मुनीनां न परिग्रहग्रहित्वदोषस्तथा व्रतिनीनामपि गुरूपदिष्टधर्मोपकरणधारिणीनां रत्नत्रयवतीनाम्, तेन तासां धर्मोपकरणपरिग्रहमात्रेण मोक्षापवादः प्रलापमात्रम् ।। यो. शा. १/२४ वृत्तौ ।। पञ्चमहाव्रतस्य स्वरूपम् दृश्यतां प्रवचनसारोद्धारे गा. ५५२ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिणरयणिगहणभोयण - भेयचउब्भंगिसंगयं जं च ।
तं राईभत्तं पि हु, एयाणुगयं चयंति मुणी ।।४५८।।

तदेवंविधं **रात्रिभुक्तं** निशाभोजनमप्येतदनुगतं महाव्रतप्रतिबद्धं **यतयस्त्यजन्ति** । किम्भूतम् ? **दिनरजनीग्रहणभोजनभेदचतुर्भङ्गीसङ्गतम्** । तद्यथा - दिवा गृहीतं रात्रौ भुक्तमित्येको भङ्गः । रात्रौ गृहीतं दिवा भुक्तमिति द्वितीयः । रात्रौ गृहीतं रात्रौ भुक्तमिति तृतीयः । दिवा गृहीतं दिवा भुक्तमिति चतुर्थः । अत्राद्यत्रयमशुद्धम्, चतुर्थस्तु सुविशुद्ध इति ।।४५८।। महाव्रतान्येवोपस्तौति -

एए पंच मुणीणं, महव्वया पव्वय व्व अइगरुया ।
धीरचरियाण सुवहा, सुदुव्वहा कीवपयईणं ।।४५९।।

एतानि पूर्वोदितानि **पञ्चापि मुनीनां महाव्रतानि पर्वता इवातिगुरुतराणि** । अत एव **धीरचरितानामुत्तमप्रकृतीनां सुवहानि । क्लीबप्रकृतीनां तु सुतरां दुर्वहाणीति** ।।४५९।। किञ्च -

एए धम्मरहस्सं, एइ ञ्चिय सव्वविरइसव्वस्सं ।
एए परमं नाणं एइ ञ्चिय मुक्खपहजाणं ।।४६०।।

एतानि महाव्रतानि **धर्मस्य** सर्वज्ञोपज्ञस्य क्षान्त्यादिलक्षणस्य **रहस्यं** तात्पर्यम् । **एतान्येव** च **सर्वविरते**र्यतिधर्मस्य **सर्वस्वं** मूलनीवी । **एतानि** महाव्रतानि धर्मस्य सर्वज्ञोपज्ञस्यैव **परमं** प्रकृष्टं **ज्ञानम्** । महाव्रतानि हि यथाख्यातं चारित्रं, तदेव चाप्रतिपातिनो ज्ञानस्य कारणमत एतान्येव तत्त्वतो ज्ञानम् । तत **एवैतान्येव मोक्षपथे** निर्वृतिवर्त्मनि **यान**मिव । यानं विना ह्येवंविधं सुदृढवाहनं दुष्प्रापमत्यन्तदूरान्तरितं निर्वाणनगरमिति ।।४६०।। तथा -

एएहिं अणुग्गहिओ दमगो वि गुरुत्तणं तहा लहइ ।
जह चक्कवट्टीणो वि हु महंति अहमहमिगाइ इमं ।।४६१।।

एतैः प्राणातिपातविरमणादिभिर्महाव्रतै**रनुगृहीतो**ऽध्यासितो **द्रमको** रङ्कप्रायो**ऽपि** पुमांस्तथाकथमपि **गुरुत्वमाप्नोति यथैन**मासतां मण्डलेश्वरादयो याव**च्चक्रवर्त्तिनो**ऽखण्डषट्खण्डमेदिनीमण्डलाखण्डला **अप्यहमहमिकया**ऽहंपूर्विकया **महन्ति** पूजयन्ति ।।४६१।।

गाथा-४५८ 1. **तुला** - असणाइभेअभिन्नस्साहारस्स चउव्विहस्सावि ।
णिसि सव्वहा विरमणं, चरमो समणाण मूलगुणो ।। - पञ्चव. गा. ६५४ ।।
अशनादिभेदभिन्नस्याहारस्यैव चतुर्विधस्यापि स्वतन्त्रसिद्धस्य, निशि सर्वथा विरमणं भोगमाश्रित्य 'चरमः' पश्चिम एषः, षष्ठ इत्यर्थः, श्रमणानां मूलगुण इति गाथार्थः ।। - पञ्चव. गा. ६५४ वृत्तौ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपरं च -

पिच्छह विरइफलं फुरंतमणिमयकिरीडकोडीहिं ।
पयनहपंतिं विलिहंति तियसपहुणो मुणिजणस्स ।।४६२।।

पश्यतावलोकयत **विरते:** प्रस्तावात् सर्वविरतेः **फलं** महिमानम् । येन **यन्मुनिजनस्य पदयोर्नखपङ्क्तिं त्रिदशपतयो** वृन्दारकवृन्दारका अपि **विलिखन्ति** समुत्तेजयन्ति काभिः ? **प्रेङ्खोलद्रत्नकोटीभिरित्यहो!** संयमस्य माहात्म्यमिति ।।४६२।।

एवं च -

उच्छिंदिऊण गिहवास-पासमइनिसियतवकिवाणेण ।
धन्ना अप्पडिबद्धा, विहग व्व महीइ विहरंति ।।४६३।।

उच्छिन्द्योन्मोच्य **गृहवासपाशं** प्रियकलत्रपुत्रादिममत्वबन्धनम् । केन ? **अतितीक्ष्णतपः-कृपाणेन** समुचितस्वनिशितासिना पाशोच्छेदः । **धन्याः** सुचरितसुकृताः । प्रस्तावान्निर्ग्रन्थयत-योऽप्रतिबद्धा द्रव्यक्षेत्रकालभावप्रतिबन्धवन्ध्याः । **क्षितितले** स्वं भव्याङ्गिवर्गं च संसारचार-कान्मोचयन्तो **विहरन्ति** । के इव ? **विहगा इव** । यथा केनापि कृपालुना कृपाणादिछिन्नपाशाः कुन्ताः सर्वत्र स्वैरं विचरन्ति ।।४६३।।

एवं च सति यद् विधेयं तदाह -

तम्हा महव्वयाइं लद्धुं कह कहवि पुन्नजोएण ।
पालिज्ज पयत्तेणं, रयणाइं रोरपुरिसु व्व ।।४६४।।

तस्मादेवं प्रभावान्यमूनि **महाव्रतानि कथं कथमपि** युगि समिलायोगन्यायेनागण्यपुण्यस्य [**योगेन**] प्राप्याणि प्राप्य महता **प्रयत्नेन पालयेत्** । अत्रोदाहरणमाहकानीव ? **रोरपुरुषो रत्नानीव** । सम्प्रदायगम्यं च रोररत्नप्राप्तिस्वरूपम् ।

।। संस्कृतप्राकृतभाषामयं रोरकथानकम् ।।

अस्तीह भरतभूमौ कमनीयपदार्थसार्थमणिकोशः । सिरिवच्छो इव वच्छो पुरिसुत्तममंडणं देसो ।।१।।
सुरचितरुचिरोद्देशा नन्दीश्वरवसुमतीव तत्रास्ति । कोसंबी नामेणं नयरी नयरीइ रमणीया ।।२।।
जिनमन्दिरेषु यस्यां सन्ध्यात्रितयेऽपि पटुपटहघोषैः । संतासिय व्व सविहे वि इंति न हु विग्घसंघाया ।।३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दन्दह्यमानकालागुरुघनसारोत्थधूमपटलानि । रेहन्ति जेसु नमिराण विपलिरा पावपूर व्व ।।४।।
तस्यां दासीकृतसकलवैरिभूपालमौलिमणिकिरणैः । उज्झोइयपायंगुलिविवरो राया जियारि त्ति ।।५।।
अरिकरटिघटाकुट्टनपटुरपि कामं कृपाणदण्डोऽस्य । रिउदंतधरियतिणमित्त-छेयणे अहह ! न हु छेओ ।।६।।
तस्यां च कलानिलयः शशीव वसति सुतो महेभ्यस्य । नामेणं वसुदत्तो मुत्तो पुरिसत्थपिंडु व्व ।।७।।
स सदाचाररतोऽपि व्यसनविहीनोऽपि दैवयोगेन । मुक्को कयाइ लच्छीइ लच्छिहीणु व्व वेसाए ।।८।।
उपहतधृतिस्ततोऽसावनल्पसङ्कल्पकल्पनाकुलितः । पावइ न कहिं पि रइं वारीपडिओ मयंगु व्व ।।९।।
यं यं व्यवसायमसावर्थार्थी कृतचरं समारभते । सो सो इमस्स वियरइ हत्थाउ अणत्थपत्थारिं ।।१०।।
निपुणं निरूप्य शतशो लाभाय यदेष पण्यमाद्रियते । मट्ठीए वि हु मुल्लं न लहइ तं तस्स हत्थगयं ।।११।।
छन्दानुवर्त्तनपरः परस्य जल्पति यदेष तोषाय । विहिवसओ तं जायइ सविसेसं तस्स रोसाय ।।१२।।
उपदिशति पेशलाक्षरमप्येष वचो हितं यदन्यस्य । तं चेव तस्स पिच्छह हियए अहियं ति परिणमइ ।।१३।।
येषामुपकारशतान्यचीकरत् पूर्व्वमेष सति विभवे । ति ञ्झिय अतुच्छमच्छरखारं धारन्ति तम्मि तया ।।१४।।
अपि सुखगोष्ठीहेतोरुपविशति समीपमेत्य यद्येष । मग्गिस्सइ किं पि इमु त्ति झत्ति मुंचंति तं सयणा ।।१५।।
ते गृहमेत्य गतेऽस्मिन् दैवाद् यदि किमपि वस्तु नेक्षन्ते । नूणं इमेण एयं गहियं होहि त्ति जंपंति ।।१६।।
चिरपरिचयाद् ब्रुवाणं तमुपहसति मित्रमण्डली प्रकटम् । अवमाणंति य एयं पए पए पोरलोगा वि ।।१७।।
इति कतिपयैरपि दिनैः स तृणादप्यतिलघुर्जने जातः । जं गरुयत्तनिमित्तं लच्छि ञ्झिय निच्छियं भुवणे ।।१८।।
अनुभूतचरां रुचिरां विभवावस्थामनुस्मरन् स निजाम् । तह तंमि जणे तइया अवमाणपयं च पिच्छंतो ।।१९।।
चिन्तयति चेतसीदं दुर्वारविषादसादितः स तदा । पिच्छह दिणपरिवत्ते किं किं पुरिसा न पिच्छंति ।।२०।।
शिष्टजनचेष्टितेऽपि प्रियसत्यपरेऽपि मयि कृतज्ञेऽपि । कह पडिकूलो जाओ विहि व्व नियबंधुवग्गो वि ।।२१।।
जलधेरिव जलवाहाः श्रीमन्तः सेवया ममाभूवन् । जे ते अपरिचियं पिव ममं न पिच्छंति पुरओ वि ।।२२।।
मन्यन्ते स्म कृतार्थं ये मम मुखवीक्षणे किलात्मानम् । पडिवालेमि अहं ही तेसिं पयदंसणावसरं ।।२३।।
अप्यनुपकारिणि परे सुधियः कुर्वन्ति केचिदुपकारम् । उवयरिया वि हु महुरं वयणं पि न दिंति मह एए ।।२४।।
नोपालम्भस्य पदं यदि वा मम कोऽपि साम्प्रतं यस्मात् ।
मह चेव कम्मपरिणामविलसियं सयलमवि इणमो ।।२५।।
एवं च पराभूतः किमहं देशान्तरं किमपि यामि । परिभवमूलं एए हयपाणे अहव मुंचामि ।।२६।।
अलमथवा मृत्युमनोरथेन निर्मथितपुरुषकारेण । वसुहा हि रयणगब्भा भमामि ता तं पि नणु पढमं ।।२७।।
यदि पुनरुपैमि कमपि भ्राम्यन्निजकर्म्मणः प्रणेतारम् । एसा हु दुद्दसा मे न नाम अनिबंधणा चेव ।।२८।।
इति निश्चित्य स चेतसि चलितोऽपरवारिराशिमुद्दिश्य । भिक्खावित्तीइ मुणिव्व देहजत्तं पवत्तंतो ।।२९।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जनपरिभवेन शश्वद् दारिद्र्यप्रतिभुवा समनुयातः । कालक्रमेण पत्तो सुरट्ठविसयम्मि सो रम्मे ।।३०।।
तत्र नगनगरकाननविलासवापीसरःसरित्कान्ते । भमिरेण तेण दिट्ठो सिरिउज्जिंतो गिरिवरिंदो ।।३१।।
तुङ्गतरशिखरपरिसरसञ्चरदुडुनाथदिनकरं श्याममम् । मन्नंति मुद्धसिद्धं-गणाउ जं नीलवंतु त्ति ।।३२।।
सन्निहितजलधिवेलाविकीर्णमुक्ताफलाङ्कितं मूलम् । सिहरं च लसिररिक्खं लक्खिज्जइ जस्स समरूवं ।।३३।।
वज्रेन्दनीलमरकतकर्केतनपद्मरागशिखरोत्थैः । किरणकलावेहिं जहिं अभित्तिचित्तं सहइ गयणे ।।३४।।
मृदुमन्द्रमध्यतारं किन्नरमिथुनानि यत्र गायन्ति । रायमइनेहमणमोहणाइं सिरिनेमिचरियाइं ।।३५।।
कुत्रापि विकचचम्पककुरबकसहकारतिलकबकुलवनैः । जो नववसंतसमयावयारलच्छिं पयासेइ ।।३६।।
धूलीकदम्बविचकिलशिरीषकरवीरपाटलापटलैः । सञ्जवइ अयालि च्चिय कहिं पि जो गिम्हसमयंपि ।।३७।।
अन्यत्र कुटजकेतकक(ब)कुलैः प्रकटयति यः पयोदर्तुम् ।
विहिवसविउत्तअणुरत्तमिहुणमणजणियरणरणयं ।।३८।।
बन्धूककाशसरसिजसप्तच्छदपरिमलैश्च यः शरदम् । दावइ कत्थइ सुइसच्छसुरहिसीयलजलुप्पीलं ।।३९।।
क्वापि प्रथयति विकशितमरुबकमचकुन्दसुन्दरामोदैः । हेमंतं पि हु वम्महपयावपरिवद्धणं जो य ।।४०।।
अन्यत्र सिन्दुवारप्रसूननवकुन्दपरिमलोद्गारैः । दंसइ विज्जाहरमिहुणभुत्तमणिकंदरं सिसिरं ।।४१।।
इति सर्वर्तुमनोज्ञे शुकपिककादम्बकेकिरवरुचिरे । सिरिरेवयम्मि रोरो स जाव संचारए दिट्ठिं ।।४२।।
तावदनुगम्यमानः सुरासुरैः खेचरैश्च शतसङ्ख्यैः । सुरचारणेहि पुरओ पयडियपडुजयजयारावो ।।४३।।
रागवनधूमकेतुर्द्वेषार्णवतरणविपुलतरसेतुः । कोहानलजलवाहो लोहोरगरायखगनाहो ।।४४।।
उपशम इव पिण्डस्थो विश्वास इवाङ्गिनां च विधिताङ्गः । वरदंसणनाणचरित्तमित्तसंकेयठाणं व ।।४५।।
पीयूषरसतुषारैरविकारैर्मधुरदृष्टिसञ्चारैः । अणुगिन्हंतो सन्निहियपाणिणो परमकरुणाए ।।४६।।
ज्ञानचतुष्टयकलितः प्रणम्य नेमिं नगाध्वना चलितः । सञ्जविओ तेण तया सयंपभो नाम सूरिवरो ।।४७।।
पश्यत एवास्य ततो विस्मयविस्मेरनयननलिनस्य । गिरिनयरसंठिए सो संपत्तो रिसहजिणभवणे ।।४८।।
प्रणिपत्य तत्र सुरपतिसमूहनतपदयुगं युगादिजिनम् । उवविट्ठो मुणिनाहो स जाव मुहमंडवे तस्स ।।४९।।
तावदहम्पूर्विकया समेत्य विष्वग् वृतः सुरनरौघैः । अप्पुव्वसवणसंसयविच्छेयणछेयहियएहिं ।।५०।।
तद्वदनाम्बुदविगलितमुपदेशामृतमथोत्सुकः पातुम् । वसुदत्तो विनिविट्ठो मुणिवइणो चरणमूलम्मि ।।५१।।
मुनिनाथोऽपि बभाषे सविशेषं तदनु तस्य बोधाय । कत्थ न वियरइ करुणा मुणीण समरायरंकाणं ।।५२।।
तुल्येऽपि मानुषत्वे समेऽपि करचरणकरणसंयोगे । दीसइ जं जीवाणं विभवाविभवुब्भवो भेओ ।।५३।।
हेत्वन्तराणि मुक्त्वा भव्याः सम्भाव्यतां तदिह सकलम् । पुव्वभवत्तस्स सुहासुहस्स कम्मस्स माहप्पं ।।५४।।
व्यवहितमपि वृक्षादेः फलादिभिर्व्यज्यते यथा बीजम् । अन्नभवंतरियं पि हु तह कम्मं इहभवफलेण ।।५५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्वा कोद्रवबीजं फलकाले योऽत्र मृगयते शालीन् । शि(खि)विउं कोसे उवलं वेरुलियं मग्गए जो य ।।५६।।
स भवति यदोपहासस्य भाजनं चिन्तितं च नाप्नोति । एवं विहियकुकम्मा सुकम्मफलमग्गिरा जीवा ।।५७।।
तस्माद् यद् येन पुरा शुभमशुभं वा किलार्जितं कर्म्म । सो जायइ इह जम्मे नियमा फलभायणं तस्स ।।५८।।
कः किल तदुपालभ्यः को वा सुखदुःखहेतुरिह जन्तोः । मुत्तूणं नियकम्मे उम्मूलह ते तओ भव्वा ! ।।५९।।
अनुभवसुभगमथैवं निजसङ्कल्पोचितं च तद्वचनम् । सोउं पमुइयचित्तो वसुदत्तो विन्नवइ एवं ।।६०।।
भगवन्नाराध्यपदैर्यथा ममैवेह सर्वमादिष्टम् । नियपुव्वजम्मकम्मं मुणिउं गुरुकोउगं च मम ।।६१।।
तस्मादनुग्रहार्थं ममानुकम्प्यस्य कथय तन्नाथ ! । मुत्तूण सहसकिरणं तमभरहरणे खमो नऽत्र ।।६२।।
विज्ञाय तदुपकारं कारुणिकस्तदनु मुनिपतिरुवाच । निसुणेसु वच्छ ! जइ तुह नियचरिए कोउगं किंपि ।।६३।।
भरतेऽत्र पोतनपुरे समुद्रदत्तः कुबेरदत्तश्च । दो इब्भसुया अन्नुन्ननेहमोहियमणा आसि ।।६४।।
लोभानुविद्धबुद्धिस्तयोः समुद्रः कठोरहृदयश्च । बीओ उ पयणुलोभो दक्खिन्नपरो किवालू य ।।६५।।
सम्पत्सु पुष्कलास्वपि भोगत्यागोपयोगयोग्यासु । तिप्पइ अमुद्दलाभो न समुद्दो निन्नयासु व्व ।।६६।।
अगणितधर्म्माधर्म्मः कर्मादानादिषु प्रवृत्तोऽसौ । अत्थं चिय परिभावइ न विभावइ भाविरमणत्थं ।।६७।।
नक्तन्दिनमवितृप्तः पुरुषार्थेष्वर्थमेव स किलैकम् । अवगणियधम्मकामो बहुमन्नइ थेवमवि नत्रं ।।६८।।
भरणं भर्त्तव्यानामपि कथमपि लोकलज्जया कुरुते । दीणाइदाणविसयं न सहइ सो नाममित्तं पि ।।६९।।
इतरस्त्यागे भोगे धर्मसंवर्गणे च बन्धूनाम् । निब्भरमणोरहो वि हु भएण न पयट्टए तस्स ।।७०।।
एवं कियत्यपि गते काले प्रालेयभूधराभिमुखम् । चलिओ समुद्दत्तो वित्तोवाएसु अवितित्तो ।।७१।।
शीतं न वाऽपि तापं न वृष्टिकष्टं न वाऽध्वनः क्लेशम् । अभिभूया लोभेणं मणुया मणयं पि हु गणंति ।।७२।।
कुर्वन् कुबेरदत्तोऽप्यर्थोपायान् सुखावहानेव । नयरि व्व्रिय नयनिउणो भूरिविभूईओ अज्जेइ ।।७३।।
इति चिन्तयति च चेतसि वेतसवृत्तिं वितन्वता हि मया । नियबंधवस्स वित्तं अणुवत्तियमित्तियदिणाणि ।।७४।।
देशान्तरं च चलितः कुशली सम्प्रति स तावदर्थार्थम् । ता तस्स वित्तजायं पुव्वविढत्तं अलुंपंतो ।।७५।।
अभिनवसंघटितमिदं वित्तं पात्रोपयोगि कुर्वाणः । गिन्हामि फलमिमीए तरंगतरलाइ लच्छीए ।।७६।।
इति निश्चित्य स चक्रे क्रमेण दानप्रवृत्तिमुचितज्ञः । दीणाईसु दयाए निब्भरभत्तीइ पत्तेसु ।।७७।।
दर्शनिनः सदनेऽस्य च षडपि प्रविशन्ति भक्तपानार्थम् । पाएण इमो विमुहो न होइ गेहागएसु जओ ।।७८।।
सम्भावयति च गृहजनमथ परिजनमुचितदानसम्मानैः । निज्झं विणीयवित्ती पियंवओ सज्जसारो य ।।७९।।
स स्वजनबान्धवानामल्पधनानां च मूलधनमेव । वियरइ ववहारत्थं उद्धरइ य ते अणत्थाओ ।।८०।।
धर्मनृपनगरकार्येष्वग्रेसरतां च कलयति सदैव । अन्नुन्नमबाहाए तिन्नि वि साहेइ पुरिसत्थे ।।८१।।

I. निम्नगासु इव । - सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति कतिपयैरपि दिनैर्जने प्रसिद्धिं स बन्धुरां लेभे । दाणं उचियाचरणं च दो वि मूलं पसिद्धीए ।।८२।।
जल्पन् विचरन् विलसन् जनोऽस्य सर्वत्र नाम गृह्णाति । कस्स व न होइ सुहओ पियंवओ चायसाली य ।।८३।।
वलितः कुबेरककुभः कुबेरदत्ताग्रजोऽप्युपात्तधनः । सहल ह्रिय नणु आसा धणयासाए पयट्टाणं ।।८४।।
आगच्छन्नथ कतिभिः प्रयाणकैः प्राप पोतनोद्देशम् । निसुणेइ य सव्वत्तो कुबेरदत्तस्स जसघोसं ।।८५।।
दध्यौ च शङ्कितमना ममानुजो मां विना ध्रुवं धूर्त्तैः । वेलविऊणं केहि वि पयट्टिओ दाणमाईसु ।।८६।।
इति चिन्ताचान्तमनाः सार्थं तत्रैव स व्यवस्थाप्य । इक्को अलक्खिउ ह्रिय रयणीए पोयणं पत्तो ।।८७।।
अन्यपटान्तरिततनुस्त्रिकचत्वरदेवमन्दिरसभासु । दाणाइगुणगणं सो निसुणइ भमिरो कुबेरस्स ।।८८।।
निजमन्दिरमपि पश्यति विचित्रचित्राङ्कितं सुधाधवलम् । तत्तो धसक्किएणं हियएण विचिंतए एवं ।।८९।।
मूढेन नूनममुना ममानुजेनार्जितं बहुक्लेशैः । लीलाइ ह्रिय दविणं विहियं सव्वं पि विडभुज्जं ।।९०।।
ज्ञातं पुराऽपि चैवं विधास्यतीदं विना हि मां यदसौ । इक्को समुद्दत्तो कित्तियठाणेसु किर होउ ।।९१।।
इति सर्वस्वविनाशादिव हृदये सोऽथ सुचिरमनुशोच्य । रयणीइ ह्रिय वलिओ पुणो वि नियसत्थमल्लीणो ।।९२।।
अनुशिष्य चाप्तमेकं जनं द्वितीये दिनेऽथ स प्रैषीत् । सविहे कुबेरदत्तस्स सो वि तं भणइ एगंते ।।९३।।
वदति त्वदग्रजस्त्वां श्रुतं पुरा साम्प्रतं स्वयं दृष्टम् । मह देसंतरगमणे जं किंपि कयं तए वच्छ ! ।।९४।।
न कृतमिदं न करिष्ये नेदं सोढं न चापि विषहिष्ये । मज्झ वि घरंमि जं किर एवमजुत्तो वओ होइ ।।९५।।
किमतीतोपालम्भैः सौभ्रात्रं किमपि यदि मम स्मरसि । ता मुत्तुं नियनीइं मह नीइं चेव अणुसरसु ।।९६।।
अथ नाभिमतमिदं तव तत् प्रेमश्लथ ! कथय परमार्थम् । जेणाहं इक्कुह्रिय उड्डमुहो जामि वणवासं ।।९७।।
इत्येकान्तकठोरं निरपेक्षं तस्य वाचिकं श्रुत्वा । वीमंसिउं पवत्तो सो पडिओ धम्मसंदेहे ।।९८।।
एकत्राग्रजवचनं मान्यमथान्यत्र धर्मलोपोऽयम् । एयंमि कज्जजुयले गुरुलहुभावो भवउ कस्स ।।९९।।
अवगणितवचसि खेदाद् वनं गतेऽस्मिन् जनेऽत्र वचनीयम् । होही मह आजम्मं चंदस्स कलंकपंक व्व ।।१००।।
एनं प्रमाणयत्रथ धर्माचरणान्यमूनि मुञ्चामि । ता सुकएण विहीणो परलोए दुक्खिओ होमि ।।१०१।।
एवं स्थितेऽपि कथमिव विमानयाम्यग्रजं पितुस्तुल्यम् । परलोयं साहिस्सं तवजवपभिईहिं पच्छा वि ।।१०२।।
इति तदुपरोधबद्धः स सञ्झहारात्मनः कृतिं सकलाम् । माइंदजालभुज्जं खणंतरे इंदयालि व्व ।।१०३।।
अनुजस्य विनयवृत्त्या मुदितेनापि हि समुद्रदत्तेन । दाणंतरायजणियं बद्धं निविडं तया कम्मं ।।१०४।।
पूर्वस्थित्यैव ततः स धनादिषु मूर्छितो दिनान्यनयत् । गुरुकम्माण जियाणं दुलहो सुहभावसंजोगो ।।१०५।।
दध्रे ततः प्रभृत्यपि कुबेरदत्तस्तु संसृतिविरागम् । सुलहा विरागहेऊ पए पए पयणुमोहाणं ।।१०६।।
तृणमिव ततः स त्यक्त्वा गृहवासं शुद्धवासनोल्लासः । पव्वज्जं पडिवन्नो पालिय तियसेसु उववन्नो ।।१०७।।
च्युत्वा ततो विदेहे सेत्स्यति भवयोर्युगेन गतकर्म्मा । अट्टवसट्टोवगओ समुद्दत्तो वि मरिऊण ।।१०८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरकेष्वथ तिर्यक्षु च सप्तभवानविरतं समुत्पन्नः । घोरंतरायवसओ सव्वत्थ वि दुक्खिओ बाढं ।।१०९।।
सम्प्रति सावशेषेण कर्म्मणा पुनरनुद्धुतस्तेन । जाओ सो वसुदत्तो वच्छ तुमं इय दसा एसा ।।११०।।
श्रुत्वा तथाविधमसावनुभवपर्यन्तमात्मनश्चरितम् । आलंबियवेरग्गो लग्गो अणुसोइउं एवं ।।१११।।
धिगधन्येन मया निर्भरलोभाभिभूतचित्तेन । कित्तियमित्ताण कओ जीवाणं वित्तिविच्छेओ ।।११२।।
कियदेतन्नरकादिषु यदकार्षमहं गतागतानीति । एवंविहस्स नरएसु चेव मह जुज्जए वासो ।।११३।।
धन्यः स तु मे भ्राता ममापि येनानुवर्त्तितं चित्तम् । नियकज्जं पि हु सज्जो पसाहियं निहयमोहेणं ।।११४।।
संशयतिमिरविरोचन ! जनलोचनरोचन ! प्रसीद विभो ! । साहेसु अहं कम्माउ इमाउ मुच्चिस्सं ।।११५।।
भगवानपि कारुणिकस्तमवीवददवधिवासरस्तेऽद्य । कम्मस्स तस्स विगमे ता मा संतावमुव्वहसु ।।११६।।
सुकुलोद्गतोऽसि सम्यक् हेयोपादेयवस्तुविज्ञोऽसि । लोभाईण कसायाण मुणियफुडकडुविवागो सि ।।११७।।
तस्मादतः परं त्वं तथा कथञ्चन विधेहि सच्चरितम् । एवंविहदुक्खाणं न होसि जह भायणं भद्द ! ।।११८।।
प्रमुदितमनास्ततोऽसौ तथेति शिरसि प्रपद्य गुरुवचनम् । सम्मत्तमूलियाइं पडिवन्नो बारस वयाइं ।।११९।।
विज्ञप्तश्च मुनीन्द्रः पुनरपि तेनाथ नाथ ! दत्तं मे । परलोइयपाहेयं तुब्भेहिं पसन्नहियएहिं ।।१२०।।
साम्प्रतमिहलोकार्थं पाथेयं किमपि पाथसां नाथात् । पत्थेउं पत्थाणं काहं इत्तो नमो तुज्झ ।।१२१।।
अत्रान्तरे च यतिपतिसेवाहेवाकिचेतसा तत्र । पुव्वागएण भणिओ सुत्थियलवणाहिवेण इमो ।।१२२।।
एषोऽस्मि भद्र जलधेरधिदैवतमत्र गच्छ माऽन्यत्र । साहम्मिओ सि अरिहसि सम्माणं पत्थणाइ अलं ।।१२३।।
इत्युक्त्वा रत्नाकरपतिर्ददौ तस्य पञ्च रत्नानि । उम्मिल्लमहल्लमहाणि कोडिमुल्लाणि पत्तेयं ।।१२४।।
कृतकृत्यो वसुदत्तस्तदनु समारुह्य रैवतकशिरसि । इक्कं रयणं सिरिनेमिसामिणो कुणइ मोलिमणिं ।।१२५।।
सत्त्वेन तस्य तुष्टश्चक्रे पञ्चैव सुस्थितस्तानि । किं किं न हु सत्तेणं सीलेण व जायइ जयम्मि ।।१२६।।
मुदितमनास्तदनु गिरेरुपत्यकामेत्य सपदि वसुदत्तः । चिंतेइ ताव इत्तो कोसंबीपुरवरी दूरे ।।१२७।।
मणयः स्पृहणीयतमा मार्गास्तस्करकुलाकुलाः कामम् । तम्हा विणा उवायं निरवायं होउ न हु गमणं ।।१२८।।
इति निश्चित्य विविक्ते स्थाने सङ्गोप्य तानि रत्नानि । तत्तुल्लाणि य उवलाणि पंच घित्तूण सो चलिओ ।।१२९।।
समुपेत्य चौरपल्लीपरिसरमुच्चैः स्वरं ततोऽवादीत् । रयणाणि पंच पंच पिच्छह महल्लमुल्लाणि भो ! मज्झ ।।१३०।।
चौराः समेत्य च जवाद् यावदमून्यादरेण पश्यन्ति । ता पिक्खंता उवले विलक्खवयणा निवत्तंति ।।१३१।।
एवं द्वित्रिर्जलधेः कौशाम्ब्याश्चान्तरे तथा कुर्वन् । गहिलु त्ति तक्करेहिं उविक्खिओ सव्वहा वि इमो ।।१३२।।
पर्यायेण गृहीत्वा रत्नान्यपि तानि तदनु निरपायम् । कोसंबीए पत्तो वसुदत्तो दलियदोगच्चो ।।१३३।।
द्वित्राणि तत्र विक्रीय तेषु रत्नानि तदुदितैर्द्रव्यैः । ववहारेसु पयट्टो पुव्वं व अनिंदिएसु इमो ।।१३४।।
चिन्तयति यत्र चासौ व्यवसाये सममथो द्विगुणमायम् । लीलाइ तत्थ तं लहइ दसगुणं वीसगुणियं वा ।।१३५।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृह्णाति गौणवृत्त्या यानि च पण्यान्यसाररूपाणि । अणुणयसएहिं लोओ लाहत्थं पत्थए ताणि ।।१३६।।
यं पश्यति जल्पति वा सौहार्दान्निरभिसन्ध्यपि जनं सः । सो मन्नइ अप्पाणं कयकिच्चं लद्धरज्जं वा ।।१३७।।
घोरान्तरायविगमात् सुभगत्वमिति प्रपद्य सद्योऽसौ । पूरिज्जइ सरियाहिं सरिनाहो इव सिरीहिं सया ।।१३८।।
अपमानितश्च यैर्यैर्विभवभ्रंशे स मन्दमेधोभिः । उवयारहए ते ते सविसेसं कुणइ निच्चं पि ।।१३९।।
[1]..... । दृष्ट्वा तस्य तथाविधमत्यद्भुतभागधेयसम्भारम् ।।१४०।।
..... । .....।।१४१।।
..... । ..... ।।१४२।।
..... । निरइयाराणि समणधम्मंमि विहियमणो ।।१४३।।
क्रमशश्चापत्यगणे गृहभारोद्धरणधुर्यतामाप्ते । पोसहसालाइ ठिओ गिहिपडिमाओ पवज्जेइ ।।१४४।। तथाहि -
शङ्कादिदोषरहितां प्रशमस्थैर्यादिलिङ्गगुणकलिताम् । [2]पढमं दंसणपडिमं पडिवन्नो मासमित्तमिमो ।।१४५।।
सम्यक्त्वस्थिरचेता निरतीचारं गृहिव्रतव्रातम् । पालेइ बीयपडिमं दुमासमाणं पवन्नो सो ।।१४६।।
सम्यक्त्वव्रतनिष्ठः सामायिकमुभयसन्ध्यमप्येष । तइयं तिमासमाणं कुणइ य पडिवज्जिउं पडिमं ।।१४७।।
पर्वदिनेषु च पौषधमाद्यप्रतिमाक्रियान्वितः कुरुते । चउमासकालमित्तं चउत्थपडिमं पवन्नो सो ।।१४८।।
एवं च पञ्च मासान् पूर्वानुष्ठाननिश्चलः कुरुते । पव्वतिहीसुं पडिमं चउप्पहाईसु सयलनिसिं ।।१४९।।
षष्ठप्रतिमानिष्ठः षण्मासान् ब्रह्मचर्यमधिकमसौ । पालेइ पुव्वपडिमाकिरियकलावं अमुंचंतो ।।१५०।।
वर्जयति सप्त मासान् सचित्तं सप्तमीं स्थितः प्रतिमाम् । भुंजइ न अट्ठमीए सयं कडं अट्ठमासाणि ।।१५१।।
कारयति न चारम्भं नव मासान् स्वार्थमास्थितो नवमीम् । उद्दिट्ठं पि न भुंजइ दस मासे दसमपडिमत्थो ।।१५२।।
एकादशमासमितां प्रतिमामेकादशीमथास्थाय । परिचत्तसव्वसंगो कयलोओ गहियरयहरणो ।।१५३।।
बभ्राम स भिक्षार्थं सज्ञातिकुलेषु धर्म्मलाभमृते । पडिमट्ठियस्स सड्ढस्स देह भिक्खं ति जंपंतो ।।१५४।।
एवं च समयनीत्या सत्त्वाधारः स धारयामास । सिवमंदिरनिस्सेणिप्पडिमा इक्कारस वि पडिमा ।।१५५।।
संलेखनां च कृत्वा समयमथान्त्यं सुधीः समवगत्य । वसुदत्तो पडिवन्नो बारसमिं भिक्खुपडिमं पि ।।१५६।।
सर्वादरेण च मणीनिव पञ्च पूर्वं साधुव्रतानि परिपाल्य सुनिर्म्मलानि । मासं विमुक्कअसणो मरिऊण जाओ सो अच्चुयंमि तियसो तियसेसतुल्लो ।।१५७।।४६४।।

गाथा-४६४ 1. सं. तथा पा. प्रतिमध्ये १४० तः १४३ पर्यन्तं श्लोकाः अपूर्णास्सन्ति ।। - सम्पा० ।।
2. **प्रतिमायाः नामानि** - दंसण-वय-सामाइय-पोसह-पडिमा-अबंभ-सच्चित्ते ।
आरंभ-पेस-उद्दिट्ठवज्जए समणभूए य ।। - पञ्चा. १० गा. ३ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याख्यातानि सोदाहरणानि पञ्च महाव्रतानि । साम्प्रतं समितिगुप्तीनामवसरः, ताश्चेह प्रवचनमातृशब्दवाच्या इत्येतदेव प्रस्तावयन्नाह -

एयं च वयसरीरं लालिज्जइ जाहिं सुट्ठु अणवरयं ।
अट्ठप्पवयणमायाउ ताउ लेसेण सीसंति ।।४६५।।

इदं च पूर्वोदितं महाव्रतलक्षणं **यतीनां शरीरं यकाभिः सुष्ठु** मातृप्रेम्णा **अनवरतम**हर्निशं **लाल्यते** सलीलमुपचयं प्राप्यते । **ताः प्रवचनमातरोऽष्टावपि लेशेन** समासेन **कथ्यन्ते** । समुचितं च मातृजनस्याऽपत्यादेर्वपुर्लालनमिति ।।४६५।।

[1]ता एव नामतः प्राह -

[1]इरिया-[2]भासा-[3]एसण-[4]आयाणु-[5]स्सग्गनामधेयाओ ।
समिईओ पंच [1]मण[2]वयण[3]कायगुत्तित्तयं ताउ ।।४६६।।

समितिशब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धा**दीर्या**समिति-**भाषा**समिति-**रेषणा**समिति-**रादान**समिति-**रुत्सर्ग**समिति**नामधेयाः पञ्च समितयस्तथा मनो**गुप्ति-**वाग्**गुप्ति-**काय**गुप्तिलक्षणं **गुप्तित्रयं** च **ताः** प्रवचनमातर इति ।।४६६।। [1]तत्रादावीर्यासमितिमाह -

इरियासमियाण भवे परिमलियपहम्मि मिह[हि]रकरपुट्ठे ।
अणवज्जकज्जमासज्ज गमणमेगग्गमणनयणं ।।४६७।।

गाथा-४६६ 1. तुला - मूलगुणरूपं चारित्रमभिधायोत्तरगुणरूपं तदाह -

अथवा पञ्चसमिति-गुप्तित्रयपवित्रितम् । चरित्रं सम्यक्चारित्रमित्याहुर्मुनिपुङ्गवाः ।। - योग शा. १/३४ ।।

समितिरिति पञ्चानां चेष्टानां तान्त्रिकी संज्ञा । अथवा सं सम्यक् प्रशस्ता अर्हत्प्रवचनानुसारेण इतिः चेष्टा समितिः, पञ्चानां समितीनां समाहारः पञ्चसमिति । गुप्तिरात्मसंरक्षणं मुमुक्षोर्योगनिग्रह इत्यर्थः । गुप्तीनां त्रयं गुप्तित्रयम् । पञ्चसमिति च गुप्तित्रयं च, ताभ्यां पवित्रितं यच्चरित्रं यतीनां चेष्टा सा सम्यक्चारित्रमुच्यते । सम्यक्प्रवृत्तिलक्षणा समितिः, प्रवृत्ति-निवृत्तिलक्षणा गुप्तिरित्यनयोर्विशेषः ।। - योग शा. १/३४ टीका० ।।

अथ समितिर्गुप्तीश्च नामत आह -

ईर्या-भाषै-षणा-ऽऽदान-निक्षेपो-त्सर्गसंज्ञकाः । पञ्चाहुः समितीस्तिस्रो गुप्तीस्त्रियोगनिग्रहात् ।। - योग शा. १/३५ ।।

ईर्यासमितिर्भाषासमितिरेषणासमितिरादाननिक्षेपसमितिरुत्सर्गसमितिरित्येताः पञ्च समितीर्ब्रुवते तीर्थकराः ।

त्रिसंख्या योगास्त्रियोगा मनो-वाक्-कायव्यापाराः, तेषां निग्रहो निरोधः प्रवचनविधिना मार्गव्यवस्थापनमुन्मार्ग-निवारणं च । निग्रहादिति हेतौ पञ्चमी, तेन मनोगुप्तिर्वचनगुप्तिः कायगुप्तिरिति तिस्रो गुप्तीर्ब्रुवते ।।

- योग शा. १/३५ टीका० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईर्यासमितिर्हि न खलु किञ्चिद्वस्त्वन्तरं, केवलं त्रसस्थावरजन्तुजाताऽभयदानदीक्षितानां मुनीनां प्राणिरक्षानिमित्तमात्मरक्षार्थं च चरणाग्रादारभ्य युगमात्रक्षेत्रं यावदवलोक्य यदीरणं गमनं सैवेर्या-समितिस्तदुपलक्षिताश्च मुनयोऽ**पीर्यासमितास्तेषाम्** । क्व तद् गमनमित्याह - करितुरगनरख-रादिभिः **परिमलिते** क्षुण्ने(ण्णे) **पथि** वर्त्मनि । अनुपमर्दिते हि पथि प्रचलतां यतीनामसुकरा षड्जीवनिकाययतना । पुनः किंविशिष्टे ? **मिह हि रकरस्पृष्टे** भास्वत्प्रभोद्भासिते । इयता च परिमलितेऽप्यध्वनि सम्पातिमसत्त्वसम्मर्दभीरूणां मुनीनामुत्सर्गतो रात्रिगमने निषेधः । ननु तर्हि दिवा स्वेच्छमस्तु तेषां सञ्चारो, नेत्याह - **अनवद्यं** सावद्यरहितं **कार्यं** ज्ञानदर्शनचारित्रादिविषयं प्रयोजनमवश्यकृत्य**मधिकृत्य** । कथं **गमनमित्याह - एकाग्रमनोनयनं** मनोनयनैकाग्र्यमन्तरेण भवत्येव संयमात्मविराधना । यदाहुः -

पुरओ जुगमायाए पेहमाणो महिं चरे ।
वज्जंतो बीयहरियाइं पाणे य दगमट्टियं ।।१।।

ओवायं विसमं खाणुं विज्जलं परिवज्जए ।
संकमेण न गच्छिज्जा विज्जमाणे परक्कमे ।।२।। त्ति [दशवै. अ.५, उ.१, गा. ३-४] ।।४६७।।

गाथा-४६७ 1. **तुला - ईर्यालक्षणमाह -** लोकातिवाहिते मार्गे चुम्बिते भास्वदंशुभिः । जन्तुरक्षार्थमालोक्य गतिरीर्या मता सताम् ।। - योग शा. १/३६ ।।

त्रस-स्थावरजन्तुजाताभयदानदीक्षितस्य मुनेरावश्यके प्रयोजने गच्छतो जन्तुरक्षानिमित्तं स्वशरीररक्षानिमित्तं च पादाग्रादारभ्य युगमात्रक्षेत्रं यावत् निरीक्ष्य ईरणमीर्या गतिः, तस्यां समितिरीर्यासमितिः । यदाहुः -

"पुरओ जुगमायाए पेहमाणो महिं चरे । वज्जंतो बीय-हरियाइं पाणे य दग मट्टियं ।।१।।

ओवायं विसमं खाणुं विज्जलं परिवज्जए । संकमेण न गच्छिज्जा विज्जमाणे परक्कमे ।।२।।" (दशवै० ५/१ गा. ३-४)

गतिश्च मार्गे भवति, तस्य विशेषणं 'लोकातिवाहिते', लोकैरतिवाहिते अत्यन्तक्षुण्णे, चुम्बिते स्पृष्टे आदित्यकिरणैः । प्रथमविशेषणे परैर्विराधिते मार्गे गच्छतो यतेः षड्जीवनिकायविराधना न भवति, उन्मार्गेण न गन्तव्यमिति चाह । तथाविधेऽपि मार्गे रात्रौ गच्छतः सम्पातिमसत्त्वविराधना भवेदिति तत्परिहारार्थं द्वितीयविशेषणम् । एवंविधोपयोगवतश्च गच्छतो मुनेः कथञ्चित् प्राणिवधेऽपि प्राणिवधपापं न भवति । यदाह -

"उड्ढालियम्मि पाए इरियासमियस्स संकमट्ठाए । वावज्जेज्ज कुलिंगी मरिज्ज तं जोगमासज्ज ।।१।।"

"न य तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमो वि देसिओ समए । अणवज्जो उ पओगेण सव्वभावेण सो जम्हा ।।२।।" (ओघ नि० गा- ७४९-७५०) । तथा -

"जिअदु व मरदु व जीवो अजदाचारस्स निच्छओ हिंसा । पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स ।।" (प्रवचन० ३/१७) - योग शा. १/३६ टीका० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्राह परः -

नणु कहमुवउत्ताण वि छउमत्थमुणीण सुहुमजियरक्खा ।
सञ्चं तहवि न वहगा उवओगपरा जओ भणियं ।।४६८।।

नन्विति पूर्वपक्षोपन्यासे । **छद्मस्थानां** विशिष्टज्ञानातिशयरहितानां **मुनीनामुपयुक्तानां** सम्यगीर्यासमितानामपि **सूक्ष्माणां** चर्मचक्षुषामदृश्यानां **जीवानां कथं रक्षासम्भवः** ? । आचार्यः प्राह - भोः ! पर ! **सत्यम**वितथमेवैतद् भवद्वचः । **तथाऽपि** विशेषज्ञानशून्या अपि ते **यद्युपयोग-परा:** पूर्वोक्तयुक्त्या चङ्क्रमणप्रवृत्तास्तदा सम्भवत्यपि प्राणिवधे **न ते वधका** वधपापांशभाजः । न चैतत् काल्पनिकं । **यतो भणित**मागमेऽपि ।।४६८।। तदेव दर्शयति -

उज्जालियम्मि चरणे इरियासमियस्स संकमट्ठाए ।
वावज्जिज्ज कुलिंगी मरिज्ज तं जोगमासज्ज ।।४६९।।
न य तस्स तन्निमित्तो बंधो सुहुमो वि देसिओ समए ।
अणवज्जो उ पओगेण सव्वभावेण सो जम्हा ।।४७०।। [ ]

उज्जालिते समुत्क्षिप्ते **चरणे** पादे **ईर्यासमितस्य** मुनेः **सङ्क्रमार्थं** गमनार्थं **व्यापद्येत** मारणात्मिकीं व्यापत्तिं प्राप्नुयात् । **कुलिङ्गी** एकेन्द्रियादि **म्रियेत** प्राणान् वा जह्यात् । किं कृत्वा ? **तदे**व तस्य मुनेर्**योगं** गमनलक्षणं व्यापार**मासाद्य । न च तस्ये**र्यासमितस्य मुनेस्**तन्निमित्त**स्तद्बध-प्रत्ययः **सूक्ष्मः** स्वल्पोऽपि **बन्धः** प्रस्तावात् कर्म्मणः **देशितः** कथितः **समये** जिनागमे । किमित्याह - यद् **यस्मात् स** मुनिः **सर्वस्वभावेन** सर्वात्मना तेन **प्रयोगेण** गमनलक्षणेन वधको-ऽप्यप्रमत्ततयाऽ**नवद्यो** निरवद्यो निर्दोष एव । मनःपरिणामायत्तत्वात् कर्मबन्धस्य ।।४६९।।४७०।। भाषासमितिमाह -

भयहासकोहलोहेहिं विरहियं निउणबुद्धिसंठवियं ।
सियवायमणुपविट्ठं भासं भासंति तस्समिया ।।४७१।।

गाथा-४७१ 1. **तुला - भाषासमितिमाह** - अवद्यत्यागतः सर्वजनीनं मितभाषणम् । प्रिया वाचंयमानां सा भाषासमितिरुच्यते ।। - योग शा० १/३७ ।।

अवद्यानि भाषादोषा वाक्यशुद्ध्यध्ययनप्रतिपादिताः धूर्त्त-कामुक-क्रव्याद-चौर-चार्वाकादिभाषितानि च, तेषां निर्दम्भतया त्यागः, ततः सर्वजनीनं सर्वजनेभ्यो हितम्, मितं स्वल्पमप्यतिबहुप्रयोजनसाधकं तद्च तद् भाषणं च । यदाह - "महुरं निउणं थोवं कज्जावडियं अगव्वियमतुच्छं । पुव्विं मइसंकलियं भणंति जं धम्मसंजुत्तं ।।" [उपदेश० ८०]

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयेन सप्तविधेन **हास्येन** नोकषायोदयरूपेण **क्रोधेन** प्रथमकषायेण **लोभेन** चतुर्थसम्परायेण च **रहितां** न पुनर्भयादिभिर्वितथत्वमापादिताम् । तथा **निपुणया** पूर्वापराविसंवादिन्या **बुद्ध्या** धिया **संस्थापितां,** भणनकालात् प्रथममेव इदमित्थमिति चेतसि सङ्कलिताम् । तथा **स्याद्वादसप्त-भङ्गीमनुप्रविष्टाम्** । न तूभयकोट्यवलम्बिन्यर्थे इदमित्थमेवेत्यवधारणरूपाम् । एवंविधां **भाषां तत्समिता** भाषासमितिसमिताः प्रस्तावान्मुनयो **भाषन्ते,** न पुनरेतद्विपरीताम् । यदाहुः -

जा य सच्चा न वत्तव्वा सच्चामोसा य जा मुसा ।
जा य बुद्धेहिं णाइन्ना न तं भासिज्ज पन्नवं । [दशवैकालिक अध्य० ७ गा. २] **इति ।।४७१।।**

एवं च -

कुणमाणो धम्मकहं सुहमेसु वि समयसारवत्थूसु ।
भासासमिओ सम्मं न छलिज्जइ वितहवाएण ।।४७२।।

कुर्वाणो विदधानो **धर्मकथामा**क्षेपणीं विक्षेपणीं संवेजनीं निर्वेदनीं च । तत्राक्षिपत्यावर्जय-

---

एवंविधं यद् भाषणं सा भाषासमितिः । भाषायां सम्यगितिर्भाषासमितिः । सा च प्रिया अभिमता वाचंयमानां मुनीनाम् । यदाहुः -

"जा य सच्चा न वत्तव्वा सच्चामोसा य जा मुसा । जा य बुद्धेहिं णाइण्णा ण तं भासेज्ज पण्णवं ।।" [दशवै० ७/२] इति ।। - योग शा० १/३७ ।।

गाथा-४७२ । **तुला -** तृतीयाक्षेपणी चैका तथा विक्षेपणी परा । अन्या संवेजनी निर्वेजनी चेति चतुर्विधा ।। द्वा. द्वा. ९/४ ।। तृतीया धर्मकथा च एका आक्षेपणी, तथा परा विक्षेपणी, अन्या संवेजनी, च पुनर्निर्वेजनी इति चतुर्विधा ।। - द्वा. द्वा. ९/४ टीकायाम् ।।

आक्षेपणी - आचाराद् व्यवहाराच्च प्रज्ञप्तेर्दृष्टिवादतः । आद्या चतुर्विधा श्रोतुश्चित्ताक्षेपस्य कारणम् ।। - द्वा. द्वा. ९/५ ।। आचारं व्यवहारं प्रज्ञप्तिं दृष्टिवादं चाश्रित्य आद्याक्षेपणी चतुर्विधा ।। - द्वा. द्वा. ९/५ टी. ।।

विक्षेपणी - स्वपरश्रुतमिथ्यान्यवादोक्त्या संक्रमोत्क्रमम् । विक्षेपणी चतुर्धा स्याद्जोर्मार्गाभिमुख्यहृत् ।। द्वा. द्वा. ९/९ ।। स्वपरश्रुते स्वसमयपरसमयौ, मिथ्यान्यवादौ मिथ्यावादसम्यग्वादौ, तयोरुक्त्या प्रतिपादनेन । संक्रमोत्क्रमं पूर्वानुपूर्वीपश्चानुपूर्वीसहितं यथा स्यात्तथा । चतुर्धा विक्षेपणी स्यात् ।। - द्वा. द्वा. ९/९ टी. ।।

संवेजनी - मता संवेजनी स्वान्यदेहेहप्रेत्यगोचरा । यया संवेज्यते श्रोता विपाकविरसत्वतः ।।- द्वा. द्वा. ९/१३ ।। यया कथया । विपाकविरसत्वतो विपाकवैरस्यात् प्रदर्शितात् श्रोता संवेज्यते संवेगं ग्राह्यते सा संवेजनी । स्वान्यदेहेहप्रेत्यगोचरा स्वशरीरपरशरीरेहलोकपरलोकविषया चतुर्विधा मता ।। - द्वा. द्वा. ९/१३ टी. ।।

निर्वेदनी - चतुर्भंगी समाश्रित्य प्रेत्येहफलसंश्रयाम् । पापकर्मविपाकं या ब्रूते निर्वेजनी तु सा ।। द्वा. द्वा. ९/१५ ।। या कथा पापकर्मविपाकं । प्रेत्येहफलसंश्रयामिहलोकपरलोकभोगाश्रितां चतुर्भंगीं समाश्रित्य ब्रूते । सा तु निर्वेजनी चतुर्भिरेव भङ्गैः प्रतिपाद्यमानैश्चतुर्विधेति भावः ।। - द्वा. द्वा. ९/१५ टी. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्यभिमुखीकरोति या सा आक्षेपणी कथा शृङ्गारादिप्राया । विक्षिपति भोगाभिलाषान् या कामभोगेषु वैमुख्यमापादयति सा विक्षेपणी । सम्यग् वेज्यते भयं ग्राह्यते श्रोता यया सा संवेजनी कथा । नारकतिर्यगादिदुःखलक्षोपक्षेपणीं यां श्रुत्वा भव्यप्राणी चतुर्विधादपि संसारादुद्विजते मोक्षार्थं च घटत इति । निर्वेदं नीयते यया कथया कामभोगेषु सा निर्वेदनी । यस्याः स्त्रीशरीराद्यशुचित्व-कामभोगादिबीभत्सत्वपरिणामदारुणत्वादिश्रवणेन निर्विण्णः परित्यज्य विषयान् निस्सङ्गः सिद्धि-वध्वाराधनसज्जः प्रवर्त्तत इत्येवंरूपां कथां प्रथयन् **सूक्ष्मेषु** निपुणमतिगम्येष्वपि **समयसारवस्तुषु** सिद्धान्तोपनिषत्सु **सम्यगुक्त**न्यायेन **भाषासमितो** मुनिर्**वितथवादेना**यथार्थप्ररूपणेन न छले पात्यते । भाषासमितिप्रमत्तस्यैव तथासम्भवात् ।।४७२।। वितथवादिन एव सर्वजघन्यतामाह -

वरमन्नाणी वि मुणी कट्ठाणुट्ठाणविरहिओ वा वि ।
नाणकिरियारओ वि हु अजहत्थपरूवगो न वरं ।।४७३।।

अज्ञानी सम्यक्ज्ञानशून्योऽपि **मुनिर्वरम्** । तथा **कष्टानुष्ठानेन** नक्तन्दिनावश्यविधेयेन प्रेक्षोत्प्रेक्षादिना क्रियाकलापेन **विरहितः** सोऽ**पि** वरम् । यथोक्त**ज्ञानक्रियारतोऽप्ययथार्थप्ररू-पकः** सर्वज्ञोपज्ञाऽर्थाऽन्यथाभाषकस्तु **न वरम्** । ज्ञानक्रियाशून्ययोस्तु वरत्वमुत्सूत्रभाषकापेक्ष्य (क्ष)मेव, न तु सामान्यतः ।।४७३।। अतः किमर्थं वितथप्ररूपकस्यैवं विगर्हणीयत्वमित्याह -

नाणकिरियासु सिढिला अप्पाणं चिय भवंमि पाडंति ।
वितहा परूवगा पुण अणंतसत्ते भमाडिंति ।।४७४।।

यतो ज्ञानावरणोदयाच्चारित्रावारकोदयाच्च **ज्ञाने क्रियायां** च **श्लथाः** प्रमादिनः केवल**मात्मन-मेव भवे** संसृतौ **पातयन्ति** । **वितथप्ररूपकाः पुनरात्मानमनन्तांश्चा**परानपि तद्वचनश्रद्धालून् **सत्त्वान् भ्रामयन्ति,** प्रस्तावादनन्तसंसार इत्यतः कथं ते नानुशोच्या इति ।।४७४।।

एवं च सति यद् विधेयं तदाह -

तम्हा जहसत्तीए जइज्ज तवचरणकरणजोगेसु ।
अजहत्थभासणं पुण चइज्ज जत्तेण जं भणियं ।।४७५।।

तस्मादेवं सति द्रव्यक्षेत्रकालबलसंहननाद्यनुमानेन **तपो** द्वादशविधमनशनादि, **चरणानि** च

[1]वय-[2]समणधम्म-[3]संजम-[4]वेयावच्चं च [5]बंभगुत्तीओ । [6]नाणाइतियं [7]तव-[8]कोहनिग्गहाइ चरण-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेयम् ।।१।। [ओघनिर्युक्ति भा. गा. ३] इति सप्ततिभेदानि । **करणान्यपि** - [४]**पिंडविसोही** [५]**समिई** [१२]**भावण** [१३]**पडिमा उ** [५]**इंदियनिरोहो** । [२]**पडिलेहण**[3] **गुत्तीओ** [४]**अभिग्गहा चेव करणं तु** ।।१।। [ओघनिर्युक्ति भा. गा. ३] इति सप्ततिभेदान्येव । अत एतेषु संयम**योगेषु यथाशक्ति** स्वशक्तेरनतिक्रमेण यति**र्यतेत** । **अयथार्थभाषणमुत्सूत्रप्ररूपणं पुनर्यत्नेन** महता प्रयत्नेन **त्यजेत्** । **यतो भणित**मागमेऽपि ।।४७५।। तदेव दर्शयति -

"उस्सुत्तभासगाणं बोहीनासो अणंतसंसारो ।
पाणच्चए वि धीरा तम्हा न वयंति उस्सुत्तं" ।।४७६।। [ ]

मदाज्ञानादिभि**रुत्सूत्रभाषकाणां बोधे**स्तत्त्वार्थश्रद्धानरूपायाः शिवशाखिबीजकल्पाया **नाशस्तत्प्रत्ययश्चानन्तसंसारस्ततः प्राणात्ययेऽपि धीराः** सत्त्वशालिनः कदाचि**दुत्सूत्रं न वदन्ति** । तुरुमिणीदत्तानुयुक्तयज्ञफल**कालिकाचार्यवत्** ।।४७६।। [1]एषणासमितिमाह-

उग्गमउप्पायणदुविहएसणासुद्धमन्नवत्थाई ।
कारणजाए जइणो गिण्हंता एसणासमिया ।।४७७।।

गाथा-४७६ 1. **तुला - एषणासमितिमाह** - द्विचत्वारिंशता भिक्षादोषैर्नित्यमदूषितम् ।
मुनिर्यदन्नमादत्ते सैषणासमितिर्मता ।। - योग शा. १/३८ ।।

द्वाभ्यामधिका चत्वारिंशत् द्विचत्वारिंशद् भिक्षादोषा उद्गमोत्पादनैषणालक्षणाः । तत्रोद्गमदोषा गृहस्थप्रभवाः षोडश, तद्यथा -

आहाकम्मुद्देसिय पूईकम्मे अ मीसजाए अ । ठवणा पाहुडियाए पाओयर कीय पामिच्चे ।।१।।
परिअट्टिए अभिहडे उब्भिण्णे मालोहडे इअ । अच्छिज्जे अणिसट्ठे अज्झोयरए अ सोलसमे ।।२।।
- [पिण्डनि. गा. ९२-९३]

'आधाय' विकल्प्य, यतिं मनसि कृत्वा सचित्तस्याचित्तीकरणमचित्तस्य वा पाको निरुक्तादाधाकर्म ।।१।।

उद्देशः साध्वर्थं सङ्कल्पः, स प्रयोजनमस्य औद्देशिकम्, यत् पूर्वकृतमोदन-मोदकक्षोदादि तत् साधूद्देशेन दध्यादिना गुडपाकेन च संस्कुर्व्वतो भवति ।।२।।

आधाकर्म्मिकावयवसम्मिश्रं शुद्धमपि यत्तत् पूतिकर्म शुचिद्रव्यमिवाशुचिद्रव्यसम्मिश्रम् ।।३।।

यदात्मार्थं साध्वर्थं चादित एव मिश्रं पच्यते तन्मिश्रम् ।।४।।

साधुयाचितस्य क्षीरादेः पृथक्कृत्य स्वभाजने स्थापनं स्थापना ।।५।।

कालान्तरभाविनो विवाहादेः 'इदानीं सन्निहिताः साधवः सन्ति, तेषामप्युपयोगे भवतु' इति बुद्ध्या इदानीमेव करणं समयपरिभाषया प्राभृतिका, सन्निकृष्टस्य विवाहादेः कालान्तरे साधुसमागमनं सञ्चिन्त्योत्कर्षणं वा ।।६।।

यदन्धकारव्यवस्थितस्य द्रव्यस्य वह्नि-प्रदीप-मण्यादिना भित्त्यपनयनेन वा बहिर्निष्कास्य द्रव्यधारणेन वा

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवंविधमन्नवस्त्रादि यतयो गृह्णन्तः समाददाना **एषणासमिता** भवन्ति । किम्भूतम् ?

प्रकटकरणं तत् प्रादुष्करणम् ।।७।।

यत् साध्वर्थं मूल्येन क्रीयते तत् क्रीतम् ।।८।। यत् साध्वर्थमन्नादि उद्यतकं गृहीत्वा दीयते तत् प्रामित्यकम् ।।९।।

स्वद्रव्यमर्प्पयित्वा परद्रव्यं तत्सदृशं गृहीत्वा यद्दीयते तत् परिवर्त्तितम् ।।१०।। गृह-ग्रामादेः साध्वर्थं यदानीतं तदभ्याहृतम् ।।११।।

कुतुपादिस्थस्य घृतादेर्दानार्थं यत् मृत्तिकाद्यपनयनं तदुद्भिन्नम् ।।१२।।

यदुपरिभूमिकातः शिक्यादेर्भूमिगृहाद्वा आकृष्य साधुभ्यो दानं तन्मालापहृतम् ।।१३।।

यदाच्छिद्य परकीयं हठाद् गृहीत्वा स्वामी प्रभुश्चौरो वा ददाति तदाच्छेद्यम् ।।१४।।

यद् गोष्ठीभक्तादि सर्वैरदत्तमननुमतं वा एकः कश्चित् साधुभ्यो ददाति तदनिसृष्टम् ।।१५।।

स्वार्थमधिश्रयणे सति साधुसमागमश्रवणात्तदर्थं पुनर्यो धान्यावापः सोऽध्यवपूरकः ।।१६।।

उत्पादनादोषा अपि षोडश, ते च साधुप्रभवाः । तद्यथा -

"धाई दूइ निमित्ते आजीव वणीवगे तिगिच्छा य । कोहे माणे माया लोभे अ हवंति दस एए ।।१।। पुव्विंपच्छासंथव विज्जा मंते अ चुण्ण जोए अ । उप्पायणाइ दोसा सोलसमे मूलकम्मे अ ।।२।।" [पिण्डनि० ४०८-४०९]

बालस्य क्षीर-मज्जन-मण्डन-क्रीडना-ऽङ्कारोपणकर्मकारिण्यः पञ्च धात्र्यः । एतासां कर्म भिक्षार्थं कुर्वतो मुनेर्धात्रीपिण्डः ।।१।।

मिथः सन्देशकथनं दूतीत्वम्, तत् कुर्वतो भिक्षार्थं दूतीपिण्डः ।।२।।

अतीता-ऽनागत-वर्त्तमानकालेषु लाभा-ऽलाभादिकथनं निमित्तम् । तद् भिक्षार्थं कुर्वतो निमित्तपिण्डः ।।३।।

जाति-कुल-गण-कर्म्म-शिल्पादिप्रधानेभ्य आत्मनस्तत्तद्गुणत्वारोपणं भिक्षार्थमाजीवपिण्डः ।।४।।

श्रमण-ब्राह्मण-कृपणाऽतिथि-श्वानादिभक्तानां पुरतः पिण्डार्थमात्मानं तत्तद्भक्तं दर्शयतो वनीपकपिण्डः ।।५।।

वमन-विरेचन-बस्तिकर्म्मादि कारयतो वैद्य-भैषज्यादि सूचयतो वा पिण्डार्थं चिकित्सापिण्डः ।।६।।

विद्या-तपःप्रभावज्ञापनं राजपूजादिख्यापनं क्रोधफलदर्शनं वा भिक्षार्थं कुर्वतः क्रोधपिण्डः ।।७।।

लब्धि-प्रशंसोत्तानस्य परेणोत्साहितस्यावमतस्य वा गृहस्थाभिमानमुत्पादयतो मानपिण्डः ।।८।।

नानावेष-भाषापरिवर्त्तनं भिक्षार्थं कुर्वतो मायापिण्डः ।।९।। अतिलोभाद् भिक्षार्थं बहु पर्यटतो लोभपिण्डः ।।१०।।

पूर्वसंस्तवं जननी-जनकादिद्वारेण पश्चात्संस्तवं श्वश्रू-श्वशुरादिद्वारेणात्म-परवयोऽनुरूपं सम्बन्धं भिक्षार्थं घटयतः पूर्व-पश्चात्संस्तवपिण्डः ।।११।।

विद्यां मन्त्रं चूर्णं योगं च भिक्षार्थं प्रयुञ्जानस्य चत्वारो विद्यादिपिण्डाः -

मन्त्रजप-होमादिसाध्या स्त्रीदेवताधिष्ठाना वा विद्या ।।१२।। पाठमात्रप्रसिद्धः पुरुषाधिष्ठानो वा मन्त्रः ।।१३।।

चूर्णानि नयनाञ्जनादीनि अन्तर्द्धानादिफलानि ।।१४।। पादप्रलेपादयः सौभाग्य-दौर्भाग्यकरा योगाः ।।१५।।

गर्भस्तम्भ-गर्भाधान-प्रसव-स्नपनक-मूल-रक्षाबन्धनादि भिक्षार्थं कुर्वतो मूलकर्म्मपिण्डः ।।१६।।

गृहि-साधूभयप्रभवा एषणादोषा दश । तद्यथा -

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्गमउत्पादनाद्विविधैषणाविशुद्धम् । तत्रोद्गमदोषा गृहस्थप्रभवाः षोडश तद्यथा -

"संकिय मक्खिय निक्खित्त पिहिय साहरिअ दायगोम्मीसे ।
अपरिणय लित्त छड्डिय एसणदोसा दस हवंति ।।" [पिण्डनि० ५२०]

आधाकर्म्मकादिशङ्काकलुषितो यदन्नाद्यादत्ते तच्छङ्कितम् । यं च दोषं शङ्कते तमापद्यते ।।१।।

पृथिव्युदक-वनस्पतिभिः सचित्तैरचित्तैरपि मध्वादिभिर्गर्हितैराश्लिष्टं यदन्नादि तन्म्रक्षितम् ।।२।।

पृथिव्युदक-तेजो-वायु-वनस्पतिषु त्रसेषु च यदन्नाद्यचित्तमपि स्थापितं तन्निक्षिप्तम् ।।३।।

सचित्तेन फलादिना स्थगितं पिहितम् ।।४।।

दानभाजनस्थमयोग्यं सचित्तेषु पृथिव्यादिषु निक्षिप्य तेन भाजनेन ददतः संहृतम् ।।५।।

बाल-वृद्ध-पण्डक-वेपमान-ज्वरिता-ऽन्ध-मत्तोन्मत्त-च्छिन्नकरचरण-निगडित-पादुकारूढ-कण्डक-प्रेषक-भर्जक-कर्त्तक-लोठक-वींखक-पिञ्जक-दलक-व्यालोडक-भोजक-षट्कायविराधका दातृत्वेन प्रतिषिद्धा या च स्त्री बेलामासवती गृहीतबाला बालवत्सा वा एभ्यो अन्नादि ग्रहीतुं साधोर्न कल्पते ।।६।।

देयद्रव्यं खण्डादि सचित्तेन धान्यकणादिना मिश्रं ददत उन्मिश्रम् ।।७।।

देयद्रव्यं मिश्रमचित्तत्वेनापरिणमदपरिणतम् ।।८।।

वसादिना संसृष्टेन हस्तेन पात्रेण वा ददतोऽन्नादि लिप्तम् ।।९।।

घृतादि च्छर्दयन् यद्ददाति तत् छर्दितम्, छर्द्यमाने घृतादौ तत्रस्थस्यागन्तुकस्य वा सर्वस्य जन्तोर्मधुबिन्दूदाहरणेन विराधनासम्भवात् ।।१०।।

तदेवमुद्गमोत्पादनैषणादोषाः संहता द्विचत्वारिंशद् भवन्ति, ते च भिक्षादोषाः, तैरदूषितमन्नमशन-खाद्य-स्वाद्यभेदम्, उपलक्षणत्वात् पानं सौवीरादि, तथा रजोहरण-मुखवस्त्र-चोलपट्ट-पात्रादिः स्थविरकल्पिकयोग्य-श्चतुर्दशविधो जिनकल्पिकयोग्यश्च द्वादशविध औधिक उपधिः, आर्यिकायोग्यश्च पञ्चविंशतिविधः, औपग्रहिकश्च शय्या-पीठ-फलक-चर्म-दण्डादिरुपलक्षणादेव परिगृह्यते । न ह्यौधिकरजोहरणाद्यन्तरेण औपग्रहिकपीठफलकाद्यन्त-रेण च वर्षासु हेमन्त-ग्रीष्मयोरपि जलकणिकाकुलायामनूपभूमौ महाव्रतसंरक्षणं कर्तुं क्षमम् । एतद्दोषविशुद्धमन्नादि यन्मुनिरादत्ते सा एषणमेषणा यथागममन्नादेरन्वेषणम् । अत्र "इषोऽनिच्छायाम्" (सि. ५/३/११२) इति स्त्रियामनः । तस्यां च समितिरेषणासमितिः । इयं गवेषणारूपा एषणा ।

ग्रासैषणाप्यनयोपलक्ष्यते । तस्यां च पञ्च दोषाः, तद्यथा - संयोजना १ प्रमाणातिरिक्तता २ अङ्गारो ३ धूमः ४ कारणाभावश्च ५ ।

तत्र रसलोभाद् द्रव्यस्य मण्डकादेर्द्रव्यान्तरेण खण्ड-घृतादिना वसतेर्बहिरन्तर्वा योजनं संयोजना ।।१।।

धृति-बल-संयमयोगा यावता न सीदन्ति तदाहारप्रमाणम् । अधिकाहारस्तु वमनाय मृत्यवे व्याधये चेति तं परिहरेदिति प्रमाणातिरिक्तता दोषः ।।२।।

स्वाद्वन्नं तद्दातारं वा प्रशंसन् यद् भुङ्क्ते स रागाग्निना चरित्रेन्धनस्याङ्गारीकरणादङ्गारो दोषः ।।३।।

निन्दन् पुनश्चारित्रेन्धनं दहन् धूमकरणाद् धूमो दोषः ।।४।।

क्षुद्वेदनाया असहनम्, क्षामस्य च वैयावृत्याकरणम्, ईर्यासमितेरविशुद्धिः, प्रेक्षोपेक्षादेः संयमस्य चापालनम्,

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[2]**आहाकम्मुद्देसिय पूईकम्मे य मीसजाए य ।**
ठवणा पाहुडियाए पाओयर कीय पामिच्चे ।।१।।
परियट्टिए अभिहडुब्भिन्ने मालोहडे य अच्छिज्जे ।
अणिसट्ठज्झोयरए सोलस पिंडुग्गमे दोसा ।।२।। [पञ्चवस्तु गा. ७४१-७४२]

उत्पादनाया अपि षोडश । ते च साधुप्रभवास्तद्यथा -

[3]**धाई दूई निमित्ते आजीव वणीमगे तिगिच्छा य ।**
कोहे माणे माया लोभे य हवंति दस एए ।।१।।
पुव्विंपच्छासंथव विज्जामंते य चुन्नजोगे य ।
उप्पायणाइ दोसा सोलसमे मूलकम्मे य ।।२।। [पिण्डनिर्युक्ति गा. ४०८-४०९]

एषणा तु द्विविधा - पिण्डैषणा ग्रासैषणा च । तत्र पिण्डैषणादोषा गृहिसाधूभयप्रभवा दश । तद्यथा -

[4]**संकियमक्खियनिक्खित्त-पिहियसाहरियदायगुम्मीसे ।**
अपरिणय लित्त छड्डिय एसणदोसा दस हवंति ।।१।। [पिण्डविशुद्धि गा. ७७]

ग्रासैषणादोषाश्च पञ्च । तथाहि - संयोजना, प्रमाणातिरिक्तता, अङ्गारः, धूमः, कारणाभावश्चेति । एभिरुद्गमादिर्दोषैरदूषितमन्नमशनम् । उपलक्षणं चैतत् खाद्यस्वाद्यपानाहाराणां तथा वस्त्रं वसनमादिशब्दात् पात्रादेश्चतुर्दशविधस्यौधिकस्य पीठफलकादेरौपग्रहिकस्य च ग्रहणम् । एतदाहाराद्यपि **कारणवशत** एव यतयो गृह्णन्ति । कारणानि चामूनि । यथा -

[5]**छुहवेयण[1]-वेयावच्च[2]-संजम[3]-सुज्झाण[4]-पाणरक्खट्ठा[5],**
इरियं च विसोहेउं[6] भुंजइ नो रूवरसहेउं ।।१।। [पिण्डविशुद्धि गा. ९८]

क्षुदातुरस्य प्रबलाग्न्युदयात् प्राणप्रहाणशङ्का, आर्त्तरौद्रपरिहारेण धर्मध्यानस्थिरीकरणं चेति भोजनकारणानि । तदभावे भुञ्जानस्य कारणाभावो दोषः ।।५।।

यदाह - "उत्पादनोद्गमैषणा-धूमा-ऽङ्गारप्रमाण-कारणतः ।
संयोजनाञ्च पिण्डं शोधयतामेषणासमितिः ।।" [ ] इति ।। - योग शा. १/३८ टीका० ।।

2. **तुला** - पिंडवि. गा. ३-४ ।। - पिंडविधि पञ्चा० १३/५-६ ।।

3. **तुला** - पिंडवि. गा. ५८-५९ ।। - पिंडविधि पञ्चा० १३ गा. १८-१९ ।।

4. **तुला** - पिंडवि. गा. ७७ ।। - पिंडविधि पञ्चा० १३ गा. २६ ।।

5. **तुला** - वेयणवेयावच्चे० ओघनिर्यु. गा. ५८२ ।। - पिंडनिर्यु० गा. ६६२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न पुनरकारणेन । अकारणानि चामूनि, यथा -

अहव न जिमिज्ज रोगे[१], मोहुदए[२] सयणमाइउवसग्गे[३] ।
पाणिदया[४]-तवहेउं[५] अंते तणुमोयणत्थं[६] च ।।१।। [पिण्डविशुद्धि गा. ९९]

एवं च संयमदेहयात्रानिर्वाहार्थमशनाद्याददाना मुनयो नियतमेषणासमिता भवन्ति । उद्गमादिदोषाणां तु प्रतिपदव्याख्यानं पिण्डनिर्युक्तितः पिण्डविशुद्धितो वा विज्ञेयम् । इह तु ग्रन्थप्रथाभयान्न प्रपञ्चितम् ।।४७७।। पिण्डसमितेरेवावश्यपालनीयतामाह -

खणमित्ततित्तिहेउस्स कह णु खुद्दस्स भोयणस्स कए ? ।
पिल्लिज्ज पिंडसमिइं संजमसंजीवणिं विउसो ।।४७८।।

क्षणः कालविशेषस्तदुपलक्षितं मुहूर्त्तादि । **तन्मात्रसमयतृप्तिहेतोः** सौहित्यापादकस्यात एव **क्षुद्रस्य** स्वल्पकार्यकारिणो **भोजनस्य** वल्लस्यापि **कृते । नु** इति वितर्के । **कथं** नाम **विद्वान्** पूर्वोपवर्णितां **पिण्डसमितिं पर्यस्येत्** । किल क्रियते तदपि यदि तद्विधाने स्वस्याजरामरत्वादि स्यात्, न च तथा । अथ किमर्थं पिण्डसमितेः प्रतिपालनार्थमियान् यत्नस्तदाह - यतः **संयम-संजीवनीं** संयमस्य सप्तदशविधस्यापि जीवातुं । व्यवहारशुद्धिमन्तरेण गृहिधर्म्म इवाहारशुद्धि-विनाभूतः सीदत्येव यतिधर्म्म इति ।।४७८।।

साम्प्रतं पिण्डसमितिप्रमत्ताननुशोचति -

खंडंति पिंडसोहिं छुहवेयणविहुरिया वि जे कीवा ।
दुग्गोवसग्गवियणाविणिवाए का गई तेसिं ? ।।४७९।।

ये क्लीबास्तपस्विनः **पिण्डविशुद्धिं** दर्शितस्वरूपां **खण्डयन्ति** पर्यस्यन्ति । किम्भूताः ? **क्षुद्वेदनया**ऽपि **विधुरिताः** निःसत्त्वतामारोपिताः । **तेषां** कदाचित् प्रबलवेदनीयोदयात् तिर्यग्नरामरादिजनिते **दुर्गोपसर्गवेदनाविनिपाते** समुपस्थिते **का गतिः** । कथं ते तत्सोढारो भवेयुरिति ।।४७९।। अन्यच्च -

रसगारवंमि गिद्धा मुद्धा हारंति तुच्छसुहलुद्धा ।
दिव्वाइं सुहसयाइं, अच्छरगणघणसिणेहाइं ।।४८०।।

केचिदल्पमतयो **रसगौरवे गृद्धा** गार्द्धयमुद्वहन्तस्तुच्छे तुच्छजनप्रलोभिनि **सुखे** देहसौहित्यादि-रूपे **लुब्धा** धृतलम्पटत्वाः । **दिव्यानि** देवभवसुलभानि **सुखशतानि हारयन्ति** । किम्भूतानि ?

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्सरःसमूहनिबिडप्रेमप्रपञ्चपल्लवितानि । किल यद्यपि दिव्यसुखेषु पञ्चप्रकारोऽपि विषयोपभोगः स्वाधीनस्तथापि वैषयिकसुखसर्वस्वभूताः कामिन्यः इत्यप्सरोग्रहणम् । उक्तं च -

अन्योन्यं विषयाणां गुरुलघुभावो न कोऽपि यदि नाम ।
अन्यैव तदपि रेखा गीतीनां कामिनीनां च ।।१।। [ ]

अत एव स्वल्पसुखहेतोरेवंविधसुखोत्कर्षवैमुख्यमाकलयन्तः कथं न ते मुग्धा इति ।।४८०।। एवं च यद् विधेयं तदाह -

तम्हा सइ संथरणे चइज्ज पिंडेसणं न मणसा वि ।
जाए य असंथरणे जइज्ज जयणाइ जहजुग्गं ।।४८१।।

तस्मादेवं सति । सति विद्यमाने **संस्तरणे** समयभाषया निर्वाहे मुनिरास्तां वाक्कायाभ्यां, **मनसाऽपि** चेतसाऽपि **पिण्डैषणां न त्यजेन्ना**वगणयेत् । कान्तारदुर्गरोधविषमाध्वदुर्भिक्ष-ग्लानत्वादिकारणै**श्चासंस्तरणे जाते यथायोग्यं** गुर्वादिविचारणया **यतनया** समयोपदर्शितापवादा-सेवनरूपया **यतेत** यत्न विदध्याद् गीतार्थ इति ।।४८१।।

[1]आदानसमितिमाह -

दट्ठुं दिट्ठीइ, पमज्जिऊण रयहरणमाइणा सम्मं ।
आयाणसमिइसमिया गिण्हंति मुयंति उवगरणं ।।४८२।।

गाथा-४८२ 1. **तुला - आदाननिक्षेपसमितिमाह -**

आसनादीनि संवीक्ष्य प्रतिलिख्य च यत्नतः । गृह्णीयान्निक्षिपेद्वा यत् साऽऽदानसमितिः स्मृता ।। - योग शा. १/३९ ।।

आसनं विष्टरः, आदिशब्दाद् वस्त्र-पात्र-फलक-दण्डादेः परिग्रहः । तान्यासनादीनि संवीक्ष्य चक्षुषा, प्रतिलिख्य रजोहरणादिना, यत्नत इत्युपयोगपूर्वकम्, अन्यथा सम्यक्प्रतिलेखना न स्यात् । यदाह -

"पडिलेहणं कुणंतो मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा । देइ व पच्चक्खाणं वाएइ सयं पडिच्छइ वा ।।१।।
पुढवी-आउक्काए-तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं । पडिलेहणापमत्तो छण्हं पि विराहगो भणिओ ।।२।।"

[ओघनि० २७३-४]

यद् गृह्णीयाददीत निक्षिपेत् स्थापयेत् संवीक्षित-प्रतिलिखितभूमौ सा आदाननिक्षेपसमितिः । भीमो भीमसेन इति न्यायादादानसमितिः ।। - योग शा० १/३९ ।। टीका० ।।

2. **छाया** - प्रतिलेखनां कुर्वन् मिथः कथां करोति जनपदकथां वा । ददाति वा प्रत्याख्यानं वाचयति स्वयं प्रतीच्छति वा ।।१।। पृथिव्यप्कायतेजो-वायु-वनस्पति-त्रसानाम् । प्रतिलेखनाप्रमत्तः षण्णामपि विराधको भणितः ।।२।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनयः पात्रपीठाद्युपकरणं प्रयोजनोत्पत्तौ **गृह्णन्ति** तत्समाप्तौ च **मुञ्चन्ति** स्थान एव स्थापयन्ति । किं कृत्वा ? **दृष्ट्या** प्रथमं **दृष्ट्वा** सुनिपुणं निरूप्य तदनु **रजोहरणादिना सम्यगुपयोगपूर्वकं प्रमृज्य** । न पुनरन्यचित्ततया । तथा हि न सम्यक् प्रतिलेखना स्यात् । उक्तं च -

[2]**पडिलेहणं कुणंतो मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा ।**
देइ व पच्चक्खाणं वाएइ सयं पडिच्छइ वा ।।१।।

पुढविआउक्काए तेउवाऊवणस्सइतसाणं ।
पडिलेहणापमत्तो छन्हं पि विराहगो भणिओ ।।२।। [ओघनिर्युक्ति गा. २७३-२७४]

अतः **सम्यगित्युक्तम्** । एवं कुर्वाणाश्च मुमुक्षवो नियत**मादानसमितिसमिता** इति ।।४८२।।

[1]उत्सर्गसमितिमाह -

मलजलखेलाईयं सुप्पडिलेहियपमज्जियपएसे ।
जयणाइ वोसिरावणपुव्वं, निसिरंति तस्समिया ।।४८३।।

मलं पुरीषं, **जलम**नुपयोगिपानाहारम् । **खेलः** श्लेष्मा । **आदि**शब्दादन्यदपि परिष्ठापनार्हं वस्त्रपात्रादि पूर्वोक्तयुक्त्या **सुप्रतिलेखिते सुप्रमार्जिते प्रदेशे** स्थण्डिले **यतनया** भावैर्भूत्वा **व्युत्सर्जनपूर्वं** यथाऽल्पोऽपि तत्प्रत्ययः पापानुबन्धो न स्यादेवं **'निसिरंति'** व्युत्सृजन्ति **तत्समिता** उत्सर्गसमितिसमिता साधव इति ।।४८३।। एवमवसिताः समितयः । [1]सम्प्रति गुप्तीनामवसरस्तास्वपि मनोगुप्तिमाह -

परिचत्तअट्टरुद्दे मणंमि समभावभाविए सम्मं ।
वरधम्मसुक्कझाणाण संकमो होइ मणगुत्ती ।।४८४।।

गाथा-४८३ 1. **तुला - उत्सर्गसमितिमाह -**

कफ-मूत्र-मलप्रायं निर्जन्तुजगतीतले । यत्नाद्यदुत्सृजेत् साधुः सोत्सर्गसमितिर्भवेत् ।। - योग शा. १/४० ।।

कफः श्लेष्मा मुख-नासिकसञ्चारी, मूत्रं प्रश्रवणम्, मलो विष्टा, प्रायग्रहणादन्यदपि परिष्ठापनायोग्यं वस्त्र-पात्र-भक्त-पानादि गृह्यते । निर्जन्तुत्रसस्थावर-जन्तुरहिता स्वयं च निर्जन्तुर्या जगती तस्यास्तलं स्थण्डिलमित्यर्थः । तत्र यत्नादुपयोगपूर्वकं यदुत्सृजेत् साधुः सोत्सर्गसमितिः ।। - योग शा. १/४० टीका ।।

गाथा-४८४ 1. **तुला - अथ गुप्तीनामवसरः, तत्र मनोगुप्तिमाह -**

विमुक्तकल्पनाजालं समत्वे सुप्रतिष्ठितम् । आत्मारामं मनस्तज्ज्ञैर्मनोगुप्तिरुदाहृता ।। - योग शा. १/४१ ।।

इह मनोगुप्तिस्त्रिधा - आर्त्त-रौद्रध्यानानुबन्धिकल्पनाजालवियोगः प्रथमा । शास्त्रानुसारिणी परलोकसाधिका

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवंविधे मुनेर्मनसि **धर्म्मशुक्लध्यानयोः सङ्क्रमो मनोगुप्तिः** । कथम्भूते ? **परित्यक्तार्त्त-रौद्रे** । [2]तत्रार्त्तं चतुर्द्धा-अमनोज्ञानां शब्दादिविषयवस्तूनां सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः । कथं नु नाम ममैभिर्वियोगः स्यादिति चिन्तनं प्रथमो भेदः । तथा द्यूते शीर्षादिवेदनाघातात् विप्रयोगप्रणिधानम् । कथं पुनर्ममानया आयत्यां सम्प्रयोगो न स्यादित्यनागताध्यवसायात् प्रतीकाराकुलत्वं च द्वितीयः । तथा इष्टानां शब्दादिविषयाणां सम्प्रयोगे तदविप्रयोगचिन्तनं । कथं ममैभिर्मनोज्ञविषयादिभिरायत्यां सम्बन्धः स्यादिति योगाभिलाषश्च तृतीयः । तथा देवेन्द्रचक्रवर्त्त्यादीनां स्वरूपादिगुणावभूतिप्रार्थनात्मकं । अहमनेन तपस्त्यागादिना देवेन्द्रश्चक्रवर्त्ती वा स्यामित्यधमं निदानचिन्तनं चतुर्थः ।

[3]रौद्रमपि चतुर्द्धा - तत्र सत्त्वानां वधवेधबन्धनदहनाङ्कनमारणादिहिंसानुबन्धि प्रणिधानं प्रथमं

धर्मध्यानानुबन्धिनी माध्यस्थ्यपरिणतिर्द्वितीया । कुशलाऽकुशलमनोवृत्तिनिरोधेन योगनिरोधावस्थाभाविन्यात्मारामता तृतीया । ता एतास्तिस्रोऽपि विशेषणत्रयेणाह-विमुक्तकल्पनाजालमिति, समत्वे सुप्रतिष्ठितमिति, आत्मारामिमिति च । एवंविधं मनो मनोगुप्तिः ।। - योग शा. १/४१ टीका ।।

2. **तुला** - आर्तस्य प्रथमो विकल्पः । आर्तममनोज्ञानां सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ।।- तत्त्वा० ९/३१ ।। अमनोज्ञानां विषयाणां सम्प्रयोगे तेषां विप्रयोगार्थं यः स्मृतिसमन्वाहारो भवति तदार्तध्यानमित्याचक्षते १ ।। - तत्त्वा० भा. ९/३१ ।।

आर्तस्य द्वितीयो विकल्पः - वेदनायाश्च ।। - तत्त्वा. ९/३२ ।। वेदनायाश्चामनोज्ञायाः सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहार आर्तमिति २ ।। - तत्त्वा. भा. ९/३२ ।।

आर्तस्य तृतीय विकल्पः - विपरीतमनोज्ञानाम् ।। - तत्त्वा० ९/३३ ।। मनोज्ञानां विषयाणां मनोज्ञायाश्च वेदनाया विप्रयोगे तत्सम्प्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहार आर्तम् ।। - तत्त्वा० भा० ९/३३ ।।

आर्तस्य चतुर्थो विकल्पः - निदानं च ।। - तत्त्वा० ९/३४ ।। कामोपहतचित्तानां पुनर्भवविषयसुखगृद्धानां निदानमार्तध्यानं भवति ।। - तत्त्वा भा० ९/३४ ।।

3. **तुला** - हिंसा-ऽनृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ।। - तत्त्वा० ९/३६ ।। हिंसार्थमनृतवचनार्थं स्तेयार्थं विषयसंरक्षणार्थं च स्मृतिसमन्वाहारो रौद्रध्यानं तदविरतदेशविरतयोरेव भवति ।। - तत्त्वा. भा. ९/३६ ।।

"प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा" ।। (तत्त्वा० अ. ७, सू. ८) तच्च सत्त्वव्यापादनोद्बन्धपरितापनताडनचरणश्रवणनासिकाऽधरवृषणशिश्नादिच्छेदनस्वभावं हिंसानन्दम् । तत्र स्मृतिसमन्वाहारो रौद्रध्यानम् । ये च जीवव्यापादनोपायाः परस्य च दुःखोत्पादनप्रयोगास्तेषु च स्मृतिसमन्वाहारो हिंसानन्दमिति प्रथमो विकल्पः । प्रबलरागद्वेषमोहस्य अनृतप्रयोजनवत् कन्याक्षितिनिक्षेपापलापपिशुनासत्यासद्भूतघाताभिसन्धानप्रवणमसदभिधानमनृतं तत्परोघातार्थमनुपरततीव्ररौद्राशयस्य स्मृतेः समन्वाहारः । तत्रैवं दृढप्रणिधानममृतानन्दमिति । स्तेयार्थं

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रौद्रम् । तथा पिशुनासभ्यासद्भूतभूतघातादिवचनप्रणिधानात्मकं मृषानुबन्धि द्वितीयम् । तथा तीव्रक्रोधलोभाकुलस्य भूतोपमर्दनपरद्रव्यादिहरणात्मकं स्तेयानुबन्धि तृतीयम् । तथा शब्दादि-विषयधनसंरक्षणसर्वाभिशङ्कनपरोपघाताद्यात्मकं विषयसंरक्षणानुबन्धि चतुर्थम् । अत एताभ्या-मपध्यानाभ्यां परित्यक्ते विरहिते चेतसि, अत एव **समभावभाविते** । आर्त्तरौद्रयोरेव चित्तविस्रोतसिकानिमित्तत्वात् ।

एवंविधे तस्मिन् यः किल धर्म्मशुक्लध्यानयोः सङ्क्रमः ।

[4]तत्राज्ञाविचय-अपायविचय-विपाकविचय-संस्थानविचयभेदाद् धर्मध्यानमपि चतुर्द्धा-तत्र

स्तेनप्रयोजनमधुनोच्यते तीव्रसङ्क्लेशाध्यवसायस्य ध्यातुः प्रबलीभूतलोभप्रचाराहितसंस्कारस्य अपास्तपरलोका-पेक्षस्य परस्वादित्सोरकुशलः स्मृतिसमन्वाहारः । द्रव्यहरणोपाय एव चेतसो निरोधः प्रणिधानमित्यर्थः । विषयसंरक्षणार्थं चेति चतुर्थो विकल्पः । विषयाणां च संरक्षणमुक्तं परिग्रहेष्वप्राप्तनष्टेषु काङ्क्षाशोकौ प्राप्तेषु रक्षणमुपयोगे चावितृप्तिः । इत्थं च विषयसंरक्षणाहितक्रौर्यस्य म्लेच्छमलिम्लुचाग्निक्षेत्रमृद्दायादिभ्यः समुदितायुधस्यानायुधस्य वा रक्षतः तीव्रेण लोभ-कषायेणानुरक्तचेतसः तद्गतप्रणिधानस्य तत्रैव स्मृतिसमन्वाहारमाचरतो विषयसंरक्षणानन्दम् रौद्रं भवति ध्यानम् ।।

- तत्त्वा॰ सि. टीका. अ. ९/३७ ।।

4. **तुला -** आज्ञा-ऽपाय-विपाक-संस्थानविचयाय धर्ममप्रमत्तसंयतस्य ।। तत्त्वा॰ ९/३७ ।।

आज्ञाविचयाय अपायविचयाय विपाकविचयाय संस्थानविचयाय च स्मृतिसमन्वाहारो धर्मध्यानम् ।

तदप्रमत्तसंयतस्य भवति ।। - तत्त्वा भा॰ ९/३७ ।।

क्षीणरागद्वेषमोहाः सर्वज्ञा नाऽन्यथाव्यवस्थितमन्यथा वदन्ति भाषन्ते वाऽनृतकारणाभावात् । अतः सत्यमिदं शासनमनेकदुःखगहनात् संसारसागरादुत्तारकमित्याज्ञायां स्मृतिसमन्वाहारः । प्रथमं धर्मध्यानमाज्ञाविचयाख्यम् ।

अपायविचयं द्वितीयं धर्मध्यानमुच्यते - अपायाः विपदः शारीर-मानसानि दुःखानीति पर्यायास्तेषां विचयः रौद्रध्यानिनः तीव्रसंक्लिष्टाः कापोतनीलकृष्णलेश्यास्तिस्रतदनुगमाच्च नारकगतिमूलमेतत् । कर्मजालं दुरन्तं दीर्घरात्रमपायैर्युज्यन्ते । केचिदिहापि कृतवैरानुबन्धाः परस्परमाक्रोशवधबन्धाद्यपायभाजो दृश्यन्ते क्लिश्यन्ते इत्यतः प्रत्यवायप्रायेऽस्मिन् संसारे ऽत्यन्तोद्वेगाय स्मृतिसमन्वाहारतोऽपायविचयं धर्मध्यानमाविर्भवति ।

तृतीयं धर्मध्यानं विपाकविचयाख्यामुच्यते -

विविधो विशिष्टो वा पाको विपाकः अनुभावः । अनुभावो रसानुभवः कर्मणां नरक-तिर्यङ्-मनुष्याऽमरभवेषु तस्य विचयः अनुचिन्तनं मार्गणं तदर्थितचेताः । तत्रैव स्मृतिं समन्वाहृत्य वर्तमानो विपाकविचयाध्यायी भवति । ज्ञानावरणादिकमष्टप्रकारं कर्म-प्रकृति-स्थित्यनुभावप्रदेशभेदमष्टानिष्टविपाकपरिणामं जघन्यमध्यमोत्कृष्टस्थितिकं विविधविपाकम् । तद्यथा-ज्ञानावरणाद् दुर्मेधस्त्वम् । दर्शनावरणाच्चक्षुरादिवैकल्यं निद्राद्युद्भवश्च । असद्वेद्याद् दुःखं, सद्वेद्यात् सुखानुभवः । मोहनीयाद् विपरीतग्राहिता चारित्रविनिवृत्तिश्च । आयुषोऽनेकभवप्रादुर्भावः । नाम्नोऽशुभ-प्रशस्तदेहादिनिर्वृत्तिः । गोत्रादुच्चनीचकुलोपपत्तिः । अन्तरायादलाभ इति । इत्थं निरुद्धचेतसः कर्मविपाकानुसरण एव

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षीणाशेषरागद्वेषमोहस्य भगवतोऽर्हतः शङ्कादिरहितं द्वादशाङ्गागमरूपं वचनमाज्ञा । तस्या विचयो गवेषणं गुणवत्त्वेन निर्दोषत्वेन उपादेयत्वेन चार्थनिर्णयः । तथा अपाया आश्रवविकथागौरव-परीषहासमितत्वागुप्तत्वादयः । तेषां विचयो नारकतिर्यग्नरामरजन्मसु विविधवेदनोत्पादकत्वम्। अशुभं[शुभं] च कर्म्म द्वयोः कोट्योर्वर्त्तते । तस्य पाको विपाकोऽनुभावो रस इत्यर्थः । तस्यानु-चिन्तनम् । अशुभानां कर्मांशानामयं विपाकः । शुभानां चायमिति संसारभाजां जीवानां तदन्वेषणं विपाकविचयः । तथा धर्माधर्मौ गतिस्थित्यात्मकौ लोकाकाशप्रमाणौ । आकाशं तु लोकालोक-व्यापकमवकाशदम् । लोकश्चोर्ध्वाधस्तिर्यक्रूपः । पुद्गलद्रव्यं सचित्ताचित्ताणुस्कन्धादिभेदाद-नेकप्रकारम् । जीवोऽपि शरीरादिभेदेनानेकाकारः, समुद्घातकाले च सकललोकाकारः । कालोऽपि यदा क्रियामात्रः द्रव्यपर्यायस्तदा द्रव्याकार एव । यदा तु स्वतन्त्रं कालद्रव्यं तदैकः समयोऽर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्राकृतिरित्येष संस्थानविचयः । एषामाज्ञाविचयादीनां सर्वज्ञोपज्ञतयाऽ-वितथत्वेनानुचिन्तनं धर्मध्यानम् ।

[5]शुक्लध्यानमपि चतुर्विधम् - पृथक्त्ववितर्कसविचारम् । सह विचारेण वर्त्तते इति सविचारम् ।

स्मृतिसमन्वाहारतो धर्म्यं भवति ध्यानमिति ।।

संस्थानविचयं नाम चतुर्थं धर्मध्यानमुच्यते –

संस्थानम् आकारविशेषो लोकस्य द्रव्याणां च । लोकस्य तावत् तत्राधोमुखमल्लकसंस्थानं वर्णयन्त्यधोलोकं स्थालमिव च तिर्यग् लोकमूर्ध्वमधोभल्लकसमुद्गम् । तत्रापि तिर्यग्लोको ज्योतिर्व्यन्तराकुलः । असङ्ख्येया द्वीप-समुद्रावलयाकृतयो धर्मा-ऽधर्मा-ऽऽकाश-पुद्गल-जीवास्तिकायात्मका अनादिनिधनसन्निवेशभाजो व्योमप्रतिष्ठाः क्षिति-वलयद्वीपसागरनरकविमानभवनादिसंस्थानानि च । तथाऽऽत्मानमुपयोगलक्षणमनादिनिधनमर्थान्तरभूतं शरीराद्, अरूपं कर्तारमुपभोक्तारं च स्वकृतकर्मणः शरीराकारं, मुक्तौ विभागहीनाकारम् । ऊर्ध्वलोको द्वादशकल्पा असकल-सकलनिशाकरमण्डलाकृतयो नव ग्रैवेयकाणि पञ्च महाविमानानि मुक्ताधिवासश्च । अधोलोकोऽपि भवनवासिदेवा-नारकाधिवसतिः । धर्माऽधर्मावपि लोकाकारौ गतिस्थितिहेतू, आकाशमवगाहलक्षणं, पुद्गलद्रव्यं शरीरादिकार्यं, इत्यं संस्थानस्वभाव्यान्वेषणार्थं स्मृतिसमन्वाहारो धर्मध्यानमुच्यते । - तत्त्वा॰ सि. टीका ९/३७ ।।

5. तुला - पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि ।। - तत्त्वा॰ ९/४२ ।।

उच्यते - पृथग् अयुतकं भेदः तद्भावः पृथक्त्वम्-अनेकत्वं तेन सह गतो वितर्कः, पृथक्त्वमेव वा वितर्कः सहगतं वितर्कपुरोगं पृथक्त्ववितर्कम् । तच्च परमाणु-जीवादावेकद्रव्ये उत्पादव्ययध्रौव्यादिपर्यायानेकतयाऽपि तत्त्वं तत् पृथक्त्वं पृथक्त्वेन पृथक्त्वे वा तस्य चिन्तनं वितर्कसहचरितं सविचारं च यत् तत् पृथक्त्ववितर्कं सविचारं तच्च पृथक्त्वमर्थव्यञ्जनयोगानां वक्ष्यति - त्र्येककाययोगायोगानां ।। वितर्कः श्रुतं ।। विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसङ्क्रान्तिः ।। (अ. ९ सू. ४३-४६-४७) । पूर्वगतभङ्गिकश्रुतानुसारेणार्थव्यञ्जनयोगान्तरप्राप्तिः-गमनं विचारः । अर्थाद् व्यञ्जन-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसङ्क्रमः । अर्थो द्रव्यं, व्यञ्जनं शब्दः । योगो मनःप्रभृति । एतद्भेदेन सविचारमर्थाद् व्यञ्जनं सङ्क्रामतीति प्रथमं शुक्लम् । एकत्ववितर्कमविचारम् । एकत्वेनाभेदेन वितर्कोऽर्थरूपो व्यञ्जनरूपो वा यस्य तत्तथा । तदेवंविधं द्वितीयं शुक्लम् । सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति तृतीयं शुक्लम् । तच्च केवलिनो निर्वाणगमनकाले मनोवाग्योगद्वये निरुद्धे सत्यर्द्धनिरुद्धकाययोगस्य भवति । काययोगस्तूच्छ्वासनिश्वासादिलक्षणः सूक्ष्म एवास्य विज्ञेयः । व्यवच्छिन्नक्रियं तु चतुर्थं शुक्लम् । तच्च शैलेशीगतस्य केवलिनः सर्वात्मनैव निरुद्धसकलयोगस्य शैलेशवन्निष्प्रकम्पस्य भवति । एवंविधयोः पूर्वोपवर्णितध्यानद्वयापेक्षया **वरयोः** प्रधानतमयो**र्धर्म्यशुक्लध्यानयोर्मनसि यः सङ्क्रमः** सा विमुक्ताशेषकुविकल्पकल्पनाजालस्यात्मारामस्य मुने**र्मनोगुप्तिरिति** ।।४८४।।

[1]वाग्गुप्तिमाह -

विगहापरिहारेणं सज्झायं पंचहा जहाजोगं ।
जुंजंता वयगुत्ता हुंति मुणी अहव कयमोणा ।।४८५।।

सङ्क्रान्तिः, व्यञ्जनादर्थसङ्क्रान्तिः, मनोयोगात् काययोगसङ्क्रान्ति-र्वाग्योगसङ्क्रान्तिर्वा । एवं काययोगान्मनोयोगं वाग्योगं वा सङ्क्रामति । तथा वाग्योगान्मनोयोगं काययोगं वेति । यत्र सङ्क्रामति तत्रैव निरोधो ध्यानमिति ।

एकस्य भाव एकत्वं, एकत्वगतो वितर्क एकत्ववितर्कः । एक एव योगस्त्रयाणामन्यतमस्तथा अर्थो व्यञ्जनं चैकमेव पर्यायान्तरानर्पितमेकपर्यायचिन्तमुत्पादव्ययध्रौव्यादिपर्यायाणामेकस्मिन् पर्याये निवातशरणप्रतिष्ठितप्रदीप-वन्निष्प्रकम्पं, पूर्वगतश्रुतानुसारि चेतो निर्विचारमर्थव्यञ्जनयोगान्तरेषु तदेकत्ववितर्कमविचारम् ।। - तत्त्वा० सि० टीका० ९/३९ ।।

सूक्ष्मा क्रिया यत्र तत् सूक्ष्मक्रियम्, तच्च योगनिरोधकाले भवति । वेद्य-नाम-गोत्रकर्मणां भवधारणायुष्काद-धिकानां समुद्घातसामर्थ्यादचिन्त्यैश्वर्यशक्तियोगादायुष्कसमीकृतानां मनोवाक्काययोगपरिणतस्यौदारिकशरीरत्रिभागोनस्थस्य केवलिनः संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकमनोऽसङ्ख्येयगुणकहीनं सूक्ष्मयोगित्वमप्रतिपात्यच्युतस्वभावमा व्युपरतक्रिया-निवृत्तिध्यानावाप्तेः ।

त्रसबादरपर्याप्तादेयसुभगकीर्तिमनुजनाम्नि पञ्चेन्द्रियतामन्यतरच्च वेद्यम् उच्चैस्तथा गौत्रम् । मनुजायुष्कं च स एकादशं वेदयति कर्मणां प्रकृतीः वेदयति तु तीर्थकरो द्वादशसहतीर्थकृत्त्वेन सततो देहत्रयमोक्षार्थमनिवर्ति सर्वगतमुपयाति समुच्छिन्नक्रियमतस्कं परं ध्यानं व्युपरतक्रियमनिवर्तीत्यर्थः । तद्धि तावन्निवर्तते यावन्न मुक्तः ।।

- तत्त्वा० सि० टीका० ९/४१ ।।

अयोगानामिति शैलेश्यवस्थानां ह्रस्वाक्षरपञ्चकोच्चारणसमकालानां मनो-वाक्-काययोगत्रयरहितानां व्युपरतक्रियम-निर्वर्ति ध्यानं भवति ।। - तत्त्वा० सि० टीका० ९/४३ ।।

शुक्लध्यानस्य प्रथमभेदस्वरूपं दृश्यतां श्लो० ६/६५ । द्वितीयभेदस्वरूपं दृश्यतां श्लो० ७४/७९ । तृतीयभेदस्वरूपं दृश्यतां श्लो० ९४, ९५ । चतुर्थभेदस्वरूपं दृश्यतां श्लो० १०४/१०५ गुणस्थानकक्रमारोहमध्ये ।

गाथा-४८५ 1. **तुला - वाग्गुप्तिमाह** - संज्ञादिपरिहारेण यन्मौनस्यावलम्बनम् ।
वाग्वृत्तेः संवृतिर्वा या सा वाग्गुप्तिरिहोच्यते ।। - योग शा० १/४२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवंविधा **मुनयो वाग्गुप्ता भवन्ति** । किं कुर्वाणाः ? **पञ्चधा** पञ्चप्रकारं **स्वाध्यायं प्रयुञ्जानाः** । तद्यथा - वाचनारूपं प्रश्नरूपं परावर्त्तनरूपमनुचिन्तनरूपं धर्म्मकथारूपं च । तत्र वाचना विनेयाय निर्जरायै सूत्रार्थदानम् । शङ्किते सूत्रादौ संशयापनोदाय गुरुप्रच्छनं प्रश्नः । परावर्त्तनं तु पूर्वाधीतस्यैव सूत्रादेरविस्मरणं निर्जरानिमित्तमभ्यासकरणम् । अनुचिन्तनं मनसैवाविस्मरणनिमित्तं सूत्राद्यनुस्मरणम् । धर्म्मकथा स्वपरयोरनुग्रहाय यथावस्थितस्यार्हद्देशितस्यार्थस्यैहिकपूजासत्कारश्लोकाद्यनभिलाषेणैकान्ततो निर्जरार्थं प्रथनं । भवति चैवं कथकस्यावश्यं स्वार्थसिद्धिः । उक्तं च -

न भवति धर्म्मः श्रोतुः सर्वस्यैकान्ततो हितश्रवणात् ।
ब्रुवतोऽनुग्रहबुद्ध्या वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ।।१।। [ ]

तदेवंविधं पञ्चधा स्वाध्यायं **यथायोग्यं** स्थाना[न]तिक्रमेण स्त्रीभक्तचौरजनपदनरेन्द्रादिप्रतिबद्ध-**विकथापरिहारेण** मुनयः प्रयुञ्जाना वाग्गुप्ता भवन्तीत्येका वाग्गुप्तिः । द्वितीयामाह - **'अहव कयमोणा'** अथवेति भेदप्रदर्शने । **अथवा** संज्ञादिपरिहारपुरस्सरमेकान्ततः **कृतमौना** वाग्गुप्ताः ।।४८५।।

कायगुप्तिमाह -

वीरासणाइएहिं अगणंता गिम्हसिसिरमसगाई ।
आयाविंता मुणिणो अपमत्ता हुंति तणुगुत्ता ।।४८६।।

संज्ञा मुख-नयन-भ्रूविकाराङ्गुल्याच्छोटनादिका अर्थसूचिकाश्चेष्टाः, आदिशब्दाल्लोष्टक्षेपोर्ध्वीभाव-कासित-हुङ्कृतादीनि गृह्यन्ते । संज्ञादीनां यः परिहारस्तेन यन्मौनमभाषणं तस्यावलम्बनमभिग्रहः । संज्ञादिना हि प्रयोजनानि सूचयतो मौनं निष्फलमेवेत्येका वाग्गुप्तिः । वाचन-प्रच्छन-पृष्टव्याकरणादिषु लोकाऽऽगमाविरोधेन मुखवस्त्रिका-च्छादितवक्त्रस्य भाषमाणस्यापि वाग्वृत्तेः संवृतिर्वाग्विनियन्त्रणं द्वितीया वाग्गुप्तिः । आभ्यां भेदाभ्यां वाग्गुप्तेः सर्वथा वाग्निरोधः सम्यग्भाषणं च रूपं प्रतिपादितं भवति, भाषासमितौ तु सम्यग्वाक्प्रवृत्तिरेवेति वाग्गुप्तिभाषासमित्योर्भेदः । यदाहुः -

"समिओ नियमा गुत्तो गुत्तो समियत्तणम्मि भयणिज्जो ।
कुसलवइमुईरंतो जं वइगुत्तो वि समिओ वि" ।। - बृहत्कल्प भा० ४४५१, निशीथभा० ३७, योग शा० १/४२ टीका ।।

गाथा-४८६ 1. **तुला -** अथ कायगुप्तिः - सा च द्विधा-चेष्टानिवृत्तिलक्षणा, यथासूत्रं चेष्टानियमलक्षणा च । तत्राद्यामाह -

उपसर्गप्रसङ्गेऽपि कायोत्सर्गजुषो मुनेः । स्थिरीभावः शरीरस्य कायगुप्तिर्निगद्यते ।। - योग शा० १/४३ ।।

उपसर्गा देव-मानुष-तिर्यक्कृता उपद्रवाः, उपलक्षणत्वात् क्षुत्पिपासादयः परीषहा अपि गृह्यन्ते, तेषां प्रसङ्गः

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरवज्रभद्रदण्डपद्मासनादिभिर्ग्रीष्मशिशिरमसकाद्युपद्रवपीडामवगणय्य सकामनिर्जरार्थ**मातापनापरा मुनयस्तनुगुप्ता** इत्येका कायगुप्तिः । यदाह -

आयावयंति गिम्हेसु हेमंतेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा संजया सुसमाहिया ।।१।। [दशवैकालिक अ. ३, गा. १२]

द्वितीयामाह - '**अपमत्ता**' विशेषासनातापनादिविरहेऽप्यपरापरसंयमयोगव्यापृताश्चेदप्रमत्तास्तदा नियतं कायगुप्ता एवेति ।।४८६।।

समितिगुप्तीरुपसंहरन्नाह -

इय समिइगुत्तिवज्जंगियाइ संवम्मिओ सुमुणिसुहडो ।
न पमायभिल्लभल्लीसंपाए खुभइ मणयं पि ।।४८७।।

इति पूर्वोक्तप्रकारेण '**समितिगुत्तिवज्जंगियाइ**' **संवर्म्मितः** कृतसन्नाहः । **सुमुनिरेव सुभटः ।**

सन्निपातः, अपिशब्दात्तदभावेऽपि, मुनेः साधोः, कायः शरीरम्, तस्योत्सर्गस्त्यागस्तत्र निरपेक्षतालक्षणः, तं जुषते, तस्य कायोत्सर्गजुषो यः स्थिरीभावो निश्चलता योगनिरोधं कुर्वतः सर्वथा शरीरचेष्टापरिहारो वा यः सा कायगुप्तिः ।। - योग शा० १/४३ टीका० ।।

द्वितीयामाह -

शयना-ऽऽसन-निक्षेपा-ऽऽदान-चङ्क्रमणेषु यः ।
स्थाने च चेष्टानियमः कायगुप्तिस्तु साऽपरा ।। - योग शा० १/४४ ।।

शयनमागमोक्तो निद्राकालः, स च रात्रावेव, न दिवा, अन्यत्र ग्लाना-ऽध्वश्रान्तवृद्धादेः । तत्रापि प्रथमयामेऽतिक्रान्ते गुरूनापृच्छ्य प्रमाणयुक्तायां वसतौ संवीक्ष्य प्रमृज्य च भूमिं संहृत्यास्तीर्य च संस्तरणपट्टकद्वयमूर्ध्वमधश्च कायं सपादं मुखवस्त्रिकारजोहरणाभ्यां प्रमृज्यानुज्ञापितसंस्तारकावस्थानः पठितपञ्चनमस्कारसामायिकसूत्रः कृतवामबाहूपधान आकुञ्चितजानुकः कुक्कुटीवद् वियति प्रसारितजङ्घो वा प्रमार्जितक्षोणीतलन्यस्तचरणो वा भूयः सङ्कोचसमये प्रमार्जितसन्दंशकः उद्वर्त्तनकाले च मुखवस्त्रिकाप्रमृष्टकायो नात्यन्ततीव्रनिद्रः शयीत । प्रमाणयुक्ता तु वसतिर्हस्तत्रयप्रमिते भूप्रदेशे प्रत्येकं सभाजनानां साधूनां यत्रावस्थानं सकलावकाशपूरणं च स्यात् । आसनमुपवेशनं तद्यत्र प्रदेशे चिकीर्षितं तं चक्षुषा निरीक्ष्य प्रमृज्य च रजोहरणेन बहिर्निषद्यामास्तीर्योपविशेत्, उपविष्टोऽप्याकुञ्चनप्रसारणादि तथैव कुर्व्वीत, वर्षादिषु च वृषीपीठादिषूक्तयैव सामाचार्योपविशेत् । निक्षेपाऽऽदाने च दण्डाद्युपकरणविषये, ते अपि प्रत्यवेक्ष्य प्रमृज्य च विधेये । चङ्क्रमणं गमनम्, तदप्यावश्यकप्रयोजनवतः साधोः पुरस्ताद्युगमात्रप्रदेशसन्निवेशितदृष्टेरप्रमत्तस्य त्रस-स्थावरभूतानि संरक्षतोऽत्वरया पदन्यासमाचरतः प्रशस्तम् । स्थानमूर्ध्वस्थितिलक्षणमवष्टम्भादि च प्रत्यवेक्षितप्रमार्जितप्रदेशविषयम् । एतेषु चेष्टानियमः स्वच्छन्दचेष्टापरिहारो यः सा अपरा द्वितीया कायगुप्तिरिति ।। - योग शा० १/४४ टीका० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाद एवातर्कितसम्पातेन शीलाङ्गसर्वस्वसंयमप्राणहरणे क्षमत्वेन **भिल्ल** इव **भिल्लस्तस्या**परापरप्रमादस्थानान्येव **भल्लयस्तासां सम्पाते मनागपि न क्षुभ्यति** । समुचिता च निबिडवर्म्मसंवर्म्मितस्य सुभटस्य भल्लीनिपाते निर्भयता ।।४८७।। तत्र प्रमादोपनिपाते निरवधानैरवस्थेयमित्युपदर्शयन्नाह -

कायव्वो य पमाओ मुणीहिं सव्वप्पणा हयपयावो ।
एसो हु लद्धपसरो, कं न विलंघेइ जं भणियं ।।४८८।।

मुनिभिर्मुमुक्षुभिरयं प्रमादः सर्वात्मना सर्वबलेन **हतप्रतापः कर्त्तव्य** एव । अथ किमित्यस्योपरागात् संरम्भ इति चेदाह - हुरवधारणे । **एष** प्रमादः **प्राप्तप्रसरः कं** नाम गुणगौरवाढ्यमपि लीलयैव **न विलङ्घयति** । **यद्** यस्माद् **भणित**मेतदेवास्मदर्च्यचरणैः कुलकेषु ।।४८८।।

आहारगा वि मणनाणिणो वि सव्वोवसंतमोहा वि ।
हुंति पमायपरवसा, तदणंतरमेव चउगइया ।।४८९।। [ ]

आहारकाः आहारकशरीरलब्धिसम्पन्नाः । **मनोज्ञानिनो** ऋजुरूपे मनःपर्यायज्ञानशालिनः । **सर्वोपशान्तमोहाख्यमे**कादशं गुणस्थानकं **समारूढाः** । अतस्तावदासतां सामायिकादियतयः । एतेऽपि पूर्वोदिताः **प्रमादपरवशास्तदनन्तरमेव** तस्मादेव भवादनन्तरं **चतुर्गतिकाः** चतसृष्वपि गतिषु संसरणप्रवणाः **सम्पद्यन्त** इत्यहो प्रमादवैशसम् ।।४८९।।

अथ कथमनवद्यसंयमयोगोद्युक्तैर्मुनिभिर्विहन्यमानस्य प्रमादस्योदयसम्भव इत्याह -

निहणिज्जंतो वि इमो, संजमजोगुज्जएहिं साहूहिं ।
उट्ठेइ पुणो लद्धुं हत्थालंबं कसायाणं ।।४९०।।

अयं च पञ्चप्रकारो अष्टप्रकारो वा प्रमादः **संयमयोगोद्युक्तैर्यतिभिर्निहन्यमानोऽपि** न किञ्चित् क्रियमाणोऽपि **पुनः पुनरुत्तिष्ठति** । किं कृत्वा ? **कषायाणां** वक्ष्यमाणानां **हस्तालम्ब**मवष्टम्भं **लब्ध्वा** ।।४९०।।

एवं च यद् विधेयं तदाह -

तम्हा कसायपसरं रुंभिज्ज मणे मणं पि नणु एए ।
चिरकालविढत्तं पि हु, चरित्तवित्तं हरंति जओ ।।४९१।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मादेवं सति प्रमादोपष्टम्भसंरम्भकारिणां **कषायाणामेव प्रसरं** प्रसङ्गे मुनि**र्मनसि मनागपि** स्तोकमपि **निरुन्ध्यात्** । किमित्याह - **यद्** यस्मादेते सम्परायाश्चिरकालार्जितमपि यतीनां **चरित्रवित्तं** संयमधनं **हरन्ति** ।।४९१।।

कथमिदमवसीयत इति चेदत्रैवागमिकनिदर्शनमाह -

जं अज्जियं चरित्तं देसूणाए वि पुव्वकोडीए ।
तं पि कसाइयमित्तो हारेइ मुणी मुहुत्तेण ।।४९२।। [सम्बोधसित्तरी गा. ६८]

यत् किलार्जितमुपात्तं **चरित्रं** चरणं **देशोनया** वर्षाष्टकन्यूनया **पूर्वाणां कोट्या** । **तदपि** तावन्मात्रं **कषायितमात्रः** स्वल्पोदीर्णसम्परायोऽपि **मुनिर्मुहूर्त्तपरिमितिना**ऽपि समयेन **हारयतीत्यहो !** सम्परायदौरात्म्यमिति । इह च जिनसमये क्रोधमानमायालोभाख्याश्चत्वारः कषायाः । [1]कष्यन्ते हिंस्यन्ते प्राणिनोऽस्मिन्ननेनेति वा कषः संसारः कर्म्म वा तस्य आया लाभाः प्राप्तय इति व्युत्पत्तेः । ते च संज्वलन-प्रत्याख्यानावरण - अप्रत्याख्यानावरण - अनन्तानुबन्धिभेदात् प्रत्येकं चतुर्विधाः । यथाक्रमं च पक्ष-चतुर्मास-संवत्सर - जन्मावधयः । वीतरागत्व-यतित्व-श्राद्धत्व-सम्यग्दृष्टित्वघातिनः । देवत्व-मनुष्यत्व-तिर्यक्त्व-नारकत्वप्रदायिनश्चेति । एतेषां संज्वलनादि-भेदानां चतुर्णां कषायाणां स्पष्टदृष्टान्तकथनेन स्वयं पूर्वसूरिभिरेवमभिधीयते । तथाहि -

जलरेणुपुढविपव्वयराइसरिसो चउव्विहो कोहो ।
तिणिसलयाकट्ठट्ठिअसेलत्थंभोवमो माणो ।।१।।
मायावलेहिगोमुत्तिमिंढसिंगघणवंसिमूलसमा ।
लोहो हलिद्दखंजणकद्दमकिमिरागसारिच्छो ।।२।। [कर्मवि. गा. १९-२०] ।।४९२।।

एते च सर्वे दुर्विपाका एवेति दर्शयन्नाह -

संजलणा वि हु एए नयंति निहणं चरित्तमहखायं ।
अन्ने पुणो पुणब्भवतरूण सिंचंति मूलाइं ।।४९३।।

[1]**संज्वलना अपि** प्रथमावस्थास्थिता अप्येते क्रोधादयो **यथाख्यातं** विमलकेवलालोक-

---

गाथा-४९३ 1. एतदुक्तं भवति - अनन्तानुबन्धिनः कषायाः सम्यक्त्वघातकाः । यदाहुः श्रीभद्रबाहुस्वामिपादाः - पढमिल्लुयाण उदए, नियमा संजोयणा कसायाणं ।
सम्मद्दंसणलंभं, भवसिद्धीया वि न लहंति ।। - आ. नि. गा. १०८।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्प्राप्तिहेतुं **चारित्रं निधनं** विनाशं **नयन्ति** । तदावरणरूपत्वात्तेषाम् । **अन्ये** प्रत्याख्यानावरणादयः पुनः सम्यगनिगृहीताः **पुनः पुनर्भूयते** समुत्पद्यते सकर्म्मकैः प्राणिभिरस्मिन्निति पुन**र्भवः** संसारः स एव **तरुस्तस्य मूलानि** मिथ्यात्वादीनि **सिञ्चन्ति** पुष्टिं नयन्ति ।। यदाह -

कोहो य माणो य अणिग्गहीया माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ।।१।। [दशवैकालिक अध्य० ८ गा. ४०]

।।४९३।।

साम्प्रतं यथाक्रममेषां विपाकं व्याचिख्यासुरादौ क्रोधस्याह -

कोहो पीइलयाए पविसंपाओ व्व निव्वियारत्तं ।
पयडइ पडुपन्नाण वि अन्नाणाण व वियंभंतो ।।४९४।।

क्रोधः क्रोधाख्यः प्रथमः कषायः **प्रीतिलतायाः** स्नेहप्ररोहस्य **पविसम्पातप्रतिमो विजृम्भमाणः पटुप्रज्ञानां** विपुलशास्त्रार्थरहस्यनिस्यन्दकन्दलितचेतसा**मज्ञानानामिव** पुंस्यश्च[श्च]तामिव **निर्विचारत्वं प्रकटयति,** समुचितं च विचारविगलनं क्रोधान्धानाम् । यतः -

विचारः प्राणिनां युक्तं क्रोधोद्बोधेन हीयते ।
विचारदर्शिता बुद्धिः सा च क्रुद्धस्य नश्यति ।।१।।४९४।।

किञ्च -

चिंतइ अचिंतणिज्जं वयइ य जं सव्वह अवयणिज्जं ।
कुणइ अकिच्चंपि नरो रोसपसत्तो विवित्तो वि ।।४९५।।

अप्रत्याख्यानावरणा देशविरतेर्घातकाः, न सम्यक्त्वस्येत्यर्थालब्धम् । यदाहुः पूज्यपादाः -
बीइयकसायाणुदये, अपच्चक्खाणनामधिज्जाणं । सम्मद्दंसणलंभं, विरयाविरयं न उ लहंति ।। - आ. नि. गा. १०९ ।।
प्रत्याख्यानावरणास्तु सर्वविरतेर्घातकाः, सामर्थ्यान्न देशविरतेः । उक्तं च -
तइयकसायाणुदए, पच्चक्खाणावरणनामधिज्जाणं । देसिक्कदेसविरइं, चरित्तलंभं न उ लहंति ।। - आ. नि. गा. ११०।।
संज्वलनाः पुनर्यथाख्यातचारित्रस्य घातकाः, न सामान्यतः सर्वविरतेः । उक्तं च श्रीमदाराध्यपादैः -
मूलगुणाणं लंभं, न लहइ मूलगुणघाइणं उदए । संजलणाणं उदए, न लहइ चरणं अहक्खायं ।।
- आ. नि. गा. १११ ।। इति कर्मवि. प्र. क. गा. १८ स्वो. टीकायाम् ।।

गाथा-४९४ 1. **तुला** - तत्रोपतापकः क्रोधः क्रोधो वैरस्य कारणम् ।
दुर्गतेर्वर्त्तनी क्रोधः क्रोधो शमसुखार्गला ।। - यो. शा. ४/९ ।।
क्रोधः परितापकरः सर्वस्योद्वेगकारकः क्रोधः ।
वैरानुषङ्गजनकः क्रोधः क्रोधः सुगतिहन्ता ।। - प्रशमरति गा. २६ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदेकान्ततः सतां **चिन्तयितुमपि नोचितं,** तदपि पितृ-मातृ-गुरु-स्वामिविनाशादिकं **चिन्तयति** ध्यायति । **यच्च** शिष्टानां **सर्वथा अवचनीयं** तदप्यश्लीलासभ्यं हिंसानुबन्धि श्रुतमप्युद्वेगावेगजनकं **वदति** । यच्च दृश्यमानमपि कृपावतां हृदुत्कम्पसम्पादनप्रवणं तदपि ब्रह्मस्त्रीभ्रूणगोघातादिक**मसकृत् करोति** । कः ? इत्याह - **नरः** पुमान् । किम्भूतो ? **रोषप्रसक्तो** दुर्द्धरक्रोधाध्मातः । यथैवमविचारो नृपशुर्भविष्यति । नेत्याह - **विवित्तः** । **'स्फुरदुरुविवेकपरिपाको कोपादित्यहो क्रोधस्य विधेयत्वम्'** ।।४९५।।

एवं च यद् विधेयं तदाह -

[1]ता खंतिखग्गवग्गिरकरेहिं धीरेहिं साहुसुहडेहिं ।
निहणेयव्वो कोहो विवक्खजोहु व्व दुव्विसहो ।।४९६।।

तस्मादेवं सति **क्षान्तिखड्गवल्गत्करैः** क्षमाकृपाणप्रेङ्खोलत्पाणिभिः **धीरै**र्लोकोत्तरधैर्यधारिभिः **साधुसुभटै**रनगारप्रवरैरयं **क्रोधः** सर्वात्मना **निहन्तव्यः** । किम्भूतो ? **दुर्विसहः** । प्राप्तावकाशः सन् सोढुमशक्यः । क इव ? **विपक्षयोध इव** । प्रतिभटसुभट इव । सोऽप्येवमेव विजीयते ।।४९६।।

ननु यद्येवं सत्यं तद् दुर्द्धरोऽयं क्रोधस्तत् कथममुष्य विक्षेपे क्षमेयमेकाकिनी क्षमा स्यादिति चेत् तदाह -

उयह खमाबलमतुलं चलंतभडकोडिपरिवुडा वि पुरा ।
जे भीया ते विहिया खमाइ एगागिणो अभया ।।४९७।।

न नाम क्षमेयमेकाकिन्यबलेत्यवज्ञेया । यतः 'उयह' **पश्यत क्षमाया अतुलम**नन्यतुल्यं **बलं** सामर्थ्यं । किमित्याह - **ये** किलाखण्डषट्खण्डक्षोणीमण्डलाखण्डलत्वमुद्वहतस्तत एव विष्वक् **चलद्भटकोटिपरिवृताः** षोडशयक्षसहस्रविहितसन्निधानाः स्वयमपि पुरुषकोटीद्वयबलशालिनस्तेऽपि पूर्वापराद्धेभ्यो विरोधिभ्यः सततं **पुरा**ऽस्य भय**मबिभरुः । ते** तथाविधशुभसम्भारसुलभवासनोद्भूतप्रभूतज्ञानगर्भवैराग्यवशात् पटप्रान्तविश्रान्ततृणवदवगणय्य साम्राज्यमङ्गीकृतसर्वसङ्गपरित्यागास्तत **एवैकाकिनः** शून्यारण्यगिरिगह्वरादिषु नक्तन्दिनवासिनोऽप्येकयैव **क्षमया**

गाथा-४९६ 1. **तुला** - क्रोधवह्नेस्तदङ्गाय शमनाय शुभात्मभिः । श्रयणीया क्षमैकैव संयमारामसारणिः ।।
- यो. शा. ४/११ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहचारिण्या सुरासुरस्वामिभ्योऽपि **निर्भया विहिताः** । अतः कथं नाश्रयणीयेयं क्षमा मुमुक्षूणामिति ।।४९७।।

इदं च क्षमाबलमतुलमपि विचारचतुरचेतसामेव चेतसि चमत्कारकारि इति । अल्पदृश्वानस्तु मन्यते पराभवास्पदमेवेयं क्षमेत्यतस्तन्मताभ्युपगमेनाह -

जइ वि खमा परिभूया जइ वि खमंतस्स आयरो नत्थि ।
तह वि खमा कायव्वा खमासमो बंधवो नत्थि ।।४९८।।

क्षमाक्षमावतोरभेदोपचारात् क्षमा । क्षमावतः परिभवे तत्त्वतः क्षमाया एव परिभवः । अतो **यद्यप्य**परमार्थदृश्वभिः प्राकृतजनैः **क्षमा** सर्वात्मना **परिभूता । यद्यपि** च **क्षमां कुर्वाणस्य** जने सर्वथैव **नादरः, तथापि** परमार्थवेदिना **कर्त्तव्यैव क्षमा** । यतः **क्षमासमः** कोऽप्यपरो **न** तत्त्वतो **बन्धुरस्ति** । दशविधस्यापि यतिधर्मस्याद्याङ्गभूतत्वात् क्षमायाः । न चैनां विना जगत्यपरोऽपि क्रोधविजयप्रकारः । स्वयमादृता चेयं जगद्ध्वंसन-रक्षणक्षमपराक्रमवद्भिरप्यर्हद्भिरतो मोक्षाङ्ग-भूतत्वेनादरणीयैव तदर्थिभिः क्षमेति ।।४९८।।

मानकषायमधिकृत्याह -

[1]**जाइकुलरूवपमुहा भवे भवे विसरिसत्तणमुविंता ।**
कह हुंतु मयनिमित्तं पत्ता वि हु मुणियतत्ताणं ।।४९९।।

किल जात्यादिमदस्थानान्यवलम्ब्य प्राणिनां मानः समुत्पद्यते । तानि च पूर्वसुचरितसुकृत-प्रभावतः **प्राप्तान्यपि ज्ञाततत्त्वानां कथं मदनिमित्तं भवन्तु** । कथम्भूतानि **भवे भवे** जन्मनि जन्मनि वैसदृश्यात् परिणमनशीलानि । एतदुक्तं भवति - [2]किल क्रियेतोत्तम**जातिकुलरूपबल-**

गाथा-४९९ 1. **तुला** - विनयश्रुतशीलानां त्रिवर्गस्य च घातकः ।
विवेकलोचनं लुम्पन् मानोऽन्धकरणो नृणाम् ।। - यो. शा. ४/१२ ।।
श्रुतशीलविनयसन्दूषणस्य धर्मार्थकामविघ्नस्य ।
मानस्य कोऽवकाशं मुहूर्तमपि पण्डितो दद्यात् ।। - प्रशमरति श्लो. २७ ।।

2. **तुला** - जातिलाभकुलैश्वर्यबलरूपतपःश्रुतैः । कुर्वन्मदं पुनस्तानि हीनानि लभते जनः ।। - यो. शा. ४/१३ ।।
जातिकुलरूपबललाभबुद्धिवाल्लभ्यकश्रुतमदान्धाः । क्लीबाः परत्र चेह च हितमप्यर्थं न पश्यन्ति ।।
- प्रशमरति श्लो. ८० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुततपोलाभैश्वर्यविषयो मदः प्राणिभिर्यद्यमूनि सनातनानि स्युः । यदि पुनर्भवपरिवर्त्ते **वैपरीत्यमुपयान्ति** ततः को नामैतद्गोचरोऽप्यहङ्कार इति ।।४९९।। अपरं च -

जो जस्स मयट्ठाणस्स वहइ निरवग्गहं समुक्करिसं ।
सो तं चिय नियमेणं हीणयरे(रं) लहइ पइजम्मं ।।५००।।

यः प्राणी **यस्य** जात्यादि**मदस्थानस्य निरवग्रहं** निरङ्कुशं **समुत्कर्षम**हमेव जात्यादिभिः सर्वोत्कृष्ट इत्येवंरूपं **वहति । स तदेव नियमेन हीनतरं लभते ।** जातिमदेन जातिहीनो भवति । कुलमदेन कुलहीनः । एवं रूपादिष्वपि वाच्यं । तत् किमेकत्रैव जन्मनि, नेत्याह - **प्रतिजन्म** प्रतिभवमित्यहो दुर्विपाकः कुलादिमदस्येति ।।५००।। न चैतच्छास्त्र एव प्रत्यक्षं, किन्तु लोकेऽपीत्याह -

कुलजाइरूवमेहा-बलविरियपहुत्तवित्तपरिहीणा ।
जं हुंति नरा सो नणु अट्ठमयट्ठाण य विवागो ।।५०१।।

कुलेनोग्रादिना पितृभवेन वा, **जात्या** विप्रादिकया मातृप्रतिबद्धया वा, **रूपेण** सर्वाङ्गसौन्दर्येण, **मेधया**ऽर्थावधारणक्षमया प्रज्ञया, **बलेन** वपुःसामर्थ्येन, **वीर्येणा**न्तरोष्मायितेन, **प्रभुत्वेन** स्वामित्वेन, **वित्तेना**द्भुतभूतिसम्भारेण । एतैः कुलादिभिः, **परि** सामस्त्येन, **हीना** न्यूना, **नराः** प्राणिनो, **यदत्र** जगति **भवन्ति, स खलु अष्टानां मदस्थानानां विपाक**स्ततस्त्याज्यान्येव तानि ।।५०१।। किञ्च -

सविसेसं जे दोसा हुंति अहंकारतरलियमईणं ।
अत्तुक्करिसदुवारे पुरा वि ते पयडिया पायं ।।५०२।।

[1]अतो न च कुलादिप्रतिबद्धो नाह**ङ्कारेण** [अतः कुलादिप्रतिबद्धेनाहङ्कारेण] **तरलितमतीनां** प्राणिनां **सविशेषं ये दोषा भवन्ति ते पुरैवात्मोत्कर्षद्वारे प्रायः प्रकटिता** इति नात्र भूयोऽभिधीयन्ते ।।५०२।।

गाथा-५०२ 1. अतो न च कुलादिप्रतिबद्धो नाहङ्कारेण इति पाठो ह. प्रतमध्ये अशुद्धो भाति तत्स्थाने अतः कुलादिप्रतिबद्धेन अहङ्कारेण इति पाठः शुद्धो भाति ।। सम्पा. ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं च यद् विधेयं तदाह -

[1]**तम्हा मद्दवपविणा माणगिरिं कुणह लूणपक्खमिणं ।**
न विमद्दइ विणयवणं जेणे सो सिवसुहफलड्ढं ।।५०३।।

तस्मादेवं सति **मार्दवमेव पवि**र्वज्रं **तेन मानगिरिम**भिमानपर्वत**मेनं लूनपक्षं कुरुत** । किमित्याह - **येनैष शिवसुखफलाढ्यं विनयवनं न विमर्दयति** । किल गिरयो हि पुरा सपक्षा आसन् । ततश्चोड्डीयोड्डीयान्यत्रान्यत्र स्वेच्छया सञ्चरन्तो ग्रामाकरनगरकाननादि विमर्दितवन्तस्ततः कुलिशपाणिना कुलिशनिपातेन लूनपक्षाश्चक्रिरे । इतीयमुपमा तच्छायेति ।।५०३।। मायामुद्दिश्याह -

[1]**माइंदजालमुवदंसिऊण वंचंति किर परं धुत्ता ।**
मूढा न मुणंति इमं अप्पं चिय वंचिमो एवं ।।५०४।।

माया निकृतिः सैवान्यथावस्थितानामर्थानामन्यथाप्रतिभासोत्पादात्तत **इन्द्रजालमि**वेन्द्रजालं, **तदुपदर्श्य किले**त्यलीके **धूर्त्ताः परम**ज्ञानं जनं **वञ्चयन्ति** । अलीकं च तेषां धूर्त्तत्वं । धूर्त्तास्तु हि दक्षास्ते चात्मपरिहारेण परानेव वञ्चयन्ति । मायाविनस्तु परमार्थतो **मुग्धा** एव । ये किलैवमपि **न विदन्ति यदेवं** परातिसन्धानपरैरस्माभि**रात्मैव** तत्त्वतो **वञ्च्यते** । किमुक्तं भवति - किल छलेन मुग्धजनं विप्रतार्य तडित्तरलं धनलवं यायावरस्य जीवितस्यार्थे प्रार्थयन्तो लोकद्वयमपि हारयन्त्येव मायातस्ततः किं तेषां दक्षत्वमिति ।।५०४।।

तथा -

किं एयं विउसत्तं वंचिज्जइ जं जणो सुवीसत्थो ।
जइ अत्थि वियड्ढत्तं तो वंचह जरमरणजालं ।।५०५।।

किं नामैतद् **वैदुष्यं यत् सुष्ठ**वतिशयेन **विश्वस्ता**नङ्कपर्यङ्के शिरो निधाय प्रसुप्त इव **जनो**

गाथा-५०३ 1. **तुला** - उत्सर्पयन्दोषशाखा, गुणमूलान्यधोनयन् । उन्मूलनीयो मानद्रुस्तन्मार्दवसरित्प्लवैः ।। - यो. शा. ४/१४ ।।

गाथा-५०४ 1. **तुला** - असूनृतस्य जननी परशुः शीलशाखिनः । जन्मभूमिरविद्यानां माया दुर्गतिकारणम् ।। कौटिल्यापटवः पापा मायया बकवृत्तयः । भुवनं वञ्चयमाना वञ्चयन्ते स्वमेव हि ।। - यो. शा. ४/१५-१६ ।। मायाशीलः पुरुषो न करोति किञ्चिदपराधम् । सर्प इवाविश्वास्यो भवति तथाप्यात्मदोषहतः ।। - प्रशमरति श्लो. २८ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वञ्चयते । प्रत्युतैतद्विश्वस्तघातित्वं **यदि वैदग्ध्यमेव** किमप्य**स्ति तदा** गतिमतिश्रुतिस्मृतिहारि **जराजालं** तत्तन्मनोरथमार्गव्यथाकरणप्रवणं **मरणजालं** च **वञ्चयत** । भवस्थैरवञ्चितपूर्वे वञ्चिते चास्मिन् स्वतःसिद्धमेव वैदुष्यम् । अवञ्चिते चात्र किमनेन विलक्षदक्षत्वाभिमानेन ।।५०५।।

किं वा -

अन्नायपवंचेहिं सुट्ठु जणो वंचिओ ति हियएण ।
कीस हसंति हयासा दीसंता दिव्वनाणीहिं ।।५०६।।

किल **'सुप्रयुक्तस्य दम्भस्य ब्रह्माप्यन्तं न गच्छति'** इति न्याये**नाज्ञातप्रपञ्चैः** केनाप्यविदितनिकृतिप्रकारैरहो ! **साध्वस्मा**भिरसौ विश्वस्तो **जनश्छलित इति हताशाश्छद्मिनः किमिति हृदये** निगूढमन्त**र्हसन्ति** । किम्भूताः ? करतलकलितामलकफलवदखिलं त्रैलोक्यस्वरूपं विलोकयद्भि**र्दिव्यज्ञानिभिर्दृश्यमाना अपि** । विदितप्रपञ्चानां तु हसितं विलक्षहसितमेव । तस्मादेकैकैः पर्षद्भूतैर्दिवारात्रौ च निर्व्याजसदाचरणप्रवणैरेव सद्भिरवस्थेयमिति भावः ।।५०६।।

एवमन्यत्रापि तावल्लोकद्वये सापाया परिहर्त्तव्यैव माया धर्मे तु सुतरामित्युपदर्शयन्नाह -

वित्ताइनिमित्तेणं कयमाए उद्धरिज्ज किर धम्मो ।
धम्मंसि जेसि माया को ताया तेसि तिजए वि ।।५०७।।

किल वित्तादिनिमित्तं परधनादिविलोपनकामेन **कृतमायान्** प्रकटितकूटप्रयोगान् प्राणिनः कदापि सद्गुरूपदेशादिश्रवणप्रबुद्धवैराग्यान् सम्यगासेवितो **धर्म्मः समुद्धरत्येवो**द्धृतशल्यान् संसृतेः । **येषां** तु दुःखार्त्तसत्त्वशरण्ये **धर्मेऽपि माया तेषा**मात्मशत्रूणां **को** नाम **जगति** दुरन्तसंसृतेर्दुःखेभ्य**स्त्राता** ?, अतः सकलैहिकामुष्मिकसुखशाखिसन्दोहदोहदप्रतिमे धर्मे निश्छद्ममनोभिरेव भाव्यमिति ।।५०७।। मायाकषायं निगमयन्नाह -

[1]तो निविडनियडिनिगडस्स विहडणे पडुपरक्कमाडोवं ।
अज्जवमयकंतमणिं व कुणह सन्निहियमणवरयं ।।५०८।।

तस्मान्निबिडस्यान्येन दुर्भेद्यस्य **निकृतिनिगडस्य [2]मायाहञ्जारस्य विघटने पटुपराक्रमाटोपं**

गाथा-५०८ 1. **तुला** - तदार्जवमहौषध्या जगदानन्दहेतुना ।
जयेज्जगद्रोहकरीं मायां विषधरीमिव ।। - यो. शा. ४/१७ ।।

2. **तुला** - मायाहिञ्जीरस्य पाठो भाति । सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्जवं ज्ञानगोचरे चतुरत्वे सत्यपि सत्कर्म्मसु सरलाशयत्वं **सदैवात्मनः सन्निहितं कुरुध्वम् ।** कमिव ? **अयःकान्तमणिमिव ।** यथा हि सन्निहितायःकान्तमणीनामक्लेशसाध्यं निगडविघटनमेवमार्जवसहचरितानां निकृतिकृन्तनमिति ।।५०८।। साम्प्रतं लोभमभिसन्धायाह -

गाहंति[1] गहिरमुवहिं अडंति वियडाडवीसु भीमासु ।
पविसंति य विवरेसुं रसकूइयं[2] पलोयंति ।।५०९।।

यदेतदेतेऽङ्गभाजः किल कुर्वन्ति तत् सकलमपि लोभस्य विलसितमिति **गाथा**कलापकप्रान्तगाथया सम्बन्धः । किं तदित्याह - **गम्भीरमलब्धपारमपरमिव संसारमुदधिपारावारमपरापरायशतपरीतं वित्तार्थं यद् गाहन्ते ।** यच्च **विकटासु** विस्तीर्णासु विविधहिंस्रसत्त्वसङ्कटास्वत एव **भीमासु** भयङ्करास्**वटवीष्व**रण्यानीष्**वटन्ति** । यच्च यक्षाङ्गनासङ्गरङ्गतरङ्गितबिलेषु सर्वत्र चन्दनकक्षसोदरेषु श्वभ्र**विवरेषु** धूर्त्तकल्पितकल्पानुमानेन **प्रविशन्ति ।** यच्च कोट्यादिवेधसुप्रसिद्धाः **रसकूपिकाः** प्रत्यवल**मालोकयन्ति** ।।५०९।।

तथा -

तिहुयणविजयं विज्जं जवंति रत्तिं भमंति पेयवणे ।
कुव्वंति धाउवायं खिज्जंति य खन्नवाएण ।।५१०।।

यच्च निसर्गनिर्दयहृदयकापालिकाद्युपदेशेन पुरुषशतादिबलिप्रदानसाध्यां **त्रिभुवनविजयाख्यां विद्यां जपन्ति ।** यच्च विविधिसिद्धिनिबन्धनासु बहलभूतेष्टादि**रात्रिषु** महामांसादिविक्रयमुदीरयन्तः प्रति **प्रेतवनम**नेकदुर्मनोरथनटिताः **पर्यटन्ति ।**[1] यच्च नागेन नागराजेन नागवीजेन सुंदरिकुर्पीठेन [?] प्रयोगेण पृथिव्यां पदे पदे निधानानि दृश्यन्त इत्यादि पुस्तकप्रत्ययेन तदुपनिषदुपदेशकान् गुरुन् सम्यगनुनीय **खन्यवादेन खिद्यन्ते** ।।५१०।। तथा -

---

गाथा-५०९ 1. **तुला -** आकरः सर्वदोषाणां गुणग्रसनराक्षसः ।
कन्दो व्यसनवल्लीनां लोभः सर्वार्थबाधकः ।। - यो. शा. ४/१८ ।।
सर्वविनाशाश्रयिणः सर्वव्यसनैकराजमार्गस्य ।
लोभस्य को मुखगतः क्षणमपि दुःखान्तरमुपेयात् ।। - प्रशमरति गा. २९ ।।

2. रसकूइयाउ पाठो भाति । सम्पा० ।।

गाथा-५१० 1.टीकामध्ये 'कुव्वंति धाउवायं' इति पदं विवृतं न दृश्यते, अत्र स्थाने हस्तप्रतिमध्ये 'त' इति केवलं अक्षरं दृश्यत अतः खण्डितपाठो भाति । सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसिणंति किन्हचित्तयउप्पत्तिं धुत्तदेसिएहिंतो ।
निउणं बिल्लपलासप्परोहमग्गे विमग्गंति ।।५११।।

यच्च श्रीपर्व्वतादिसमायातेभ्यः शसिर्मूलदेवादिसन्तानीयेभ्यस्तथाविध**धूर्त्तेभ्यः** किलानेनान्तर्निक्षिप्तेन सन्ततव्ययेऽप्यक्षीणा एव निधयो भवन्तीति दुर्वासनया **कृष्णचित्रकस्योत्पत्तिस्थानान्यत्यादरपुरस्सरं पृच्छन्ति** ।। यच्च -

क्षीरवृक्षान् विहायोर्व्यां पादं मुञ्चन्ति ये द्रुमाः ।
तेषु वित्तं विजानीयाद् ध्रुवं बिल्वपलाशयोः ।।१।। [ ]

इत्यादि कुतोऽप्याकर्ण्य **बिल्वानां पलाशानां च प्ररोहमार्गान् निपुणं निरूपयन्ति** ।।५११।।

वंचंति सामिगुरुजणयतणयसयणाइयं च जं पुरिसा ।
विलसियमिणमो सयलं निब्भरलोभस्स निब्भंतं ।।५१२।।

यच्च पुमांसः स्वामिगुरुजनकतनयस्वजनादिवर्गं तत्कृतामुपकृतिपरम्परां जनापवादं चावगणय्य केवलं स्वकार्यसिद्धिबद्धबुद्धयो **वञ्चयन्ति** । तदेत**दखिलमपि** सर्वदोषाकरस्य सर्वव्यसनराजमार्गस्य **निरर्गललोभस्य विलसितमवगन्तव्यमिति** ।।५१२।। यदि वा -

का गणणा अण्णेसिं जं जिणमयभाविएसु वि मणेसु ।
लहलहइ लोहलइया संतोसतुसारवरिसे वि ।।५१३।।

अन्येषामयुक्तलोभसङ्क्षुब्धमनसामतत्त्वज्ञानानां तावत् का गणना । केषाञ्चिदेतद्विलक्षणानामपि **मनस्सु** हृदयेषु, निखिलदोषकालुष्यविमुखेन **जिनमतेन भाविते** अक्षीणलोभाशुशुक्षणिक्षयहेतौ **सन्तोषतुषारवर्षे सत्यपि लोभलतेय**मुद्भिद्यमाननवनवकन्दलोल्लासपेशला शाड्वलैव **दृश्यत** इत्यहो लोभस्य दुरभिभवनीयतेति ।।५१३।। साम्प्रतं लोभकषायमुपसंहरन्नाह -

[1]ता झत्ति अट्टरुद्दाणं, मूलबीयं निरुंभिउं लोभं ।
मुच्छाविच्छेयकरं संतोसरसायणं पियह ।।५१४।।

गाथा-५१४ 1. **तुला** - लोभसागरमुद्वेलमतिवेलं महामतिः । सन्तोषसेतुबन्धेन प्रसरन्तं निवारयेत् ।।
- यो. शा. ४/२२ ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्मादेवं सम्यगस्यार्त्तरौद्रयोः पूर्वोपदर्शितयोर्दुर्ध्यानयो**र्मूलबीजं लोभं** चतुर्थसम्परायं **निरोद्धुं** मूलादुन्मूलयितुमर्हत्प्रवचनरहस्यभूतं **सन्तोषरसायनं पिबत** । किम्भूतम् ? **मूर्छाविच्छेदकरं** तृष्णोच्छेदननिष्णातं, समुचितश्च रसायनपानेन मूर्च्छादिरोगातङ्कानां विच्छेदः ।।५१४।। किञ्च -

कोहाइए कसाए, उप्पज्जंते वि झत्ति रुंधिज्जा ।
रोगेसु व कायव्वो, थोव त्ति अणायरो न जओ ।।५१५।।

एतांश्च पूर्वोदितान् **क्रोधादीन्** क्रोधमानमायालोभलक्षणान् **कषायानुत्पद्यमानानपि झटिति** त्वरितं **निरुन्ध्यात्** । **स्तोका** संज्वलनाद्यवस्था । किलैते न तथा विकारिण इत्य**नादरो न विधेयः** । केष्विव ? **रोगेष्विव** पथ्यादि । प्रथमोद्भव एवानिगृह्यमाणा रोगाः कालेनाचिकित्स्यतां प्रयान्ति ।।५१५।। तथैतेऽपीत्येतदेव निदर्शनान्तरैर्द्रढयते -

अणथोवं वणथोवं, अग्गीथोवं कसायथोवं च ।
न हु भे ! वीससियव्वं थोवं पि हु तं बहुं होइ ।।५१६।। [सम्बोधसित्तरी गा. १०८]

'अणथोवं वणथोवं अग्गीथोवे' त्यमीषां चतुर्णां स्तोकानां स्तोकान्येव [1]किलास्तन्यातः[?] किमेतन्निग्रहो यत्क्रमेणेति [2]भे' भव [भवे] हि **विश्वासो न विधेयः** । यतः - प्रथमं स्तोकत्वादनादरेणोपेक्ष्यमाणानि कालेन चोपचीयमानानि नखच्छेद्यावस्थामतिक्रम्य कुठारच्छेद्यावस्थामापन्नानि सुमहति खेदे देहिनं पातयन्त्यतः प्रथमोद्भव एव निरोद्धव्यानि ।।५१६।।अथ किमर्थमियान् कषायकषणे प्रयत्न इति चेत् तदाह -

उवसंतकसायाणं, निच्छयओ होइ भावचारित्तं ।
तं चिय वयंति मुणिणो अवंझबीयं सिवतरुस्स ।।५१७।।

यस्मा**दुपशान्तकषायाणां** तिरस्कृतसम्परायोदयानामेव मुनीनां **निश्चयतो** निश्चयनयाभिप्रायेण **भावचारित्रं** पारिणामिकः संयमो **भवति** तदा क्षीणरूपत्वात् कषायाणाम् । अथ भावचारित्रमेव क्वोपयोगीति चेद्, उच्यते । **तदेव** भावचरणमेव **मुनय**स्त्रिकालवेदिनः **शिवतरो**र्मोक्षवृक्षस्या**वन्ध्यं** सफल**बीजं वदन्ति** ।।५१७।।

गाथा-५१६ 1. किल सन्त्यतः इति पाठो संगतो भाति । सम्पा० ।।

2. 'भे' त्वया इत्यर्थः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते कुसन्तु नाम कषायाः शाणोत्तीर्णनिशितासिधाराचङ्क्रमणप्रायः खरतरचारित्रनिर्वाह एव निर्वाणं साधयिष्यन्तीति चेत् तदाह -

संतेसु संपराएसु चरियमइदुक्करं पि सामन्नं ।
वावन्नदंसणाण व न होइ सिवसाहयं किं च ।।५१८।।

सत्सु विद्यमानेषु संज्वलनाद्यनन्तानुबन्धिपर्यवसानेषु **सम्परायेषु** कषायेष्व**तिदुष्करतरमपि श्रामण्यं चरणं** चीर्णं **शिवसाधकं** निःश्रेयसविश्राणनप्रवणं **न भवति** । केषामिव ? **व्यापन्न-दर्शनानामिव** । यथा ह्यभव्यानां ताण्डवितातिदुष्करतरक्रियाकाण्डानामपि भावचरणमन्तरेण नरसुरसुखोत्कर्षसम्प्राप्तिमात्रमेव फलं, न पुनर्महोदयसुखानि, तथान्येषामपि कषायिणां मुमुक्षूणामिति ।।५१८।।

किञ्चान्यदप्युच्यते -

जं अइदुक्खं लोए जं च सुहं उत्तमं तिहुयणंमि ।
तं जाण कसायाणं वुड्ढिक्खयहेउयं सव्वं ।।५१९।।

आस्तामिह मर्त्यलक्षणे **लोके** यावत् **त्रिभुवनेऽपि** जगत्त्रयेऽपि **यत्** किञ्चि**दतिदुःखं** दुःखोपनिषद्रूपं, **उत्तमं** सर्वोत्कृष्टं **सुखं** सुखोपनिषद्भूतं, **तत्** । हे शिष्य ! **जानीहि** विद्धि । **कषायाणां** पूर्वोदितानां **वृद्धिक्षयहेतु** । कषायवृद्धौ हि दुःखोत्कर्षवृद्धिः, कषायक्षये च सुखोत्कर्षोपनिषदिति ।।५१९।।

एवं च प्रकरणकृदभिधाय साम्प्रतं सकलप्रकरणार्थरहस्यनिस्यन्दभूतमुपदेशमुपादेयतयाभि-धित्सुराह -

तम्हा तह परिचिंतह तह जंपह तह य चिट्ठह सुसमणा ।
जह सपरकिलिसकरो न होइ उदओ कसायाणं ।।५२०।।

यथा कस्मिंश्चिदवश्यविधेये विधेये केनचिदकृत्रिमोपकृतिप्रत्यलेन स्ववग्र्याः सादरं सम्भाषण-पुरःसरं प्रवर्त्यते **तथे**हापि सम्बोधनपुरःसरमभिधीयते । हे ! **सुश्रमणास्तथा** कथञ्चित् असमसमभावभाविते स्वचेतसि **परि** सामस्त्येन **चिन्तयत** । **तथा** च वाक्यशुद्ध्यध्ययनोप-दर्शितन्यायेन यूयं **जल्पत तथा च** संयमयोगानुगतमेव निरवद्यं **चेष्टध्वम्** । **यथैष स्वस्य परेषां**

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

च क्लेशावेशकारी कषायाणामुदयः सर्वथैव **न भवती**त्युपदेशरहस्यम् ।।५२०।। पुनरनुगुणमेवोपदेशमाह -

इय पडिहणियकसाया पयडह मित्तिं समत्तसत्तेसु ।
पावचरियाउ विरमह हिओवएसे सया रमह ।।५२१।।

इति पूर्वोदितप्रकारेण विपाकं विज्ञाय **प्रतिहतकषायाः** प्रतिहतसम्परायाः सन्तो हे शिवसुखार्थिनो भवन्तः **समस्तसत्त्वेषू**पकार्यपकारिमध्यस्थेषु **मैत्रीं** - मा कश्चित् पापं कुर्यात्, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्, जगदपि मुच्यतां कर्म्मभ्य इत्येवंरूपां तीर्थनाथाद्यनुगुणां भावशुद्धिं **प्रकटयत** । यथा **पापचरितेभ्यः** प्राणिवधानृतभाषणपरधनग्रहणमैथुनासेवनममत्वादिरूपेभ्यः सर्वात्मना **विरमत** विरतिं कुरुध्वम् । तथाऽ**स्मिन्नेव प्रकरणे** सम्यक्त्वादिद्वाररूपेणोपदर्शिते एवमपि तीर्थकरगणधरैरुपदिष्टे लोकद्वय**हिते** उपदेशे **सदा** परित्यक्तान्यविकथादिव्यापारा **रमध्वम्** । एवं च विदधतां भवतां सकलदुष्कर्मजालविगलनेन स्वतः सिद्धमेव परमानन्दाद्वैतमिति ।।५२१।।

साम्प्रतं प्रकरणकृत् स्वान्वयाभिधाने प्रकरणस्य च मूलतामभिधां चाभिधित्सुर्गाथायुगलमाह -

इय अभयदेवमुणिवइ - विणेयसिरिदेवभद्दसूरीण ।
अनिउणमईहिं सीसेहिं सिरिपभाणंदसूरीहिं ।।५२२।।

उवजीविऊण जिणमयमहत्थसत्थत्थसत्थसारलवे ।
सपरेसि हिओ एसो हिओवएसो विणिम्मविओ ।।५२३।।

इति चन्द्रकुलाम्बराम्बररत्नस्य अनुरूपपात्रसम्प्राप्तिमुदितपरमेष्ठिपुत्रीवितीर्णनिरुपमकवित्ववक्तृत्वाक्षीणमाणिक्यकोशपरमैश्वर्यशालिनः निर्व्याजसंयमवतामग्रगण्यस्य, अगण्यपुण्यप्रभावोद्भासितस्य श्रीम**दभयदेवस्य मुनिपतेर्विनय**वराणां प्रशमामृतश्रोतःपतीनां **श्रीमद्देवभद्रसूरीणां शिष्यावतंसैर्वर्त्तमानविद्वत्समाजसञ्जितस्तुतिवादैरनल्पविज्ञानातिशयसेवधिकल्पपूर्वविद्वदपेक्षया अनिपुणमतिभिः श्रीप्रभानन्दाभिधानैः सूरिभिर्जिनप्रवचन**प्रतिब**द्धमहार्थशास्त्रार्थसार्थसारलवानुपजीव्य** श्रोतृजनभावोपकृतिप्रथनेन धर्म्मध्यानानुबन्धेन च **स्वस्य परेषां** च पुण्यकृत्यप्रवृत्तिनिबन्धनत्वेन **हितोऽयं हितोपदेशा**ख्यो ग्रन्थो **विनिर्म्मित इति** ।।५२२।।५२३।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किल दुर्वारदुःषमानुभावान्निरतिशयिनि साम्प्रतसमये प्रमादमदाज्ञानादिग्रसितत्त्वदृशामसुमतां पदे पदे सुलभैव वितथप्ररूपणा । सा चायत्यामत्यन्तदुरन्तेत्यतः प्रकरणकृदात्मनोऽपराधमुद्धर्त्तुमाह -

जं इह सुत्तुत्तिन्नं न सम्मयं जं च पुव्वसूरीणं ।
तं सुयहरेहिं सव्वं खमियव्वं सोहियव्वं च ।।५२४।।

इहास्मिन् हितोपदेशाख्ये प्रकरणे **यत् सूत्रोत्तीर्णं** पूर्वोदितहेतुभिरिवोत्सूत्रं मयाभिहितं । **यच्च** सूत्रानुगतमपि गीतार्थानां संविग्नशिरोमणीनां च **पूर्वसूरीणां** द्रव्यक्षेत्रकालपुरुषाद्यपेक्षया **नो**पदेष्टुं **सम्मतं, तदै**दंयुगीनैर्युगप्रधानागमैरमत्सरैः **श्रुतधरै**र्मम **सर्वम**पत्यापराधवत् **क्षन्तव्यं** विशेषानुग्रहपरैः **शोध्यं** चेति ।।५२४।। साम्प्रतं प्रकरणस्य जगति सुचिरप्रवृत्तिनिमित्तमाशंसनमाह -

जाव सुरसिहरिचूडा, चूडामणिसन्निहे जिणाययणे ।
धारेइ ताव नंदउ हिओवएसो इमो भुवणे ।।५२५।।

सुरशिखरी सुपर्वपर्वतस्तस्य **चूडा** शिखा **यावद्** विचित्ररत्नरुचिरुचिरत्वेन **चूडामणिप्रायाणि** श्रीऋषभवर्द्धमानवारिषेणचन्द्राननाभिधानैः शाश्वतार्हद्बिम्बैरुद्भासितानि **जिनायतनानि धारयति** समुचितं च चूडायां चूडामणिधारणं **तावद्** भुवने । जम्बूद्वीपभारतवर्षमध्यखण्डलक्षणे विद्वद्हृदि निरन्तरं परिशील्यमानोऽयं **हितोपदेशो नन्दतात्** । मेरोस्तदायतनानां च शाश्वतस्वरूपत्वादयमपि तथा प्रथतामिति भावः ।।५२५।। पुनः प्रकरणस्याभ्युदयहेतुतां परिसङ्ख्यां च प्रथयितुं परिसमाप्तिगाथामाह -

निसुणंतपढंतगुणंतयाण, कल्लाणकारणं एसो ।
गाहाणं संखाए पंचसया पंचवीसहिया ।।५२६।।

कृपावतामपूर्वविस्मयविस्मेरनयनवदनगुरुगौरवेणास्यार्थमा**कर्णयतां** । तथा सुव्यक्तया वाचा वाक्यपदवर्णमात्रादिविशुद्धया तस्य सूत्रं **पठतां** । तथा अविस्मरणार्थं पुनः पुन**र्गुणयतां** भव्याङ्गभाजा**मयं** हितोपदेशोऽवश्यमतुल्य**कल्याणकारणं** भवतात् । अद्भुताभ्युदयनिमित्तं सर्ववित्समयमूलत्वाच्चिरन्तनशास्त्रकृत्पद्धतिनिबद्धत्वाच्च भवत्येव । **सङ्ख्यया गाथानां पञ्चविंशत्यधिकानि पञ्चैव शतानीति** ।।५२६।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति नवाङ्गवृत्तिकारसन्तानीय-श्रीरुद्रपल्लीय-श्रीमद**भयदेवसूरि**पट्टप्रतिष्ठित-श्रीदेवभद्र-सूरिशिष्यावतंस-श्री**प्रभानन्दाचार्य**सोदर्य-पण्डितश्री**परमानन्द**विरचिते **हितोपदेशा-मृत**विवरणे सर्वविरत्याख्यं **चतुर्थं मूलद्वारं** समाप्तमिति ।। भद्रम् ।।

तत्समाप्तौ समाप्तमिदं हितोपदेशविवरणमिति ।।श्रीः।।

चान्द्रे कुलेऽस्मिन्नमलश्चरित्रैः, प्रभुर्बभूवाभयदेवसूरिः ।
नवाङ्गवृत्तिच्छलतो यदीय - मद्यापि जागर्त्ति यशःशरीरम् ।।१।।

तस्मान्मुनीन्दुर्जिनवल्लभोऽथ तथा प्रथामाप निजैर्गुणौघैः ।
विपश्चितां संयमिनां च वर्गे धुरीणता तस्य यथाऽधुनापि ।।२।।

तेषामन्वयमण्डनं समभवत् सञ्जीवनं दुःषमा-
मूर्च्छालस्य मुनिव्रतस्य भवनं निःसीमपुण्यश्रियः ।

श्रीमन्तोऽभयदेवसूरिगुरवस्ते यद्वियुक्तैर्गुणै-
र्द्रष्टुं तादृशमाश्रयान्तरमहो दिक्षु क्रमात् क्रम्यते ।।३।।

यतिपतिरिह देवभद्रो नामा जयति, तदीयपदावतंस एषः ।
विषमविषयरोगसन्निपाते दधति रसायनतां वचांसि यस्य ।।४।।

समस्तशास्त्राम्बुधिकुम्भजन्मा, कवित्ववक्तृत्वनिरुक्तिकोशः ।
शिष्यस्तदीयः प्रतिभासमुद्रः, श्रीमान् प्रभानन्दमुनीश्वरोऽस्ति ।।५।।

सन्दर्भोऽयं मतस्तेषामनुजेनाल्पमेधसा ।
[1]तैरिवा[रेवा]नुगृहीतेन [2]परमाता ? [परमानन्दसूरिणा] ।।६।।

गुणिनो गुणानुरक्ता गुरुभक्ताः साधवो व्यधुः सर्वे ।
साहाय्यमत्र शास्त्रे विशेषतो [3]हर्ष[चन्द्र]गणिः ।।७।।

---

1. मूलप्रतौ तैरिवानुगृहीतेन पाठोऽस्ति, किन्तु 'तैरेवानुगृहीतेन' पाठः सम्यग् भाति । - सम्पा० ।।
2. मूलप्रतौ परमाता इति अशुद्धापूर्णपाठो दृश्यते किन्तु सन्दर्भानुसारेण 'परमानन्दसूरिणा' पाठः सम्भाव्यते । - सम्पा० ।।
3. मूलप्रतौ हर्षगणिः पाठो त्रुटितोऽस्ति, अत्र 'हर्षचन्द्रगणिः' इति पाठो सम्यग् भाति । - सम्पा० ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवभिः श्लोकसहस्रैः पञ्चशतीसंयुतैः परिमितेयम् ।
नन्द्यादाचन्द्रार्कं हितोपदेशस्य विवृतिरिह ।।८।।

विक्रमनृपादतीतैश्चतुर्भिरधिकैः शतैस्त्रयोदशभिः ।
वर्षाणामनवद्यं शास्त्रमिदं सूत्रितं जयति ।।९।।श्रीः।।

गच्छनायकभट्टारकप्रभुश्री**सोमसुन्दरसूरि**-भट्टारकश्री**मुनिसुन्दरसूरि**-भट्टारकश्री-**जयचन्दसूरि**-भट्टारकश्री**भुवनसुन्दरसूरि**-भट्टारकश्री**जिनसुन्दरसूरि**-महोपाध्यायश्री-**जिनकीर्त्ति**गणिप्रसादात् श्री**हितोपदेशवृत्तिः** सम्पूर्णा ।। शुभं भवतु ।।

।। हितोपदेशामृतविवरणसमन्वितो हितोपदेशग्रन्थः समाप्तः ।।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-१

हितोपदेशमूलगाथानामकारादिक्रमः

गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः
अइदुक्करं पि चरणं	२०	अमयकंततणुगुणो	३७१	इक्को वि अभिणिवेसो	३९६
अइदुब्भिक्खे नरनाह	३२७	अमुणियविसयविवागा	१८१	इच्चाई किंपि	३७६
अइदुल्लहं पि बोहिं	१६९	अलियं पंचविगप्पं	४१६	इत्तु च्चिय पुव्वभवे	२९
अकलियपत्तापत्तं	२४५	अवगन्निऊण नियतणु	१०४	इत्थ य सुत्तत्थाणं	१०६
अक्खरसन्निप्पमुहा	८७	अवज्झाण-पमायायरिय	४३३	इत्थ य सुयनाणं	१००
अक्खुद्दा य अकिविणा	१३	अवणीयं सीसाओ	३८९	इन्हिं पि तरंति	३५९
अच्चंतनिरणुकंपा	६२	अवमाणं न पयंसइ	२८६	इय अभयदेवमुणिवइ	५२२
अच्चंतभत्तिराओ	२६	अवही किल मज्जाया	८८	इय एसो भे !	४०९
अच्छउ पच्चुवयारो	३८५	अवि दंतमित्तसोहण	४५५	इय जइ अणुवकया	२६८
अट्ठपवयणमायाणुगयं	११०	अविणीयं अणुयत्तइ	२८०	इय दंसणमूलाइं	४४४
अट्ठप्पयारवरपाडिहेर	२५६	अह तेसि वयण	१४४	इय पडिहणियकसाया	५२१
अणथोवं वणथोवं	५१६	अहह भवन्नपारं	३९९	इय भणियमभयदाणं	६७
अणसणमूणोयरिया	१८९	अहिगयजीवाजीवाण	१३५	इय भाइगयं उचियं	२८३
अणुकंपादाणमिणं	७७	अहिंगारी जं एसो	१५५	इय लोउत्तरविणओ	२२३
अणुगामिमणणुगामिं	९१	अंधाण य पंगुण	६९	इय सत्तसु खित्तेसुं	१७०
अत्तुक्करिस-कयग्घत्त	४१	आएसं बहुमन्नइ	३००	इय समणाणं दाणं	१२८
अत्तुक्करिसपहाणे	३६५	आपुच्छिउं पयट्टइ	२७५	इय समिइगुत्ति	४८७
अन्नह कहमरिहंता	३९१	आमरणंतं च भवे	९२	इयरो वि नरो	३३०
अन्नाईणं सुद्धाण	४४२	आमाणुसुत्तराओ	९४	इरिया-भासा-एसण	४६६
अन्नायपवंचेहिं	५०७	आमोसहि-विप्पोसहि	१९७	इरियासमियाण	४६७
अन्ने पयंडभुयदंड	३३	आरंभनियत्ताणं	१३२	इंगाली-वण-साडी	४३१
अन्ने भुंजंता	२०५	आसावदारपवित्ती	३५२	उग्गमउप्पायण	४७७
अन्नं पि दुक्करं	१७५	आहरगा वि	४८९	उचियाचरणेण नरो	३२०
अन्नं पि हु जं	३८	आहारदेहसक्कार	४३९	उचियं एयं तु	२७८
अप्पडिदुप्पडिलेह	४४१	इक्कस्स वि ताव	१६०	उच्चालियम्मि चरणे	४६९

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः
उच्छिंदिऊण गिहवास	४६३	एयं च वयसरीरं	४६५	कस्सवि कल्लाण	१३१
उजुविउलभेयओ	९५	एयं दुविहं पि	८६	कह ताव जणो	४०१
उड्ढाहोतिरियदिसिं	४२५	एयं परुप्परं	३११	कह तेसिं चेयणत्तं	२६३
उत्तमअहमवियारे	३८३	एयं पुण कट्ठयरं	५८	कह पुण इमो	२१३
उत्तमपुरुषपणीए	१९८	एयं पंचविगप्पं	९९	कह लहउ न	३४२
उद्दीवियसयलगुणं	४२	एवमणगारिगोयर	१०७	कह हीरइ तस्स	३३६
उद्धरणं पुण	१६३	एवं खु जंतपीलण	४३२	का गणणा अण्णेसिं	५१३
उब्भडदंभोलि	३६	एवं जिणा घणा इव	२४६	का वा परेसि	३४४
उम्मीलियकेवलनाण	१४२	एवं दुविहो वि इमो	२६०	कामविणओ य	२१८
उयह खमाबलमतुलं	४९७	एवं देसविरुद्धं	३२५	कायव्वो य पमाओ	४८८
उयह हयमोहमहिमं	४०८	एवं पि तावकट्ठं	५७	कायव्वं कज्जे वि	३०७
उवजीविऊण जिणमय	५२३	एवंविहहिंसाए	५३	कारणिएहिं पि समं	३१०
उवयार परो वि नरो	२७०	एवंविहाण पाणीण	७०	किरिया कायकिलेसो	३७७
उवयारखणे	२३९	एसो चउप्पयारो	२१२	किं इत्तो कट्ठयरं	११३
उवयारिणं निगूहइ	३९०	एसो दव्वुवयारो	२४९	किं एयं विउसत्तं	५०६
उवयारो पुण	२४१	एसो य दंसणमणी	३०	किं तित्थसत्थ	५९
उवसंतकसायाणं	५१७	ओसहभेसज्जाइं	१२२	किं नहयलाउ	५५
उस्सुत्तभासगाणं	४७६	ओहेण सुणिय सम्मं	४०५	कुणइ वयं धणहेउं	१५८
एए धम्मरहस्सं	४६०	कइवयदिणपाहुणएण	२६२	कुणइ विणओवयारं	३०३
एए पंच मुणीणं	४५९	कज्जलरेहारहियं	२००	कुणमाणो धम्मकहं	४७२
एएसि तित्थियाणं	३१४	कट्ठमणुट्ठाणमणुट्ठियं	३९८	कुलजाइरूवमेहा	५०१
एएहिं अणुग्गहिओ	४६१	कमलाविलासरहिओ	३६७	कुलरूवरिद्धि	३५७
एगस्स भूमिवयणो	३२२	कम्मयओ पुण	४३०	के के जम्मण	२३३
एगे संकप्पतरंगएहिं	२०४	कम्माण खओवसमेण	९०	केणापि अकयपुव्वं	३७०
एमाई सयणोचिय	२९८	कयकेसवेसपरियर	१८०	केवलनाणं पुण	९८
एयाइं धम्मतरुमूल	३५६	कयविक्कयाणि निच्चं	३५५	को तेयंसी तवणाउ	५४
एयाइं परिहरंतो	३४९	करचरणनयण	६१	को वा दुसमसमुत्थे	४०७
एयाण निरइयाराण	४४५	कविभावो किर	३१२	कोहाइए कसाए	५१५

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः
कोहो पीइलयाए	४९४	जइ संति गुणा	३६३	जो जस्स मयट्ठाणस्स	५००
कंदप्पं कुक्कुइयं	४३४	जइजणपाउग्गाइं	१२५	जं अइदुक्खं लोए	५१९
खणमित्ततित्तिहेउस्स	४७८	जईवि न मणंमि	३१५	जं अज्जियं चरित्तं	४९२
खलियंमि चोइओ	३०२	जणमणनयणाणंदं	२३१	जं इह सुत्तुत्तिन्नं	५२४
खाइज्ज पिट्ठिमंसं	२९६	जत्थ सयं निवसिज्जइ	३०५	जं कट्ठमणुट्ठाणं	२०२
खित्ताइ-हिरन्नाई	४२४	जम्हा विणयइ	२१४	जं किं पि सुहं	६०
खंडंति पिंडसोहिं	४७९	जम्हा सुलहा	१३९	जं जम्मकोडिघडिएण	२०३
गिन्हावेइ य पाणिं	२९१	जयइ जियकम्मसत्थो	३	जं पुण पढइ	११५
गिन्हेइ पयणुदोसे	१२६	जस्स मणभवण	३९७	जं पुण पाणिवहाईण	४५१
गुणपरिमलपरिहीणो	३६६	जह अज्जिन्नाउ जरं	३९४	तत्तो दसपुव्वधराइएहिं	१४५
गुरुदेवधम्मसुहिसयण	२९०	जह ते मुणिंदनरनाह	२६९	तत्थ य अभयपयाणं	४४
गुरुसामिधम्मिसुहि	३५४	जह तेण पुलिंदेणं	६६	तत्थ य जिणिन्दसमणा	१२०
गेहागयाणमुचियं	३१६	जह तेण सिट्ठि	७६	तदुचियअब्भुट्ठाणं	२१६
गेहेसु गहिरसत्थत्थ	३७३	जहसंभवं इमे	५१	तद्दंसियनीईए	२९९
गंथत्थवियारे	१७८	जाइकुलरूवपमुहा	४९९	तप्पणइणिपुत्ताइसु	२८२
चउगइगत्तावडियं	४	जाव सूरसिहरिचूडा	५२५	तम्हा कसायपसरं	४९१
चरणे तवम्मि	२२१	जावज्जीवं मुसावाए	४१४	तम्हा चिरचिन्न	१९५
चाउव्वन्नो संघो	११८	जिणपन्नतस्स सुयस्स	४०३	तम्हा जहसत्तीए	४७५
चित्तं पि हु	२७४	जिणपवयणे थिरत्तं	२५	तम्हा जिणिंदसमयं	१४७
चिरपरिचिएण	२०८	जिणमयपयमित्तं	१४८	तम्हा तह परिचिंतह	५२०
चिंतइ अचिंतणिज्जं	४९५	जिणमयरहस्ससुत्तो	४०२	तम्हा न बज्झचिट्ठा	२०६
चिंतामणिकामगवी	६४	जिणसमयसाय(ग)राओ	६	तम्हा नाणमहन्नव	१०२
चिंतामणी मणीण व	२२९	जिणसासणोवहासो	३५३	तम्हा बहुमंतव्वो	३४५
चेइयजइसाहम्मिय	४४८	जिंभगदेवेहिंतो	२४३	तम्हा मणसा वि	११६
चोराभिमराईसुं	२१७	जे उण परोवयारं	२३५	तम्हा मद्दवपविणा	५०३
चोरोवणीयगहणं	४१९	जे केइ जप्पवत्तिय	१५२	तम्हा महव्वयाइं	४६४
छव्विहजीवनिकायं	४५३	जेसिं परोवयरणे	२३६	तम्हा रायविरुद्धं	३३८
जइ वि खमा परिभूया	४९८	जेहिं पुरा जम्म	३५८	तम्हा सइ सामत्थे	१४९

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः
तम्हा सइ सामत्थे	२३२	दव्वं खित्तं कालं	४०४	धरइ पडंतं जो	३५१
तम्हा सइ संथरणे	४८१	दाणगुणसंगओ	१७१	न य अन्नदेसियाणं	३२४
तम्हा समाणधम्माण	१४०	दाणाईण गुणे	३६१	न य अन्नो वि हु	१९३
तयभावे तग्गेहे	२९७	दाणं नाणस्स	१०३	न य तत्तियमित्तेणं	११२
तस्स सुयस्स	१४६	दाणं सीलं च	४०	न य तयरिजणवएसुं	३३३
ता खंतिखग्गवग्गिर	४९६	दिणरयणिग्गहणभोयण	४५८	न य तस्स	४७०
ता जइ निबद्ध	२४७	दिसिवयगहियस्स	४३७	न हवइ छिद्दप्पेही	३०१
ता झत्ति अट्टरुद्दाणं	५१४	दीणाईसु दयाए	७५	नज्जंति जीवगइ	१०१
ता भावुवयारकरं	१६२	दीणाणमणाहाण	६८	नज्जंति जेण तत्ता	७८
ता मिच्छपडिच्छंदं	११	दुद्धरमयरद्धभिल्ल	१८३	नणु जिणभवणाणमिहं	१५६
तावेइ जेण कम्मं	१८७	दुब्भिक्खडमरविद्धर	१२४	नणु कहमुवउत्ताण	४६८
ति च्चिय जेण	३१	दुविहमदत्तादाणं	४१८	नणु तेण रयणग़ब्भा	३८४
तिन्नि वि सया	३४३	दुविहो परिग्गहो	४२३	नमिरसुरासुर	१
तिहुयणजणमण	३७४	दुविहं च इमं नेयं	४४०	नरनाहसम्मयाणं	३३२
तिहुयणविजयं विज्जं	५१०	दुविहं तिविहेण	४२१	नवनिहिणो वि	२३८
तुरियं तु भत्तिदाणं	११७	देसविरुद्धाईणि	३५०	नवरं से सविसेसं	२७७
तुल्ले तहाहि	३२	देसस्स य कालस्स	३२१	नाणाकिरियासु सिढिला	४७४
तुंगगिरिसिहर	२६५	देसाइविरुद्धाणं	३६०	नाणड्ढयाण कुणइ	१०९
तेणावि हु तं	१०५	दंसइ न पुढोभावं	२७९	निग्गंथा वि हु	३३७
तेणं चिय जयगुरुणो	३१९	दंसेइ नरिंदसभं	२९३	निद्धे वि बंधवे	२२८
तेयस्सिणो सुरूवा	६३	धणधन्नहिरन्नाइसु	४५७	निम्मलतवोरयाणं	१३६
तो निविडनियडि	५०९	धन्ना गहिऊण इमं	६५	निम्मविए जिणभवणे	१६४
तं पुण नरेण	३२३	धन्ना विन्नायजहुत्त	३८०	नियजढरपिढर	२३४
तं पुण पिइमाइ	२७२	धन्नाण दाणबुद्धी	१३०	नियतेयतिणीकय	२५४
थेवं पि हु उवयारं	३९२	धन्नाण मणे	१८२	नियनियविसयविभागं	१३३
दक्खा दक्खिन्नपरा	३७५	धन्नाणं विहिजोगो	१६६	निरहंकारो वि नरो	३८१
दट्ठुं दिट्ठीइ	४८२	धम्मद्दुमस्स मूलं	१६	निवइविरुद्धं पुण	३२९
दढधम्मरायरत्ता	१२	धम्मपडिकूलकुलगण	१४	निसुणंतपढंतगुणंतयाण	५२६

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः
निहणिज्जंतो वि	४९०	पायच्छित्तं विणओ	१९०	भणियं खित्तचउक्कं	१४१
निहणंतो पाणिगणं	५६	पायालानलजाला	२३७	भणियं सुसावगोचिय	१५३
नंदंतु ते जिणिंदा	२	पिइमाईण समुचियं	३१७	भत्तीइ देइ	१२३
पच्चक्खं न पसंसइ	२९२	पिउणो तणुसुस्सूसं	२७३	भयवसनमंतसामंत	३४
पज्जुसणे चउम्मासे	४४७	पिच्छह विरई फलं	४६२	भयहासकोहलोहेहिं	४७१
पडिवक्खविउडणेणं	२२४	पिंडेसणअज्झयणं	१११	भवपच्चइयं सुरनारयाण	८९
पडिवज्जिऊण तिविहं	२५०	पीणपओहरचच्चर	१७७	भवसयसहस्समहणो	११४
पढमं अभयपयाणं	४३	पुणरुत्तजम्ममरणे	७	भाविज्जइ भव्वत्तं	७२
पढमं किर मइनाणं	७९	पुत्तं पइ पुण	२८९	भावोवयारमेसिं	३०४
पढमं जिणिंदचंदेहिं	८३	पुरिसो देसविरुद्धं	३२८	भुयबलविढत्तवसुहा	३५
पणतीसवयणगुण	२५७	पुव्वायरियकमागय	४०६	भुवणब्भुयबुद्धिधरेहिं	१४३
पणमित्तु पायपउमे	५	पुव्विं दुच्चिन्नाणं	१९२	भूओवमद्दरहिएहिं	३७२
पत्ते य तम्मि खित्ताइ	८	पूयं पावंति	३९	भूमी वि वहइ	२६७
पम्हुसइ मुक्खमग्गं	१८	पूरइ कोसागारे	२४४	भूसिज्जइ सम्मत्तं	२८
पयइत्थपयत्थ	९३	पंच य अणुव्वयाइं	४१२	भेया दुन्नि य चउरो	८१
पयडिज्जइं कुलममलं	२२६	पंच य महव्वयाइं	४५२	भोगोवभोगपरिमाण	४२७
परनिंदा पुण	३७९	पंचिंदियाणि मणवयण	५०	भोयणओ पडिवन्ने	४२८
परिचत्तअट्टरुद्दे	४८४	फासुयएसणिएहिं	१२७	मइसुयओहिन्नाणा	९७
परिचत्तपुरिसयारो	३६८	फासुयएसणियाइं	१२१	मणवयणकाय	४३६
परिचत्तसयललोइय	१२९	बलदेवमुणी भयवं	१९९	मणवयणकायजोगे	२२२
पसमंति विग्घसंघा	१९६	बलिएहिं दुब्बलजणो	३०९	मत्ताहियाउ नूणं	२११
पसरइ गाढावेगो	३९५	बहुजणविरुद्धसंगो	३४७	मलजलखेलाईयं	४८३
पसिणंति किन्हचित्त	५११	बारसभेयं पि	१९१	महुरगव्वियमणलिय	४५४
पाणा संति इमस्स	४९	बाहाहि जलहितरणं	१७४	माइंदजालमुवदंसिऊण	५०४
पाणिवह-मुसावाए	४१३	बाहिर-अब्भिंतर	१८८	मिच्छत्तपडलसंछन्न	१०
पाणिवहाईयाणं	४११	बीयं चउदसदसपुव्व	८४	मिच्छद्दिट्ठिसुरासुर	४४६
पाणिंती जीवंती	४६	बोहिंति भव्वसत्ते	२५८	मिच्छाभिणिवेसोवसम	२४
पाणीण पाणसंरक्ख	७३	भट्ठे(ण) चरित्ताओ	२१	मिज्जइ नज्जइ जेणं	८०

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः
मित्ता हसंति	३६४	वरमन्नाणी वि मुणी	४७३	सजलणा वि हु	४९३
मुचंति न मज्जायं	३१८	वह-बंध-छविच्छेयं	४१५	सत्तुप्पउत्तगूढाभिमर	३३५
मुणिऊण विरइसमयं	२४२	वागरणछंदलंकार	१५१	समणा समणीओ	११९
मुणिऊणं परमकरूणाइ	८५	वावाराणं गरुओ	२०७	समसमयससंभम	३७
मुत्तूण मुक्खमग्गं	४००	विगहापरिहारेणं	४८५	समुचियमिणमो तेसिं	३०६
मूलं संसारस्स	२२५	विणएण पुच्छणिज्जो	२३०	समुवट्ठिए विवाए	३०८
मेहुन्नं पि हु दुविहं	४२०	विणयवणधूमकेउं	३६२	सम्मत्तधरो सड्ढो	१५४
रक्खंति य मरणभयं	४५	विणयाइगुणगणाणं	१७	सम्मत्ताइ गुणोहो	३९३
रविकरतावं	२६६	वित्ताइनिमित्तेणं	५०८	सयणाण समुचियमिणं	२९४
रसगारवंमि गिद्धा	४८०	वित्थिन्नो वि हु	१९	सयमवि तेसिं	२९५
रहजत्ततित्थजत्ता	४५०	वियलियकुलाभिमाणो	२१०	सयलंमि वि	१६१
रहतित्थजत्त	१३७	विरई इह पन्नत्ता	४१०	सविसेसं जे दोसा	५०२
रिद्धीओ विउलाओ	७४	विरएइ उवट्ठुंभं	१०८	सविसेसं परिपूरइ	२७६
रुंभइ रयणिपयारं	२८५	विसओ इमस्स	९६	सव्वन्नुपणीएसुं	१५
रूवं चवणसरूवं	२६१	विहवाईहिं परेसि	२४०	सव्वस्स चेव निंदा	३४६
रोगाइसु नोविक्खइ	२८८	विहिणा तन्निम्माणं	१६५	सव्वासिं पगडीणं	१९४
लद्धुं पहुबहुमाणं	३३४	विहुरंमि हुंति	१७९	ससए समुन्नइं	२६४
लब्भइ न सहस्सेसु	३८२	वीरासणाइएहिं	४८६	ससमयपरसमयविऊ	१५०
लोइयलोउत्तरभेयओ	२१५	वेरुलियफलिहविद्दुम	१६८	ससिणेहहिययजलिए	१७६
लोउत्तरविणओ	२१९	वंचंति सामिगुरु	५१२	सहसा अब्भक्खाणं	४१७
लोओ जणु त्ति	३३९	सइ सामग्गिविसेसे	२४८	सामग्गीसाविक्खो	३८८
लोयायारविरुद्धं	३४१	सइ सामत्थे सम्मं	४४९	सामन्ने मणुयत्ते	२७१
लोयाववायभीरू	३७८	सगिहाणं सम्माणं	१३८	सावज्जेयरजोगाण	४३५
वज्जइ इच्छाइकम्म	४२६	सचित्तनिक्खिवणयं	४४३	सासयरूवाओ	५२
वज्जइ इत्तिरि	४२२	सच्चित्तं पडिबद्धं	४२९	साहुवसणंमि तोसो	३४८
वज्जइ इह आणयण	४३८	सच्चं न घडइ	४८	साहूसु बाहुसाहू	१३४
वज्जेइ तं पि	३४०	सच्चं पहीणरागा	१८४	सीलं अबंभचाओ	१७२
वयणं व नयणहीणं	२०१	सच्चं होइ विमद्दो	१५७	सीलं च पणीयाहार	१८६

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः	गाथा	क्रमाङ्कः
सीलं सुहतरुमूलं	१७३	सुव्वइ य निसामिज्जइ	८२	संते वि निवइदोसे	३३१
सुकुलुग्गयाहिं	२८७	सुव्वंति थूलभद्दो	१८५	संतेसु संपराएसु	५१८
सुक्कज्झाणानल	२५१	सुस्सूसाइ पयट्टइ	२८४	संभमचलिरचउव्विह	२५५
सुगयभयवंतसइवा	३१३	सुहभावमणुपविट्ठो	२०९	संसारचारगगयं	२५९
सुन्नमणो वियलत्तं	३६९	सो होइ नाणविणओ	२२०	हणइ फिर परकयं	३८७
सुयसंघतित्थपमुहं	१६७	संकाइदोसरहिए	२२	हियए ससिणेहो	२८१
सुरनरतिरिनारीसुं	४५६	संकाकंखविगं(गिं)छा	२३	हिंसच्चिय नणु	४७
सुररइयकणयमय	२५२	संतम्मि जिणवयणे	१५९	हुज्ज वरमणुवयारी	३८६
सुरवइकरकमल	२५३	संतम्मि भत्तिराए	२७	हुंति गुरू सुपसन्ना	२२७
सुविसुद्धं सम्मत्तं	९	संते वि चित्तवित्ते	७१	हेमंते हिमगिरि	३२६

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-२

हितोपदेशग्रन्थस्य साक्षिपाठानामकारादिक्रमः

साक्षिपाठः	गाथाक्रमाङ्कः	ग्रन्थनाम
अट्ठावीसा दो वाससया	४०८	आव. मू. भा. गा. १३३
अणुवकयपराणु	२३	संबोध प्र. ध्यानाधिकार-५०
अत्थं भासइ	८३	विशेषा. भा. १११९
अद्येदं स्वरिदं	३७४	-
अनयेनेव राज्यश्रीः	३८०	-
अनिरिक्खपमज्जिय	४३६	श्रावक प्रज्ञ. गा. ३१५
अन्योन्यं विषयाणां	४८०	-
अपुव्वपुव्वागमनाणवंछा	४०९	-
अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय	४४१	उपा. सू. अध्य. १, सूत्र-६
अप्पं पि सुयमहीयं	४०५	आवश्यकनिर्युक्ति गा. ९९
अप्रकटीकृतशक्तिः	३३०	-
अबुधसंसदि	४५१	-
अभिग्गहियं	१५	पञ्चसं. गा. १८६
अभ्युत्थानं तदालोके	२१६	योगशास्त्र प्र. ३ श्लो. १२५
अवसेसा वि हु	२३	-
असियसयं किरियाणं	३४३	स्था. सू. ४/४/३४५
अहङ्कारे स्फुरत्येवं	३६५	-
अहव न जिमिज्ज	४७७	पिण्डविशुद्धि गा. ९९
अहासभासित्त	४०९	-
अहिगयजीवाजीवा	१३५	भग. २ श. ५३०
अंतोमुहुत्तमित्तं	१९	नवतत्त्व प्र. गा. ५३
आदेयत्वमसंस्तुते	३१९	-
आयावयंति गिम्हेसु	४८६	दशवै. अ. ३, गा. १२
आलस्स मोहऽवन्ना	८	-
आसनाभिग्रहो भक्त्या	२१६	योगशास्त्र प्र. ३ श्लो. १२६

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षिपाठः	गाथाक्रमाङ्कः	ग्रन्थनाम
आहाकम्मुद्देसिय	४७७	पञ्चवस्तु गा. ७४१
इत्थ किर करेमि भंते	११०	-
इय अइदुल्लहलंभं	८	उत्तरा बृ.वृ. गा. १६०-१६१ नि.
इहलोयगुरू पियरो	२७४	-
इंदियबलऊसासा	५१	-
उक्कोसेणं सावगो	१३६	श्राद्धदिनकृत्य गा. २७२
उट्ठिज्ज निसीइज्ज	१९०	व्यवहार भा. प्र. ३ गा. ३६८
उड्ढदिसिपमाणाइक्कम्मे	४२७	-
उवसमसेढिगयस्स	१५	विशे. आव. गा. २७३५
उवहियजोगदव्वो	१०५	-
एएहिं कारणेहिं	८	उत्तरा.बृ.वृ. गा. १६०-१६१ नि.
एकतः क्रतवः	५९	-
एगुणवीसगस्स	१०५	पञ्च व. गा. ५८८
एयाओ अट्ठप्पवयण		-
एवं एए कहिया	४०८	आव. नि. गा. ७८४
ओवायं विसमं	४६७	दशवै. अ. ५, उ. १, गा. ४
कडसामाइओ	४३६	श्रावक प्रज्ञ. गा. ३१४
कत्थई मइदुब्बल्ल	२३	संबोध प्र. ध्यानाधिकार-४८
कपिलानां सहस्रं	५९	-
कयं मए किं	४०९	-
काऊण तक्खणं	४३६	श्रावक प्रज्ञ. गा. ३१७
काऊणमणेगाइं	८	उत्तरा बृ.वृ. गा. १६०-१६१ नि.
कामप्पिवासाइ	४०९	-
कृतपापोऽपि	१३	-
केवइया णं भंते	२	-
कोहो य माणो य	४९३	दशवै. अध्य. ८ गा. ४०
क्षीरवृक्षान् विहायोर्व्या	५११	-
गणिमं जाईफल	४२३	संबोध प्रक./श्रा.व्रताधि. गा. ५३

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षिपाठः	गाथाक्रमाङ्कः	ग्रन्थनाम
गन्धैर्माल्यैः	१६५	-
गोयमा ! चउव्विहा सावया	३०१	स्था. अध्य. ४, ३०३, सू. ३२१
गंगाओ दो किरिया	४०८	आव. नि. गा. ७८०
चउदस दो वाससया	४०८	आव. मू. भा. गा. १२९
चउदस वासाणि	४०८	आव. मू. भा. गा. १२५
चउदसवासस्स तहा	१०५	पञ्च व. गा. ५८६
चन्द्रः सुधामय	१३	-
चिंतइ जइकज्जाइं	३०१	-
चुल्लगपासगधन्ने	८	उपदेशपद गा.५/
छुहवेयण-वेयावच्च	४७७	पिण्डविशुद्धि गा. ९८
जम्मं दिक्खा	२५-२६	यो. शा. वृत्तिः २/१६
जलरेणुपुढवि	४९२	कर्मवि. गा. १९
जह छेयलद्ध	४०५	आवश्यकनिर्युक्ति गा. ९५
जहन्नेणं अट्ठप्पवयण	११०	-
जा य सच्चा न	४७१	दशवै. अ. ७, गा. २
जिणपवयणवुड्ढिकरं	३५२	श्राद्धदिनकृत्य गा. १४२
जीवति स जीवलोके	२३९	-
जुग्गाण कालपत्तं	१०५	पञ्च व. गा. ५७०
जं पि वत्थं व	४५८	दशवै. अ. ६, गा. २०
तइयं उस्सग्गेणं	२९७	-
तणुओ अतिक्खतुंडो	१९०	आवश्यक नि. गा. १४३४
तपो मङ्गलमादिमम्	१९५	-
तह नाणलद्ध	४०५	आवश्यकनिर्युक्ति गा. ९६
तह वि य अठायमाणे	१९०	आवश्यक नि. गा. १४३८
ता लोयसत्ताविवरं	४०९	-
तित्थंकरे तित्थं	२५-२६	भगवतीसूत्र-श.२, उ. ८,सू. १४
तिथिपर्वोत्सवाः	१२९	धर्म सं. गा. ४० वृत्तौ
तिन्हं दुप्पडिआरं	२७६	ठाणांगसूत्र ३ अ. सू. १४३

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षिपाठः	गाथाक्रमाङ्कः	ग्रन्थनाम
तिवरिसपरियागस्स	१०५	पञ्च व. गा. ५८२
तेणेव जो बीहइ	१४	-
तं तह दुल्लह	८	-
तं वत्थुं मुत्तव्वं	३७९	-
थद्धो छिद्दप्पेही	३०१	-
दट्ठूण पाणिनिवहं	२४	श्राव. प्र. गा. ५८
दत्तमिष्टं	५९	-
दसकप्पव्ववहारा	१०५	पञ्च व. गा. ५८३
दसवासस्स विवाहा	१०५	पञ्च व. गा. ५८४
दानपात्रमधमर्ण	२४०	-
दारिद्दसमो	३६७	-
दिव्वो वि ताण	३६८	-
दुरन्तं मिथ्यात्वं	४५१	-
देहो नासाधनको	३४४	प्रशमरतिगा. १३२
दो वारे विजयाइसु	१५	विशे. भा. गा. ४३४
द्विजन्मनः क्षमा	३१०	-
धाई दुई निमित्ते	४७७	पिण्डनिर्युक्ति गा. ४०८
धोलवडा वाइंगण	४२८	-
न इहलोगट्ठयाए	१९२	-
न तद्दानानि	५९	-
न भवति धर्म्मः श्रोतुः	४८५	-
न सरइ पमायजुत्तो	४३६	श्रावक प्रज्ञ. गा. ३१६
न सो परिग्गहो	४५८	दशवै. अ. ६, गा. २१
न हु किंचि	४०५	प्रवचनसारो. गा. ५५२ वृत्तौ
नरविबुहेसरसुक्खं	२४	श्राव. प्र. गा. ५६
नाकामी मण्डनप्रियः	४५६	-
नाणाहिओ वरतरं	४०५	उपदेशमाला गा. ४२३
नाणाहियस्स नाणं	४०५	उपदेशमाला गा. ४२४

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षिपाठः	गाथाक्रमाङ्कः	ग्रन्थनाम
नाणं पयासयं	४०५	आवश्यकनिर्युक्ति गा. १०३
नारयतिरिय	२४	श्राव. प्र. गा. ५७
निच्छयओ दुन्नेयं	४०५	-
निप्पाइया य सीसा	१८९	-
निसङ्गतेव लोभेन	३८०	-
नूमंति जे पुहुत्तं	२१८	-
नेह भूयस्तमो	५९	-
नेहलोके	१३	-
पगिट्ठधम्मपडिबद्धलोए	४०९	-
पञ्चविंशतितत्त्वज्ञो	३१३	-
पञ्चषाः सन्ति	३८२	-
पठति पाठयति	१०८	-
पठितं श्रुतं च	४५	-
पडिलेहणं कुणंतो	४८३	ओघनिर्युक्ति गा. २७३
पढइ सुणेइ गुणेइ	११४	उपदेशमाला गा. २३३ उत्त.
पण्डिते निर्धनत्वम्	३७३	-
पयईइ कसायाणं	२४	श्राव. प्र. गा. ५५
परपत्थणापवन्नं	२३९	-
परमरहस्समिसीणं	४०५	ओघनिर्युक्तौ गा. ७६१
परियट्टए अभिहडु	४७७	पञ्चवस्तु गा. ७४२
पहसंतगिलाणेसुं	१०८	-
पावयणी धम्मकही	२५-२६	-
पासत्थो ओसन्नो	४०५	प्रवचनसारो. गा. १०३ वृत्तौ
पासाईया पडिमा	१६५	व्यवहार भा. उ. ६, गा. १८९
पिंडं असोहयंतो	४०५	यतिदिनचर्या गा. २१०
पुढविआउक्काए	४८३	ओघनिर्युक्ति गा. २७४
पुरओ जुगमायाए	४६७	दशवै. अ. ५, उ. १,गा. ३
पुव्वपुरिसा	२३	श्रा. ध. वि. प्र. गा. ५६

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षिपाठः	गाथाक्रमाङ्कः	ग्रन्थनाम
पुव्विंपच्छासंथव	४७७	पिण्डनिर्युक्ति गा. ४०९
पुव्वंते हुज्ज युगं	८	उत्तरा. बृ.वृ. गा. १५९ नि.
पंचसया चुलसीया	४०८	आव. मू. भा. गा. १४१
पंचसया चोयाला	४०८	आव. मू. भा. गा. १३५
पंचुंबरि चउविगई	४२८	-
बत्तीसं खलु कवला	१८९	प्रवचनसारो. गा. ८६६
बहुरय जमालिपभवा	४०८	आव. नि. गा. ७७९
बहुरय पएस	४०८	आव. नि. गा. ७७८
बहूनामप्यसाराणां	३०७	-
बारसवासस्स तहा	१०५	पञ्च व. गा. ५८५
बीआ दो वाससया	४०८	आव. मू. भा. गा. १३१
भोज्यं भोजनशक्तिश्च	३३	-
मध्यत्रिवलीत्रिपथे	१७७	-
मन्नइ तमेव	२४	श्राव. प्र. गा. ५९
मरणभयं तु	४४	-
महतामपि दानानां	५९	-
मा वेयणा उ तो	१९०	आवश्यक नि. गा. १४३६
माणुस्सखित्त	८	-
मायावलेहिगोमुत्ति	४९२	कर्मवि. गा. २०
मिच्छत्तं वेयतियं	१२०	प्रवचनसारो. गा. ७२१
मिच्छाभिनिवेसस्स	२४	-
मित्तसमाणो माणा	३०१	-
मूलोत्तरगुणरूवस्स	१९०	आव. नि. गा. १४३९
मंतो न तंतो	३५३	-
यदा लेखयन्ति	१४९	योगशास्त्र प्र. ३/११९ वृत्तौ
यदि नाम न	१२	-
यदीच्छेद् विपुलां	२९७	-
याचमानजनमानसवृत्तेः	२३६	-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षिपाठः	गाथाक्रमाङ्कः	ग्रन्थनाम
यावज्जीवं गुरुणो	४०५	-
येनानीतः कुलमलिनं	३५७	-
यो ददाति	५९	-
राजद्वारे श्मशाने	२९५	-
रोहेइ वणं छट्ठे	१९०	आवश्यक नि. गा. १४३७
लग्गोद्धियम्मि	१९०	आवश्यक नि. गा. १४३५
लोकः खल्वाधारः	३४३	प्रशमरति गा. १३१
लोगस्स धम्मस्स	४०९	-
वन्नाइमित्ततुल्लो	२३	-
वरमेकस्य सत्त्वस्य	५९	-
ववहारो वि हु	४०५	पुष्पमाला गा. २२९
वसहिकहनिसिज्जिंदिय	४५६	प्रवचन सारो. गा. ५५७
वाजिवारणलोहानां	३८९	-
विकटाटव्यामटनं	१३	-
विचारः प्राणिनां	४९४	दशवै. अ. ८, गा. ८
विचिकिच्छ देसे	२३	श्रा. ध. वि. प्र. गा. ५५
विणओणएहिं	१०५	-
विदारयति	३	-
विद्याः सन्तु	३१९	-
विपद्युच्चै स्थेयं	१२	-
वीसा दो वाससया	४०८	आव. मू. भा. गा. १३१
वेएइ संतकम्मं	१५	विशे. आव. गा. १२९३
शतेषु जायते	३३	-
शुष्यन्ति सरितो	१३	-
सन्मृत्तिकामल	१६८	-
समिओ नियमा	११०	बृहत्कल्पभा. ४४५१
सम्पदि विपदि	१३	-
सम्पदो विषयक्रीडा	३४७	त्रिषष्टिपर्व. १-२-३६

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साक्षिपाठः	गाथाक्रमाङ्कः	ग्रन्थनाम
सर्वे यत्र विनेतारः	३०७	-
सव्वजणवल्लहत्तं	१४	श्रा. ध. वि. प्र. गा. ११
सव्वत्थ उचियकरणं	२४	पुष्प. गा. १११
सव्वत्थ संजमं	१२६	ओघनिर्युक्ति गा. ४७
सव्वेसु कज्जेसु	४०९	-
सहसब्भक्खणाई	४१७	-
सा चंडवायबीई	८	उत्तरा. बृ.वृ. गा. १५९ नि.
सामाइयं तु काउं	४३६	श्रावक प्रज्ञ. गा. ३१३
साहूण चेइयाण य	३०१	-
सुत्तं गणहररइयं	८४-८५	बृहत्सं. प्र. गा. १५४
सुत्थावत्थे न नमइ	३०१	-
सुप्रयुक्तस्य दम्भस्य	५०६	-
सुबहुं पि सुयमहीयं	४०५	आवश्यकनिर्युक्ति गा. ९८
सुस्सूअधम्मराओ	२४	श्राव. प्र.गा. ६९
से य सम्मत्ते	१५	-
सोलस वासाणि	४०८	आव. मू. भा. गा. १२७
सोलसवासाईसु	१०५	पञ्च व. गा. ५८७
संकियमक्खिय	४७७	पिण्डविशुद्धि गा. ७७
संजोयसिद्धिइ	४०५	आवश्यकनिर्युक्ति गा. १०२
संतोससारत्तम	४०९	-
संथरणंमि असुद्धं	४०५	यतिदिनचर्या गा. २३५
संथरणंमि असुद्धं	१२७	निशीथ भा. गा. १६५०
संहतिः श्रेयसी	३०९	-
हयं नाणं कियाहीणं	४०५	आवश्यकनिर्युक्ति गा. १०१
हीणस्स वि सुद्ध	४०५	उपदेशमाला गा. ३४८
हेऊदाहरणासंभवे	२३	संबोध प्र. ध्यानाधिकार-४९
हेमधेनुधरादीनां	५९	-

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-३

हितोपदेशग्रन्थस्य कथानामकारादिक्रमः

कथा	गाथाक्रमाङ्कः	विषयः
अभयकुमारकथानकम्	२३०	विनयगुणविषये
आनन्दकथानकम्	१९९	तपधर्मविषये
आर्यरक्षित-वज्रस्वामिनोः कथानकम्	१०६	श्रुतस्य ग्रहण-वितरणविषये
इलापुत्रकथानकम्	२१०	भावधर्मविषये
कनकवतीकथानकम्	२११	भावधर्मविषये
कुमारनन्दीसुवर्णकारकथानकम्	१६९	जिनबिम्बनिर्माणविषये
चन्दनबालाकथानकम्	१३४	सुपात्रदानविषये
चिलातीपुत्रकथानकम्	१४८	जिनवचनश्रवणफले
चेटकनरेन्द्रकथानकम्	४४५	देशविरतिविषये
नरकेसरिनरपतिकथानकम्	६६	जीवदया विषये
पुष्पचूल-पुष्पचूलाकथानकम्	३६१	परोपकारगुणविषये
पुष्पचूलासाध्वीकथानकम्	१३४	सुपात्रदानविषये
बलदेवकथानकम्	१९९	तपधर्मविषये
बाहुबलीकथानकम्	२०८	भावधर्मविषये
बाहुमुनिचरितम्	१३४	सुपात्रदानविषये
ब्राह्मीकथानकम्	१९९	तपधर्मविषये
माषतुषकथानकम्	११६	श्रुतस्य अवज्ञाविषये
मूलदेवकथानकम्	१३४	सुपात्रदानविषये
मृगावतीकथानकम्	२०९	भावधर्मविषये
राजीमतीकथानकम्	१८५	शीलप्रतिपालनविषये
रोरकथानकम्	४६४	सर्वविरतिविषये
रौहिणेयकथानकम्	१४८	जिनवचनश्रवणफले
वग्गुरश्रेष्ठिकथानकम्	१६३	जीर्णोद्धारविषये
शबर-नरनाथकथानकम्	३९२	कृतज्ञगुणविषये

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथा	गाथाक्रमाङ्कः	विषयः
श्रीसम्भवप्रभुचरितम्	२९	भक्तिरागस्य गौरवविषये
सुदर्शनकथानकम्	१८५	शीलप्रतिपालनविषये
सुन्दरीकथानकम्	१९९	तपधर्मविषये
सुभद्राकथानकम्	१८५	शीलप्रतिपालनविषये
सोमदत्तकथानकम्	७६	अनुकम्पादानविषये
स्थूलभद्रकथानकम्	१८५	शीलप्रतिपालनविषये

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-४

हितोपदेशामृतविवरणस्थकतिपयानां[1] सूक्तीनां सङ्ग्रहः

सूक्तिः	गाथाक्रमाङ्कः
'उदिते तु पदार्थप्रकाशनपरे दर्शनभास्करे प्रगट एव मोक्षमार्गः' ।	१८
'दुर्लभा हि सर्वत्र ब्रह्माण्डभाण्डोदरेऽपि दानशौण्डाः' ।	३२
'समस्तपापप्रारम्भाणां जीववधमूलत्वात्' ।	५६
'सकलपुण्यारम्भपुण्याहमङ्गलरूपत्वात् प्राणिदयायाः'	५६
'निखिलस्यापि वाङ्मयस्य श्रुतज्ञानरूपत्वात्' ।	१००
'आगमग्राहिणां तूपष्टम्भो महते पुण्याय' ।	१०८
'सम्यगाराधितो हि धर्म्मः सकलमपि संसृतिजालं लीलयैवोच्छिन्द्यात्' ।	११४
'जिनबिम्बकारयितुः सुकृतसन्ततिः' ।	१६७
'निकामं वाम एव कृत्स्नोऽपि कामव्यवहारः' ।	१७८
'भवोच्छित्तिनिमित्तत्वाद् दानादिधर्माराधनस्य' ।	२१२
'सति हि समुत्ताने माने कौतुस्कुती विनयप्रवृत्तिः' ।	२२६
'उदारहस्तन्यस्तानि हि वित्तान्यपरापर-पात्रोपभोगेन मुच्यन्त एव पूर्वयातनातः' ।	२६७
'मुनीनामिव कुलवनितामपि महते दोषाय दोषप्रचारः' ।	२८५
'धर्म्माविनाभूतत्वाच्छर्म्मणः' ।	३२१
'सति ह्यङ्कारे दूरस्थैव प्रायः प्राणिनां गुणश्रेणिः' ।	३६५
'स्वश्लाघापरनिन्दयोर्जनिमृत्योरिव परस्परानुगतत्वात्' ।	३७८
'यत् किल भवनं सन्तमसछन्नं भवति तत्र घटपटादिप्रकटनपरा दृष्टिः कथं प्रसरति' ।	३९७
'स्फुरदुरुविवेकपरिपाको कोपादित्यहो क्रोधस्य विधेयत्वम्' ।	४९५

1. हितोपदेशामृतविवरणमध्ये वृत्तिकारआचार्यश्रीपरमानन्दसूरिभिः एतादृशाः अनेकसूक्तयः निबद्धाः, एतादृशैः सूक्तिभिः ग्रन्थः समृद्धशाली भवति ।

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पू.आ.श्री विजयरामचन्द्रसूरि-
स्मृतिसंस्कृत-प्राकृत ग्रंथमाला

ISBN-81-87163-67-4

Sanmarg (079) 25352072

Jain Education International 2010_02 For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org